

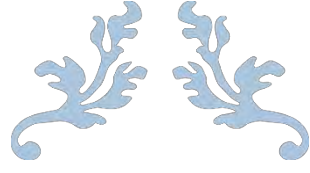
महात्मा गांधी

पूर्णाहुति

प्रथम खण्ड



प्यारेलाल



महात्मा गांधी : पूर्णाहुति : प्रथम खंड

प्रथम खण्ड

लेखक
प्यारेलाल

अनुवादक
रामनारायण चौधरी

पहला संस्करण, जनवरी १९६५

ISBN 81-7229-303-8

मुद्रक और प्रकाशक
जितेन्द्र ठाकोरभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय

अहमदाबाद - ३८.१४

फोन: +91-79-28540635 | 27542634

E-mail : jitnavjivan10@gmail.com | Website : www.navajivantrust.org



अर्पण
महादेव देसाईको



मूक दरिद्र-नारायणोंके अन्तरमें बसनेवाले प्रभुके सिवा अन्य किसी ईश्वरको मैं नहीं पहचानता। . . .
और मैं इस मूक जनताकी सेवाके द्वारा ही परमेश्वरको सत्यके रूपमें अथवा सत्यको परमेश्वरके रूपमें
पूजता हूं।

- महात्मा गांधी



प्रकाशकका निवेदन

‘महात्मा गांधी : पूर्णाहुति’ का यह प्रथम खण्ड गांधीजीके निर्वाण-दिवसके अवसर पर हिन्दीमें भारतकी जनताके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें आनन्द होता है। गांधीजीके जीवनके अंतिम, रोमांचक और सबसे यशस्वी भागका निरूपण करनेवाले ‘महात्मा गांधी : दि लास्ट फेज’ नामक श्री प्यारेलालके बृहद् ग्रन्थका यह हिन्दी अनुवाद है। मूल अंग्रेजी ग्रन्थ दो बृहदाकार खण्डोंमें प्रकाशित हुआ है। पाठकोंकी सुविधाकी दृष्टिसे हिन्दी अनुवादको चार खण्डोंमें प्रकाशित करनेकी हमारी योजना है। अंग्रेजी ग्रन्थका भारतमें और विदेशोंमें हार्दिक स्वागत हुआ है। आशा है, इस हिन्दी संस्करणका भी देशकी जनताकी ओरसे वैसा ही स्वागत होगा।

इस पुस्तकमें आये हुए काव्यांशोंका हिन्दी पद्यानुवाद श्री गोविन्द व्यासने किया है, जिसके लिए हम उनके अत्यन्त माभारी हैं।

२६-०१-१९६५



प्रस्तावना

इस ग्रंथके लेखकका कोई परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं। वे लम्बे समय तक महात्मा गांधीके निजी सचिव और महादेव देसाईकी मृत्युके बाद महात्मा गांधीके 'हरिजन' साप्ताहिकोंके सम्पादक रहे थे। 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' में लिखित अपने लेखों द्वारा और गांधीजीके जीवन-कालमें तथा उसके बाद प्रकाशित गांधीजीसे सम्बन्धित अपनी पुस्तकों द्वारा उन्होंने यह ख्याति प्राप्त कर ली है कि वे गांधीजीके जीवन और उनके दर्शनके विश्वसनीय और प्रमाणभूत इतिहासकार तथा भाष्यकार हैं। प्रस्तुत ग्रंथमें महात्मा गांधीकी जीवन-यात्राके अंतिम भागका निरूपण किया गया है। इस प्रकार यह ग्रंथ महात्माजी द्वारा लिखी हुई 'सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा' नामक पुस्तककी पूर्ति करता है। उस पुस्तकका सम्बन्ध अधिकतर गांधीजीके जीवनके उस भागसे है, जिसे उनका निर्माण-काल कह सकते हैं। उस समय वे अपने भावी महान कार्यके लिए तैयारी कर रहे थे। प्रस्तुत ग्रंथमें उनके जीवनके अन्तिम वर्षोंकी कथा लिखी गई है, जब कि उनके जीवन भरके सारे प्रयोगोंके परिणामोंकी कड़ीसे कड़ी और अन्तिम परीक्षा हुई थी।

गांधीजीको जिन बाधाओंका सामना करना पड़ा, वे केवल पार्थिव अथवा भौतिक ही नहीं थीं; अधिकतर वे बाधायें नैतिक और आध्यात्मिक स्तरकी थीं। ये बाधायें हमेशा उनके तथाकथित विरोधियोंकी ओरसे ही नहीं आईं, परन्तु अनेक अवसरों पर उन लोगोंकी ओरसे आईं, जिनके साथ उन्होंने दक्षिण अफ्रीकासे भारत लौटनेके बाद तीस वर्षकी लम्बी अवधि तक काये किया था और जिन पर उन्हें ऐसा विश्वास था कि उनके देहान्तके बाद वे उनकी जलाई जोतको जलती रखेंगे; जिन्हें गांधीजी छोड़ नहीं सकते थे और जिनका काम गांधीजीके बिना नहीं चल सकता था। इस ग्रंथमें जो कुछ लिखा गया है उसका सार देनेका प्रयत्न न तो संभव ही है और न वांछनीय है। कुछ उदाहरणों द्वारा मैं इस बातका संकेतमात्र यहां करूंगा कि यह कार्य कितना कठिन और नाजुक था और ग्रंथकारने उसे कितने सुन्दर ढंगसे पूरा किया है, जिससे इस ग्रंथमें पाठकोंको जो अति स्वादिष्ट भोजन मिलनेवाला है उसके लिए वे तैयार हो जाय।



सत्याग्रहका सिद्धान्त कोई नया सिद्धान्त नहीं है। प्राचीन कालमें पतंजलिने विस्तारसे इसका प्रतिपादन और निरूपण किया था। गांधीजीने केवल सत्याग्रहको अपने जीवनमें उतार कर ही नहीं परन्तु ऐसी कार्य-पद्धतिका निर्माण करके, जिससे जनता सामूहिक रूपमें उसका प्रयोग कर सके, तथा जनताको सत्याग्रहका उपयोग करना सिखाकर वैयक्तिक और सामाजिक प्रश्न हल करनेकी सत्याग्रहकी संभावनाओंका दर्शन जगतको करा दिया था। यह वस्तु गांधीजीको बहुत बड़ा यश दिलानेवाली है। विभिन्न परिस्थितियों, संयोगों, ध्येयों तथा प्रश्नों और विशेष रूपसे प्रत्येक उदाहरणमें सम्बन्धित मानव-सामग्रीके अनुसार सत्याग्रहकी कार्य-पद्धतिमें समय समय पर परिवर्तन करना पड़ता था। परन्तु मूलभूत सिद्धान्त तो सर्वत्र वही रहता था।

गांधीजीने सत्याग्रहके विस्तृत निरूपणके लिए शास्त्रीय ढंगकी कोई पुस्तक तो नहीं लिखी है, परन्तु रोज-रोज सामने आनेवाली और हल चाहनेवाली समस्याओंके सिलसिलेमें सत्याग्रहके प्रयोगों द्वारा उसके असंख्य प्रत्यक्ष उदाहरण अवश्य प्रस्तुत किये हैं। ये समस्याएं व्यक्तियोंसे भी सम्बन्ध रखती थीं और समाज, देश तथा सारी मानव-जातिसे भी सम्बन्ध रखती थीं। शास्त्रीय पुस्तक लिखनेकी गांधीजीकी अनिच्छाका कारण सत्याग्रहका मूल स्वरूप था। सत्याग्रह एक सजीव सिद्धान्त है; उसका किन्हीं निश्चित और अविचल सूत्रोंके रूपमें सार-तत्त्व नहीं दिया जा सकता। उसका विकास भी संयमका और जीवनकी एक विशिष्ट पद्धतिका अनुसरण करके ही साधना पड़ता है। उसमें सिद्धान्तोंको सही रूपमें समझनेकी जरूरत तो होती है, किन्तु उससे भी अधिक जरूरत विभिन्न परिस्थितियों और समस्याओं पर उन सिद्धान्तोंको ठीक ढंगसे लागू करनेकी होती है। इसलिए सत्याग्रहके सिद्धान्तका इतना महत्त्व नहीं है, जितना उसके अमलका है। गांधीजीने लिखा है, “सच तो यह है कि मेरे लेखोंको भी मेरे शरीरके साथ ही जला देना चाहिये। मैंने जो कुछ किया है वही सदा टिकेगा, न कि वह जो मैंने कहा है या लिखा है। मैंने अकसर यह कहा है... कि हमारे सारे धर्मग्रंथ नष्ट हो जायें, तो भी हिन्दू धर्मको निष्कर्ष बतानेके लिए ईशोपनिषद्का एक ही मंत्र पर्याप्त है। परन्तु यदि उसके अनुसार जीवन बितानेवाला कोई नहीं होगा, तो वह मंत्र भी व्यर्थ होगा।”

इसलिए गांधीजीने जो कुछ किया, जिस तरह किया और जिसके लिए किया, उसके एक सर्वग्राही, अधिकृत और विस्तृत विवरणकी जरूरत है। जो निरूपण गांधीजीके छोटे और बड़े कार्योंका



एक विविधतापूर्ण तथा सुरम्य दृश्य प्रस्तुत करे, उसीमें महात्मा गांधीके जीवन तथा उपदेशोंका सच्चा, हृदयको हिला देनेवाला, जीवनदायी, अद्भुत तथा सत्य-शिव-सुन्दर चित्र देखनेको मिल सकता है। प्रस्तुत ग्रंथमें उन लोगोंके लिए, जिनको इसमें रस है, यह प्रयत्न किया गया है और एक ऐसे व्यक्तिके द्वारा किया गया है, जिसे अपनी वर्णित घटनाओं को प्रत्यक्ष देखने और जाननेका सौभाग्य मिला था और जिसमें उनका सही विवरण देने और व्याख्या करनेकी योग्यता और सूक्ष्म दृष्टि है।

उदाहरणके लिए, जीवनमें सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तको गांधीजी द्वारा उन समस्याओं पर लागू किये जानेकी बातको ही लीजिये, जो समाजके लगभग प्रत्येक नेताके सामने रोज-रोज आती हैं। गांधीजीमें अपना संग्राम स्वयंको अलग रखकर अनासक्त भावसे चलानेकी अनोखी शक्ति थी। इससे विरोधी लोगोंका विरोध धीरे-धीरे कम होता जाता था और अन्तमें उनके दिल जीत कर गांधीजी उन्हें अपना बना लेते थे। आखिरमें जीत या हारकी कोई भावना बाकी नहीं रहती थी और दोनों पक्ष एक ही सत्यको खोजने वाले साथी बन जाते थे। इस कार्य-पद्धतिमें असफलता जैसी कोई चीज नहीं होती; प्रत्येक अनुभवसे एक नये सत्यका आविष्कार होता चलता है और सफलताकी ओर बढ़नेमें मदद मिलती है। यही कारण है कि गांधीजीकी संगतिमें किसीको निराशा या पराजयकी भावनाका कभी अनुभव नहीं होता था, परन्तु हमेशा यही अनुभव होता था कि प्रत्यक्ष असफलता और पीछे-हटके बावजूद हम उद्देश्यकी ओर बराबर आगे बढ़ रहे हैं।

एक और सार्वत्रिक सिद्धान्त, जो सत्य और अहिंसाकी गांधीजीकी बुनियादी कल्पनाका ही एक पहलू है और जिसका गांधीजीके जीवन और उपदेशोंके प्रत्येक अम्यासीको बहुत ध्यानसे अध्ययन करनेकी जरूरत है, 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' के सूत्रमें प्रगट होता है। गांधीजीका कहना था कि मनुष्य यदि अहिंसक जीवन-पद्धतिको सिद्ध करना चाहता हो और यदि उसका प्रयत्न वांछित दिशामें आगे बढ़ता न दिखाई दे, तो उसका कारण उसे अपने ही भीतर ढूंढना चाहिये। यही सत्य दूसरी अनेक कहावतोंमें निहित है। जैसे, "दूसरोंके साथ तुम वही करो जो तुम उनसे अपने साथ कराना चाहते हो।" "दूसरोंके प्रति की गई बुराई अपने ही अनिष्टका रूप ले लेती है।" और अंतमें जुगका यह कथन देखिये: "आपके चित्तपट परसे जो कुछ अदृश्य हो जाय, उसके विरोधी पड़ोसीके गुप्त वेशमें वापिस लौटनेकी पूरी संभावना है। वहां वह अनिवार्य रूपमें आपके क्रोधको भड़कायेगा और आपको आक्रामक



बनायेगा। आपका सबसे कट्टर शत्रु स्वयं आपके हृदयमें ही रहता है, यह जान लेना निश्चित ही ज्यादा अच्छा है।” परन्तु पाठक इस ग्रंथके पृष्ठोंमें देखेंगे कि इस सिद्धान्तको अपने जीवन तथा अपने कार्योंमें वैज्ञानिक रीतिसे लागू करनेका कार्य तथा जब मनुष्यको अपना आगेका रास्ता बन्द दिखाई देता है और उसके सामने ठोस दीवार-सी खड़ी हो जाती है, ऐसे समय कार्यकी नई दिशायेँ खोलनेकी उस सिद्धान्तकी शक्ति प्रदर्शित करनेका कार्य गांधीजीने ही किया है।

उनकी कार्य-पद्धतिका भारतमें सबसे पहला प्रदर्शन चम्पारनमें हुआ। और एक अर्थमें वह सबसे उल्लेखनीय प्रदर्शन था, क्योंकि वह ऐसे समय हुआ था जब महात्मा गांधी सार्वजनिक जीवनमें उतने महत्ता-प्राप्त पुरुष नहीं हुए थे जितने वे बादमें बन गये। इस ग्रन्थमें तो उनकी कार्य-पद्धति परिपक्व अवस्थामें कार्य करती दिखाई देती है। कोई सौ वर्षसे ब्रिटिश निलहे चम्पारनमें नीलकी खेती कराते आ रहे थे। उससे रंग निकाला जाता था। ऐसा करते हुए उन्होंने जमींदारों और किसानोंसे सिर्फ बहुतसी जमीन ही नहीं हथिया ली थी, बल्कि वे तरह तरहके अत्याचारी उपायोंसे उन्हें अपनी जमीनमें भी नीलकी खेती करनेको मजबूर करते थे। नतीजा यह होता था कि खुद उन्हें बड़ा मुनाफा होता था और किसानोंको दुःख और कष्ट भोगना पड़ता था। इसके विरुद्ध नाराजी प्रगट की जाती थी; आन्दोलन भी होता था। बीच बीचमें हिंसा भी फूट पड़ती थी; और हत्या तथा अग्निकांडकी कार्रवाइयां भी होती थीं। परन्तु उनसे कोई फल नहीं निकला। जब किसानोंके निमंत्रण पर गांधीजी उनके कष्टोंकी जांच करने गये, तो चम्पारन पहुंचकर पहली घोषणा उन्होंने यह की कि वे निलहोंको अपने दुश्मन नहीं समझते और उनका भला चाहते हैं। उस समय यह बात न सिर्फ निलहोंकी ही समझमें नहीं आई - क्योंकि उनके सामने अपने अन्यायपूर्ण और दीर्घकालीन लाभकी सम्पूर्ण हानिका प्रश्न था - बल्कि हममें से भी बहुतांशकी समझमें नहीं आई। निलहोंको इस घोषणा पर भरोसा नहीं हुआ; बल्कि शंका भी हुई। परन्तु जैसे जैसे गांधीजीसे उनका सम्पर्क बढ़ता गया और वे गांधीजीको अधिकाधिक समझते गये, वैसे वैसे उनका अविश्वास और सन्देह आनन्दयुक्त आश्चर्यमें बदलने लगा। और जब उस जांच-कमिटीका विवरण पेश हुआ, जिसे सरकारने किसानोंकी शिकायतोंकी जांचके लिए नियुक्त किया था और जिसके महात्मा गांधी भी एक सदस्य थे, तब तक तो निलहे गोरे गांधीजीको अपना सच्चा हितैषी मानकर उनका आदर करने लगे थे। बादकी घटनाओंने तो इसे असंदिग्ध रूपमें सिद्ध भी कर दिया था। गांधीजीके व्यक्तिगत



सम्पर्कके जादूके अलावा उन लोगों पर सबसे ज्यादा असर कमिटीके सदस्यकी हैसियतसे गांधीजीके आचरणका हुआ। पचासों बरसकी अदालती कार्रवाइयों और लगातार कई सरकारी अफसरोंकी रिपोर्टोंके आधार पर ऐसे बहुतसे प्रमाण सामने आये, जिनसे निलहों और उनके गुमाशतोंके विरुद्ध अत्याचार, भ्रष्टाचार और तानाशाहीकी लगभग प्रत्येक शिकायतका समर्थन होता था। और यदि जांच-कमिटी उन पर अपना निर्णय रिपोर्टमें दर्ज करती, तो निलहे और उनके गुमाशते दोषी सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकते थे। परन्तु गवाहोंकी कैफियतें दर्ज हो जानेके बाद उन पर हो रही चर्चाके आरम्भ-कालमें ही गांधीजीने कमिटीके निलहे प्रतिनिधिको निर्भय कर दिया था और यह घोषणा करके उसका पूरा विश्वास प्राप्त कर लिया था कि उन्हें भूतकालसे इतना वास्ता नहीं है जितना वर्तमान और भविष्यसे है; और वे यह आग्रह नहीं करेंगे कि जो शिकायतें दर्ज की जायं उन पर कोई निर्णय दिया जाय। अगर नीलकी खेतीकी अत्याचारी प्रथा उठा ली जाय और निलहोंके जुल्म बन्द हो जायं, तो इतनेसे उन्हें सन्तोष हो जायगा। भूतकालमें किसानोंका जो निर्दय शोषण किया गया था, उसका भी पूरा मुआवजा दिलानेका गांधीजीका आग्रह नहीं था। उन्होंने कहा कि भविष्यमें किसानोंका ऐसा शोषण न हो सके, इसकी गारंटीके तौर पर किसानोंसे जबरन् वसूल की गई रकमकी एक-चौथाई रकम भी वापस कर दी जाय, तो वे सन्तुष्ट हो जायंगे। इसके फलस्वरूप ऐसा समझौता हो गया, जिससे दोनों पक्ष खुश हुए। किसानोंको यह खुशी हुई कि नीलकी खेती और उसके साथ लगे हुए अत्याचार और उत्पीड़नका अन्त हो जायगा; और निलहोंको - दौलत तो वे पहले ही कमा चुके थे - यह खुशी थी कि वे अत्याचारी और उत्पीड़कके रूपमें सारी दुनियाके सामने धिक्कारे नहीं जायंगे और उन्होंने गैर-कानूनी ढंगसे जो रुपया बटोरा था वह साराका सारा उनसे उगलवाया नहीं जायगा। विधान-सभामें उनके प्रतिनिधिके समर्थनसे कानून पास हुआ। उन्होंने किसानोंके बच्चोंकी शिक्षाके लिए खोले गये और चलाये जा रहे ग्रामीण स्कूलोंके लिए आर्थिक मदद दी और एक-दो के सिवा अन्य सब निलहोंने गांधीजीको दूसरी मदद भी दी। तीन-चार सालके भीतर यह देखकर कि दूसरी फसलोंकी खेती नीलकी खेतीके बराबर लाभदायक नहीं है, निलहोंने धीरे धीरे थोड़ी थोड़ी करके अपनी जमीन उन्हीं काश्तकारोंको बेच दी, जिन्हें वे लम्बे अर्सेसे सताते आ रहे थे और जमीनकी अच्छी कीमत पाकर उन्हें खुशी हुई। किसानोंको अपनी जमीन वापस मिलने और मिलहोंके पंजेसे छुटकारा पा जानेकी खुशी थी; और पहले जहां निलहोंके विशाल



और विलासपूर्ण बंगले खड़े थे वहां आज जिले भरमें किसानोंके घर और मवेशियोंके छप्पर दिखाई देते हैं ।

जननेताओंमें महात्मा गांधीका लगभग अनोखा स्थान इसलिए था कि वे अत्यन्त भिन्न और कभी कभी परस्पर विरोधी दृष्टिकोणोंमें भी इस तरह सुमेल और सामंजस्य करानेकी क्षमता रखते थे, जिससे समान ध्येयकी प्राप्तिमें बाधक बननेके बजाय वे एक-दूसरेके पूरक और सहायक बन जाते थे। कांग्रेस संगठनमें उनसे मतभेद रखनेवाले अपने साथियोंसे गांधीजी जिस तरह निबटते थे, उसमें उनके इस गुणका हमें एक उत्तम उदाहरण मिलता है। यह उदाहरण सभी संस्थाओंके कार्यकर्ताओंके लिए अच्छे मार्गदर्शकका काम दे सकता है, जहां बहुतांशको एकसाथ काम करना पड़ता है और बुनियादी ढंगके मतभेदोंके बावजूद सबके पूरे सहयोगके बिना काम नहीं चल सकता। १९२१ में सभी कांग्रेसियों और खिलाफतवालोंके बीच व्यावहारिक कार्यक्रमके बारेमें एकमत था, यद्यपि मूलभूत सिद्धान्तके विषयमें पूरी पूरी सहमति नहीं थी और बहुतांशके मनमें तो शंका भी थी। परन्तु १९२२ में महात्मा गांधीके कैद हो जानेके बाद कामके व्यावहारिक कार्यक्रमके सम्बन्धमें स्पष्ट मतभेद सामने आये - खास तौर पर १९२. के संविधानके अनुसार चुनाव लड़ने और विधान-सभाओंमें जानेके प्रश्न पर। इससे कांग्रेसमें फूट पड़ गई। एक दल, जिसके नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास, पंडित मोतीलाल नेहरू, नरसिंह चिन्तामणि केलकर, एम. आर. जयकर, हकीम अजमलखां और दूसरे स्वराज्यवादी थे, विधान-सभामें प्रवेश करनेका हिमायती था। दूसरा दल, जिसके नेता चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सरदार वल्लभभाई पटेल और सेठ जमनालाह बजाज थे, विधान-सभा प्रवेशका विरोधी था। दिसम्बर १९२२ में कांग्रेसके गया-अधिवेशनमें, जिसके सभापति देशबन्धु दास थे, विधान-सभा प्रवेशका विरोध करनेवाला प्रस्ताव बड़े बहुमतसे पास हुआ, यद्यपि स्वयं अध्यक्षने अपने भाषणमें विधान-सभा प्रवेशके पक्षमें जोरदार वकालत की थी। यह विवाद उस समय तक चलता रहा जब तक कि १९२३ के उत्तरार्द्धमें दिल्लीके विशेष कांग्रेस अधिवेशनमें समझौता नहीं हो गया। उसके अनुसार जो लोग विधान-सभाके चुनाव लड़ना चाहें उन्हें उसकी इजाजत दी गई, बशर्ते वे अपने बनाये हुए स्वराज्य-दलकी ओरसे लड़ें - न कि कांग्रेसकी ओरसे और चुनावमें कांग्रेसका रुपया काममें न लिया जाय। नवम्बर-दिसम्बर १९२३ के चुनाव कांग्रेसवालोंने स्वराज्य-दलकी ओरसे लड़े और वे जीते। जब गंभीर बीमारीके कारण १९२४ के शुरूमें महात्मा गांधी



जेलसे छूटे, तो वे दोनों दलोंमें समझौता करानेके काममें जुट गये, यद्यपि स्वयं उनकी यह पक्की राय थी कि कांग्रेसियोंको विधान-सभाओंमें नहीं जाना चाहिये और वे तथाकथित अपरिवर्तनवादियोंसे सहमत थे। अहमदाबादमें हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटीकी बैठकमें सीधे इस सवाल पर तो मत नहीं लिया गया, परन्तु एक और प्रश्न पर लिया गया जिसे देशबन्धु दास और पंडित मोतीलाल नेहरूका समर्थन प्राप्त था। वे अपने समर्थकों सहित सभासे बाहर चले गये और उनकी अनुपस्थितिमें उनका प्रस्ताव थोड़ेसे बहुमतसे गिर गया। परन्तु महात्मा गांधीने, वैधानिक अधिकार होते हुए भी, विजयका दावा करनेके बजाय यह घोषणा की कि यह प्रसंग उनके लिए गर्वका नहीं, किन्तु विनम्रताका है - उनकी जीत नहीं बल्कि हार हुई है। कुछ महीने बाद देशबन्धु दासका अवसान हो जाने पर एक और कदम गांधीजीने उठाया। उन्होंने यह घोषणा की कि पार्लमेन्टरी प्रवृत्ति अब घर कर चुकी है और इसे स्वीकार करके उन्होंने कांग्रेस संगठनको विधान-सभा प्रवेशका कार्यक्रम चलानेके लिए स्वराज्यवादियोंके सुपुर्द कर दिया और खुदने रचनात्मक कार्य संभाल लिया। उन्होंने खादीको फिरसे जीवित करने और फैलानेके लिए अखिल भारत चरखा-संघकी स्थापना की। नतीजा यह हुआ कि १९२६ के आगामी चुनावोंमें कांग्रेसको १९२३ से ज्यादा सफलता मिली। साथ ही खादीके पुनरुज्जीवन और प्रसारका काम बड़ी तेजीसे आगे बढ़ा। दोनों दलोंने अपने अपने दृढ़ विचारोंको छोड़े बिना एक-दूसरेकी सहायता की। बादमें जब सत्याग्रह करनेका प्रसंग आया तब जो लोग कांग्रेसकी तरफसे विधान-सभाओंमें गये थे वे बाहर आ गये और उन्होंने सत्याग्रहके कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेके लिए महात्मा गांधीको कांग्रेसका सर्वाधिकारी (डिक्टेटर) बनानेके पक्षमें अपना मत दिया।

१९४.-४१ में ऐसी ही किन्तु कुछ अधिक कठिन परिस्थिति उत्पन्न हुई, जब भारतको ब्रिटिश सरकारने दूसरे महायुद्धके समय युद्धके समर्थक देशके रूपमें घोषित कर दिया। ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि कांग्रेस उसके युद्ध-प्रयत्नोंका पूरा समर्थन करे। कांग्रेसके भीतर ऐसे अनेक लोग थे जो संपूर्ण समर्थन देनेको तैयार थे, बशर्ते कि ब्रिटिश सरकार भारतको सत्ता तथा जिम्मेदारी सौंप दे और शासनमें - जिसमें प्रतिरक्षा और युद्ध-प्रयत्न शामिल माने जायें - पूरा हिस्सा दे। महात्मा गांधी केवल नैतिक समर्थन देनेको तैयार थे और किसी भी हालतमें जन-धनकी सहायता देनेके विरुद्ध थे। कांग्रेस कार्यसमितिके इस बातकी चर्चा की और जब गांधीजी अपने साथियोंको अपनी रायका नहीं बना सके,



तो वे कांग्रेस कार्यसमितिकी चर्चाओंसे अलग हो गये। इस तरह गांधीजीने उन लोगोंके लिए अपना कार्य आगे बढ़ानेकी सुविधा कर दी, जिनके साथ उनका मतभेद था। न तो गांधीजीने उनके कार्यमें कोई हस्तक्षेप किया और न अपने विचारोंसे सहमत होनेवाले लोगोंकी ओरसे कांग्रेस महासमितिकी बैठकमें उनके कार्यका विरोध किया। परन्तु ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसका प्रस्ताव नहीं माना, इसलिए कांग्रेसके सहयोगका प्रश्न पैदा ही नहीं हुआ। किन्तु इस अवगणनाके बावजूद कांग्रेसमें बहुतोंको यह आशा बनी रही कि जब युद्ध तेज होगा तब ब्रिटिश सरकार ढीली पड़ेगी और कांग्रेसकी शर्तों पर कांग्रेसका सहयोग लेगी। १९४२ के शुरूमें सर स्टैफर्ड क्रिप्सके साथ इसी आशाके आधार पर चर्चा हुई थी। लेकिन ढीला पड़नेके बजाय ब्रिटिश सरकारका रवैया और भी कड़ा हो गया और युद्ध-प्रयत्नके खिलाफ भारतीय विरोध 'न एक भाई न एक पाई' के नारेके रूपमें प्रगट हुआ। व्यक्तियोंने ब्रिटिश युद्ध-प्रयत्नमें किसी भी तरहकी मदद न देनेकी दूसरोंको सलाह देकर सत्याग्रह किया और उसके लिए वे जेल गये। इस व्यक्तिगत सत्याग्रहके उम्मीदवारोंका चुनाव गांधीजी स्वयं करते थे। उनमें से अधिकतर लोग जनताके चुने हुए प्रतिनिधि थे - जैसे विधान-सभाओंके, जिला बोर्डों और म्युनिसिपैलिटियोंके, कांग्रेस कमिटियोंके और दूसरी निर्वाचित संस्थाओंके सदस्य। इससे यह प्रगट होता था कि भारतकी सारी जनता सरकारके युद्ध-प्रयत्नके विरुद्ध है। क्रिप्स-मिशनकी संधिवातार्कके असफल होनेके बाद इस आन्दोलनका परिणाम १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलनमें आया। उस समय महात्मा गांधीको फिरसे कांग्रेसका नेतृत्व संभालनेके लिए कहा गया और उन्होंने उसे संभाल लिया। इस आन्दोलनके फलस्वरूप कांग्रेसियों और कांग्रेसके समर्थकोंकी एकसाथ बहुत बड़ी संख्यामें गिरफ्तारियां हुई और वे १९४५ में युद्धका अन्त होने तक जेलके सीखचोंमें बन्द रहे।

महात्मा गांधीका अपने साथियोंसे मौलिक मतभेद था। अहिंसाके प्रश्न पर गांधीजी कोई समझौता करनेको तैयार नहीं थे। बदलेमें स्वराज्यका आभास दिलानेवाली कोई वस्तु मिलती हो तो भी एक हिंसक युद्धके समर्थनमें किसी भी प्रकारके प्रयत्नमें भागीदार बननेसे उन्होंने इनकार कर दिया। परन्तु अपने सिद्धान्त पर डटे रह कर भी उन्होंने अपने साथियोंको उनकी बुद्धिके अनुसार देशकी सेवा करनेका पूरा मौका दिया। इससे एक परिणाम यह निकला कि दोनोंके बीच न सिर्फ आपसी विश्वास ज्योंका त्यों टिका रहा और अत्यन्त घनिष्ठ और निजी सम्बन्ध बने रहे, बल्कि जिनका गांधीजीसे मतभेद



था वे भी अन्तमें समझ गये और कुछ कालके लिए अपना कार्यक्रम छोड़ कर उनके नेतृत्वमें काम करने लगे।

देशके विभाजनके प्रश्न पर अपने रवैयेसे भी गांधीजीने साथियोंकी रायके लिए ऐसे ही आदरका परिचय दिया था, यद्यपि उनके साथ गांधीजीका तीव्र मतभेद था। गांधीजी भारतके विभाजनके कट्टर विरोधी थे और उसे वे भारतका 'अंग-छेदन' कहते थे। सारे कांग्रेसी भी - चाहे वे हिन्दू हो, मुसलमान हों या किसी दूसरे धर्मके अनुयायी हो - दो राष्ट्रोंके सिद्धान्त और भारतके विभाजनकी मांगके प्रबल विरोधी थे। परन्तु कांग्रेसी नेताओंको अन्तरिम सरकारमें जो अनुभव हुआ उसके बाद चित्र बदल गया। महात्मा गांधीकी अनुमतिसे ब्रिटिश सरकारके साथ हुए सफल वार्तालापके परिणाम-स्वरूप सितम्बर १९४६ में कांग्रेसने पद-ग्रहण किया और कांग्रेसी नेता केन्द्रीय सरकार के मंत्री बने। देशके विभाजनके लिए मुस्लिम लीगका आन्दोलन जारी रहा और उसके फलस्वरूप देशके अलग अलग हिस्सोंमें गंभीर कौमी दंगे हुए। बादमें जब मुस्लिम लीग केन्द्रीय सरकारमें सम्मिलित हुई तब उसके सदस्योंने जिन विषयोंमें कोई मतभेद नहीं था उनमें भी कांग्रेसी मंत्रियोंके साथ सहयोग करनेसे इनकार कर दिया। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलमें मुस्लिम लीगी सदस्य अपने कांग्रेसी साथियोंके रास्तेमें हमेशा रुकावटें डालते रहे। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलमें एकरसताके इस अभावके कारण प्रान्तोंमें शान्ति और व्यवस्था जब खतरेमें पड़ती, तो केन्द्रीय सरकार उसकी रक्षा करनेमें असमर्थता महसूस करती थी। ऐसी परिस्थितियोंमें कांग्रेसके जो नेता सरकारमें थे उन्होंने अनुभव किया कि शासन चलाना असंभव है। उन्हें लगा कि ऐसी परिस्थितियोंमें मुस्लिम लीगको पाकिस्तान मिलता हो तो भले मिल जाय। विभाजनके बाद जो प्रदेश भारतमें रह जायेंगे, कमसे कम उनमें तो वे सक्रिय और सक्षम रूपमें शासन चला सकेंगे। मुस्लिम लीगके प्रचारके कारण अनेक स्थानों पर जो सामूहिक हिंसा और हुल्लड़बाजी भड़क उठी और उसके जवाबमें जो हिंसा हुई उससे गांधीजीको अपार पीड़ा और यातना हुई। परन्तु वे इसके लिए तैयार नहीं हुए कि एक राष्ट्रका सिद्धान्त छोड़कर उसके बजाय मुस्लिम लीग द्वारा प्रतिपादित दो राष्ट्रोंका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाय अथवा दंगोंको दबा देनेके लिए सेनाकी सहायता ली जाय। उनका कहना यह था कि दंगों और तूफानोंका नियंत्रण जननेताओंको सब जातियोंके लोगोंकी सद्भावनाओंको जाग्रत करके और जरूरत पड़े तो इस पागलपनको दबानेकी कोशिशमें अपने आपको मिटा कर भी करना चाहिये। उन्हें विश्वास



था कि गलत सिद्धान्त पर आधारित और अत्यन्त आपत्तिजनक उपायों द्वारा किया गया देशका विभाजन हिन्दुओं और मुसलमानोंको - भारत और पाकिस्तान दोनोंको - ऐसी हानि पहुंचायेगा, जिसकी क्षतिपूर्ति कभी नहीं हो सकती। परन्तु जो नेता सरकारमें रहकर देशका शासन चलाते थे, उन्हींकी निर्णय-शक्ति पर गांधीजीने इस प्रश्नको छोड़ दिया था। और एक बार जब उन लोगोंने विभाजनके पक्षमें निर्णय कर लिया तो फिर गांधीजीने उनका विरोध नहीं किया, यद्यपि अपनी खुदकी रायको उन्होंने न तो कभी उनसे छिपाया, और न कभी देशसे छिपाया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटीकी बैठकमें इस प्रश्न पर विचार किया गया तब उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेलके रुखका जोरोंसे समर्थन किया और जो लोग पुराने कांग्रेसी नेताओंके खिलाफ बगावत करना चाहते थे उनका विरोध किया। गांधीजी निष्क्रिय भी नहीं रहे। अपने ही साथियोंके विरुद्ध प्रचार करने और दलबन्दी खड़ी करनेके बजाय उन्होंने विभाजनके पहले और उसके बाद हुई देशकी और विशेष रूपसे साम्प्रदायिक एकता तथा शान्तिकी व्यापक हानिको दूर करनेका कार्य अद्भुत शक्तिके साथ आरम्भ कर दिया। उनके शब्द आदेश बन गये, और जहां पुलिस और सेना भी लाचारी महसूस करती या खूनकी नदी बहानेके बाद ही सफल हो पाती, वहां गांधीजीकी उपस्थिति ही तूफानकी आगको रोकनेके लिए पर्याप्त सिद्ध हुई। इस ग्रन्थमें विशेष रूपसे गांधीजीके जीवन और कार्यके इस अंतिम भागका ही निरूपण किया गया है; और यह कार्य सूक्ष्म दृष्टि, समझ और संयमके साथ तथा निश्चितताका अतिशय ध्यान रख कर किया गया है।

भारतने स्वाधीनता तो प्राप्त कर ली, परन्तु अपनी एकता व अखंडताकी बलि देकर। यह वह स्वतंत्रता नहीं थी, जिसे गांधीजी या कांग्रेसने सिद्ध करनेका बीड़ा उठाया था। परन्तु गांधीजीको इसमें निराशाका कारण दिखाई नहीं दिया; असफल अहिंसा नहीं रही, परन्तु अहिंसाका पालन करनेमें भारतकी जनता असफल रही अथवा यों कहिये कि अपनी कल्पनाकी अहिंसा जनतामें उत्पन्न करनेमें गांधीजीकी कार्य-पद्धति असफल रही। अतः गांधीजी इस दोषको दूर करनेके प्रयत्नमें लग गये। इस ग्रन्थके वे पृष्ठ सबसे अधिक मोहक हैं, जिनमें बदली हुई परिस्थितियोंमें अपने स्वप्नोंके अनुसार नई समाज-व्यवस्था सिद्ध करनेके मार्ग पर भारतको ले जानेकी नवीन कार्य-पद्धतियां खोजनेके लिए चलनेवाले गांधीजीके मनोमन्थनका तथा उनके मनमें आकार ग्रहण कर रही योजनाओंका वर्णन किया



गया है। उस समाज-व्यवस्थाकी रचना एकता और शान्ति, समानता और भ्रातृभाव तथा सबके लिए अधिकसे अधिक स्वतन्त्रताकी नींव पर होनेवाली थी। अब समय आ पहुंचा था जब कि तीस वर्षसे अधिक समय तक भारतीय स्वतंत्रताकी लड़ाईका संचालन करके जो अनुभव और जो प्रतिष्ठा उन्होंने प्राप्त की थी, उसके बल पर वे अपना कार्यक्षेत्र अधिक बढ़ायें और पहलेसे भी अधिक अशुभ संयोगों तथा विरोधी परिस्थितियोंमें करणीय कार्योंका बीड़ा उठायें और इस तरह यह साबित करें कि सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी अहिंसा अपना चमत्कार दिखा सकती है। ठीक इसी समय भगवानने उन्हें उठा लिया। परन्तु उनके प्रयोगोंकी संभावनायें अभी समाप्त नहीं हुई हैं। और संभव है कि जिन विचारों और बलोंको उन्होंने जन्म दिया है, वे उनके अवसानके बाद ऐसी आश्चर्यजनक वस्तुएं सिद्ध कर दिखायें, जिनकी सपनेमें भी कल्पना नहीं की गई है और जो उनके जीवन-कालकी सिद्धियोंसे भी अधिक चमत्कारी हों।

उन्होंने जो कार्य हाथमें लिया था वह सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करनेका ही नहीं था, बल्कि ऐसी समाज-व्यवस्था स्थापित करनेका भी था, जिसका आधार सत्य और अहिंसा हो। शायद उनके प्रयोगका यह अधूरा रहा भाग स्वातंत्र्य-प्राप्तिसे ज्यादा कठिन था। राजनीतिक संघर्षमें लड़ाई एक विदेशी सत्ताके विरुद्ध थी और या तो सब लोग उसमें शरीक हो सकते थे और हुए भी थे अथवा कमसे कम उसकी सफलता चाहते थे और उसका नैतिक समर्थन करते थे। गांधीजीके आदर्शकी समाज-व्यवस्था स्थापित करनेमें तो हमारे अपने ही लोगोंके समूहों और वर्गोंके बीच संघर्ष होनेकी पूरी संभावना थी। अनुभव बताता है कि मनुष्यके लिए अपने प्राणोंसे भी अधिक अपनी सम्पत्तिका महत्त्व होता है, क्योंकि सम्पत्तिमें उसे एक ऐसा साधन दिखाई देता है जिससे उसके शरीरके मिट्टीमें मिल जानेके बाद भी उसका नाम उसकी सन्तानके द्वारा हमेशा बना रह सकता है। यह नई समाज-व्यवस्था मनुष्योंकी सम्पत्ति-सम्बन्धी मनोवृत्तिको आमूल बदले बिना स्थापित नहीं की जा सकती और किसी न किसी समय अमीरोंको गरीबोंके लिए जगह करनी ही पड़ेगी। हमारे अपने ही जमानेमें हम एक प्रकारकी समानतावादी समाज-व्यवस्थाकी स्थापनाके प्रयत्न और उसकी स्थापनाके बाद व्यवहारमें उसका चित्र भी देख चुके हैं। परन्तु यह काम ज्यादातर शरीर-बलका उपयोग करके किया गया है। नतीजा यह है कि यह कहना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है कि सम्पत्तिके संग्रहकी भावना जड़से उखड़ गई है या



कि किसी दूसरी शकलमें वह अधिक बुरे रूपमें फिरसे प्रगट नहीं होगी। यह भी संभव है कि धातुके पात्रमें अतिशय दबाकर रखी हुई गैस अथवा बड़े भारी बांधके पीछे रोका हुआ पानी जिस प्रकार अपनी बाधाको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है, उसी प्रकार समानताका बाह्य स्वरूप स्थापित करने तथा उसे टिकाये रखनेके लिए उपयोगमें ली गई हिंसाके जितनी ही व्यापक और तीव्र हिंसा एक दिन उस समानताको जड़-मूलसे नष्ट कर दे। जबरदस्तीकी बुनियाद पर रचे गये इस समतावादके मूलमें उसके अपने ही विनाशके बीज निहित हैं। वर्ग-संघर्षका मूल कारण तो सम्पत्तिकी लालसा या परिग्रह-वृत्ति है। जब तक अधिकाधिक सम्पत्ति पर, ऊंचेसे ऊंचे जीवन-स्तर पर जोर दिया जाता रहेगा, तब तक सम्पत्तिकी लालसा बनी ही रहेगी। जब तक अधिकसे अधिक भौतिक सुख प्राप्त करनेका आदर्श सामने रखा जायगा, तब तक सम्पत्तिका लोभ न तो दबेगा और न मिटेगा। यह तो ऐसी ही बात होगी जैसे पानीके बजाय पेट्रोल डाल कर आग बुझानेकी कोशिश की जाय। इससे तो वह अपनी खुराक पाकर और बढ़ेगी। यह लोभ चाहे थोड़ेसे आदमियोंमें सीमित रहे या बहुत लोगोंमें व्याप्त रहे, वह है सम्पत्तिका लोभ ही। यदि समानतावादको टिके रहना है तो उसका आधार थोड़ेसे या सब लोगोंके पास अधिकसे अधिक भौतिक सम्पत्तिका होना नहीं, बल्कि स्वेच्छापूर्वक स्वीकृत और ज्ञानयुक्त त्याग होना चाहिये। जिसमें दूसरे लोग हिस्सेदार न हो सकें या जिसका उपयोग हम दूसरोंको हानि पहुंचा कर ही कर सकते हैं, उस वस्तुका हमें त्याग करना होगा। इसके लिए निरे भौतिक मूल्योंकी जगह आध्यात्मिक मूल्योंकी स्थापना करनी होगी। सांसारिक सुखोंके जिस स्वर्गको आजकल कभी कभी प्रगति बताया जाता है, उसमें न तो शान्ति है, न प्रगति। महान विचारक और मनोवैज्ञानिक जुंगने हमें चेतावनी दी है कि, “हम पृथ्वी पर स्वर्गका निर्माण नहीं कर सकते; और यदि हमने कर भी लिया, तो थोड़े ही समयमें हमारा हर तरहसे पतन हो जायगा। हम अपने स्वर्गको नष्ट करके प्रसन्न होंगे और फिर उतनी ही मूर्खताके साथ आश्चर्य करेंगे कि हमने यह क्या कर डाला !”

महात्मा गांधीने हमें दिखा दिया है कि कैसे मनुष्यके जन्मजात सम्पत्ति-लोभका रूप अमीरों द्वारा गरीबोंके हितमें संरक्षकताका आदर्श अपनानेसे आमूल बदला जा सकता है। अमीर इस आदर्शको स्वीकार करें तो सम्पत्तिके लोभकी यह वृत्ति शोषण और संघर्षको जन्म देनेके बजाय समाजके सुधार और उन्नतिकी साधक और प्रेरक बन जाय। इस ध्येयकी प्राप्तिमें जबरदस्त कठिनाई है; गांधीजी जैसा



तपस्वी ही सामूहिक पैमाने पर इस ध्येयको सिद्ध कर सकता था। गांधीजी जो चाहते थे वह कुछ हद तक वैसा ही था, जिसके लिए आजकल विनोबा भावे प्रयत्न कर रहे हैं। वे चाहते थे कि लोग केवल अपने लिए ही सम्पत्ति न पैदा करें और उसे न रखें, बल्कि सबके लिए पैदा करें और रखें, अपनी जरूरतसे ज्यादा सम्पत्ति रखनेको चोरी समझें और अपनी जरूरतों पर भी स्वयं ही रोक लगायें। यही समानतावाद स्थायी हो सकता है और उसकी स्थापना सत्य और अहिंसाकी चट्टान पर ही की जा सकती है।

गांधीजीकी शिक्षाका मर्म केवल उनके देश भारत या यहांकी जनताके लिए ही सीमित नहीं था। वह सारी मानव-जातिके लिए था; और वह केवल वर्तमान कालके लिए ही नहीं, परन्तु त्रिकालके लिए सत्य है। वे चाहते थे कि सारे मानव स्वतंत्र हों जिससे वे अपना अबाधित विकास करके पूर्ण आत्म-साक्षात्कार कर सकें। वे मनुष्यका मनुष्य द्वारा होनेवाला सभी प्रकारका शोषण मिटा देना चाहते थे; क्योंकि शोषण करना और शोषणका शिकार होना दोनों ही पाप हैं—न केवल समाजके प्रति बल्कि नैतिक नियमके प्रति भी, हमारे जीवनके नियमके प्रति भी। इसलिए उनका कहना था कि इस उद्देश्यके अनुरूप ही साधन भी सर्वथा नैतिक अर्थात् विशुद्ध सत्य और अहिंसा पर आधारित होने चाहिये। अनेक विदेशियोंने अपने देशोंमें गांधीजीको बुलाया था, ताकि वे अपना सन्देश उन्हें स्वयं दे सकें। परन्तु गांधीजीने ये निमन्त्रण स्वीकार नहीं किये। उन्होंने कहा कि सत्य और अहिंसाके विषयमें उनका जो दावा है उसे पहले उन्हें अपने ही देशमें पूरा करना चाहिये; उसके बाद ही वे संसारका हृदय जीतने या उसके विचार बदलनेका भगीरथ काये हाथमें ले सकते हैं। सीमित रूपमें ही सही और पालनमें अनेक अपूर्णताएं रहनेके बावजूद भी उनकी अहिंसक कार्य-पद्धतिका अनुसरण करके जब भारतने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली, तब किसी हद तक दूसरे देशोंमें उनका संदेश ले जानेकी व पूर्वशर्त पूरी हो गई। और यद्यपि देशके विभाजनके कारण ऐसे आघात लगे और ऐसी समस्याएं पैदा हुईं जिन पर उन्हें अपना सारा समय और सारी शक्ति लगानी पड़ी, फिर भी वे अपनी व्यस्तताओंके बीच भी इस विशाल और व्यापक प्रश्नकी ओर ध्यान देनेकी क्षमता रखते थे। परन्तु विधाताको कुछ और ही स्वीकार था। भगवान करे कोई व्यक्ति या राष्ट्र ऐसा आगे आये, जो गांधीजीके आरंभ किये हुए प्रयासको उस समय



तक जारी रखे जब तक उनका प्रयोग पूरा न हो जाय, कार्य समाप्त न हो जाय और उद्देश्य सिद्ध न हो जाय!

राष्ट्रपति-भवन, नई दिल्ली,
नववर्ष दिवस, १९५६

राजेन्द्रप्रसाद



निवेदन

‘महात्मा गांधी: पूर्णाहुति’ का इतिहास कुछ आकस्मिक स्वरूपका है। ‘ए पिल्ग्रिमेज फॉर पीस’ (शांतियात्रा) नामक मेरी एक पूर्ववर्ती पुस्तकके अनुसंधानमें उतनी ही बड़ी एक और पुस्तक लिखनेका मेरा इरादा था। ‘ए पिल्ग्रिमेज फॉर पीस’ में सीमाप्रान्तके पठानोंमें अहिंसाका प्रचार और प्रसार करनेके गांधीजीके मिशनका वर्णन किया गया है। इस दूसरी पुस्तकमें उनके सर्वांगीण जीवन-चरित्रकी भूमिकाके रूपमें उनके नोआखालीके ‘करो या मरो’ मिशनकी कहानी देनी थी। परन्तु दो अंग्रेज मित्रोंने उसकी पांडुलिपि देख कर यह निश्चित मत दिया कि यदि इसी पुस्तकमें गांधीजीके बिहारके मिशनकी कहानी नहीं दी जायगी, तो जो चित्र सामने आयेगा वह अधूरा, एकांगी और असंतुलित होगा। मुझे उनके इस तर्कमें तथ्य मालूम हुआ और मैंने निर्णय किया कि प्रस्तावित पुस्तकमें गांधीजीके बिहारके शान्ति और सान्त्वनाके मिशनकी कहानी भी शामिल कर ली जाय। लेकिन जब मैं अपने काममें आगे बढ़ा तो मुझे पहली ही बार कुछ तथ्यों और घटनाओंकी जानकारी हुई। उनके बारेमें अब तक मुझे बहुत थोड़ा और सुना-सुनाया ज्ञान ही था, क्योंकि उस समय मैं गांधीजीसे दूर नोआखालीमें था। गांधीजीको जब नोआखालीसे बिहार और बादमें दिल्ली जाना पड़ा, तब वे साम्प्रदायिक एकता पुनः स्थापित करनेके अपने कार्यको आगे बढ़ानेके लिए अपने सारे पुराने साथियोंको नोआखालीमें छोड़ गये थे। इस प्रकार जो चित्र प्रकट हुआ उसका गूढ़ अर्थ और गंभीरता इतनी अधिक थी कि उसकी तुलनामें अन्य सब बातें मुझे क्षुद्र और तुच्छ मालूम होने लगीं। इसलिए गांधीजीके नोआखाली तथा बिहारके शांति-मिशनकी कथाके लिए पहले जो नाम ‘दि लोनसम वे’ (एकला चलो रे) सूचित किया गया था, उसे छोड़ कर मैंने निश्चय किया कि पुस्तकका क्षेत्र बढ़ाकर गांधीजीके जीवनके अंतिम भागकी एक पूरी, विस्तृत और अधिकृत कहानी पाठकोंको भेंट की जाय। गांधीजीके जीवनका यह अंतिम भाग ऐसा है, जिसमें उनकी आध्यात्मिक शक्तियां परिपक्वताके शिखर पर पहुंचकर काम करती दिखाई देती हैं। गांधीजीकी ये शक्तियां उस आत्मबलके रहस्यकी शोध करनेवाले उनके चित्त और आत्माकी अंतिम गतिकी झांकी हमें कराती हैं, जो आत्मबल पशुबल तथा सत्ताको अंकुशमें रख सकता है और पशुबलकी चनौतीका तथा लोकतंत्र और विपुलता, समानता और व्यक्ति-स्वातंत्र्य, प्रगति और शांतिके बीच रहे विरोधका - ये सब विरोध आजकी दुनियाके समक्ष खड़े हैं - उत्तर दे सकता है। इस कारण पहलेके मसौदेके पृष्ठोंके



अध्याय बने और उसकी कंडिकाओं के पृष्ठ तथा अध्यायोंके विभाग बन गये। स्वयं ग्रन्थको भी दो खण्डोंमें बांटना पड़ा। पहले खण्डमें गांधीजीकी १९४४ में हुई जेल-मुक्तिसे लेकर लॉर्ड माउन्टबेटनके भारतमें आने तकके कालका वर्णन है; दूसरे खण्डमें गांधीजीके जीवनके अंतिम क्षण तककी कहानी है।

मुझे स्वीकार करना चाहिये कि जब मैंने यह काम अपने हाथमें लेनेका साहस किया तब मुझे शायद ही इस बातकी कल्पना थी कि यह कैसा भगीरथ कार्य है और इसके मार्गमें कितनी भारी कठिनाइयां, बाधाएं और अड़चने आयेंगी। यदि मैं पहलेसे यह बात जानता होता, तो मुझे इसे हाथमें लेनेमें संकोच होता अथवा मैंने इसे दूसरी तरह आरंभ किया होता। प्राप्त होनेवाली जानकारीमें गंभीर कमियां थीं; गांधीजी तथा उनके साथियोंके बीच हुई नाजुक और अटपटी चर्चाओंकी बहुतसी तफसीलें तथा स्वतंत्रता और विभाजनके पूर्व और उसके पश्चात् ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधियोंके साथ हुई गांधीजीकी वार्ताओंकी रिपोर्ट लिखी नहीं गई थी। कभी कभी ऐसी नोंधें मौजूद तो थीं, परन्तु या तो वे अप्राप्य थीं अथवा दी नहीं जाती थीं। कभी कभी नाटकके ये पात्र, उन्हींके कहे अनुसार, अपना मुंह इतनी “बुरी तरह बन्द रखते थे” कि बादमें अपने पत्र-व्यवहारके कुछ अस्पष्ट उल्लेख वे स्वयं भी समझानेमें असमर्थ रहते थे, अथवा वे उल्लेख जिन घटनाओं या प्रसंगोंसे सम्बन्ध रखते थे उन्हें वे (पात्र) फिरसे याद नहीं कर पाते थे। प्राप्त रेकार्डके साथ जो लोग स्वयं ही न्याय कर सकते थे उनकी अनुपस्थितिमें उसका सच्चा अर्थ घटानेके लिए, बीचकी खूटती कड़ियां जोड़नेके लिए, छुटपुट असम्बद्ध जानकारीको इस तरह व्यवस्थित करनेके लिए कि उसमें से स्पष्ट और सुसंगत अर्थ निकल सके और भिन्न भिन्न स्थानोंसे प्राप्त प्रमाणोंके आधार पर बहुत बड़े प्रयत्नके बाद खोजी हुई कड़ियोंकी सहायतासे किसी बातकी उलझी हुई पहेलीको सुलझानेके लिए योगीका धैर्य और भविष्य-कथनकी सिद्धि (अपने भीतर यह सिद्धि होनेका दावा मैं नहीं कर सकता) आवश्यक होती है और कुछ हद तक पैरोंकी निशानी खोजनेवाले गुप्त-चरकी निपुणताकी भी आवश्यकता होती है। यह काम है तो बड़ा दिलचस्प, लेकिन इसमें बेहद समय खर्च होता है। समयकी परवाह न करके इस अवधिमें गांधीजी द्वारा मेरे नाम लिखे गये पत्रोंसे और इस जगतमें उनकी यात्राके अंतिम दो मासोंमें - दयानिधि प्रभुने इस अरसेमें मुझे फिरसे



उनके पास पहुंचा दिया था - उन्होंने मुझसे जो कुछ बातें कहीं उनमें से मिलने-वाले सूचनों तथा निर्देशों द्वारा ही यह कार्य पूरा किया जा सका है।

जल्दी ही मुझे इस बातका भी पता चल गया कि इस संकट-कालमें मनुष्योंके विषयमें और घटनाओंके विषयमें किसी महत्त्वकी आलोचनाका अथवा उन पर आधारित अपने निर्णयोंका मैं उल्लेख करूंगा, तो उसे अवश्य ही चुनौती दी जायगी। इस कारणसे प्रत्येक उदाहरणमें मेरे कथनों तथा मेरे निर्णयोंके समर्थनमें आवश्यक प्रमाण ब्योरेवार देना जरूरी हो गया। इसीलिए इस ग्रंथमें पाठकोंको स्थान स्थान पर दिये गये प्रमाण देखनेको मिलेंगे। इससे प्रस्तुत ग्रन्थका आकार बढ़ गया है और उसके लिए मैं बहुत लज्जित हूं।

इस ग्रन्थके लेखनमें मैंने सर्वप्रथम गांधीजीके ऑफिसके रेकार्ड तथा जानकारी, 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' में लिखे उनके लेख, अखबारोंमें छपे उनके वक्तव्य और अखबारोंके प्रतिनिधियोंको दी गई उनकी मुलाकातोंकी रिपोर्ट, उनका मौन-दिवस हो तब कागजकी पर्चियों पर लिखी हुई उनकी नोंधों तथा उनके द्वारा दी गई सूचनाओं और अन्य कागज-पत्रोंके साथ साथ उनका पत्र-व्यवहार—ये सब साधन मैंने सुरक्षित रख लिये थे—आदिका बहुत हद तक आधार लिया है। जैसा कि गांधीजी कभी कभी विनोदमें कहा करते थे, कागज-पत्रों और दस्तावेजोंके सम्बन्धमें तो - इन चीजोंको वे परिग्रहका एक रूप मानते थे - वे 'संहारक' ही थे। महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहारके कागजोंको - यदि उनकी पीठ कोरी होती - अकसर सूचनायें लिखनेके लिए तुरन्त पर्चियोंमें बदल डाला जाता था और यदि उनका ऐसा उपयोग न हो सके तो उन्हें "गलत स्थान पर पड़ी हुई चीज" मान कर कचरेकी टोकरीमें फेंक दिया जाता था। कोई साथी समय पर उन्हें सुरक्षित स्थान पर रख देता अथवा टोकरीसे उनका उद्धार कर देता, तो ही वे बच पाते थे। परन्तु उनके जीवन तथा कार्योंसे सम्बन्ध रखनेवाले कागजात इकट्ठे करके सुरक्षित रखनेका मेरा उत्साह जानकर और दूसरे लोग शायद इस व्यसनसे मुक्त होंगे ऐसा मान कर, नोआखालीमें और उसके बाद भी, कभी कभी ऐसा स्वादिष्ट व्यंजन वे पसंद करके 'प्रेमके प्रतीकों' के रूपमें मेरे पास भेज दिया करते थे। इसके सिवा, आधारके लिए मेरे पास मेरी अपनी नोटबुक और डायरियां तथा उनकी मंडलीके कुछ और सदस्योंकी नोटबुक और डायरियां थीं; साथ ही गांधीजीके मुंहसे तथा अन्य लोगोंके मुंहसे स्वयं मेरी सुनी हुई जानकारी भी थी। और अन्तमें इतनी ही महत्त्वपूर्ण



उनकी डायरी (जर्नल) पर मैंने आधार रखा है। मई १९४६ में, दूसरी शिमला परिषद् के समय, “स्वयंको एकमात्र ईश्वर के सहारे छोड़ देने के लिए” जब गांधीजी ने अपने समग्र सचिव-मंडल को दिल्ली लौटा दिया था, तब मेरी अनुपस्थितिकी पूर्ति करने के लिए उन्होंने यह डायरी रखना शुरू किया था। उनकी यह डायरी ठेठ २५ जुलाई, १९४७ तक लिखी जाती रही थी। गांधीजी जहां भी जाते वहां उनकी यह डायरी भी उनके साथ जाती थी। परन्तु दुर्भाग्य से उनके अवसान के बाद उन मूल डायरियों का पता नहीं चला और इसलिए मेरे हाथ में वे कभी नहीं आईं। परन्तु ६ अक्टूबर १९४६ के बाद का उस डायरी का भाग उसकी प्रतिलिपि के रूप में मनु गांधी ने मुझे दिया था। मूल डायरी उनके पास रहती थी और वे उसकी नकल कर लेती थीं। ऐसा लगता है कि गांधीजी की डायरी का इससे पहले का भाग तथा मूल कापियां सदा के लिए खो गई हैं।

गांधीजी के भाषणों तथा मौखिक बातचीतों के उद्धरण देते समय मैंने मूल टिप्पणियों की सहायता से प्रकाशित पाठ की भाषा को बदलने अथवा उसे विस्तृत रूप देने की छूट ली है। ऐसी छूट मैंने वहीं ली है जहां भाषणों या मुलाकातों का मेरे द्वारा अथवा गांधीजी की मंडली के किसी अन्य सदस्य द्वारा जल्दी जल्दी में तैयार किया हुआ पाठ प्रकाशित रूप में अव्यवस्थित या अधूरा मालूम पड़ा है। निश्चितता के खातिर प्रकाशित जानकारी के बारे में यथासंभव सम्बन्धित व्यक्तियों से पूछताछ करके अथवा अन्य विश्वस्त साधनों द्वारा विश्वास कर लेने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया है। ऐसा करने में काफी समय लगा, क्योंकि इसके लिए भिन्न भिन्न देशों में रहने वाले ऐसे लोगों के साथ पत्र-व्यवहार करना पड़ा, जो कि जनसेवा के कार्य में काफी व्यस्त रहते थे।

गंभीर विचार के बाद मैंने ब्रह्मचर्य के अध्याय में आये हुए नाजुक और कठिन प्रश्न की इन परिस्थितियों में यथासंभव विस्तृत छानबीन की है। गांधीजी के जीवन के तत्त्वज्ञान में ब्रह्मचर्य का प्रश्न मूलभूत है और उसका अविभाज्य अंग है। वे स्वयं भी ब्रह्मचर्य की बात को बहुत बड़ा महत्त्व देते थे और इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं मुझे भी आदेश दिया था। ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी चर्चा में ऊर्ध्वीकरण की सिद्धि के लिए गांधीजी की पद्धतिका अनोखापन तथा उसका महत्त्व दिखाने के लिए और हठयोग अथवा देह-दमन की पद्धति से उसकी भिन्नता बताने के लिए मैंने संक्षेप में हठयोग की पद्धतिका भी वर्णन किया है।



इस ग्रन्थमें मानवों और घटनाओंकी चर्चा तो की गई है, परन्तु वह मानवों और घटनाओंके विषयमें दिया गया कोई निर्णय नहीं है। यह तो केवल कुछ घटनाओंको और उन घटनाओंका निर्माण करनेवाले मानवोंके कार्योंको समझनेका और उन्हें समझानेका प्रयत्न भर है। घटनाओंका निर्माण करनेकी प्रक्रियामें स्वयं इन मानवोंका भी—प्रेमका नियम खोजनेके प्रयोग तथा वर्तमान जगतके सामने खड़े प्रश्नोंको हल करनेमें प्रेमके उस नियमका उपयोग करनेकी दिशामें गांधीजीके महान प्रयोगके संदर्भमें—निर्माण हुआ था।

यह ग्रन्थ विशेषतः भारतीय पाठकोंको लक्ष्यमें रखकर लिखा गया है। इसलिए मुझे दो शब्द उनसे कहने हैं। हम प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवसर पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधीका नाम लेते हैं। संकटके समय हम अंतःप्रेरणासे ही अपने आपसे पूछने लगते हैं कि इस परिस्थितिमें गांधीजीने क्या किया होता अथवा उन्होंने हमसे क्या करनेकी अपेक्षा रखी होती। हमारे लिए यह जान लेना बड़ा महत्त्व रखता है कि उन्होंने हमें किस मार्ग पर लगाया था, आज हम किस मार्ग पर आ पहुंचे हैं और ये दो मार्ग कहां एक-दूसरेसे अलग होते हैं। हमें यह जानना चाहिये कि आज हम कहां खड़े हैं, किधर जा रहे हैं और क्या यह वही लक्ष्य है - जिसकी कल्पना राष्ट्रपिताने अपने सपनोंके भारतके लिए की थी? और यदि यह वही लक्ष्य न हो, तो वह लक्ष्य क्या है और उस लक्ष्य तक पहुंचनेके लिए हमें क्या करना चाहिये? कोई विदेशी यात्री भारतमें आकर सबसे पहले राष्ट्रपिताको अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करनेके लिए राजघाट पर जाता है - यदि वह सरकारका अतिथि हो अथवा कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो, तो वहां जानेके लिए उसे मार्गदर्शक दे दिया जाता है। भारत छोड़नेके पूर्व वह अंतिम प्रश्न बिना चूके यह करता है: आजके भारतमें गांधी कहां है? प्रत्येक भारतवासीका अपने प्रति, उस भारतके प्रति - जिसके लिए गांधीजी जिये और जिसके लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित किया, तथा सारे जगतके प्रति यह कर्तव्य है कि वह अपनेसे यह प्रश्न पूछे और इसका उत्तर दे। प्रस्तुत ग्रन्थका उद्देश्य आत्म-निरीक्षणमें और इस प्रश्नका उत्तर पानेमें हमारी सहायता करना है।

टाउन हॉल, नई दिल्ली,

५ जनवरी, १९५६

प्यारेलाल



आभार-दर्शन

सर्वप्रथम मैं स्व. सरदार पटेल तथा नवजीवन ट्रस्टका विशेष आभारी हूं, जिनके विशेष निमंत्रणसे मैंने यह कार्य हाथमें लिया था और जिन्होंने यह ग्रन्थ तैयार करनेमें मुझे हर प्रकारकी सहायता की है। सेक्रेटेरियट तथा लोकसभाके पुस्तकालयका उपयोग करनेकी सुविधा प्रदान करनेके लिए मैं शिक्षामन्त्री मौलाना आजाद तथा लोकसभाके अध्यक्ष श्री गणेश वासुदेव मावलंकरका हृदयसे आभार मानता हूं। गांधीजीके कुछ प्रकाशित प्रार्थना-प्रवचनोंको उनकी रेकार्ड की हुई आवाजके साथ मिलानेकी सुविधा कर देनेके लिए मैं आकाशवाणीका, अत्यन्त मूल्यवान जानकारी देनेके लिए बिहार सरकारका, मेरे कार्यके लिए आवश्यक 'दि इण्डियन एन्युअल रजिस्टर' का संपूर्ण सेट मुझे भेंट देनेके लिए सर तेजबहादुर सप्रूका, अपने दैनिक पत्रकी फाइलें मुझे देने तथा जब जब मैं गया तब तब आवश्यक जानकारी मुहैया करनेके लिए 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' के स्व. श्री सुरेशचन्द्र मजूमदारका, अखबारोंकी फाइलोंका पूरा सेट मुझे देनेके लिए श्री सतीशचन्द्र दासगुप्तका और कांग्रेसका प्रकाशित साहित्य देनेके लिए डॉ. पट्टाभि सीतारमैयाका, महत्त्वपूर्ण दस्तावेज देनेके लिए स्व. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, श्री हरेन घोष चौधरी तथा श्री मनोरंजन चौधरीका, अपने पुस्तकालय तथा अखबारोंकी फाइलोंका उपयोग करने देनेके लिए श्री देवदास गांधी और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का तथा मुझमें सक्रिय रस लेने और मेरे कार्यके लिए सुविधायें प्रदान करनेके लिए मैं श्री घनश्यामदास बिड़लाका आभारी हूं।

बिहारमें गांधीजीके शांति-मिशन पर ग्रन्थके अध्याय तैयार करनेमें सहायता देनेके लिए मैं देवप्रकाश नय्यरका, कुछ महत्त्वपूर्ण दस्तावेज तथा सरदार पटेलके सम्बन्धमें रखी गई अपनी डायरीमें से कुछ उद्धरण देनेके लिए मणिबहन पटेलका, अपनी डायरीसे मेरे उपयोगके लिए परिश्रमपूर्वक आवश्यक भागोंकी प्रतिलिपि कर देनेके लिए मनु गांधीका, अपनी नोटबुकों और डायरियोंका उपयोग करने देने तथा इस ग्रन्थमें वर्णित कुछ घटनाओंके प्रत्यक्ष देखे वर्णन देनेके लिए डॉ. सुशीला नय्यरका, कुछ अत्यन्त पेचीदे प्रश्नों पर निश्चय कर लेनेकी दृष्टिसे मेरी सहायता करनेके लिए राजकुमारी अमृतकौरका और अंतमें अपने सहायक देवचन्द झाका आभारी हूं। देवचन्द झाके अपार धीरज, लगन और सतत सावधानी तथा जागृतिके बिना यह ग्रन्थ पूरा करना मेरे लिए बड़ा कठिन हो जाता।



मुझे डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. जाकिर हुसैन, हॉरेस एलेक्जेंडर, आर्थर मूर, एडवर्ड मेक्डनर्नी, नॉमेन क्लिफ, ए. ई. चार्ल्टन, वी. पी. मेनन तथा वालजीभाई देसाई—यद्यपि ये सब आभारकी अपेक्षा नहीं रखते—का और ऐसे कुछ लोगोंका भी, जो यह नहीं चाहते कि उनके नामका यहां उल्लेख किया जाय, यहां आभार स्वीकार करना चाहिये। इन सबने इस ग्रन्थकी पांडुलिपि तैयार करनेमें और उसे सुधारनेमें विभिन्न प्रकारसे मेरी सहायता की है।

अपने अत्यन्त परिश्रमपूर्ण कर्तव्योंसे समय निकाल कर इस ग्रन्थको आद्योपान्त पढ़ जाने तथा इसके लिए प्रस्तावना लिखनेका कष्ट उठानेके लिए मैं डॉ. राजेन्द्रप्रसादका अत्यन्त आभारी हूं।

लॉर्ड पेथिक-लॉरेंस, लॉर्ड माउन्टबेटन, मि. आर. जी. केसी तथा सर ह्यू डावने गांधीजीको लिखे अपने पत्रोंसे आवश्यक उद्धरण इस ग्रन्थमें उद्धृत करनेकी अनुमति दी, इसके लिए मैं इन सबका बहुत कृतज्ञ हूं। स्व. सर स्टैफर्ड क्रिप्सके पत्रोंसे उद्धरण लेनेकी अनुमति देनेके लिए लेडी क्रिप्सका और स्व. लॉर्ड वेवेल (वाइसरॉय) के पत्रोंसे उद्धरण लेनेकी अनुमति देनेके लिए स्व. लॉर्ड वेवेल (छोटे) का भी मैं बहुत कृतज्ञ हूं।



अनुक्रमणिका

प्रकाशकका निवेदन

प्रस्तावना - डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

निवेदन - प्यारेलाल

आभार-दर्शन

पहला भाग

परतन्त्रताका सन्ध्याकाल

१. स्वतन्त्रताका उषाकाल
२. गलतफहमीकी आंधी
३. राष्ट्रकी आवाज
४. साम्प्रदायिक त्रिकोण
५. बदलता हुआ दृश्य
६. जागरूक प्रहरी

दूसरा भाग

मंडराता तूफान

७. अरुणोदय
 ८. जटिल और उलझी हुई कहानी
 ९. सीधी कार्रवाई
 १०. अंतिम घड़ी
 ११. तूफान फट पड़ा
 १२. प्रसव-वेदना
- टिप्पणियां



पहला भाग
परतंत्रताका सन्ध्याकाल



पहला अध्याय

स्वतंत्रताका उषाकाल

जीवन उस ऊषामें, अनुपम आनन्द-रूपः
किन्तु धरा स्वयं स्वर्ग, स्पंदित यदि यौवन हो ।

१

“आप मजाक तो नहीं कर रहे हैं?” गांधीजीने आश्चर्यचकित होकर पूछा ।

जेलोंके इन्स्पेक्टर जनरलने उत्तर दिया, “नहीं, मैं गंभीरतासे कह रहा हूँ । रिहाईका आदेश मुझे आज ही मिला । आप चाहें तो आराम लेनेको कुछ दिन यहां और ठहर सकते हैं । परन्तु पहरा कल प्रातः ८ बजे उठा लिया जायगा।”

दूसरे महायुद्धमें जिस दिन मित्रराष्ट्रोंकी सेनायें हिटलर पर अपना अंतिम आक्रमण करनेके लिए उत्तर फ्रांसमें नार्मण्डीके समुद्र-तट पर उतरीं और जिसके फलस्वरूप ठीक ११ महीने बाद लगभग उसी दिन जर्मनीकी अंतिम पराजय हुई, उससे एक माह पूर्व ५ मई १९४४ के दिन बम्बई राज्यके जेलोंके इन्स्पेक्टर जनरल कर्नल भंडारी शामके समय – सामान्यतः भंडारी साहब इस समय नहीं आते थे – पूनाके समीप स्थित आगाखां महलके नजरबंदी कैम्पमें आये, जहां गांधीजीको कड़े पहरेमें नजरबन्द रखा गया था। आते ही उन्होंने गांधीजीसे कहा कि आपको और आपकी मंडलीके लोगोंको कल सुबह आठ बजे बिना किसी शर्तके छोड़ दिया जायगा।

गांधीजी इस समय तक आश्चर्यके आघातसे संभल गये थे। उन्होंने कुछ विनोद और कुछ गंभीरतासे मुसकरा कर पूछा, “लेकिन मैं कुछ दिन पूनामें ठहर जाऊं, तो मेरे रेल-किरायेका क्या होगा?” जेलके नियमानुसार कैदीको गिरफ्तारीके स्थान तकका किराया मिल सकता है।

“आप जब पूनासे जायंगे तब आपको किराया मिल जायगा।”

“ठीक, तो मैं दो-तीन दिन पूना ठहरूंगा।”



कर्नल भंडारीने यह भी कहा, “अब कृपा करके लौट कर न आइये। देखिये, चिन्तासे मेरे बाल सफेद हो गये हैं।”

गांधीजीके अन्तिम कारावासके इक्कीस मास यों पूरे हुए । यह सजा उन्हें ८ अगस्त १९४२ की रातमें ब्रिटिश सरकारको यह अंतिम चेतावनी देने पर मिली थी कि वह भारतसे चली जाय और भारतको स्वाधीन घोषित कर दे, ताकि भारत जापानके आक्रमणका बिना किसी बन्धनके सामना कर सके और लोकतंत्रकी रक्षामें अपना भाग सफलतापूर्वक अदा कर सके।

इस घटनासे पहले कई दिन तक हवामें यह जोरदार अफवाह थी कि गांधीजी पूनासे हटाये जायंगे। जेलोंके इन्स्पेक्टर जनरल जब तीन दिन पहले कैम्पमें आय थे, तो उन्होंने बात-बातमें पूछा था कि क्या डॉक्टरोंकी रायमें गांधीजी मोटर या रेलसे सौ मीलकी यात्रा करनेके काबिल हैं। लेकिन इस बारेमें अधिक प्रश्न करने पर उन्होंने रहस्यमय मौन धारण कर लिया था।

गांधीजीने बार-बार सरकारसे यह अनुरोध किया था कि उन्हें आगाखां महलसे हटाकर किसी मामूली जेलमें भेज दिया जाय । गांधीजीको यह बात बुरी तरह खटकती थी कि उनके कारण इतने बड़े मकानके - वह मकान बड़ा जरूर था लेकिन जैसा अमरीकी पत्रिका ‘टाइम’ ने कहा था, वह भद्दा भी था - किराये और निर्वाह-खर्चका इतना बोझ उठाया जाय और उसके चारों तरफ लम्बा चौड़ा सशस्त्र पहरा रखा जाय। उनका कहना था : “यह रुपया जो सरकार खर्च कर रही हैं उसका नहीं हैं। यह रुपया तो मेरा है - भारतकी गरीब जनताका है। और सरकार मेरे लिए इतने सारे पहरेदार क्यों रखना चाहती है? वह जानती है कि मैं भागूंगा नहीं।”

बाहरके मित्र लोग गांधीजीको इस स्थानसे हटानेके लिए आन्दोलन कर रहे थे, क्योंकि इस स्थानके साथ दो प्रियजनोंकी मृत्युकी दुःखद स्मृतियां जुड़ गई थीं - उनकी पत्नी कस्तूरबा गांधी और उनके सचिव महादेव देसाईकी । इसके सिवा, वहां मलेरियाका बड़ा जोर था । खुद गांधीजीको मलेरिया हो गया था और कुछ समयसे उन्हें तेज बुखार रहने लगा था। इससे जेलके अधिकारियोंको चिन्ता हो गई थी।



कैम्पके वातावरणमें बड़ा तनाव था। सबको लगता था कि गांधीजीका तबादला होने ही वाला है। क्या उन्हें किसी मामूली जेलमें भेजा जायगा? क्या उनके दलको भंग कर दिया जायगा? क्या इन परिवर्तनोंके बोझको गांधीजीका स्वास्थ्य सहन कर लेगा? ये प्रश्न गांधीजीके सिवा हम सबको सता रहे थे। उन्हें तो एक ही बातकी चिन्ता थी: देश पर उनके खर्चका इतना भारी बोझ दूर होना ही चाहिये।

जेलसे मुक्त होनेकी बात तो उनकी कल्पनामें भी नहीं थी। उन्हें विश्वास हो गया था कि सरकार विश्वयुद्ध बन्द होनेसे पहले उन्हें कभी नहीं छोड़ेगी; और स्वास्थ्यके कारण तो निश्चित ही नहीं छोड़ेगी। युद्धके जल्दी बन्द होनेके कोई आसार दिखाई नहीं देते थे। इसलिए गांधीजी इस नतीजे पर पहुंच गये थे कि उन्हें कमसे कम सात साल तो जेलखानेमें रहना ही होगा। उनमें से अभी मुश्किलसे दो वर्ष उन्होंने पूरे किये थे।

जबो साथी सारी रात सामान बांधनेमें लगे हुए थे, तब गांधीजी बिस्तरमें पड़े पड़े विचार-मग्न स्थितिमें जागते रहे। सब लोगोंकी आंखें उन्हीं पर लगी हुई थीं। क्या वे हमारी आशाएं और आकांक्षाएँ पूरी कर सकेंगे? वे दुःखी सालूम हुए। जेलखानेमें बीमार होना वे एक सत्याग्रहीके लिए पापके समान समझते थे। उन्होंने अपने आपसे पूछा, “क्या सरकार सचमुच मुझे स्वास्थ्यके कारण छोड़ रही है?” परन्तु तुरन्त स्वस्थ होकर बोले, “खैर, मेरे लिए तो यही ठीक है कि जैसा सरकार कहती है वैसा ही मैं मान लूं।”

६ मईको सुबह ७-४५ पर जेलोंके इन्स्पेक्टर जनरल आये। गांधीजीने अपनी लाठी उठाई और चलने लगे।

कर्नल भंडारी मुसकरा कर बोले, “नहीं, महात्माजी, कुछ मिनट और ठहरिये।”

आठ बजते ही कर्नल भंडारी आगे हो लिये और गांधीजी कांटेदार तारोंसे बाहर निकल गये।

जब मोटर पर्णकुटी - श्रीमती ठाकरसीका भवन जहां गांधीजी पूनामें ठहरनेवाले थे - की दिशामें चली तो वे विचार-मग्न हो गये। वे कस्तूरबा और महादेवकी स्मृतिमें डूब गये थे। वे धीमे स्वरमें बोले, “बा जेलसे निकलनेको कितनी उत्सुक थी? फिर भी मैं जानता हूं कि इससे अधिक उदात्त मृत्यु उसे



प्राप्त नहीं हो सकती थी। परन्तु बाने और महादेवने स्वतंत्रताकी वेदी पर अपने प्राणोंका बलिदान दे दिया। दोनों अमर हो गये।”

२

दो वर्ष बाद - और अगस्त १९४२ में अंग्रेजोंसे ‘भारत छोड़ो’ की मांग करनेके लिए गांधीजीको और राष्ट्रीय कांग्रेसको जेलके सीखचोंमें बन्द करनेके ४४ मास बाद - मार्च १९४६ में गांधीजी पूनाके पास बसे एक मनोहर गांव उरुलीकांचनमें बैठकर ग्रामजनोंको प्राकृतिक चिकित्साकी बातें समझा रहे थे। उनके जीवनके संध्याकालमें निसर्गोपचार उनके लिए अतिशय रसका विषय बन गया था। ऐसे समय उन्हें ब्रिटिश कैबिनेट-मिशनकी तरफसे आग्रहपूर्ण निजी सन्देश मिला कि वे अप्रैल १९४६ के पहले सप्ताहमें दिल्ली आयें और उनसे चर्चा करें कि अंग्रेज जल्दीसे जल्दी भारत छोड़ कर कैसे जा सकते हैं। विशेष सन्देश-वाहक श्री सुधीर घोष अपने ड्राइवरके देरसे पहुंचनेके कारण चमत्कारिक रूपमें मौतसे बच गये। वे शाही वायुसेनाके उस विमानको पकड़ नहीं सके, जिसमें उनकी जगह सुरक्षित की गई थी, जो आधे घंटे बाद चकनाचूर हो गया और जिसके सारे यात्री तत्काल मर गये।

कैबिनेट-मिशनके नेता और भारत-मंत्री लॉर्ड पेथिक-लॉरेंसका सन्देश इस प्रकार था: “मैं बड़ी आशा लगाये हुए हूं कि आपसे दुबारा मिलकर ४० वर्ष पहले आरंभ हुए परिचय और मित्रताको फिरसे ताजा करूं। . . . घरसे रवाना होनेके पहले मेरी पत्नीने मुझसे कहा था कि यदि मैं आपसे मिलूं, तो उनकी हार्दिक शुभ कामनाएं आप तक पहुंचा दूं।”

गांधीजीके पुराने मित्र और प्रतिनिधि-मंडलके दूसरे सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्सने लिखा: “मैं अनुभव करता हूं कि हमारे वर्तमान कार्यका बोझ बहुत भारी है और हमें जो भी सहायता मिल सकती है उस सबकी हमें इस कामके लिए जरूरत है। परन्तु जो सहायता आपसे मिल सकती है, उससे अधिक स्वागत करने योग्य और सयानी सहायता दूसरी कोई नहीं हो सकती।”

कैबिनेट-मिशन अप्रैल, मई और जूनके तीनों महीनोंमें अपने प्रयत्न करता रहा और फिर २९ जूनको रिपोर्ट देनेके लिए दिल्ली छोड़ कर इंग्लैंड लौट गया। उसके जानेके बाद वाइसरॉय लॉर्ड वेवेलने उसके आरंभ किये हुए प्रयत्नको जारी रखा और २४ अगस्तको उन्होंने वाइसरॉयकी कार्यकारिणी



परिषद्के बजाय एक अन्तरिम राष्ट्रीय सरकारकी रचनाकी घोषणा की। तत्कालीन कांग्रेस-अध्यक्ष पंडित नेहरू इस सरकारके उपाध्यक्ष बनाये गये। मुस्लिम लीगने इस सरकारमें शरीक होनेसे इस कारण इनकार कर दिया कि मंत्री-मंडलके तमाम मुसलमान सदस्य नियुक्त करनेका अधिकार लीगको नहीं दिया गया।

२ सितम्बरको कांग्रेसी मंत्रियोंने अपने पद संभाले, उससे पहले भंगी-बस्तीमें एक छोटेसे प्रभावशाली आयोजनमें उन्होंने गांधीजीके आशीर्वाद लिये। गांधीजीके लिए वह गहरे आत्म-निरीक्षणका दिन था। बड़े सवेरे, जब ज्यादातर लोग सोये हुए थे, उन्होंने नई सरकारके सदस्योंके लिए एक छोटासा सन्देश लिख डाला। उसमें मंत्रियोंको याद दिलाया गया था कि सफलताकी इस घड़ीमें वे उन वचनोंको न भूलें, जो उन्होंने स्वतंत्रता-संग्रामके दिनोंमें प्रजाको दिये थे।

सुबह नियत समय पर मंत्रीगण आ पहुंचे। गांधीजीकी मंडलीकी महिलाओंने हाथकते सूतकी मालाओंसे उनका स्वागत किया। प्रातःकाल गांधीजीन उनके लिए जो सन्देश लिख डाला था - उस दिन गांधीजीका मौनदिन सोमवार था - वह उन्हें पढ़ कर सुनाया गया। वह उनका 'आदेश-पत्र' था। वह अत्यन्त छोटा सन्देश इस प्रकार था: "प्रार्थनाके समयसे मैं आप लोगोंका ही विचार करता रहा हूं। नमक-कर हटा दीजिये। दांडी-कूचको याद रखिये। हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता सिद्ध कीजिये। छुआछूत मिटा दीजिये। खादीको अपनाइये।"

इसके बाद छोटीसी प्रार्थना हुई। फिर प्रत्येक मंत्रीने जब आशीर्वादके लिए गांधीजीको प्रणाम किया, तो पीठ पर एक एक धप मार कर गांधीजीने सबको आशीर्वाद दिये।

गांधीजीके कमरेके सामने, शामियानेके बाहरका फर्श फूलोंसे सजाया गया था। अगरबत्ती जल रही थी। दरवाजों पर हरे हरे पत्तोंकी बन्दनवारें लटक रही थीं। ऊपर दो सुन्दर राष्ट्रीय झंडे फहरा रहे थे। वातावरण गंभीर भावोंसे परिपूर्ण था। एक बार तो अज्ञेयवादके अभिमानी पंडित नेहरू भी अपनी शेखी भूल गये। उस दिन उन्होंने जो वक्तव्य प्रकट किया उसका आरंभका सूचक वाक्य यह था: "यद्यपि मैं प्रार्थनाका आदी नहीं हूं, फिर भी मैं इस कामको प्रार्थनामय वृत्तिसे हाथमें लेता हूं।"



मंत्रियोंको दिये गये अपने सन्देशका सार समझाले हुए गांधीजीने शामकी प्रार्थना-सभामें एक मर्मस्पर्शी भाषण दिया। उसमें इस शुभ दिनका, जिसकी भारत लम्बे समयसे प्रतीक्षा कर रहा था, स्वागत करते हुए गांधीजीने उसे भारतके इतिहासमें सुनहला दिन बताया। उन्होंने भारत और ब्रिटेनके बीचके एक पुराने झगड़ेको शान्तिपूर्ण ढंगसे हल कर देनेके लिए ब्रिटिश सरकारको बधाई दी। उन्होंने कहा, यह पुराने अन्यायोंको याद करने या कटु स्मृतियोंको ताजा करनेका अवसर नहीं है। मुस्लिम लीग सरकारमें नहीं आई है। मुसलमान आज शोक-दिवस मना रहे हैं। इसलिए हिन्दुओं और दूसरे लोगोंका काम है कि वे आज आनन्द न मनायें, भोजन-समारंभ न करें, परन्तु उपवास और प्रार्थनाके द्वारा मुसलमानोंके ज्यादासे ज्यादा नजदीक आनेका प्रयत्न करें। हिन्दू धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म सबके आदेशके अनुसार ऐसा पवित्र अवसर मनानेका सही ढंग यह है कि इस समय आमोद-प्रमोदके बजाय उपवास किया जाय। उन्हें चाहिये कि इस अवसरका उपयोग वे आत्म-निरीक्षण करनेमें और यह पता लगानेमें करें कि सचमुच तो उन्होंने अपने मुसलमान भाइयोंके साथ कोई अन्याय नहीं किया है। इसी तरह मुसलमानोंके लिए यह अनुचित होगा कि वे हिन्दुओंको अपना शत्रु समझें और इस बातको भूल जायं कि वे सदियों तक अच्छे पड़ोसी बनकर साथ-साथ रहे हैं, इसी धरती पर पले-पुसे हैं और अन्तमें इसीमें समा जायंगे: “जो लोग इस देशमें पैदा हुए हैं और इसे अपनी मातृभूमि समझनेका दावा करते हैं, वे सब भाई-भाई हैं। हमें जन्म देनेवाली मरणशील माता हमारी श्रद्धा और पूजाकी अधिकारिणी है। ऐसी पूजासे आत्मा पवित्र होती है। तब फिर हमारी विराट् अविनाशी माता, जिसके वक्षस्थल पर हमने जन्म लिया है और जिसके वक्षस्थल पर हम मरेंगे, हम सबकी वफादारी और पूज्यभावकी कितनी अधिक अधिकारिणी है?”

अन्तरिम राष्ट्रीय सरकारके पदारूढ़ होनेके बाद गांधीजी जल्दीसे जल्दी अपने सेवाग्राम आश्रमको लौट जानेके लिए उत्सुक थे। परन्तु नई सरकारके सदस्योंने उन्हें समझा-बुझा कर दिल्लीमें अधिक ठहरनेको राजी कर लिया, जिससे उनके कार्यकालके आरंभमें गांधीजीके बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श और मार्ग-दर्शनका लाभ उन्हें मिल सके। इस प्रकार राजधानीकी झुलसानेवाली गरमी और दमघोंटू धूलमें ही सितम्बरका गांधीजीका पूरा महीना बीता।



२ अक्टूबर १९४६ को गांधीजीका सतहत्तरवां जन्मदिन था । उस दिन दुनिया भरसे उन पर बधाइयोंकी वर्षा हुई । शायद सबसे मर्मस्पर्शी बधाई श्रीमती पेथिक-लॉरेंसकी थी।

उन्होंने लिखा था, “गांधीजी, अक्टूबर मास संघर्षसे पूर्ण - दैवी और आसुरी शक्तियोंके संघर्षसे पूर्ण - इस संसारमें आपका जन्मदिन लेकर आता है। भगवान करे आगामी वर्ष आपके आर्ष दर्शनकी सिद्धिको अधिक परिपूर्ण करनेवाला सिद्ध हो। . . . हमारे रहस्यवादी कवि ब्लेकने लिखा है:

दूँ तुझे स्वर्णकी डोरका छोर ले
गूँथ केवल इसे गोल कन्दुक बना,
जेरुसलेमके दीर्घ प्राचीर-स्थित
स्वर्गके द्वार यह ले तुझे जायगा।

“कवि ब्लेक श्रद्धापूर्वक मानते थे कि पृथ्वी पर अंतमें स्वर्गीय राज्यकी स्थापना होनेवाली है। वे जेरुसलेमका स्वर्गीय राज्यके प्रतीकके रूपमें उपयोग करते थे। क्षमाधर्मका पालन उनका स्वर्णतन्तु था।

“और आपने भी यही स्वर्णतन्तु हमारे हाथमें दिया है । यह हमारा काम है कि हम अपने दैनिक व्यवहारमें स्वर्णतन्तु-रूपी क्षमाधर्मका पालन करें। वह हमें संसारकी भूल-भुलैयासे बाहर ले जाकर स्वर्गीय राज्यमें सुरक्षित पहुंचा देगा।

“आपके जीवन और कार्यसे मानव-जाति सम्पन्न हुई है और वे इस पृथ्वी पर चमकनेवाली दिव्य ज्योतिके एक अंशकी तरह हमेशा कायम रहेंगे। आपके जन्मदिनके उत्सव पर ईश्वर आपको सम्पूर्ण श्रद्धा और आनन्द प्रदान करे।”

इसका उत्तर गांधीजीने इस प्रकार दिया: “क्या आपने कभी देखा है कि मेरा गेंद कवि ब्लेकके 'सोनेके तार' के बदले सूतके अनंत तारका बना हुआ है? ब्लेकने तो कवि-कल्पना की है। परन्तु इस पृथ्वी पर बसनेवाले करोड़ों लोग यदि इस नाजुक और अटूट तारको कातें, तो उसका बना हुआ सुन्दर सफेद गेंद आज और इसी समय स्वर्गका द्वार बन सकता है।”



लॉर्ड वेवेलकी बधाईके उत्तरमें गांधीजीने लिखा: “मेरा जन्मदिन मनाया जाना तब शुरू हुआ जब वह और आधुनिक रूपमें चरखेका पुनरुद्धार एक ही चीज बन गये और उसने चरखेको रचनात्मक उपायों द्वारा सर्व-साधारणकी आजादीका प्रतीक बना दिया। क्या आप चरखेके पुनर्जन्मके साथ किसी तरह एकताका सम्बन्ध जोड़ना चाहेंगे?”

गांधीजीके लिए तो चरखा करोड़ों मूक लोगोंके साथ एकता स्थापित करनेका एक प्रतीक और साधन था। उन्हें सदा एकमात्र इन्हींकी चिन्ता रहती थी; इन्हींके कल्याणके लिए उनका जीवन समर्पित था। कारण, वे “करोड़ों मूक लोगोंके हृदयमें निवास करनेवाले ईश्वरके सिवा” [हरिजन, ११ मार्च १९३९, पृष्ठ ४४।] और किसी ईश्वरको नहीं मानते थे। चरखेका महत्त्व तो उन्हें उसे देखनेसे पहले ही दक्षिण अफ्रीकामें अन्तःप्रेरणाके किसी क्षणमें प्रतीत हो गया था। सच तो यह है कि उस समय उन्हें चरखे और हाथ-करघेका भेद भी मालूम नहीं था! [अपनी पुस्तक ‘हिन्द स्वराज्य’ में, जो १९०९ में लिखी गई थी, गांधीजीने सचमुच चरखेका करघेके रूपमें उल्लेख किया था।] जब वे भारत लौटे तब चरखा मृतप्राय हो चला था। उसे फिरसे जीवित करनेके लिए उन्होंने २५ से भी अधिक वर्षों तक प्राणपणसे कोशिश की।

सर स्टैफर्ड क्रिप्सने इस अवसर पर उन्हें लिखा: “आपने भारतकी स्वतंत्रताका ध्येय सिद्ध करनेके कार्यमें अनेक वर्ष लगाये हैं। मैं कामना करता हूं कि आप दीर्धजीवी हों (कमसे कम १२५ वर्षकी आयु पायें) [उपनिषदोंके अध्ययनके आधार पर गांधीजीने एक सिद्धान्त बनाया था कि मनुष्यकी स्वाभाविक आयु १२५ वर्षकी होती है और प्रत्येक मानव उसे प्राप्त कर सकता है और उसे प्राप्त करना चाहिये। परन्तु यह सम्पूर्ण निर्विकार अवस्था प्राप्त करनेसे और रामनामकी सब रोगोंको दूर करनेकी शक्तिमें विश्वास होनेसे ही संभव है।], जिससे आप अपने परिश्रमको भारतीय जनताके सुखके रूपसे परिणत हुआ देख सकें। यह बड़ा कठिन काल है, फिर भी हम सही दिशामें प्रगति कर रहे हैं। . . . कुछ कदम हम और चल लें, तो यह महान कार्य पूर्ण हो जायगा। और फिर भारतीय स्वतंत्रताकी सिद्धिका आनन्द हम सब मिलकर मना सकेंगे।”



परन्तु मनुष्योंकी प्रार्थनाओंका उत्तर भगवान अपने ही ढंगसे देते हैं। अन्तरिम सरकारमें आनेके मुस्लिम लीगके निश्चयकी घोषणा १५ अक्टूबरको हुई। गांधीजीको लगा कि अब वे सेवाग्राम लौटनेको स्वतंत्र हैं। वहां कितने ही कार्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी खानगीके लिए २७ अक्टूबरकी तारीख तय हुई थी। परन्तु जिस दिन सरकारमें सम्मिलित होनेके लीगके निर्णयकी घोषणा हुई, उसी दिन मुसलमान जातिकी ओरसे पूर्वी बंगालके मुस्लिम बहुमतवाले नोआखाली जिलेमें व्यापक साम्प्रदायिक दंगे फूट पड़नेके समाचार आये। वहां हिन्दुओंके हजारों घर जलाकर राख कर दिये गये। बड़े पैमाने पर लूटपाट मची। जबरदस्तीसे लोगोंका धर्म बदला गया और मुसलमानोंके साथ हिन्दू स्त्रियोंका विवाह कर दिया गया। लोगोंकी हत्यायें की गईं। स्त्रियोंका अपहरण किया गया और उन पर बलात्कार किया गया। इन सब घटनाओंसे गांधीजीकी आत्मामें अवर्णनीय अंधकार छा गया और सेवाग्राम लौटनेके बजाय कवि ब्लेकके 'स्वर्णतन्तु' का सिरा हाथमें लेकर वे यह समस्या हल करनेके लिए नोआखालीकी दिशामें चल पड़े। उस समय किसीको सपनेमें भी यह कल्पना नहीं थी कि वे 'करो या मरो' के उस मिशनके लिए प्रयाण कर रहे हैं, जिसकी पूर्णाहुति पन्द्रह महीने बाद ३. जनवरी १९४८ के परम बलिदानमें होगी। उस अभागे शुक्रवारके दिन कलहग्रस्त मानव-जातिको उद्धारका मार्ग बताकर वे मर्त्य मानव मिटकर परम दिव्य ज्योतिमें मिलकर एकरूप हो गये। इस घटनासे पागलपनका दिनोंदिन बढ़नेवाला तूफान, जिसके कारण संपूर्ण महाद्वीपको प्रलयके दावानलमें होम देनेका संकट उपस्थित हो गया था, एकाएक शांत पड़ गया, पुराने वैर-द्वेष और पुरानी शत्रुता एकबारगी भुला दी गई और परस्पर लड़नेवाली दो जातियां भाई भाईके हत्याकांडको छोड़कर सर्व-सामान्य मानव-जातिको हुई अपार क्षतिके शोकमें डूब गईं।

लेकिन कहानीके मूलको पकड़नेके लिए हमें १९४२ के 'भारत छोड़ो' संग्रामकी ओर लौटना होगा; और बादकी उन घटनाओंको देखना होगा, जिनके कारण सत्ताका हस्तांतरण हुआ।



दूसरा अध्याय

गलतफहमीकी आंधी

रचता है मानव-मन मन्सूबे अपने-से,
प्रेरक पर गूढ़ एक महाशक्ति ऐसी है
जो उसके हाथोंको सहज मोड़ देती है—
और जोड़ देती है महत्तर कार्योंसे ।

१

जब ब्रिटिश सरकारने द्वितीय महायुद्धके दिनोंमें भारतको उसकी सम्मतिके बिना युद्धमें भाग लेनेवाला देश घोषित कर दिया, तो भारतके सामने उसने एक चुनौती उपस्थित कर दी। लेकिन राष्ट्रवादी भारतकी लोकतंत्रकी रक्षामें हाथ बंटानेकी इच्छा इतनी तीव्र थी कि ब्रिटिश युद्ध-प्रयत्नमें सहायता देनेके पक्षमें प्रबल समर्थन भारतमें बना ही रहा, यद्यपि ग्रेट ब्रिटेनकी ओरसे बार-बार उसकी यह मांग ठुकराई गई और उसने भारतको सफलतापूर्वक या स्वाभिमानके साथ ऐसा करनेका अवसर देनेसे इनकार ही किया। प्रत्येक नागरिकके मुंह पर निराशाकी छाया फैली हुई थी। ऐसे समय जब कि आक्रमणकारी भारतका द्वार खटखटा रहा था और संसारव्यापी युद्धमें मानव-मूल्योंके सर्वनाशका संकट खड़ा हो गया था, तब भी भारतको गुलामीकी जंजीरोंमें जकड़े रखनेके कारण राष्ट्रकी आत्मा विफल क्रोधसे छटपटा रही थी। जब भारतका अपना भाग्य और संपूर्ण मानव-जातिका भाग्य अधरमें लटक रहा था तब भारत निष्क्रिय दर्शक बन कर तो नहीं रह सकता था।

इस गहरे नैराश्यसे 'भारत छोड़ो' के नारेका जन्म हुआ। ['भारत छोड़ो' (क्विट इंडिया) शब्द-प्रयोग गलतीसे गांधीजीके सामके साथ जोड़ दिया गया था और इस सम्बन्धमें बड़ी गलतफहमी पैदा हुई थी। वास्तवमें तो गांधीजीके साथ हुई एक भेंटमें एक अमरीकी संवाददाताने इसका प्रयोग किया था और फिर वह सर्वत्र प्रचलित हो गया था। गांधीजीने तो वास्तवमें "व्यवस्थित रूपसे अंग्रेजोंके भारतसे हट जाने" की बात कही थी। "दिवालिया होने जा रही बैंकके नाम लिखा भविष्यकी तारीखका चैक"—यह शब्द-प्रयोग भी गांधीजी पर गलतीसे थोप दिया गया था। इसका संबंध मार्च १९४२ के क्रिप्स-



प्रस्तावोंसे था। गांधीजीने इस रूपमें या इस अर्थमें भी यह शब्द-प्रयोग कभी नहीं किया था। 'भारत छोड़ो' की मांगका अर्थ गांधीजीने अपने एक क्वेकर मित्र हॉरिस एलेक्जेंडरके साथ हुई अपनी बातचीतमें इस तरह समझाया था: "मेरा दृढ़ मत है कि अंग्रेजोंको अब व्यवस्थित ढंगसे भारत छोड़ कर चले जाना चाहिये और जो खतरा उन्होंने सिंगापुर, मलाया और बर्मामें उठाया उसे यहां नहीं उठाना चाहिये। इस कदमका अर्थ होगा उच्च प्रकारका साहस, मानव-शक्तिकी सीमाका स्वीकार और भारतके साथ न्यायका व्यवहार। वहांसे तो उन्हें अव्यवस्थित रूपमें हटना पड़ा, क्योंकि उन्होंने बर्मा और मलायाको न तो ईश्वरके हाथोंमें छोड़ा और न अराजकताकी स्थितिमें छोड़ा, बल्कि जापानियोंके हाथोंमें सौंपा। यहां उनसे मेरा यह कहना है, "यहां उस किस्सेको मत दोहराओ। भारतको जापानियोंके हाथमें न सौंपकर व्यवस्थित रूपसे भारतीयोंके हाथोंमें सौंप दो।" - हरिजन, ५ जुलाई १९४२, पृ. २१५।] कोई अहिंसक संग्राम छेड़नेके लिए इससे अधिक प्रतिकूल परिस्थिति कभी भारतमें नहीं उत्पन्न हुई थी। बहुतोंको तो यह निरा पागलपन ही मालूम हुआ। पसन्तु गांधीजीने अपना निश्चय कर लिया। उन्होंने कहा, "सारी दुनियाके राष्ट्र मेरा विरोध करें और सारा भारत मुझे समझाये कि मैं गलती पर हूं, तो भी मैं भारतके खातिर ही नहीं परन्तु सारे संसारके खातिर भी इस दिशामें आगे बढ़ूंगा।" [८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस महासमितिके समक्ष गांधीजीका भाषण।] ऐसे आन्तरिक विश्वास और संकल्पके साथ, जिसे देखकर सभी चकित हो गये, उन्होंने सारे विरोधको जीत लिया और अपने पुराने साथियोंको अपने साथ एक और लड़ाईके लिए एकत्र कर लिया - यह लड़ाई विदेशी प्रभुत्वके विरुद्ध अंतिम लड़ाई थी, सबसे बड़ी थी और सर्वश्रेष्ठ थी।

ब्रिटिश सरकारको भारतके दुश्मनके हाथों पड़ जानेका इतना डर नहीं था जितना उसे स्वाधीन करनेका था। गांधीजी नहीं चाहते थे कि लोग निरी कटूता और निराशाके मारे जापानी आक्रमणकारियोंका स्वागत करके अपनेको कलंकित करें। उनके लिए यह एक नैतिक प्रश्न था - श्रद्धाका कार्य था। कुछ भी हो जाय, परन्तु भारतको अपनी आत्मा नहीं खोनी चाहिये।

शंकाशीलोंसे गांधीजीने यह कहा: "मैं जानता हूं कि देश आज विशुद्ध अहिंसक प्रकारका सविनय आज्ञाभंग करनेके लिए तैयार नहीं है। किन्तु जो सेनापति आक्रमण करनेसे इसलिए पीछे हटे कि उसके सिपाही तैयार नहीं हैं, वह अपने हाथों धिक्कारका पात्र बनता है। भगवानने अहिंसाके अस्त्रके



रूपमें मुझे एक अमूल्य भेंट दी है। यदि वर्तमान संकटमें मैं उसका उपयोग करनेमें हिचकिचाऊं, तो ईश्वर मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा।”

पंडित नेहरूके मनमें एक घोर द्वंद्व मचा हुआ था। एक तरफ लोकतांत्रिक राज्यों, खास कर चीनके साथ उनकी गहरी हमदर्दी थी; दूसरी ओर संस्कारशून्य दूषित ब्रिटिश साम्राज्यवाद था, जिसे वे दिलसे नापसन्द करते थे। जब वे गांधीजीके साथ भारतकी परिस्थिति पर चर्चा कर रहे थे तब उन्होंने “गांधीजीकी आंखोंमें आवेश देखा” और उन्होंने समझ लिया कि “समग्र दृष्टिसे देखते हुए यह आवेश समस्त भारतका आवेश है।” इस प्रचण्ड उत्साहके सामने “छोटे छोटे तर्क और विवाद तुच्छ और अर्थहीन बन जाते हैं।” और कांग्रेस मैदानमें कूद पड़ी।

८ अगस्त १९४२ का ‘भारत छोड़ो’ प्रस्ताव भारतके स्वाधीनता-संग्रामके इतिहासमें एक सीमाचिह्न था। जैसा गांधीजीने कहा, “वह ब्रिटेनसे सही कार्य करनेकी मांग थी, भले ही जिस पक्षके साथ अन्याय किया गया था वह ब्रिटेनके सही कार्यके परिणाम भुगतनेकी क्षमता रखता हो या न रखता हो।” [हरिजन, १९ जुलाई १९४२, पृ. २३२।] यह “कोई नारा नहीं था, बल्कि आत्म-शासनके लिए छटपटाती हुई भारतीय आत्माकी प्रबल पुकार थी।” एक ही झटकेमें उसने औपनिवेशिक स्वराज्य बनाम पूर्ण स्वाधीनताके पुराने विवादके बचे-खुचे अंशोंका खातमा कर दिया। इसके बाद ब्रिटिश सत्ताके बिना किसी शर्तके भारतसे हटनेकी बात ही भारतीय प्रश्नके निबटारेकी एकमात्र शर्त हो गई। अब तक साम्प्रदायिक समस्याको ब्रिटिश सत्ताने भारत छोड़नेसे इनकार करनेका एक बहाना बना रखा था। अब वही ‘भारत छोड़ो’ की मांगका कारण और उचित समर्थन बन गया। अब भारतका संविधान इंग्लैंडके बनानेकी चीज नहीं रही; भारत-वासियोंने निश्चय कर लिया कि अब तो अपना संविधान वे स्वयं ही बनायेंगे। अब ‘करो या मरो’ का युग आरंभ हो गया।

जब कांग्रेसकी कार्यसमिति शान्तिपूर्ण समझौतेके लिए बातचीत करनेकी कोशिश ही कर रही थी उस समय कार्यसमितिको एक ही धावेमें जेलमें डालकर तथा ‘सिंहकी हिंसा’ का तांडव मचाकर सत्ताधारियोंने ‘भारत छोड़ो’ आन्दोलनकी प्रचण्ड बाढ़को तत्काल तो दबा दिया। परन्तु उसने जनतामें जो उत्साह और जोश उत्पन्न किया वह बढ़ता ही गया। तपस्वीके अन्तर्नादने एक बार फिर सिद्ध कर



दिया कि राजनीतिक बुद्धिमत्ताके गणितसे अन्तर्नादकी भविष्यवाणी अधिक सच्ची होती है। पांचसे भी कम वर्षोंमें अगस्त १९४२ का राजद्रोही नारा ब्रिटिश सरकारका सरकारी कार्यक्रम बन गया; और थोड़े ही समयमें 'भारत छोड़ो' का नारा भी पुराना पड़ गया और उसका स्थान 'एशिया छोड़ो' के नारेने ले लिया।

सशस्त्र पहरे और आगाखां महलके नजरबन्दी कैम्पके कांटेदार तारोंके दोहरे घेरेमें बन्द रह कर भी गांधीजी भारतकी अजित और अजेय आत्माके प्रतीक और लोगोंके लिए श्रद्धा और आशाके दीपस्तंभ बन गये। जिस समय चर्चिल राष्ट्रपति रूज़वेल्टको इस संभावनाके लिए तैयार कर रहे थे कि उनके अपने देश (ब्रिटेन) पर आक्रमण हो तो शायद अंग्रेज उनके बाद आनेवाली सरकार द्वारा नाजियोंके सामने आत्म-समर्पण कर देंगे, उस समय गांधीजी अपने निहत्थे देशवासियोंको इस बातके लिए तैयार कर रहे थे कि यदि जापानी लोग भारतकी भूमि पर उतर आयें तो उनके सामने झुकनेकी अपेक्षा आखिरी आदमीके जीवित रहने तक उनका बहादुरीसे सामना किया जाय। [९ जून १९४० को अमेरिका-स्थित तत्कालीन ब्रिटिश राजदूत लॉर्ड लोदियनको मि. चर्चिलने अपने तारमें लिखा था: "यदि आक्रमणसे ग्रेट ब्रिटेनकी कमर टूट गई, तो जर्मनपक्षी सरकार जलसेनाको जर्मनीके हाथोंमें सौंप कर उससे कहीं आसान शर्ते प्राप्त कर सकती है। परन्तु इस प्रकार जर्मनी और जापान नई दुनियाके स्वामी बन जायेंगे। . . . यदि कोई पांचवीं कतारकी सरकार ब्रिटेनमें स्थापित कर दी गई, तो वह ठीक यही करेगी . . . और प्रेसिडेंटी यह बात स्पष्ट रूपसे ध्यानमें रखनी चाहिये।" ७ अगस्त १९४० का लॉर्ड लोदियनके नाम सि. चर्चिलका तार भी देखिये—चर्चिल, 'दि सेकण्ड वर्ल्ड वार, भाग - २, लंदन, १९४९, पृ. ३५५-३५९। मीराबहन (मिस स्लेड) ने गांधीजीको उड़ीसासे एक पत्र लिखा था और उसमें यह पूछा था कि ब्रिटिश अधिकारियोंने समुद्र-तटके प्रदेशको खाली करनेके आदेश निकाल दिये हैं; इसलिए जापानियोंके समुद्र-तट पर उतर आनेकी स्थितिमें लोगोंको कैसा व्यवहार करना चाहिये? इसके उत्तरमें गांधीजीने ३१ मई १९४२ को लिखा: "याद रखो कि हमारा रुख जापानी सेनाके साथ पूरी तरह असहयोग करनेका है। इसलिए हम उन्हें किसी भी तरहकी मदद नहीं दे सकते और न उनके साथ किसी तरहका व्यवहार करके कोई लाभ उठा सकते हैं। इसलिए हम उनके हाथों कोई चीज बेच नहीं सकते। यदि लोग जापानी सेनाका सामना न कर सकें, तो वे वही करेंगे जो सशस्त्र सैनिक ऐसे मौके पर करते



हैं - अर्थात् पराजित होनेके बाद पीछे हट जायं। . . . एक बात उन्हें हरगिज नहीं करनी चाहिये - जापानियोंके आगे स्वेच्छासे उन्हें नहीं झुकना चाहिये। यह कायरताका काम होगा और स्वातंत्र्य-प्रेमी लोगोंको शोभा नहीं देगा। . . . इसलिए उनका रवैया हमेशा जापानियोंका प्रतिकार करनेका ही होना चाहिये। . . . यदि अंग्रेज लोग सब कुछ हिन्दुस्तानियोंके हाथोंमें छोड़कर भारतसे व्यवस्थित ढंगसे हट जायेंगे, तब तो सारा काम शानदार ढंगसे चल सकता है और जापानियोंके लिए भारतमें अथवा उसके किसी भागमें शान्तिसे बसना कठिन भी बनाया जा सकता है; क्योंकि उन्हें ऐसी आबादीसे सम्बन्ध रखना पड़ेगा, जो नाराज होगी और उनकी विरोधी होगी। . . . अगर लोगोंको प्रतिकारकी शक्तिका विकास करनेकी तालीम दे दी जाय तो काफी है, इसकी चिन्ता नहीं कि सत्ता जापानियोंकी है या अंग्रेजोंकी।" - गांधीजीज कॉरेस्पोंडेन्स विद दि गवर्नमेंट, १९४२-४४, अहमदाबाद, १९४५, पृ. ३१०।]

परन्तु अब गांधीजीको अंग्रेजोंके युद्धकालीन प्रचार-तंत्र द्वारा संसारके अखबारोंमें जापानियोंका हिमायती और पांचवीं कतारका आदमी बताकर बदनाम किया जा रहा था और अपनी सफाई देनेके जिस प्रारंभिक अधिकारका एक मामूली अपराधी भी दावा कर सकता है उससे भी उन्हें वंचित कर दिया गया था। गांधीजीके भूतपूर्व विरोधी फील्ड मार्शल स्मट्सने, जिनसे वे दक्षिण अफ्रीकामें बीस वर्ष तक लड़ चुके थे, पुण्य-प्रकोप प्रकट करते हुए कहा:

गांधीको पांचवीं कतारका आदमी बताना बिलकुल बेहूदी बात है। . . . वे संसारके महापुरुषोंमें से एक हैं और उन्हें इस श्रेणीमें कभी रखा ही नहीं जा सकता। वे उच्च आध्यात्मिक आदर्शोंसे प्रेरित व्यक्ति हैं। . . . यह सन्देह किया जा सकता है कि वे आदर्श हमारे कठिनाइयोंसे भरे जगतमें सदा आचरणमें उतारे जा सकते हैं या नहीं। परन्तु इसमें किसे शंका हो सकती है कि गांधीजी एक महान देशभक्त, एक महापुरुष और एक महान आध्यात्मिक नेता हैं?

युद्धकालमें युद्ध लड़नेवाले देशोंके प्रचार-तंत्रको खुल कर खेलनेकी पूरी छूट थी। परन्तु सत्यको दबाया नहीं जा सका। बंगालके १९४३-४४ के दुर्भिक्षने संसारके अन्तःकरणको हिला दिया। सरकारी सूचनाके अनुसार इस दुर्भिक्षके कारण १५ से २० लाख मनुष्य मुत्युके शिकार हुए। बंगालकी राजधानी कलकत्ताकी सड़कें और मुहल्ले मुर्दोंसे भर गये थे, क्योंकि उन निराधार मानवोंके शवोंकी चिन्ता करनेवाला या उनकी अंतिम व्यवस्था करनेवाला कोई था ही नहीं। कभी कभी तो भूखसे तड़प कर



धरती पर गिर पड़नेवाले और जीवनका अंतिम श्वास ले रहे मानवोंके शरीरोंको गिद्ध नोच डालते थे। भारतमें आये हुए ब्रिटिश सेनाके सैनिकोंमें से बहुतोंने उस कठोर शासनमें देखा कि उसके पंजेने देशमें स्वतंत्रता-संग्रामको दबा रखा है, और जिस ध्येयके लिए वे लोग रड़ रहे हैं उसका भारतमें नामनिशान भी नहीं है। उन्होंने इसके विरुद्ध अपनी अप्रसन्नता स्पष्ट शाब्दोंमें प्रकट की। उनमें से एकने गांधीजीको लिखा:

हम भरती किये गये सिपाहियोंमें से अनेकने . . . कहा है कि भारतीय समस्याका) एकमात्र हल यह है . . . कि आपसे ऐसा आनुरोध किया जाय कि आप 'भारत छोड़ो' के अत्यन्त उचित प्रस्ताव पर अमल करनेके लिए प्रत्येक उपलब्ध साधन काममें लें। मैंने अपने यहांके एक पार्लियामेंटके सदस्यके सामने एक अन्य प्रश्न यह उठाया: जिन लोगोंसे मुझे प्रेम है उनके खिलाफ हथियार उठानेको यदि मुझसे कहा जाय, तो सम्राट्की सेनाके एक सिपाहीके नाते मुझे क्या करना चाहिये? मैंने सूचित कर दिया है कि मैं ऐसा करनेसे इनकार कर दूंगा। हम इस सेनामें कोई साम्राज्यवादी युद्ध लड़नेको नहीं आये हैं; और मैं तो ऐसा युद्ध कभी नहीं लड़ूंगा। [हरिजन, १० मार्च १९४६, पृ. ३७।]

झूठे प्रचारके विरोधके रूपमें और जनताको जो कष्ट हो रहे थे उनमें जेलमें रहते हुए भी हिस्सा लेनेके एकमात्र उपायके रूपमें गांधीजीने इक्कीस दिनका उपवास आरंभ कर दिया। अधिकारियोंने तुरन्त उन पर आक्षेप लगाया कि यह तो "एक तरहकी राजनीतिक धमकी है", " जिम्मेदारीसे बच निकलनेका आसान मार्ग है।" उपवासके उत्तरमें उन्होंने गांधीजीके दाह-संस्कारके लिए काफी चंदन-काष्ठ इकट्ठा कर लिया, नजरबन्दी कैम्पके चारों ओर पहरा दुगुना कर दिया और उनकी मृत्यु पर होनेवाले सार्वजनिक प्रदर्शनोंको दबा देनेके लिए भी पूरा प्रबंध कर लिया।

बर्नार्ड शॉने कहा:

इस (गांधीजीको जेलमें डालनेकी करतूत) और उससे सम्बन्धित कोड़े लगानेकी अक्षम्य करतूतने हिटलरके विरुद्ध हमारे नैतिक दावेको खतम कर दिया है। राजाको चाहिये कि वे



शासन-नीतिके एक कदमके रूपमें नहीं परन्तु शुद्ध सज्जनताके कार्यके रूपमें ही गांधीजीको तुरन्त छोड़ दें और अपने मन्त्रि-मण्डलकी निर्बुद्धिताके लिए उनसे क्षमा मांगें।

परन्तु गांधीजीको जेलसे छोड़ा नहीं गया। उनकी मृत्यु भी नहीं हुई। उपवास आरंभ होने पर जेलके द्वार खोल दिये गये थे; उपवास समाप्त होने पर वे फिर बन्द कर दिये गये। उनके दो निकटतम साथियोंका दाह-संस्कार उन्हींकी आंखोंके सामने नजरबन्दी कैम्पमें हुआ। इनमें से एक थे पच्चीस वर्ष तक भक्तिपूर्वक गांधीजीकी सेवा करनेवाले उनके सचिव महादेव देसाई और दूसरी थीं उनके जीवनके समस्त संग्रामोंमें सदा साथ देनेवाली उनकी पत्नी कस्तूरबा गांधी। इस आघातसे किसीकी भी हिम्मत टूट जाती और श्रद्धा कमजोर हो जाती या मिट जाती। परन्तु गांधीजी चट्टानकी तरह अटल रहे। उनके मनमें लेशमात्र भी कटुता, शंका या निराशा नहीं आई। वे अपने उठाये हुए कदमके न्यायसंगत और निर्दोष होनेके साक्षी बने रहे और प्रभुको अपना आसरा बनाये रहे। उन्होंने वाइसरॉय लॉर्ड वेवेलको जेलसे लिखा, “मैं आपसे सहमत हूं कि जब तक आपके वही विचार हैं जो आपके पत्रमें प्रगट किये गये हैं . . . तब तक मेरे जैसेके लिए उपयुक्त स्थान केवल जेल ही है। और जब तक आपका हृदय-परिवर्तन नहीं होता तब तक मुझे आपका कैदी रहनेमें पूरा सन्तोष है।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, ९ अप्रैल १९४४।]

तदनुसार उन्होंने अपने बचे हुए साथियोंसे कह दिया कि वे भी महादेव और कस्तूरबाकी तरह अपने दिन कारागारमें ही पूरे करनेको तैयार रहें; और उन्तके तथा अपने लिए आत्म-संयम, अध्ययन और आध्यात्मिक साधनाका जेलके सीखचोंके भीतर ही छह वर्षका कार्यक्रम तैयार कर दिया। उनकी कामना यही थी कि ‘धर्मकी जय हो अथवा अधर्मका क्षय हो।’ उन्तकी तपस्या दिनोंदिन गहरी होती गयी और यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि उस दिनों जेलके भीतर या बाहर भारतीय स्वाधीनता-संग्राममें लगा हुआ एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जिसने गांधीजीकी इस तपस्यासे अपनेको बलशाली और उन्नत बना हुआ अनुभव न किया हो।

धमकियोंसे, फुसलाहटसे और दमनसे गांधीजी या कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्यों द्वारा, जो अहमदनगरके किलेमें कैदी बना कर रखे गये थे, ‘भारत छोड़ो’ प्रस्तावका खंडन नहीं कराया जा सका



और न उसे वापस लिवाया जा सका। इससे लोगोंकी आत्मा और भी फौलादी बन गई और नरम लोकमतकी सहानुभूति भी विदेशी सरकारके साथ न रही। मुस्लिम लीग और कांग्रेसमें बुनियादी राजनीतिक प्रश्न पर तो अब भी मतभेद था, परन्तु संसदीय मोर्चे पर वे दोनों एक हो गई और उन्होंने भारत-सरकारके १९४४ के बजटको अस्वीकार कर दिया। मुस्लिम लीगके एक प्रमुख सदस्य सर यामीन खाने केन्द्रीय विधान-सभामें कहा: सरकारके अन्यायोंके लिए मैं उसका आभारी हूं। मेरा खयाल है कि सरकारके दुष्कृत्योंने कांग्रेस और लीगमें मेल करा दिया है और वे दोनों एक-दूसरेके इतनी निकट आ गई हैं कि दुनियाको इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया कि उनका सरकारके प्रति विश्वास नहीं है।

अन्तमें गांधीजी ऐसे बीमार पड़े कि लगभग मृत्युके द्वार पर पहुंच गये। एक समय तो ऐसा भी आया कि जिस आन्तरिक प्रकाशने जीवनभर उन्हें सहारा दिया वही प्रकाश बुझता हुआ दिखाई दिया। परन्तु यह स्थिति क्षणिक ही थी। जब रात्रि अत्यन्त अंधकारपूर्ण दिखाई दे रही थी और सारी आशाये लुप्त हो चली थीं, ठीक उसी समय जेलके दरवाजे अचानक खुल गये और गांधीजीको बिना शर्तके रिहा कर दिया गया।

ब्रिटिश सत्ताधारी यह नहीं चाहते थे कि दो मृत्युओंके बाद नजरबन्दी कैम्पमें उनके हाथों यह तीसरी मृत्यु हो। उन्हें लगा कि गांधीजी मर रहे हैं। ब्रिटिश विदेश-मंत्रालयने तो ऐसा मानकर कि उनकी मृत्यु बिलकुल निकट है, विदेश-मन्त्री एन्थनी ईडनके हस्ताक्षरसे एक आदेश भी जारी कर दिया था कि गांधीजीके निधनकी टिप्पणी किस प्रकार लिखी जाय। जिस दिन गांधीजी भारतमें रिहा किये गये, उसी दिन उस सूचनाकी एक प्रति ब्रिटिश इन्फरमेशन ऑफिसोंको भेजी गई थी। एक प्रति चुंगकिंगकी ऑफिसको भी मिली थी। संयोगसे सुप्रसिद्ध भारतीय विद्वान और दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन् उस समय वहीं थे। उस सूचनाका आशय यह था: गांधीकी मृत्यु हो जाय तो उनकी नैतिक उच्चताको घटाया न जाय, अपार्थिव आदर्शोंके प्रति उनकी अटल निष्ठाको स्वीकार किया जाय और इस बात पर खेद प्रगट किया जाय कि अपने अद्वितीय प्रभावका लाभ मित्रराष्ट्रोंको, विशेषतः चीन और भारतको, उन्होंने नहीं दिया।



परन्तु स्पष्ट था कि ईश्वर गांधीजीसे कुछ काम और लेना चाहता था। लोगोंके भय और ब्रिटिश सरकारकी आशंकाओंके विपरीत महात्माजीका अवसान नहीं हुआ

२

नजरबंदी कैम्प छोड़नेसे पूर्व गांधीजी तथा उत्तकी मंडलीके सब लोगोंने कारावासमें विदेह बने हुए अपने दो साथियोंको अंतिम अंजलि अर्पण की। जहां दोनोंका अग्नि-संस्कार हुआ था वहां जाकर सबने फूल चढ़ाये तथा समाधि-स्थल पर बैठ कर प्रार्थना की। दोनोंके अवसानके बाद उनके साथी प्रतिदिन समाधि-स्थल पर जाकर इसी प्रकार उन्हें अंजलि दिया करते थे। सरकारके नाम एक पत्रमें गांधीजीन लिखा:

मैं यह बात लिखित रूपमें कहना चाहता हूं . . . कि श्री महादेव देसाई और बादमें मेरी पत्नीके दाह-संस्कारके कारण . . . समाधिका यह स्थान्त पवित्र बन गया है। मेरा विश्वास है कि सरकार इस जगहको प्राप्त कर लेगी। . . . मैं इस पवित्र स्थानकी देखभालका और यहां दैनिक प्रार्थनाका प्रबन्ध करना चाहूंगा।" [गांधीजीका पत्र बंबई सरकारको, ६ मई १९४४।]

कैम्प-सुपरिन्टेन्डेन्ट खान बहादुर कटेली पिछली रातको आकर गांधीजीसे कहने लगे : "कल सुबह जब आप बाहर निकलेंगे तब मैं गणवेश पहन कर सम्राट्के कर्मचारीकी हैसियतसे ड्यूटी पर खड़ा हूंगा। इसलिए मैं इस समय आपके आशीर्वाद लेने आया हूं ।" प्रातःकाल प्रार्थनाके बाद उन्होंने गांधीजीको उनके पचहत्तरवें जन्मदिनके उपलक्ष्यमें पचहत्तर रुपयेकी थैली भेंट की और कहा: "महात्माजी, आपको बाहर बहुतसी थैलियां मिलेंगी, परन्तु कटेलीकी थैलीको पहला स्थान लेने दीजिये।" जेल-अधिकारियों और गांधीजीका सम्बन्ध जेलर और कैदीका नहीं रह गया था। वे सब गांधीजीके विशाल परिवारके सदस्य हो गये थे।

जब महात्माजीकी मोटर कांटेदार तारोंके दरवाजेके पास पहुंची, तो उसे रोक कर मेरी बहन डॉ. सुशीला नय्यर पर एक नोटिस तामील किया गया कि वे कारावासके समयकी नजरबन्दी कैम्पकी घटनाएं बाहर किसीको न बतायें। डॉ. सुशीलाको गांधीजीके डॉक्टरी सहायकके तौर पर नजरबन्द किया गया था।



महात्माजीने पूछा: “मेरे लिए कोई आज्ञा नहीं है?”

उनके लिए कोई आज्ञा नहीं थी। उनकी रिहाई बिना किसी शर्तके हुई थी।

उन्होंने सुशीलासे, जो परेशानीमें पड़ गई थी, कहा, “इस पर हस्ताक्षर कर दो।”

मंडलीके बाकी लोगोंने—डॉक्टर गिल्डरने, मीराबहन (कुमारी स्लेड) ने, उनकी पोती (मनु गांधी) ने और मैंने भी बारी बारीसे नोटिस पर हस्ताक्षर कर दिये।

अधिकारियोंको डर था, और वह ठीक ही था, कि अगर वे गांधीजी पर कोई प्रतिबन्ध लगानेकी कोशिश करेंगे, तो महात्माजी शायद बाहर जानेसे इनकार कर देंगे। स्पष्ट था कि वे जो कुछ चाहें सो कहने या करनेकी उन्हें छूट थी। इस तरह बाकी लोगों पर लागू किया गया आदेश निरर्थक था!

बादमें डॉ. गिल्डरने गांधीजीके दैनिक स्वास्थ्यका बुलेटिन लिखवाना शुरू किया : “ पिछले चौबीस घंटोंकी अपेक्षा महात्मा गांधीकी स्थिति . . . ”

मंडलीमें से किसीने कहा : “यह तो निषेध-आज्ञाका उल्लंघन है!”

महात्माजी मुसकरा उठे। उनकी टिप्पणी यह थी: “आदेश इतने व्यापक शब्दोंमें लिखा गया है कि इसके पालनकी आशा सरकार किसीसे भी नहीं रख सकती! ”

रातको नींद न आनेसे उनका ब्लड प्रेशर बढ़ गया था और सुबह उत्तेजना भी काफी रही, फिर भी गांधीजीकी तबीयत रोजसे अच्छी रही। इसका कारण उन्होंने यह बताया कि वे रातभर रामनाम जपते रहे थे। “मैं सोना चाहता था, परन्तु सो नहीं सका। इसलिए मैं अक्सर जो उपदेश दूसरोंको देता रहता हूं उसका मैंने स्वयं पालन किया: ‘रामनाम हजार बार जपो, लाख बार जपो, करोड़ बार जपो। अन्तमें तुम्हें शान्ति अवश्य मिल जायगी।’ वैसे मुझे ताजगी मालूम हो रही है। लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि जितनी शून्यता मुझे आज मालूम हो रही है उतनी पहले कभी नहीं हुई। मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूंगा या कहूंगा। परन्तु जिस ईश्वरने अब तक मेरा पथ-प्रदर्शन किया है वही मुझे रास्ता दिखायेगा। मुझे विश्वास है कि वह ठीक समय पर मुझे उचित वाणी देगा।”



सब तरफसे गांधीजीके स्वास्थ्यकी पूछताछ करनेवाले और रिहाई पर प्रसन्नता प्रकट करनेवाले तारोंकी वर्षा होने लगी। उनमें से एक था पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीयका: “ईश्वरने करोड़ोंकी प्रार्थना सुन ली और आपको ताजी हवामें सांस लेनेको मुक्त कर दिया। मुझे पूरी आशा है कि वह आपको मातृभूमि और मानव-जातिकी सेवाके लिए सौ वर्ष जीवित रखेगा।

गांधीजीने तारसे उत्तर दिया: “आपने एक ही झटकेमें मेरी आयुके पच्चीस वर्ष घटा दिये ! अब अपनी आयुमें वे २५ वर्ष बढ़ा लीजिये।” इसका सम्बन्ध गांधीजीके उस अन्तिम भाषणसे था, जो उन्होंने अगस्त १९४२ में अपनी गिरफ्तारीसे पहले अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें दिया था। उसमें उन्होंने ऐसा कहा था कि मेरी इच्छा १२५ वर्ष तक जीने और देशकी सेवा करनेकी है।

ऐसा ही एक सन्देश राजाजीका था। उनकी अपनी तंदुरुस्ती कभी बहुत अच्छी नहीं रही। गांधीजीने उन्हें उत्तर दिया: “वैद्यजी, आप अपना ही इलाज कीजिये!”

एक उच्च अधिकारीने, जो गांधीजीके बारेमें सरकारको मिलनेवाली गुप्त डॉक्टरी रिपोर्ट देख चुके थे, कहलवाया: “उनसे कहिये कि धीमी गतिसे काम करें। वे नहीं जानते कि उनकी दशा कितनी गंभीर है।” लेकिन यह कहना जितना आसान था उतना करना आसान नहीं था। आरामकी ही गांधीजीको सबसे ज्यादा जरूरत थी और आराम ही उनको मिल नहीं पाता था। मिलनेवालों, सम्बन्धियों, घनिष्ठ साथियों और सहकर्मियोंकी भीड़ लगी रहती थी। उन्हें गांधीजीके सामने अपना दिल खोल कर रख देनेका अधिकार था और गांधीजी ऐसे आदमी नहीं थे जो अपनी जानको जोखिममें डाल कर भी उन्हें यह सांत्वना देनेसे इनकार करते। नतीजा यह हुआ कि अपने पांच दिनके पूना-निवासके अंतमें वे कैदखानेसे निकलते समय जितने कमजोर थे उससे भी ज्यादा कमजोरी अनुभव करने लगे। वे कह उठे, “शान्तिके दिन बीत गये। जेलमें पूरी शान्ति थी।”

गांधीजीको जुहू ले जानेका निश्चय हुआ। जुहू बम्बईके पास समुद्र-तट पर एक शान्त स्थान है। जब १९२४ में एपेंडिसाइटिज़के ऑपरेशनके बाद उन्हें यरवडा सेन्ट्रल जेलसे छोड़ा गया था, तब भी वे आराम लेनेके लिए वहीं गये थे। सरकारने उनके और उनकी मंडलीके लिए रेलमें एक दूसरे दर्जेके डिब्बेकी व्यवस्था कर दी थी। कैदीके रूपमें उन्होंने पहले दर्जेमें सफर किया था। परन्तु स्वतंत्र मनुष्यके



नाते वे देशके गरीबोंमे से ही एक थे। उन्हें गरीबोंकी तरह तीसरे दर्जेमें यात्रा किये बिना शान्ति नहीं मिल सकती थी!

जेलोंके इन्स्पेक्टर जनरलकी पत्नी बिदाईके समय गांधीजीसे मिलने आई। उनके पिता पंजाबके एक कांग्रेसी महारथी थे, जिनके यहां गांधीजी १९२०-२२ के असहयोग-कालमें अकसर मेहमान हुआ करते थे। उन्होंने विनती की : “महात्माजी, अगर आपका फिर कभी जेल जानेका विचार हो जाय, तो कृपा करके हमें पहलेसे बता दीजियेगा, ताकि मेरे पति छुट्टी लेकर चले जायं!”

गांधीग्राम - जुहूमें श्रीमती सरोजिनी नायडू गांधीजीको लोगोंके झुंडोंके कुतूहलसे, आजिजी करनेवाले मुलाकातियोंसे और किसी भी तरह भीतर घुस आनेवाले लोगोंसे बचानेके लिए मकानके दरवाजे पर द्वारपाल और चौकीदार बन कर बैठ गई। वे पूनाके नजरबन्दी कैम्पमें गांधीजीके साथ नजरबन्द रही थीं और उन्हींकी तरह कुछ समय पहले स्वास्थ्यके कारण छोड़ दी गई थीं। उन्तका यह काम बड़ा मुशिकल और नाजुक था। परन्तु जिस खूबीसे उन्होंने यह काम किया उस तरह वे ही उसे कर सकती थीं। उन्होंने अपने कमजोर स्वास्थ्य और आरामकी जरूरतकी जरा भी परवाह न करके गांधीजी पर उसी तरह चौकी की, जैसे कोई सिंहनी अपने बच्चेकी करती है। इस तरह गांधीजीके दिये हुए स्नेहपूर्ण ‘अम्माजान’ नामको उन्होंने सार्थक किया।

बहुत लोग वहां आये थे। बहुतोंको लौटा दिया गया था। परन्तु इन आनेवालोंमें जिसने आते ही गांधीजीका हृदय जीत लिया, वह था एक दस-बारह सालका मैले कपड़ोंवाला लड़का। वह गांधीजीके दर्शनके लिए सुबहसे इंतजार करता रहा था। उसने दो-तीन रुपयेके फल गांधीजीको भेंट किये। गांधीजीकी मंडलीमें से किसीने उसे भिखारी समझ कर ऐसा ही कुछ कह दिया। बच्चेके स्वाभिमानको चोट लगी: “नहीं, महात्माजी, मैं भिखारी नहीं हूं। जबसे मैंने आपकी रिहाईका समाचार सुना तबसे मैं कुलीका काम करता रहा हूं और इतना रुपया कमा कर यह नम्र भेंट आपके लिए लाया हूं।” गांधीजी गद्गद हो गये। उन्होंने यह कह कर कि “अपने परिश्रमका फल तुम्हीं खा लो” उसके लाये हुए फल उसे देने चाहे। परन्तु लड़केने उन्हें छुआ तक नहीं। उसने उत्तर दिया, “महात्माजी, आप खा लेंगे तो मेरा पेट भर जायगा।” यह कहते कहते उसका चेहरा चमक उठा और वह विजयके गर्वके साथ चला गया।



गांधीजीको स्वास्थ्यलाभ धीरे धीरे ही हो रहा था। इससे सरकारको तो शायद वांछित राहत मिली, परन्तु देखभाल करनेवाले डॉक्टरोंके लिए यह चीज सिर-दर्दका कारण बन गई। मंडलीके अन्य लोगोंकी तरह वे भी मलेरियाके अलावा नजरबन्दी कैम्पसे पेचिशकी शिकायत लेकर निकले थे। इससे उन्हें तीव्र एनीमिया हो गया था। परन्तु महात्माजीने कोई भी दवा लेनेसे इनकार कर दिया। जब नजरबन्दी कैम्पमें उन्होंने कुनैन ली थी तब उन्हें मन मारकर समझौता करना पड़ा था। इसे उन्होंने सदा अपनी नैतिक पराजय और ईश्वरमें अश्रद्धाका रक्षण समझा था। जब उनकी अनिच्छाको जीतनेके लिए डॉक्टरोंने डॉक्टरी दलीलोंका जोर लगाया, तो गांधीजीने उनसे कह दिया कि यह मेरी श्रद्धाका अंग है और मेरी श्रद्धा अविभाज्य - अखंड है। अगर मैं अपने महत्त्वपूर्ण विश्वासकी एक बातमें झुकने लगूंगा, तो उसका अन्त कहां होगा? लोग इसे हठ कह सकते हैं, लेकिन क्या मेरा हठ ही मुझे भारतके स्वातंत्र्य-संग्राममें अटल नहीं रख रहा है? उन्हें रात भर नींद नहीं आई और सुबह ही उन्होंने डॉक्टरोंसे पूर्ण स्वाधीन हो जानेकी घोषणा कर दी। यह परिवर्तन मुख्यतः मानसिक - आध्यात्मिक था। इसने उन्हें उत्पीड़नकी भावनासे मुक्त कर दिया और उनमें फिरसे आत्म-विश्वास आ गया। दूसरे दिन जब एक मित्रने उनसे पूछा कि आपकी तबीयत कैसी है, तो उन्होंने उत्तर दिया: “यदि आप यह प्रश्न मुझसे कल करते, तो मुझे कोई उत्तर न सुझता। परन्तु आज मैं कह सकता हूं कि मैं बिल्कुल अच्छा हूं। क्योंकि रातको मुझे वह चीज फिर मिल गई, जो मैं कुछ समयके लिए खो बैठा था। वह है ईश्वरमें सजीव श्रद्धा। ईश्वर ही परम वैद्य है - महान आरोग्य-दाता है।”

गांधीजीकी देखभाल करनेवाले चिकित्सक डॉ. विधानचन्द्र राय, डॉ. गिल्डर, डॉ. गज्जर और डॉ. जीवराज मेहता आदि अग्रगण्य डॉक्टर थे। वे आसानीसे हार माननेवाले नहीं थे। उन्होंने गांधीजीसे कहा कि हम आप पर कोई नियंत्रण नहीं रखेंगे; इसके बजाय हम खुद आपके नियंत्रणमें रहेंगे। वैज्ञानिक व्यक्ति होनेके नाते सलाह देना तो हमारा काम है। प्राकृतिक चिकित्सावादीके नाते यह आपकी इच्छा पर निर्भर है कि आप उस सलाहको मानें या न मानें। यह व्यवस्था काम कर गई। इससे गांधीजीको प्रयोग करने और अपनी श्रद्धाके अनुसार खतरे उठानेके लिए काफी गुंजाइश मिल गई। परन्तु कभी कभी विषम स्थिति पैदा हो जाती थी। अपने एनीमियाके लिए उन्होंने खमीरसे बनी एक पेटेण्ट दवा लेना मंजूर किया था। परन्तु डॉक्टरोंको बड़ी परेशानी हुई जब उन्हें पता लगा कि उसकी कीमत लड़ाईके



दिनोंमें बेहिसाब बढ़ गई है। एक शीशीका मूल्य ६५ रुपयेके करीब हो गया था। गरीबोंके प्रतिनिधिके नाते महात्माजी अपने पर होनेवाले खर्चके मामलेमें सिद्धान्तके रूपमें इतनी कंजूसी करते थे जितनी सिर्फ वे ही कर सकते थे। मित्रों और डॉक्टरोंने 'युद्ध-परिषद्' की बैठक करके 'अत्यन्त गुप्त रूपमें' यह निश्चय किया कि जरूरत पड़ने पर गांधीजीसे यही कहा जायगा कि वह शीशी एक मित्रके यहां उनके 'युद्धसे पहलेके पुराने संग्रह' में से मिल गई थी ! सौभाग्यसे यह अटपटा प्रश्न पूछा ही नहीं गया और 'सत्यके प्रयोगों' के लेखकको सत्यके एक अतिशय संदिग्ध प्रयोगकी अग्नि-परीक्षामें से गुजरना नहीं पड़ा!

कुछ दिनके बाद एक होमियोपैथ गांधीजीको अपनी उपचार-पद्धति समझाने आये। गांधीजीका होमियोपैथीमें कोई विश्वास नहीं था। एलोपैथी पर भी उनकी श्रद्धा नहीं थी। उनका विश्वास एकमात्र प्राकृतिक चिकित्सा पर ही था। परन्तु उनके स्वर्गवासी साथी 'बंगालके बेताजके बादशाह' देशबन्धु चित्तरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरूकी हमेशा यह इच्छा रही थी कि गांधीजी होमियोपैथीको एक बार आजमा कर देखें। उनकी स्मृतिका सम्मान करनेके कारण और इसलिए भी कि "उन्हें ईश्वर पर और पंचतत्त्वोंकी क्षमता पर दृढ़ विश्वास नहीं था," उन्होंने होमियोपैथसे मिलनेकी बात स्वीकार कर ली थी।

चिकित्सक महाशयने गांधीजीसे उनके पारिवारिक इतिहासके बारेमें पूछताछ शुरू की: "आपके पिताजीका स्वर्गवास कब और किस कारणसे हुआ था?"

"वे गिर पड़े थे। उससे उन्हें भगंदर हो गया और पैंसठ वर्षकी उमरमें वे चल बसे।"

इससे काम नहीं चलका। चिकित्सक आगे बढ़े: "आपकी माताजीकी मृत्यु किससे हुई?"

"वे विधवा हो गईं और वियोग-दुःखसे उनकी मृत्यु हो गई!"

चिकित्सक महोदय कुछ अधीर हो रहे थे। उन्होंने पूछा, "आपकी स्मरण-शक्ति कैसी है?"



“आप कल्पना कर सकें उतनी खराब है। ब्योरेकी बातें मुझे याद ही नहीं रहतीं। अगर आप मुझे स्मरण-शक्ति फिरसे प्रदान कर दें, तो मैं बिना कुछ लिये आपके गुण गाता फिरूंगा,” गांधीजीने आंख चमका कर उत्तर दिया।

डॉक्टर बोले, “ महात्माजी, यह वरदान तो ईश्वर ही दे सकता है। मैं आपके प्रस्तावको कितना ही पसंद करूं तो भी मैं वैसा नहीं कर सकता।”

“तो फिर बिना किसी प्रस्तावके ही वह शक्ति दे दीजिये!”

डॉक्टरने विषय बदल दिया। “आपको याद है कि बरसों पहले जब आप हरद्वारका मिशन अस्पताल देखने गये थे, तब मैंने आपको घुमा कर सारा अस्पताल दिखाया था?” डॉक्टरने वाक्यके अंतिम अंश पर जोर दिया ।

गांधीजीने उत्तर दिया, “हां, मुझे याद है कि हरद्वारके अस्पतालमें मैं गया था।”

डॉक्टर प्रसन्न दिखाई दिये। वे तुरन्त बोले: “तब तो आपकी स्मृति बहुत अच्छी है।”

गांधीजी बोले, “नहीं, आपकी मुझे बिलकुल याद नहीं!”

डॉक्टर झेंप गये। वे अपने मंतव्य नोट कर रहे थे। अब उन्होंने वह कागज जांचके लिए गांधीजीके हाथमें दे दिया। उसमें लिखा था: “प्रकृति - बड़ी चतुर; दार्शनिक और धार्मिक स्वाध्यायके प्रेमी . . .।”

प्रकृति-सम्बन्धी टिप्पणीके आगे गांधीजीने बड़ा प्रश्न चिह्न लूगा दिया।

अदम्य डॉ. विधानचन्द्र राय पास ही बैठे थे। बोल उठे: “एक बात और जोड़ दीजिये - सद्गुणोंके आरोप पर शंका करनेकी आदत!”

होमियोपैथ मुसकराये। बोले, “इसे कहते हैं नम्रता।”

गांधीजी बीचमें ही बोल उठे, “नम्रताकी कमजोरी मुझमें कभी नहीं रही।” इस पर जोरकी हंसी हुई।

जब हंसी शान्त हुई तो गांधीजीने कहा, “मैं अपना ब्लड प्रेशर इसी तरह कम किया करता हूं।”



गांधीजीकी रिहाई पर जिस भारतने उन्तका स्वागत किया, वह भारत अपमानित और तिरस्कृत था, परन्तु पराजित भारत नहीं था। वह अडिग और अजेय था। श्री विलियम फिलिप्स भारतमें राष्ट्रपति रूजवेल्टके विद्येष दूत बन कर आये थे। लेकिन उन्हें गांधीजीसे जेलमें मिलनेकी इजाजत नहीं दी गई और ब्रिटिश सरकारने उनके राजदूतके पदकी अवज्ञा की। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन ज्यादातर ऐसे कार्यकर्ता चला रहे थे, जो भूगर्भमें चले गये थे। युद्धकालमें भारतीय सेनाके जिन सैनिकोंने जापानके आगे हथियार डाल दिये थे, उन्हींने भारतीय राष्ट्रीय सेना—आजाद हिन्द फौज—बनाई थी और वह नेताजी सुभाष बोसके नेतृत्वमें बर्मी मोर्चे पर भारतकी आजादीके लिए अंग्रेजोंसे लड़ रही थी। उसे विवश होकर भारतकी भूमिसे पीछे हटना पड़ा था। जापानी आक्रमणका तात्कालिक भय मिट गया था, परन्तु बंगालके अकालके भूतके बावजूद युद्धकालीन प्रतिबन्ध ज्योंके त्यों बने हुए थे। अब अकालकी छाया देशके दूसरे हिस्सों पर भी पड़ने लगी थी। आर्डिनेन्स राज्यमें दमन पूरे जोरों पर था: अखबारोंके मुंह बन्द कर दिये गये थे, हजारों लोग जेलमें ठूस दिये गये थे, कांग्रेस कैदमें थी तथा नये नये आर्डिनेन्सों द्वारा न्यायालयोंके निर्णय बेकार कर दिये गये थे। किसीकी स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं थी। उदार दलकी और दूसरे राष्ट्रीय नेताओंकी कांग्रेस तथा ब्रिटिश सरकारके बीचकी गुत्थी सुलझानेकी सब कोशिशें व्यर्थ हो चुकी थीं। उदार दलके नेता सर तेजबहादुर सप्रूने कहा, "देशमें चारों तरफ गहरा रोष और तीव्र निराशाकी भावना फैली हुई है। भारत और इंग्लैंडके व्यापक और स्थायी हितमें वर्तमान स्थितिको बनाये रखना बुद्धिमानीकी बात नहीं है।" [निर्दल नेता-सम्मेलनमें ७ अप्रैल १९४४ को डॉ. तेजबहादुर सप्रूका अध्यक्षीय भाषण ।]

जब इस तरह सारा देश ब्रिटिश सैनिक शक्तिके पैरों तले कराह रहा था, तब अचानक गांधीजी आगाखां महलसे रिहा करके भारतरूपी विशाल नजरबन्दी कैम्पमें भेज दिये गये। परन्तु इससे स्थितिमें बहुत फर्क पड़ गया। भारतने आरामकी सांस ली। लोगोंको लगा कि कप्तानने आकर फिरसे जहाजकी पतवार संभाल ली है; अब वह जहाजको तूफानी समुद्रसे सुरक्षित पार ले जाकर स्वाधीनताके चिरवांछित लक्ष्य तक पहुंचा देगा।



इसके बाद कुछ काल अनिश्चितताका रहा। लोग सोचते थे : गांधीजीकी इस रिहाईका अर्थ क्या हैं? क्या इससे भारतीय प्रश्न-सम्बन्धी ब्रिटिश सरकारकी नीतिमें कोई परिवर्तन सूचित होता है? या, ज्यों ही गांधीजी अपने स्वास्थ्यका संकट पार कर लेंगे त्यों ही उन्हें फिर जेलमें पहुंचा दिया जायगा? उनके छुटकारेकी घोषणा करनेवाली सरकारी विज्ञप्तिमें ऐसी ही ध्वनि थी। श्री एमेरीने कहा था कि गांधीजी 'सिर्फ स्वास्थ्यके कारण' छोड़े गये हैं। श्री शिनवेलने ब्रिटिश लोकसभामें गांधीजीकी रिहाईको 'अस्थायी' बताया था।

उदार दलके डॉ. जयकरको गांधीजीने लिखा: "देश मुझसे बहुत बहुत आशायें रखता है। मैं बिलकुल सुखी नहीं हूं। मुझे तो शर्म भी आती है। मुझे बीमार नहीं पड़ना चाहिये था। मैंने कोशिश भी की कि बीमार न पड़ूं, परन्तु आखिरमें असफल हुआ। मुझे लगता है कि ज्यों ही मैं आजकी शारीरिक कमजोरीसे मुक्त घोषित कर दिया जाऊंगा त्यों ही सरकार मुझे फिर कैद कर लेगी। और सरकार मुझे गिरफ्तार ना करे, तो भी मैं क्या कर सकता हूं? मैं अगस्त-प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता। . . . वह तो मेरे लिए प्राणके समान है।" [गांधीजीका पत्र डॉ. एम. आर. जयकरको, २० मई १९४४।]

एक और उदार दलीय नेता श्री श्रीनिवास शास्त्रीको उन्होंने लिखा: ऐसा लगता है कि मैं किसी जंगलमें आ पड़ा हूं। यह तथाकथित आजादी मुझे खटकती है। परन्तु हमें तो ईश्वरका ही सहारा है। इसीसे मैं हिम्मत रखता हूं।" [गांधीजीका पत्र श्रीनिवास शास्त्रीको, २० मई १९४४।]

इन दोनोंमें से एक भी पत्र प्रकाशित होनेके लिए नहीं था। लेकिन डॉ. जयकरके नामका पत्र टूटे-फूट और विकृत रूपमें किसी तरह प्रगट हो गया। इसलिए पूरा पत्र अखबारोंमें देना पड़ा। बादमें वाइसरॉयने उसके खिलाफ शिकायत की। परन्तु इससे लोगोंमें नई जान आ गई। गांधीजीने इक्कीस महीने पहले जेलमें पैर रखा था। जब उन्होंने जेल छोड़ा तो उसने श्मशानका रूप ले लिया था। परन्तु आजादीकी लड़ाईका झंडा झुका नहीं था; उस पर कोई दाग नहीं लगा था। 'करो या मरो' का नारा अब भी लोगोंको प्रेरणा दे रहा था। आकर्षणका केन्द्र फिरसे जनताके संग्राम-क्षेत्र पर स्थिर हो गया, क्योंकि वहीं फासिस्टवाद और नाजीवादके खिलाफ लोकतंत्रकी लड़ाई लड़ी जा रही थी। उसी मोर्चे पर लोकशाहीका भविष्य—उसकी जीत या हार—निर्धारित होनेवाला था।



परन्तु चर्चिलकी सरकारने निश्चय कर रखा था कि भले कुछ भी हो जाय, वह कमसे कम युद्धकालमें तो भारतके राजनीतिक दरजेमें कोई परिवर्तन नहीं होने देगी। जिस दिन गांधीजीको मुक्त किया गया उसी दिन लॉर्ड हैलीफेक्सने वाशिंगटनमें भाषण देते हुए कहा कि अटलांटिक चार्टर (अधिकारपत्र) में ऐसी कोई बात नहीं है, जो आधी शताब्दीसे ब्रिटिश सरकारकी नीति न रही हो! उन्होंने यह भी कहा, “फिलिस्तीन और भारतके मामलेमें सीधा-सादा आत्म-निर्णयका सिद्धान्त काम नहीं देगा, क्योंकि वहां धार्मिक और कौमी समस्याएं हैं।” परन्तु इससे विचलित न होकर और अपने सम्मानकी परवाह किये बिना गांधीजीने अपने छुटकारेके छह सप्ताहके भीतर - और पूरी तरह स्वास्थ्यलाभ किये बिना ही - समझौतेके लिए वाइसरॉयको मनानेके प्रयत्न आरंभ कर दिये। सत्याग्रहीके नाते वे विरोधीसे समझौता करने तथा उसकी दृष्टिको विशेष महत्त्व देनेके लिए सदा ही तैयार रहते थे।

अपनी रिहाईके बाद लॉर्ड वेवेलको लिखा अपना पहला पत्र उन्होंने इस प्रकार आरंभ किया, “यद्यपि इसके लिए बहुत कम कारण है, फिर भी सारा भारत और बाहरके भी बहुत लोग मुझसे आशा रखते हैं कि मैं सबके कल्याणमें कोई निर्णायक योगदान करूंगा।” उन्होंने यह भी लिखा, लेकिन मैं कुछ भी नहीं कर सकता अथवा बहुत कम कर सकता हूं, जब तक कि सुझे कांग्रेसकी कार्यसमितिके विचार मालूम न हों। इसलिए मुझे उससे मिलने दिया जाय।” मैंने यह इजाजत कैदीकी हैसियतसे भी मांगी थी और अब आजाद व्यक्तिके नाते भी मांग रहा हूं।” उन्होंने यह भी लिखा कि कोई निर्णय करनेसे पहले यदि वाइसरॉय उनसे मिलना चाहें, तो वे मिलनेके लिए तैयार हैं। [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १७ जून १९४४।]

वाइसरॉयने उत्तरमें लिखा कि आपने हालमें ही ‘भारत छोड़ो’ प्रस्ताव पर डडे रहनेका इरादा बताया है (आशय डॉ. जयकरके नाम लिखे गांधीजीके पत्रके दैनिकोंमें हुए प्रकाशनसे था), और “उसको मैं तात्कालिक भविष्यके लिए उचित या व्यावहारिक नीति नहीं समझता”, इसलिए मैं इस बातसे सहमत नहीं हो सकता कि आप कार्यसमितिके सदस्योंसे मिलें। मैं भी आपसे मिलना नहीं चाहूंगा; क्योंकि “हमारे दृष्टिकोणोंमें जो बुनियादी भेद है उसे देखते हुए ” हम दोनोंके मिलनेका “कोई अर्थ नहीं होगा और उससे केवल ऐसी आशाएं ही पैदा होंगी जो पूरी नहीं होंगी।” [लॉर्ड वेवेलका पत्र गांधीजीको, २२ जून १९४४।]



इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं थी। गांधीजीकी रिहाईके दो दिन पहले ही एमेरी साहबने - वे जब कभी भारतके बारेमें अपना मुंह खोलते थे तब लोगोंका जी दुखाये बिना रह ही नहीं सकते थे - कहा था कि वे जेलसे बाहरके और भीतरके कांग्रेसियोंको आपसमें मिलने-जुलने नहीं देंगे। गांधीजीके छुटकारेने भारतमें ही नहीं, भारतके बाहर भी ऐसी व्यापक आशाएं उत्पन्न कर दी थीं कि इसके बाद दूसरे कांग्रेसी नेताओंकी रिहाई भी होगी और भारतीय राजनीतिक गुत्थी भी सुलझेगी। कहीं ऐसी अवांछनीय भावना अधिक व्यापक न हो जाय, इस खयालसे श्री एमेरीने सावधानी रख कर उसे तुरन्त दबा देना ठीक समझा और स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि गांधीजीकी रिहाई "दूसरे कांग्रेसी नेताओंको रिहा करनेके इरादेसे नहीं की गई है।" जिस दिन गांधीजीने लॉर्ड वेवेलको पत्र लिखा उसके पहले दिन ब्रिटिश लोकसभामें एक प्रश्न पूछा गया था कि गांधीजीको जो स्वतंत्रता मिली है उसे देखते हुए क्या भारत-मंत्री सारे प्रश्न पर फिरसे विचार नहीं करेंगे। उत्तरमें जबरदस्त भारत-मंत्रीने कहा: "अभी नहीं।" इस प्रकार गांधीजीके खटखटानेसे पहले ही द्वार बन्द कर दिया गया और उसे मजबूत ताला लगा दिया गया।

इससे उस समय अंग्रेजोंकी ओरसे निबटारेकी कोई आशा नहीं रही। ब्रिटिश सरकार 'विद्रोही' कांग्रेसके बिना शर्त हार स्वीकार किये बिना या 'भारत छोड़ो' की अपनी मांग वापस लिये बिना उससे बातचीत करनेको तैयार नहीं थी। और यह मांग, जैसा गांधीजी कह चुके थे, उनके लिए प्राणके समान थी। गांधीजी चाहते तो भी यह कदम वे कार्यसमितिसे सलाह लिये बिना नहीं उठा सकते थे। परन्तु वह द्वार मजबूतीसे बन्द रखा गया।

४

लॉर्ड वेवेलने जब गांधीजी नजरबन्दीमें थे उस समय गांधीजीके साथ अपने पत्र-व्यवहारमें और सार्वजनिक भाषणोंमें भी यह वृत्ति अपनायी थी कि "किसी भी नजरबन्दके लिए यह निश्चय करनेमें कि वह 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव वापस ले या नहीं अपनी अन्तरात्माके सिवा और किसीसे सलाह लेनेकी जरूरत नहीं।" [१७ फरवरी १९४४ को केन्द्रीय विधान-सभाके सामने लॉर्ड वेवेलका भाषण] किन्तु गांधीजीने पूछा कि जो प्रस्ताव लम्बी चर्चा और विचार-विमर्शके बाद सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंने साथ मिल कर पास किया हो, वह किसी व्यक्तिके अन्तःकरणका प्रश्न कैसे हो सकता है? उन्होंने वाइसरॉयको



पुनः लिखा “जो प्रस्ताव साथ मिल कर पास किया गया हो, वह प्रतिष्ठाके साथ, प्रामाणिक रूपमें और उचित ढंगसे तो सम्मिलित चर्चा और विचारके बाद ही वापस लिया जा सकता है। व्यक्तिकी अन्तरात्माका प्रश्न इस जरूरी कदमके बाद आ सकता है, पहले नहीं। क्या कैदीको अपनी अन्तरात्माके अनुसार चलनेकी स्वतंत्रता होती है?” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, ९ मार्च १९४४]

सैनिक-वाइसरॉय गांधीजीको अन्तरात्माके नीतिशास्त्रका उपदेश किसी मर्यादा-पुरुषोत्तमकी तरह दे रहे थे। बादमें उन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वैधानिक प्रश्नको भी यह कहकर कि वे तो सिपाही हैं, कानूनको नहीं समझते, बड़ी सफाईसे टाल दिया था। [देखिये अध्याय अंतिम घड़ी', पृ. ३४५] अच्छा होता यदि वे नीतिशास्त्रको भी न छूते।

ब्रिटिश सरकार कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंको जेलमुक्त करना नहीं चाहती थी और वाइसरॉय उन लोगोंसे किसीको जेलखानेमें मिलने नहीं देते थे, इसलिए गांधीजीसे पूछा गया कि क्या ‘भारत छोड़ो’ प्रस्तावके अधीन उस आन्दोलनको चलानेके लिए उन्हें जो सर्वाधिकार दिया गया था उसके अनुसार आन्दोलनके नेताकी हैसियतसे वे “अहमदनगर किलेकी कुंजी खोजनेके लिए” उस आन्दोलनके सदाके लिए स्थगित होनेकी घोषणा नहीं कर सकते? १९२२ में वाइसरॉयको लिखे गये चुनौती-पत्रकी स्याही सूखनेसे पहले ही, और जब जीत बहुतोंको हाथमें आई दिखाई दे रही थी, गांधीजीने सविनय कानून-भंग वापस ले लिया था, क्योंकि उनकी ‘अन्तरात्माके नाद’ का यही तकाजा था। किन्तु गांधीजी ‘भारत छोड़ो’ की मांगको रत्ती भर भी कम करने और उन लाखों लोगोंकी श्रद्धाके विरुद्ध जानको तैयार नहीं थे, जिन्होंने उनकी प्रेरणासे उनके नेतृत्वमें ‘करो या मरो’ की प्रतिज्ञा ली थी। केवल कठिताइयां भीषण होनेसे ही तो ऐसा नहीं किया जा सकता था। श्री श्रीनिवास शास्त्री जैसे नरम नेताने भी ‘भारत छोड़ो’ प्रस्ताव वापस लेनेकी मांग नहीं की और न प्रख्यात धारा-शास्त्री सर तेजबहादुर सप्रूने ऐसी मांग की। एक और प्रतिभाशाली धारा-शास्त्री डॉ. जयकरने तो यहां तक कहा था कि राष्ट्रीय स्वाभिमानकी दृष्टिसे यह प्रस्ताव वापस नहीं लिया जाना चाहिये। बेशक, प्रस्तावके पीछे रहे अधिकार (सेंक्शन) पर उनका मतभेद था। परन्तु इसके सिवा एक वैधानिक कठिनाई भी थी। पहलेके अवसरों पर सविनय कानून-भंगके जो आन्दोलन हुए थे, उनके नेताके रूपमें गांधीजीको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करनेका अधिकार दिया गया था। ‘भारत छोड़ो’ प्रस्तावमें इसकी खास तौर पर गुंजाइश नहीं



रखी गई थी। नेताओंकी गिरफ्तारीके बाद प्रत्येक पुरुष या स्त्रीको अपना नेता बनकर अपनी समझके अनुसार 'करो या मरो' की प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया था। सत्य और अहिंसाकी कठोर मर्यादाएं तो थीं ही। इसलिए प्रश्न यह था कि शुद्ध कानूनी दृष्टिसे अगस्त-प्रस्तावके अनुसार गांधीजीको आन्दोलनका जो नेतृत्व दिया गया था, वह उनके कैद हो जानेसे खतम तो नहीं हो गया था। धाराशास्त्री श्री भूलाभाई देसाईका मत आरंभसे इसके विरुद्ध था, परन्तु गांधीजीके साथ चर्चा करनेके बाद और रात भर सोचने पर उन्होंने अपना यह मत बदल दिया और वे निश्चित रूपमें गांधीजीके मतके हो गये थे। दूसरे उतने ही प्रमुख धाराशास्त्रियोंने इस अर्थका समर्थन किया।

एक तीसरा विकल्प यह था कि मुस्लिम लीगसे समझौता करके ब्रिटिश सरकारके सामने एक संयुक्त राष्ट्रीय मांग पेश की जाय । गांधीजीने कारागारसे भी मुस्लिम लीग और कांग्रेसके बीच समझौतेकी मंत्रणाके लिए जिन्नाको निमंत्रण दिया था। वे फिर कोशिश करनेको तैयार थे। परन्तु यह उनका दृढ़ मत था कि पहलेसे ही किसी अनिश्चित स्वरूपके पाकिस्तानको स्वीकार नहीं किया जायगा और न पाकिस्तानकी किसी ऐसी व्याख्याको माना जायगा, जिससे भारतकी एकता और सुरक्षितताके लिए निश्चित खतरा पैदा हो। इस शर्तके साथ उन्होंने साम्प्रदायिक प्रश्नके निबटारेमें विभिन्न जातियोंकी धार्मिक, सांस्कृतिक या आर्थिक एकताकी रक्षाके लिए सब तरहके उचित प्रस्तावोंकी गुंजाइश रखी थी। परन्तु सवाल यह था कि क्या जिन्ना इस आधार पर चर्चा करनेको तैयार होंगे ? इसकी आशा नहीं थी।

जे. आर. डी. टाटा, पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और घनश्यामदास बिड़ला जैसे प्रमुख भारतीय उद्योगपतियोंकी एक मंडलीको गांधीजीने बताया : "वे (सरकार) हमें नीचा दिखाना चाहते हैं।" उनके एक साथी उद्योगपति सर आरदेशिर दलालको वाइसरॉयकी कार्यकारिणी परिषद्में शरीक होनेका निमंत्रण मिला था। वे इस सम्बन्धमें गांधीजीकी प्रतिक्रिया जानना चाहते थे।

गांधीजीने उत्तर दिया, "आप मुझसे पूछते हैं तो मैं कहूंगा 'नहीं'। थोड़ीसी भलाई वे जरूर कर सकेंगे, पर वह भलाई बड़ी भलाईको हानि पहुँचा कर ही होगी।"

उद्योगपतियोंने तर्क किया, "यदि वे नहीं जायेंगे तो यह खतरा है कि आर्थिक मामलोंमें सरकार बिलकुल मनमानी करके भारतके हितोंको नुकसान पहुँचा सकेगी।"



“प्रत्येक भला आदमी, जो सरकारके साथ सहयोग करता है, उसकी प्रतिष्ठाको बढ़ाता है और इस तरह हमारे दुःखोंकी अवधिको लम्बी करता है,” गांधीजीने दृढ़तासे कहा। “लॉर्ड वेवेल अच्छे आदमी होंगे - शायद हैं भी - परन्तु जिस प्रणालीके वे प्रतिनिधि हैं वह बुरी है।”

गांधीजीकी बात स्पष्ट थी। सरकारके साथ उसकी शर्तों पर किसी बातमें, अन्नके प्रश्नमें भी, कोई सहयोग नहीं हो सकता था। “वह सहयोग हमारी शर्तों पर ही होगा। इसका मतलब यह है कि सत्ता जनताके चुने हुए प्रतिनिधियोंको सचमुच हस्तान्तरित की जाय। नहीं तो यह कहा जायगा कि तुच्छ वस्तुके लिए हमने अपनेको बेच दिया। इसलिए यदि मैं अकेला रह जाऊं तो भी कहूंगा ‘नहीं’।”

उन्होंने उद्योगपति मित्रोंसे कहा, आपको सम्प्रति आसार अच्छे नहीं दिखाई देते इसलिए निराश नहीं होना चाहिये। परन्तु मेरी इस श्रद्धामें शरीक होना चाहिये कि भारतका कल्याण ही होगा, क्योंकि न्याय और सत्य भारतके पक्षमें हैं और उसके साधन शुद्ध हैं। “मैं आपसे आशा रखता हूं कि आप मेरा उत्साह और साहस बढ़ायेंगे - पीछे हटनेकी सलाह देकर स्थितिको सुधारनेकी उम्मीद तो आपको मुझसे नहीं रखनी चाहिये।”

५

अवरोध सम्पूर्ण था। चारों ओर मजबूत पत्थरकी दीवार खड़ी थी, जिसमें से निकलनेका कोई रास्ता नहीं था। सेनापति था, परन्तु उसकी सेना नहीं थी; उसके साथी, जो उसके हाथ-पैर थे, जेलमें थे; उसका अपना स्वास्थ्य बहुत खराब था और विरोधी सदाकी भांति उसके प्रति किसी भी तरहकी नरमी न दिखानेके लिए कृत-संकल्प थे। गांधीजीने अनेक बार कहा था कि सत्याग्रहमें असफलता कभी नहीं होती।

उन्होंने यह स्पष्ट करनेमें देर नहीं लगाई कि ‘भारत छोड़ो’ प्रस्तावके अनुसार मुझे जो अधिकार दिया गया था वह खतम हो गया है, परन्तु इस बातका कांग्रेसकी सामान्य प्रवृत्तियोंसे कोई वास्ता नहीं। “जो चीज कांग्रेसके नामसे कोई नहीं कर सकता, वह है सामूहिक सविनय आज्ञाभंग। वह कभी आरंभ ही नहीं किया गया और, जैसा मैं कह चुका हूं, मैं अपनी निजी हैसियतमें भी आज उसे आरंभ नहीं कर सकता। परन्तु अगर सरकार कांग्रेसकी साधारण प्रवृत्तियोंमें भी दखल देती है, तो बुराईका विरोध



करनेका व्यक्तिका जन्मसिद्ध अधिकार कभी भी स्थगित नहीं होता।” [गांधीजीकी अखबारी मुलाकात, १३ जुलाई १९४४]

जो लोग जेलसे छोड़े जा रहे थे, उनमें से बहुतों पर प्रतिबन्ध-मूलक आज्ञाएं जारी की जा रही थीं; जैसे, उन्हें आज्ञा दी गई थी कि वे अमुक प्रदेशके बाहर न जायं या अमुक समयके बाद पुलिस थानों पर हाजिरी दें। वे लोग क्या करें? गांधीजीने उनसे कहा, मैं इन सब प्रतिबन्धोंको अपमानजनक मानता हूं और मैं स्वयं उनके सामने नहीं झुकूंगा। परन्तु मैं जानता हूं कि कुछ लोगोंने जेलके कष्ट अधिक समय तक न सह सकनेके कारण इस सीमित स्वतंत्रताको पसन्द कर लिया है। “मैं उनके आचरण पर कोई निर्णय नहीं दूंगा। प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी शक्तिके अनुसार कष्ट सहन करता है। परन्तु सरकारके लिए अवश्य यह एक गंभीर और विचारणीय प्रश्न है कि क्या ऐसे युवा पुरुषों और स्त्रियोंकी आत्माको चोट पहुंचाना भी युद्ध-प्रयत्नका जरूरी अंग है, जिनका एकमात्र अपराध यह है कि वे अन्य किसी चीजसे अधिक अपने देशकी स्वाधीनतासे प्रेम करते हैं।”

और फिर अपने प्रभावशाली उद्गारों द्वारा उन्होंने शंका, निराशा या उदासीके वे सब जाले नष्ट कर दिये, जो कार्यकर्ताओंके मनमें जमा हो गये थे। ऐसे ही उद्गारोंसे उन्होंने भूतकालमें अनेक बार ‘हार’ और ‘विपत्ति’ जैसे शब्दोंको निरर्थक कर दिया था और घटनाओंकी धारा ही बदल दी थी। महाराष्ट्रके कार्यकर्ताओंकी एक सभामें भाषण देते हुए - रिहाईके बाद यह उनका पहला सार्वजनिक भाषण था - उन्होंने अपनी श्रद्धाकी घोषणा इस प्रकार की :

मैं किसी असत्यपूर्ण या हिंसात्मक वस्तुका समर्थन नहीं कर सकता। लेकिन मैं दूसरोंके कार्योंका काजी नहीं बनना चाहता। इस समय कांग्रेसियों और दूसरे लोगोंके व्यक्तिगत या सामूहिक कार्योंको अहिंसा और सत्यकी तराजूमें तौलनेसे भी कोई लाभ नहीं होगा। इतना कहना काफी है कि अनुभवने मेरे इस विश्वासको अटल बना दिया है कि हम सत्य और अहिंसा पर जितने दृढ़ रहे हैं उतनी ही हमें सफलता मिली है। . . . पिछले पच्चीस वर्षोंमें जनसाधारणकी असामान्य जाग्रतिका एकमात्र कारण हमारे साधनोंकी शुद्धता रही है। और जिस हाद तक उसमें



झूठ और हिंसा घुसी है, उसी हद तक उन्होंने हमारी प्रगतिको रोका है। [२९ जून १९४४ को महाराष्ट्रके कांग्रेसियोंके सामने गांधीजीका भाषण]

भूतकालमें गांधीजीने ऐसी चीजोंकी निन्दा इतनी तीव्रताके साथ की थी कि कभी कभी लोगोंको आश्चर्य होता था। परन्तु उन्होंने बादमें समझाया कि नजरबन्दीके दो वर्षोंमें वे अधिक समझदार हो गये हैं। सरकारकी तरफसे लोगोंकी हिंसाको तिलका ताड़ बनाकर दिखाया जाता था और अधिकारियोंकी भीषण हिंसाकी सामान्यतः यह कह कर रक्षा की जाती थी कि वह अवसरके लिए जितनी जरूरी थी उससे अधिक नहीं थी। लोगोंने जो कुछ किया उसके लिए कमसे कम कोई कारण तो था; किन्तु सरकारके पास ऐसा कोई कारण ही नहीं था! इसलिए उन्होंने कहा कि मैं जनताके कार्योंको सत्य और अहिंसाके मापदंडसे नहीं नाप सकता, यदि वही मापदंड सरकारी कार्योंमें मैं लागू न कर सकूं। [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, २. जुलाई १९४४]

मेरे प्रति आपकी श्रद्धासे मैं गद्गद हो गया हूं। . . . मुझे शंका है कि मैं इस सारे विश्वासका पात्र हूं या नहीं। परन्तु मैं इतना जानता हूं कि मुझमें जो भी शक्ति है वह सिर्फ इस कारणसे है कि मैं सत्य और अहिंसाका पुजारी हूं। कुछ मित्रोंने मुझे कहा है कि राजनीति और सांसारिक मामलोंमें सत्य और अहिंसाका कोई स्थान नहीं है। मैं उनसे सहमत नहीं हूं। व्यक्तिके मोक्षके साधनोंके रूपमें मेरे लिए उनका कोई उपयोग नहीं है। मेरा प्रयोग तो हमेशासे उन्हें मनुष्यके दैनिक जीवनके व्यवहारोंमें स्थान देने और उन पर अमल करानेका रहा है। [महाराष्ट्रके कांग्रेसियोंके सामने गांधीजीका भाषण, २९ जून १९४४]

उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि मेरे अकस्मात् जेलसे छूट जानेसे मुझे वह अधिकार फिरसे नहीं मिल जाता, जो अगस्त १९४२ के प्रस्ताव द्वारा मुझे दिया गया था और जो मेरे अर्थके अनुसार मेरे जेल जानेके साथ ही खतम हो गया था। इसलिए मैं आप लोगोंसे जो कुछ कहूं उसे आप एक व्यक्तिकी राय समझ कर चाहें तो स्वीकार करें, वरना अस्वीकार कर दें। “यदि मैं प्रतिनिधिकी हैसियतसे बोलता तो बात दूसरी होती। तब मैं यह आशा रखता कि अनुशासनबद्ध सिपाहियोंकी तरह आप मेरे आदेशोंका पालन करें।”



गांधीजीने आगे कहा, मैं तो कांग्रेसका चवन्नी देनेवाला सदस्य भी नहीं हूं। परन्तु जैसा मैंने पहले बहुत बार कहा है, जो कोई कांग्रेसकी नीतिका अनुसरण करता है वह कांग्रेसी है, भले ही उसका नाम कांग्रेसके रजिस्टरमें दर्ज हो या न हो। “कांग्रेस कमजोर संस्था होती यदि उसकी शक्तिका आधार ऐसे कुछ लाख सदस्यों पर ही होता, जिनके नाम कांग्रेसकी सदस्य-सूचीमें दिखाई देते। कांग्रेसकी महान शक्ति तो इस बात पर आधार रखती है कि उसे नाजुक मौकों पर करोड़ों मूक लोगोंका सद्भाव और सहयोग प्राप्त होता है।”

ऐसी स्थितिमें मेरा और आपका क्या कर्तव्य है?

हममें से हरएकको इस समय क्या करना चाहिये, यह अत्यन्त महत्त्वकी बात है। मेरा यह खयाल होता कि अभी सविनय प्रतिरोध करनेके लिए उपयुक्त मौका है, तो भी मैं कांग्रेसके नाम पर ऐसा नहीं कर सकता था। किन्तु अगस्त-प्रस्तावकी अंतिम सुनहरी पंक्तियां याद रखिये। ९ अगस्त, १९४२ को मुख्य कांग्रेसियोंके गिरफ्तार होने पर प्रत्येक कांग्रेसी अपना नेता आप हो गया; उसे जैसा वह चाहे वैसा करनेका अधिकार मिल गया। शर्त एक ही थी कि उसका कार्य सत्य और अहिंसाकी मर्यादाओंके भीतर हो। . . . इसलिए मेरी समझमें नहीं आता कि निराशाके लिए क्या कारण हो सकता है। क्या इसीलिए कि हमने जितने समयमें अपना ध्येय सिद्ध करनेकी आशा रखी थी उसके भीतर हम अपने ध्येय तक नहीं पहुंच सके? . . . भारीसे भारी कठिनाइयोंका सामना करते हुए भी प्रयत्न करना मानवका काम है। सफलता ईश्वरके हाथकी बात है या यों कह लीजिये कि हमारे अधिकारसे बाहरकी अनेक परिस्थितियों पर निर्भर है। निराशाका कारण तो तब पैदा होगा जब हम अपनेमें, अपने साधनोंमें या अपने ध्येयमें श्रद्धा खो बैठें। सत्याग्रहके शब्दकोशमें निराशा जैसा शब्द ही नहीं है। मेरे पास उन लोगोंके लिए कोई उत्तर नहीं, जिनमें कभी अपने शस्त्रके बारेमें श्रद्धा थी ही नहीं या जो अपने शस्त्रकी क्षमतामें विश्वास खो चुके हैं।

हमें स्वीकार करना होगा कि बुराईकी ताकतें हमें चारों ओरसे घेरे हुए हैं। वे जितनी मजबूत आज दिखाई देती हैं उतनी पहले कभी नहीं थीं। परन्तु हताशा या निराशाके लिए यह



कोई कारण नहीं। हमारे पास बुराईके साथ अहिंसक असहयोग करनेकी सुनहरी कार्य-पद्धति मौजूद है। यदि हमें सफलता मिली दिखाई नहीं देती, तो इसका कारण हमारे ही भीतर है। **यदि राष्ट्रके कुछ अंग असहयोगकी गुणवत्तामें विश्वास नहीं रखते, तो जो उसमें विश्वास रखते हैं उनकी जिम्मेदारी और भी ज्यादा बढ़ जाती है।** हमें दीर्घ प्रयत्न करना पड़ सकता है, हमें भारी भार उठाना पड़ सकता है। परन्तु मैं अनुभवसे यह कह सकता हूं कि वह हमारी शक्तिसे बाहर कभी नहीं होता। जिस पुरुष या स्त्रीने ध्येयके लिए सब-कुछ दाव पर लगा दिया हो, उसके लिए कौनसा बोझ अत्यन्त भारी हो सकता है? . . . मुझे किसी भी समय निराशाकी भावनाने नहीं सताया है। **निराशाका मूल हमारी अपनी ही कमसजोरियों और अश्रद्धामें होता है। जब तक हम अपनेमें श्रद्धा नहीं खो देते, तब तक हिन्दुस्तानका कल्याण ही होगा।**

फिर देशमें फैली हुई भुखमरी और मुसीबतोंका वर्णन करते हुए उन्होंने इस भारतव्यापी भुखमरीका मूल कारण क्या है? “युद्धकी परिस्थितिका बहाना बनाकर भूखों मरते करोड़ों लोगोंको और भूखों मारा जा रहा है। बंगाल, कर्नाटक और दूसरे हिस्सोंमें से जो आंकड़े आ रहे हैं, वे तो चौंका देनेवाले हैं ही; परन्तु संकट इससे कहीं अधिक गहरा है। उसका निवारण जनताकी प्रतिनिधि राष्ट्रीय सरकारके सिवा दूसरा कोई नहीं कर सकता। मेरी राय है कि यहां युद्ध होता तो हम उसका आजसे भी अधिक सफलतासे सामना कर सके होते। . . . भारतमें ७ लाख गांव बताये जाते हैं। उनमें से कुछका तो सफाया हो चुका है। उनका किसीके पास कोई लेखा नहीं है। बंगाल, कर्नाटक और दूसरी जगहोंमें भूख और रोगसे हजारों लोग मर गये हैं। . . . मैं गांवोंका अर्थशास्त्र जानता हूं। मैं आपको बताता हूं कि ऊपरका दबाव नीचेवालोंको कुचल देता है। जरूरत इतनी ही है कि हम उनकी गर्दन परसे उतर जायें।”

यह कैसे किया जाय ? उत्तर फिर वही था 'असहयोग'। अन्तमें उन्होंने कहा, “अहिंसा एक शक्तिशाली शस्त्र है। अमलमें वह सविनय आज्ञाभंग और असहयोगका रूप ग्रहण करता है। सविनय आज्ञाभंग बहुत ही सबल शस्त्र है, परन्तु उसे हर कोई नहीं चला सकता। इसके लिए तालीम और आंतरिक बल चाहिये। उसका उपयोग करनेके लिए अवसर भी चाहिये। लेकिन अहिंसात्मक असहयोग तो प्रत्येक मानव कर सकता है। . . . जो असहयोगका रहस्य समझते हैं उन्हें अपनी सारी कठिनाइयोंके



लिए तुरन्त जवाब मिल जाता है। जब 'नहीं' कहना धर्म हो जाय तो हमें दृढ़ता से 'नहीं' कहना सीखना चाहिये। असहयोगीका काम धन या नामके पीछे पड़ना नहीं है।"

६

लॉर्ड वेवेलने गांधीजीको जेलमें कार्यसमितिके सदस्योंसे मिलनेकी अनुमति देनेसे इनकार करते हुए जो पत्र लिखा था, उसका अंतिम भाग यह था: "आपका स्वास्थ्य सुधर जानके बाद और अधिक विचार करने पर आप भारतके कल्याणके लिए कोई निश्चित और रचनात्मक नीति प्रस्तुत करेंगे, तो मैं उस पर खुशीसे विचार करूंगा।"

परन्तु गांधीजीके स्वास्थ्य-सुधारमें यह विघ्न बीचमें आया। डॉक्टरोंको भरोसा नहीं था कि ज्यादा ताकत आनेसे पहले वे हुकवर्म नामके आंतके कीड़े दूर करनेका पूरा उपचार सहन कर सकेंगे। इसलिए जुहूमें एक महीने रहनेके बाद वे गांधीजीको पूनाके पास एक पहाड़ी स्थानमें - पंचगनी ले गये।

इस मौके पर एक ब्रिटिश पत्रकार सामने आये। वे थे 'न्यूज़ क्रॉनिकल' लन्दनके श्री स्टुअर्ट गेल्डर। 'न्यूज़ क्रॉनिकल' के अध्यक्ष, लॉर्ड लेटन भारतकी राजनीतिक गुत्थीको सुलझानेमें मदद देनेके लिए उत्सुक थे। 'न्यूज़ क्रॉनिकल' के वैदेशिक संपादकके आदेश पर श्री गेल्डरनें, जो उस समय बर्माके मोर्चे पर तैनात थे, गांधीजीसे मुलाकात मांगी। गांधीजीने इस शर्त पर उनसे मिलना स्वीकार किया कि वे जो कुछ उनसे कहेंगे वह सुख्यतः वाइसरॉयके ध्यानमें लानेके लिए होगा, न कि तुरन्त पत्रमें प्रकाशित करनेके लिए।

मुलाकात शुरू करते हुए श्री गेल्डरने पूछा, "लॉर्ड वेवेलसे आप मिलें तो अपनी बातचीत कैसे आरंभ करेंगे?"

गांधीजीने उत्तर दिया, "मैं वाइसरॉयसे कहूंगा कि मैंने मित्रराष्ट्रोंके काममें सहायता देनेके लिए कार्यसमितिसे मिलना चाहा था, न कि उसमें बाधा पहुंचानेके लिए। मुझे लगता है कि कांग्रेसके नामसे काम करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। सत्याग्रहके नियमोंके अनुसार जब सविनय आज्ञाभंग करनेवाला व्यक्ति जेलमें चला जाता है, तो उसे दिया हुआ अधिकार अपने-आप समाप्त हो जाता है।



उसके जेलमुक्त हो जानेसे वह अधिकार उसे फिरसे नहीं मिल जाता। इसीलिए मेरा कार्यसमितिके सदस्योंसे मिलना जरूरी है।”

श्री गेल्डर: “भारतकी जनता पर आपका जो प्रभाव है उसके कारण वाइसरॉय और दूसरे सभी लोग आपके विचार जाननेको उत्सुक हैं।”

गांधीजी : “मैं लोकतंत्रवादी हूं। जनता पर मेरा जो प्रभाव है उसका मैं दुरुपयोग नहीं कर सकता। जिस संगठनको बनानेमें मेरा हाथ रहा है, उसके द्वारा ही उस प्रभावका उपयोग मैं कर सकता हूं।”

परन्तु श्री गेल्डरको अन्देशा था कि कहीं वाइसरॉय यह न समझें कि गांधीजी अब भी ‘भारत छोड़ो’ प्रस्ताव और सविनय आज्ञाभंग पर अटल हैं, इसलिए कार्यसमितिके सदस्योंसे उनके मिलनेका यही परिणाम हो सकता है कि वे गांधीजीको कांग्रेसके नामसे सविनय आज्ञाभंग आन्दोलन चलानेका फिरसे अधिकार दे दें। “परिणाम यह होगा कि जब आप कार्यसमितिके मुलाकात करके निकलेंगे, तो आप वाइसरॉयके सिर पर पिस्तोल तान कर कहेंगे, ‘ऐसा करो, नहीं तो मैं सविनय आज्ञाभंग आरंभ करता हूं।’ इससे तो स्थिति पहलेसे भी बुरी हो जायगी।”

गांधीजीने उत्तर दिया, “इस ढंगसे विचार करनेकी तहमें मेरे इस दावेके विषयमें पूरा अविश्वास मालूम होता है कि मैं सदा अंग्रेजोंका मित्र रहा हूँ और आज भी हूँ। इसलिए जब तक कोई बहुत गम्भीर कारण न हो, जैसे भारतके स्वतंत्रताके स्वाभाविक अधिकारके रास्तेमें रुकावट डालना, तब तक मैं युद्धकालमें सविनय आज्ञाभंगके शस्त्रका कभी भी उपयोग नहीं कर सकता।”

“मान लीजिये कि कल कार्यसमितिको जेलसे रिहा कर दिया जाय और भारतकी मांग पूरी करनेसे सरकार इनकार कर दे, तो क्या आप सविनय आज्ञाभंगकी लड़ाई छेड़ देंगे?”

“आज तो सविनय आज्ञाभंग करनेका मेरा कोई इरादा नहीं है। मैं देशको पीछे १९४२ के जमानेमें नहीं ले जा सकता। इतिहासका पुनरावर्तन नहीं हो सकता। पिछले दो वर्षोंमें दुनिया आगे बढ़ी है। सारी परिस्थिति पर नये सिरेसे विचार करना होगा। इसलिए कार्यसमितिके मुझे जो चर्चा करनी है उसमें मेरा



आशय उससे यह जानना है कि अपनी रिहाईके बाद मुझे देशकी स्थितिका जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उस पर उसकी क्या प्रतिक्रिया है।”

गांधीजीने अपना कथन जारी रखते हुए कहा, कांग्रेसके दिये हुए अधिकारके बिना भी मैं चाहूँ तो आम लोगों पर मेरा जो प्रभाव माना जाता है, उसके बल पर मैं किसी भी दिन सविनय आज्ञाभंग आरंभ कर सकता हूँ। परन्तु यदि मैं ऐसा करूँ तो उसका नतीजा ब्रिटिश सरकारको परेशान करना ही होगा। यह कभी मेरा ध्येय नहीं हो सकता। “परन्तु लोग कष्ट भोग रहे हों तब कार्यसमिति हाथ पर हाथ धर कर बैठी नहीं रह सकती। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक सत्ता और जिम्मेदारी अंग्रेजोंके हाथसे निकल कर भारतीयोंके हाथमें नहीं आ जाती, तब तक अन्नकी स्थिति नहीं सुधर सकती और लोगोंका कष्ट कम नहीं हो सकता। सत्ता और जिम्मेदारीके इस परिवर्तनके बिना कांग्रेसी और दूसरे लोग जनताके कष्ट-निवारणकी कोशिश करेंगे, तो सरकारके साथ उनका संघर्ष होनेकी बहुत संभावना है।”

श्री गेल्लर बोले, “आजकी परिस्थितियोंमें मैं नहीं मान सकता कि ब्रिटिश सरकार इस समय सत्ता छोड़ेगी। जब तक युद्ध जारी है सरकार स्वाधीनताकी मांगको कभी नहीं मानेगी।”

गांधीजीने समझाया कि **युद्धकालमें असैनिक (मुल्की) शासन पर पूरा नियंत्रण रखनेवाली राष्ट्रीय सरकारसे मुझे सन्तोष हो जायगा।** १९४२ में यह बात नहीं थी, क्योंकि उस समय सर्वोपरि विचार यह था कि जापानी आक्रमण होने ही वाला है और उसके सामने अंग्रेज पीछे हट जानेका इरादा रखते हैं। “ऐसी सरकार **केन्द्रीय विधानसभाके चुने हुए सदस्यों द्वारा पसन्द किये हुए आदमियोंसे बनेगी।** इसका अर्थ होगा उपरोक्त शर्तके साथ युद्ध कालमें भारतकी स्वाधीनताकी घोषणा।”

श्री गेल्लरको लगा कि यह मांग सन् १९४२ की मांगसे भिन्न है और बताती है कि गांधीजी अपनी इस स्थितिसे (समझौतेकी दिशामें) काफी आगे बढ़े हैं। उन्होंने पूछा: क्या रेलमार्गों और बन्दरगाहों आदिका नियंत्रण सेनाके हाथमें रहेगा? गांधीजीने उत्तर दिया कि राष्ट्रीय सरकार सेनाको उसकी सारी आवश्यक सुविधाएं देगी। “लेकिन नियंत्रण राष्ट्रीय सरकारके ही हाथमें रहेगा। अभी जो आर्डिनेन्सका शासन चल रहा है उसकी जगह राष्ट्रीय सरकारका सामान्य शासन ले लेगा।”

“क्या उसमें वाइसरॉयका स्थान होगा?”



“हां, परन्तु वे इंग्लैंडके राजाकी तरह जिम्मेदार मंत्रियोंकी सलाहके अनुसार चलेंगे। प्रान्तोंमें लोकप्रिय सरकारें अपने आप फिरसे स्थापित हो जायंगी और इस प्रकार प्रान्तीय सरकारें और केन्द्रीय सरकार दोनों भारतकी जनताके प्रति जिम्मेदार हो जायंगी।” जहां तक सैनिक कार्रवाइयोंका सम्बन्ध है, वाइसरॉय और प्रधान सेनापतिका उन पर पूरा नियंत्रण रहेगा। परन्तु सैनिक मामलोंमें भी राष्ट्रीय सरकारको सलाह देने और आलोचना करनेका अधिकार होना चाहिये। “इस प्रकार प्रतिरक्षा-विभाग राष्ट्रीय सरकारके हाथोंमें रहेगा, क्योंकि देशकी रक्षामें उसकी हार्दिक दिलचस्पी होगी और वह नीति-निर्माणके कार्यमें बड़ी सहायता दे सकेगी।” मित्रराष्ट्रोंकी सेनाओंको भारतकी भूमि पर अपनी कार्रवाइयां जारी रखनेकी इजाजत होगी। “मैं अनुभव करता हूं कि इसके बिना वे जापानको नहीं हरा सकतीं। परन्तु इन सेनाओंकी भारत-भूमि पर होनेवाली कार्रवाइयोंका खर्च भारत पर नहीं रखा जाना चाहिये।”

“यदि राष्ट्रीय सरकार बने तो आप कांग्रेसको उसमें शामिल होनेकी सलाह देंगे?”

“हां।”

“मतलब यह हुआ कि राष्ट्रीय सरकार बनी, तो कांग्रेस उसमें शरीक होगी और युद्ध-प्रयत्नोंमें मदद देगी। तब आपकी स्थिति क्या होगी?”

“मैं तो पूरा शान्तिप्रेमी हूं,” गांधीजीने उत्तर दिया। “स्वाधीनताका आश्वासन मिल जानेके बाद संभवतः मैं कांग्रेसके सलाहकारका काम बन्द कर दूंगा। पूर्णतया युद्ध-विरोधी होनेके नाते मुझे कांग्रेससे अलग रहना पड़ेगा, परन्तु मैं राष्ट्रीय सरकार या कांग्रेसका विरोध नहीं करूंगा। मेरा सहयोग यही होगा कि भारतकी शान्त स्थिर जीवन-धारामें किसी तरहका हस्तक्षेप न करूं। भारतको शान्तिप्रिय बनाये रखनेमें और ऐसा करके जाति या वर्णके किसी भेदके बिना सारी मानव-जातिमें भ्रातृभाव और सच्ची शान्तिकी स्थापनाकी दृष्टिसे संसारकी राजनीति पर असर डालनेकी दिशामें मैं अपने प्रभावका उपयोग करनेका प्रयत्न सदा चालू रखूंगा।”

फिर श्री गेल्डरने पूछा, “मान लीजिये कि सैनिक और असैनिक अधिकारियोंसे संघर्ष हुआ, तो झगड़ा कैसे निबटाया जायगा?” उदाहरणार्थ, यदि असैनिक अधिकारियोंने दो हजार टन अन्न ले जानेके



लिए किसी रेलवेका उपयोग करना चाहा और सैनिक अधिकारियोंने शस्त्रास्त्र ले जानेके लिए उसका उपयोग करना चाहा, तो आपकी सलाह क्या होगी ?

गांधीजीने उत्तर दिया, मैं सेनाको प्राथमिकता देनेकी आवश्यकताकी कल्पना कर सकता हूं। “परन्तु मान लीजिये कि सेनावाले लोगोंके प्राणोंकी परवाह न करके कुछ स्थानोंको बारूदसे उड़ा देना चाहते हों अथवा युद्धके दावपेंचोंका अभ्यास करना चाहते हों, तो मैं कहूंगा : 'यह नहीं हो सकता'।” जरूरत परस्पर विश्वासकी है। परस्पर विश्वास रखनेसे ऐसी कठिताइयां पैदा नहीं होंगी। और हुई तो वे आसानीसे दूर कर दी जायंगी। “विश्वास न हो तो काम नहीं हो सकता। विश्वासके बिना मैं मित्रराष्ट्रोंकी विजयके लिए कार्य नहीं कर सकता।”

अन्तमें गांधीजीने कहा कि यदि अंग्रेजोंकी नीयत अच्छी होगी, तो कोई दिक्कत नहीं रहेगी। “परन्तु हममें से ज्यादातर लोग यह मानते हैं कि वाइसरॉय व्यक्तिगत रूपमें कुछ भी चाहते हों, राजनीतिक क्षेत्रमें उनकी कोई सत्ता नहीं है। श्री चर्चिल समझौता नहीं चाहते। वे तो मुझे कुचल देना चाहते हैं। उन्होंने इस रिपोर्टका कभी खण्डन नहीं किया। इसमें मेरे लिए खुशीकी और उनके लिए अफसोसकी बात यही है कि सत्याग्रहीको कोई कुचल नहीं सकता। कारण, वह अपने शरीरका सहर्ष बलिदान देता है और इस प्रकार अपनी आत्माको मुक्त करता है।”

*

गांधीजीने अच्छी तरह समझ लिया था कि भारत और ब्रिटेनके सम्बन्धोंको बिगाड़नेवाली सबसे बड़ी वस्तु अविश्वास है - कांग्रेसका अविश्वास, भारतीय स्वाधीनताका अविश्वास, और सबसे ज्यादा तो उनका अपना, उनकी अहिंसाका और ‘भारत छोड़ो’ की मांगका घोर अविश्वास। इसलिए उन्होंने इस अविश्वासको मिटानेके लिए न्याय और सद्भावके तमाम साधनोंका उपयोग करना आरंभ कर दिया। अखबारोंके प्रतिनिधियोंको कई मुलाकातें देकर गांधीजीने अपनी संपूर्ण स्थिति स्पष्ट कर दी, ताकि सारी दुनिया उसकी जांच कर सके और स्वयं निर्णय कर सके। ऐसा करना सत्याग्रहीका धर्म है। उन्होंने कहा कि मेरे अपने विचारोंके लिए मेरे पास यदि कोई सत्ता हो, तो वह इतनी ही है कि मैं एक सत्याग्रही हूं - जो भारतको प्रेम करता है और जिसने स्वतंत्रताके लिए ‘करो या मरो’ की प्रतिज्ञा ली है, और राष्ट्रकी



जनतासे लिवाई है। भारतकी यह स्वतंत्रता **लोकतंत्रकी विश्वव्यापी लड़ाईका ही एक अंग है, जिसकी रक्षाके लिए यह युद्ध लड़नेका दावा किया जाता है।** अतः 'भारत छोड़ो' का सूत्र मित्रराष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नमें बाधक हो ही नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें मैं समझ नहीं पाता कि भारतके राजनीतिक प्रश्नके हलकी पूर्वशर्तके रूपमें 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव वापस खींचनेका आग्रह किसलिए किया जाता है।

लन्दनके 'न्यूज़ क्रॉनिकल' पत्र द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तरमें गांधीजीने समुद्री तार दिया, "अगस्तका प्रस्ताव एक उदात्त घोषणा है, जिस पर मुझे गर्व है। सुझे आशा है कि कांग्रेस उसको कभी वापिस नहीं लेगी। उस प्रस्तावमें मुझे आन्दोलन चलानेका अधिकार दिया गया था, जिसे एक अपराध माना गया। परंतु मैंने कहा है कि उस अधिकारका मैंने कभी उपयोग नहीं किया। [कांग्रेस महासमितिके अगस्त (१९४२) के प्रस्तावने इतनी ही स्वीकृति दी थी कि जरूरी मालूम हो तो गांधीजीके नेतृत्वमें सामूहिक अहिंसक संग्राम आरम्भ कर दिया जाय। कांग्रेस महासमितिके सामने दिये गये अपने भाषणमें गांधीजीने यह घोषणा की थी कि, मैं जल्दी ही समझौतेकी बातचीत करनेके लिए वाइसरॉयका द्वार खटखटाऊंगा और तब तक सविनय अवज्ञाका कोई प्रश्न नहीं हो सकता। यह ८ अगस्त १९४२ की रातकी बात है। ९ अगस्तको सवेरे ही गांधीजी और सारी कांग्रेसको एकाएक छापा मार कर कैद कर लिया गया। गांधीजीका कहना था कि जो सविनय अवज्ञा करनेकी बात सोची गई थी, वह तो कभी शुरू ही नहीं हुई। तर्कके इस भागके लिए देखिये 'गांधीजीज़ कॉरिस्पोंडेन्स विद दि गवर्नमेंट, १९४२-४४', अहमदाबाद, १९४५, पृ. १८२-८६] और मेरे जेलसे मुक्त होनेके बाद वह अधिकार मुझे फिरसे दिया जाय, तो भी मैं उसका उपयोग आजकी स्थितिमें नहीं कर सकता।" [गांधीजीका समुद्री तार 'न्यूज़ क्रॉनिकल' को, २३ जुलाई १९४४]

एक और अखबारी वक्तव्यमें उन्होंने समझाया, "यदि मेरा प्रस्ताव पूरी तरह सफल हो जाय, तो आज जो पशुबलका युद्ध है वह संसारके शोषित लोगोंकी मुक्तिके युद्धमें बदल जायगा। तब मुख्यतः नैतिक बलके साथ मिले हुए कमसे कम पशुबलका यह युद्ध उस निरे पशुबलके विरुद्ध हो जायगा, जिसका चीन और यूरोपके निर्बल राज्योंके शोषणके लिए उपयोग किया जा रहा है।" [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, २० जुलाई १९४४]



लन्दनके 'डेली वर्कर' पत्रके प्रतिनिधिको गांधीजीने समझाया: भारतीय स्वाधीनताकी मांगको स्पष्टतः स्वीकार कर लेनेसे (और युद्ध चालू है तब तकके लिए तो उसका रूप सीमित कर ही दिया गया है) मित्रराष्ट्रोंके ध्येयका स्वरूप तुरन्त बदल जायगा। "धुरी राष्ट्रोंके युद्धको यदि ध्येय कहा जा सकता हो, तो मित्रराष्ट्रोंका ध्येय तुरन्त उससे भिन्न माना जायगा।" [गांधीजीकी अखबारी मुलाकात, २८ जुलाई १९४४]

पत्र-प्रतिनिधिने गांधीजीसे पूछा, "आपके प्रस्तावमें भारतकी स्वाधीनताके लिए जो स्वरूप सोचा गया है, उसे मान लेनेसे मित्रराष्ट्र नैतिक लाभके अलावा अन्य किस भौतिक लाभकी आशा रख सकते हैं? " गांधीजीने उत्तर दिया, यदि मेरे प्रस्तावको स्वीकार कर लेनेसे मित्रराष्ट्रोंके ध्येयका स्वरूप इतने बुनियादी रूपमें बदल जाता है, तो बाकी बातें अपने-आप हो जायंगी। "परन्तु ऐसा हो या न हो, मैं तो चाहता हूं कि मेरा प्रस्ताव विशुद्ध नैतिक आधार पर ही स्वीकार किया जाय। मित्रराष्ट्रोंके लिए यह आश्वासन काफी होना चाहिये कि भारतको स्वाधीन राष्ट्र मान लेनेसे उनकी सैनिक कार्रवाइयों पर कोई बुरा असर नहीं पड़ेगा। . . . मेरी रायमें भारतकी स्वाधीनताकी घोषणाके साथ साथ यदि सच्चे दिलसे उस पर अमल भी किया जाय, तो उसके असरसे धुरी राष्ट्रोंकी ताकत अपने आप टूट जायगी। और इस घोषणाके बाद लगभग तुरन्त ही वे हथियार न डाल दें, तो मुझे आश्चर्य होगा।"

ब्रिटिश सरकारने 'भारत छोड़ो' प्रस्तावके अनुसार सोचे गये सविनय आज्ञाभंगको मित्रराष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नको विफल बनानेके इरादेसे की जानेवाली हिंसाको छिपानेका बहाना मान कर उसकी निन्दा की थी। अब कुछ अनुदारदलीय अखबारोंने सविनय आज्ञाभंगको फिरसे आरंभ न करनेके सम्बन्धमें गांधीजीकी घोषणाकी टीका यह कह कर की कि वह "सच्चे हृदयसे नहीं की गई है," क्योंकि गांधीजी "पक्के युद्ध-विरोधी हैं।" उनकी दलील यह थी कि मित्रराष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नके साथ उनकी हमदर्दीका दावा सच्चे हृदयका नहीं हो सकता, क्योंकि युद्ध-प्रयत्नमें सहायक होना अहिंसाकी उनकी बुनियादी धर्म-नीतिके साथ असंगत है।

यह तो ईसपकी कथाओंमें आई उस गधेकी कहानी जैसी बात हुई, जिसमें बताया गया है कि आप कुछ भी कीजिये, कोई न कोई तो नाराज होगा ही। गांधीजीने सिद्ध कर दिया कि उनके प्रस्तावके



अनुसार युद्ध-प्रयत्नको आगे बढ़ाना “अहिंसाकी उनकी बुनियादी धर्म-नीति” के साथ असंगत नहीं था, बल्कि युद्धको सर्वथा बन्द करानेकी दृष्टिसे उसका एक स्वाभाविक परिणाम था। “यदि मैं अगस्तके प्रस्तावमें सम्मिलित हुआ और अब मैंने वह बात सुझाई है जिसे मैं पूरी तरह सम्मानपूर्ण हल समझता हूं, तो इसका कारण यह है कि उसके द्वारा मैं युद्धके प्रतीकारके प्रयत्नको पोषण देनेकी आशा रखता हूं। मैं ऐसी दुनियाका सपना देखता हूं, जिसमें राष्ट्र-राष्ट्रके बीच कोई झगड़ा नहीं होगा। यह तभी संभव होगा जब ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका और रूस ऐसी विश्वशान्तिका विचार रखते हों। . . . मुझे दुःखसे कराहती हुई दुनियाके उद्धारकी तब तक कोई आशा दिखाई नहीं देती, जब तक ये तीन राज्य संसारको इसका प्रत्यक्ष प्रमाण न दे दें कि . . . वे जो प्रयत्न आज कर रहे हैं वह किसी स्वार्थपूर्ण हेतुसे नहीं कर रहे हैं, परन्तु सचमुच पृथ्वीके तमाम लोकतंत्रोंकी खातिर वे लड़ रहे हैं। इसलिए मेरा प्रस्ताव बहुत बड़ी कसौटी है। . . .” [गांधीजीकी अखबारी मुलाकात, २१ जुलाई १९४४]

ब्रिटिश समाचार-पत्रिका ‘केवलकेड’ के एक प्रश्नके उत्तरमें गांधीजीने समुद्री तार द्वारा कहा, यदि मेरी चली तो “स्वतंत्र भारतकी राष्ट्रीय सरकारकी युद्धोत्तर नीति संसारके सब राज्योंका एक राष्ट्र-मंडल निर्माण करनेकी होगी; संभव हुआ तो उसमें युद्धमें सम्मिलित हुए राज्य भी शामिल होंगे, ताकि विभिन्न राज्योंमें सशस्त्र संघर्षकी संभावना कमसे कम रहे।” [गांधीजीका समुद्री तार ‘केवलकेड’ को, २० जुलाई १९४४] गांधीजीका प्रस्ताव केवल भारतकी जनताके दुःखोंकी चिन्तासे प्रेरित होकर नहीं रखा गया था, बल्कि युद्धमें सम्मिलित या असम्मिलित सभी प्रजाओंके कष्टोंकी चिन्तासे प्रेरित होकर रखा गया था: “संसारमें जो हत्याकांड और संहार आज चल रहा है, उसे मैं उदासीन बन कर नहीं देख सकता। मेरा अटल विश्वास है कि परस्पर हत्याकांडका आश्रय लेना मनुष्यकी प्रतिष्ठाके खिलाफ है। . . . यदि अधीर कांग्रेसियोंकी विरोधी आलोचना या रोषके भयसे या कार्यसमितिके सदस्योंके अप्रसन्न होनेके भयसे भी मैं अपना मत प्रकट न करूं, तो मेरे मनको कभी संतोष नहीं होगा। क्योंकि मैं मानता हूँ कि मेरे मतको स्वीकार कर लेनेसे वर्तमान उपद्रवोंमें से भी संसारमें शान्तिका उदय अवश्य होगा।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, २० जुलाई १९४४]

अन्तमें गांधीजीसे कहा गया कि आपका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाय, तो जिन्ना इस बिना पर आपत्ति उठा सकते हैं कि राष्ट्रीय सरकारसे ‘हिन्दुओं और कांग्रेस’ की स्थिति मजबूत होनेमें मदद



मिलेगी। गांधीजीने उत्तर दिया, यदि जिन्ना यह रवैया अपनायें अथवा सरकार मेरी मांगकों ठुकरा दे, तो इससे यह सिद्ध होगा कि वे दोनों यह नहीं चाहते कि इस नाजुक मौके पर भारत सचमुच स्वतंत्र हो या स्वतंत्रता और लोकतंत्रकी लड़ाईको जीतनेमें भारत पूरा हिस्सा ले। “मैं खुद तो दृढ़तापूर्वक अनुभव करता हूं कि श्री जिन्ना रास्ता रोक रहे हैं ऐसी बात नहीं है, बल्कि ब्रिटिश सरकार ही स्वाधीनताके भारतीय दावोंका न्यायपूर्ण निबटारा नहीं चाहती, यद्यपि यह बात बहुत पहले हो जानी चाहिये थी। ब्रिटिश सरकार भारतको स्वतंत्रतासे वंचित रखनेके लिए श्री जिन्नाकी आड़ ले रही है। . . . भारतकी आकांक्षाओंका गला घोटनेके इस राक्षसी षड्यंत्रको तोड़ना सभी न्यायपरायण लोगोंका धर्म है।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १३ जुलाई १९४४]

गांधीजीने क्रिप्सका १९४२ का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था और ‘भारत छोड़ो’ प्रस्तावको जन्म दिया था। इसमें कुछ लोगोंको मित्रराष्ट्रोंकी हारसे लाभ उठानेकी गांधीजीकी इच्छा दिखाई दी थी। अब गेल्डरको दी गयी मुलाकातके द्वारा लॉर्ड वेवेलको भेजे गये गांधीजीके प्रस्तावका कारण वे लोग ‘कांग्रेसकी भारी हार’ को बताते थे। कुछ लोगोंने इसकी आलोचना इस आधार पर की थी कि गांधीजीकी शर्तें ‘बहुत भारी’ हैं, यद्यपि सभी सामान्य युद्ध-नियमोंके अनुसार पराजित पक्षको विजेता पक्ष द्वारा रखी हुई संधिकी शर्तें ही स्वीकारनी होती हैं। ये दोनों ही निष्कर्ष अनुचित थे और इनसे सत्याग्रहकी रणनीति और युद्धविद्याका अज्ञान प्रगट होता था। सत्याग्रही विपक्षीकी दुर्बलतासे कभी लाभ उठाना नहीं चाहता और न बाजी बिगड़ते देखकर कभी शत्रुकी शरणमें जाता है। वह ऐसी कमसे कम मांगको अपनी लड़ाईका आधार बनाकर लड़ता है, जो और कम की ही नहीं जा सकती, और उसकी यह कमसे कम मांग ही उसकी बड़ीसे बड़ी मांग भी होती है। बड़ीसे बड़ी शानदार जीतके बाद भी वह उसे बढ़ाता नहीं है। गांधीजीने १९४२ में क्रिप्सका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि प्रथम तो वह युद्धके बादकी योजना थी, जिसका सम्बन्ध वर्तमानकी अपेक्षा भारतकी भावी व्यवस्थासे अधिक था। दूसरे, उसमें “भारतके लगभग शाश्वत विभाजन होने” की कल्पना थी, जिससे “भारतीय स्वाधीनताके मार्गमें दुर न की जा सकनेवाली रुकावटें” [वही] खड़ी हो जातीं। तीसरे, उस योजनामें भारतीय देशी राज्य “राष्ट्रीय एकताका नाश करनेवाले व्यापक बल” [यू. पी. आई., लन्दन, द्वारा पूछे गये प्रश्नोंका गांधीजी द्वारा दिया गया उत्तर, १५ जुलाई १९४४] का काम करते।



लॉर्ड वेवेलके सामने गांधीजीने जो प्रस्ताव रखा था, वह आवश्यक परिवर्तनके साथ १९४४ की बदली हुई परिस्थितियोंमें १९४२ की 'भारत छोड़ो' की मांगका ही पुनरुच्चार था। १९४२ में सीधी कार्रवाई जरूरी थी, क्योंकि ब्रिटिश सरकारने यह प्रकट कर दिया था कि उसका रस केवल भारतकी साधन-सामग्री और मानव-शक्ति छीन लेनेमें ही है और दूसरी तरफ वह देशके बड़े हिस्सों पर जापानियोंका अधिकार हो जाने देनेकी तैयारी कर रही थी। [भारतमें डेप्यूटी चीफ ऑफ जनरल स्टाफका सैनिक पद भोग रहे जनरल मोलेसवर्थने अप्रैल १९४२ में रोटरी क्लबके एक भाषणमें ये उद्गार प्रगट किये थे : " भारतमें सब कोई यह पूछते हैं कि जापानियोंको भारतमें न आने देनेके लिए हम क्या करनेवाले हैं। सेनाकी दृष्टिसे युद्धके इस विशाल मोर्चे पर हम ऐसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थानोंको - जिन्हें अपने हाथमें रखना जरूरी है - भारतकी सुरक्षाके लिए अपने हाथमें रखेंगे। परन्तु हम प्रत्येक स्थानको हाथमें नहीं रख सकते। इसलिए शेष भारतके लिए क्या किया जाय, जहां हम जल, स्थल और वायुसेना नहीं रख सकते ? . . . हम सबको हथियार नहीं दे सकते। परन्तु हम जापानियोंको खूब तंग करनेके लिए जन-साधारणको शिक्षा देनेका बहुत काम कर सकते हैं। . . . सेना यह काम नहीं कर सकती।" - हरिजन, १२ अप्रैल १९४२, पृ. १०९] इसलिए संपूर्ण और व्यापक स्वरूपके सविनय आज्ञाभंगका, उसके साथ लगे हुए तमाम खतरोंके साथ, आश्रय लेना जरूरी था, ताकि ब्रिटिश सरकार मजबूर होकर भारतको स्वतंत्र कर दे और भारत अपनी रक्षाका प्रयत्न स्वयं करे तथा लोगोंमें लोकतंत्रकी लड़ाईको जीतनेके लिए अधिकसे अधिक बलिदान करनेका उत्साह पैदा किया जा सके। जैसा फादर लैशने (जो बादमें बम्बईके बिशप हो गये थे) कहा था, "यह ऐसी ही बात थी जैसे कोई पिंजड़ेमें बन्द हाथी अपनी ओर बढ़ती आ रही आगको देखकर, जिसे उसका महावत काबूमें न कर पाता हो, उससे बचनेके खातिर पिंजड़ेको तोड़ कर उससे बाहर निकलनेका प्रयत्न कर रहा हो।" १९४४ में सविनय आज्ञाभंग १९४२ की तरह आवश्यक नहीं था और न व्यावहारिक ही था, क्योंकि एक तो देश पर अकालकी काली छाया मंडरा रही थी और दूसरे यह स्पष्ट हो गया था कि लोगोंने अहिंसाके पालनमें गम्भीर भूलें की थीं। वास्तवमें गांधीजीने जुलाई १९४४ में इतना ही किया कि १९४२ में सरकारकी जल्दबाजीके कारण धागा जहांसे टूट गया था वहींसे उसे फिर हाथमें ले लिया। 'भारत छोड़ो' की मांग ज्योंकी त्यों कायम रही;



सिर्फ उसे पेश करने और व्यवहारमें लानेका रूप और ढंग बदली हुई परिस्थितियोंके अनुसार बदल दिये गये।

‘युद्धकी अनुकूल स्थिति’ और ‘कांग्रेसकी भारी हार’ का लॉर्ड वेवेलके सामने रखे गये इस नये प्रस्तावसे - जिसे टीकाकार उनका ‘बदला हुआ रवैया’ बताते थे - कोई सरोकार नहीं था। इसका सीधा-सा कारण यह था कि “नजदीक आती हुई जीतकी उमंगमें मेरे प्रस्तावकी सुनवाई होनेकी संभावना भी नहीं थी।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १० जुलाई १९४४] रही बात ‘कांग्रेसकी भारी हार’ की, परन्तु गांधीजीको तो हार जैसा कुछ नहीं लूगता था। “मुझे जरा भी शंका नहीं कि हजारों कांग्रेसियों और कांग्रेसके समर्थकोंके इस तरह तपस्याकी आगमें होकर गुजरनेसे भारतका गौरव और लोगोंका बल बढ़ा है। . . . विजय अर्थात् भारतकी स्वाधीनता अब निश्चित है।” [वही]

पशुबल तर्क और विवेकको नहीं जानता। इसके विपरीत चर्चा, तर्क और समझानेकी क्रिया सत्याग्रहकी बुनियाद और आधार है। फिर सत्याग्रहीकी मांग व्यावहारिक और न्यायसंगत होनी चाहिये और उसके विरोधीको भी उसकी बात इस रूपमें स्वीकार करनी चाहिये। अतः सत्याग्रहीकी बुद्धि तलवारकी धारकी तरह तीक्ष्ण होनी चाहिये, उसके विचार स्फटिकके समान निर्मल होने चाहिये, उसकी निर्णय-शक्ति सतत आत्म-निरीक्षण द्वारा पवित्र होनी चाहिये तथा उसमें न्याय-परायणता, सहिष्णुता और सहानुभूतिके गुण होते चाहिये - जो विरोधीके दृष्टिकोणको सही तौर पर समझनेमें कुंजीका काम करते हैं। सत्यकी साधनासे शुद्ध बना हुआ उसका अन्तर्ज्ञान उसे मार्ग बताता है, लेकिन संघर्षका विमोचन तो ‘समन्वय’ की प्रक्रियाके द्वारा ही होता है; समन्वयकी प्रक्रिया ही उसके लिए मार्ग तैयार करती है। “समन्वयके लिए पहले विरोधियोंकी प्रगट की हुई इच्छाओंका विश्लेषण करके उनके उपादान और अधिक मूलभूत अर्थ समझने पड़ते हैं” और फिर “किसी बिलकुल नये हलका आविष्कार करके उसे व्यवहारमें लाना पड़ता है। इसमें शायद सर्वथा भिन्न प्रवृत्तियां भी करनी होती हैं। उस हलसे दी हुई परिस्थितियोंमें दोनों पक्षोंकी सभी या अधिकांश मूलभूत इच्छाएं और आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं और दोनोंकी शक्तियोंका बलात्कार या दमनके बिना आजादीके साथ और पूरी तरह उपयोग होता है।” [ग्रेग, 'पावर ऑफ नॉन-वॉयोलेन्स', अहमदाबाद, १९३३, पृ. ६१] जब एक बार विरोधीकी दलीलोंमें रही हुई त्रुटि उसे अच्छी तरह समझा कर सूर्यकी भांति स्पष्ट कर दी जाती है, तो फिर वह टिक नहीं



सकता और यह निश्चित हो जाता है कि उसका परिवर्तन समय पाकर होने ही वाला है। हां, सत्याग्रही स्वयं ही अपनी कमजोरियों और गलतियोंसे उसे नया जीवन प्रदान कर दे तो दूसरी बात है। जेलसे निकलनेके बाद कुछ ही सप्ताहमें गांधीजीने अपने प्रभावशाली भाषणों और अखबारी वक्तव्योंसे अपने कामका पहला हिस्सा तो पूरा कर लिया था। लन्दनके 'डेली वर्कर' के साम्यवादी प्रतिनिधिने, जो अपने दलके और लोगोंके साथ स्वयं भी 'भारत छोड़ो' संग्रामके विरुद्ध था और इसलिए गांधीजीके भी विरुद्ध था, अपने अखबारको समुद्री तार दिया: "भारत और मित्रराष्ट्र दोनोंके खातिर गांधी इस बातके लिए हृदयसे उत्सुक हैं कि भारतीय समस्याका जल्दी निबटारा हो जाय। . . . इसमें शंका नहीं कि गांधीकी तरफसे इसके लिए हर कोशिश होगी कि वर्तमान गतिरोध और उसके सारे परिणाम— अकाल, अन्न-संकट और लोगोंकी नाराजगी - जल्दीसे जल्दी खतम हो जायें। यह देखना ब्रिटिश ललोगोंका काम है कि उनकी सरकार एमेरीके कोरे नकारात्मक वक्तव्योंको पकड़े न बैठी रहे, बल्कि गतिरोधको समाप्त करने और एशियामें युद्धका जल्दी अंत करनेकी दिशामें सचमुच कोई रचनात्मक कदम उठायें।" [कुमारमंगलम्का समुद्री तार 'डेली वर्कर' को, १ अगस्त १९४४]

७

गेल्डरके साथ अपनी भेंटकी ओर लॉर्ड वेवेलका ध्यान दिलाते हुए—इस भेंटके विवरणका प्रकाशन गेल्डरने समयसे पहले कर दिया था - गांधीजीने वाइसरॉयको लिखा: "फिर भी यह प्रकाशन प्रच्छन्न वरदानका रूप ले लेगा, यदि इस भेंटके कारण आप मेरी शुरूकी मांगोंमें से कमसे कम एक मांगको मान लें" [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १५ जुलाई १९४४] - अर्थात् कार्यसमितिके सदस्योंसे गांधीजीको मिल लेने दें। लेकिन गांधीजी जानते थे कि इस सम्बन्धमें निर्णय करनेवाले लॉर्ड वेवेल नहीं परन्तु श्री चर्चिल हैं, इसलिए उन्होंने उसी समय ब्रिटिश प्रधानमन्त्रीको भी पत्र लिखा:

‘दिलखुश’, पंचगनी

१७ जुलाई, १९४४

प्रिय प्रधानमंत्री,



सुना है कि आप इस 'नंगे फकीर' को—कहते हैं आपने मुझे यही नाम दिया है—कुचल देनेकी इच्छा रखते हैं। मैं लम्बे अर्सेसे फकीर और वह भी नंगा फकीर—जो और भी मुश्किल काम है—बनना चाहता हूं। इसलिए आपकी इस उक्तिको मैं अपनी प्रशंसा मानता हूं, यद्यपि आपका आशय ऐसा नहीं है। अतः मैं नंगे फकीरके नाते ही आपको लिख रहा हूँ और आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप अपनी प्रजा और मेरी जनताके खातिर और उनके द्वारा संसारके ल्लोगोंके खातिर मेरा भरोसा कीजिये और मेरा उपयोग कीजिये।

आपका सच्चा मित्र

मो. क. गांधी

राजाजी चर्चिलको यह पत्र भेजनेके खिलाफ थे। उनकी दलील यह थी: “मुझे डर है कि आपके इस पत्रका गलत अर्थ समझा जायगा। यह उत्पाती पत्र है।”

गांधीजी : “मुझे तो ऐसा नहीं लगता। मैंने इसे गम्भीरतासे लिखा है।”

राजाजी : “भूतकालमें कहे हुए चर्चिलके शब्दोंका उल्लेख करके आपने उनके मर्मस्थान पर आघात किया है। अपने उन शब्दों पर संभवतः उन्हें बहुत गर्व नहीं है।”

गांधीजी : “मैंने उनके उद्गारको अपनी प्रशंसा बताकर उसका डंक निकाल दिया है।”

राजाजी : “आशा है, आपका कहना ठीक होगा।”

गांधीजी : “मुझे अफसोस है, परन्तु मुझे लगता है कि आप भूल कर रहे हैं।”

ब्रिटिश प्रधानमंत्रीके नामका यह पत्र गुम हो गया। गांधीजीके अनुभवमें यह पहला उदाहरण था जब उनका कोई महत्वपूर्ण पत्र ठीक स्थान पर नहीं पहुंचा था। इसलिए दो महीने बाद उसकी एक प्रति श्री चर्चिलके पास भेजी गई। उसके जवाबमें केवल वाइसरॉयके जरिये धन्यवाद सहित उसकी पहुंच स्वीकार की गई! जैसा गांधीजीने श्री गेल्डरसे कहा था, यह बिल्कुल स्पष्ट था कि श्री चर्चिल कोई समझौता नहीं चाहते थे और इसलिए वे भारतके लोगोंकी या अपने ही लोगोंकी भलाईके लिए भी महात्माजीका उपयोग करनेको तैयार नहीं थे।



लॉर्ड वेवेलने गांधीजीको उत्तर दिया कि मेरे उद्देश्यके लिए गेल्डरसे आपकी भेंट काफी नहीं है। उस पर मेरी टीकासे कोई लाभ नहीं हो सकेगा। लेकिन मैंने आपको जो कुछ पहले लिखा था उसीको यहां दोहराता हूं कि यदि आप मेरे सामने कोई निश्चित और रचनात्मक नीति प्रस्तुत करेंगे, तो मैं उस पर सहर्ष विचार करूंगा। स्पष्ट है कि वाइसरॉयके मतसे समझौतेका रास्ता खोजनेके लिए कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंसे मिलनेकी गांधीजी द्वारा मांगी गई इजाजतमें अथवा श्री गेल्डर द्वारा प्रस्तुत किये गये समझौतेके आधारमें कोई रचनात्मक तत्त्व नहीं था।

श्री ब्रेल्सफोर्डने कहा, “मेरे खयालसे इस बातकी कोई संभावना नहीं है कि युद्ध समाप्त होने तक समझौता करनेकी कोई नई कोशिश ब्रिटिश सरकारकी ओरसे की जायगी। यह बात मैं और भी अधिक विश्वासके साथ मानता हूं कि जब तक भारतीयोंके विश्वासपात्र नेता जेलमें हैं और कांग्रेस विद्रोहकी स्थितिमें है, तब तक न तो भारतवासियोंका कोई प्रयत्न सफल होगा और न उसे प्रोत्साहन दिया जायगा। व्हाइट हॉल और नई दिल्लीके यथार्थवादी यह मानते होंगे कि जब युद्ध जीत लिया जायगा तब हमारी प्रतिष्ठा और हमारी सत्ता फिरसे स्थापित हो जायगी। उस समय हमारे उपलब्ध सैनिक साधन असीम होंगे और अमरीकी सद्भावके लिए हमारा परावलम्बन हमारे लिए बाधक सिद्ध नहीं होगा। सार यह कि उस समय हम भारतवासियोंके साथ उसी तरह पेश आ सकते हैं जैसे साम्राज्य अपनी अधीन प्रजाओंके साथ पेश आते हैं।” [ब्रेल्सफोर्ड, ‘सब्जेक्ट इंडिया’, बम्बई, १९४६, पृ. २०२]

गांधीजीने लॉर्ड वेवेलको जवाब देते हुए लिखा, “मुझे स्वीकार करना चाहिये कि आपके पत्रसे मुझे निराशा हुई है। लेकिन मैं निराशाओंके बीच भी काम करनेका आदी हूं।” साथ ही उन्होंने यह ‘ठोस प्रस्ताव’ भेजा:

मैं कार्यसमितिको यह घोषणा करनेकी सलाह दे सकता हूं कि बदली हुई परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर अगस्त १९४२ के प्रस्तावमें सूचित सामूहिक सविनय आज्ञाभंग नहीं किया जा सकता और कांग्रेसको युद्ध-प्रयत्नमें पूरा सहयोग देना चाहिये, यदि भारतीय स्वाधीनताकी तुरन्त घोषणा कर दी जाय तथा केन्द्रीय विधान-सभाके प्रति जिम्मेदार रहनेवाली राष्ट्रीय सरकार बना दी जाय। इसमें यह व्यवस्था रहे कि जब तक युद्ध चलता रहे तब तक सैनिक कार्रवाइयां अभीकी



तरह जारी रहें, परन्तु भारत पर उनका कोई आर्थिक भार न पड़े। [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, २७ जुलाई १९४४]

अन्तमें गांधीजीन लिखा, “जब तक सम्मानपूर्ण समझौतेकी जरा भी आशा रहेगी, तब तक मैं दरवाजा खटखटाता ही रहूंगा।”

परन्तु सचाई यह थी कि उस स्थितिमें किसी भी तरहका ‘सम्मानपूर्ण समझौता’ कर लेनेकी ब्रिटिश सरकारकी इच्छा ही नहीं थी और इसलिए कुदरती तौर पर कोई रास्ता भी नहीं था। वाइसरॉयके पत्रमें पहले तो “कौमी और धार्मिक अल्पसंख्यकोंके तथा दलित-वर्गके लोगोंके हितोंकी रक्षाके अपने कर्तव्यकी और भारतके देशी राज्योंके साथ की गई संधियोंसे उत्पन्न जिम्मेदारियोंकी”—जिनके कारण गांधीजीकी मांग स्वीकार नहीं की जा सकती थी और जो ब्रिटिश सरकारको अपनी ओरसे भी कोई कदम न उठानेके लिए काफी बड़ा कारण मालूम होती थीं—लम्बी दुहाई दी गयी थी। फिर गांधीजीको इस बातकी याद दिलायी गयी थी कि क्रिप्सकी योजनामें **युद्धकी समाप्तिके बाद** सम्पूर्ण स्वतंत्रता देनेके ब्रिटिश सरकारके प्रस्तावके साथ “यह शर्तें लगी हुई हैं कि भारतवासी भारतके राष्ट्रीय जीवनके **मुख्य तत्त्वोंकी** सम्मतिसे एक सर्वसम्मत संविधानकी रचना करेंगे।” (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) उसके बाद धर्मानुरागियोंकी शैलीमें इस सदिच्छाको पुनः दुहराया गया था कि “सम्राट्की सरकार भारतीय समस्याके हलके लिए बहुत चिन्तित है।” कहना न होगा कि सरकार जिस ढंगसे इस समस्याके हलके लिए चिन्तित थी उस ढंगसे यह समस्या हल हो ही नहीं सकती थी। और अन्तमें वाइसरॉयके पत्रका उपसंहार इस तरह किया गया था: “परन्तु आपने जैसे प्रस्ताव सामने रखे हैं वैसे प्रस्तावोंको चर्चाका आधार बनाना सम्राट्की सरकारको बिलकुल स्वीकार नहीं। . . . वास्तवमें वे प्रस्ताव बहुत-कुछ वैसे ही हैं जैसे मौलाना अबुर कलाम आजादने अप्रैल १९४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्सके सामने रखे थे और आपके वर्तमान प्रस्तावोंको अस्वीकार करनेके सम्राट्की सरकारके पास वही कारण हैं जो उस समय थे।” [लॉर्ड वेवेलका पत्र गांधीजीको, १५ अगस्त १९४४]

उत्तर वेवेलका था, परन्तु आवाज चर्चिलकी थी।



नवम्बर १९४२ में जब युद्धका भविष्य मित्रराष्ट्रोंके विपरीत था, जापानी सेना भारतका द्वार खटखटा रही थी और जर्मन सेना अधिकाधिक शक्तिशाली बनती जा रही थी, चर्चिलने यह घोषणा की थी कि मैं ब्रिटिश साम्राज्यका अंत करनेके लिए सम्राट्का प्रधनमंत्री नहीं बना हूं। १९४४ के मध्यमें जब युद्धकी धारा निश्चित रूपमें मित्रराष्ट्रोंके अनुकूल होती जा रही थी और जर्मन सेनाएं तमाम मोर्चों पर पीछे हट रही थीं, तब तो चर्चिलसे समझौता करनेकी आशा और भी कम ही रखी जा सकती थी।

वाइसरॉयके उत्तर पर गांधीजीकी टिप्पणी यह थी: “सार रूपमें वाइसरॉयके कथनका अर्थ यह है कि जब तक भावी संविधानके सम्बन्धमें सब प्रमुख भारतीय दल सहमत न हो जायं और ब्रिटिश सरकार तथा प्रमुख दलोंके बीच समझौता न हो जाय, तब तक वैधानिक स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं होगा और भारत सरकार जैसी अभी है वेसी ही बनी रहेगी। सरकारके उत्तरमें जिन दलोंके नाम दिये गये हैं, वे उदाहरण स्वरूप ही हैं। मुझे सन्देह नहीं कि ठीक मौके पर जिस तरह बाजीगर अपने थैलेमें से नयी-नयी वस्तुएं निकाल कर सामने रखता है, उसी तरह दूसरे नये नाम भी इनमें जोड़े जायेंगे। और कौन जानता है कि कैसे और कब ब्रिटिश सरकार सत्ता छोड़नेको सहमत होगी। यह प्रकाशकी तरह स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकारको ४. करोड़ लोगों पर जो सत्ता प्राप्त है उसे छोड़नेका तब तक उसका कोई इरादा नहीं जब तक ये लोग अपने भीतर उससे सत्ताको छीन लेनेकी शक्ति पैदा न कर लें। मैं कभी यह आशा नहीं छोड़ूंगा कि भारत शुद्ध नैतिक साधनों द्वारा ही यह शक्ति अपने भीतर पैदा कर सकेगा।”

[गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १८ अगस्त १९४४]



तीसरा अध्याय

राष्ट्रकी आवाज

१

स्वतंत्रताका मार्ग कठिन और लम्बा दिखाई देता था । अभी कठिन यात्रा देशके सामने थी। महात्माजीन अहिंसाके अपने शस्त्रागारको पुनःसुव्यवस्थित करनेका कार्य आरंभ कर दिया।

‘भारत छोड़ो’ संग्रामके दिनोंमें बहुतसे कांग्रेसी अपने मूल आधारसे विचलित हो गये थे । अगस्तके प्रस्तावने हर कार्यकर्ता पर ‘भारत छोड़ो’ प्रस्तावका अपने ही निर्णयके अनुसार अमल करनेका भार रख दिया था। अलबत्ता, उन्हें सत्य और अहिंसाकी मर्यादाके भीतर ही रहकर सब कुछ करना था । लेकिन नेताओंके एक ही धावेमें गिरफ्तार कर लिये जानेके फलस्वरूप अलग अलग लोगोंने अहिंसाका अलग अलग अर्थ लगाया। कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारीके बाद तत्काल ही भारत-मंत्री श्री एमेरीने जो रेडियो-भाषण दिया था, उसके कारण किशोरलाल मशरूवाला जैसे अहिंसाके कट्टर पुजारी भी - जो महात्माजीकी ही भाषा काममें लें तो अहिंसाके अपने आग्रहको इतनी दूर तक ले जाते थे कि साथियोंको हैरानी होती थी - बहक गये थे। [किशोरलाल मशरूवालाने मध्यप्रदेश और बरार सरकारके मुख्य सचिवको अपनी भूल मालूम होते ही एक पत्रमें लिखा था: “यदि मुझे किसी मानवी न्यायालयके ही सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करनेकी इच्छा होती, तो मैं कई तर्क प्रस्तुत कर सकता था। उदाहरणार्थ, मैं यह तथ्य बताता कि स्वयं मि. एमेरी जैसे व्यक्तिने मुझे गुमराह कर दिया। ९ अगस्त १९४२ को नेताओंकी गिरफ्तारीके थोड़े ही समय बाद उन्होंने जो भाषण दिया, उससे मुझे पहले-पहल यह पता चला कि संभाव्य कार्यक्रमके क्या क्या अंग हो सकते हैं। उसके बाद मुझे पता चला है कि कई और लोगोंकी भी यही स्थिति थी। मि. एमेरीने खास तौर पर यह भी कहा था कि आन्दोलनके माने हुए संचालकोंकी इच्छा उसे अहिंसक ढंगसे चलानेकी थी। इसलिए मुझसे उस कार्यक्रमकी जांच करनेकी विनती की गई। मैंने स्पष्ट शब्दोंमें उसके कई अंगोंको अस्वीकार कर दिया - जैसे दफ्तरों, बैंकों वगैराको लूटना और जलाना। दो अंगोंके बारेमें (अर्थात् तार और रेलकी पटरियां उखाड़नेके बारेमें) मेरा उत्तर कमजोर था। जहां तक मुझे याद है, मेरे उत्तरकी बादकी कंडिकाओंसे (जो सरकारी पुस्तिका ‘कांग्रेस



रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर दि डिस्टर्बन्सेज' में नहीं छापी गयी हैं) पहली कंडिकामें बहुत कुछ सुधार हो जाता है और उन अंगों पर भी मेरी असहमति प्रगट होती है, जो पहली कंडिकामें उचित बताये गये थे। . . . "परन्तु मैं अपना बचाव नहीं करना चाहता। अपनी ही अन्तरात्माको शुद्ध करनेके लिए मुझे यह कहना चाहिये कि मि. एमेरी द्वारा प्रसिद्ध किये गये कार्यक्रमका केवल बौद्धिक प्रक्रियासे विश्लेषण करनेके बजाय मुझे अपने अन्तर्यामी पथ-प्रदर्शकसे प्रकाश मांगना चाहिये था। मुझे तार काटने, रेलकी पटरियां उखाड़नें, पुल नष्ट करने और आवागमन तथा संचारके साधनोंको इस प्रकार अस्तव्यस्त करनेके कार्योंका उतने ही स्पष्ट शब्दोंमें विरोध करना चाहिये था, जितना मैंने दफ्तरों वगैराको लूटने और जलानेके कार्यक्रमोंका किया।" जेलसे रिहा होनेके बाद इस पत्रको समाचारपत्रोंमें प्रकाशित कराते समय किशोरलाल मशरूवालाने यह निजी टिप्पणी उसके साथ जोड़ी थी: "यद्यपि जो कुछ हो गया उसे तो मैं सुधार नहीं सकता, फिर भी मुझे इस बातके लिए पश्चात्ताप हुए बिना नहीं रह सकता कि मैंने मि. एमेरीके रेडियो-भाषण पर विश्वास करके अहिंसक दृष्टिकोणसे उसके किसी भागको उचित बताया । इसलिए मुझे इस बातका खेद है कि मैं स्वयं गुमराह हो गया और दूसरोंको गुमराह करनेका साधन बन गया।" इस रेडियो-भाषणमें श्री एमेरीने 'तोड़-फोड़' के अनेक प्रकार गिनाये थे, जो उनके खयालसे कांग्रेसके "कार्यक्रममें शामिल थे।"

तोड़-फोड़की प्रवृत्तिमें रंगे हुए लोगोंकी तरफसे यह दावा किया गया था कि उन्होंने अपने कार्यक्रमों पर अमल करते समय हृदयसे इस बातका प्रयत्न किया था कि किसीको भी व्यक्तिगत चोट न पहुंचे । परन्तु सर्वत्र गुप्तताका साम्राज्य था। अधिकतर खुले विरोधके कार्यक्रमकी तैयारी और संगठनवाले भाग तक ही वह सीमित थी। ब्रिटिश अदालतोंमें सफाई देनेका और सजासे बचनेकी बातका निषेध किया गया था । अखिल भारतीय सत्याग्रह परिषद् स्थापित हो चुकी थी और वैसा ही संगठन प्रान्तोंमें भी खड़ा कर लिया गया था। जैसे जैसे सरकारी दमन व्यापक और उग्र बनता गया वैसे वैसे अधिकाधिक कार्यकर्ता भूगर्भमें जाने लगे। कुछके खिलाफ हिंसाके गंभीर अभियोग लगाये गये थे; और कुछ लोगोंके मामलेमें तो गिरफ्तारीके लिए इनाम घोषित हो चुके थे।

इनमें से कुछ मित्र गांधीजीकी रिहाईके बाद तुरन्त ही उनसे मिलना चाहते थे। गांधीजीने कहला भेजा कि वे अपनी जिम्मेदारी पर आ सकते हैं। इसलिए उनमें से कुछ आये और पहले जुहूमें और बादमें



पंचगनीमें गांधीजीसे मिले। इनमें श्री रंगनाथ दिवाकर - जो बादमें भारतके केन्द्रीय मंत्री हुए और फिर बिहारके राज्यपाल बने, बंगालके बहुत बड़े रचनात्मक कार्यकर्ता अन्नदा चौधरी, समाजवादी नेता अच्युत पटवर्धन और कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्य तथा बादमें अन्तरिम राष्ट्रीय सरकारकी ओरसे अमरीकामें नियुक्त भारतीय राजदूत श्री आसफअलीकी पत्नी अरुणा आसफअली आदि कई लोग थे। इस निर्भीक महिला अरुणाने अपनी हिम्मत और सूझबूझसे अनेक सरकारी कर्मचारियोंसे प्रशंसा और कुछ पुलिस अफसरों तकसे गुप्त समर्थन प्राप्त कर लिया था। एक अंग्रेज, जो सरकारी अधिकारी भी थे, संयोगसे एक मित्रके घर अरुणासे मिले। अरुणाके साहसी कार्योंकी कहानी सुनकर उन्होंने पुलिसको सूचना देनेके बजाय उनके साहसकी प्रशंसा की और कहा कि ऐसी परिस्थितियोंमें मैं भी यही करता। अरुणा आसफअलीकी गिरफ्तारीके लिए सरकारने एक बड़े इनामकी घोषणा की थी।

गांधीजीने उन्हें बहुत साफ सलाह दी। उनका यह दृढ़ मत था कि सब तरहकी गुप्तता पाप है। “जिस हद तक हमारे ध्येयमें गुप्तता आ गई है उस हद तक उसे हानि ही पहुंची है। हमें एक दो आदमियोंकी दृष्टिसे नहीं सोचना है, हमें करोड़ों लोगोंकी दृष्टिसे विचार करना है। आज वे निर्जीव जैसे हो गये हैं। गुप्त उपायोंका आश्रय लेकर हम उनमें फिरसे प्राण नहीं पूर सकते। सत्य और अहिंसा पर डटे रहकर ही हम उनकी तेजहीन आंखोंमें फिरसे तेज उत्पन्न कर सकते हैं।”

गांधीजीने उनसे कहा कि अपने समीपकी परिस्थितियोंको देखते हुए आपको ऐसा लगा होगा कि आप लोगोंमें से कुछ भूगर्भमें न चले जाते तो आन्दोलनको हानि पहुंचती। परन्तु यह निरा भ्रम है। “जब आप बड़े प्रश्नों पर विचार करेंगे तो आपको पता लगेगा कि सब तरहकी गुप्तता छोड़कर खुले रूपमें काम करनेसे ही आप आगे बढ़ सकते हैं।”

इसलिए जो लोग भूगर्भमें चले गये थे उन सबको गांधीजीने यह सलाह दी कि वे बाहर आ जायें: “यदि आपका भी मेरी तरह दृढ़ विश्वास हो कि छिप कर काम करनेसे अहिंसाकी सक्रिय भावनाके विकासमें मदद नहीं मिलती, तो आप बाहर आकर जेल जानेका खतरा उठा लेंगे और यह विश्वास रखेंगे कि इस तरह भोगी हुई जेल स्वयं ही स्वतंत्रताके आंदोलनमें सहायक होती है।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, २८ जुलाई १९४४] इसी तरह आप अजेय शक्तिका निर्माण कर सकेंगे। “आज अगर आप



केवल दो होंगे तो भूगर्भसे बाहर आने पर कल २० हो जायेंगे और इस तरह आपका स्वतंत्रता-संग्राम दिन प्रतिदिन अधिक गति पकड़ता जायगा।”

उनमें से एकके नाम लिखे पत्रमें गांधीजीने लिखा: “मेरी रायमें गुप्तता पाप है और हिंसाकी निशानी है। इसलिए यदि हमारा लक्ष्य करोड़ों मूक मानवोंकी स्वतंत्रता हो, तो हमें निश्चित रूपमें उससे सर्वथा बचना चाहिये। इसलिए मेरे मतानुसार सब तरहकी गुप्त प्रवृत्ति निषिद्ध है।” [गांधीजीका पत्र जी. रामचन्द्रन् को, ९ जुलाई १९४४]

उनमें से भी कुछ लोगोंको अपने गुप्त कार्योंके अनुभवोंके फलस्वरूप इसी नतीजे पर पहुंचना पड़ा था। श्री दिवाकरने गांधीजीको बताया: “शायद बाहर रहनेके मेरे प्रयत्नका मुझ पर एक असर यह हुआ कि मैंने कार्यकर्ताओंको कुछ गुप्त कार्य करनेके पश्चात् गिरफ्तार होनेकी बात समझानेका प्रयत्न नहीं किया। ‘तोड़-फोड़’ की कार्य-पद्धतिका यह एक अंग हो गया था कि काम करते जायं और गिरफ्तार न हों।” सरकार जिन्हें पकड़ना चाहती थी ऐसे कुछ व्यक्ति तो आजादीसे इधर-उधर फिरते रहते थे; दूसरे कुछ भागकर भूगर्भमें चले गये थे। कुछने अपने बनावटी नाम रख लिये थे। और कुछ लोगोंने अपनी सदाकी पोशाक छोड़ दी थी और भेष बदलकर घूमते थे। सभी गुप्त संगठनोंमें जैसा हुआ करता है, वे छोटे छोटे लड़ाई-झगड़ों, स्पर्धाओं, गुटबन्दियों और भद्दे षड्यंत्रोंसे भी सर्वथा दूर नहीं रह सके थे। एक और गुप्त कार्यकर्ताने बताया: “हमारी संख्या स्वभावतः कम होती गई। हमारे काम करते रहनेकी एक सीमा थी और वह सीमा एक तरहसे आ गई थी।” जब मुल्की अधिकारियोंने सैनिक सहायता मांगी और वह सहायता भेज दी गई, तो हमें पता चला कि “हमारा प्रतिरोध यहीं तक जा सकता है। इससे आगे वह नहीं जा सकता।”

गांधीजी कोई आदेश निकालना नहीं चाहते थे। जिन्होंने ‘आज्ञा’ मांगी उनसे उन्होंने कहा: “मुझे अभी कैदी ही मानना चाहिये, जिसे राय देनेकी स्वतंत्रता है, पर आदेश जारो करनेकी नहीं। परन्तु मैं इतना कह सकता हूं कि यदि आप एक ओर सत्यको और दूसरी ओर अहिंसाको रखकर चलें, तो आप रास्तेसे भटक नहीं सकते। यह सुनहला रास्ता है। इस पर आप चलेंगे तो ईश्वर आपको सहारा देगा। आपको कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिये, जो आपके हृदयको न जंचे। यदि मेरी सलाह आपके हृदयको



न जंचे, तो जो आपकी अंतरात्मा कहे वही आपको करना चाहिये। जब हृदय और बुद्धिमें संघ होता है, तो हृदयकी जीत होती है।”

श्रीमती अरुणा आसफअलीको सख्त पेचिश हो गई थी। गुप्त जीवनकी कठिनाइयोंसे वह अधिक तीव्र हो गई थी। गांधीजीने उन्हें लिखा: “तुम्हारे साहस और शौर्यकी मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूं। मैंने तुम्हें संदेश भेजे हैं कि तुम्हें गुप्त वासमें रहकर नहीं मरना चाहिये। तुम सूखकर कांटा हो गई हो। बाहर निकल आओ, आत्म-समर्पण कर दो और तुम्हारी गिरफ्तारीका पुरस्कार खुद ही ले लो। उस पुरस्कारका रुपया हरिजन-कार्यके लिए सुरक्षित रख दो।” [गांधीजीका पत्र अरुणा आसफअलीको, ९ जून १९४४]

तो क्या तोड़-फोड़की प्रवृत्तिने स्वाधीनता-संग्रामको हानि पहुंचाई थी ? क्या उस लड़ाईके दौरान लोगोंने जो हिम्मत और बहादुरी दिखाई थी, वह सब बेकार गई ? गांधीजीका निर्णय यह था कि इतिहासकी दृष्टिसे देश हर प्रकारके संग्राम द्वारा आजादीकी दिशामें आगे बढ़ा हुआ मालूम होगा और यह बात उनके संग्राम पर भी लागू होती है। परन्तु सभी लोग अहिंसक रहते, तो यह प्रगति कहीं अधिक होती। उन्होंने एक निश्चित उदाहरण देकर अपना अर्थ स्पष्ट किया। वे समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायणके साहस, देशप्रेम और त्याग-भावनाके बड़े प्रशंसक थे। जयप्रकाशबाबू गुप्त आन्दोलनका नेतृत्व करनेके लिए जेलसे भाग गये थे और उनकी गिरफ्तारीके लिए अधिकारियोंने १० हजार रुपयेका इनाम घोषित किया था। गांधीजीने कहा कि यदि मुझे सच्ची वीरताके लिए पदक देना पड़े, तो वह जयप्रकाशको न देकर मैं उनकी बहादुर सत्याग्रही पत्नी प्रभावतीको दूंगा, जिसने अपने पतिके जीवनमें वही भाग अदा किया था जो कस्तूरबाने मेरे जीवनमें किया था। कस्तूरबाके लिए उनकी मृत्युके बाद गांधीजीने लॉर्ड वेवेलको एक पत्रमें लिखा था, “अहिंसात्मक असहयोगकी कलामें और उसके पालनमें वह मेरी गुरु बन गई थी।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, ९ मार्च १९४४]

एक सार्वजनिक वक्तव्यमें गांधीजीने कहा :

मुझसे कहा गया है कि कुछ कार्यकर्ता यदि भूगर्भमें न चले जाते, तो हम कुछ न कर पाते। . . . दूसरे राष्ट्रोंके उदाहरण देकर बताया गया कि उन राष्ट्रोंने ये सारी बातें की हैं और इनसे



भी बुरी बातें करनेमें संकोच नहीं किया है। मेरा उत्तर यह है कि जहां तक मैं जानता हूँ, किसी राष्ट्रने समझ-बूझकर सत्य और अहिंसाका आजादी प्राप्त करनेके एकमात्र उपायकी तरह उपयोग नहीं किया है। इस दृष्टिसे सोचें तो गुप्त प्रवृत्तियोंको, वे बिलकुल निर्दोष हों तो भी, अहिंसाकी कार्य-प्रणालीमें कोई स्थान नहीं मिलना चाहिये। . . . यद्यपि यह सिद्ध किया जा सकता है कि इन प्रवृत्तियोंने कुछ लोगोंकी कल्पना-शक्तिको उत्तेजित करके उनमें उत्साह जाग्रत किया, . . . फिर भी कुल मिलाकर उनसे हमारे आंदोलनको हानि ही पहुंची है।
[गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, २८ जुलाई १९४४]

गुप्त कार्यकर्ताओंने यह दलील दी कि “कोई आदमी अपने कर्मका फल भुगतनेको साहसके साथ तैयार हो, तो उसे गुप्तताका दोषी नहीं कहा जा सकता।” परन्तु गुप्तताके खिलाफ गांधीजीकी आपत्ति बुनियादी थी। गुप्तताका सारा मनोविज्ञान और उसकी कार्य-प्रणाली सर्वथा भिन्न है। जो व्यक्ति गुप्त आचरण करता है, उसके चारों ओर “रक्षाकी दीवार” खड़ी करना गुप्तताका लक्ष्य होता है। अहिंसा ऐसी रक्षाका तिरस्कार करती है। वह भारीसे भारी कठिनाइयोंके सामने भी खुले रूपमें काम करती है। ४० करोड़ लोगोंको खुले और सत्यतापूर्ण साधनोंके सिवा अन्य किसी तरह कार्य करनेके लिए संगठित नहीं किया जा सकता। किसी भी गुप्त संगठनके द्वारा, चाहे वह कितना ही बड़ा होता, वह चमत्कारपूर्ण जागृति पैदा नहीं की जा सकती थी, जो अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनके छिड़नेके बाद भारतके करोड़ों निरक्षर और दरिद्रता-पीड़ित लोगोंमें पैदा हुई है। गांधीजी गुप्तताके संबंधमें लोगोंकी कमजोरीके लिए छूटछाट रखनेकी बात तो समझ सकते थे, लेकिन आदर्शको हलका बनानेकी बात वे कभी स्वीकार कर ही नहीं सकते थे।

*

‘भारत छोड़ो’ संग्रामके दिनोंमें दो नई विचारधाराएं उत्पन्न हुई थीं। उनमें से एकके प्रतिनिधि बड़ी संख्याके समाजवादी थे, जो खुले तौर पर कहते थे कि कार्यक्रमके रूपमें अहिंसाका कार्य अब पूरा हो गया है। उसका काम ‘सर्व-साधारणको जगाना’ था; वह उसने कर दिया। आजादीकी ‘अंतिम लड़ाई’ में, जिसका आरंभिक दौर अहिंसाका था, शस्त्रोंके उपयोगके संपूर्ण निषेधका आग्रह नहीं रखा जा सकता



। दूसरी विचारधारावाले अहिंसाके सिद्धान्तमें तो विश्वास रखनेका दावा करते थे, परन्तु उनका कहना था कि उसकी कार्य-प्रणालीमें 'संशोधन' और 'विकास' की गुंजाइश है। वे इसे 'नव-सत्याग्रह' या 'नव-गांधीवाद' कहते थे। इस संशोधित कार्य-प्रणालीमें व्यापक रूपमें तोड़-फोड़, गुप्त प्रवृत्ति और 'समानान्तर सरकार' का संगठन करनेका समावेश होता था।

'भारत छोड़ो' संग्रामके दिनोंमें देशके कई भागोंमें - उत्तर प्रदेशके बलिया जिलेमें, बंगालके मिदनापुर जिलेमें, बम्बईके सतारा जिलेमें और बिहारके बड़े भूभागोंमें - ब्रिटिश शासनका अंत कर दिया गया था; और उसके स्थान पर समानान्तर प्रशासन स्थापित कर दिया गया था, जिसे मिदनापुरमें 'जातीय सरकार' और सतारामें 'पत्री सरकार' कहा जाता था। उसने शिक्षाका और जन-कल्याणका कार्य संगठित किया, पंचायतें कायम कीं, झगड़े निबटाये, 'अपराधियों' और 'गद्दारों' को सजाएं दीं - कभी कभी कठोर और तात्कालिक न्याय द्वारा, जुर्माने वसूल किये, कर लगाये - यह काम सदा समझा-बुझाकर नहीं किया गया, ब्रिटिश पुलिसके हथियार छीन लिये, स्थानीय अफसरों और सरकारी नौकरोंकी 'गिरफ्तारी' के हुक्म दिये और कुछ निश्चित और अनिश्चित काम पूरे करनेके लिए 'अहिंसक' दल संगठित किये।

इन कार्योंमें लगे हुए लोग पूछते थे कि क्या सरकारी सम्पत्ति अर्थात् रेलों, इमारतों, पुलों, तारों वगैराको नष्ट करना हिंसा है। "यह तो राष्ट्रकी सम्पत्ति है; अपनी सम्पत्तिका हम जो चाहें सो कर सकते हैं। कभी सरकारी हिंसाको रोकनेके लिए इस सम्पत्तिका नाश जरूरी हो भी सकता है।"

किन्तु गांधीजीको यह दलील स्वीकार नहीं थी। "राष्ट्रीय सरकार होने पर भी किसी व्यक्तिको राष्ट्रकी सम्पत्ति नष्ट करनेका इसीलिए अधिकार नहीं मिल जाता कि वह सरकारके आचरणसे असन्तुष्ट है। साथ ही, बुराई मकानोंमें, तार-टेलीफोनमें या सड़कोंमें नहीं रहती, परन्तु उन व्यक्तियोंमें रहती है जो उनका दुरुपयोग करते हैं। इन सब चीजोंको नष्ट करके आप बुराईको तो अछूता ही छोड़ देते हैं। बुराईको बेकार बनानेके लिए विनाशकी नहीं, परन्तु विशुद्धसे विशुद्ध आत्मोत्सर्गकी जरूरत होती है, जो यह सिद्ध करके दिखा दे कि जिस संकल्पने सब-कुछ सत्यरूपी ईश्वरको अर्पण कर दिया है उसे अधिकारी झुका शायद सकें, परन्तु तोड़ नहीं सकेंगे।"



उन्होंने प्रत्युत्तर दिया: “हम इस बातसे सहमत हैं कि पुलों वगैराको नष्ट करनेसे बुराईका बाल भी बांका नहीं होता, बल्कि बदलेके रूपमें उससे भी बड़ी बुराईको उत्तेजना मिलती है। हम यह भी मानते हैं कि बुराई हमारे ही भीतर है; उसके बिना बाहरकी बुराई आगे बढ़ नहीं सकती। परन्तु रणनीतिकी दृष्टिसे आन्दोलनकी सफलताके लिए और पराजयकी भावनाको रोकनेके लिए गुप्तताका आश्रय लेना जरूरी हो सकता है।”

गांधीजीके लिए ये सब बातें जानी-बूझी थीं। उन्होंने इससे पहले भी आतंकवादके बचावके रूपमें यह दलील अकसर सुनी थी। गांधीजीने उन्हें समझाया कि आपका यह नया कार्यक्रम उस पुरानेसे किसी भी तरह भिन्न नहीं है। लोगोंने तो शारीरिक हिंसाकी व्यर्थताको अनुभव कर लिया है, परन्तु कुछ लोग समझते हैं कि तोड़-फोड़के संशोधित रूपमे वे उसका प्रयोग कर सकते हैं। उसमें न तो अहिंसाका गुण है और न वह पूरे सशस्त्र संघर्षकी ही जगह ले सकती है। आप सत्ताके इन प्रतीकोंसे थोड़ी देर तक चिपटे रह सकते हैं; इससे आपकी कल्पना-शक्तिको संतोष हो सकता है। परन्तु ये बच्चोंके खिलौनोंसे अधिक कुछ नहीं हैं। “हमें ऐसी सत्ताका सामना करना है, जिसे हार न स्वीकार करनेका गर्व है। अंग्रेजी राज्यके आरंभमें प्रचण्ड विद्रोह हुए थे। कई स्थानों पर अंग्रेज सचमुच हारे भी थे। परन्तु अन्तमें उनकी जीत हुई।” एक अंग्रेज राजनीतिज्ञ कहा करते थे : “काठकी बन्दूकमें मेरा विश्वास नहीं।” गांधीजी इस बातमें उनसे सहमत थे। राष्ट्रीय संग्राम ‘काठकी बन्दूकों’ से नहीं जीते जा सकते।

इसके विपरीत, गांधीजीने उनसे कहा, खयाल कीजिये कि हर प्रकारकी गुप्तताका निषेध करनेवाली सत्य और अहिंसाकी कार्य-प्रणाली पर चलकर जनताका सारा समूह साहस और निर्भीकताकी किस ऊंचाई तक पहुंच गया है। “हम नहीं जानते कि अहिंसा कैसे काम करती है। परन्तु यह सही है कि अहिंसाका पालन करके हम अपनी प्रकट असफलताओं और पराजयोंके बावजूद अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करते हुए आगे बढ़ते रहे हैं, जब कि आतंकवादके परिणाम-स्वरूप हम सदा ही पस्तहिम्मत और कमजोर बने हैं।”

उन्होंने गांधीजीसे पूछा : “आपने ‘भारत छोड़ो’ आन्दोलनको अहिंसक विद्रोह बताया था। क्या अहिंसक विद्रोह सत्ता छीननेका कार्यक्रम नहीं है?”



गांधीजीने उत्तर दिया, “नहीं, अहिंसक विद्रोह सत्ता छीननेका कार्यक्रम नहीं है। वह तो सम्बन्धोंमें कायापलट करनेवाला कार्यक्रम है, जिसका परिणाम सत्ताका शान्तिपूर्ण हस्तान्तरण होता है।”

उन्होंने समझाया, यदि जनताका अहिंसात्मक असहयोग इतना पूर्ण हो कि सरकारी तंत्र ठप हो जाय या मान लीजिये कि विदेशी आक्रमणकी टक्करसे संगठित सरकारके टूट जाने पर सत्ताकी शून्यता उत्पन्न हो जाय, तो स्वाभाविक रूपमें जनताका संगठन बीचमें आकर सत्ता अपने हाथमें ले लेगा। परन्तु इससे पहले जनताके सब वर्गोंमें इतना मेल, उद्देश्यकी एकता और एकरसता हो जानी चाहिये और समाज-विरोधी तत्त्वों पर इतना नियंत्रण स्थापित हो जाना चाहिये कि जनताकी सरकार अहिंसाके सिवा और किसी बलका सहारा लिये बिना अपनी आज्ञाओंका पालन करा सके। “वह सरकार कभी दमनका प्रयोग नहीं करेगी। उसके राज्यमें विरोधी विचार रखनेवालोंकी भी पूरी रक्षा की जायगी।

परन्तु जिन्होंने गुप्त प्रवृत्तिका रोमांच अनुभव कर लिया था, वे अपने विचार इतनी आसानीसे छोड़नेवाले नहीं थे। उन्होंने दलील की : “हम स्वीकार करते हैं कि तोड़-फोड़ और गुप्तता हिंसा है। परन्तु हमने देखा है कि जिसने हमारी गुप्त प्रवृत्तिकी शिक्षा पाई है, वह उस आदमीकी अपेक्षा सच्ची अहिंसाके अधिक नजदीक आ जाता है, जिसे ऐसा कोई अनुभव नहीं हुआ हो।”

इसके लिए गांधीजीके पास उत्तर तैयार ही था। उन्होंने कहा, आपने जो बात कही वह इसी अर्थमें सही है कि हिंसाका बार बार उपयोग करके ऐसा आदमी शायद उसकी व्यर्थताको अनुभव कर लेता है। मैं आपसे एक प्रतिप्रश्न पूछता हूँ : क्या आप यह भी कहेंगे कि जिसने पापका स्वाद चख लिया है वह उस व्यक्तिकी अपेक्षा, जिसने यह स्वाद नहीं चखा है, सदाचारके अधिक निकट है?

तोड़-फोड़ और गुप्तता आदिके कार्यक्रमके बारेमें गांधीजीके विचार प्रकाशित होने पर कांग्रेसियोंके एक वर्गने अप्रसन्नता प्रकट की। एक कार्यकर्त्री बहनने गांधीजीसे कहा: “आपने कहीं ऐसा कहा था कि आपकी गिरफ्तारीके बाद हमें स्वयं अपने नेता बनना होगा। कार्यसमितिकी अनुपस्थितिमें प्रत्येक पुरुष या स्त्रीको अपने लिए स्वतंत्र रूपससे सोचना था। हमने अपनी बुद्धिके अनुसार काम किया था। आपके हालके उद्धारोंसे हमको लगता है कि हमारे साथ न्याय नहीं किया जा रहा है।”



गांधीजीने उत्तर दिया: “मैंने किसीको दोष नहीं दिया। लेकिन जब कोई बात गलत हो तो मुझे कहना ही चाहिये।”

“क्या इससे हमारे कामको हानि नहीं पहुंचेगी ?”

“नहीं, अपनी भूलोंसे हम सीखते हैं। उन्हें सुधार कर हम आगे बढ़ते हैं।

“कुछ लोग कहते हैं कि यदि अहिंसाका आप ऐसा संकीर्ण अर्थ करते हैं, तो हमें ऐसी अहिंसा नहीं चाहिये। आप इसे हिंसा कहिये या और कुछ नाम दीजिये, तोड़-फोड़ और दूसरी विध्वंसक प्रवृत्तियोंके बिना हम सरकारको उखाड़ नहीं सकते।”

“ऐसा प्रयत्न सफल नहीं हो सकता, चाहे कुछ समयके लिए वह सफल होता दिखाई दे या सचमुच सफल भी हो जाय। परन्तु मैंने कहा है कि जो लोग मेरी कार्य-पद्धतिमें विश्वास नहीं रखते, वे खुले तौर पर ऐसा कह सकते हैं और हिम्मतके साथ अपने ही उपायोंको आजमा कर देख सकते हैं कि उनके द्वारा क्या वे अधिक सफल हो सकते हैं।”

“हम स्वीकार करते हैं कि लोकमत आपके विचारका बन गया है। ज्ञानपूर्वक या भयके कारण जनता यह अनुभव करने लगी है कि तोड़-फोड़से काम नहीं बनेगा। लेकिन आप प्रत्येक मनुष्यसे पूर्ण होनेकी आशा नहीं रख सकते, जब कि आपकी कार्य-प्रद्धतिका गूढ़ार्थ यही है।”

“मैं आपके मतसे सहमत हूं। इसीलिए तो मैंने अपूर्ण मनुष्योंके साथ स्वातंत्र्य-संग्राम आरंभ किया। लेकिन लोगोंमें आवश्यक अहिंसाका विकास हो या स हो, मैं अपने सिद्धान्तोंके साथ समझौता नहीं कर सकता।”

“हमारे लक्ष्य तक शीघ्रातिशीघ्र पहुंचनेका मार्ग कौनसा है?”

“जो सबसे सीधा मार्ग है, भले ही वह लंबा दिखाई दे।”

“तब आप निकट भविष्यमें स्वाधीनता मिलनेकी आज्ञा नहीं करते ?”

“मैं तो उसके निकटतम भविष्यमें मिलनेकी आशा करता हूं, यदि मेरा मार्ग अपनाया जाय।”



कार्यकर्त्री बहन अपनी बात पर डटी रहीं: “तो आप यह चाहते हैं कि हम क्रुद्ध भी हों और चुप भी बैठे रहें?”

“नहीं, मैं तो चाहता हूं कि आप अपने आप पर अत्यन्त क्रुद्ध हों। सांप पर क्रोध करनेसे कोई लाभ नहीं होता। सांप तो काटेगा ही। मेरी पद्धति आपको पसन्द न आती हो, तो जो पद्धति पसन्द आये उस पर चलिये। लेकिन चुपचाप मत बैठिये।”

“हममें इतना साहस नहीं है। आपका विरोध करके हम आगे नहीं बढ़ सकते।”

“आपको यह साहस अपनेमें पैदा करना चाहिये। . . . अकेले खड़े होनेके इस साहसके कारण ही मेरे लिए यह माना जाता है कि मैं भारतकी स्वातंत्र्य-भावनाका प्रतिनिधि हूं। स्वराज्य कमजोरोंके लिए नहीं होता। यदि आप कहें कि आप मेरी अनुयायिनी हैं जब कि वास्तवमें आप नहीं हैं, तो कहा जायगा कि आप दुर्बल हैं।”

कार्यकर्त्री निरुत्तर हो गईं। गांधीजीन उन्तका असमंजस ताड़ लिया। वे उन्हें आश्वस्त करते हुए बोले : “फिर भी आप कह सकती हैं, 'हम आपका तर्क तो नहीं समझते, लेकिन आपके अनुभवके सामने झुकते हैं।' आप अपने साथी कार्यकर्ताओंसे कह सकती हैं, 'हम वहां गये थे। उनकी बात हमारे गले नहीं उतरी, लेकिन हम गांधीजीको भी अपनी बात समझा नहीं सके। इसलिए हम अनुशासनबद्ध सैनिकोंकी तरह उनका अनुसरण करेंगे।' लेकिन यह रास्ता अगर उन्हें न जंचे, तो उन्हें भी उतने ही खुले तौर पर यह कहनेका अधिकार है, 'महात्माजीने हमसे कह दिया है कि मेरी पद्धति न जंचे तो हम अपनी ही बुद्धिके अनुसार काम कर सकते हैं।' यह भी उतना ही सम्मानपूर्ण मार्ग है - शायद अधिक सम्मानपूर्ण हो। तब मैं उनकी रक्षा करूंगा।”

औंधके राजकुमार अप्पासाहब पन्त गुप्त कार्यकर्ताओंको सलाह और मार्गदर्शन दे रहे थे। उन्होंने अपनी दुविधा गांधीजीके सामने रखी: “मेरे लिए सत्य और अहिंसा नीति नहीं परन्तु धर्म हैं। मैं ऐसे गुप्त कार्यकर्ताओंको जानता हूं, जो मक्खीको भी जान-बूझकर चोट पहुंचाना नहीं चाहते। उनके रोस रोममें देशप्रेम समाया हुआ है। जब वे मेरे पास आते हैं और मेरी सलाह मांगते हैं, तो मुझे उन्हें आश्रय देना ही



पड़ता है। मैं उन्हें गुप्त उपायोंसे विमुख करना चाहता हूं। लेकिन ऐसा करते हुए खुद मुझे ही गुप्तताका आश्रय लेना पड़ता है। इसलिए मैं चक्करमें पड़ा हुआ हूं और बड़ा परेशान हूं।”

गांधीजीने उत्तर दिया: “आपके इस रुखके खिलाफ कोई आक्षेप नहीं हो सकता। आप दौड़ती हुई गाड़ीसे बाहर नहीं कूद सकते। किसी बाहरके व्यक्तिसे आपको सफल पथप्रदर्शन नहीं मिल सकता। वह तो भीतरसे ही मिलना चाहिये। यदि आप अपने ही अन्तरमें गहरे पैठ कर प्रार्थनापूर्वक इसका उत्तर ढूँढ़ेंगे, तो एक स्थिति ऐसी आयेगी जब अचानक आपकी आंखें खुलेंगी और आपको असत्य और गुप्ततासे इतनी घृणा होगी कि गुप्त कार्यकर्ताओंके पास जाकर आप उनसे कहेंगे कि यदि वे अपने ही रास्ते पर चलना चाहते हों, तो आप उनके मार्गदर्शकका काम नहीं कर सकते। तब वे आपका मुंह देखकर ही यह बात समझ जायेंगे और बहुत संभव है कि उनके जीवनमें भी इससे एक नया अध्याय आरम्भ हो जाये।”

*

इन सारी चर्चाओंका नतीजा यह निकला कि अधिकांश कांग्रेसी, जो देशके विभिन्न भागोंमें गुप्त प्रवृत्तियां कर या चला रहे थे, सामने आ गये। कुछ लोगोंने अधिकारियोंके सामने अपनेको पेश कर दिया और कुछ खुले रूपमें सविनय आज्ञाभंग करके जेल चले गये।

एक गुप्त कार्यकर्ता, जिनकी पुलिस तलाश कर रही थी, गांधीजीके आगे आत्म-समर्पण करनेके लिए सेवाग्राम आश्रम आये। पुलिसको इसका पता चल गया। पुलिस सब-इन्स्पेक्टर मेरे पास आया और उसने वह चिट्ठी मांगी, जो गुप्त कार्यकर्ताने गांधीजीको दी थी। गांधीजीने जवाबमें यह लिख दिया: “ये भाई मेरे पास आये और बोले, “मुझे आप पर और आपके उपदेशों पर विश्वास है, और मैंने आत्म-समर्पण करनेका निर्णय कर लिया है।” इसीलिए उन्होंने यह चिट्ठी लिखी है। मैं यह भी कह दूं कि वे मेरे सामने अपना अपराध स्वीकार कर लेते, तो भी पुलिसको उसे न बताना मेरा कर्तव्य होता। मैं एक ही साथ सुधारक और सूचना देनेवाला नहीं हो सकता।” [गांधीजीका पत्र भुसावलके पुलिस सब-इन्स्पेक्टरको, ४ फरवरी १९४५]



अच्युत पटवर्धन और अरुणा आसफअली ब्रिटिश अधिकारियोंके आगे आत्म-समर्पण करनेको तैयार नहीं हो सके। अच्युत विषादग्रस्त हो गये थे। परन्तु एक वफादार और अनुशासनबद्ध सैनिककी तरह गांधीजीके 'निर्णय' का आदर करके उन्होंने गुप्त कार्रवाइयोंसे हट जानेका निश्चय कर लिया। अरुणाने आखिर तक अपनी गुप्त प्रवृत्तियां जारी रखना पसन्द किया। उन्हें गांधीजीने लिखा :

मेरा संपूर्ण हृदय तुम्हारे लिए सहानुभूतिसे भरा हुआ है। मैं किसीसे भी ऐसी कोई बात करनेको नहीं कह सकता - तुमको तो हरगिज नहीं - जिससे किसीके अभिमानको धक्का पहुंचे। यदि तुम आत्म-समर्पण करोगी तो अपनेको और अपने साथ देशको भी ऊंचा उठानेके लिए ही करोगी। आत्म-समर्पण तुम्हारी दुर्बलताका नहीं, किन्तु तुम्हारे बलका परिचायक होगा। यह संग्राम साहस और शौर्यसे पूर्ण रहा है। तुम इसमें केन्द्रीय व्यक्ति हो। तुम इतनी निकट हो, इसलिए मुझे तुमसे मिलकर बहुत खुशी होगी। . . . परन्तु यदि तुम न मिल सको तो मेरी यह सलाह है। मैं नहीं चाहता कि तुम आत्म-समर्पण करो, जब तक कि तुम यह अनुभव न करो कि यह ज्यादा अच्छा रास्ता है। मैं अहिंसाके अमलमें गुप्तताको पाप मानता हूं, परन्तु उसका पालन यांत्रिक ढंगसे नहीं किया जा सकता। . . . इसलिए क्या उचित है, इसकी सबसे अच्छी निर्णायक तुम्ही हो। और क्या ८ अगस्त, १९४२ के महान प्रस्तावके अंतिम वाक्यमें कांग्रेसका यही अंतिम सन्देश नहीं है? . . . ईश्वर ही तुम्हारा एकमात्र पथप्रदर्शक हो। जैसी उसकी आज्ञा हो वैसा करो। एक वचन मैं तुम्हें देता हूं कि तुम कुछ भी करो, मैं तुम्हारा न्यायाधीश नहीं बनूंगा। [गांधीजीका पत्र अरुणा आसफअलीको, ३० जून १९४४]

जब अच्युत और अरुणाके वारंट १९४६ के शुरूमें रद्द कर दिये गये तब वे दोनों गुप्तवाससे बाहर आ गये।

गांधीजीकी स्थिति विषम हो गई थी। नियमानुसार वे सेनापति नहीं थे और कोई आदेश निकालनेकी उनकी इच्छा नहीं थी। परन्तु कार्यकर्ता उनसे कहते थे कि हम अपनी ही बुद्धिसे काम लेना नहीं चाहते; हमें आप रास्ता बताइये। गांधीजी सैन्यरहित सेनापति थे, इसलिए आज्ञा दिये बिना उन्हें मार्गदर्शन देना था और अपनी श्रद्धाके - जो कि बुद्धिकी पहुंचके परे है - गूढ़ार्थ बुद्धिकी भाषामें



समझने पड़ते थे और उन लोगोंको समझाने पड़ते थे, जिनका अपनी ही बुद्धि पर भरोसा नहीं था। उन्होंने कहा, “मैं नहीं चाहता कि हमारे लोग अपनी बुद्धिको ताला लगा लें। बुद्धिमान माता-पिता अपने बच्चोंको भूल करने देते हैं। कभी कभी भूलोंके कारण उन्हें कष्ट उठाना पड़े, तो इससे उन्हें लाभ ही होता है।”

२

कांग्रेस संस्था पर बर्बरतापूर्ण प्रहार किया गया था, जिसके फलस्वरूप चारों कोने चित्त होकर पड़ी थी। गांधीजीने कुशलतासे उसकी सार-संभाल करके उसे पुनः जीवन और बल देना शुरू कर दिया। इस काममें तो वे प्रवीण थे ही। कार्यकर्ताओंके साथ उनका सम्पर्क था, इससे उन्हें स्थितिका ठीक पता लग गया था। बंगालसे आई हुई महिला कार्यकर्त्रियोंकी एक मंडलीसे उन्होंने कहा, “मुझे आज या निकट भविष्यमें कोई सामान्य सामूहिक आन्दोलन होनेकी कोई आशा दिखाई नहीं देती। सांप काटता तो थोड़ोंको ही है, परन्तु उसकी फुफकारसे बहुत लोग डर जाते हैं। इसी तरह सरकारने कुचला तो कुछ लोगोंको ही है, परन्तु अपना असीम पशुबल दिखाकर उसने बाकी लोगोंको भयभीत कर दिया है।”

उनसे पूछा गया, तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि कोई नया संग्राम छेड़नेके अवसरके लिए हमें युद्धके बाद तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी? या हमें अपना प्रतिरोध जारी रखना चाहिये?

गांधीजीने उत्तर दिया, “विदेशी सत्ताका प्रतिरोध तो एक क्षणके लिए भी शिथिल नहीं किया जा सकता। उसका उपाय यह है कि हम रचनात्मक कार्य करते रहें और जब कभी गुंजाइश हो व्यक्तिगत सविनय आज्ञाभंग करके उसे सहायता पहुंचायें। सविनय आज्ञाभंग बड़ा जबरदस्त हथियार है। परन्तु हरएक मनुष्य उसको नहीं चला सकता। उसके लिए तालीम और आन्तरिक बल चाहिये। उसके प्रयोगके लिए अवसर चाहिये। परन्तु रचनात्मक कार्य तो जो भी करना चाहे उसके लिए हमेशा तैयार है ही। **यह तो अहिंसक सैनिककी कवायद है।** इसके द्वारा आप ग्रामजनोंको आत्म-निर्भरता, स्वावलम्बन और स्वतंत्रताका अनुभव करा सकते हैं, ताकि वे अपने अधिकारोंके लिए खड़े हो सकें। यदि आप रचतात्मक कार्यक्रमको सचमुच सफल बना दें, तो आप सविनय आज्ञाभंगके बिना ही भारतके लिए स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।”



कांग्रेस पर पाबन्दी लगी हुई थी। देशके कुछ भागोंसे पांचसे अधिक आदमियोंके अनौपचारिक रूपमें इकट्ठे होने पर निषेधाज्ञा लगी हुई थी; कुछ स्थानोंमें खादीकी भी मनाही थी। कार्यकर्ताओंने पूछा: ऐसी स्थितिमें कैसे काम किया जाय ?

गांधीजीने उन्हें समझाया कि यद्यपि मैंने सामूहिक सविनय आज्ञामंगका निषेध किया है, फिर भी कांग्रेसकी साधारण प्रवृत्तियोंके बारेमें मनाहीकी आज्ञाएं हों तो उनको भंग करना चाहिये। “हमें ऐसी आज्ञाओंकी परवाह न करके इसी तरह काम करते रहना चाहिये, मानो वे हैं ही नहीं।” उदाहरणके लिए, मान लीजिये कि आपने सेवाग्राम गांवकी सफाईका काम हाथमें लिया और सरकारने उसकी मनाही कर दी, तो आप वह काम न छोड़ें। “ऐसा होना चाहिये कि आपके हाथसे झाड़ू छीन लेनेसे पहले उसे आपके हाथ तोड़ने पड़ें।” या दूसरा उदाहरण लीजिये। आपको अपने घरों पर राष्ट्रीय झंडा फहरानेसे कौन रोक सकता है ? आपने नहीं फहराया तो इसका कारण इतना ही था कि अपने स्वाभिमानकी रक्षा करनेकी आपमें शक्ति नहीं रही। “मैं प्रत्येक व्यक्तिका यह धर्म समझता हूं कि वह अपने स्वाभाविक अधिकारोंके लिए लड़े। यह ऐसा धर्म है, जिसे टाला नहीं जा सकता।”

जिनमें प्रतिरोध करनेकी इच्छा तो है, परन्तु ऐसा करनेकी शक्ति नहीं है, ऐसे लोगोंके लिए आप क्या कहते हैं ? ”

“ऐसोंको मेरी सलाह है कि वे शक्ति पैदा करनेके साधनके रूपमें रुचनात्मक कार्यको अपना लें और बलप्राप्तिके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करें।”

“मान लीजिये कि सरकार आपको गिरफ्तार कर ले, तो उस हालतमें सफल होने तक स्वातंत्र्य-संग्रामको जारी रखनेके लिए आप क्या कार्य-योजना सुझायेंगे ?”

“अपनी जड़ताको छोड़ कर जिस कामकी मैंने रूपरेखा बताई है, उसे लगनके साथ करते रहिये।”

एक कार्यकर्त्रीने पूछा: “हमारे पिछले संग्रामोंमें यह पाया गया कि सरकारकी पाशविक हिंसाने लोगोंको बदलेमें हिंसा करनेके लिए प्रेरित किया था। इस समस्याको कैसे हल किया जाय?”



गांधीजीने उत्तर दिया: “यह स्त्रियोंका क्षेत्र है। मैं असंख्य बार कह चुका हूं कि अहिंसा स्त्रियोंका जन्मजात गुण है। युग युगसे पुरुषोंको हिंसाकी तालीम मिली है। अहिंसक बननेके लिए उन्हें अपनेमें स्त्रियोंके गुण पैदा करने होंगे। जबसे मैंने अहिंसाको अपनाया है तबसे मैं स्वयं दिनोंदिन स्त्री बनता जा रहा हूं।” स्त्रियां परिवारके लिए त्याग करनेकी आदी तो हैं। अब उन्हें देशके लिए बलिदान करना सीखना है। “मैं सब स्त्रियोंको, जिनमें करोड़पतियोंकी पत्नियां भी शामिल हैं, अपनी अहिंसक सेनामें भरती होनेका निमंत्रण देता हूं। करोड़पति पति अपने रुपयोंका घमंड कर सकते हैं; उसमें वे अपनी पत्नियोंकी सेवाओंका यश और जोड़ लें।”

*

अकाल, आंधी-तूफान और सरकारी दमन, इस तीनोंने मिल कर बंगालके लोगोंकी आत्माको कुचल दिया था। आम लोगोंको लगता था कि उनका कोई रखवाला नहीं रहा। मिदनापुरमें भी, जहां लोगोंने आश्चर्यजनक शौर्य दिखाया था, वे निराशा अनुभव कर रहे थे। ऐसा क्यों हुआ था? इस सवालका गांधीजीका विश्लेषण इस प्रकार था: उन्होंने ऊंचे दर्जेकी त्याग-वृत्ति प्रगट की है, परन्तु अपनेमें वह अहिंसा पैदा नहीं की जो निराश होना जानती ही नहीं। मैं अपनी व्याख्यावाली अहिंसाकी बात नहीं कर रहा हूं, परन्तु उस व्यावहारिक अहिंसाकी बात कर रहा हूं, जिसे कांग्रेसने नीतिके रूपमें स्वीकार किया है। नीतिको जब तक हम नीतिके रूपमें मानते हैं तब तक उसके प्रति हमारी अनन्य निष्ठा होनी चाहिये। यहीं उनके आचरणमें कमी रह गई। “कोई सिपाही, जिसने हिंसाका प्रण किया है और अधिकसे अधिक शत्रुओंको मार डालनेकी कसम खाई है, सेनापतिकी आज्ञा पाकर अपनी हवालातमें रखे हुए युद्धबन्दियोंकी प्राण देकर भी रक्षा करेगा। वह उस आज्ञाका पालन अक्षरशः करेगा और भावनामें भी करेगा। यही कांग्रेसियोंने नहीं किया और इसीलिए उन्हें निराश और पथभ्रष्ट होना पड़ा। उन्होंने आज्ञा-पाकलन तो किया, परन्तु मनमें चोरी रखकर किया।”

एक कार्यकर्ता बोले, “आपने हमें बताया है कि अहिंसा अत्यन्त ऊंची कोटिका गुण है, इसलिए अत्यन्त ऊंचे लोग ही उसका आचरण कर सकते हैं। तो क्या इसका उपदेश उन्हें दिया जा सकता है, जिन्होंने नैतिक साहस और प्रेमकी भावनाका विकास नहीं किया है?”



“धर्मके रूपमें अहिंसाका पालन कोई भी ऐसा मनुष्य कर सकता है, जो श्रद्धापूर्वक परमेश्वरका अनुसरण करता है। सभीको ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते, परन्तु अनेकोंको श्रद्धापूर्वक ईश्वर पर विश्वास होता है।”

गांधीजीसे फिर पूछा गया, “श्रद्धा न हो तो उसे कैसे प्राप्त किया जाय ?”

“उसके लिए तपस्या करके। श्रद्धा तपस्याका फल है, अर्थात् सच्ची इच्छाका और उस इच्छाकी पूर्तिके लिए किये जानेवाले सतत प्रयत्नका फल है।”

दूसरे एक कार्यकर्ताने पूछा, “हमारे संग्रामके परिणामस्वरूप आप ब्रिटिश शासकोंके हृदयोंमें कोई उल्लेखनीय परिवर्तन देखते हैं?”

गांधीजीने उत्तर दिया : “हमारे यहांके स्थानीय शासकोंमें जो परिवर्तन मुझे दिखाई देता है, वह तो बुरा परिवर्तन है। परन्तु ब्रिटिश जनतामें और सारी दुनियाके लोगोंमें सच्ची दिशामें परिवर्तन हुआ है; और यह मेरे विचारसे मुख्यतः सत्याग्रहके कारण हुआ है।”

इस कथनके दूसरे भागके बारेमें कार्यकर्ताके मनमें शंका थी। अतः गांधीजीने आगे कहा: “आपको यह नहीं मान लेना चाहिये कि सत्याग्रहकी कला असफल सिद्ध हुई है। दक्षिण अफ्रीकामें समझौतेसे ठीक पहलेकी जनरल स्मट्सकी भाषामें और लिनलिथगो या एमेरीकी हालकी भाषामें कोई अन्तर नहीं था। वहां इस बारेमें गरम अफवाहें फैली हुई थीं कि दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार सत्याग्रह आंदोलनको कुचल देनेके लिए सख्त कदम उठानेकी बात सोच रही है और फिर अचानक सम्मानपूर्ण समझौता हो गया। इसी तरह यहां भारतमें भी समझौता होकर रहेगा। हां, लोग नितान्त पागल हो जायं तो दूसरी बात है।”

कुछ ठहर कर गांधीजी बोले: “अलबत्ता, समझौता और निबटारा तो बोअर-युद्धके अन्तमें भी हुआ था, यद्यपि बोअर लोग पूरी तरह हिंसक थे। परन्तु सोचिये तो, बोअरोंको उसकी क्या कीमत चुकानी पड़ी ? उन्होंने जो बलिदान दिया उसके एक अंशका बलिदान भी हम विशुद्ध अहिंसक ढंगसे देते, तो हमारा संग्राम बहुत पहले ही सफलतापूर्वक समाप्त हो जाता। मुझे स्वतंत्रता आती दिखाई दे



रही है और वह भी सुदूर भविष्यमें नहीं, परन्तु हमारी आंखोंके सामने ही। . . . आज हमें जो अंधकार दिखाई दे रहा है, वह तो उषाकालसे पहलेका आवश्यक अंधकार है।”

वे भाई इस बातसे सहमत थे कि सत्याग्रहकी कलामें बहुत बड़ी शक्ति छिपी हुई है, परन्तु उनका विश्वास सत्याग्रहके बहिष्कारवाले अंग पर ही था। उपवास, प्रार्थना आदि उसके आध्यात्मिक भागका साम्राज्य-वादियोंके हृदय और मन पर कोई असर होता है इसमें उन्हें शंका थी ।

गांधीजीने उनसे प्रश्न किया : “कितने लोगोंने विरोधीका हृदय-परिवर्तन करनेके लिए उसका पालन किया है? शायद मैं अकेला ही उसका पालन करनेवाला होऊंगा। मैं प्रमाण तो नहीं दे सकता, लेकिन प्रार्थनाकी क्षमतामें मेरी अटल श्रद्धा है।”

*

दो राष्ट्रीय शालाओंके कुछ शिक्षक सलाह-मशविरेके लिए गांधीजीके पास आये । उनकी शालाओंकी सम्पत्ति सरकारने जब्त कर ली थी और वे खुद भी जेलसे हालमें ही छूटे थे। गांधीजीने उनसे कहा: “बहुत बार हमारी निष्क्रियताकी तहमें एक गुप्त अनिर्वचनीय भय होता है । सत्याग्रहियोंको अपने निर्भय आचरणसे अपने पड़ोसियोंको निर्भयताकी छूत लगा देनी चाहिये।”

शिक्षकों ने पूछा : “सरकार शालाकी सम्पत्ति लौटानेकी शर्तके तौर पर हम पर प्रतिबन्ध लगाये या माफी मांगनेको कहे, तो हमें क्या करना चाहिये ?” गांधीजीने उत्तर दिया, “अवश्य ही आपको ऐसी शर्तें स्वीकार नहीं करना चाहिये। परन्तु आपको अपनी बुद्धिके अनुसार कार्य करनेसे क्यों डरना चाहिये? ऐसे मामलेमें मुझसे परामर्श करनेकी जरूरत क्यों होनी चाहिये? मनुष्यको जो सत्य प्रतीत हो उसके अनुसार उसे चलना चाहिये और विश्वास रखना चाहिये कि परम सत्यकी शोधका यही एक मार्ग है। अनिश्चय और अनिर्णय बहुधा मानसिक आलस्यके चिह्न होते हैं। भूल सब करते हैं, परन्तु भूल करनेके डरसे निष्क्रिय तो नहीं बैठना चाहिये। जैसा गीताने कहा है, ‘संशयात्मा विनश्यति’।”

गांधीजी आगे बोले : मैंने आशा रखी थी कि ‘भारत छोड़ो’ संग्राम आजादीकी लड़ाईकी आखिरी मंजिल होगा। परन्तु ऐसा नहीं लगता। लोग अहिंसाके सन्देशको हजम नहीं कर पाये । जब मैं जानता



था कि लोगोंने अहिंसाके सन्देशको पूरी तरह पचाया नहीं है, तो फिर मैंने आंदोलन शुरू ही क्यों किया? “मेरा उत्तर यह है कि अहिंसामें और ईश्वरमें रही मेरी श्रद्धाने ही मुझे यह आंदोलन आरंभ करनेकी प्रेरणा दी। कर्म मेरा ध्यानमंत्र है। फलकी मुझे चिन्ता नहीं होती। भगवानने जो साधन मुझे सौंपे हैं, उन्हींको लेकर मुझे काम करना पड़ता है। मैं अपने लिए कोई नई सृष्टि नहीं रच सकता। मैं करोड़ों मूक लोगोंके लिए जी रहा हूं। मुझे विश्वास है कि वे मेरा साथ नहीं छोड़ेंगे। इसलिए मैं आशाका त्याग किये बिना कार्य कर सकता हूं। मैं जानता हूं कि अन्तमें सब ठीक हो जायगा; परन्तु हमें अग्नि-परीक्षामें से तो गुजरना ही होगा।”

*

कार्यकर्ताओंकी एक और मंडलीसे गांधीजीने कहा: “जो लोग सोचते हैं कि करनेके लिए कुछ नहीं है, वे मुझे नहीं जानते। जो लोग यह खयाल करते हैं कि चरखा चलानेके सिवा और कुछ करनेको नहीं है, वे भी मुझे नहीं पहचानते। चरखा तो है ही। परन्तु उसके अलावा मैंने देशके सामने एक निश्चित कार्यक्रम रखा है। आपको कांग्रेस महासमितिके समक्ष दिया हुआ मेरा ८ अगस्तवाला भाषण दुबारा पढ़ कर अपनी स्मृति ताजी कर लेनी चाहिये।” [८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस महासमितिकी बैठकमें अपने अन्तिम भाषणमें गांधीजीने कहा था: “लीजिये, आपको मैं एक छोटा-सा मन्त्र देता हूं। . . . वह मन्त्र है—करो या मरो।” या तो हम भारतको आजाद करेंगे या इस प्रयत्नमें हम मर जायेंगे। . . . पत्रकार . . . खुले तौर पर यह घोषणा कर दें कि वे पूरे दिलसे कांग्रेसके साथ हैं।” उन्हें स्टैंडिंग प्रेस एडवाइज़री कमिटी (स्थायी प्रेस सलाहकार समिति) को बन्द करके यह घोषणा कर देनी चाहिये कि वर्तमान प्रतिबन्धोंके मातहत वे लिखना छोड़ देंगे और सरकार आज्ञा देकर उनसे कुछ भी करानेकी आशा नहीं रख सकती। उन्हें सरकारी वक्तव्योंको, जो झूठसे भरे होते हैं, छापनेसे इनकार कर देना चाहिये। राजा-महाराजा पोलिटिकल डिपार्टमेंटको लिख दें: “हम आजसे अपनी प्रजाके बन कर रहेंगे और उसीके साथ डूबेंगे या तिरेंगे।” देशी राज्योंकी प्रजाको घोषणा कर देनी है कि वह राजाओंका नेतृत्व तभी मानेगी जब वे अपना भाग्य प्रजाके साथ मिला देंगे, अन्यथा नहीं। सरकारी कर्मचारी अपने पदोंसे इस्तीफा दें या न दें, परन्तु उन्हें खुली घोषणा कर देनी चाहिये कि वे कांग्रेसके प्रति वफादार हैं। सैनिकोंको सरकारसे कह देना चाहिये : “हमारे हृदय कांग्रेसके साथ हैं। . . . हम आपके न्यायपूर्ण आदेश मानेंगे, परन्तु हम



अपने ही लोगों पर गोली नहीं चलायेंगे।” विद्यार्थियोंको अपने अध्यापकोंसे कह देना चाहिये: “हम सब कांग्रेसके हैं। . . . यदि आप भी कांग्रेसके हैं, तो आपको अपनी जगह खाली करनेकी जरूरत नहीं है। परन्तु आप हमें स्वतंत्रताकी शिक्षा दें और स्वाधीनताका मार्ग दिखायें।”]

९ अगस्त—‘भारत छोड़ो’ दिवसकी वर्षगांठ नजदीक आ रही थी। उसे कैसे मनायें ? अधिकारी उसके मनानेमें बाधा डालें तो क्या किया जाय ? गांधीजीकी सलाह स्पष्ट थी: कोई उग्र कार्यक्रम उस दिन नहीं होना चाहिये। चुने हुए लोग ही उसमें भाग लें। अधिकारियोंके सारे उचित भय दूर करनेकी पूरी सावधानी रखी जाय और उत्तेजनाके लिए उन्हें कोई कारण ना दिया जाय। परन्तु किसी भी कारणसे ९ अगस्तका दिन मनाना छोड़ा न जाय। अगर व्यक्तिकी हैसियतसे भी हम शासनकी अन्यायपूर्ण आज्ञाओंका नम्रतापूर्वक प्रतिरोध करनेका अपना अधिकार छोड़ दें, तो सात्याग्रहकी दीक्षा लेकर देशने पिछले २५ वर्षोंमें जो सबक सीखा है वह सब व्यर्थ हो जायगा। इसलिए मैं सब खतरे मोल ले लूंगा, परन्तु आगामी ९ अगस्तका दिन प्रतीक रूपमें मनानेका विचार त्यागनेकी सलाह नहीं दूंगा।

गांधीजीकी सलाहके अनुसार बम्बईके २५ नागरिकोंने बम्बईके पुलिस कमिश्नरको ९ अगस्तसे एक सप्ताह पहले यह सूचना भेजी कि चौपाटीके मैदानमें महान देशभक्त स्व. लोकमान्य तिलककी मूर्तिके सामने वे पांच मिनट तक मौन प्रार्थना करेंगे और झंडाभिवादनका गीत गाकर बिखर जायेंगे। उन्होंने यह विधि पूरी करनेकी अनुमति मांगी। इस विचारसे कि भीड़ इकट्ठी न हो, आम जनताके लिए समय और स्थानकी घोषणा नहीं की गई। हां, पुलिस अधिकारियोंको बाकायदा सूचना दे दी गई, ताकि वे अपनी जरूरी तैयारियां कर सकें। समारोहके एक दिन पहले गांधीजीने एक वक्तव्य निकाला, जिसमें कहा गया था कि: “यदि इस असाधारण धीरज और सावधानीकी भी कद्र न की गई और अधिकारियोंने . . . नागरिक अधिकारके सीधे-सादे सांकेतिक प्रयोगमें भी हस्तक्षेप किया, तो सारा दोष अधिकारियोंका होगा।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, ८ अगस्त १९४४]

गांधीजी तो महिला सत्याग्रहियोंको ही भेजना पसन्द करते, क्योंकि स्त्रियां अहिंसाकी प्रतीक हैं। परन्तु व्यवस्था बदलनेके लिए समय नहीं रह गया था। पुलिस अधिकारियोंने इजाजत नहीं दी। ९ अगस्तके प्रातःकालकी शान्तिमें साढ़े पांच बजे २५ सत्याग्रही लोकमान्य तिलककी मूर्तिके सामने



प्राथेना करने और झंडाभिवादनका गान करनेके लिए पांच पांचकी टोलियोंमें जा रहे थे उस समय वे गिरफ्तार कर लिये गये।

सांकेतिक सत्याग्रह एक स्थान तक ही सीमित रहा और सारा देश उसे देखता रहा। इससे सत्याग्रहकी कार्य-पद्धतिका ऐसा प्रदर्शन हुआ, जो हिंसाकी शक्तियोंका बोलबाला होने पर अत्यन्त असरकारी सिद्ध होता है।

जब बम्बईने यह प्रतीकात्मक कार्य किया, तब सारे देशका ध्यान और सहानुभूति उसी पर केन्द्रित रही। अनुशासनबद्ध संयमने दमनकी धारको कुंठित कर दिया और उस प्रतीकात्मक कार्यमें लाखों आदमियोंके मानसिक रूपमें सम्मिलित होनेसे ऐसा नैतिक बल उत्पन्न हुआ, जो यदि जनताकी सहानुभूति और उसका ध्यान सारे देशमें छूटपुट प्रदर्शन करनेमें नष्ट कर दिया जाता तो उत्पन्न नहीं हो पाता।

इसके बाद आनेवाले स्वाधीनता-दिवस पर [सन् १९२९ में कांग्रेसने औपनिवेशिक स्वराज्यके बजाय पूर्ण स्वाधीनताको अपना ध्येय बताया था। तबसे २६ जनवरीका दिन प्रतिवर्ष स्वाधीनता-दिवसके रूपमें मनाया जाता था।] (२६ जनवरी, १९४५ को) लगभग २५० शिक्षार्थियोंने, जो कनु गांधीके श्रम-शिविरमें सेवाग्राममें तालीम पा रहे थे, और सेवाग्रामकी विविध रचनात्मक संस्थाओंके सदस्योंने सेवाग्राम गांवकी सफाईका कार्यक्रम हाथ में लिया। वे दो दोकी कतारमें टोकरी, बाल्टी और झाड़ू लेकर अपने काम पर जा रहे थे कि पुलिसने उन्हें रोक दिया। उनसे कहा गया कि वे कतार तोड़ दें तो ही आगे बढ़ सकते हैं। इस परिस्थितिमें यदि वे झुक जाते तो उनकी अहिंसा निरी कायरता सिद्ध होती। पर उन्होंने कतार तोड़नेसे इनकार कर दिया और पुलिसका घेरा तोड़नेकी कोशिश भी नहीं की; वे सब जमीन पर बैठ गये। अन्तमें पुलिसको झुकना पड़ा और निश्चित कार्यक्रम पूरा किया गया। शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने इस घटना पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा: यदि वे लोग क्रोधमें आ जाते और पुलिसके घेरेको तोड़नेका प्रयत्न करते, तो पुलिसको शायद गोली चलानी पड़ती। किन्तु स्वयं-सेवकोंके गौरवपूर्ण और मजबूत रवैयेके सामने पुलिसके हथियार बेकार हो गये। स्वयंसेवकोंने न तो गोली चलानेके लिए पुलिसको उत्तेजित किया और न वे विचलित हुए। उनके लिए सच्ची सत्ता



उनकी अन्तरात्माका आदेश था। मैं इसीको ईश्वर या सत्य कहूंगा। इस छोटीसी घटनामें हमारे सारे स्वातंत्र्य-संग्रामका सार आ जाता है। तिलक महाराजने हमें यह मंत्र दिया कि “स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।” मैंने उसमें उसका उत्तरार्द्ध जोड़कर उसे पूरा कर दिया है। वह उत्तरार्द्ध यह है: “उसका उपाय सत्य और अहिंसा है।” यह उपाय करोड़ों आदमियोंके लिए तभी संभव है, जब वे रचनात्मक कार्य करें। रचनात्मक कार्य और सविनय आज्ञा-भंगके मेलसे हम विजय पर विजय प्राप्त करते आ रहे हैं। यदि आप अपनी सफलता पर गर्व करेंगे, तो आपका गर्व ही आपका विनाश सिद्ध होगा। नम्रता सत्याग्रहीका विशिष्ट लक्षण है।

३

भारतीय साम्यवादी गांधीजीके रिहा होने पर उनका स्वागत करनेमें किसीसे पीछे नहीं रहे। वैसे, गांधीजी जिस ‘भारत छोड़ो’ प्रस्ताव पर अब भी अटल थे, उसके प्रति साम्यवादियोंका रवैया खुले विरोधका था। उनके दल पर उस समय तक प्रतिबन्ध लगा हुआ था जब तक रूस अपना पक्ष बदल कर मित्रराष्ट्रोंके साथ नहीं जुड़ गया। १९४१ में रूस पर नाजी आक्रमण होनेके बाद साम्यवादियोंने यह घोषणा की कि जिस युद्धकी अब तक वे ‘साम्राज्यवादी युद्ध’ कह कर निन्दा करते थे वह अब ‘जनताका युद्ध’ हो गया है। उन परसे प्रतिबन्ध हटा लिया गया और उनके तथा ब्रिटिश अधिकारियोंके बीच अस्थायी संधि हो गई। उसके बाद उन्होंने ‘भारत छोड़ो’ आन्दोलनको विफल करनेके लिए अपनी सारी शक्तिका उपयोग किया। परिणामस्वरूप सामान्यतः जनतामें और विशेषतः कांग्रेसियोंमें वे बदनाम हो गये थे।

गांधीजीकी रिहाईके बाद साम्यवादी दलके महामंत्री पी. सी. जोशीने उन्हें लिखा कि अपने दलकी ‘नीति’ का आपके सामने ‘स्पष्टीकरण’ करके मुझे बड़ी खुशी होगी। वे गांधीजीसे मिले। उसके बाद दोनोंके बीच लम्बा पत्र-व्यवहार हुआ। गांधीजीने उनके दलके विरुद्ध जो भी शिकायतें आई थीं वे सब उन्हें बताई और कुछ प्रश्न अपनी ओरसे भी किये। [गांधीजीने पी. सी. जोशीसे (११ जून १९४४ के) अपने पत्रमें ये प्रश्न पूछे थे: (१) “जनताके युद्ध’ में ‘जनता’ का क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ भारतके करोड़ों लोगोंके पक्षमें युद्ध है अथवा पूर्वी, दक्षिणी या पश्चिमी अफ्रीकाके हबशियोंके पक्षमें है या अमेरिकाके हबशियोंके पक्षमें है अथवा इन सभीके पक्षमें है? क्या मित्रराष्ट्र ऐसे युद्धमें लगे हुए हैं?



(२) जिस साम्यवादी दलके आप प्रतिनिधि हैं, उसके पैसेकी क्या सार्वजनिक जांच होती है? यदि होती है तो क्या मैं उसे देख सकता हूं? (३) यह कहा जाता है कि साम्यवादी दलने पिछले दो वर्षोंमें मजदूर-हड़तालोंने संगठनकर्ताओं और नेताओंको गिरफ्तार करनेमें अधिकारियोंकी सक्रिय सहायता की है। (४) कहा जाता है कि साम्यवादी दलने शत्रुताकी भावनासे कांग्रेस संगठनके भीतर घुसनेकी नीति अपनाई है। (५) क्या साम्यवादी दलकी नीतिका निर्देशन बाहरसे होता है?] उत्तरमें जोशीने लम्बी सफाई भेजी। गांधीजीने कुछ मुद्दों पर उस स्पष्टीकरणको स्वीकार कर लिया, लेकिन 'जनताका युद्ध' वाली बात उनके गले नहीं उतरी:

मेरा यह कहना है कि 'जनताका युद्ध' शीर्षक भारी गलतफहमी पैदा करनेवाला है। . . . मित्रराष्ट्रोंके साथ रूसके सीमित गठ-बन्धनसे पहले नाजी गुटके विरुद्ध जो एक साम्राज्यवादी युद्ध था वह, कल्पनाकी कितनी ही खींचतान करें तो भी, जनताके युद्धमें नहीं बदल सकता। . . . मेरे लिए आपके इस तर्कका उत्तर देना निरर्थक है कि "इस युद्धने दुनियाको दो छावनियोंमें बांट दिया है।" दोनोंमें से किसीकी भी दिशामें मैं नावको क्यों न ले जाऊं, मेरी नाव तो डूबने ही वाली है। इसलिए मुझे तो मंझधारमें ही रहना है। . . . आपके नाम यह पत्र तैयार करते समय मैंने आपके तर्कको बार बार पढ़ा है। उसका प्रत्येक पैरा मुझे खटकता है, क्योंकि मुझे उसमें सत्यका अभाव दीखता है। [गांधीजीका पत्र पी. सी. जोशीको, ३० जुलाई १९४४]

अपने बाकीके प्रश्नोंके उत्तरोंसे भी गांधीजीको सन्तोष नहीं हुआ था: "अन्य प्रश्नोंके आपके उत्तरोंके विषयमें मैं कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकता। . . . यदि मैं पूर्वाग्रहोंसे मुक्त होता, तो मुझे आपके उत्तर स्वीकार कर लेनेमें संकोच न होता। परन्तु मेरी कठिनाई वास्तविक है। . . . जब मैं स्वीकार करता हूं कि मुझमें पूर्वाग्रह हैं, तो मेरा आपसे यह अनुरोध है कि आप मेरे प्रति धीरज रखें और अधिकसे अधिक अच्छे ढंगसे मेरे पूर्वाग्रह दूर कर दें। . . . मैं आपको आश्वासन देता हूं कि मैंने अपने पूर्वाग्रहोंके आधार पर कोई काम नहीं किया है और न आगे करूंगा, जब तक कि मेरे पूर्वाग्रह पक्के होकर दृढ़ विश्वासका रूप न ले लें।" [वही]



साम्यवादियोंने इस विधान पर भी रोष प्रगट किया कि वे कांग्रेसमें भीतरसे तोड़-फोड़ करनेकी कोशिश कर रहे थे। “ हमारे लिए कांग्रेस संगठनमें अपने पांव फैलानेकी नीति अपनानेका कोई प्रश्न ही नहीं है। जबसे दलके रूपमें हमारा जन्म हुआ तभीसे हम कांग्रेसमें रहे हैं।” [पी. सी. जोशीका पत्र गांधीजीको, १४ जून १९४४] बेशक, साम्यवादी कांग्रेसमें थे, फिर भी भीतरसे कांग्रेसमें तोड़-फोड़ करना—जैसा कि अपने विविध ‘निबंधों’ में उन्होंने प्रतिपादन किया था— उनकी नीतिका ध्रुवपद पर था। ये निबन्ध उनके दलके सदस्योंमें समय समय पर गुप्त रूपमें बांट गये थे और उन्हें ऐसी सलाह दी गई थी कि वे कांग्रेसके भीतर एक गुट बनाकर काम करें और हर संभव उपायसे कांग्रेसकी नीतियोंको निष्फल बनायें।

साम्यवादी दलके महामंत्रीने गांधीजीको दोनों पक्षोंके ऐसे हितैषियोंसे साम्यवादियोंके बारेमें उनका मत पूछ लेनेको कहा, जिनके लिए गांधीजीको आदर था और जो अवश्य ही साम्यवादी दलको इन सब आरोपोंसे मुक्तिका प्रमाणपत्र दे देते। गांधीजीने उत्तर दिया: “उनकी ओरसे किसी भी प्रकारका सामान्य आश्वासन मिलनेसे मेरे पास जो प्रबल प्रमाण आये हैं वे मिट नहीं सकते । . . . मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि इन सारे प्रमाणोंको केवल पूर्वाग्रह कह कर आप टाल न दीजिये।” [गांधीजीका पत्र पी. सी. जोशीको, ३० जुलाई १९४४] गांधीजीने अपने पत्रके अन्तमें यह प्रार्थना की :

मेरा अनुरोध है कि आप अपने आलोचकों पर रोष न करें। . . . यदि उनकी आलोचनाका हेतु बुरा हो, तो आपके रोषके लिए उचित कारण होगा। . . . अन्तमें . . . विश्वास रखिये . . . कि मैंने अपने लिए और सारे देशके लिए जो मार्ग निर्धारित कर लिया है, उसके अनुसार स्वाधीनताकी लड़ाई लड़नेमें मैं आप सबकी सेवाओंका उपयोग करना चाहता हूं। और यदि मुझे विश्वास हो जायगा कि . . . आपकी पद्धति सही है, तो मुझे आपके पक्षमें आ जाना अच्छा लगेगा । और फिर मैं आपकी सेनामें एक सिपाहीकी तरह भरती होकर सच्चे हृदय और प्रसन्नताके साथ एक उम्मीदवारकी तरह सेवा करूंगा ।

इसके उत्तरमें गांधीजीको यह नमूनेका पत्र मिला: “यदि मेरे अपने पिताने वही लिखा होता जो आपने मुझे लिखा है, तो मैं उनके पत्रका उत्तर **कभी न देता** और मैं उनसे फिर कभी मिलने न जाता।



लेकिन मैं आपको लिख रहा हूँ, क्योंकि आप राष्ट्रके पिता हैं। . . . मैं जानता हूँ कि आपका आशय ऐसा नहीं है। परन्तु हमारे विचारोंके बारेमें आपका अज्ञान और हमारे दलके बारेमें आपके पूर्वाग्रह इतने बड़े हैं कि आप क्या लिखते हैं इसका भी आपको भान नहीं है। . . . मैं आपके साथ राजनीतिक प्रश्नोंकी चर्चा तभी करूंगा जब आप यह महसूस कर लेंगे कि अब आपके पूर्वाग्रह बाकी नहीं रहे। . . .” [पी. सी. जोशीका पत्र गांधीजीको, १२ सितम्बर १९४४]

परन्तु गांधीजीके लिखनेका कोई कारण था तो सिर्फ यही कि उनके मनमें पूर्वाग्रह थे और उन्हें वे दूर कराना चाहते थे। साम्यवादी दलके महामंत्रीके पत्रमें आगे कहा गया था: “हम बहुत सोचते रहे हैं कि आप हमारे इतने खिलाफ क्यों हैं। उसकी जड़ यह है कि आपने साम्यवादको गलत समझ रखा है। आप बुनियादी तौर पर एक धार्मिक पुरुष हैं और आपकी एक नैतिक आचार-संहिता है। आपने अपने राजनीतिक कार्यके साथ अपनी बुनियादी धार्मिक मान्यताको सम्बद्ध कर दिया है। आपकी मान्यता यह मालूम होती है कि साम्यवादका अर्थ है: ‘उद्देश्य अच्छा होना चाहिये, साधन कैसे भी हों।’ हमारे विरुद्ध यह नारा अब बहुत पुराना पड़ गया है। . . . हम साम्यवादी अत्यन्त ‘धार्मिक’ हैं, यद्यपि हम किसी धर्मके अनुयायी होनेका दावा नहीं करते।”

साम्यवादी दलके महामंत्री इसके बाद रोषमें आकर लिखते हैं: “क्या आपने कभी कांग्रेस महासमितिके ऐतिहासिक अगस्त अधिवेशनमें साम्यवादी प्रतिनिधियों द्वारा कहे गये शब्दोंको याद रखनेकी परवाह की है? उन्होंने आपसे क्या करनेकी याचना की थी ? यही न कि प्रस्तावका क्रियात्मक भाग निकाल कर उसके स्थानमें आत्म-निर्णयके सिद्धान्तको स्वीकार करनेकी और लीगके साथ तुरन्त सन्धिवार्ता करनेकी बात रखी जाय ? वस्तुतः अब आपने वही बात की है।” (सितम्बर १९४४ में गांधीजी जिन्नासे मिले थे उसीका उल्लेख यहां है।)

ये दोनों बातें एक-दूसरीसे उतनी ही भिन्न थीं जितना गधेसे घोड़ा भिन्न होता है । साम्यवादियोंके लिए राष्ट्रीय स्वाधीनता विश्व पर साम्यवादकी सर्वोपरि सत्ता स्थापित करनेके संग्राममें एक मंजिल मात्र थी। उनकी एकमात्र चिन्ता यह थी कि रूसके शत्रुओंकी हारके लिए भारतके सब साधन तुरन्त उपयोगमें लाये जायं। इसलिए वे यह देखनेको बहुत उत्सुक थे कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग किसी भी कीमत पर



मिल कर अपने आपको स्वेच्छासे बलिदान करनेको तैयार हो जायें और जरूरत हो तो भारतका भी बलिदान कर दें। और ऐसा वे इसलिए करें कि रूस जीवित रहे, क्योंकि वही उनकी सच्ची मातृभूमि था। उनका नारा यह था कि मित्रराष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नमें बिना किसी शर्तके हर प्रकारसे सहायता दी जाय—न कि सिर्फ उसका नैतिक समर्थन किया जाय। गांधीजी मित्रराष्ट्रोंका नैतिक समर्थन करनेकी बात कहते थे। मित्रराष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नोंका नैतिक समर्थन करनेके गांधीजीके प्रस्तावके पीछे यह मान्यता थी कि मित्रराष्ट्रोंके ध्येयके मूलमें नैतिक सिद्धान्त है और वह भारत तथा विश्वकी अन्य पराधीन प्रजाओंके लिए लागू किया जायगा। परन्तु रूसकी विजयका सर्वोपरि ध्येय सिद्ध हो तब तक साम्यवादियोंके लए नैतिक सिद्धान्तका अभाव किसी भी तरह बाधक नहीं होता था। बेशक, ब्रिटिश साम्राज्यवादको वे भी कमजोर करना चाहते थे और इसलिए भारतको ब्रिटिश नियंत्रणसे मुक्त करनेके इच्छुक थे। लेकिन जहां गांधीजी किसी ऐसी व्यवस्थामें सहमत नहीं हो सकते थे, जिससे भारतकी एकताको खतरा हो, वहां साम्यवादियोंको उसके टूटनेका कोई डर नहीं था। [भारतीय साम्यवादी दलकी स्थितिके बचावमें सोवियटका समान उदाहरण दिया जा सकता है। “सोवियट राज्य अनेक राष्ट्रोंका बना राज्य है।” (स्टालिन) उसमें १८० राष्ट्रीय जातियां, १५७ भाषाएं, ११ राष्ट्रीय गणराज्य और २२ स्वशासनभोगी गणराज्य हैं। . . . किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्तर यह था कि रूसमें कोई बाहरकी तीसरी सत्ता नहीं थी। तीसरी सत्ताके हट जानेके बाद वहां सब कुछ हुआ। जो कुछ हुआ वह तीसरी सत्ताके द्वारा नहीं हुआ और न तीसरी सत्ताके वहां रहते हुआ।] इसके विपरीत, यदि एकताके खंडन और अराजकतासे भारतमें या संसारमें साम्यवादको फैलानेके लिए परिस्थितियां अधिक अनुकूल होती हों, तो इस स्थितिको वे हृदयसे चाहते थे।

जोशीके पत्रका आखिरी अंश यह था: “आपको उन प्रश्नोंके सम्बन्धमें भी मेरी बातका भरोसा नहीं होता, जो किसी भी सम्य समाजमें स्वीकार कर लिये जाते हैं। . . . आप मेरे और हमारे दलके साथ वही व्यवहार करते हैं, जो वेवेल आपके और कांग्रेसके साथ करते हैं।”

गांधीजी साम्यवादियोंके तौर-तरीकोंकी नकल तो नहीं कर सकते थे। उन्होंने उत्तर दिया: “मेरी भाषासे आपका जी दुखा, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं। . . . मैंने सब कुछ हृदयकी सच्ची भावनासे लिखा था। मैं अपने पूर्वाग्रह भी प्रगट न करूं, तो आपके दलके निकट नहीं आ सकता। मैंने तो यह



आशा रखी थी कि मेरे मित्रतापूर्ण रुख और स्पष्टवादिताका आदर किया जायगा।” [गांधीजीका पत्र पी. सी. जोशीको, १५ सितम्बर १९४४]

साम्यवादियोंने सुझाया कि उनके विरुद्ध जो भी आरोप हैं, उनकी जांच एक पंच द्वारा करा लि जाय । इसके लिए उन्होंने नाम भी दिये। गांधीजीने उनमें से एक श्री भूलाभाई देसाईके पास वे सब प्रमाण भेज दिये, जो उनके पास आये थे। भूलाभाई उस समय बहुत कार्यव्यस्त थे । उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा नहीं रहता था । इससे साम्यवादी अधीर हो गये और विलम्बकी शिकायत करने लगे। अन्तमें गांधीजीने उन्हें सन्देश भेजा:

मैं भूलाभाईसे जल्दी नहीं करा सकता। . . . वे जिस दिन चाहें उस दिन अपनी राय दे सकते हैं। मुझे अंदेशा यही है कि वह कोई पंच-फैसला नहीं होगा । वह मेरे पासके कागजात पर एक प्रसिद्ध धाराशास्त्रीका मत होगा। . . . मैं जल्दीमें कोई निर्णय नहीं बनाना चाहता । अनेक ईमानदार कांग्रेसी मेरे पास आये या उन्होंने मुझे लिखा . . . कि साम्यवादियोंका इसके सिवा कोई सिद्धान्त नहीं कि उनका दल जीवित रहे और किसी भी रीतिसे वे अपने विरोधियोंको खतम करें। मैं तो इस प्रमाणके आधार पर भी कोई मत नहीं बनाने-वाला हूं। . . . मैं किसी राजनीतिक दलके खिलाफ निर्णय नहीं देना चाहता । [गांधीजीका पत्र साम्यवादियोंको, २४ मई १९४५]

दक्षिण भारतके एक कांग्रेसीके प्रश्नके उत्तरमें गांधीजीने लिखा : “साम्यवादियोंको कांग्रेसकी सदस्यतासे बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। जो कांग्रेसके लक्ष्यको स्वीकार करें और सदस्यताकी फीस दें, वे कांग्रेसके सदस्य हो सकते हैं। संविधान ऐसा कहता है। . . . चुनाव द्वारा रची जानेवाली समितियोंके बारेमें मैं यही कह सकता हूं कि . . . लोग चाहेंगे तो उन्हें चुनेंगे। साम्यवादी होनेके नाते उनके साथ न तो कोई विशेष व्यवहार किया जा सकता है और न उनके खिलाफ कार्रवाई ही की जा सकती है। जिन व्यक्तियोंने कांग्रेसके अनुशासनके विरुद्ध काम किया है, उनके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकेगी।”

जून १९४५ में कांग्रेस कार्यसमिति जेलसे मुक्त हुई उसके बाद उसने एक उपसमिति नियुक्त की, जिसमें पंडित नेहरू, सरदार पटेल और पंडित गोविन्दवल्लभ पंत थे। इसका काम साम्यवादी दलके



कांग्रेसी सदस्योंके विरुद्ध लगाये गये अनुशासनहीनताके अभियोगकी जांच करना था। इस समितिने भूलाभाईके इस निर्णय पर ध्यान दिया था कि : “यह निश्चित रूपसे मालूम होता है कि ९ अगस्त (१९४२) के बाद साम्यवादी दलके विचार और उसका रवैया कांग्रेसके विचारों और उसकी नीतिके विरुद्ध प्रचार करनेका रहा है।” सारे प्रमाणोंको देख लेनेके बाद समितिने अपना यह निर्णय दिया कि कांग्रेसमें साम्यवादी दलके सदस्योंके विरुद्ध प्रबल प्राथमिक अभियोग सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त प्रमाण हैं: “ऐसे समय जब कि देश आतंक-राज्यकी अग्नि-परीक्षामें से गुजर रहा था और कांग्रेस जीवन-मरणके संग्राममें लगी हुई थी, कोई भी संगठन—जिसका कांग्रेसके साथ सम्बन्ध हो—अनुशासनके साधारण नियमोंका हनन किये बिना ऐसी विरोधी प्रवृत्तियोंमें भाग नहीं ले सकता था।” समितिने साम्यवादियोंको अपनी स्थितिका औचित्य सिद्ध करनेका आदेश दिया और उनसे उत्तर मांगा कि उनके विरुद्ध अनुशासनकी कार्रवाई क्यों न की जाय । अपने स्वभावके अनुसार साम्यवादियोंने अपने विरुद्ध लगाये गये अभियोगोंका उत्तर देने और अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेकी अपेक्षा कांग्रेस पर अभियोग लगाये। परिणाम यह हुआ कि कांग्रेसको मजबूर होकर उनके विरुद्ध अनुशासनकी कार्रवाई करनी पड़ी।

गांधीजी एक ओर तो साम्यवादियोंको उनके गलत सिद्धान्तोंसे विमुख करनेकी कोशिश करते रहे और दूसरी ओर उनके साथ व्यक्तिशः स्नेह-सम्बन्ध बनाये रखनेका प्रयत्न भी करते रहे। उन्होंने उड़ीसाके एक कांग्रेसी नेतासे कहा, “यदि मुझे कोई प्रामाणिक साम्यवादी मिल जाय और वह मेरे साथ सहयोग करे, तो उसे मैं स्वीकार कर लूंगा।” गांधीजीकी यह खोज सफल नहीं हुई, परन्तु उन्होंने अपना प्रयत्न छोड़ा नहीं। साम्यवादी भी उनसे दूर नहीं भाग सके।

४

कारावासके दिनोंमें गांधीजीके मनमें अशांत बनानेवाली यह भावना पैदा होने लगी थी कि हिंसामें विश्वास करनेवालोंने तो अपने ढंगसे संग्रामके दिनोंमें अच्छा काम करके दिखाया था, परन्तु जो लोग अहिंसाको धर्म माननेका दावा करते थे उनके लिए शायद यही बात नहीं कही जा सकती।

बरसों पहले देशकी सामान्य जनतामें अहिंसक शक्ति पैदा करनेके लिए गांधीजीने कई रचनात्मक प्रवृत्तियां आरंभ की थीं। उनमें मुख्य ये थीं: हाथ-कटाई और हाथ-बुनाई, कानून और



व्यवहारमें अस्पृश्यता-निवारण, मृतप्राय तथा मृत ग्रामोद्योगोंके पुनरुत्थान द्वारा गांवोंमें नव-जीवनका संचार और बुनियादी शिक्षा। इन प्रवृत्तियोंको कार्यान्वित करनेके लिए उन्होंने अखिल भारत चरखा-संघ, हरिजन-सेवक-संघ, अखिल भारत ग्रामोद्योग-संघ और हिन्दुस्तानी तालीमी संघका निर्माण किया था।

अखिल भारत चरखा-संघका लक्ष्य भारतके बुनियादी उद्योग—हाथ-कताई और हाथ-बुनाईको पुनर्जीवन प्रदान करके उनका विकास करना था। ये उद्योग इतिहासकी प्रगतिके कारण परन्तु सबसे ज्यादा ब्रिटिश शासनके आरंभ-कालमें 'राजनीतिक अन्याय' के कारण नष्ट हो गये थे। इनके न्हास और पतनकी कहानी भारतमें ब्रिटिश सत्ताके आगमनके इतिहासके साथ इतनी गहरी गुंथी हुई है कि एकके वर्णनमें दूसरेका वर्णन अपने आप आ जाता है। इसी कारण इनका पुनरुत्थान भारतके स्वातंत्र्य-संग्रामका साधन और प्रतीक बन गया।

संगठनकी दृष्टिसे, अखिल भारत चरखा-संघ “संसारकी सबसे बड़ी स्वेच्छामूलक सहकारी समिति” थी, जिसकी पूंजी लगभग दस लाख रुपयेकी और खादीका उत्पादन १२,००२,४३० रुपयेका था। [जून १९४२ को समाप्त होनेवाले १८ महीनोंके उत्पादनके आंकड़े] इसमें एक समान उद्देश्यमें रत ३,०२४,३९१ कातनेवाले और ३५४,२५७ अन्य कारीगर काम करते थे। वे १५,०१० भारतीय ग्रामोंमें फैले हुए थे। इस संस्थाके जीवनके पहले १८ वर्षोंमें इसके द्वारा मजदूरीके रूपमें ४६,०३०,०८१ रुपये बांटे गये थे।

चरखा-संघ कई मंजिलोंमें से गुजर चुका था। पहली मंजिलमें आम जनतामें जागृति और विदेशी कपड़ेके बहिष्कार पर जोर था। दूसरीमें समुचित अल्पतम निर्वाह-वेतनका सिद्धान्त आरंभ करके सामाजिक न्यायके आदर्शकी पूर्ति पर भार दिया गया था। पहली मंजिलमें इस प्रयोगको असाधारण सफलता मिली और आखिरी मंजिलमें सीमित सफलता मिली।

‘भारत छोड़ो’ संग्रामके दिनोंमें दमनका मुख्य प्रहार समस्त रचनात्मक संस्थाओं पर हुआ था। जब गांधीजी जेलसे निकले तब भी इन संस्थाओंके घाव भरे नहीं थे।



गांधीजीको यह आशा थी कि उनके द्वारा रची हुई ये संस्थाएं वीरोंकी अहिंसाका उदाहरण प्रस्तुत करके लोगोंके उत्साहको सही दिशामें मोड़ेंगी और सरकारी दमनका विष उतार सकेंगी। वे ऐसा करनेमें सफल होतीं तो निराशा और पराजयकी भावनाके स्थान पर प्रत्येक भारतीयके हृदयमें नवीन श्रद्धा और नवीन आशाका संचार होता। लेकिन हुआ यह कि वे स्वयं सरकारी दमनकी शिकार हो गईं। गांधीजीको जब यह पता लगा तो वे बहुत अशान्त हो गये :

मेरी नजरबन्दीके दिनोंमें मैंने चरखे पर और चरखा-संघ पर गहरा विचार किया है। मेरी समझमें यह आया है कि सरकार चाहे तो चरखा-संघको तोड़ सकती है। मैं सरकारकी दया पर जीना नहीं चाहता। मुझे ईश्वरके सिवा अन्य किसीकी दयाकी जरूरत नहीं है। इसलिए मैंने अपने आपसे पूछा कि ऐसी हालतमें क्या यह उत्तम न होगा कि चरखा-संघको बन्द करके उसकी पूंजीको ग्रामीणोंमें बांट दिया जाय ? [स्वराज श्रू चरखा, संग्राहक : कनु गांधी]

इसमें दोष न तो आदर्शका था, न आम लोगोंका था। चरखा-संघ अपने उद्देश्यमें असफल रहा, इसका कारण यह था कि उसने एक अतिशय केन्द्रित संस्थाके रूपमें काम किया था। -

मैंने आशा रखी थी कि संघके द्वारा हमारा संदेश देशके प्रत्येक गांवमें और प्रत्येक घरमें पहुंच सकेगा और उसके जरिये हम दुनियाको यह दिखा सकेंगे कि चरखेके आधार पर अहिंसक समाज कैसे रचा जा सकता है। परन्तु . . . प्रत्येक घरको तो छोड़ दीजिये, चरखा प्रत्येक गांवमें भी अभी तक नहीं पहुंच पाया है। . . . यदि चरखा सात लाख गांवोंमें प्रवेश कर जाता, तो दुनियाकी कोई शक्ति उसे कुचल नहीं सकती थी। सरकार करोड़ों स्त्री-पुरुषोंको जेलमें नहीं भेज सकती और न वह उन्हें मशीनगनोंसे भून सकती है। अगर सरकार ४० करोड़में से १ करोड़ लोगोंको भी मार डालती, तो भी हमें अपने लक्ष्यकी तरफ बढ़नेसे वह रोक नहीं पाती। बल्कि उससे हमारी आगे बढ़नेकी गति अधिक तेज हुई होती। [वही]

और फिर चरखा-संघने खादीको ज्यादातर आर्थिक प्रवृत्ति ही समझा था, परन्तु गांधीजीने उसकी कल्पना अहिंसाके प्रतीकके रूपमें की थी। संघके कार्यकर्ताओंने खादी-कार्यके सम्बन्धमें उत्पादनकी मात्राका या यों कहिये कि व्यापारका विचार बहुत ज्यादा रखा था। परिणाम यह हुआ कि



खादीने आर्थिक कष्ट-निवारणके कार्यक्रमके तौर पर तो सब आशाएं पूरी कर दीं, परन्तु अहिंसाके प्रतीकके रूपमें उसका महत्त्व कुछ पीछे पड़ गया।

इसमें दोष खादीका नहीं परन्तु उन लोगोंका था, जो उसका कार्य कर रहे थे। उन्होंने खादीके उच्चतर मिशनकी भावना अपनेमें पैदा नहीं की और अहिंसाके केन्द्रीय सत्यका अपने जीवनमें उन्होंने अपूर्ण रूपमें ही साक्षात्कार किया। इसलिए वे जनतामें वीरोंकी अहिंसाका संचार नहीं कर सके। अब उन्हें अपने कदम वापस लौटाने थे। भविष्यमें उन्हें खादीकी सफलता उसकी उत्पत्ति और बिक्रीके आंकड़ोंके आधार पर अथवा खादी पहननेवाले लोगोंकी संख्याके आधार पर नहीं, परन्तु **उन स्त्री-पुरुषोंकी संख्यासे आंकनी चाहिये, जिन्हें अपने ही प्रयत्नसे और अहिंसा, स्वावलम्बन तथा आत्म-निर्भरताके स्पष्ट भानके साथ अपना कपड़ा स्वयं तैयार करना सिखाया जा सके।** साथ ही, खादी-कार्यको एक अलग आर्थिक प्रवृत्तिके रूपमें न चला कर ग्रामीण जीवनकी समग्र जर्जरित अर्थ-व्यवस्थाको पुनर्जीवित करनेके एक साधनके रूपमें चलाना चाहिये। इसके लिए एक विशेष प्रकारकी उच्च शक्ति रखनेवाले नये कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता होगी। उन्हें हर प्रकारकी कुशलता सिद्ध करनी होगी और गीताके स्थितप्रज्ञका आदर्श अपने जीवनमें उतारना होगा।

बहुतोंने चरखेको सिर्फ इसलिए अपनाया था कि गांधीजीमें उनकी श्रद्धा थी। गांधीजी चाहते थे कि इस श्रद्धाके साथ ज्ञानका सम्बन्ध हो, जिससे वह किसी भी प्रकारके आक्रमणका सामना कर सके।

ज्ञान पर आधारित श्रद्धासे बुद्धि तीक्ष्ण होती है। यदि हम अहिंसाकी शक्ति और क्षमताको समझ सकें और उसमें गहरी और स्थायी श्रद्धा पैदा कर लें, तो हम सारे संसारके समक्ष प्रमाणित कर देंगे कि अहिंसा सबसे बड़ी सजीव शक्ति है। अहिंसाके प्रभावमें आनेवाले किसी भी व्यक्तिके लिए निष्क्रिय अथवा जड़ रहना उतना ही असंभव है, जितना कि प्रकाशकी उपस्थितिमें अंधेरेका टिकना। इसलिए यदि चरखा-संघको उससे रखी जानेवाली आशा पूरी करनी हो, तो उसके हरएक कार्यकर्ताको अहिंसाका जीता-जागता प्रतिनिधि बनना चाहिये। उसके प्रत्येक कार्यमें अहिंसाका दर्शन होना चाहिये। उसका शरीर स्वस्थ और मन स्वच्छ होना



चाहिये। और यदि वह अपने जीवनको ऐसा व्यवस्थित रूप दे सके, तो ग्रामवासी बिना किसी कठिनाईके चरखेको अपना लेंगे। [वही]

चरखा अहिंसाकी तरह हिंसाका भी प्रतीक हो सकता है। ईस्ट इंडिया कम्पनीके राज्यमें चरखा कारीगरोंके शोषण और दासत्वका तथा शासकोंके अहंकारका प्रतीक बन गया था। इसके विपरीत, मैंने चरखेको अहिंसाका और उसके द्वारा आम जनताकी मुक्तिका प्रतीक समझकर अपनाया है। जो छुरी कसाईके हाथोंमें प्राण हरण करनेवाली होती है, वही डॉक्टरके हाथोंमें प्राण बचानेका साधन बन सकती है।

गांधीजीने यह स्वीकार किया कि भूतकालमें मैंने चरखे पर अहिंसाके प्रतीकके रूपमें जितना जोर देना चाहिये था उतना जोर नहीं दिया। परन्तु सुधार करनेमें अधिक देर कभी नहीं होती। खादीके सम्बन्धमें दुलमुल नीति अपनानेके लिए कांग्रेसको दोष देना चरखा-संघका काम नहीं है। अब दोषकी जिम्मेदारी उसे अपने ही सिर लेनी चाहिये। यदि वह संसारको इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण देनेमें सफल होता कि चरखेमें कितनी शक्ति है और अहिंसामें वह अपनी सजीव श्रद्धा होनेका प्रमाण देता, तो बजाय इसके कि चरखा-संघ कांग्रेससे मददकी आशा रखता, अपना संदेश गांवों तक पहुंचानेके लिए कांग्रेस ही चरखा-संघकी सहायता और मार्गदर्शन चाहती।

अन्तमें गांधीजीने चरखा-संघके कार्यकर्ताओंसे कहा, आप राजनीतिको भूल जायें और अपना सारा ध्यान केवल चरखे पर ही लगायें। **तब आपको असाधारण राजनीतिक परिणाम प्राप्त होंगे।** प्रत्येक गांव, जो चरखेके संदेशको पचा लेगा, स्वाधीनताका प्रकाश अनुभव करने लगेगा। यदि भारतके ७ लाख गांवोंमें सच्ची जाग्रति पैदा कर दी जाय, तो सारा भारत स्वाधीन हो जाय। इसके लिए आपको ज्ञान, परिश्रम और गंभीर अध्ययनकी जरूरत है।

जो बात चरखा-संघके लिए सही है, वह आवश्यक परिवर्तनोंके साथ दूसरे संघों पर भी लागू होती है।

गांधीजीने सलाह दी, “खादीके उत्पादन और वितरणकी केन्द्रित संस्थाके रूपमें अखिल भारत चरखा-संघको बंद कर दीजिये। वह केवल उन मूल्योंके रक्षकके रूपमें काम करे, जिनका खादी



प्रतिनिधित्व करती है। साथ ही वह स्थानीय संस्थाओंको तकनीकी सहायता और नैतिक पथप्रदर्शन देनेवाली केन्द्रीय अनुसंधान-संस्थाका काम करे।”

खादीकी प्रवृत्तिके लिए गांवको एक घटक बनना चाहिये और स्वावलम्बनके आधार पर प्रत्येक व्यक्तिको आत्म-निर्भरताके लिए कातना चाहिये।

इसके उप-सिद्धान्तके रूपमें गांधीजीने सुझाया कि आगेसे खादी अपने हाथसे काते हुए सूतका कुछ हिस्सा कीमतके रूपमें देनेके बदलेमें ही बेची जाय; जो लोग खादी पहनना चाहेंगे उन्हें या तो अपने लिए कातना पड़ेगा या खादी पहनना बिलकुल छोड़ देना पड़ेगा।

अनेक पुराने कार्यकर्ता इस साहसपूर्ण परिवर्तनकी बातसे चकित रह गये। परन्तु गांधीजी अटल रहे : “कुछ लोग कहते हैं कि नया नियम सचमुच उस खादीको मार देगा, जिसे गरीब लोग इस समय उत्पन्न कर रहे हैं; और थोड़ेसे शौकीन हहरी लोग ही अपने लिए कातेंगे और कपड़ा बुनवा लेंगे। . . . सामान्य लोग दिखानेके लिए नहीं खाते, बल्कि इसलिए खाते हैं कि वे जिन्दा रह सकें। वे अपना नंगापन ढंकनेके लिए कपड़े पहनते हैं, न कि फैशनके लिए। इसलिए चूल्हेकी तरह चरखेको भी गांवके हर घरमें स्थान मिलना चाहिये और प्रत्येक सशक्त व्यक्तिको कातना चाहिये। इसी तरह सब लोग खादी पहन सकते हैं और भारतमें स्वराज्य ला सकते हैं।” [वही]

अकाट्य तर्कके साथ गांधीजीने आगे कहा: दलीलके खातिर मान लीजिये कि शहरी लोग क्रुद्ध होकर या आलस्यके मारे खादी पहनना छोड़ दें और मजदूरी न मिलनेके कारण ग्रामवासी कातना और बुनना बंद कर दें और इसके कारण वर्तमान खादी-भंडारोंको बन्द कर देना पड़े तथा खादी पहननेवालोंको खादी छोड़ देनी पड़े, “तो भी यह सत्यकी विजय होगी। क्योंकि उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि देशके लोगोंकी अहिंसामें सच्ची श्रद्धा नहीं थी, वे खादी अज्ञानवश पहनते थे और यह सोचकर अपने आपको घोखा देते थे कि इससे उन्हें स्वराज्य मिल जायगा। . . . खादीके लिए खास दावा यह है कि जिस आलस्य और जड़तामें सामान्य लोग इस समय फंसे हुए हैं, उससे उन्हें बचानेका और अन्तिम विजय (स्वराज्य) प्राप्त करनेके लिए उनमें आवश्यक बल पैदा करनेका वह एक अद्वितीय साधन है।” [वही]



गांधीजीने कार्यकर्ताओंसे डर निकाल देनेको कहा:

क्या सूत लेकर खादी बेचनेका नियम अपनानेमें आपको यह डर लगता है कि कहीं शहरोंमें खादीकी ग्राहकी बन्द न हो जाय ? अगर आप अपने दिलोंसे यह डर नहीं निकाल देते, तो **वह खादी, जिसे हमने स्वराज्यका साधन माना है, मर जायगी** । खादीने अपने लिए समाजमें प्रतिष्ठा जमा ली है। गरीबोंकी बनाई हुई खादी खरीदनेमें अमीरोंको गर्व होता है। लेकिन यह बहुत छोटी बात है। यदि आप खादीका क्षेत्र गरीबोंके कष्ट-निवारण तक सीमित रखेंगे, तो वह आपको अहिंसाके द्वारा स्वराज्य लेनेमें सहायता नहीं देगी। मैं नहीं चाहता कि ऐसी बात हो। परन्तु हाथसूत लेकर खादी बेचनेका नियम लागू करनेके परिणामस्वरूप यदि मैं अकेला ही खादी धारण करनेवाला रह जाऊं, तो मुझे इस बातकी परवाह नहीं होगी। . . . ईश्वरकी यही मरजी हो तो हमारी कायरता तथा श्रद्धाहीनताके फलस्वरूप खादीकी मृत्यु होनेकी अपेक्षा स्वाभाविक रूपमें उसकी मृत्यु हो जाना अधिक अच्छा होगा। [वही]

गांधीजीने अपनी अदम्य सत्यनिष्ठासे अंतमें कहा:

अगर हम असफल हुए हैं, तो हमें अपनी असफलताको स्वीकार करके उसे आगेके प्रयत्नकी सीढ़ी बना लेना चाहिये। . . . दूसरे शब्दोंमें, हमें कठोर बन कर इस बातका ठीक पता लगाना होगा कि खादीकी क्या क्या संभावनाएं और मर्यादाएं हैं। यदि हमें अपनी खोजके फलस्वरूप यह मालूम हो कि खादी हमको उतनी दूर नहीं ले जा सकती जितनी दूर ले जानेका हमने दुनियाके सामने दावा किया है, तो हमें या तो अपना दावा छोड़ देना चाहिये या उसे कम कर देना चाहिये और अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए कोई दूसरा आधार अपनाना चाहिये।

मैं तो यहां तक कहता हूं कि यदि स्वराज्य लानेवाली खादीके सामने गरीबोंका कष्ट-निवारण करनेवाली खादी मिट जाती है, तो इससे गरीब घाटेमें नहीं रहेंगे । क्योंकि किसी और धंधेसे गरीबोंकी रोटीका प्रबन्ध किया जा सकेगा। खादीका गौरव इसीमें है कि वह स्वराज्यके आदर्शमें भी सहायक हो और गरीबोंको मदद भी पहुंचाये। कारण, ऐसे स्वराज्यमें ही गरीबोंको वास्तवमें उनका उचित स्थान प्राप्त हो सकता है।



स्वतंत्रता तो हमें मिलेगी ही। मैं तो उसे आती हुई देख रहा हूँ। परन्तु सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रतासे ही हमें संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। दुनियाको भी उससे संतोष नहीं होगा, क्योंकि दुनिया भारतसे बड़ी बड़ी बातोंकी आशा लगाये हुए है। मेरे सपनोंकी स्वतंत्रताका अर्थ है - हमारे भीतर ईश्वरका राज्य और हमारे द्वारा पृथ्वी पर ईश्वरके राज्यकी स्थापना। और इस उद्देश्यके लिए काम करते करते मर जाना मैं पसन्द करूंगा - भले ही मैं उस उद्देश्यको कभी पूरा होते न देख सकूँ। [वही]

तदनुसार खादीकी उत्पत्ति और बिक्रीकी केन्द्रित संस्थाके रूपमें चरखा-संघ बन्द कर दिया गया और आगेसे अपने काते हुए सूतके रूपमें आंशिक कीमत चुकाने पर ही खादी बेचनेकी नीति चरखा-संघकी अधिकृत नीति बन गई।

*

गांधीजीके अहिंसाके शस्त्रागारमें अंतिम लेकिन बहुत महत्वपूर्ण शस्त्र था बुनियादी शिक्षा या नई तालीमकी प्रणाली। उस शिक्षाकी कल्पना जितनी क्रान्तिकारी थी उतना ही उसका क्षेत्र व्यापक था। एक महान शिक्षा-शास्त्रीने जिसे 'विचार करनेवाला हाथ' कहा है, उस हाथके कार्यने ही अन्य किसी वस्तुकी अपेक्षा मनुष्य तथा समाजका आर्थिक विकास अधिक किया है; और इसलिए मनुष्यकी सम्पूर्ण शिक्षा किसी एक बुनियादी हस्त-उद्योग द्वारा दी जा सकती है - इस सिद्धान्त पर बुनियादी शिक्षा-प्रणालीका आधार है। उसका लक्ष्य एक ऐसी 'अहिंसक, अशोषक समाज-व्यवस्था' का निर्माण करना है, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभावके आदर्श पूर्णतः तथा सार्वत्रिक रूपमें सिद्ध किये जा सकें। उसका हार्द अहिंसाका सिद्धान्त है। गांधीजीने उसे अपने रचनात्मक कार्यक्रमकी सारी प्रवृत्तियोंका 'सार' बताया था। [रचनात्मक कार्यक्रममें ये प्रवृत्तियां सम्मिलित थीं: (१) साम्प्रदायिक एकता, (२) अस्पृश्यता-निवारण, (३) शराबबन्दी, (४) खादी, (५) दूसरे ग्रामोद्योग, (६) ग्राम-सफाई, (७) बुनियादी शिक्षा, (८) प्रौढ़-शिक्षा, (९) स्त्रियां, (१०) स्वास्थ्य और स्वास्थ्य-विज्ञानकी शिक्षा, (११) प्रान्तीय भाषाएं, (१२) राष्ट्रभाषा, (१३) आर्थिक समानता, (१४) किसान, (१५) मजदूर, (१६) आदिवासी, (१७) कोढ़ी, और (१८) विद्यार्थी। यह सूची मार्गदर्शक थी]



भारतके करोड़ों लोगोंकी समस्याओंके संदर्भमें अहिंसाका विचार करनेसे गांधीजी इस नतीजे पर पहुंचे थे कि उनके लिए ऐसी शिक्षा-प्रणाली आवश्यक है (१) जो अपना खर्च आप निकाल सके, (२) जिससे वे अपने ही प्रयत्नसे स्वस्थ, सभ्य और संस्कृत जीवनके साधन जुटा सकें, और (३) जिससे उनकी बुद्धिका ही नहीं परन्तु उनकी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियोंका भी विकास हो सके। गांधीजीके अनुभवने सिद्ध कर दिया था कि मनुष्य जीवित रहनेके लिए जो कुछ अपने हाथोंसे करते हैं, उसका असर उनके विचार और व्यवहार पर तथा सारे दृष्टिकोण पर मौखिक शिक्षाकी अपेक्षा अधिक पड़ता है। उनकी दलील यह थी कि किसी समाजोपयोगी हस्त-उद्योगके शिक्षण और अभ्यासका उसके कार्य-कारणके साथ अनुबन्ध साधकर बालककी बौद्धिक ही नहीं परन्तु शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियोंका भी पूरा विकास किया जा सकता है।

इसलिए बुनियादी शालाकी उनकी कल्पना यह नहीं थी कि वह बालकके सामने आनेवाली प्रतिदिनके जीवनकी समस्याओंसे अछूती कोई 'सौन्दर्य-स्थली' हो। उनकी कल्पना यह थी कि वह एक प्रयोगशाला हो, जहां बच्चोंको उनके और उनके गांवोंके सामने आनेवाली व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवनकी समस्याओंका अहिंसक और लोकतांत्रिक ढंगसे हल निकालना सिखाया जाय, ताकि जब वे जीवनमें प्रवेश करें तब न केवल आवश्यक ज्ञानसे पूरी तरह सुसज्जित रहें, बल्कि क्रिया द्वारा शिक्षा ग्रहण करनेके अनुभवसे पैदा हुई प्रारंभ-शक्ति, स्वावलम्बन और आत्म-विश्वासकी वृत्ति भी उनमें हो। और चूंकि उनका ज्ञान उनकी सत्यमय, अहिंसक और लोकतांत्रिक जीवन-पद्धतिके अभ्याससे उत्पन्न हुआ होगा, इसलिए उसके साथ यह आश्वासन भी रहेगा कि उसका सदुपयोग किया जायगा। एक नौजवान अंग्रेज, जो बर्माके मोर्चे पर शाही हवाई-सेनाके गुप्तचर-विभागमें नौकरी कर चुका था, सेवाग्राममें हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी सभामें उपस्थित होनेके बाद बोला: "मैंने ऐसी चीज दुनियामें और कहीं नहीं देखी। ये ही लोग ऐसे हैं जो अपना लक्ष्य और उसे प्राप्त करनेके व्यावहारिक उपाय जानते हैं।"

कताई, बुनाई और उनके साथ जुड़ी हुई प्रक्रियाओंको बुनियादी शिक्षाका माध्यम बतानेके प्रति गांधीजीका पक्षपात था, क्योंकि वे प्रक्रियाएं सार्वत्रिक हैं, मनुष्यकी सुख्य आवश्यकताओंके साथ उनका निकट सम्बन्ध है तथा उनमें खर्च बहुत थोड़ा आता है। उन्होंने कहा कि यह प्रयोग कुशलतापूर्वक



चलाया जाय, तो शालाके - शिक्षकों और विद्यार्थियोंके - सम्मिलित कामसे शालाका चालू खर्च निकल आना चाहिये; अर्थात् सारे बुनियादी प्रशिक्षणकी सात वर्षकी अवधिको लें, तो शिक्षकोंके निर्वाह और शालाके विविध खर्च निकल आने चाहिये । आत्म-निर्भरताको शर्तके रूपमें नहीं परन्तु प्रयोगकी कुशलताकी कसौटीके रूपमें रखा गया था।

हिन्दुस्तानी तालीमी संघको गांधीजीन १९३६ में बुनियादी शिक्षाके प्रचारके लिए स्थापित किया था। जब गांधीजी जेलसे बाहर आये तब संघ अपने कार्यकालके प्रथम सात वर्ष पूरे कर चुका था। अब उसे अपनी आगेकी अर्थात् उत्तर-बुनियादी शिक्षाकी मंजिल शुरू करनी थी।

गांधीजीने बुनियादी शिक्षकोंको सम्बोधित करते हुए उन्हें चेतावनी दी : “हमें अपनी वर्तमान सिद्धियोंसे सन्तोष नहीं कर लेना चाहिये।”

हमें बच्चोंके घरोंमें प्रवेश करना चाहिये । हमें उनके माता-पिताको शिक्षा देनी चाहिये । शिक्षाके क्षेत्रको विस्तृत करना चाहिये । उसके कार्यक्षेत्रमें प्रत्येक व्यक्तिके जीवनकी हर अवस्थाके लिए आवश्यक शिक्षाका समावेश होना चाहिये।

बुनियादी शालाके शिक्षकको तो यह मानकर चलना चाहिये कि वह सबका शिक्षक है। किसी भी स्त्री या पुरुषके सम्पर्कमें आते ही—फिर वह तरुण हो या वृद्ध—उसे अपने आपसे पूछना चाहिये : ‘मैं इसे क्या दे सकता हूं?’

क्या यह उसके लिए धृष्टताकी बात नहीं होगी ? नहीं। मान लीजिये कि मुझे कोई बूढ़ा आदमी मिलता है, जो गंदा और अज्ञान है। . . . मेरा काम होगा कि मैं उसे सफाई सिखाऊं, उसका अज्ञान दूर करूं और उसके मानसिक क्षितिजको व्यापक बनाऊं। मुझे उससे यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मैं उसका शिक्षक बनूंगा। मैं तो उसके साथ सजीव सम्पर्क स्थापित करनेकी कोशिश करूंगा और उसका विश्वास सम्पादन करूंगा। संभव है वह मेरे प्रयत्नका आदर न करे। परन्तु मैं हार नहीं मानूंगा। मैं तब तक अपनी कोशिश जारी रखूंगा जब तक मुझे उससे मित्रता करनेमें सफलता न मिलेगी। एक बार उससे मेरी मित्रता हो गई फिर तो बाकी सब बातें अपने आप हो जायंगी।



और मुझे बच्चों पर उनके जन्मसे ही अपनी नजर रखनी चाहिये। मैं तो एक कदम आगे जाकर कहूंगा कि शिक्षाशास्त्रीका काम बच्चेके जन्मसे भी पहले शुरू होता है। बुनियादी शिक्षिका गर्भवती माताके पास जाकर कहेगी, 'तुम माता बनोगी; वैसे ही मैं भी माता हूँ। मैं तुम्हें अपने अनुभवसे कह सकती हूँ कि तुम्हें आनेवाले शिशुके और अपने स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए क्या करना चाहिये।' गर्भवतीके पतिको वह यह बतायेगी कि पत्नीके प्रति उसका क्या कर्तव्य है और उनके आनेवाले बच्चेकी देखभालमें उसका क्या हिस्सा होना चाहिये। इस प्रकार बुनियादी शालाका शिक्षक मानवके समग्र जीवनके साथ सम्बन्ध रखेगा। स्वभावतः उसकी प्रवृत्तिमें प्रौढ़शिक्षा तो आ ही जायगी।

मेरी कल्पनाकी प्रौढ़शिक्षासे पुरुषों और स्त्रियोंको सब दृष्टियोंसे अधिक योग्य नागरिक बनना चाहिये। . . . बुनियादी योजनाके अनुसार प्रौढ़शिक्षामें खेतीका महत्त्वपूर्ण भाग होगा। पुस्तकीय शिक्षा तो होगी ही। बहुतसी जानकारी मौखिक रूपमें दी जायगी। पुस्तकें होंगी - परन्तु विद्यार्थियोंकी अपेक्षा वे विशेष रूपसे शिक्षकोंके लिए होंगी। हमें बहुमतको अल्पमतके साथ और अल्पमतको बहुमतके साथ उचित व्यवहार करना सिखाना चाहिये। सच्ची प्रौढ़ शिक्षासे अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकताकी जड़ ही कट जानी चाहिये।

तदनुसार हिन्दुस्तानी तालीमी संघका संविधान इस तरह बदल दिया गया कि उसके क्षेत्रमें पूर्व-बुनियादी, उत्तर-बुनियादी या विश्वविद्यालयकी शिक्षा और प्रौढ़शिक्षाका समावेश हो जाय।

*

चरखा-संघकी नीतिकी पुनर्रचनाका परिणाम खादीके संगठनको पीछेकी ओर ले जानेके रूपमें आया। अभी तक जो काम हुआ था वह मानो मचान खड़ा करनेका था। अब नींवके ऊपर ठोस इमारत उठायी जानेवाली थी और ज्यों ही वह ऊपरकी ओर उठने लगे त्यों ही इस मचानको हटा देना था। दूसरा कदम खादीकार्यका ग्रामोत्थानके समग्र कार्यके साथ एकीकरण साधनेका था। इसके लिए उसे एक ओर ग्रामोद्योगोंके साथ और दूसरी ओर बुनियादी शिक्षाके साथ जोड़ना था। इस हेतुसे यह निश्चय किया गया कि तीनों संस्थाओं अर्थात् चरखा-संघ, ग्रामोद्योग-संघ और हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी प्रवृत्तियोंके



समन्वयके लिए एक सम्मिलित मंडल हो और खेतीको आधार बनाकर उसके साथ इन तीनोंको जोड़ दिया जाय।

यह भी निर्णय किया गया कि गांवोंको स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरताके आधार पर संगठित करनेकी दृष्टिसे विविध संघोंकी समन्वित प्रवृत्तियां चलानेके लिए आवश्यक नये और हर प्रकारकी कुशलता रखनेवाले कार्यकर्ताओंको तालीम देनेकी जरूरी व्यवस्था की जाय। गांधीजीने नियम बना दिया कि प्रत्येक केन्द्रमें एकसे अधिक कार्यकर्ता नहीं होना चाहिये। इस कार्यकर्ताको अपना काम आरंभ करनेके लिए आवश्यक साधनों और निर्वाहका खर्च दिया जायगा। लेकिन उससे आशा यह रखी जायगी कि एक निश्चित अवधिकी समाप्ति पर - मान लीजिये कि ३ वर्षमें - वह पूरी तरह आत्म-निर्भर हो जायगा और उसके बाद किसी भी बाहरी मददके बिना अपना काम चला लेगा। यदि ३ वर्षके बाद भी वह अपने आसपासके वातावरणमें सर्वांगीण आर्थिक, सामाजिक और नैतिक सुधार करके - जिससे ग्रामवासी उसकी योग्यताको पहचानें और यह सोच कर उसका तथा उसके कार्योका खर्चे उठानेको तैयार हो जायं कि इस सेवकका निर्वाह हमें करना चाहिये - सम्बन्धित ग्रामवासियोंके समक्ष अपनी योग्यता सिद्ध करनेमें असफल रहे, तो उसे असफल समझना चाहिये।

गांधीजी “एक केन्द्रमें एक कार्यकर्ता” के सिद्धान्त पर अधिकसे अधिक जोर देते थे, क्योंकि उससे संबंधित कार्यकर्ताकी आरम्भ-शक्तिको, सुझ-बूझको, मौलिकताको और उत्तरदायित्वकी भावनाको पूरा अवसर मिलता था। अगर लोगोंका अहिंसक संगठन खड़ा करना हो तो यह अत्यन्त आवश्यक था, क्योंकि इस प्रकारका संगठन किसीके केन्द्रित संचालन अथवा नियंत्रणके बिना काम कर सकता था, और इसलिए बुरेसे बुरे दमनमें भी छिन्नभिन्न नहीं हो सकता था, और किसी रुकावट या मर्यादाके बिना उसका अनन्त गुना विस्तार किया जा सकता था। गांधीजीकी अहिंसात्मक संगठन और नियोजनकी कलाके विकासमें यह एक महत्त्वपूर्ण सीमास्तंभ था।

गांधीजीकी दलील यह थी कि साम्प्रदायिक फूट और अस्पृश्यताके कलंकसे मुक्त होने पर भारतके ७ लाख स्वस्थ, आत्म-निर्भर, साक्षर और अहिंसक उद्योगोंके आधार पर सहकारी ढंगसे संगठित हुए गांवोंको कोई गुलामीमें नहीं रख सकता। गांवोंको इस प्रकार संगठित करनेका काम एक



भगीरथ कार्य था। अधिकांश लोग राजनीतिक कार्यसे मिलनेवाली स्फूर्ति और उत्तेजनाके कारण उसके प्रति आकर्षित होते थे। शान्त, प्रदर्शन-रहित ग्रामकार्य उन्हें नीरस मालूम होता था। वे इससे ऊब जाते थे। ईश्वरमें सजीव श्रद्धा ही उन्हें वह स्थिरता, लगन और अटल संकल्प-बल दे सकती थी, जो सामान्य लोगोंकी जड़ता पर विजय प्राप्त करने और स्थायी अहिंसक सामुदायिक प्रयत्नके लिए आवश्यक आंतरिक शक्तिको क्रियाशील बनानेके लिए जरूरी होते हैं।

*

एक नौजवान हरिजन स्नातक गांधीजीके पास उनके सेवाग्राम आश्रममें आये। वे अपने ग्रामकार्यके सम्बन्धमें गांधीजीकी सहायता और पथ-प्रदर्शन चाहते थे। उन्होंने गांधीजीसे कहा कि मुझमें मानव-प्रेम तो है, लेकिन ईश्वरमें मेरा विश्वास नहीं है।

गांधीजीने उनसे कहा, “मानव-प्रेम आवश्यक तो है, परन्तु वह ईश्वरका स्थान कभी नहीं ले सकता। ईश्वर तो है ही, परन्तु हमारी ईश्वर-सम्बन्धी कल्पना हमारे मानसिक दृष्टिकोण और भौतिक वातावरणसे सीमित बन जाती है। . . . आप ईश्वर-सम्बन्धी प्रचलित विचारोंसे असंतुष्ट हैं, इसका सीधा-सा कारण यही है कि जो लोग ईश्वरमें विश्वास करनेका दावा करते हैं, वे अपने खुदके जीवनमें सजीव ईश्वरको प्रस्तुत नहीं करते।”

गांधीजीने आगे कहा, “रही बात आपकी, तो आपकी महत्त्वाकांक्षा पूरी हो जायगी, यदि अपनी योग्यता और उत्साहके अलावा आप अपने जीवनमें एक और चीजका समावेश करें - अर्थात् ईश्वरमें सजीव श्रद्धा रखने लगे। तब आपकी सारी नीरसता मिट जायगी। यदि आपको सहारा देनेके लिए आपके पास ईश्वरके प्रति सजीव श्रद्धा नहीं है, तो असफलता मिलने पर आप निराश हो जायेंगे। . . . मेरी तो आपको यह सलाह है कि जब तक आपको ईश्वरकी प्रतीति न हो जाय तब तक आप आश्रम न छोड़ें। आश्रम-वासियोंसे भिन्न यह आश्रम - इसकी समग्र शक्ति, जिन सिद्धान्तोंका यह प्रतीक है वे सिद्धान्त - इतनी मात्रामें आपको ईश्वरकी प्रतीति करा सकेंगे कि जिस प्रकार आप यह कह सकते हैं कि ‘सत्य है’ उसी प्रकार आप यह कह सके कि ‘ईश्वर है’।”



नौजवान मित्रने उत्तर दिया, “मैं इस अर्थमें यह बात कह सकता हूं कि सत्य असत्यका उलटा है।”

गांधीजी बोले, “इतना काफी है। हमारे ऋषियोंने ‘नेति नेति’ कह कर ईश्वरका वर्णन किया है। सत्य हमारी पकड़में नहीं आ सकता। जो कुछ सच है, यथार्थ है, उसीका पूरा योग सत्य है। परन्तु जो कुछ सच है, यथार्थ है, उस सारेका हम जोड़ नहीं लगा सकते। आपकी बुद्धि विश्लेषक है। परन्तु कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिनका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। जिस ईश्वरका विश्लेषण मेरी तुच्छ बुद्धि कर सकती है, उससे मुझे संतोष नहीं होगा। इसलिए मैं ईश्वरका विश्लेषण करनेका प्रयत्न ही नहीं करता। मैं सापेक्षसे निरपेक्षकी ओर जाता हूं और मानसिक शान्ति प्राप्त करता हूं।”

वे मित्र फिर कहने लगे, “आपकी जीवन-प्रणाली मुझे बहुत अच्छी लगती है। उसमें व्यक्तिको अपनी इच्छाके अनुसार चलनेका अवकाश रहता है। ईश्वरकी कल्पनामें एक प्रकारका नियतिवाद आ जाता है और वह मनुष्यको मर्यादित कर देता है। उससे मनुष्यकी स्वतंत्र इच्छाशक्तिमें हस्तक्षेप होता है।”

गांधीजी : “क्या स्वतंत्र इच्छाशक्ति जैसी कोई चीज दुनियामें है ? वह क्या है? हम सब ईश्वरके हाथोंमें खिलौने मात्र हैं।”

उन मित्रने पूछा, “ईश्वर और मनुष्यमें, सत्य और ईश्वरमें, क्या सम्बन्ध है?”

गांधीजी : “मैं कह चुका हूं कि ईश्वर सत्य है। ईश्वर और उसके नियम अलग अलग नहीं हैं। ईश्वरका नियम स्वयं ईश्वर ही है। उसे समझनेके लिए मनुष्यको एकाग्र मनसे प्रार्थना करनी चाहिये और अपने आपको ईश्वरमें लीन कर देना चाहिये। प्रत्येक स्त्री या पुरुष ईश्वरको अपनी ही रीतिसे समझेगा। रही बात मनुष्य और ईश्वरके बीचके सम्बन्धकी, तो दो पैर और दो हाथ होनेसे ही मनुष्य मनुष्य नहीं बन जाता। वह प्रभुका मंदिर बन कर ही मनुष्य बनता है।”

“जब मेरी ईश्वर-विषयक कल्पना ही स्पष्ट नहीं है, तब मनुष्यके प्रभुका मन्दिर बन जानेकी आपकी बातसे और भी गड़बड़ पैदा होती है।”



“फिर भी वह सच्ची कल्पना है। जब तक हम यह अनुभव न कर लें कि शरीर ईश्वरका धाम है तब तक हम मनुष्यसे नीची कक्षाके प्राणी हैं। और सत्यको ईश्वर माननेमें कठिनाई या गड़बड़ कहां है? आप यह तो मानेंगे ही कि हम असत्यके मंदिर नहीं, परन्तु सत्यके हैं।”

क्षण भर चुप रह कर गांधीजीने आगे कहा: “जिस किसीको सच्चा जीवन व्यतीत करनेकी इच्छा हो, उसे जीवनमें कठिनाइयोंका सामना तो करना ही पड़ता है। उनमें से कुछ कठिनाइयां अजेय मालूम होती हैं। उस समय प्रार्थना और ईश्वरमें श्रद्धा अर्थात् सत्य ही मनुष्यको सहारा देता है।”

नौजवान मित्र गहरे विचारमें डूब गये।

गांधीजीने आगे कहा: **“जो सहानुभूति आपको अपने भाईके दुःखसे दुखित करती है वह ईश्वर-भाव है। आप अपनेको नास्तिक कह सकते हैं, लेकिन जब तक आप मनुष्यमात्रके साथ एकताका अनुभव करते हैं तब तक आप व्यवहारमें ईश्वरको स्वीकार करते हैं।** मुझे याद है कि पादरी लोग महान नास्तिक ब्रैडलॉकी अंतिम क्रियाके समय आये थे। उन्होंने कहा था कि वे अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने आये हैं, क्योंकि ब्रैडलॉ ईश्वर-परायण पुरुष था।”

अन्तमें गांधीजीने कहा, “आप ईश्वरमें, सत्यमें, सजीव श्रद्धा लेकर वापस जायेंगे, तो मुझे कोई शंका नहीं कि आपका काम फूले-फलेगा। जब तक आप ईश्वरको पा न लें तब तक आपको हर चीजसे असंतुष्ट रहना चाहिये। और आप उसे जरूर पा लेंगे।”

युवक मित्र आश्रममें रहे और उसके बाद उनके गुरु भी आये, जो प्राध्यापक और असाधारण योग्यतावाले समाजसेवक थे और अपने अनीश्वरवादी विचारोंके कारण कष्ट उठा चुके थे। दोनों अनीश्वरवादी ही रहे। परन्तु गुरुने बादमें यह प्रमाणपत्र दिया: “गांधीजीको मेरे नास्तिकवादसे घृणा नहीं थी; न उनका ईश्वर ही मुझे डराता था।” २६ जनवरी, १९४५ को उन्होंने स्वाधीनता-दिवसकी यह प्रतिज्ञा ली, जिसे गांधीजीने खास तौर पर उनके लिए संशोधित कर दिया था: “मैं अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिए उसकी सहायता मांगता हूं, जिसे मैं दैवी कहूं या न कहूं, परन्तु जिसे हम सब अपने भीतर अनुभव करते हैं।”



एक अन्य मित्रने, जो दक्षिण भारतके एक अनुभवी राष्ट्रवादी नेता थे और जो इसी अरसेमें गांधीजीसे मिलने आये थे, गांधीजीके साथ हुई ईश्वर तथा प्रार्थनाकी सामर्थ्य सम्बन्धी अपनी चर्चामें पूछा : “अगर आप ईश्वरसे प्रार्थना करें, तो क्या वह हस्तक्षेप करके आपके लिए अपने नियमकी उपेक्षा कर सकता है?”

गांधीजीने उत्तर दिया: “ईश्वरका नियम अपरिवर्तित रहता है। परन्तु क्योंकि वही नियम कहता है कि प्रत्येक कर्मका फल होता है, इसलिए यदि कोई व्यक्ति प्रार्थना करता है, तो उसकी प्रार्थना ईश्वरके नियमानुसार कोई पहलेसे न जाना जा सकनेवाला परिणाम लाती ही है।”

“लेकिन आप जिस ईश्वरकी प्रार्थना करते हैं, उसे आप जानते हैं?”

“नहीं, मैं नहीं जानता।”

“तब हम किसकी प्रार्थना करें?”

“उस ईश्वरकी जिसे हम नहीं जानते—जिस व्यक्तिकी हम प्रार्थना करते हैं, उसे भी हम हमेशा नहीं जानते।”

“हो सकता है, परन्तु जिस व्यक्तिकी हम प्रार्थना करते हैं वह जाना तो जा सकता है।”

“जाना तो ईश्वर भी जा सकता है; और वह जाना जा सकता है, इसीलिए हम उसकी खोज करते हैं। संभव है हमें उसे ढूंढ़नेमें अरबों वर्ष लग जायं । लेकिन उसकी क्या चिन्ता ? इसलिए मैं कहता हूं कि आपका विश्वास न हो तो भी आप प्रार्थना जरूर करते रहें—अर्थात् आप अपनी खोज जारी रखें। बाइबलका यह वचन याद रखना चाहिये : ‘हे ईश्वर, तू मेरी अश्रद्धा दूर कर।’ परन्तु ऐसे प्रश्न पूछना ठीक नहीं है। आपको अनन्त धैर्य और आंतरिक आकांक्षा रखनी चाहिये । आंतरिक आकांक्षा ऐसे सब प्रश्नोंको मिटा देती है। बाइबलका एक और सुभाषित यह है: ‘श्रद्धा रखो तो तुम पूर्ण बन जाओगे।’”

सम्मान्य मित्रने अंतमें कहा, “जब मैं अपने चारों ओर कुदरतको देखता हूँ तो अपने मनमें कहता हूँ: अवश्य ही इसका एक स्त्रष्टा, एक ईश्वर होना चाहिये और उसकी मुझे प्रार्थना करनी चाहिये।”



गांधीजीने उत्तर दिया, “यह भी बुद्धिका विलास ही हुआ। ईश्वर बुद्धिसे परे है। लेकिन आपकी बुद्धि आपको सहारा देनेके लिए काफी हो, तो मुझे कुछ नहीं कहना है।”

*

हरिजन-सेवक-संघ वह संस्था है, जिसे गांधीजीने अपने यरवडा-समझौतेसे सम्बन्धित उपवासके बाद १९३२ में स्थापित किया था। उस उपवासके कारण १९३५ के भारतीय शासन विधानके अधीन हरिजनोंके प्रतिनिधित्वके लिए चुनाव-सम्बन्धी जो व्यवस्था थी, उसके बारेमें ब्रिटिश मंत्रि-मंडलको अपना निश्चय बदलना पड़ा था। संघका उद्देश्य कानून और व्यवहार दोनोंमें हिन्दू समाजसे अस्पृश्यताका कलंक पूरी तरह मिटा देना था। उसके विकासमें भी एक नई स्थिति आ पहुंची थी।

गांधीजीने अपनी जेलमुक्तिके बाद हरिजन-सेवक-संघकी एक बैठकमें पूछा, “क्या हरिजन-सेवक-संघके सदस्य सचाईके साथ यह दावा कर सकते हैं कि उन्होंने स्वयं अपने हृदयसे अस्पृश्यताको संपूर्णतः मिटा दिया है? क्या उनका व्यवहार वैसा ही है जैसा उनका दावा है?”

एक सदस्यने प्रश्न किया: “इस सम्बन्धमें आपकी कसौटी क्या है?”

गांधीजी : “आप विवाहित हैं?”

“जी हां।”

“तो क्या आपके कोई अविवाहित लड़का या लड़की है? यदि हो तो उसका धार्मिक भावनासे किसी हरिजनके साथ विवाह कर दीजिये। तब मैं आपको मेरे खर्चसे बधाईका तार भेजूंगा !”

इसके थोड़े ही समय बाद उन्होंने आश्रममें निरीश्वरवादी ब्राह्मण अध्यापककी पुत्रीका विवाह अध्यापकके नास्तिक हरिजन नवयुवक शिष्यके साथ करनेका निश्चय किया और यह भी घोषणा कर दी कि भविष्यमें मेरे आशीर्वाद उन्हीं नवदंपतीको मिलेंगे, जिनमें से एक हरिजन होगा !



फरवारी १९४४ में नजरबन्दी कैम्पमें कस्तूरबाकी मृत्युके बाद, जब इस बारेमें शंका ही थी कि गांधीजीको जेलसे बाहर जीवित निकलने भी दिया जायगा या नहीं, लोगोंके मनमें यह विचार बैठ गया कि कस्तूरबाके नाम पर एक राष्ट्रीय स्मारक खड़ा किया जाय और उनकी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके हेतुसे एक कोष स्थापित करनेके लिए पैसा भी एकत्र किया जाने लगा था। २ अक्टूबर, १९४४ को गांधीजीकी ७५वीं वर्षगांठ थी। अतः उसके अनुरूप ७५ लाख रुपया एकत्र करनेका लक्ष्य निश्चित किया गया था और उस दिन गांधीजी जेलमें ही रहें तो उनकी अनुपस्थितिमें उन्हें यह थैली भेंट करनेका निर्णय किया गया था। जनताकी दबी हुई भावनाको प्रगट करनेका एकमात्र यही मार्ग था, क्योंकि व्यापक सरकारी दमनके होते हुए वह भावना और किसी तरह प्रगट नहीं की जा सकती थी। निश्चित दिन तक कोषमें निर्धारित रकमसे पांच लाख रुपये अधिक इकट्ठे हो गये।

इस बीच गांधीजी छोड़ दिये गये और २ अक्टूबर, १९४४ को सेवाग्राम आश्रममें एक छोटेसे समारोहमें ८० लाख रुपयेकी एक थैली उन्हें भेंट की गई। इस अवसर पर गांधीजीने कस्तूरबाकी सूनी झोंपड़ीके सामने उसी पवित्र तुलसीके पौधेकी एक डाली लगाई, जिसके सामने वे प्राचीन हिन्दू प्रणालीके अनुसार नजरबन्दी शिविरमें प्रार्थना किया करती थीं और जिसे हम अपनी मुक्तिके समय एक बहुमूल्य स्मृतिचिह्नके रूपमें अपने साथ ले आये थे।

कस्तूरबाके इस स्मारकका रूप क्या हो ? तरह तरहकी योजनाएं प्रस्तुत की गई और पूरे विचारके बाद सब अस्वीकार कर दी गई। कस्तूरबा गांधी ऐसी स्त्री थीं, जिन्हें आज तो अशिक्षित और भोलीभाली ही समझा जायगा। फिर भी अहिंसाका आदर्श सिद्ध करनेके गांधीजीके प्रयत्नमें उन्होंने शक्ति-स्तंभका काम किया था और दक्षिण अफ्रीका तथा भारतमें गांधीजीके सारे अहिंसक संग्रामोंमें वे आगे रही थीं। यह उचित ही था कि स्मारक उनके व्यक्तित्वके इन पहलुओंको व्यक्त करनेवाला हो। इसलिए गांधीजीने सुझाया कि स्मारक गांवकी स्त्रियों और बच्चोंकी शिक्षा, उनकी आर्थिक उन्नति और सेवा तथा महिला कार्यकर्ताओंके प्रशिक्षणके आन्दोलनका स्वरूप ग्रहण करे और इसमें धर्म, जाति या वर्णका कोई भेद न रहे।



गांधीजी स्त्रियोंके मताधिकारके कट्टर पक्षपाती थे, इसलिए उन्होंने यह आग्रह किया कि संगठनकी कार्यकारिणीमें केवल स्त्रियां ही रहें। उन्होंने समझाया कि जो संगठन स्त्रियोंका अपना होगा, उसमें उन्हें अव्यवस्थित या कुव्यवस्थित रूपमें कामकाज चलानेका अधिकार होना चाहिये। जब तक स्त्रियां स्वयं अपना शासन करती हैं तब तक यदि वे कुशासन करें, तो भी चिन्ताकी कोई बात नहीं है। उन्हें पुरुषोंके मार्गदर्शनसे मुक्त कर देना चाहिये। गांधीजीने यह भी आग्रह किया कि कस्तूरबा स्मारक ट्रस्टकी तालीम पाई हुई कार्यकर्त्रियोंमें अहिंसाकी भावना ओतप्रोत होनी चाहिये, क्योंकि कस्तूरबाका जीवन उसी भावनासे ओतप्रोत था, और दूसरी बातोंमें भी वे कस्तूरबाकी जीवन-दृष्टि रखनेवाली होनी चाहिये।

‘कस्तूरबाकी जीवन-दृष्टि’ की व्याख्या क्या हो सकती है? ट्रस्टकी एक सभामें इस पर लम्बी चर्चा हुई।

गांधीजी : “कस्तूरबाकी जीवन-दृष्टिका अर्थ है कस्तूरबा गांधी द्वारा व्यक्त की गई जीवन-दृष्टि, न कि मोहनदास करमचंद गांधीकी जीवन-दृष्टि !”

इस उद्गारमें गहरी हमदर्दी भरी हुई थी। सभी जानते हैं कि कस्तूरबाका भी महात्माजीकी तरह एक शक्तिशाली व्यक्तित्व और संकल्प-बल था। और कस्तूरबाके क्षेत्रमें महात्माजीको स्वयं भी उनका मार्गदर्शन स्वीकार करना पड़ता था!

इस प्रकार अहिंसाके शस्त्रागारमें कस्तूरबा राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्टके रूपमें एक और शस्त्र जुड़ गया, क्योंकि उसका काम भारतीय नारीजातिमें सोये हुए अहिंसा-बलको क्रियाशील बनाना था।

कस्तूरबा राष्ट्रीय स्मारक कोषका अधिकांश रुपया तथाकथित पूंजी-पतयोंने इकट्ठा किया था और बहुत कुछ उन्होंने ही दिया था। उनमें से कुछ लोग मूल ट्रस्टी-मण्डलमें थे। गांधीजीने इसे एक शुभ लक्षण समझा कि इतने अधिक करोड़पति सत्ताधारियोंके कोपभाजन बने हुए एक नजरबन्द व्यक्तिकी परलोकवासी पत्नीके स्मारकके साथ एकरूप होनेमें सरकारकी अप्रसन्नतासे भयभीत नहीं हुए। उन्होंने कहा: मैं जानता हूं कि उनमें से कुछ लोग अत्यन्त मानवतावादी हैं। उन्होंने मुझे अपनी जेबोंमें हाथ डालने दिया। मेरे साथ सम्बन्ध रखनेसे स्वयं उन्हें कोई लाभ नहीं है। मेरे साथ उनका सम्पर्क



व्यावसायिक जगतमें उनके चमकनेके बाद हुआ। मेरी लालसा पूंजीपतियोंके विचार इस प्रकार बदल देनेकी है कि वे न सिर्फ गरीबोंके हितैषी और संरक्षक बन जायं, बल्कि स्वेच्छासे उन्हें अपनी सम्पत्तिके साझेदार बना ले।

कुछ रचनात्मक कार्यकर्ताओंने इसका संकुचित अर्थ करके एक सुझाव रखा कि ज्यों ही कोष एकत्र करनेका काम पूरा हो जाय त्यों ही पूंजी-पतियोंको ट्रस्टी-मंडलसे त्यागपत्र दे देना चाहिये। यह भय प्रगट किया गया कि पूंजीपति कस्तूरबा ट्रस्टके मंडलमें हैं इसलिए उसके संगठन पर हावी होकर वे जानमें या अनजानमें अपने पूंजीवादी और शहरी मानसके कारण ट्रस्टके उद्देश्यको विफल कर सकते हैं। इसे कुछ ट्रस्टी अकारण किया गया अपमान समझ कर नाराज हो गये और उनमें से एकने तो इस बारेमें गांधीजीको रोषपूर्ण पत्र भी लिखा।

गांधीजीने कार्यकर्ताओंके इस भयको अनुचित बताया। मूल ट्रस्टियोंने न तो यह मांग की और न यह इच्छा बताई कि संगठन पर उनका प्रभुत्व रहे। ट्रस्टी-मण्डल और छोटीसी कार्यकारिणीके लिए गांधीजीने जो अन्य नाम प्रस्तावित किये, वे उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिये। गांधीजी चाहते तो वे स्वेच्छापूर्वक ट्रस्टी-मंडलसे त्यागपत्र दे देते। लेकिन गांधीजीने कहा, मैं नहीं चाहता कि पूंजीपतियोंको ऐसा लगे कि उन्हें ट्रस्टी-मंडलसे अलग कर दिया गया है और न मैं यह चाहता कि वे ट्रस्टके काममें रस लेना बन्द कर दें। ट्रस्टके एक मूल ट्रस्टी और टाटा परिवारके श्री जे. आर. डी. टाटाके एक पत्रके उत्तरमें गांधीजीने लिखा: “मैं जानता हूं कि मैं इस विचारका प्रचार करनेका दोषी रहा हूं कि ट्रस्टके धनकी व्यवस्था व्यवहारमें मेरी पसन्दके ट्रस्टियों पर छोड़ दी जानी चाहिये। पर कोई हानि होनेसे पहले ही मुझे अपनी भूलका पता लग गया। मैं जितना ही उसका विचार करता हूं उतनी ही मुझे ऐसी कल्पनाके पीछे रही संकीर्णता अनुभव होती है। सारा ट्रस्टी-मंडल एक सुन्दर समन्वय है और यदि अधिकांश ट्रस्टी कोषकी व्यवस्थामें सक्रिय भाग लें, तो हम अकल्पित लाभदायक परिणामोंकी आशा रख सकते हैं। **अग्रगण्य नगरवासियों और सीधे-सादे स्त्री-पुरुषोंका सक्रिय समन्वय और सहयोग एक विरल अनुभव है।**” [गांधीजीका पत्र जे. आर. डी. टाटाको, ७ अक्टूबर १९४४] (मोटे टाइप मैंने किये हैं)



अपनी विविध प्रकारकी राजनीतिक और अराजनीतिक (रचनात्मक) प्रवृत्तियोंके लिए बड़े बड़े फंड एकत्र करनेके कारण गांधीजीका धनी और पूंजीपति-वर्गके साथ घनिष्ठ सम्पर्क हो गया था। वे उनके उदारतासे दिये हुए दान निःसंकोच स्वीकार करते थे, यद्यपि उन्हें धनिकोंके लाखों रुपयोंसे गरीबोंके पाई-पैसे ज्यादा कीमती मालूम होते थे। पैसेवालोंके साथ कुछ लोग “कमजोरीकी निशानी और सत्य तथा अहिंसाके लिए अशोभनीय” बताते थे। इसके विपरीत, गांधीजी स्वयं इस सम्बन्धको वास्तवमें अपनी अहिंसाका लक्षण समझते थे। रोमां रोलां जैसे महापंडित और दार्शनिकको भी एक बार गहरा आघात लगा था, जब गांधीजीने उत्साह-पूर्वक शस्त्रास्त्र-उद्योगसे सम्बन्धित एक प्रमुख व्यक्तिके परिवारके किसी सदस्यको अपने हस्ताक्षर दिये थे । गांधीजीका तत्त्वज्ञान कोई दूसरे ही प्रकारका था। वे हमेशा मनुष्य और प्रणालीके बीच स्पष्ट भेद करते थे; यह उनके अहिंसक दृष्टिकोणका अत्यावश्यक अंग था । पूंजीवादसे उनका कोई सरोकार नहीं था, परन्तु पूंजीपतियोंको वे कभी न सुधर सकनेवाले या दूसरे किसी भी वर्गके लोगोंसे अधिक बुरे कभी नहीं मानते थे। वे कहा करते थे, वास्तवमें मैंने बहुत बार यह देखा है कि जो लोग पूंजीपतियोंकी घोर निन्दा करते हैं, उन्हें खुद अगर मौका मिल जाय तो पूंजीपति बननेसे अरुचि नहीं होती और उनके दैनिक जीवनके छोटे-बड़े कामोंमें, कम या अधिक मात्रामें, पूंजीपतियोंकी अधिकतर कमजोरियां पाई जाती हैं जिनकी वे निन्दा करते हैं। एक दिन जब एक विदुषी करोड़पतियोंकी निन्दा कर रही थीं तब गांधीजीने उन्हें यह कह कर चुप कर दिया, “तुम स्वयं करोड़पति बन जाओ तब तक ठहरो!”

उनकी अहिंसाका यह तकाजा था कि वे अपनी त्रुटियोंके प्रति कठोर बनें और दूसरोंके विषयमें कोई राय बनानेमें उदार रहें। वे (गांधीजी) अपनी ही त्रुटियां दूर कर लें इतना उनके लिए काफी था। उन्होंने पूंजी-पतियोंके घोर विरोधियोंसे कहा, मैं अपने धर्मसे विमुख हो जाता, यदि मैं पूंजीपतियोंके प्रति यह रवैया अपनाता कि ‘मैं तुमसे अधिक पवित्र हूं’ और आपकी सलाह पर चल कर अपने धनी मित्रोंके साथ सम्बन्ध रखनेसे इनकार कर देता। उन्हें मेरा अनुचित लाभ उठाने देना तो दूर रहा, उल्टे मैं ही गरीबोंके कामके लिए खुले तौर पर और बेहयाईके साथ उनका उपयोग कर रहा हूं। इस टीकाके उत्तरमें कि गांधीजीके मनमें पूंजीपति शोषकोंके प्रति उनके शिकारोंकी अपेक्षा अधिक कोमल भावना है, उन्होंने एक बार नॉमन क्लिफ़से कहा था, यदि मेरी अहिंसा ऐसी ही है तो उसे दबा देना चाहिये।



“अवश्य ही मेरे मित्रोंमें पूंजीपति भी हैं और मुझे इस बातका गर्व है कि वे मुझे अपना मित्र मानते हैं। परन्तु जब जरूरत होती है तब मैं उनसे लड़ता भी हूं और मुझसे ज्यादा सख्त लड़ाई उनसे दूसरा कोई नहीं लड़ता । मैंने जिस ढंगसे मिल-मालिकोंके साथ लड़ाई लड़ी है वैसी और उतनी सफलतासे अन्य किसीने नहीं लड़ी होगी।” [नॉर्मन क्लिफके साथ गांधीजीकी भेंट, मसूरी, ३१ मई १९४६] उन्होंने कहा, ऐसी स्थितिमें भी पूंजीपतियों और मिल-मालिकोंसे मेरी मित्रता बनी रही, यह मेरी अहिंसाका ही प्रताप है। मैं धनवालोंसे यह नहीं कह सकता कि जब तक वे अपनी सारी सम्पत्तिका त्याग न कर दें तब तक मैं उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखूंगा। “अपनी सम्पत्तिका सम्पूर्ण परित्याग ऐसी वस्तु है, जो साधारण लोगोंमें भी बिरले ही आदमी कर सकते हैं। धनिक वर्गसे उचित रूपमें इतनी ही आशा रखी जा सकती है कि वे अपनी सम्पत्ति और बुद्धिके संरक्षक बने रहें और दोनोंका उपयोग समाजकी सेवामें करें । इससे अधिकका आग्रह उनसे रखना सोनेके अंडे देनेवाली मुर्गीको मार डालना होगा।” [११ अप्रैल १९४५ को बोरीवली शिविरमें कस्तूरबा सेविकाओंके समक्ष गांधीजीका भाषण और प्रार्थना-प्रवचन]



चौथा अध्याय

साम्प्रदायिक त्रिकोण

१

सोमवार गांधीजीके साप्ताहिक मौनका दिन था। इसलिए वे पर्चियों पर लिखकर बातचीत कर रहे थे। वे राजाजीको कुछ समयके लिए सेवाग्राम आकर रहनेकी बात समझा रहे थे। कांग्रेसके महारथी नेता चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यको उनके मित्र स्नेहवश राजाजी ही कहते थे।

राजाजी : “मैं ३० तारीख तक सेवाग्राम आ सकता हूं।”

गांधीजी : “तो उस समय तक मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगा।”

राजाजी : “जैसी आपकी इच्छा।”

गांधीजी : “ ‘आपकी प्रतीक्षा करता रहूंगा’ का क्या अर्थ?”

राजाजी : “कभी कभी खतरोंकी भी प्रतीक्षा की जाती है।”

गांधीजी : “आप ऐसा कह सकते हैं। मैं वह खतरा भी चाहता हूं। मुझे कई बातोंमें आपसे विचार-विनिमय करना है।”

राजाजी : “आशा है उस समय तक हम दोनों अपनी कुछ बातें भूल जायेंगे। फिर किसी प्रकारका विचार-विनिमय करनेकी बात ही नहीं रह जायगी !”

गांधीजी : “तब हम साथ साथ हंसेंगे और मोटे हो जायेंगे।”

फिर बात बिना नमकके आहार पर चली।

गांधीजी : “मैं दक्षिण अफ्रीकामें बरसों तक नमकके बिना रहा हूं। यहां मैंने वह नियम तोड़ दिया, परन्तु अधिक विचारके बाद फिर बिना नमकके भोजन पर आ गया।”



राजाजी : “जब लोगोंको बिना नमकका भोजन खिलाया जाता है तब समककी स्वाभाविक भूख मिटानेके लिए बच्चोंकी तरह उनके दीवारोंको चाटने और मिट्टी खानेकी संभावना रहती है।”

गांधीजी : “इससे उन्हें लाभ ही होगा । दीवारें साफ हो जायंगी! यह तो उस हंसीका आरंभ ही है, जिसका पूरा आनन्द हम लोग सेवाग्राममें लेनेवाले हैं।”

रातके पौने दस बज रहे थे और गांधीजीको सोनेमें देर हो रही थी।

गांधीजी : “अब मुझे आपसे प्रेम भी करना हो, तो आपको छोड़ देना चाहिये !”

गांधीजी और राजाजीका मिलन एक ऐसी घटना होती थी, जिसकी हमेशा प्रतीक्षा की जाती थी और उसके लिए सबसे अधिक उत्सुक स्वयं गांधीजी रहते थे। जब कभी दोनों मिलते थे तब विनोद, चातुर्य और ज्ञानकी आनन्दप्रद गोष्ठी होती थी। परन्तु १९४२ में राजाजीका अपने कांग्रेसी साथियों और गांधीजीसे ‘भारत छोड़ो’ की मांग पर मतभेद हो गया था और उसके फलस्वरूप राजाजीने कांग्रेस कार्यसमितिसे त्यागपत्र दे दिया था। यह जान कर कि उनके राजनीतिक विचार कांग्रेसके नेताओं सहित बहुतसे कांग्रेसियोंमें अतिशय अप्रिय हो गये थे, राजाजी गांधीजीके छूटनेके बाद उनसे जान-बूझ कर कमसे कम उस समय तक दूर रहे थे, जब तक गांधीजी तत्कालीन प्रश्नों पर अपना पहला वक्तव्य न दे चुके । इसका कारण यह था कि राजाजी किसीको भी यह संदेह करनेका अवसर नहीं देना चाहते थे कि उन्होंने गांधीजीके निर्णयोंको प्रभावित किया है । इस कारण तो गांधीजी उनसे मिलनेके लिए और भी उत्सुक हो गये थे। कुछ तत्कालीन राजनीतिक समस्याओंके बारेमें दोनोंके बीच दृष्टिभेद अवश्य हो गया था, परन्तु मानवताकी भूमिका पर दोनोंमें बहुत अधिक समानता थी । राजाजी महात्मा गांधीके दक्षिण अफ्रीकाके कार्योंकी ख्याति भारतमें पहुंची उस समयसे ही—अर्थात् उनसे मिलनेके भी पहले—अपना हृदय गांधीजीको अर्पण कर चुके थे। और गांधीजी भी मनुष्योंका शिकार करनेमें प्रवीण थे। वे हमेशा कहा करते थे कि राजाजीसे ज्यादा अच्छी कोई मछली उनके जालमें नहीं फंसी।

अगस्त १९४२ में कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारीके समयसे ही (राजाजी ‘भारत छोड़ो’ के अपने प्रसिद्ध विरोधके कारण गिरफ्तार नहीं किये गये थे) राजाजी राजनीतिक गतिरोधको सुलझानेके लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीगमें **मेल करानेकी** कोशिश कर रहे थे। राजाजी ‘बुद्धियुग’ की अनुपम



बुद्धिशाली सन्तान थे। उन्हें अपने समझाने-बुझानेकी शक्तिमें अपार विश्वास था। उन्हें लगता था कि अगर कांग्रेस और मुस्लिम लीगमें मेल हो जाय और दोनों एक ही मंच पर आ जायें, तो स्वाधीनताकी लड़ाई बातकी बातमें जीत ली जाय। उनकी यह भी मान्यता हो गयी थी कि यदि मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्तोंके लिए मुस्लिम लीगके मांगे हुए आत्म-निर्णयके अधिकारको कांग्रेस स्वीकार कर ले, तो लीग भारतीय स्वाधीनताकी मांगमें कांग्रेसके साथ हो जायगी और फिर ब्रिटिश सत्ताके लिए दोनोंकी सम्मिलित मांगको अस्वीकार करना सम्भव नहीं होगा।

राजाजीकी ये दोनों धारणाएं गलत थीं। जिन्ना उस समय तक कांग्रेसके साथ कोई समझौता करनेको तैयार नहीं थे जब तक उन्हें ब्रिटिश सत्तासे अधिक अच्छी शर्तें मनवानेकी आशा थी; और ब्रिटिश सत्ता तो हिन्दुस्तानको हानि पहुंचा कर उन्हें प्रसन्न करनेको हमेशा ही तैयार रहती थी। और कमसे कम युद्धकालमें तो, कुछ भी क्यों न हो जाय, ब्रिटिश सरकार सत्ता हस्तांतरित करनेको तैयार नहीं थी। यदि राजाजीकी आशाएं पूरी हो जातीं, तो बेशक मुस्लिम लीगकी साम्प्रदायिक नीति और अंग्रेजोंकी “फूट फैला कर राज्य करने” की नीतिका सारा इतिहास झूठा हो जाता। परन्तु व्यक्तिगत अनुभवसे इसका विश्वास करनेके लिए स्वयं प्रयत्न करना राजाजीके लिए आवश्यक था।

इसलिए नजरबन्दी कैम्पमें गांधीजीके उपवासके दिनोंमें जब थोड़े समयके लिए मजबूरीसे जेलके फाटक खोल दिये गये, तो अवसर पाकर राजाजीने कांग्रेस और मुस्लिम लीगमें समझौता करानेके लिए गांधीजीके सामने एक योजना रखी। उनकी योजनाकी, जो आगे चल कर राजाजी-योजना कहलायी, मुख्य बातें ये थीं: (१) मुस्लिम लीगको स्वाधीनताकी भारतीय मांगका समर्थन करना चाहिये और संक्रांति-कालके लिए एक अस्थायी अन्तरिम सरकार बनानेमें कांग्रेसके साथ सहयोग करना चाहिये; (२) युद्ध समाप्त होनेके बाद कांग्रेस उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी भारतके एक-दूसरेसे लगे हुए उन जिलोंकी सीमा बांधनेके लिए कमीशनकी नियुक्तिको स्वीकार करेगी, जिनमें मुसलमानोंका स्पष्ट बहुमत हो; (३) इन निर्धारित सीमावाले प्रदेशोंमें वयस्क मताधिकार या इसी तरहकी किसी और व्यवस्थाके आधार पर सारे निवासियोंका जनमत भारतसे अलग होनेके प्रश्नका निर्णय करेगा। यदि बहुमत भारतसे अलग कोई सार्वभौम राज्य स्थापित करनेके पक्षमें निर्णय दे, तो उस निर्णय पर अमल किया जाय; (४) इस प्रकार उन प्रदेशोंका अलग राज्य रचा जाय तो प्रतिरक्षा, व्यापार-उद्योग, डाक-तार



तथा अन्य आवश्यक विषयोंमें परस्पर समझौता किया जाय; और (५) ये शर्तें उसी स्थितिमें बंधनकारक होंगी जब ब्रिटेन भारतके शासनके लिए पूरी सत्ता और जिम्मेदारी हस्तांतरित कर देगा।

गांधीजीको इस योजनाके लिए अपनी स्वीकृति देनेमें एक क्षणका भी विचार करनेकी जरूरत नहीं हुई। इस स्वीकृतिको लेकर राजाजी मुस्लिम लीगके अध्यक्ष जिन्नाके पास पहुंचे। परन्तु जिन्नाने इस योजनाको माननेमें असमर्थता प्रगट की, क्योंकि उससे लीगकी पाकिस्तानकी मांग संपूर्ण रूपमें पूरी नहीं होती थी। बादमें मुस्लिम लीग कौंसिलके सामने भाषण देते हुए जिन्नाने इसे “परछाई और भूसेके समान तथा घायल, अंगभंग किया हुआ और कीड़ों द्वारा खाया हुआ पाकिस्तान” [लीग कौंसिलकी बैठक, ३. जुलाई १९४४] कहा। लेकिन राजाजी चाहें तो जिन्नाने इस योजनाको मुस्लिम लीग कौंसिलके सामने विचारके लिए रख देनेकी तैयारी बताई। राजाजी पूरी तरह जानते थे कि पहले जिन्नाकी स्वीकृति न मिले, तो योजनाको कौंसिलके सामने रखनेसे कोई लाभ नहीं होगा। उन्हें यह भी लगा कि इस योजनाको यों ही चुपचाप ताकमें रख देना जनताके प्रति अन्याय होगा और योजनाके साथ भी न्याय नहीं होगा। इसलिए राजाजीने अपनी योजना और साथ ही जिन्नाके साथ हुआ पत्र-व्यवहार अखबारोंमें प्रगट कर दिया। जिन्नाको उन्होंने अन्तिम रूपसे लिख दिया: “निजी संधिवार्ता समाप्त हुई। अब इस बारेमें जनताको विश्वासमें लेना आवश्यक है।”

अब गांधीजी इस चित्रमें प्रवेश करते हैं।

४ अगस्त, १९४२ को—कांग्रेस महासमितिके ‘भारत छोड़ो’ प्रस्ताव पास करनेसे ४ दिन पहले—गांधीजीने दोनों पक्षोंके एक मुस्लिम मित्र मेकलाईके द्वारा कांग्रेस-लीग समझौतेके लिए जिन्नाके पास एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव भेजा था। गांधीजीके प्रस्तावकी शर्तें ये थीं:

किसी भी प्रकारकी सत्ता अपने हाथमें सुरक्षित रखे बिना भारतको तत्काल स्वतंत्रता देनेकी कांग्रेसकी मांगके साथ-बेशक यह व्यवस्था तो इसमें रहेगी ही कि धुरी राष्ट्रोंके आक्रमणको रोकनेके लिए और इस प्रकार चीन और रूसकी सहायता करनेके लिए मित्रराष्ट्रोंकी सेनायें अपनी कार्रवाइयां कर सकें ऐसी छूट स्वतंत्र भारत देगा - मुस्लिम लीग पूरी तरह सहयोग करे और ब्रिटिश सरकार आज जो भी सत्ता अपने हाथमें रखती है वह सब - देशी राज्यों सहित



समग्र भारतकी ओरसे - मुस्लिम लीगको सौंप दें, तो कांग्रेसको कोई आपत्ति नहीं होगी । और भारतकी प्रजाकी ओरसे मुस्लिम लीग जो भी सरकार बनायेगी, उसमें कांग्रेस किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं करेगी । इतना ही नहीं, स्वतंत्र राज्यका शासन-तंत्र चलानेके लिए कांग्रेस सरकारमें भी सम्मिलित होगी।

यह प्रस्ताव इसी प्रकारकी एक सार्वजनिक घोषणाका स्पष्टीकरण था, जो कुछ समय पहले कांग्रेसके अध्यक्ष मौलाना आजादने की थी। परन्तु जिन्नाने उत्तर दिया था कि किसी ऐसे प्रस्ताव पर वे ध्यान नहीं दे सकते, जो सीधा उनके सामने न रखा गया हो। गांधीजी किसी औपचारिक वस्तुको माननेवाले आदमी नहीं थे । यदि कुछ ही दिन बाद वे अचानक नजरबन्द न कर लिये जाते, तो वे जिन्नासे मिले होते।

जब गांधीजी नजरबन्द थे उन दिनों १९४३ के अप्रैलमें दिल्लीमें हुए मुस्लिम लीगके खुले अधिवेशनमें बोलते हुए जिन्नाने यह घोषणा की थी कि यदि गांधीजी सचमुच मुस्लिम लीगके साथ समझौता करनेको तैयार हों, तो मुझे इस बातसे सबसे अधिक प्रसन्नता होगी : “यदि मि. गांधीकी यही इच्छा है, तो उन्हें सीधा मुझे लिखनेसे कौनसी चीज रोक सकती है? . . . यह सरकार इस देशमें मजबूत तो है। लेकिन मैं नहीं मान सकता कि ऐसा पत्र मुझे भेजा जाय, तो वह उसे रोक देनेकी हिम्मत करेगी। ऐसा कोई पत्र रोक लिया जाय, तो वह सचमुच बड़ी गम्भीर बात होगी। . . . यदि उनका थोड़ा भी हृदय-परिवर्तन हुआ है . . . तो वे मुझे केवल कुछ पंक्तियां लिख कर भेज दें। फिर मुस्लिम लीग पीछे नहीं रहेगी।”

उत्तरमें गांधीजीने जिन्नाको पत्र लिखा, जिसमें उनसे मिलनेकी तैयारी बताई : “आपके निमंत्रणमें एक ‘यदि’ मालूम होता है। क्या आपका यह कहना है कि यदि मेरा हृदय-परिवर्तन हुआ हो, तो ही मुझे आपको लिखना चाहिये ? मनुष्योंके हृदयकी बात तो केवल ईश्वर ही जानता है। मैं तो चाहता हूं कि मैं जैसा हूं वैसा ही आप मुझे स्वीकार करें। आप और मैं दोनों एक समान हल ढूंढनेके लिए दृढ़ संकल्प करके साम्प्रदायिक एकताके महान प्रश्नको हाथमें क्यों न लें? और जिन लोगोंका भी इसके साथ सम्बन्ध



है या जिनकी इसमें दिलचस्पी है, उन सबसे अपना वह हल स्वीकार करानेके लिए हम दोनों मिल कर काम क्यों न करें?" [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, ४ मई १९४३]

सरकारने इस पत्रको जिन्नाके पास पहुंचनेसे रोक दिया। परन्तु इसका 'सार' उनके पास भेज दिया। इस पर जिन्नाने यह घोषणा की कि वे इस प्रकारका पत्र गांधीजीकी ओरसे नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि गांधीजी पहले मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी मांग स्वीकार करें और फिर उन्हें लिखें ! "मि. गांधीके इस पत्रका अर्थ तो यही समझा जा सकता है कि यह उनकी अपनी मुक्तिके एकमात्र उद्देश्यसे मुस्लिम लीगकी ब्रिटिश सरकारके साथ टक्कर करा देनेकी चाल है।" [जिन्नाका अखबारी वक्तव्य, २८ मई १९४३]

पत्रको रोक लेना और उसका सार बतलाना - यह बात इस बारके गुप्त षड्यंत्रमें शरीक दोनों पक्षों अर्थात् जिन्ना और ब्रिटिश सत्ताके लिए बहुत लाभप्रद रही। लेकिन दूसरी बार ब्रिटिश कैबिनेट-मिशनकी संधिवार्ताओंके दिनोंमें जब जिन्नाने कांग्रेसके एक पत्रका 'सार' लॉर्ड वेवेलसे जानकर काम चला लिया और सारे पत्रके पाठके लिए प्रतीक्षा नहीं की, तब यह सौदा उन्हें बहुत महंगा पड़ा। (देखिये अध्याय ९, विभाग २)

जो काम गांधीजी जेलमें रह कर नहीं कर सके, वह उन्होंने अपनी मुक्तिके बाद स्वतंत्र होकर आरंभ कर दिया। उन्होंने १७ जुलाई, १९४४ को पिछली रातमें चर्चिलको पत्र लिखा था ("मुझ पर विश्वास कीजिये और अपने और मेरे लोगोंके खातिर मेरा उपयोग कीजिये।") ; उसी समय उन्होंने जिन्नाको भी पत्र लिखा था, जिसमें गांधीजीने उन्हें 'भाई जिन्ना' कह कर संबोधित किया था और उस पर अंतमें 'आपका भाई, गांधी' लिख कर हस्ताक्षर किये थे।

अपने उस पत्रमें गांधीजीने लिखा था:

एक समय था जब मैं आपको मातृभाषामें बोलनेके लिए राजी कर सका था । आज मैं आपको मातृभाषामें लिखनेका साहस कर रहा हूं। जेलसे भेजे हुए अपने निमंत्रणमें मैं आपकी और मेरी मुलाकातके बारेमें लिख चुका हूं। जेलसे छूटनेके बाद मैं आपको अभी तक लिख नहीं पाया । आज मुझे लिखनेकी प्रेरणा हुई है। जब आप मिलना चाहें तब हम मिलें। मुझे इस्लामका



या भारतीय मुसलमानोंका शत्रु न समझिये। मैं हमेशा आपका और मानव-जातिका सेवक और हितैषी रहा हूं। मुझे निराश न कीजिये।

यह पत्र जान-बूझकर गुजरातीमें लिखा गया था, जो काठियावाड़ और गुजरातके हिन्दुओं, पारसियों और जिन्नाकी मुस्लिम जातिका सामान्य मातृभाषा थी (और जिसका अस्तित्व तक पाकिस्तानके दर्शनशास्त्रमें अस्वीकार कर दिया गया था) । तुरन्त 'भाई जिन्ना' का अंग्रेजीमें श्रीनगरसे 'क्वीन एलिज़ाबेथ' नामक नौकागृहसे 'प्रिय मि. गांधी' के नाम उत्तर आ गया। उसमें सूचना दी गई कि अगस्त १९४४ के मध्यमें किसी समय काश्मीरसे लौटने पर वे गांधीजीका अपने बम्बईके मकान पर "हर्षसे स्वागत करेंगे।" इस पर उदारदलीय नेता सर तेजबहादुर सप्रूने गांधीजीको लिखा: "इस बारेमें मुझे शंका नहीं कि आपके जैसे महापुरुषको ही ऐसा 'स्वागत पाना' पुसा सकता है !"

२

जिन्ना और मुस्लिम लीगको किस चीजने इतना अड़ियल बना दिया था और वह साम्प्रदायिक त्रिकोण क्या था, जिसने केवल सारे राष्ट्रवादी भारतके ही सारे प्रयत्नोंको नहीं, परन्तु आगे चलकर ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके भी सारे प्रयत्नोंको विफल कर दिया था?

इस साम्प्रदायिक त्रिकोणकी तीन भुजायें थीं - कांग्रेस, मुस्लिम लीग और ब्रिटिश सत्ता। ये तीनों क्रमशः राष्ट्रवाद, सम्प्रदायवाद [प्रो. डब्ल्यू. सी. स्मिथ सम्प्रदायवादकी व्याख्या यों करते हैं: "भारतमें सम्प्रदायवाद प्रत्येक धर्मके माननेवालोंके समूहको सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक घटकके रूपमें महत्त्व देता है और ऐसे समूहोंके बीच जो भेद और जो शत्रुता है, उस पर भी जोर देता है। . . ." - मोडर्न इस्लाम इन इंडिया, लाहौर, १९४३, पृ. १८५] और साम्राज्यवादकी शक्तियोंकी प्रतिनिधि थीं और टिके रहनेके लिए अंतिम संग्राममें लगी हुई थीं।

इस त्रिकोणके भीतर और उसकी भुजाओंको काट कर बाहर निकलनेवाला एक और त्रिकोण था। यह देशमें उसी समय चल रहे आर्थिक संग्रामको बताता था। इसमें भी तीन पक्ष थे। पहला ब्रिटिश सत्ताका और भारतके जमींदारों तथा दूसरे स्थापित स्वार्थोंका था। दूसरा पक्ष मध्यम वर्गका था, जो ऊपरवालोंके प्रभुत्वसे मुक्त होनेके लिए संघर्ष कर रहा था, परन्तु नीचेवालोंके सम्बन्धमें परोपजीवी था



या उनके शोषण पर टिका हुआ था। तीसरा पक्ष आम लोगोंका था, जो विदेशी राज्यमें दो सौ वर्षके शोषणसे पिसते पिसते तबाह हो गये थे। उन्हें अपने दुःखों और यातनाओंका ही भान था और उनके मनमें यह उत्कट अभिलाषा थी कि स्वतंत्रताके आनेसे उनकी दशा सुधरेगी।

असंतुष्ट मुस्लिम जनता पर उनकी साम्प्रदायिक भावनाको लक्ष्यमें रखकर की जानेवाली अपीलका असर हो सकता था। ऐतिहासिक भूतकालमें कभी उनकी इस भावनाका कोई वास्तविक आधार रहा होगा। परन्तु जैसा बंगालके एक समयके गवर्नर मि. केसीने कहा था, यह शिकायत बहुत पहले ही निष्क्रिय हो गई थी और अब तो उसकी केवल स्मृति ही बाकी रह गई थी। मुस्लिम लीगने प्रयत्नपूर्वक उसे फिरसे जगाकर ऐसी मनःस्थिति पैदा कर दी थी, जिसे मिस्टर केसीके शब्दोंमें 'हिन्दुओंका हौवा' ही कहा जा सकता है। मि. केसी कहते हैं: "हिन्दू चाहें तो भी अब मुसलमानों पर सामाजिक अपमान और तिरस्कार थोपनेकी स्थितिमें वे नहीं रहे हैं।" [केसी, 'एन ऑस्ट्रेलियन इन इंडिया', लन्दन, १९४७, पृ. ७५]

साम्प्रदायिक समस्या भारतके कट्टरपंथियों और मध्यमवर्गीय लोगोंके साथ मिलकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद जिन प्रतिक्रियावादी शक्तियोंका प्रतिनिधित्व करता था उनकी उत्पन्न की हुई चीज थी। राष्ट्रीय आन्दोलनसे उनकी सुरक्षाको खतरा था, अतः उसे छिन्नभिन्न करनेके लिए उन्होंने राजनीतिक सत्ताकी अपनी कशमकशमें सम्प्रदायवादको पकड़ लिया। उदाहरणके लिए, इससे आसान और क्या हो सकता था कि असंतुष्ट मुस्लिम जनतासे यह कहा जाय कि तुम लोगोंकी मुसीबतों और तकलीफोंका कारण हिन्दू साहूकार और हिन्दू जमींदार हैं - यह उनके जीवनका एक कठोर सत्य था - और ऐसा कहकर प्रकाशकी तरह स्पष्ट इस सत्य पर आवरण डाल दिया जाय कि मुस्लिम लीगके बड़ी संख्याके प्रमुख नेता स्वयं सरकारी खिताबोंवाले जमींदार थे - पुरानी सामंतशाही व्यवस्थाके अवशेष थे?

तो जिन्ना साहबने, जो किसी समय उत्साही होमरूलवादी थे, सम्प्रदायवादके प्रणेता बनकर ब्रिटिश अनुदार दलके कट्टरपंथियों और ब्रिटिश भारतीय नौकरशाहों, कट्टरपंथी जमींदारों और पुरानी सामन्तशाहीका प्रतिनिधित्व करनेवाले स्थापित स्वार्थीको अपना उत्तम मित्र बनाया और अपने



उदारवादके बावजूद इस्लामी राज्यका नारा बुलन्द किया। वे अद्यतन फैशनके इंग्लिश कोटपतलूनके बजाय शेरवानी पहन कर शुक्रवारकी नमाजमें भी शरीक होने लगे।

सम्प्रदायवाद किसी राजनीतिक नामसे चलाया जानेवाला धार्मिक संघर्ष या धर्मकी आड़में चलाया जानेवाला कोई आर्थिक संघर्ष नहीं था। वह तो केवल विचारोंकी गड़बड़का ही परिणाम था, जो ऐसे वर्गोंमें हुआ ही करती है - जो राजनीतिक सत्ताके लिए खेल खेलते हैं और इन विचारोंको तोड़-मरोड़कर अपने स्वार्थके लिए उनका दुरुपयोग करते हैं। इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण लिपिका प्रश्न था - अर्थात् देशकी राष्ट्रभाषाके लिए देवनागरी लिपि हो या फारसी लिपि हो? देशके विभाजनके विवादमें यह प्रश्न बड़ा प्रमुख बन गया था, यद्यपि दस प्रतिशतसे भी कम भारतीय लिखना-पढ़ना जानते थे।

अंग्रेजोंके आनेसे पहले भी भारतमें धार्मिक मतभेद थे। अंग्रेजोंके आनेसे पहले भारतमें कट्टरपंथी धार्मिक लोगोंका, धर्मान्धोंका और विभिन्न विरोधी सम्प्रदायोंमें आपसी झगड़ोंका अस्तित्व था। परन्तु समूचा चित्र जो नजरके सामने आता था वह तो जातियों, धर्मों, भाषाओं, संस्कृतियों तथा विचारधाराओंके संगम और समन्वयका था। मुस्लिम शासकोंके अमुस्लिम सेनापति और सलाहकार होते थे, जिन पर उन्हें विश्वास और गर्व होता था। उसी तरह हिन्दू तथा सिक्ख राजाओंके मुसलमान मंत्री, सेनापति और सलाहकार होते थे। मुसलमानों और अमुसलमानोंके राज्योंके राज्यसंघ थे। सूफीवादके कई सम्प्रदायोंके बड़े बड़े उदार धार्मिक आन्दोलन चलते थे और उनमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके श्रद्धाभाजन साधु-संत सम्मिलित होते थे। खुद उर्दू भाषा, जो कि उत्तर भारतके अधिकांश मुसलमानोंकी भाषा थी, फारसी और मुसलमानोंके आनेके समय भारतमें प्रचलित संस्कृतसे निकली हुई बोलियोंके मिश्रणसे बनी थी। सत्ताकी लड़ाईने अलगावका रूप कभी ग्रहण नहीं किया था और आम जनता लगभग उससे अछूती रहती थी। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच सामुदायिक विरोधकी घटना और अलग होनेका आन्दोलन—जिसके जिन्ना और मुस्लिम लीग प्रणेता बने - ब्रिटिश राज्यमें अस्तित्वमें आया (जैसा पंजाबके एक भूतपूर्व गवर्नर सर जॉन मेनार्डने लंदनके 'फॉरेन अफेयर्स' में लिखते हुए प्रमाणित किया था)। सर जॉनने लिखा था, “बेशक, यह सच है कि यह फूट और विघटनकी वृत्ति होती, तो ब्रिटिश सत्ता भारतमें जम नहीं सकती थी और न इस समय टिक सकती थी। हिन्दू-



मुस्लिम वैभनस्य उसी विघटक वृत्तिका एक लक्षण है। यह भी सच है कि दोनों जातियोंके बीच सामुदायिक विरोध ब्रिटिश राज्यमें शुरू हुआ। अंग्रेजोंसे पहलेके युगमें भी समय समय पर अत्याचारी मुस्लिम शासक हुए थे। . . . परन्तु हिन्दू और मुस्लिम जनता शान्तिके साथ उन्हीं देवस्थानोंमें साथ साथ शांतिपूर्वक पूजा करती रही।”

यह कोई अचानक घटी या अपने आप उत्पन्न हुई घटना भी नहीं थी। इसके पीछे अंग्रेजोंकी साम्राज्यवादी कूटनीतिका एक पूरा अध्याय छिपा हुआ था। इस दुःखद अध्यायका वर्णन करना यहां आवश्यक हो गया है, क्योंकि बादमें जो कुछ हुआ उसको समझनेके लिए वह कुंजीका काम करता है। जैसा कि कोई भी प्राणिशास्त्री बता देगा, शरीर-रचना संबंधी अनेक पहलियोंका रहस्य गर्भरचना-शास्त्र (एम्ब्रिओलॉजी) में मिलता है।

बंबईके गवर्नर लॉर्ड एल्फिन्स्टनने अपनी १४ मई, १८५९ की डायरीमें लिखा था कि “प्राचीन रोमकी नीतिका सूत्र यह था कि ‘फूट फैला कर राज्य करो’ और यही हमारा भी सूत्र होना चाहिये।” [दत्त कृत ‘इंडिया दुडे’ में दिया गया उद्धरण, पृ. ३८९]

इसी तरह एक ब्रिटिश सेनाधिकारी कर्नल जॉन कोकने १८५७ के भारतीय विद्रोहके समय लिखा था: “(हमारे सौभाग्यसे) विभिन्न धर्मों और जातियोंके बीच जो अलगाव मौजूद है उसे मिटाकर हमें इन्हें मिलानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये, बल्कि उसे पूरी तरह प्रोत्साहन देनेका प्रयत्न हमें करना चाहिये।”

१८५७ के विद्रोहके दिनोंमें, जिसने भारतसे मुगल राज्यके अंतिम अवशेषोंका अंत कर दिया था, और उसके बाद मुसलमान ब्रिटिश सत्ताकी नाराजीके शिकार हो गये थे। “उस भयंकर कालकी तमाम भयंकर बातों और मुसीबतोंकी जिम्मेदारी उनके सिर थोपी गई थी।” [ग्रेहाम, “लाइफ एंड वर्क ऑफ सर सैयद अहमद खां?, पु. ४०] उनके प्रति भेदभावका व्यवहार किया जाता था और उन्हें “सरकारी नौकरियों और सरकार द्वारा मान्य किये हुए धंधोंसे वंचित रखा जाता था।” [हंटर, ‘दि इंडियन मुसलमान्स’, पु. १७३] जिन लोगोंने विद्रोहमें भाग लिया था - मुस्लिम शासक वर्ग, उनके आश्रित और उनसे लाभ उठानेवाले सगे-सम्बन्धी, विशेषतः मुस्लिम भद्र लोग - उन्हें नई व्यवस्था स्वीकार करनेमें



बड़ी देर लगी। अंशतः अंग्रेजोंके हाथों उन्हें जो कष्ट हुए थे (और उसमें लूटपाट तथा पुरानी मुस्लिम शिक्षा-प्रणालीका नाश भी सम्मिलित था [स्मिथ कृत 'मॉडने इस्लाम इन इंडिया' में दिया गया हंटरका उद्धरण, लाहौर, १९४३, पृ. १९१]), उनके फलस्वरूप अंग्रेजों पर चढ़े हुए रोषके कारण उन्होंने अंग्रेजी शिक्षाका स्वागत नहीं किया और इस कारणसे मध्यमवर्गके विकासमें उनका बहुत थोड़ा भाग रहा। हां, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किये हिन्दू सरकारी नौकरियोंमें, उद्योगोंमें और व्यापार-व्यवसायमें मुसलमानोंसे आगे बढ़ गये।

१८७१ के आसपास, १८५७ के विद्रोहके १५ वर्ष बाद, जब मुसलमानोंके सभी वर्गोंमें अंग्रेज-विरोधी भावनाने भयंकर रूप धारण कर लिया, तब अंग्रेजोंको महसूस होने लगा कि मुसलमानों संबंधी ब्रिटिश सरकारकी भूतकालीन नीति उचित नहीं थी। यह नई भावना मुसलमानोंकी हिमायतके रूपमें भारत सरकारके एक अंग्रेज अधिकारी डब्ल्यू. डब्ल्यू. हन्टरके द्वारा इन शब्दोंमें प्रगट हुई: मुसलमानोंकी एक "ऐसी कौम है, जो ब्रिटिश राज्यमें बरबाद हो गई।" [मेहता और पटवर्धन, 'दि कम्यूनल ट्रेंगल', इलाहाबाद, १९४२, पृ. ८८]

यह भावना १८८५ के आसपास राष्ट्रवादी आन्दोलनका उदय होनेके बाद अधिक तीव्र हो गई। इस आन्दोलनमें हिन्दुओंका बुद्धिशाली वर्ग, जो अधिक आगे बढ़ा हुआ था, स्वभावतः अधिक प्रमुख रहा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका प्रथम अधिवेशन १८८५ में बंबईमें हुआ। उसमें केवल दो मुसलमान उपस्थित थे। दूसरा अधिवेशन अगले वर्ष कलकत्तामें हुआ। उसमें ३३ मुसलमान शामिल हुए। और छठा अधिवेशन १८९० में हुआ, जिसमें कुल ७०२ प्रतिनिधियोंमें से १५६ यानी २२ प्रतिशत प्रतिनिधि मुसलमान थे। अधिकाधिक मुसलमान इस राष्ट्रीय आन्दोलनकी ओर आकर्षित होने लगे, इसलिए ब्रिटिश सरकार बेचैन हो गई। उसके बाद मुसलमानोंको ब्रिटिश लोगोंके प्रति वफादार बनानेकी नीति भारत सरकारकी स्वीकृत नीति हो गई।

११ मई, १९०६ को तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड मिंटोके नाम लिखे एक पत्रमें भारत-मंत्री लॉर्ड मोर्लेने ब्रिटिश युवराजके साथ, जो भारतमें आये थे, हुई अपनी बातचीतका उल्लेख करते हुए यह



लिखा: “उन्होंने (युवराजने) राष्ट्रीय कांग्रेसके तेज गतिसे शक्तिशाली बननेकी बात कही। . . . हम इसे पसन्द करें या न करें, वस्तुस्थिति तो यही है।” [मोर्लेज़ रिकलेक्शन्स, भाग-२, पृ. १७०-७१]

लॉर्ड मिंटोने यह उत्तर दिया: “मैं इन दिनों इस सम्बन्धमें काफी सोचता रहा हूं कि कांग्रेसके ध्ययोंके सामने कौनसी सन्तुलन-शक्ति खड़ी की जा सकती है। मेरे खयालसे तो देशी राजाओंकी परिषद् (कौंसिल ऑफ प्रिन्सेज़) स्थापित करनेसे इसका हल निकल आयेगा, अथवा उसी विचारका विस्तार करके न सिर्फ देशी राजाओंकी बल्कि कुछ और भी बड़े लोगोंकी प्रीवी कौंसिल बना दी जाय। . . .” [लेडी मिंटोज़ डायरी, पृ. २८-२९]

पांच सप्ताहके बाद १९ जून, १९०६ को भारत-मंत्रीने वाइसरॉयको फिर लिखा : “हरएक आदमी हमें चेतावनी दे रहा है कि भारतमें एक नया उत्साह बढ़ रहा है और भारत भरमें फैल रहा है। लॉरेन्स, शिरोल, सिडनी लो सब यही राग अलाप रहे हैं: ‘आप इसी भावनासे भारतका राज्य नहीं चला सकते; आपको कांग्रेस दल और कांग्रेसके सिद्धान्तोंके साथ निबटना ही पड़ेगा, भले उनके बारेमें आप कुछ भी विचार रखें। विश्वास रखिये कि थोड़े ही समयमें मुसलमान आपके खिलाफ कांग्रेसियोंके साथ हो जायंगे - इत्यादि इत्यादि।’ मैं नहीं जानता यह कहां तक सच है।”

लॉर्ड मिंटोके २७ जून, १९०६ के उत्तरसे मालूम होता है कि वे इस खतरेके प्रति पूरी तरह सजग थे।

बादमें जो कुछ हुआ वह इतिहासकी घटना है। १ अक्टूबर, १९०६ को हिज़ हाइनेस आगाखां मुसलमानोंका एक शिष्ट-मंडल लेकर लॉर्ड मिंटोके पास शिमला पहुंचे (“आज्ञानुसार उठाया हुआ कदम”)। उन्होंने कहा, “मुसलमान कौमको एक कौमकी हैसियतसे प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये” और मुसलमानोंकी स्थितिका अनुमान “सिर्फ उनके संख्याबल परसे ही न लगाया जाय, बल्कि इस कौमके राजनीतिक महत्त्व (अदम्य राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता स्वा. मौलाना मुहम्मदअली इसका अर्थ ‘राजनीतिक नपुंसकता’ किया करते थे !) और उसके द्वारा की हुई साम्राज्यकी सेवाका ध्यान रखकर लगाया जाय।”

लॉर्ड मिंटोने जिन शब्दोंमें इसका उत्तर दिया वे शब्द भविष्यके लिए सम्प्रदायवादी दावोंके संबंधमें समस्त सरकारी घोषणाओंके लिए उदाहरण-स्वरूप बन गये : “मैं आपके साथ पूर्णतया सहमत



हूं। . . . मैं इतना ही कह सकता हूं कि मुसलमान कौम इस बातका पूरा विश्वास रखे कि कौमके रूपमें उसके राजनीतिक अधिकारों और उसके हितोंकी रक्षा ऐसे किसी भी प्रशासनिक पुनर्गठनमें की जायगी, जिससे मेरा संबंध होगा।”

वाइसरॉयके पास मुसलमानोंका शिष्ट-मंडल हो आया, उसके बाद उसी वर्ष मुस्लिम लीगकी स्थापना की गई।

हिज़ हाइनेस आगाखांके कार्यके मूल और स्वरूपके विषयमें “लेडी मिंटोकी डायरी’ से (३ अक्टूबर, १९०६ की) अच्छा प्रकाश पड़ता है। ‘महान मुस्लिम नेता’ नवाब मोहसिन-उल-मुल्ककी मृत्युका उल्लेख करते हुए उनका एक गुण यह बताया गया है: “हालके मुस्लिम शिष्ट-मण्डलकी बाजी जमानेवाले वे ही थे।” उसी डायरीमें १ अक्टूबर, १९०६ के दिनको “एक अत्यन्त घटनापूर्ण दिवस तथा भारतीय इतिहासमें एक युगके समान” बताते हुए दूसरी एक इतनी ही रहस्यका उद्घाटन करनेवाली बात लिखी गई है। उस दिन लेडी मिंटोको एक सरकारी कर्मचारीका (उसका नाम नहीं खोला गया है) एक पत्र मिला, जिसमें यह लिखा था: “मुझे आपको यह बताना चाहिये कि आज एक बहुत बड़े महत्त्वकी घटना हुई है, राजनीतिक कुशलताका एक ऐसा कार्य हुआ है, जिसका भारत और भारतके इतिहास पर आगामी अनेक वर्षों तक प्रभाव पड़ेगा। उसने ६ करोड़ २० लाख मनुष्योंको राजद्रोही विरोध-पक्षमें सम्मिलित होनेसे बचा लिया है।”

दार्शनिक राजनीतिज्ञ भारत-मंत्रीने २८ जनवरी, १९०९ के अपने पत्रमें वाइसरॉयको चेतावनी दी : “हमें यह सावधानी रखनी होगी कि मुसलमानोंको अपनानेमें हम अपने हिन्दू साथियोंको न छोड़ दें; और इसलिए मुसलमानोंकी दिशामें जिस हद तक हम जानेको तैयार हैं या जा सकते हैं, उसे बोलकर बताना असंभव हो जाता है।”

लेकिन बादमें जब इस नीतिके परिणाम भविष्यकी संभावनाओंकी थोड़ी झांकी कराने लगे, तो लॉर्ड मोर्लेके भीतर बैठा हुआ उदार मतवादी राजनीतिज्ञ बेचैनी महसूस करने लगा। ६ अगस्त, १९०९ को उन्होंने सर थियोडोर मॉरिसनके संबंधमें, जो इण्डिया कौंसिलमें अपने मुस्लिम मुवक्किलोंका दावा जरूरतसे ज्यादा जोशके साथ पेश कर रहे थे, लिखा: “मॉरिसन अपने मुसलमान मित्रोंके बारेमें अंतिम



समय तक अपनी बातको पकड़े रखता है, हमारे वचनोंके पालनका आग्रह करता है और भविष्यवाणी करता है कि मुसलमानोंकी फटकार और असंतोषका तूफान खड़ा हो जायगा। ऐसा हो भी सकता है। दूसरी ओर जी. की आगाही यह है कि हमने अपने खरीतेमें जो मार्ग स्वीकार किया है, उससे हटने पर कमसे कम उतनी ही फटकार और असंतोषका सामना हिन्दुओंकी ओरसे भी हमें करना पड़ेगा।”

२६ अगस्तको उन्होंने लॉर्ड मिंटोको फिर लिखा : “मॉरिसन मुझसे कहते कि एक मुसलमान मुझसे मिलने यहां आ रहा है। कुछ भी हो, मुझे पूरा विश्वास है कि अब समय आ गया है जब हमें दृढ़तासे उन्हें बता देना चाहिये कि यह सौदेबाजी बहुत दिन चल चुकी है, अब और नहीं चलेगी। मुझे इतना ही दुःख है कि हम इससे पहले ऐसा नहीं कर सके।”

इस दुःखद घटनाके बारेमें ६ दिसम्बर, १९०९ की डायरीमें आखिरी बात जो लिखी गई उससे मालूम होता है कि भारत-मंत्री वाइसरॉयको लिखते हुए अपनी चिढ़को छिपा न सके : “हमारे मुसलमानोंसे सम्बन्धित झगड़ेमें मैं अब फिर आपका अनुसरण नहीं करूंगा। मैं आपको आदरपूर्वक एक बार फिर इतनी याद दिला देता हूं कि उनकी अतिरिक्त मांगोंके बारेमें आपके प्रारंभिक भाषणने ही मुसलमानोंको सर्वप्रथम वे दावे करनेकी प्रेरणा दी। मेरा विश्वास है कि मेरा निर्णय उत्तम था।”

परन्तु अब देर बहुत हो चुकी थी । “कांग्रेसके ध्येयोंके विरुद्ध संतुलन” के रूपमें मिंटो-मोर्ले सुधारोंमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी बात पैदा कर दी गई। ६ करोड़ २० लाख मुसलमानोंको राजद्रोहियोंकी पंक्तिमें सम्मिलित होनेसे रोक दिया गया। (लॉर्ड कर्जनकी सृष्टि) पूर्वी बंगालके एक गवर्नर सर बैम्पफिल्ड फुलरने इस नई नीतिका सार एक शब्द-प्रयोग—‘प्रिय पत्नी’ की नीति—में प्रगट किया था। गांधीजीने इसे ‘वानर-न्याय’ का अधिक लोकप्रिय नाम दिया। यह किस्सा इस प्रकार है कि दो बिल्लियोंमें एक रोटीके लिए झगड़ा हुआ । वे अपना झगड़ा तय करानेके लिए ‘न्यायमूर्ति बन्दर’ के पास गईं ! उस चालाक ‘न्यायाधीश’ ने न्याय करनेकी अपनी फीसके रूपमें पूरी रोटी हड़प ली और बेचारी बिल्लियोंके हिस्सेमें उसका एक टुकड़ा भी नहीं आया !



सबसे बड़े आश्चर्यकी बात तो यह थी कि जिस सत्ताने जान-बूझकर संप्रदायवादकी 'प्रेरणा दी', उसीने राष्ट्रवादी भारतको इस संप्रदायवादको धराशायी करने या स्वराज्यसे वंचित रहनेकी बात कही। सांप्रदायिक निर्वाचन-मंडलोंकी तरकीबने अपना सोचा हुआ हेतु इतनी अच्छी तरह पूरा किया कि १० वर्षके बाद हम देखते हैं कि तत्कालीन भारत-मंत्री मॉन्टेग्यू और वाइसरॉय लॉर्ड चेम्सफोर्डने अपने निवेदनमें यह लिखा : "धर्मों और वर्गोंके आधार पर विभाग करनेका अर्थ यह होता है कि एक-दूसरेके विरुद्ध संगठित हुई तथा मनुष्योंको देशके नागरिकोंके रूपमें नहीं परन्तु पक्षकारोंके रूपमें सोचना सिखायें ऐसी राजनीतिक दलबन्धियां खड़ी करना। इसलिए हम किसी भी साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणालीको स्वशासनके सिद्धान्तके विकासके लिए बहुत गम्भीर रुकावट मानते हैं।" [मोडर्न इस्लाम इन इंडिया, लाहौर (१९४३, पृ. २१२) में स्मिथ द्वारा मॉन्टेग्यू तथा चेम्सफोर्ड कृत 'प्रपोज़ल्स फॉर इंडियन कॉन्स्टिट्यूडनल रिफॉम्स' से उद्धृत उद्धरण] मॉन्टफोर्ड सुधार योजनाके निर्माताओंने आगे चलकर यह भी कहा कि यह सिद्धान्त एक बार पूरी तरह स्थापित हो जानेके बाद इतनी अच्छी तरह काम करता है, साम्प्रदायिकताको इतना सुदृढ़ बना देता है, कि हम चाहें तो भी फिर उसे छोड़ नहीं सकते।

इसलिए सांप्रदायिक मताधिकारकी प्रणाली मॉन्टफोर्ड सुधारोंमें भी कायम रखी गई।

खिलाफतके महत्त्वपूर्ण जमानेमें (१९२०-२४) थोड़े समयके लिए देशमें राष्ट्रवादका बोलबाला रहा और सांप्रदायिक शत्रुता बिककुल भुला दी गई। [तुर्कीके सुलतानको मुस्लिम जगत अपना खलीफा अथवा आध्यात्मिक मुखिया माना करता था। प्रथम महायुद्धके समय ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्जने यह वचन दिया था कि तुर्कीकी एकता कायम रखी जायगी और इस्लामके पवित्र स्थान मुस्लिम धर्मके सर्वमान्य मुखियाके पास रहने दिये जायेंगे। परन्तु युद्धके बाद तुर्की साम्राज्यको तोड़ दिया गया और उसके अरबी प्रान्त उससे छीन लिये गये। इसका अर्थ यह हुआ कि खिलाफत तोड़ दी गई; क्योंकि इस्लामी कानूनके अनुसार 'अरबस्तानके द्वीप' पर खलीफाका भौतिक अधिकार रहना चाहिये, ताकि वह इस्लामके पवित्र स्थानोंकी रक्षा कर सके। इसे भारतीय मुसलमानोंने वचन-भंग समझा और यह 'खिलाफतका अन्याय' बन गया। गांधीजीने उनके इस रोषको 'तीन अन्याय' दूर करानेके लिए अहिंसक असहयोग आन्दोलनकी तरफ मोड़ दिया। ये तीन अन्याय थे: (१) खिलाफत, (२) अमृतसरका हत्याकांड (यह हत्याकांड १९१९ में जलियांवाला बागमें हुआ था। इससे पहले जनरल डायरने फौजी कानूनकी



घोषणा कर दी थी। इस घटनामें ६०० से अधिक निहत्थे लोग एक बन्द जगहमें फंसा कर गोलियोंसे मार दिये गये थे और इससे तिगुने घायल कर दिये गये थे। जनरल डायरकी सेनाने उस जगहका एकमात्र बाहर निकलनेका रास्ता भी रोक दिया था और गोली चलाना तभी बन्द हुआ था जब सेनाके पास गोलियां चुक गयीं), और (३) स्वराज्यका निषेध] हिन्दु-मुस्लिम-एकताके इस सुनहरे कालको वापस लानेके लिए गांधीजी जीवनके अन्त तक आकाश-पाताल एक करते रहे। खिलाफत-आन्दोलनके ठप हो जानेके बाद—यानी मुस्तफा कमाल पाशाके खिलाफतकी संस्थाको उठा देनेके पश्चात् - सम्प्रदायवादको फिर गति दी गई और लगभग आखिर तक ब्रिटिश सत्ता स्वाधीनता-संग्राममें राष्ट्रवादी शक्तियोंको विफल करनेके लिए जान-बूझकर “फूट फैलाकर राज्य करने” की कलाका प्रयोग करती रही। श्री राम्से मैकडोनाल्डके नेतृत्वमें शासन करनेवाली मजदूर-सरकारके भारत-मंत्री लॉर्ड ओलिवियरने स्पष्ट शब्दोंमें यह बात स्वीकार की है : “भारतीय परिस्थितिका घनिष्ठ परिचय रखनेवाला कोई भी व्यक्ति इससे इनकार करनेको तैयार नहीं होगा कि भारतके ब्रिटिश सत्ताधारियोंका मानस अंशतः गहरी सहानुभूतिके कारण, परन्तु **अधिकतर हिन्दुओंकी राष्ट्रीय भावनाके विरुद्ध एक सन्तुलनके रूपमें** मुख्यतः मुस्लिम कौमके प्रति पक्षपाती है।” [लॉर्ड ओलिवियरका पत्र 'दि टाइम्स' में, लन्दन, १० जुलाई १९२६] (मोठे टाइप मैंने किये हैं।)

सम्प्रदायवादका राक्षस अब अपनी अकल्पित लीलाओंके द्वारा अपने स्त्रष्टाके लिए समय समय पर सिरदद पैदा करने लगा था। इस कारण उससे निबटनेकी पद्धतिमें कभी कभी व्यूहात्मक दृष्टिसे परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता था। इस नई पद्धतिका अमल अगले अवसर पर किया गया था।

जनवरी १९२५ में तत्कालीन भारत-मंत्री लॉर्ड बर्कनहेडने वाइसरॉय लॉर्ड रीडिंगको लिखा: “जितना ही यह स्पष्ट किया जाता है कि ये आपसके वैर-द्वेष (जिन्हें राष्ट्रवाद, सम्प्रदाय और धर्मके अनन्त भेदोंका समर्थन प्राप्त है) गंभीर हैं और भारतकी आबादीके विशाल और बेमेल वर्गों पर प्रभाव डालते हैं, उतनी ही यह वस्तु अधिक स्पष्ट होती जाती है कि उनके बीच मेल करानेवाले मध्यस्थका भाग हम और सिर्फ हम ही अदा कर सकते हैं।” [बर्कनहेड : दि लास्ट फेज़, भाग-२, पृ. २४५-४६]



तीन वर्ष बाद, राजनीतिक सुधारोंकी अगली किस्तका निर्णय करनेके लिए मॉन्टफोर्ड योजनाके निर्माताओंने जो १० वर्षकी अवधि निश्चित की थी, वह पूरी होनेवाली थी और आगामी चुनावोंमें मजदूर-दलके सत्तारूढ़ होनेके आसार दिखाई दे रहे थे। नवम्बर १९२७ में “केवल गोरोंके बने हुए ” साइमन कमीशनकी नियुक्तिके बारेमें घोषणा की गई। यह कमीशन १९२१ में आरंभ किये गये वैधानिक सुधारों (मॉन्टफोर्ड सुधारों) की प्रगति पर अपनी रिपोर्ट देनेवाला था और नये सुधारोंके बारेमें अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करनेवाला था। बताया तो यह गया था कि “भारतीय राजनीतिक दबाव” के कारण ऐसा किया गया है। परन्तु वास्तवमें कारण यह था कि “१९२८ में नियुक्त किये जानेवाले कमीशनकी नियुक्तिका काम हमारे उत्तराधिकारियोंके हाथमें जाय ऐसा रस्तीमात्र भी खतरा उठाना हमें पुसा नहीं सकता था।” [वही, पृ. २५०]

सरकारके इस कदमके खिलाफ भारतमें इतना उग्र विरोध खड़ा हुआ कि न केवल कांग्रेसने बल्कि कई और राजनीतिक दलोंने भी—जिनमें जिन्नाके नेतृत्वमें मस्लिम लीगका एक वर्ग भी था - उस कमीशनका बहिष्कार किया। इस पर लॉर्ड बर्कनहेड महोदयने वाइसरॉय लॉर्ड इर्विनको १० जनवरी, १९२८ को यह आदेश भेजा: “हमने बहिष्कारके रवैयाको तोड़ देनेके लिए हमेशा बहिष्कार न करनेवाले मुसलमानों पर, दलित जातियों पर, व्यापारियों और उद्योगपतियों पर तथा अनेक दूसरे हितों पर आधार रखा हैं।” [वही, पृ. २५४] इसके सिवा, “साइमनको मेरी यह सलाह है कि वे हर कदम पर कमीशनका बहिष्कार न करनेवाले महत्त्वपूर्ण लोगोंसे, विशेषतः मुसलमानोंसे और दलित वर्गवालोंसे, मिलते रहें। मुझे मुसलमान प्रतिनिधियोंके साथ उनकी मुलाकातोंका व्यापक विज्ञापन करना होगा। इस समय हमारी संपूर्ण नीति यह है कि . . . विशाल हिन्दू समाजको इस भयसे आतंकित कर दिया जाय कि कमीशन मुसलमानोंके हाथमें आ गया है, इसलिए वह हिन्दुओंकी स्थितिके लिए सर्वथा विनाशकारी सिद्ध हो ऐसी रिपोर्ट पेश कर सकता है। इससे हमें मुसलमानोंका ठोस समर्थन प्राप्त हो जायगा, और जिन्ना साहब अलग पड़ जायंगे।” [वही, पृ. २५५] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

फूट फैलानेके अन्य कई उपाय लॉर्ड महोदयक उसी पत्रमें इन शब्दोंमें सुझाये गये थे: “औपनिवेशिक दरजे (डोमिनियन स्टेट्स) का अर्थ है 'अपने भाग्यका स्वयं निर्णय करनेका अधिकार' और यह अधिकार हम भारतको देनेके लिए तैयार नहीं हैं। . . . इससे यह नतीजा निकालना उचित होगा



कि सम्बन्ध-विच्छेदके आन्दोलनको (ब्रिटेनके साथ सम्बन्ध तोड़ देनेका आन्दोलन) शत्रुतापूर्ण आन्दोलन माना जाय और ऐसा हो तो उसके प्रतिनिधियोंके साथ वैसा ही व्यवहार नहीं होना चाहिये जैसा दूसरे राजनीतिक आन्दोलनोंके प्रतिनिधियोंके साथ किया जाता है। क्योंकि दूसरे आन्दोलन अनुचित या असामयिक भले ही हों, परन्तु वे गैर-कानूनी नहीं हैं।”

इतिहास तो अपनेको नहीं दोहराता, परन्तु घटनाओंके मूलभूत स्वरूप अकसर अपनेको दोहराते हैं। मिण्टोने जो बोया उसे मोर्लेको काटना पड़ा; लॉर्ड लिनलिथगोने जो कुछ किया उसका मूल्य लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स और सर स्टेफर्ड क्रिप्सको चुकाना पड़ा। इसके सिवा, ब्रिटिश कूटनीतिकी बदलनेवाली महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओंके अनुकूल बननेसे जिन्नाने जब इनकार किया तब, भारतके विभाजनके समय जैसा हुआ उसी तरह, ‘जिन्नाको अलग रखनेवाले ब्रिटिश उच्च अधिकारियोंमें लॉर्ड बर्कनहेड अकेले नहीं थे।

ब्रिटिश सत्ता भारतमें फूट फैलानेवाले प्रवाहको प्रोत्साहन देने और उसे निहित स्वार्थका रूप देनेका कोई भी मौका चूकती नहीं थी। वह पदवियां, ऊंचे पद, बड़ी तनखाहोंवाली नौकरियां और दूसरी रियायतें तथा ऊपरी आयके साधन - जिनका देना उसके हाथमें था - उन लोगोंको देती थी, जो फूटकी हिमायत करते और उसे प्रोत्साहन देते थे। उधर जो लोग विभिन्न धार्मिक समुदायोंमें एकता स्थापित करनेका कार्य करते थे, उनकी न केवल उपेक्षा की जाती थी बल्कि वे सरकारके विशेष कोपके भाजन बनते थे। राजनीतिक चर्चाओंमें तथा विचार-विमर्श प्रतिनिधित्व देनेके बारेमें केवल सम्प्रदायवादी मुस्लिम वर्गको ही सरकारी मान्यता दी जाती थी, परन्तु दूसरे अनेक प्रभावशाली मुस्लिम संगठनोंको - जिनमें राष्ट्रवादी मुसलमान भी शामिल थे - मान्यता नहीं दी जाती थी।

इस नीतिके अनुसार, १९३१ में लंदनमें हुई दूसरी गोलमेज परिषद् किसी भी राष्ट्रवादी मुसलमानको आमंत्रित नहीं किया गया, जब कि ब्रिटिश सत्ताके ‘पुराने समर्थक’ हिज़ हाइनेस आगाखांको उनकी मुसलमान टोलीका नेता बनाकर निमंत्रित किया गया, ताकि वे ‘दलित वर्गोंकी’ सहायतासे राजनीतिक सत्ता हस्तांतरित करनेकी भारतीय मांगका विरोध करें और उसे एक ओर हटवा दें।



देशके पक्षोंमें परस्पर कोई सफल समझौता न होने देनेकी पूरी सावधानी रखी गई। उनमें इस आशाको प्रोत्साहन दिया गया कि अड़ियल दलको दूसरी पार्टियां उचित रूपमें जो कुछ दे सकती हैं उसकी अपेक्षा शासक सत्ता हमेशा ही अधिक दे सकेगी। इसका ज्वलन्त उदाहरण १९३२ में सामने आया। उस समय हिन्दुओं और मुसलमानोंने अलहाबादके एकता-सम्मेलनमें परस्पर लगभग पूरा समझौता कर लिया था। एकमात्र महत्त्वपूर्ण प्रश्न जो निबटाना रह गया था वह यह था कि सिन्धको, जो उस समय बम्बई प्रान्त एक हिस्सा था, मुस्लिम बहुमतवाला अलग प्रान्त बना दिया जाय और पृथक् निर्वाचन-मंडलके स्थान पर सम्मिलित निर्वाचन-प्रणाली अपना ली जाय। परन्तु जिस समय इस सम्मेलनके मुस्लिम प्रतिनिधियोंने इस शर्त पर कि सिंधका अलग प्रान्त बना दिया जायगा, सम्मिलित निर्वाचन-पद्धति स्वीकार की, ठीक उसी समय भारत-मंत्री सर सेम्युअल होरने रास्ता छोड़ कर वही मांग सम्मिलित मताधिकारके बिना स्वीकार कर ली। नतीजा यह हुआ कि एकता-सम्मेलन असफल रहा।

पृथक् निर्वाचन-प्रणाली आरंभ की गई उसके बादके २५ वर्षोंमें मुसलमानोंमें काफी बड़ा सम्पन्न मध्यम वर्ग पैदा हो गया। लोकतांत्रिक राजनीतिक सुधारोंकी - जो आगे चलकर १९३५ के भारतीय शासन-विधानमें सम्मिलित कर लिये गये - संभावना उत्पन्न होते ही यह सम्पन्न पुराणपंथी मुस्लिम वर्ग अपने भविष्यके विषयमें अनिश्चितता अनुभव करने लगा। इस वर्गकी आर्थिक सहायता और सहारेसे मुस्लिम लीगको फिर नया जीवन प्रदान किया गया। जिन्नाको, जो दूसरी गोलमेज परिषद्के बाद राजनीतिसे निवृत्त होकर इंग्लैण्डकी प्रीवी कौंसिलमें वकालत करने लग गये थे, मुसलमानोंका नेतृत्व करनेके लिए वापस बुला लिया गया। उन्होंने मुस्लिम लीगका फिरसे संगठन किया और मुस्लिम सम्प्रदायवादने अपने जीवनकी एक नयी मंजिल आरंभ की। लीग अभी काफी संगठित नहीं हो पाई थी कि इतनेमें १९३७ के चुनाव आ गये। इसका परिणाम यह निकला कि लीगको मुसलमानोंके भी पांच प्रतिशतसे कम मत मिले, जब कि कांग्रेस बहुत बड़े बहुमतसे जीत गई और ११ प्रान्तोंमें से ७ प्रान्तोंमें सत्तारूढ़ होनेका उसे निमंत्रण मिला।

१९३५ के भारतीय शासन-विधानके निर्माताओंने यह आशा रखी थी कि केन्द्रमें उनकी सत्ता ज्योंकी त्यों रहनेके कारण, प्रान्तोंके गवर्नरोंके पास हस्तक्षेपके विशाल सुरक्षित अधिकारोंके बल पर, वे विधान-सभाओंके भीतर और बाहरके कांग्रेसियोंके बीच फूट पैदा कर सकेंगे और विभिन्न जातियों,



वर्गों, विभागों और स्थापित स्वार्थोंको एक-दूसरेके खिलाफ इस तरह लड़ा सकेंगे कि वे सबके सब संरक्षण और समर्थनके लिए अंग्रेजोंका मुंह ताकते रहें। इससे कांग्रेसी मंत्री-मंडल प्रान्तीय स्वराज्यका पूर्णतया प्रयोग नहीं कर सकेंगे। उनकी इस आशाको गांधीजीकी सयानी, दूरदर्शितापूर्ण और निश्चयपूर्ण दृढ़ताने तथा कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंकी राजनीतिक प्रतिभाने विफल कर दिया। जब तक इसका विश्वास न दिलाया जाय कि गवर्नर अपनी वीटोकी सत्ता अर्थात् विधान-सभाके कानूनको अथवा मंत्री-मंडलके किसी व्यवस्था-सम्बन्धी कदमको रद्द करनेकी सत्ताका तथा संकटका सामना करनेवाली अपनी विशेष सत्ताका उपयोग नहीं करेंगे तथा “मंत्रियोंके वैधानिक कार्योंके सम्बन्धमें उनकी सलाहकी उपेक्षा” नहीं करेंगे, तब तक कांग्रेसने पद ग्रहण करनेसे इनकार कर दिया। गवर्नरोंने ऐसी ‘कुछ जिम्मेदारियां’ छोड़नेसे इनकार कर दिया, जो पार्लियामेन्टने उन पर रख दी थीं। इसलिए वैधानिक गतिरोध पैदा हो गया। सात प्रान्तोंमें विधान-सभाएं नहीं बुलाई गईं और, जैसा प्रोफेसर बेरीडेल कीथने कहा, इस ‘गतिरोध’ को ‘छिपानेके लिए’ अन्तरिम मंत्री-मंडल नियुक्त कर दिये गये। चार महीने तक कांग्रेस अपनी बात पर डटी रही। जब विधान-सभाओंको बुलानेकी वैधानिक अवधि समीप आई, तो सरकार - जो “प्रतिष्ठाके मामलोंमें हमेशा अतिशय भावुक रहती थी” - झुक गई और सात प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्री-मंडलोंने सत्ता संभाल ली; बाकीके चार प्रान्तोंमें स्वतंत्र संयुक्त मंत्री-मंडल काम करने लगे।

दूसरे नंबरके नेलाओंको विधान-सभाओं और प्रान्तीय मंत्री-मंडलोंमें भेजकर कांग्रेसमें फूट पड़नेकी प्रक्रियाको रोक दिया गया। अधिकांश प्रथम श्रेणीके कांग्रेसी नेता सरकारसे बाहर रहे। उन्होंने कांग्रेसी मंत्री-मंडलोंका मार्गदर्शन करने, उन्हें सुव्यवस्थित बनाने और कठोर अनुशासनमें रखनेके लिए एक पार्लमेन्टरी बोर्डकी स्थापना की। साथ ही गवर्नरोंको जिन मंत्री-मंडलोंकी अध्यक्षता करनेका वैधानिक अधिकार था उनके भीतर वे कोई षड्यंत्र न रच सकें, इसके लिए कांग्रेसी मंत्रियोंने एक नई कार्य-पद्धति अपना ली। इसके अनुसार कांग्रेसी मंत्री पहले अपने तमाम महत्वपूर्ण प्रश्न आपसमें अनौपचारिक रूपमें विचार-विमर्श करके निबटा लेते थे और मंत्री-मंडलकी नियमित बैठकोंमें गवर्नरके सामने अपने स्वेसम्मत निर्णय ही रखते थे।

परन्तु ब्रिटिश सत्ताने जो कुछ सामनेसे गंवाया था, उसका कुछ भाग पिछले दरवाजेसे प्राप्त भी कर लिया। कांग्रेसके बहुमतवाले प्रान्तोंमें मंत्री-मंडल बनाते समय मुस्लिम लीगके सदस्योंमें फूट पड़ी



और कांग्रेसके साथ सहयोग करनेका रवैया पैदा हुआ। वे लोग संयुक्त सरकारके सदस्य बनकर कांग्रेसकी नीति पर अमल करनेमें कांग्रेसके साथ सहयोग करनेको उस समय तक तैयार थे जब तक कि उनसे कांग्रेसकी प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करनेको न कहा जाय । अपने मंत्री-मंडलोंमें लीगियोंको स्थान देना कांग्रेस पसन्द करती, परन्तु अंग्रेजोंका पक्षपात करनेवाले लोगोंको अपने किलेमें पैठने देनेमें उसे भय लगा। इसलिए मुस्लिम लीगको अलग रखकर ही कांग्रेसी मंत्री-मंडल बनाये गये। कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंका यह निर्णय गांधीजीके दूरदर्शितापूर्ण उत्तम निर्णयके खिलाफ था और वह व्यूहात्मक दृष्टिसे प्रथम श्रेणीकी भूल सिद्ध हुआ। सहयोगके लए जो हाथ बढ़ाया गया था उसे कांग्रेसने तो मजबूरीसे अस्वीकार कर दिया, लेकिन ब्रिटिश सत्ताने उसे अत्यन्त हर्षके साथ मजबूतीसे पकड़ लिया। ज्यों ही अक्टूबर १९३९ में भारतको उसकी इच्छाके विरुद्ध युद्धमें सम्मिलित हुआ घोषित किया गया और इसके विरोधमें प्रान्तोंके कांग्रेसी मंत्री-मंडलोंने त्यागपत्र दे दिये, त्यों ही वाइसरॉय लॉर्ड लिनलिथगोने उससे लाभ उठाकर यह घोषणा कर दी कि कांग्रेस फिरसे इसी शर्त पर पदासीन हो सकेगी कि जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसका विधान-सभाओंमें शुद्ध बहुमत होगा वहां भी वह लीगके साथ मिश्र सरकार बनाये। साथ ही यह घोषणा करके कि मुस्लिम लीग और दूसरे अल्पसंख्यकोंकी संमति और स्वीकृतिके बिना कोई राजनीतिक परिवर्तन नहीं किया जायगा, उन्होंने संपूर्ण राजनीतिक प्रगतिको रोक देनेकी (वीटो) सत्ता रखनेवाले कांग्रेस-विरोधी पक्षोंके संयोगको सरकारी स्वीकृतिकी मुहर-सी लगा दी। ८ अगस्त, १९४० को लॉर्ड लिनलिथगोने यह घोषणा की : “यह कहनेकी जरूरत नहीं कि सम्राट्की सरकार भारतकी शांति और कल्याणकी अपनी वर्तमान जिम्मेदारियोंको किसी ऐसी सरकारके हाथोंमें सौंपनेका विचार नहीं कर सकती, जिसकी सत्ताको भारतके राष्ट्रीय जीवनके विशाल और बलवान तत्त्व प्रत्यक्ष रूपमें माननेसे इनकार करते हैं। वह इन तत्त्वोंको ऐसी किसी सरकारके अधीन रहनेके लिए दबानेमें भी शरीक नहीं हो सकती।”

इस प्रकार लॉर्ड लिनलिथगोने अपने कार्यकालमें उन तीन बुराइयोंको जन्म दिया, जिनके खिलाफ बादमें आनेवाली मजदूर-सरकारको और लॉर्ड लिनलिथगोके उत्तराधिकारीको जूझना पड़ा और उसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली । ये तीन बुराइयां थीं: (१) अल्पमत और बहुमतके बीच समानता



(पैरिटी) की स्थापना करना; (२) भारतकी राजनीतिक एकताको छिन्न-भिन्न करनेकी क्रिया पर ब्रिटिश सरकारकी स्वीकृतिकी मुहर लगाना; (३) अल्पमतकी शर्तें यदि स्वीकार न की जायं तो उसे देशकी राजनीतिक प्रगतिको रोक देनेका अधिकार (वीटो) देना। राष्ट्रवाद और लोकतंत्रके नाशका इतना बड़ा उदाहरण लॉर्ड लिनलिथगोसे पहलेके या बादके किसी वाइसरॉयके शासन-कालमें नहीं मिलेगा।

१९३५ के भारतीय शासन-विधानका संघ-सम्बन्धी भाग जिन्ना साहबको हमेशा खटकता रहता था, क्योंकि उसके द्वारा प्रान्तोंकी तरह केन्द्रमें भी जिम्मेदारीका सिद्धान्त आरंभ हो जाता। लॉर्ड लिनलिथगोने उसे रद्द कर देनेकी मुस्लिम लीगकी मांग स्वीकार कर ली, जब ११ सितम्बर, १९३९ को उन्होंने यह घोषणा की कि भारतमें संधीय शासन-तंत्र आरंभ करनेकी तैयारियां युद्धकालमें स्थगित रहेंगी। जिन्नाने राहतकी सांस लेकर इस घोषणाका स्वागत किया और मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिको १८ सितम्बरको एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें संधीय तंत्रको स्थगित करनेकी इस कार्रवाईकी कदर की गई और यह आशा प्रगट की गई कि संधीय तंत्रकी योजनाका पूरी तरह त्याग कर दिया जायगा।

भारतको युद्धमें जबरन सम्मिलित करनेके बारेमें भारतीय राष्ट्रवादियोंने जो मजबूत रवैया अपनाया था, उससे चर्चिलके नेतृत्वमें ग्रेट ब्रिटेनकी कट्टरपंथी मिश्र सरकार और भारतमें वाइसरॉय लॉर्ड लिनलिथगोकी अधीनतामें काम करनेवाली भारतकी जड़ नौकरशाही बहुत नाराज हुई और उन्होंने कांग्रेसके खिलाफ मुस्लिम लीगकी सहायता करने और उसे बलवान बनानेमें कोई बात उठा नहीं रखी।

बंगालमें फजलुल हक एक मिश्र मंत्री-मंडलके नेता थे और उन्हें विधानसभाका विश्वास प्राप्त था। परन्तु पदच्युत करनेकी धमकी देकर उन्हें मार्च १९४३ में त्यागपत्र देनेको विवश किया गया और उसके स्थान पर नाजिमुद्दीनके नेतृत्वमें लीगी मंत्री-मंडल प्रस्थापित कर दिया गया। गवर्नरने नाजिमुद्दीनको अपनी स्थिति सुदृढ़ बनानेके लिए मंत्रियोंकी संख्या बढ़ाकर १३ करने दी और उतने ही संसदीय सचिव भी रखने दिये, जब कि फजलुल हकको उन्होंने अपने आठ मंत्रियोंके मंत्री-मंडलको बढ़ाने और उसमें अनुसूचित जातियोंके दो मंत्री लेनेकी इजाजत नहीं दी थी।

सिन्धमें राष्ट्रवादी मुसलमान अलाहबख्शको, जो प्रान्तीय मंत्री-मंडलके नेता थे, वहांके गवर्नरने अक्टूबर १९४२ में पदच्युत कर दिया, क्योंकि उन्होंने आजादीकी भारतीय राष्ट्रवादी मांगको अस्वीकार



कर देनेकी ब्रिटिश कार्रवाईके विरोधमें अपनी 'खान बहादुर' और 'ओ. बी. ई.' की पदवी छोड़ दी थी। उनके स्थान पर गवर्नरने विधान-सभाके लीगी नेताको निमंत्रित किया और मंत्री-मंडल बनानेमें उसे सहायता दी।

आसाममें विधान-सभाके स्वतंत्र सदस्य रोहिणीकुमार चौधरीका दावा था कि वे मंत्री-मंडल बनानेकी स्थितिमें हैं, परन्तु उन्हें निमंत्रण न देकर गवर्नरने लीगके नेताको अगस्त १९४२ में मंत्री-मंडल बनानेकी सूचना की।

वाइसरॉयकी कार्यकारिणीसे मुस्लिम लीग भी बाहर रही थी। [जब लीगके एक सदस्य सर सुलतान अहमद वाइसरॉयकी कार्यकारिणी परिषद्में शरीक हुए, तो सितम्बर १९४१ में मुस्लिम लीगने उन्हें अपनी सदस्यतासे निकाल दिया; और तीन लीगियोंने प्रान्तीय मुख्यमंत्रीकी हैसियतसे सब्सिडियरी नेशनल डिफेन्स कौंसिलमें शरीक होनेके बाद मुसलमानोंके नाते उस कौंसिलसे इस्तीफे दे दिये] लेकिन कांग्रेसकी तरह उसके बाहर रहनेका कारण यह नहीं था कि ब्रिटेनने भारतको स्वाधीनता नहीं दी, परन्तु यह था कि ब्रिटेनने लीगकी सम्प्रदायवादी मांग तुरन्त स्वीकार नहीं की। किन्तु लीगने नकारात्मक रूपमें युद्ध-प्रयत्नमें सहयोग दिया - कांग्रेसकी 'भारत छोड़ो' मांगका विरोध करके। इस मांगकी लीगने यह कहकर निन्दा की कि वह ब्रिटिश सरकार पर घौंस जमाने और लीगकी उपेक्षा करनेका प्रयत्न है। इस तरह ब्रिटिश सत्ता और लीगके बीच गहरा गुप्त मेल बना रहा।

व्यक्तिगत रूपमें लीगवादी मुसलमान युद्ध-प्रयत्नका प्रबल समर्थन करते रहे। लीगके कुछ सदस्योंने ब्रिटिश युद्धकोषमें सबसे ज्यादा धन दिया और एक वर्गके रूपमें मुसलमानोंको उसका अच्छा पुरस्कार भी मिला। विशेष रूपसे उन प्रान्तोंमें, जहां मुस्लिम लीगके मंत्री-मंडल सत्तारूढ़ थे, मुसलमानोंको युद्धके ठेकोंके रूपमें तथा वितरण-व्यापारमें युद्धकालीन भागके रूपमें खूब लाभ मिला। इस नये सम्पन्न वर्गने लीगकी पाकिस्तानकी मांगको और ज्यादा प्रोत्साहन और समर्थन दिया।

ब्रिटेनके कट्टरपन्थी वैधानिक पंडित एक ऐसे सिद्धान्तका प्रतिपादन करने लगे कि बहुमत द्वारा निर्णय करनेका लोकतांत्रिक सिद्धान्त भारत पर लागू नहीं होता, क्योंकि हिन्दू और मुसलमान 'असमान तत्त्व' हैं और 'खेलके मूलभूत नियमोंके बारेमें' सहमत नहीं हैं। इसलिए जातिके रूपमें मुसलमानोंका



‘आत्म-निर्णयका अधिकार’ स्वीकार किया जाना चाहिये । इस लोकतंत्र-विरोधी और प्रतिगामी चालको मुस्लिम लीगके ‘दो राष्ट्रों’ वाले सिद्धान्तने वैधानिक जामा पहना दिया । इस सिद्धान्त पर चोटीके अनुदार नेताओंने—जिनमें विन्टरटन, एमेरी, जेटलैण्ड और चर्चिल भी थे—पार्लमेन्टके भीतर और बाहर भाषणों द्वारा अपनी मुहर लगाने और उसका प्रचार करनेकी भरसक कोशिश की । १८ नवम्बर, १९४१ को अपने भाषणमें श्री एमेरीने कहा : “गलत हो या सही, ब्रिटिश पार्लमेन्टरी ढंगके प्रान्तीय स्वराज्यके अनुभवने मुसलमानोंको इसकी प्रतीति करा दी है . . . कि वे भारतकी ऐसी किसी भी केन्द्रीय सरकारकी अधीनता स्वीकार नहीं कर सकते, जिसमें कार्यकारिणी प्रत्यक्ष रूपमें पार्लमेन्टरी बहुमत पर निर्भर हो - **क्योंकि अगर प्रान्तीय अनुभव कुछ बताता है तो यही कि वह बहुमत कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंका आज्ञा-पालन करेगा ।**” (मोटे टाइप मैंने किये हैं ।) ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसको ‘हिन्दू’ कहकर बदनाम करनेका फैशन भी चला दिया था—यद्यपि उसका द्वार सबके लिए खुला था, मुसलमान बड़ी संख्यामें उसके सदस्य थे, कई बार मुसलमान उसके अध्यक्ष रह चुके थे और उसकी कार्यकारिणीमें भी मुसलमान सदस्य थे। फिर, कांग्रेसने विधान-सभाओंमें अपने प्रतिनिधियों पर पक्षका अनुशासन पालनेका नियम लगा रखा था, इसके लिए उसे ‘सर्वसत्तावादी’ कहकर बदनाम किया जाता था, यद्यपि ब्रिटिश पक्ष-पद्धतिका सारा आधार ही ऐसे अनुशासन पर है।

यह एक अनोखा संयोग ही रहा होगा - परन्तु है बड़ी महत्त्वपूर्ण बात - कि १९४० के शुरूमें लॉर्ड लिनलिथिगोके साथ जिन्ना साहबकी मुलाकात हुई, उसके थोड़े समय बाद ही मुस्लिम लीगने अपने दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तके आधार पर मार्च १९४० के अपने लाहौर-प्रस्तावमें अधिकृत रूपसे पाकिस्तानकी मांग प्रस्तुत की । उसी मुलाकातमें वाइसरॉयने जिन्नासे यह अनुरोध किया था कि मुस्लिम लीगको अपना ‘नकारात्मक रवैया’ छोड़ देना चाहिये और ‘ठोस प्रस्ताव’ सामने रखने चाहिये। मुस्लिम लीगके लाहौर-प्रस्तावका क्रियात्मक भाग यह था:

ऐसी कोई वैधानिक योजना मुसलमानोंको स्वीकार नहीं होगी, जिसकी रचना नीचेके बुनियादी सिद्धान्तों पर नहीं की जायगी। वे सिद्धान्त इस प्रकार हैं: भौगोलिक दृष्टिसे एक-दूसरेके साथ जुड़े हुए घटकोंको अलग कर दिया जाय और उनमें आवश्यक प्रादेशिक परिवर्तन करके उनके विभाग रचे जाय; और जिन क्षेत्रोंमें संख्याकी दृष्टिसे मुसलमानोंका बहुमत है - जैसे



भारतके उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों - उन्हें मिलाकर ऐसे स्वाधीन राज्य बता दिये जायं, जिनके अंगभूत घटक स्वायत्त और सार्वभौम हों।

लॉर्ड लिनलिथगोने मुस्लिम लीगको अपनी शाक्ति सुदृढ़ करनेमें और जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसने अपने पदोंसे त्यागपत्र दे दिया था उनमें मुस्लिम लीगके मंत्री-मंडल बनानेमें सहायता देनेकी स्थिर नीति भी अपनाई। जहां युद्धके प्रारम्भमें किसी प्रान्तमें एक भी मुस्लिम लीगी मंत्री-मंडल नहीं था वहां नवम्बर १९४३ में लॉर्ड लिनलिथगोके अपनी गद्दी छोड़नेके समय तक बंगाल, आसाम, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त और सिन्ध चारों प्रान्तोंमें - जिन पर लीगने पाकिस्तानकी रचनाके लिए दावा किया था - मुस्लिम लीगके मंत्री-मंडल वाइसरॉयके सक्रिय समर्थनसे स्थापित हो चुके थे।

इस दिशामें एक कदम और आगे बढ़ाया गया, जब आगाखां महलके नजरबन्दी कैम्पमें फरवरी १९४३ में गांधीजीका उपवास आरंभ होनेके बाद वाइसरॉयकी कार्यकारिणीके तीन सदस्योंने सरकारकी नीतिके विरोधमें अपने त्यागपत्र दे दिये और रिक्त स्थानोंकी पूर्तिक लिए लॉर्ड लिनलिथगोने नई नियुक्तियां कीं। ८ मई, १९४३ को 'दि न्यू स्टेट्समैन एंड नेशन' ने टीका की: "नवागन्तुकोंकी मंडली प्रभावशाली नहीं मालूम होती, परन्तु उनके बारेमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाइसरॉयकी कौंसिलकी रचनामें मुसलमानों और हिन्दुओंकी संख्याकी समानताका जिन्ना साहबका आदर्श अब सिद्ध हो गया है। जब एक बार यह प्रथा पड़ गई तो बादमें अल्पसंख्यक जाति अपने स्थापित हितके रूपमें उसके लिए दावा करेगी। यह एक अत्यन्त विचारहीन परिवर्तन मालूम होता है।"

मुस्लिम लीगने ब्रिटिश-विरोधी नारे तो फिर भी चालू ही रखे। अन्यथा मुस्लिम आम जनता पर उसका कोई प्रभाव न रहता। लेकिन ब्रिटिश सत्ताके साथ 'संघर्षमें न आने' की सावधानी उसने रखी। इतनी कीमत ब्रिटिश सत्ता अच्छी तरह चुका सकती थी। मुस्लिम लीग जितनी अधिक शक्ति एकत्र कर सकती थी उतनी ही कार्यक्षमताके साथ कांग्रेसकी स्वाधीनताकी मांगके खिलाफ उसका उपयोग किया जा सकता था।

यह सब होते हुए भी अंग्रेजों और लीगके बीच न तो कोई प्रेम था और न एकका दूसरे पर पूरा विश्वास था। दोनों उसे 'सुभीतेका सौदा' समझते थे। लेकिन तत्काल तो दोनों एक-दूसरेके लिए अनिवार्य



थे, यद्यपि कारण दोनोंके अलग अलग थे और ध्येय भी दोनोंके बिलकुल समान नहीं थे। मुस्लिम लीग भारतमें ब्रिटिश सत्ताका समर्थन करती थी। बदलेमें जहां अंग्रेजोंको कांग्रेसके खिलाफ लीगके सहयोगकी आवश्यकता थी वहां “दिखावेमें नहीं तो व्यवहारमें” [स्मिथ, ‘मोडर्न इस्लाम इन इंडिया’, लाहौर, १९४३, पृ. २९४] तो उसे ब्रिटिश सत्ताका समर्थन प्राप्त ही था। लेकिन जहां लीगके बिना अंग्रेज अपना काम चला सकते थे - जैसा कि पंजाबमें हुआ - वहां वे दृढ़तासे लीगको दूर ही रखते थे।

ज्यों ज्यों लीगका यह भान बढ़ता गया कि ब्रिटिश सत्ताके लिए उसका मूल्य और महत्त्व है, त्यों त्यों उसका अड़ियलपन अधिक बढ़ता गया। उसने यह जिद पकड़ ली कि कांग्रेसके साथ समझौतेकी कोई बातचीत तभी हो सकती, जब कांग्रेस अपने लिए यह मान ले कि वह एक हिन्दू सम्प्रदायवादी संस्था है और यह भी स्वीकार कर ले कि भारतीय मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था मुस्लिम लीग है; साथ ही कांग्रेसको यह वचन भी देना चाहिये कि जो मुसलमान मुस्लिम लीगका सदस्य नहीं होगा, उसे वह मान्यता नहीं देगी। जब यह सर्वथा असंभव शर्त मानी नहीं गई, तो उसने यह भी दिखानेका आडंबर रचा कि उसकी उदारताकी वृत्तिके साथ धोखा किया गया है।

इस दुराग्रहके रखने कठोर और अपरिवर्तनीय शर्तका स्वरूप ग्रहण किया, उससे पूर्व १९३५ में जिन्ना और तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्रप्रसादके बीच सचमुच एक साम्प्रदायिक समझौता हो गया था। कांग्रेसन उस समझौतेको स्वीकार कर लिया था, परन्तु बादमें लीगने ऐसी मांग की कि मुस्लिम लीगके जैसी ही हिन्दू सम्प्रदायवादी संस्था - हिन्दू महासभा भी उस समझौतेको माने; और महासभाने जब यह समझौता स्वीकार न किया, तो इसे निमित्त बना कर मुस्लिम लीगने सारा समझौता ही उड़ा दिया।

मुस्लिम लीगके इस दावेका कि वह भारतके तमाम मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करती है, कोई विरोध नहीं किया जा सकता था, क्योंकि लीगने अपनी सदस्यताके आंकड़े प्रकाशित करनेसे इनकार कर दिया। विरोधी प्रमाणके अभावमें ब्रिटिश सरकारने व्यवहारमें लीगके इस दावेको स्वीकार कर लिया।



लीगका अधिकांश प्रचार नकारात्मक था। उसने पाकिस्तानका रूप कैसा होगा, इसकी व्याख्या करनेसे इनकार कर दिया; और न तो मुसलमानोंके सामने और न जिनसे पाकिस्तान मिलनेवाला था उनके सामने कभी पाकिस्तानका पूरा चित्र रखनेकी कोशिश की। उसने तो यह व्याख्या करनेसे भी इनकार कर दिया कि भौगोलिक दृष्टिसे पाकिस्तान कैसा होगा। इसका कारण स्पष्ट था। पाकिस्तानकी सीमारेखाएं किसी भी तरह क्यों न खींची जातीं, तो भी मुसलमान सारे भारतमें इस तरह बंटे हुए थे कि उनका काफी बड़ा हिस्सा पाकिस्तानके बाहर ही रह जाता। लीग अच्छी तरह जानती थी कि यदि पाकिस्तानकी व्याख्या कर दी गई, “तो करोड़ों मुसलमानोंके लिए - जो पाकिस्तान बननेकी स्थितिमें पाकिस्तानके लाभोंसे वंचित रह जायेंगे - लीगका कोई आकर्षण नहीं रहेगा।” [वही] अन्तमें पाकिस्तानकी व्याख्या भारतके विभाजनके द्वारा ही निश्चित की गई।

बात यह थी कि पाकिस्तानकी कल्पनाका विश्लेषण करने पर वह टिक ही नहीं सकती थी, परन्तु उससे एक सुन्दर रणनाद अवश्य मिल गया था। उसे एक उज्ज्वल और अनिश्चित आदर्शके रूपमें ही बनाये रखना था। इसलिए जब डॉ. राजेन्द्रप्रसादने १६ अप्रैल, १९४१ को एक वक्तव्यमें लीगके अध्यक्षसे अनुरोध किया कि वे निश्चित भाषामें पाकिस्तानकी व्याख्या प्रस्तुत करें, ताकि कांग्रेस उसकी चर्चा कर सके, तो जिन्नाने तिरस्कारपूर्वक इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया और कहा कि पहले कांग्रेसको भारतके विभाजनका ‘सिद्धान्त’ स्वीकार करना चाहिये।

पहले अंग्रेजोंका यह दावा रहता था कि भारतका शासन-विधान रचना ब्रिटेनकी विशेष जिम्मेदारी है और वे भारतीयोंके हाथमें यह जिम्मेदारी नहीं सौंप सकते। परन्तु ज्यों ही उन्हें पता लग गया कि लीग पर ऐसी शर्तोंके लिए आग्रह करनेका आधार रखा जा सकता है - जिन्हें कांग्रेस राजनीतिक आत्महत्या किये बिना स्वीकार नहीं कर सकती - त्यों ही उन्होंने स्वाधीनताकी चर्चा करनेके लिए यह शर्त रख दी कि लीग और कांग्रेसके बीच पहले समझौता होना चाहिये। और जब कांग्रेसने यह शर्त स्वीकार नहीं की, तो उन्होंने उस पर अपने ही लिए सत्ता चाहनेका आरोप लगा दिया। इस प्रकार लीगकी हठधर्मी ब्रिटिश सत्ताके लिए तुरूपका पत्ता बन गई।



जब तक भारतमें अंग्रेजोंको अपनी सत्ता बनाये रखनेकी संभावना दिखाई दी तब तक उन्होंने लीगकी पाकिस्तानकी मांगको प्रोत्साहन तो दिया, लेकिन उसके साथ वे एकरूप नहीं बने। उन्हें उसका उपयोग मुख्यतः कांग्रेसके राष्ट्रवादके विरुद्ध धमकीके रूपमें करना था। परन्तु जैसे जैसे लीगको ब्रिटिश सत्ताके लिए अपने महत्त्वका अधिकाधिक भान होता गया, वैसे वैसे वह असंभव शर्तें मनवानेका आग्रह करती गई। परन्तु अंग्रेज उस समय लीगकी मांग स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं थे, यद्यपि उस समय एकको दूसरेकी जरूरत तो थी ही। “लीग जिन बलोंका प्रतिनिधित्व करती थी, उन्हें अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए अंग्रेजोंके समर्थनकी आवश्यकता थी। . . . और भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यवादको उन बलोंके समर्थनकी आवश्यकता थी।” [वही, पृ. २९२] इसलिए दोनोंके बीच यह गुप्त मैत्री जारी रही, भले ही दोनोंके लक्ष्य भिन्न थे और इसलिए कभी कभी दोनोंके बीच नोंक-झोंक भी हो जाती थी।

कलकत्तेके यूरोपियन स्वामित्ववाले दैनिक पत्र ‘दि स्टेट्समैन’ के सम्पादक श्री आर्थर मूरने लिखा: “स्वयं भारतीयों द्वारा भारतका शासन-विधान रचा जाना चाहिये, ऐसे सैद्धान्तिक मार्गका आग्रह रख कर - और वह भी यद्धके ही जमानेमें - सम्राट्की सरकारने अपनी अंतिम प्रामाणिकताके प्रति भारतका संदेह अनिवार्य रूपमें बढ़ा दिया है।” [आर. एन. खन्ना कृत ‘गांधीजीज़ फाइट फॉर फ्रीडम’, लाहौर, १९४४ (पृ. ३१) में आर्थर मूरके ‘ट्रिब्यून’ में प्रकाशित लेखसे उद्धृत]

इस भद्दी वास्तविकताके बढ़ते हुए प्रमाणोंने ही कांग्रेसकी ‘भारत छोड़ो’ की मांगको जन्म दिया था। यदि जिन्नाने इस मांगको लीगके और अपने विरुद्ध की गई चाल समझा, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। क्योंकि यदि वह सफल हो जाती, तो कांग्रेसके साथ सौदा करनेकी उनकी शक्ति छिन जाती— अर्थात् स्वाधीनताको रोकनेकी विशेष सत्ता (वीटो) उनके हाथमें न रहती, जो ब्रिटिश सत्ताके भारतमें उपस्थित रहते उन्हें मिली हुई थी।

सम्प्रदायवाद एक कुचक्र है। एक बार उसे चला दिया जाय तो वह अपने आप घूमता रहता है और आगे बढ़ता रहता है। वह विरोधी सम्प्रदायवादको जन्म देता है और फिर दोनों अधिकाधिक जोरके साथ एक-दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। अभी तक परिस्थिति इस सीमा तक नहीं पहुंची थी। जिस तीसरे पक्षने इस कुचक्रको चालना दी थी वह यदि दृढ़ता और बुद्धिमानीसे काम लेता अथवा विकल्पके



रूपमें - यदि वह ऐसा करनेमें नैतिक दृष्टिसे असमर्थ हो गया था, और गांधीजीके निदानके अनुसार वह ऐसा ही हो गया था - 'भारत छोड़ो' की मांगकी भावनासे प्रेरित होकर भारतसे बिना किसी शर्तके चला गया होता, तो उस समय भी सम्प्रदायवादको अंतिम सर्वनाशकी दिशामें आगे बढ़नेसे रोकना असंभव नहीं था। परन्तु १९४४ की स्थितिमें ब्रिटिश तंत्रके भीतर तो साम्प्रदायिक त्रिकोणकी समस्याका कोई हल संभव ही नहीं था। और, उसके बाहर उसका कोई अस्तित्व ही न रहा होता।

३

इसी राजनीतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमिमें १९४४ की गांधी-जिन्ना वार्ताएं हुईं। ब्रिटिश सत्ताके सिवा सभी लोग राजनीतिक गतिरोधसे ऊब गये थे। जिन्ना पर लीगके भीतर और बाहरसे यह दबाव बढ़ रहा था कि स्वाधीनताका मार्ग साफ करनेके लिए कांग्रेसके साथ समझौता कर लिया जाय।

देशमें ऐसी व्यापक आशाएं और अपेक्षाएं उत्पन्न हो गई थीं कि इन वार्ताओंका कुछ न कुछ ठोस परिणाम जरूर निकलेगा। एक असाधारण वक्तव्यमें जिन्नाने गांधीजीको 'महात्मा' कहा और कुछ समय तक राजनीतिक संधिकी स्थिति बताये रखनेकी उनसे अपील की। "यह सभीकी इच्छा रही है कि हम दोनों मिलें। अब हम मिल रहे हैं, तो आप हमारी मदद कीजिये। परिस्थिति पर हमारा काबू हो रहा है। पिछली बातोंको भूल जाइये।" [जिन्नाका अखबारी वक्तव्य, ५ अगस्त १९४४]

ब्रिटिश सरकार समझौतेकी संभावनाको देखकर सचमुच परेशान हो उठी। वाइसरॉयने दोनोंके मिलनेसे पहले ही जाहिर कर दिया कि, "हिन्दुओं, मुसलमानों और अन्य सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्वोंके बीच सिद्धान्त रूपमें समझौता होना ही चाहिये;" [लॉर्ड वेवेलका पत्र गांधीजीको, १५ अगस्त १९४४] उसके बाद ही ब्रिटिश सरकार किसी सीमित अधिकारोंवाली अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार बनानेका भी विचार कर सकती है। उसके बाद लन्दनके 'टाइम्स' पत्रमें एक सम्पादकीय लेख निकला: "गांधीजी और जिन्ना साहबके बीच हुआ कोई समझौता उनके अनुयायियोंके लिए कितना ही सन्तोषजनक क्यों न हो, किन्तु उससे भारतमें राजनीतिक प्रगति होनेमें तब तक कोई ठोस सहायता नहीं मिलेगी जब तक कि उस समझौतेमें अधिक व्यापक हितोंका, . . . दलित जातियोंकी चिन्ताका . . . और राजाओंके दावोंका



विचार न किया जाय।” [नई दिल्लीके 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित 'गांधी-जिन्ना टॉक्स' नामक लेखमें लन्दनके 'दि टाइम्स' पत्रसे दिया गया उद्धरण, १९४४, पृ. ५८]

आगामी गांधी-जिन्ना मिलनकी घोषणासे हिन्दुओंका एक वर्ग, विशेषतः हिन्दू महासभाके सदस्य, क्रोधसे भर गये। धर्मांध नौजवानोंकी एक टोलीने दोनोंकी यह मुलाकात न होने देनेका निश्चय कर लिया। इस बारेमें सर तेजबहादुर सप्रूको एक पत्रमें मैंने लिखा:

आपने अखबारोंमें (हिन्दू महासभाके) धरना देनेवाले स्वयं-सेवकोंकी सेवाग्रामकी करतूतोंके बारेमें पढ़ा होगा। . . . पहले दिन टोलीके नायकके मुंहसे निकल गया कि यह तो पहला ही कदम है। जरूरत हुई तो बापूको जिन्नाके पास जानेसे रोकनेके लिए बल-प्रयोग किया जायगा। कल उन्होंने सूचना दी कि वे बापूको झोंपड़ीसे बाहर न निकलने देनेमें शारीरिक बलका उपयोग करेंगे और उन्होंने झोंपड़ीसे बाहर निकलनेके तीनों रास्तों पर स्वयंसेवक बैठा दिये हैं।

आज सुबह मुझे टेलिफोन पर जिला पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टसे सूचना मिली कि स्वयंसेवक गम्भीर शरारत करना चाहते हैं, इसलिए पुलिसको मजबूर होकर आवश्यक कार्रवाई करनी पड़ेगी। बापूने कहा कि मैं उनके बीच अकेला जाऊंगा और वर्धा (रेलवे स्टेशन) तक पैदल चलूंगा; स्वयंसेवक स्वयं अपना विचार बदल ले और मुझे मोटरमें जानेको कहें तो दूसरी बात है। . . . बापूके रवाना होनेसे ठीक पहले जिला पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट आये और बोले कि धरना देनेवालोंको हर तरहसे समझाने-बुझानेका जब कोई फल न निकला, तो पूरी चेतावनी देनेके बाद मैंने उन्हें गिरफ्तार कर लिया है। . . .

धरना देनेवालोंका नेता बहुत ही उत्तेजित स्वभाववाला, अविवेकी और अस्थिर मनका आदमी मालूम होता था, इससे कुछ चिन्ता होती थी। गिरफ्तारीके बाद तलाशीमें उसके पास एक बड़ा छूरा निकला। [धरना देनेवालोंके नेताने बादमें पुलिसके सामने यह स्पष्टीकरण किया कि छुरा खाकसारोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए रखा गया था, क्योंकि उन्होंने धमकी दी थी कि वे उसी समय सेवाग्राममें प्रति-प्रदर्शन करेंगे] जब उसे गिरफ्तार करनेवाले पुलिस अफसरने मजाकमें उससे यह कहा, “कमसे कम तुम्हें शहीद बननेका संतोष तो मिल ही गया”, तो तुरन्त



उत्तर मिला, “नहीं, वह तो तभी मिलेगा जब कोई गांधीजीकी हत्या करेगा।” पुलिस अफसरने फिर मजाकमें कहा: “नेताओंको क्यों नहीं आपसमें निबट लेने देते ? उदाहरणके लिए, सावरकर (हिन्दू महासभाके नेता) आकर यह काम कर लें।” इसका जवाब यह था: “गांधीजीके लिए यह आवश्यकतासे अधिक सम्मानकी बात होगी। इस कामके लिए तो जमादार ही काफी है।”

जिस व्यक्तिका जमादारके रूपमें उल्लेख किया गया था, वह उसका साथी पिकेटर नाथूराम विनायक गोडसे था। साढ़े तीन वर्ष बाद यह करुण भविष्य-वाणी चरितार्थ हुई।

बहुतसे खाकसार उस समय बम्बईमें जमा हो गये थे। यह हिटलरके एस. एस. संगठनके जैसा एक अर्ध-सैनिक मुस्लिम संगठन था। इसका आधार सर्वसत्ताधारी नेता (प्यूहरर) के सिद्धान्त पर था। ये लोग बम्बईमें कांग्रेस-लीग समझौतेको प्रोत्साहन देनेके लिए उपयुक्त ‘वातावरण’ उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे जुलूस निकाल रहे थे ! साम्यवादी लोग विशाल सभाएं कर रहे थे, ताकि दोनों नेता लोकतंत्रकी रक्षाके लिए एकत्र होनेको ‘विवश’ हो जायें। नाजी आक्रमणके विरुद्ध रूसके प्रतिरोधको वे लोकतंत्रकी रक्षाका प्रतीक मानते थे। इस भयसे कि गांधीजी लीगकी पाकिस्तानवाली मांग स्वीकार कर लेंगे, सिक्ख अपनी ‘मिल्कियतके आधार पर’ रचे जानेवाले अलग ‘सिक्खिस्तान’ की मांग लेकर सामने आये ! उसका स्पष्ट अर्थ यह था कि सिक्खोंने परिश्रम करके जिस प्रदेशकी जमीनको खेतीकी उपजाऊ भूमिमें बदल दिया है तथा जहां उनकी मालिकीकी अधिकतर जमीन है, उस प्रदेशका एक स्वतंत्र सार्वभौम सिक्ख राज्य बना दिया जाय । बम्बईके पुलिस अधिकारियोंने सावधानीके तौर पर एक आज्ञा निकाल कर, कुछ सड़कों और सार्वजनिक स्थानों पर आने-जानेकी मनाही कर दी थी। सिर्फ उन्हीं लोगोंको आने-जानेकी इजाजत थी, जो उन सड़कोंके आसपासके मुहल्लोंमें रहते थे या जिन्हें सचमुच वहांके लोगोंसे मिलने जानेकी जरूरत थीं। इसमें कायदे आजम जिन्नाने अपनी ओरसे एक लाक्षणिक घोषणा और जोड़ दी: “आशा है कि पत्र-प्रतिनिधि यह समझ लेंगे कि यह मुलाकात समाचारपत्रोंके लिए खुली नहीं है और इसलिए मैं उनसे यह प्रार्थना करूंगा कि वे मेरे मकान पर आनेका कष्ट न करें। . . . फोटोग्राफरों और फिल्म-कम्पनियोंको मि. गांधीके पहुंचने पर फोटो और फिल्म लेनेकी छूट रहेगी।”



दोनों नेताओंकी बातचीत आगे बढ़ रही थी उस बीच छोटीसी एक नाटकीय घटना भी हो गई। एक दिन खुफिया पुलिसका एक अधिकारी बिड़ला-भवनमें आया और बोला कि पुलिस कमिश्नरने उसे अरुणा आसफअलीकी तलाशमें भेजा है, जो रातको गांधीजीसे मिलने आयेंगी।

गांधीजीने कागजके एक पर्चे पर लिखा, “वे आई तो आप मुझसे क्या कराना चाहेंगे?”

“हमारी ऐसी समझ है कि वे अपने-आपको पुलिसके हवाले करने आ रही हैं।”

“परन्तु मान लीजिये कि वे इस इरादेसे नहीं आ रही हों तो?”

“तो हम सख्त चौकी रखेंगे और अपना काम करेंगे। वैसे भी हम जागरूक तो हैं ही | हमें मालूम हुआ है कि वे सचमुच इस मकानमें ही हैं।”

गांधीजी हंसे : “मुझे तो यह भी मालूम नहीं कि वे बम्बईमें भी हैं या नहीं।

पुलिस अफसरने उन्हें घन्यवाद दिया: “महात्माजी, मुझे विश्वास है कि आप हमें धोखा नहीं देंगे!”

*

जिन्नाके साथ गांधीजीकी बातचीत ९ सितम्बर, १९४४ को आरम्भ हुई और वह बम्बईकी १०, माउन्ट प्लेज़ेन्ट रोड पर स्थित जिन्नाके मकानमें १८ दिन तक होती रही। बातचीतके दिनोंमें ईदका त्योहार आया। उस दिन गांधीजीने जिन्नाको गेहुंके खाखरे भेजे, जो उनके खुदके लिए विशेष रूपसे बनाये गये थे। उन्होंने जिन्नाके पास अपना प्राकृतिक चिकित्सक भी बातचीतके दिनोंमें उन्हें मालिश करनेके लिए भेजा था।

दोनों मिले, दोनोंने आपसमें हाथ मिलाये और एक-दूसरेको गले लगाया। उनकी पहली मुलाकातमें सच्ची मानवताकी भावनाके दर्शन हुए। महात्माजीका स्वागत करनेके लिए जिन्ना दरवाजेके बाहर आये और लौटते समय उन्हें बिदा करने भी आये। गांधीजीके साथ खड़े रह कर उन्होंने फोटो भी खिंचवाया। बिदा होते समय जिन्नाने गांधीजीके साथ उत्साहसे जो हस्तधुनन किया, उसमें निरीक्षकोंने केवल शिष्टतासे अधिक गहरी भावनाकी कल्पना कर ली। परन्तु उसमें इससे अधिक कुछ नहीं था।



शुरूमें ही जिन्नाने महात्माजीके प्रतिनिधित्व पर शंका की। परन्तु आखिर वे नरम पड़ गये और वार्ता जारी रखना उन्होंने स्वीकार किया। जैसे जैसे वार्ता आगे बढ़ती गई, यह सचाई छन छन कर बाहर आने लगी कि चर्चामें देनेकी कोई बात नहीं है, केवल लेनेकी ही बात है। कायदे आजम वस्तुस्थितिको समझने या उस पर चर्चा करनेको भी तैयार नहीं थे; उन्होंने अपनी उपर्युक्त प्रतिनिधित्व सम्बन्धी आपत्ति इसीलिए छोड़ दी थी कि 'सत्यशोधक' को सत्यका प्रकाश प्राप्त करनेका अवसर मिले और वह श्रद्धालुओंके संघमें सम्मिलित हो जाय !

लौटने पर गांधीजीसे पूछा गया, "क्या जिन्नासे आप कुछ लाये हैं?" महात्माजीका संक्षिप्त उत्तर था, "मैं केवल फूल लाया हूं।" बादमें उन्होंने राजाजीको अपने सवा तीन घंटेकी बातचीतका पूरा किस्सा सुनाया। वह 'अत्यन्त निराशाजनक' था:

"वह मेरे धैर्यकी परीक्षा थी। . . . मुझे अपने ही धैर्य पर आश्चर्य होता है। लेकिन हमारी बातचीत मित्रतापूर्ण थी।

"आपकी (राजाजीकी) योजनाके लिए और स्वयं आपके लिए उनका (जिन्नाका) तिरस्कार चकित कर देनेवाला है । इससे आपके बारेमें मेरा आदर बढ़ गया कि आप इतने घंटे तक जिन्नासे बातचीत कर सके और आपने उस योजनाको तैयार करनेका कष्ट उठाया।

"वे कहते हैं कि आपने उनकी मांग स्वीकार कर ली है, इसलिए मुझे भी स्वीकार कर लेनी चाहिये। मैंने कहा, 'मैं राजाजीकी योजनाको स्वीकार करता हूं और आप यदि चाहें तो उसे पाकिस्तान कह सकते हैं।' उन्होंने लाहौरके प्रस्तावकी बात की। मैंने कहा, 'मैंने उसका अध्ययन नहीं किया है और उसके बारेमें मैं बात करना नहीं चाहता। हम राजाजीकी योजनाके बारेमें बात करें और आपको उसमें कुछ दोष नजर आते हों तो आप बता सकते हैं।'

"बातचीतके बीचमें उन्होंने फिर वही पुराना भूत लाकर खड़ा कर दिया : 'मेरा तो यह खयाल था कि आप एक हिन्दुके रूपमें, हिन्दू कांग्रेसके एक प्रतिनिधिके रूपमें यहां आये हैं।' मैंने कहा, "नहीं, न तो मैं हिन्दूके नाते यहां आया हूं और न कांग्रेसके प्रतिनिधिके रूपमें। मैं यहां एक व्यक्तिके रूपमें आया हूं। आप व्यक्तिके रूपमें या लीगके अध्यक्षके रूपमें, जो भी आपको पसन्द हो, मुझसे बात कर सकते



हैं। यदि आप राजाजीसे सहमत हो जाते और उनकी योजना मान लेते, तो आप और वे अपनी अपनी संस्थाओंके सामने जाकर उनसे योजनाको स्वीकार करनेकी हिमायत करते। इसीलिए राजाजी आपके पास आये थे। फिर इसी तरह आप उसे दूसरे दलोंके सामने रखते। अब यह काम आपको और मुझको करना है।' उन्होंने कहा कि वे लीगके अध्यक्ष हैं। यदि मैं अपने सिवा और किसीका प्रतिनिधि नहीं हूं, तो बातचीतका आधार ही कहाँ रह जाता है? सौदा तय कौन करेगा? मैं तो वही आदमी था, जैसा १९३९ में उन्होंने मुझे पाया था। मुझमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। मेरे मनमें यह कहनेकी आई, 'हां, मैं तो वही आदमी हूं और चूंकि आप यह मानते हैं कि मेरे साथ बात करनेसे कोई लाभ नहीं, इसलिए मैं चला जाऊंगा।' लेकिन मैंने इस लोभका संवरण कर लिया। मैंने उनसे कहा, 'क्या एक व्यक्तिको अपनी बात समझा कर आपको उसे नहीं बदलना चाहिये? मैं बेशक वही आदमी हूं। यदि आप बदल सकें तो मेरे विचार बदल दीजिये। फिर मैं पूरे दिलसे आपका समर्थन करूंगा।' उन्होंने कहा, "हां, मैं जानता हूं कि यदि मैं आपके विचार बदल सकूं, तो आप मेरे अली बन जायेंगे।" "

बादमें गांधीजीने कहा था, "यह बड़ा सूचक उद्गार था। मैं पाकिस्तानके पेगम्बरसे मिल रहा था और वे अपने अलीको ढूंढ़ रहे थे!"

परन्तु गांधीजीका वर्णन ही आगे बढ़ाया जाय:

"उन्होंने कहा कि आप पाकिस्तान स्वीकार कर लें, फिर तो मैं अन्त तक आपका साथ दूंगा। मैं जेल जाऊंगा। गोलियों तकका सामना करूंगा। मैंने कहा, "उनका सामना करनेके लिए मैं आपके साथ खड़ा रहूंगा।" वे बोले, 'शायद आप खड़े नहीं रह सकेंगे।' मैंने उत्तर दिया, 'मेरी परीक्षा कर लीजिये।'

"हम फिर आपकी (राजाजीकी) योजना पर वापस आ गये। जिन्ना स्वाधीनताके बाद नहीं, लेकिन इसी समय पाकिस्तान चाहते हैं। उन्होंने कहा, "हम पाकिस्तान और हिन्दुस्तानके लिए स्वाधीनता लेंगे। हम आपसमें समझौता कर लें। फिर हम सरकारके पास जाकर उससे हमारा समझौता स्वीकार करनेके लिए कहें; हमारा हल स्वीकार करनेके लिए उसे विवश कर दें।' मैंने कहा, 'मैं कभी इसके लिए अपनी स्वीकृति नहीं दे सकता। मैं अंग्रेजोंसे कभी नहीं कह सकता कि वे भारत पर विभाजन थोप दें। अगर आप सब लोग अलग होना चाहते हैं, तो मैं आपको रोक नहीं सकता। मेरे पास आपको जबरन्



रोकनेकी शक्ति नहीं है। और हो भी तो मैं उसका उपयोग नहीं करूंगा।' उन्होंने कहा, 'मुसलमान पाकिस्तान चाहते हैं। लीग मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करती है और वह हिन्दुस्तानका विभाजन चाहती है।' मैंने कहा, 'मैं यह मानता हूं कि लीग सबसे प्रबल मुस्लिम संगठन है। मैं यह भी मान सकता हूं कि उसके अध्यक्षके रूपमें आप भारतके मुसलमानोंके प्रतिनिधि हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि देशके सब मुसलमान पाकिस्तान चाहते हैं। उस प्रदेशके सब निवासियोंका मत लेकर देख लीजिये।' उन्होंने कहा, 'गैर-मुसलमानोंसे इस बारेमें क्यों पूछा जाय?' मैंने कहा, 'आप आबादीके एक हिस्सेके लोगोंको मताधिकारसे वंचित नहीं कर सकते। आपको उन्हें अपने साथ रखना होगा और यदि आपका बहुमत है, तो फिर आपको क्यों डरना चाहिये?' फिर किरणशंकर रायने सुझसे जो कुछ कहा था वह मैंने उन्हें बताया: "यदि बुरीसे बुरी बात हुई तो हम बंगालवाले सब पाकिस्तानमें चले जायेंगे। लेकिन ईश्वरके लिए बंगालके टुकड़े न कीजिये, उसका अंग-भंग न कीजिये।"

"मैंने कहा, 'यदि आपका बहुमत है, तो आप जो चाहेंगे वही होगा। मैं जानता हूं कि यह आपके लिए बुरी बात है। लेकिन फिर भी यदि आप उसे चाहते हैं, तो वह आपको मिल जायगी। लेकिन यह आपके और मेरे बीचकी व्यवस्थाकी बात होगी। जब तक अंग्रेज यहां हैं तब तक यह संभव नहीं हो सकता।'

"फिर आपकी योजनाकी विभिन्न धाराओं पर वे मुझसे जिरह करने लगे। मैंने उनसे कहा, "यदि आप इन बातोंका स्पष्टीकरण चाहते हैं, तो क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि योजना बनानेवालेसे ही आप उनका स्पष्टीकरण करायें?" 'जी नहीं।' वे ऐसा नहीं चाहते थे। मैंने कहा, 'मुझसे जिरह करनेसे क्या लाभ?' वे संभल कर बोले, 'जी नहीं, मैं आपसे जिरह नहीं कर रहा हूं।' और फिर बोले : 'मैं जीवन भर वकील रहा हूं, इसलिए मेरे ढंगसे आपको लगा होगा कि मैं आपसे जिरह कर रहा हूं।' मैंने उनसे कहा कि आप इस योजना पर अपनी आपत्तियां लिख कर मुझे दे दीजिये। लेकिन उनकी इच्छा नहीं थी। उन्होंने पूछा, क्या ऐसा करना ही होगा?' हां, मैं चाहता हूं कि आप ऐसा करें।" वे सहमत हो गये।

"अन्तमें उन्होंने कहा, "मैं आपके साथ समझौता कर लेना चाहता हूं।' मैंने उत्तर दिया, "आपको याद है कि मैंने क्या कहा था। यही कहा था कि जब तक हम समझौता न कर लें तब तक हम अलग



नहीं होंगे।' उन्होंने कहा, हां। मैं सहमत हूं। मैंने सुझाया, 'हम यह बात भी अपने वक्तव्यमें रख दें तो ?' उन्होंने कहा, 'नहीं, न रखना ही ज्यादा अच्छा है। फिर भी हमारे बीच समझ यही रहेगी और हमारे सार्वजनिक उद्धारोंमें भी हमारी बातचीतका प्रेम और मैत्रीभाव प्रतिबिम्बित होगा।'

राजाजी : "आप मानते हैं कि वे समझौता चाहते हैं?"

गांधीजी : "मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। शायद उन्हें ऐसा लगता हो।?"

राजाजी : "तब आप इसे पार लगा देंगे?"

गांधीजी : "हां। . . . यदि मुझे ठीक शब्द सूझ गया।"

दूसरे दिन दोनों नहीं मिले। जिन्नाने कहा, "आज रमजानका इक्कीसवां दिन है। सभी मुसलमानोंके लिए यह बड़ा महत्त्वपूर्ण दिन है।" जिन्नाके एक पहलेके साथीने टीका की, "उन्होंने यह क्यों नहीं कहा कि वह रविवारका दिन है और उन्हें छुट्टी चाहिये ? वे रमजानकी अपेक्षा रविवारको ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं !"

११ सितम्बरकी शामको दोनोंकी बातचीत फिर आरम्भ हुई। महात्माजीका शामका भोजन उनकी बातचीतके बीच जिन्नाके मकान पर ही हुआ। उनके भोजनके साथ उबले हुए पानीकी एक बोतल भी थी। कहीं कोई यह न समझ ले कि मुसलमानके घरमें खाते समय महात्माजी पवित्र गंगाजलका या ऐसी ही किसी वस्तुका उपयोग करते हैं, इसलिए गांधीजीन आदेश दिया कि आगेसे भोजनके साथ पानीकी बोतल न भेजी जाय।

१२ सितम्बरको भी कायदे आजमकी मीठी मीठी बातें चलीं। मैं गांधीजीके ही शब्दोंमें उनका वर्णन यहां दूं :

"उन्होंने पाकिस्तानकी सरकारका बड़ा मोहक चित्र खींचा। उसका स्वरूप पूर्ण लोकतंत्रका होगा। मैंने पूछा, 'क्या आपने मुझसे यह नहीं कहा था कि हिन्दुस्तानकी परिस्थितियोंके लिए लोकतंत्र उपयुक्त नहीं है?' उन्हें यह याद नहीं था। उन्होंने मुझसे कहा, 'आप बताइये कि मैंने क्या कहा था।' इस पर मैंने सारी बात कह बताई और कहा कि 'संभव है मैंने आपको समझनेमें भूल की हो ! ऐसा हो तो



आप मेरी भूल सुधार दीजिये।' लेकिन जब मैंने उनकी कही हुई बात विस्तारसे दोहरायी, तो वे इनकार नहीं कर सके। उन्होंने कहा, 'हां, मैंने ऐसा कहा था। लेकिन वह ऊपरसे थोपे हुए लोकतंत्रके बारेमें कहा था।'

"फिर उन्होंने कहा, 'क्या आपके खयालसे हमारे लिए यह धार्मिक अल्पमतका प्रश्न है?' मैंने कहा, 'हां। यदि ऐसा नहीं है, तो आप बताइये कि वह क्या है?' उन्होंने लम्बा भाषण ही दे डाला। उस सारे भाषणको मैं यहां नहीं दोहराऊंगा। मैंने उनसे पूछा कि पाकिस्तानमें दूसरे अल्पमतों अर्थात् सिक्खों, ईसाइयों, दलित वर्गों आदिका क्या स्थान होगा ? उन्होंने कहा कि वे पाकिस्तानके अंग होंगे। मैंने उनसे पूछा, 'क्या आपका मतलब सम्मिलित मताधिकारसे है?' वे जानते थे कि मैं उस प्रश्न पर आ रहा हूं। उन्होंने कहा, 'हां, मैं चाहूंगा कि वे समग्र पाकिस्तानके अंग बनें। मैं उन्हें सम्मिलित मताधिकारके लाभ समझाऊंगा। परन्तु यदि वे पृथक् निर्वाचन चाहेंगे, तो वह उन्हें मिलक जायगा। सिक्ख चाहेंगे तो उन्हें गुरुमुखी मिल जायगी और पाकिस्तान सरकार उन्हें आर्थिक सहायता देगी।' मैंने पूछा, 'जाटोंका क्या होगा ?' पहले तो उन्होंने इस विचारको ही टालना चाहा। फिर बोले, 'वे चाहेंगे तो उन्हें भी मिल जायगा। वे चाहेंगे तो उनका अलग अस्तित्व रहेगा।' मैंने कहा, 'ईसाइयोंका क्या होगा? वे भी कोई ऐसा स्थान चाहते हैं जहां उनका बहुमत हो और जहां वे राज्य कर सकें - उदाहरणके लिए, त्रावणकोरमें ?' उन्होंने कहा कि यह समस्या तो हिन्दुओंके लिए है। मैंने कहा, मान लीजिये कि त्रावणकोर पाकिस्तानमें हो तो?' उन्होंने कहा, मैं उन्हें दे दूंगा। उन्होंने न्यू फाउन्डलैंडकी मिसाल दी। बाकीकी हमारी बातें तो सामान्य थीं। मैं उनके मनकी बात जाननेका प्रयत्न जारी रखूंगा।"

राजाजी : "मालूम कीजिये कि वे क्या चाहते हैं।"

गांधीजी : "हां, यही तो मैं कर रहा हूं। मैं उन्हींके शब्दों द्वारा यह सिद्ध कर देना चाहता हूं कि पाकिस्तानका सारा प्रस्ताव ही बेहूदा है। मैं समझता हूं कि वे बातचीतको तोड़ना नहीं चाहते। अपनी ओरसे मैं भी कोई जल्दी नहीं करूंगा। परन्तु वे मुझसे यह आशा नहीं रख सकते कि मैं किसी अनिश्चित स्वरूपके पाकिस्तानका समर्थन करूंगा।"

राजाजी : "क्या आप मानते हैं कि वे यह दावा छोड़ देंगे?"



गांधीजी : “उन्हें छोड़ना पड़ेगा, यदि कोई समझौता करना है। वे समझौता तो चाहते हैं, परन्तु उन्हें यह पता नहीं कि वे क्या चाहते हैं। मैं उन्हें यह दिखा देना चाहता हूं कि वे उचित रूपमें जो चीज मांग सकते हैं, वह आपकी योजनामें आ ही जाती है।”

जहां तक बाहरी संसारका संबंध था, ६ से १३ सितम्बर तकका समय कुछ हद तक आशाका समय था। उसके बाद आशा घटने लगी। १४ से १९ तक निराशा बढ़ती रही। इस अर्सेमें कायदे आजमाने अपने ईदके सन्देशमें ‘एक राष्ट्रके रूपमें’ मुसलमानोंकी प्रगतिका उल्लेख किया और मित्रता या सद्भावनाका स्वर निकालनेके बजाय “मिल्लतके उन गद्दारोंको जो हमारी प्रगतिको रोक रहे हैं” खरी-खोटी सुनाई। उसके बाद तो आशा तेजीसे कम होती गई, और अन्तमें २७ तारीखको वार्ताएं पूरी तरह भंग हो गईं।

वार्ताओंके इस सारे कालमें पत्रोंका आदात-प्रदान बना रहा। इससे अधिक विचित्र पत्र-व्यवहार शायद ही कभी मित्रतापूर्ण संधिवार्ताओंकी अवधिमें हुआ हो। पत्र-व्यवहार और वार्ताएं कभी किसी बात पर केन्द्रित नहीं हुए, परन्तु समानान्तर रूपमें चलते रहे और मानो दोनों अलग अलग भाषाओंमें होते रहे। इस पर राजाजीकी मार्मिक टीका थी : “वार्ताएं आपको समझाने और बांध रखनेके लिए हैं और पत्र-व्यवहार पहलेसे उनकी असफलताकी आशा रख कर हो रहा है।”

गांधीजीने इस भूमिका पर अपनी बातचीत शुरू की कि उनके जीवनका मिशन हिन्दू-मुस्लिम एकता है। इसलिए मुसलमान चाहें तो वे लाहौरके प्रस्तावमें रखी गई मुस्लिम लीगकी मांगको साररूपमें स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं - अर्थात् जहां मुसलमानोंका बहुमत है उन प्रदेशोंको आत्म-निर्णयका अधिकार दे दिया जाय। परन्तु यह स्पष्ट था कि स्वतंत्रताके अभावमें आत्म-निर्णयके अधिकारको कार्यका रूप नहीं दिया जा सकता। इसलिए पहले लीगको और भारतकी दूसरी तमाम पार्टियों और दलोंको अपने सम्मिलित प्रयत्नसे स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए एकत्र होनेमें सहमत होना चाहिये। [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, ११ सितम्बर १९४४]



जिन्नाने कहा, “यह तो घोड़ेके आगे गाड़ीको रख देने जैसी उल्टी बात हुई।” स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए सम्मिलित प्रयत्न लीगके साथ समझौता होनेसे पहले नहीं किन्तु बादमें हो सकता है। [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, ११ सितम्बर १९४४]

गांधीजीकी राय यह थी कि जब तक हम तीसरे पक्षको देशसे निकाल नहीं देते तब तक हम एक-दूसरेके साथ शान्तिसे नहीं रह सकते। परन्तु मैं “हमारे बीच सजीव शान्ति स्थापित करनेके उपाय और साधन खोजने” का प्रयत्न करनेको हमेशा तैयार हूं।

इसी कारण उन्होंने राजाजीकी योजनाके लिए अपनी स्वीकृति दी थी। लाहौरके प्रस्तावमें रखी गई मांगका सार उसमें आ गया था और उसे मूर्त स्वरूप मिल गया था। [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १४ सितम्बर १९४४]

जिन्नाको उस पर आपत्ति थी। राजाजीकी योजनाके अनुसार यह आवश्यक था कि मुस्लिम लीग संयुक्त भारतके आधार पर स्वाधीनताकी मांगका समर्थन करे। [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, १० सितम्बर १९४४]

गांधीजीन समझाया कि राजाजीकी योजना संयुक्त भारतके आधार पर नहीं बनाई गई है। “हम यदि समझौता कर लेते हैं और भारत आज जैसा है उसके लिए हस सम्मिलित प्रयत्न करके स्वाधीनता प्राप्त कर लेते हैं, तो आजाद भारत सम्बन्धित लोगोंके विभाजनके पक्षमें मत देने पर प्रदेशोंकी सीमा बांधने, लोकमत लेने, विभाजन करने आदिके कार्य हाथमें लेगा।” क्या यह वस्तुतः आत्म-निर्णय नहीं है? [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १५ सितम्बर १९४४]

जिन्ना यह सिद्ध करने लगे कि राजाजीकी योजनामें न्यूनता कहां रहती है। प्रदेशोंकी सीमा बांधनेके लिए कमीशन कौन नियुक्त करेगा? योजनामें जिस लोकमत और मताधिकारका विचार किया गया है, उसका स्वरूप कौन निश्चित करेगा? लोकमतके निर्णयको कार्यान्वित कौन करेगा ? [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, १. सितम्बर १९४४]



गांधीजी : “यदि हम अभी इसका निर्णय नहीं कर देंगे, तो अस्थायी अंतरिम सरकार यह सब कार्य करेगी।” [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १४ सितम्बर १९४४]

जिन्नाने पूछा : अस्थायी राष्ट्रीय सरकार किस आधार पर बनेगी? [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, १० सितम्बर १९४४]

गांधीजीने उत्तर दिया कि यह आधार तो लीग और कांग्रेसको मिल कर निश्चित करना होगा । यदि किसी आधार पर उनमें समझौता हो गया, तो स्वभावतः दूसरे दलोंसे विचार-विमर्श करना उनका काम होगा। [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, ११ सितम्बर और १४ सितम्बर १९४४]

इससे जिन्नाको सन्तोष नहीं हुआ। वे चाहते थे कि गांधीजीके पास यदि कोई निश्चित रूपरेखा हो तो वे बतायें। उन्होंने कहा कि चूंकि वह गांधीजीकी योजना है, इसलिए उन्होंने कोई रूपरेखा अवश्य सोच निकाली होगी । [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, १४ सितम्बर १९४४]

गांधीजीने समझाया कि वे कोई रूपरेखा लेकर नहीं आये हैं। लेकिन यदि उनके (जिन्नाके) पास लाहौरके प्रस्तावके सन्दर्भमें कोई रूपरेखा हो, तो वे उसकी चर्चा कर सकते हैं। “मैं मानता हूं कि उस प्रस्तावके अनुसार भी अस्थायी सरकार आवश्यक है।” [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १५ सितम्बर १९४४]

इस परसे दोनोंके बीच लाहौरके प्रस्तावकी चर्चा चली।

गांधीजीने कहा था कि राजाजीकी योजनामें लाहौर-प्रस्तावकी मांग सार रूपमें मान ली गई है; तो फिर गांधीजीने लाहौरका प्रस्ताव क्यों नहीं स्वीकार कर लिया ?

गांधीजीने अपनी कठिनाई बताई कि लाहौरका प्रस्ताव अस्पष्ट और अनिश्चित है। उसमें ‘पाकिस्तान’ शब्द नहीं है और न उसमें ‘दो राष्ट्रों’ के सिद्धान्तका कोई उल्लेख है। यदि लीगकी पाकिस्तानकी मांगका आधार धार्मिक हो, तो क्या सारे संसारके मुसलमान एक कौमके होनेके कारण इस्लामके समस्त अनुयायियोंका एकीकरण उसका अन्तिम लक्ष्य है? इसके विपरीत, यदि पाकिस्तानको केवल भारतीय मुसलमानों तक ही सीमित रखना हो, तो क्या आप (जिन्ना) यह समझायेंगे कि एक



भारतीय मुसलमानों में और दूसरे प्रत्येक भारतीयों में धर्म के सिवा क्या भेद है? क्या वह किसी तुर्क या अरब से भिन्न है? [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, ११ सितम्बर और १५ सितम्बर १९४४]

जिन्ना ने उत्तर दिया कि सारे जगत के मुसलमानों का एकीकरण तो एक हौआ भर है। उन्होंने स्वीकार किया कि 'पाकिस्तान' शब्द लाहौर के प्रस्ताव में नहीं आया है और उसके मूल अर्थ में उन्होंने या लीग ने उसका उपयोग नहीं किया है। ['पाकिस्तान' शब्द में इन प्रदेशों का समावेश माना गया था: 'पी' (पंजाब के लिए), 'ए' (अफगान प्रान्त - सीमाप्रान्त के लिए), 'के' (काश्मीर-के लिए), 'एस' (सिंध के लिए) और 'स्तान' (बलूचिस्तान के लिए)] "अब यह शब्द लाहौर-प्रस्ताव का समानार्थक बन गया है। . . . हमारा ऐसा मत है कि राष्ट्र की किसी भी व्याख्या या कसौटी के अनुसार मुसलमान और हिन्दू दो विशाल राष्ट्र हैं।" मुसलमान अलग राष्ट्र है, क्योंकि उनकी "संस्कृति और सभ्यता अलग है, भाषा और साहित्य अलग है, कला और स्थापत्य अलग है, नाम और नामकरण-पद्धति अलग है, जीवन के मूल्यों और अनुपात की दृष्टि अलग है, कानून और नैतिक नियम अलग हैं, रिवाज और पंचांग अलग हैं तथा इतिहास और परम्परा भी अलग हैं।" और इसलिए उनका यह अधिकार है कि उनके अपने देश में उनका स्वतंत्र सार्वभौम अस्तित्व हो। [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, १७ सितम्बर १९४४]

इनमें से हर एक विधान सत्य के विरुद्ध था या कम से कम अर्धसत्य था। 'मुसलमानों की भाषा' उर्दू, उनकी संस्कृति, कला और स्थापत्य सब समन्वय के परिणाम हैं। पूर्वी बंगाल के मुसलमान केवल बंगला भाषा समझते और बोलते हैं और दक्षिण के मुसलमान केवल तमिल, तेलगू और मलयालम बोलते-समझते हैं। बिहार के गांवों में पोशाक के आधार पर किसी हिन्दू स्त्री से मुस्लिम स्त्री का भेद करना असंभव है। उनके कुछ रीति-रिवाजों पर भी इसी प्रक्रिया की छाप है। ऐसे मुसलमानों के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनके हिन्दू नाम हैं और अनेक लोगों ने हिन्दू धर्म से इस्लाम में आने के बाद भी पंडित, राय, चौधरी, मजूमदार आदि कुलनाम वैसे ही रख छोड़े हैं।

गांधीजी ने विरोध किया कि "केवल जोर देकर किसी बात का कहा जाना कोई प्रमाण नहीं है।" [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, २२ सितम्बर १९४४]



जिन्नाने गांधीजीसे दो पुस्तकें पढ़नेकी सिफारिश की। उनमें से एक किसी मुस्लिम लीगी सिद्धान्तवादीकी लिखी हुई थी। गांधीजीने कष्ट उठा कर और अन्तःकरणपूर्वक दोनों पुस्तकोंका अध्ययन किया। परन्तु इससे उन्हें कोई मदद नहीं मिली। “उसमें अर्धसत्य भरे हैं और उसके निर्णय अथवा अनुमान निराधार हैं।” [वही]

गांधीजीने जिन्नासे पूछा, लाहौरके उस प्रस्तावके अन्तर्गत आनेवाले प्रदेशोंके लोगोंको विभाजनके बारेमें कुछ कहनेका अधिकार होगा या नहीं ? और यदि होगा तो उनका मत कैसे मालूम किया जायगा? [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १५ सितम्बर १९४४]

जिन्ना : “आत्म-निर्णयके जिस अधिकारका हम दावा करते हैं, उसमें यह वस्तु स्वीकार करके चला गया है कि हम एक राष्ट्र हैं और इसलिए वह मुसलमानोंका आत्म-निर्णय होगा और केवल उन्हींको वह अधिकार भोगनेका अधिकार है।” [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, २१ सितम्बर १९४४]

जिन मुसलमानोंने मुस्लिम लीगकी नीतिसे असहमति प्रगट की है, उनका क्या होगा? क्या उनकी शंकाएं दूर नहीं की जानी चाहिये? या उन्हें वस्तुतः मताधिकारसे वंचित कर दिया जाय ? [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १५ सितम्बर १९४४]

“मुस्लिम लीग ही भारतके मुसलमानोंकी एकमात्र अधिकारपूर्ण और प्रतिनिधि संस्था है।” [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, १७ सितम्बर १९४४]

इतना काफी था। गांधीजीने जिन्नासे यह विचार करनेके लिए अनुनय-विनय किया कि देशके टुकड़े हो जानेसे उनकी कल्पनाके ‘स्वाधीन राज्यों’ को कौनसा भौतिक या अन्य लाभ होगा और क्या वे स्वाधीन राज्य एक-दूसरेके लिए और शेष भारतके लिए भी खतरा नहीं बन जायेंगे ? [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १५ सितम्बर १९४४] जिन्नाका दो टूक उत्तर यह था कि भारतीय समस्याका यही एकमात्र हल है और भारतको अपनी स्वाधीनताका यह मूल्य चुकाना ही होगा। [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, १७ सितम्बर १९४४]



आज तक पाकिस्तानको परदेमें बहुत अच्छी तरह ढंक कर रखा गया था। अब पहली बार जब उसकी रूपरेखा प्रकट हुई, तो वह पाकिस्तानका बहुत आकर्षक रूप नहीं लगा ! गांधीजीने वार्ताओंके पहले सप्ताहके अन्तमें १५ सितम्बरको जिन्नाको लिखा: “ज्यों ज्यों हमारी बातचीत आगे बढ़ती जाती है त्यों त्यों आपका चित्र मुझे चौंकानेवाला दिखाई देता है। जब मैं लीगके (लाहौर) प्रस्तावके अमलकी कल्पना करता हूं, तब मुझे सारे भारतके लिए बरबादीके सिवा कुछ दिखाई नहीं देता।”

आगेकी चर्चा जिन्नाकी ओरसे कड़वी होती गई। यद्यपि मैं किसीका भी प्रतिनिधि नहीं हूं, तो भी मेरी आकांक्षा “भारतके सारे निवासियोंका प्रतिनिधि बननेकी है”, क्योंकि “जात-पात, वर्ग या धर्मके किसी भेदके बिना वे सब समान रूपसे जो मुसीबत और अवनति भोग रहे हैं” [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १५ सितम्बर १९४४] उनका मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूं - गांधीजीके इस कथनका भी जिन्नाने विरोध किया।

कायदे आजमके लिए यह बहुत कठिन बात थी। वे इतना माननेको तो तैयार हो गये कि गांधीजी “एक महापुरुष” हैं और हिन्दुओं पर, “विशेषकर हिन्दू जनता पर”, उनका जबरदस्त प्रभाव है, फिर भी वे गांधीजीका यह कथन स्वीकार नहीं कर सके कि वे भारतके सब निवासियोंके प्रतिनिधि होनेकी आकांक्षा रखते हैं। “यह बिलकुल स्पष्ट बात है कि आप हिन्दुओंके सिवा अन्य किसीके भी प्रतिनिधि नहीं हैं और जब तक आप अपनी सही स्थितिको समझ नहीं लेते . . . तब तक आपके साथ चर्चा करना मेरे लिए बहुत कठिन है।” [जिन्नाका, पत्र गांधीजीको, १७ सितम्बर १९४४]

गांधीजी ने पूछा : “आप यह क्यों नहीं मान सकते कि मैं भारतके सभी वर्गोंका प्रतिनिधि होनेकी आकांक्षा रखता हूं? क्या आप ऐसी आकांक्षा नहीं रखते ? क्या प्रत्येक भारतीयको यह आकांक्षा नहीं रखनी चाहिये? यह अलग बात है कि वह आकांक्षा कभी पूरी न हो।” [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १९ सितम्बर १९४४]

जिन्नाने आग्रह किया कि गांधीजीको वे “आधारभूत और मूलभूत सिद्धान्त” मान लेने चाहिये, जिनका लाहौर-प्रस्तावमें निर्देश किया गया है। गांधीजीने उनसे कहा: क्या ऐसा करना अनावश्यक नहीं है, क्योंकि इस प्रकारकी स्वीकृतिमें से फलित होनेवाले ‘ठोस परिणाम’ को तो - जिस हद तक वह उचित



और व्यावहारिक है - मैंने स्वीकार किया ही है? “आप जिस तरह स्वीकार कराना चाहते हैं उस तरह मैं लाहौर-प्रस्तावको स्वीकार नहीं कर सकता - विशेषतः जब आप उसका अर्थ लगानेमें ऐसे सिद्धान्त और दावे दाखिल कर देना चाहते हैं, जिन्हें मैं स्वीकार नहीं कर सकता और जिन्हें स्वीकार करनेके लिए भारतको समझानेकी मैं कभी आशा नहीं रख सकता।” [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, २४ सितम्बर और २६ सितम्बर १९४४]

अंतमें गांधीजीने जिन्नासे पूछा, “क्या हम ‘दो राष्ट्रों’ के प्रश्न पर हमारे मतभेदको स्वीकार करके भी समस्याको आत्म-निर्णयके आधार पर हल नहीं कर सकते ?” [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, १९ सितम्बर १९४४]

गांधीजीके इस प्रस्तावका आधार यह था कि भारतको दो या दोसे अधिक राष्ट्रोंका घर न मानकर कई सदस्योंका एक परिवार माना जाय, जिनमें से एक सदस्य - अर्थात् नितान्त बहुमतवाले प्रदेशोंमें रहनेवाले मुसलमान - शेष भारतसे अलग होकर रहना चाहता है। “यदि मुस्लिम बहुमतवाले प्रदेशोंको लाहौर-प्रस्तावके अनुसार अलग करना हो, तो अलग होनेका यह गंभीर कदम उन प्रदेशोंके लोगोंके सामने निश्चित रूपमें रखकर उस पर उनकी स्वीकृति लेनी चाहिये।” [वही] मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्तावित ‘दो राष्ट्रों’ के सिद्धान्तके सामान्य आधारसे असहमत होते हुए भी गांधीजीने कहा कि मैं कांग्रेससे और देशसे यह सिफारिश कर सकता हूं कि उन भागोंके अलग होनेका दावा स्वीकार कर लिया जाय। यदि उन भागोंकी सारी वयस्क जनताका बहुमत अलग होनेके पक्षमें राय दे, तो ज्यों ही भारत स्वतंत्र हो जायगा उन प्रदेशोंका एक अलग राज्य बना दिया जायगा।

इसे गांधीजीने “दो भाइयोंके बीचका बंटवारा” कहा। एक ही परिवारके बालक धर्म-परिवर्तनके कारण एक-दूसरेसे असंतुष्ट होकर चाहें तो अलग हो सकते हैं। परन्तु उस स्थितिमें अलग होनेकी क्रिया भीतर ही भीतर होगी, सारी दुनियाके सामने नहीं होगी। “जब दो भाई अलग होते हैं तो दुनियाकी दृष्टिमें वे एक-दूसरेके दुश्मन नहीं बन जाते। अलग होने पर भी संसार उन्हें भाई भाई ही मानेगा।” [गांधीजीका पत्रकार-सम्मेलन, १८ सितम्बर १९४४]



इसलिए गांधीजीका प्रस्ताव यह था कि दोनों भाग अलग अलग रहना स्वीकार कर लें, तो भी अलग होनेकी संधिमें सामान्य हितोंके विषयोंके - जैसे प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, भीतरी संचार-व्यवस्था, चुंगी, व्यापार आदिके कार्यक्षम और संतोषप्रद प्रशासनकी व्यवस्था तथा दोनों राज्योंमें अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी रक्षा-सम्बन्धी शर्तोंकी व्यवस्था होनी चाहिये। ज्यों ही कांग्रेस और लीग इस समझौतेको स्वीकार कर लें, त्यों ही स्वाधीनताकी प्राप्तिके लिए दोनों संयुक्त कार्यक्रम निश्चित करें। किन्तु लीग ऐसी किसी भी सीधी कार्रवाईसे—जो कांग्रेस करे और जिसमें लीग शरीक होनेको तैयार न हो - अलग रह सकती है। [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, २४ सितम्बर १९४४]

परन्तु जिन्ना ऐसे लोकमतके आधार पर विभाजन नहीं चाहते थे, जिसमें विभाजनसे संबंधित सभी निवासी भाग ले सकें; वे केवल मुसलमानों तक सीमित 'आत्म-निर्णय' के आधार पर ही इस प्रश्नका निबटारा चाहते थे। "हम तो एक राष्ट्रके रूपमें आत्म-निर्णयके अधिकारका दावा करते हैं। . . . आपको यह गलत खयाल हो गया है कि 'आत्म-निर्णय' का अर्थ सिर्फ किसी 'क्षेत्रीय घटक' के लिए ही आत्म-निर्णय है। . . . हमारा मामला तो विभाजनका और हिन्दू तथा मुसलमानोंके दो बड़े राष्ट्रोंके बीच हुए समझौतेके ही आधार पर दो स्वाधीन सार्वभौम राज्योंके निर्माणका है, **किसी वर्तमान संघ (यूनियन)** से अलग होने या कटकर निकलनेका नहीं है—क्योंकि ऐसा कोई संघ भारतमें विद्यमान नहीं है।" [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, २१ सितम्बर १९४४]

गांधीजीने जिन्नाको १५ सितम्बरको लिखा, "मुझे इतिहासमें ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें धर्म बदलनेवालों और उनकी संतानोंके किसी समूहने मूल वंशसे अलग होकर एक राष्ट्र होनेका दावा किया हो। यदि इस्लामके भारतमें आनेसे पहले भारत एक राष्ट्र था, तो उसकी संतानोंके एक बहुत बड़े जन-समुदायके धर्म बदल लेने पर भी वह एक ही राष्ट्र रहना चाहिये। . . . आप राष्ट्रत्वकी एक नई कसौटी आरंभ करते लगते हैं। यदि मैं इसे स्वीकार कर लूं, तो मुझे दूसरे भी बहुतसे दावे स्वीकार करने होंगे और कभी न हल होनेवाली समस्याका सामना करना पड़ेगा।"

गांधीजीके इस प्रश्नके उत्तरमें कि लाहौर-प्रस्तावके अनुसार प्रतिरक्षा और 'समान हित' के दूसरे ऐसे मामलोंके लिए उन्होंने क्या व्यवस्था सोची है, जिन्नाने उत्तर दिया: "जब यह मान लिया जाता है कि



पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दो अलग अलग स्वाधीन सार्वभौम राज्य होंगे, तब प्रतिरक्षा और 'समान हित' के ऐसे दूसरे मामले नहीं हो सकते।" दोनों राष्ट्रों के बीच किसी संधि द्वारा ऐसी कोई व्यवस्था हो तो अलग बात है। [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, २१ सितम्बर १९४४]

गांधीजी इस बात के लिए तैयार थे कि राजाजीकी योजना के अनुसार अस्थायी अन्तरिम सरकार में मिलकर काम करने के अनुभव के बाद भी अथवा उनकी योजना के अनुसार स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए किसी समान कार्यप्रणाली का अनुसरण करने के अनुभव के बाद भी मुसलमान चाहें तो उनके बहुमत वाले प्रदेशों को अलग होने दिया जाय। शर्त इतनी ही थी कि दोनों भागों को एक अखंड घटक समझकर प्रतिरक्षा और दूसरे 'समान हित' के मामलों के सन्तोषजनक प्रबन्ध के लिए एक संधि कर ली जाय। परन्तु जिन्ना चाहते थे कि देश का विभाजन पहले हो और भारत के 'समान हित' की रक्षा के लिए सन्धि बाद में हो - जिसकी शर्तें ऐसी रहें जिन पर दोनों भाग सहमत हों या सहमत हो सकें। इसे कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद ने 'विवाह से पहले विच्छेद' कहा था !

यदि किसी एक पक्ष ने संधि भंग कर दी, यदि 'सम्मिलित' हित जैसी कोई बात बाकी न रही तो क्या होगा ? जिन्ना का उत्तर मिला कि "इसका परिणाम वही होगा जो अब तक सारी दुनिया में होता आया है, अर्थात् युद्ध।" [गांधीजीका पत्र सर तेजबहादुर सप्रूको, २५ फरवरी १९४५] दूसरे शब्दों में, जिन्ना पाकिस्तानी प्रदेशों के लिए ऐसी आजादी स्वीकार करा लेना चाहते थे, जिससे वे भारत के प्रति शत्रुता रखने वाले राज्यों के साथ जुड़ सकें या उसके विरुद्ध युद्ध भी छेड़ सकें। गांधीजी ने कहा कि यह आजादी समझौते के द्वारा नहीं मिल सकती।

बाद में जिन्ना से हुई बातचीत को समझाते हुए गांधीजी ने सर तेजबहादुर सप्रूको लिखा: किसी परिवार के सदस्य झगड़े की बातों में परिवार से अपना सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं—बस इस एक आधार पर मैंने विभाजन की बात स्वीकार की थी; **"परन्तु मानो शत्रुता के सिवा अन्य कोई भी वस्तु दोनों के बीच सर्व-सामान्य न हो इस प्रकार,** दोनों पक्ष एक-दूसरे के शत्रु बन जाय इस प्रकार, सारे मामलों में विभाजन करने की बात मैंने स्वीकार नहीं की थी।" [वही] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)



२२ सितम्बरको गांधीजीने जिन्नाको लिखा, “हम तो घानीके बैलकी तरह एक चक्करमें घूमते दिखाई देते हैं।”

दूसरे दिन, २३ सितम्बरको वार्ताओंमें नाजुक स्थिति आ गई। जब गांधीजी मुलाकातके लिए जिन्नाके मकान पर जा रहे थे उस समय श्रीमती एमिली किन्नेड कुछ दूर तक उनके प्रयत्नोंको आशीर्वाद देनेके लिए उनके साथ गईं। वे “ईसाई धर्मकी बड़ी उत्साही उपदेशिका” थीं और गांधीजीकी ‘माता’ बन गई थीं। उनकी एकमात्र चिन्ता यह थी कि उनका ‘पुत्र’ ईसा मसीहको ‘ईश्वरका एकमात्र पुत्र’ मान ले। (श्रीमती एमिली: “वे अर्थात् ईसा मसीह ईश्वरके पुत्र थे।” गांधीजी : “और हम सब भी उसके पुत्र हैं।” श्रीमती एमिली: “नहीं, वे ही एकमात्र ईश्वर-पुत्र थे और उन्हें अपने हृदयोंमें स्थापित किये बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता।”)

जिन्नाके नाम लिखे एक पत्रमें उस दिन गांधीजीने लिखा: “कल शामकी बातचीतसे मेरे मन पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा है।” और फिर २६ सितम्बरको यह लिखा: “आप यह कहते रहते हैं कि मुझे ऐसी कुछ बातें स्वीकार कर लेनी चाहिये, जिन्हें आप लाहौर-प्रस्तावका आधार और बुनियादी सिद्धान्त बताते हैं। परन्तु मेरा कहना यह रहा है कि हमारे लिए, जो समस्याके प्रति भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं, उत्तम उपाय यह है कि लाहौर-प्रस्तावमें जो मांग की गई है उसकी स्पष्ट रूपरेखा तैयार कर ली जाय और हम दोनोंको सन्तोष हो इस प्रकार उसमें संशोधन अथवा परिवर्धन कर लिये जाय।”

परन्तु जिन्नाने गांधीजीके प्रस्ताव पर चर्चा करनेसे भी इनकार कर दिया। “आप बार बार कहते हैं कि यदि हम दोनों मिलकर कोई सामान्य कार्य-प्रणाली निश्चित कर लें, तो उसे कांग्रेससे और देशसे मनवानेके लिए आपका जो भी प्रभाव है उसका आप उपयोग कर सकते हैं। मैं शुरूसे ही कह चुका हूं कि यह काफी नहीं है।” [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, २६ सितम्बर १९४४]

उन्होंने गांधीजीका “स्वागत करना और उनसे मिलना” इसलिए स्वीकार किया था कि गांधीजीने कहा था कि वे प्रकाश और ज्ञानकी खोजमें आये हैं और “यदि मैं (जिन्ना) आपके विचार बदल सकूं तो आपका हिन्दू भारत पर जबरदस्त प्रभाव होनेके कारण मुझे अपने कार्यमें उससे बड़ी सहायता मिलेगी।” [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, १७ सितम्बर १९४४] परन्तु वे ऐसे पुरुषके साथ, जो पूरी सत्ताके



साथ आया हुआ प्रतिनिधि नहीं था, समझौतेके लिए उसके प्रस्तावों पर चर्चा करनेके लिए तैयार नहीं थे।” (जब तक) . . . हम लाहौर-प्रस्ताव तक सीमित रहे तब तक आपके प्रतिनिधित्वका प्रश्न पैदा नहीं हुआ। . . . अब आपने अपन ही आधार पर स्वयं अपना एक नया प्रस्ताव सामने रखा है . . . इसलिए जब तक वह आपकी ओरसे प्रतिनिधिके रूपमें नहीं आता, तब तक उसकी चर्चा करना कठिन है।” [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, २५ सितम्बर १९४४]

गांधीजीने उत्तर दिया, “मेरे पास प्रतिनिधिकी सत्ताके न होनेकी बातका आप हमेशा उल्लेख करते हैं। यह सचमुच अप्रस्तुत है। यदि आप बातचीत तोड़ेंगे तो यह नहीं कहा जा सकता कि मेरे पास प्रतिनिधिके रूपमें कोई सत्ता नहीं है या लाहौर-प्रस्तावमें जो दावा किया गया है उसके बारेमें मैं आपको सन्तोष दिलानेमें आनाकानी करता रहा हूं।” [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, २६ सितम्बर १९४४]

जब इस तरह दोनोंकी बातचीतके टूटनेकी नौबत आ पहुंची, तो गांधीजीने सुझाया कि उन्हें अपने प्रस्तावोंका औचित्य समझानेके लिए मुस्लिम लीग कौन्सिलसे मिलने दिया जाय । “मेरी प्रार्थना है कि प्रस्तावको अस्वीकार करनेकी जिम्मेदारी आप न लीजिये। इसे अपनी कौन्सिल पर डाल दीजिये। मुझे अपनी बात उसके सामने रखनेका मौका आप दीजिये। यदि उसे मेरी बात अस्वीकार करने जैसी लगे, तो मैं चाहूंगा कि आप कौन्सिलको मेरी बात लीगके खुले अधिवेशनमें रखनेकी सलाह दें। यदि आप मेरी सलाह मान लें और मुझे इजाजत दें, तो मैं लीगके खुले अधिवेशनमें उपस्थित रहूंगा और अपनी बात उसे समझाऊंगा।” [गांधीजीका पत्र जिन्नाको, २५ सितम्बर १९४४]

एक विकल्पके रूपमें गांधीजीने सुझाया कि यह प्रश्न पंचके सुपुर्द कर दिया जाय। उन्होंने पूछा, “बाहरी सहायता, मार्गदर्शन, सलाह या पंच-फैसलेसे भी एक-दूसरेको अपनी बात समझानेके लिए अतिरिक्त प्रयत्न करना क्या अप्रस्तुत या अनुचित है?” यदि हम समझौता करनेके लिए कटिबद्ध हों, तो इन सारे उपायोंका लाभ उठाया जा सकता है।



परन्तु जिन्नाको इनमें से एक भी सुझाव मंजूर नहीं था। “यह एक अत्यन्त असाधारण और अभूतपूर्व सुझाव है। लीगकी कौन्सिलकी बैठकमें या उसके खुले अधिवेशनकी चर्चाओंमें भाग लेनेका अधिकार उसके सदस्य या प्रतिनिधिको ही होता है।” [जिन्नाका पत्र गांधीजीको, २६ सितम्बर १९४४]

किसी सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न संसदके लिए दूसरे मित्रदेशके नेताओं और राजनीतिज्ञोंको अपने सदस्योंके समक्ष भाषण देनेको निमंत्रित करना न तो ‘असाधारण’ माना जाता और न ‘अभूतपूर्व’ ही। यदि जिन्नाका उद्देश्य हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच समझौतेके मार्ग ढूंढना था, तो उन्हें गांधीजी और मुस्लिम लीग कौन्सिलके बीच कोई संपर्क स्थापित होने देनेमें इतनी चिन्ता क्यों थी ? क्या इसीलिए कि उन्हें यह डर था कि जहां वे समझनेको तैयार नहीं थे, वहां कौन्सिलके सदस्य शायद समझ जाते ? या जिन्नाका यह खयाल था कि उनके अनुयायियोंकी महात्माजीके ‘दुष्प्रभाव’ से जितनी भी रक्षा की जाय उतना ही उनके लिए अपने अनुयायियोंको आज्ञाकारी बनाये रखना आसान होगा ? अजीब बात तो यह है कि जब एक बार समझौतेकी वार्ताओंके दौरान मैंने जिन्नाके निजी स्टाफके सदस्योंको गांधीजीकी मंडलीके साथ चाय पीने और मैत्रीपूर्ण बातचीत करनेके लिए निमंत्रण दिया, तो जिन्नाके सचिवसे मुझे यह उत्तर मिला : “आपको . . . दुःखके साथ मुझे यह कहना पड़ता है कि . . . जब तक वार्ताएं समाप्त न हो जायं, हमारे लिए आपका प्रेमपूर्ण निमंत्रण स्वीकार करना संभव नहीं होगा।”

२४ सितम्बर, १९४४ की मेरी डायरीसे लिया गया नीचेका उद्धरण अन्तमें वार्ताएं भंग हो जानेकी कहानी बताता है:

“शामको ७-१० पर लौटकर बापूने राजाजीसे बातें कीं और फिर प्रार्थनाके बाद कीं। जिन्नाने बापूके प्रस्ताव पर चर्चा करनेसे भी इनकार कर दिया था, क्योंकि उनके (बापूके) पास कोई सत्ता नहीं थी; वे किसीके प्रतिनिधि नहीं थे। ‘यदि आप चाहते हैं कि प्रतिरक्षा और अन्य अनेक बातें सम्मिलित रहें, तो इसका यह अर्थ है कि आपकी कल्पनामें एक केन्द्रीय सत्ता है?’ ‘नहीं, परन्तु मुझे कहना चाहिये कि व्यवहारमें इन बातोंका नियमन करनेके लिए दोनों पक्षोंकी चुनी हुई कोई संस्था (बॉडी) रखनी होगी।’



“फिर जिन्ना अगस्त (१९४२) के प्रस्ताव पर आये । उन्होंने कहा कि वह प्रस्ताव मुसलमानोंके लिए शत्रुतापूर्ण है। 'लेकिन आप देखते नहीं कि यह निराधार आक्षेप है ? आपमें कानूनकी सूक्ष्म बुद्धि बताई जाती है। उसके होते हुए आप यह क्यों नहीं समझ सकते कि इस प्रस्तावका सम्बन्ध केवल भारत और ब्रिटिश शासनसे है? मुसलमानोंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। आप इस मामले पर किसी कुशल वकीलकी अप्रत्यक्ष ढंगसे राय ले लीजिये कि इसमें कोई बात ऐसी है या नहीं, जिसे मुस्लिम लीग या मुसलमानोंके लिए शत्रुतापूर्ण समझा जा सके।’

“जिन्नाने कहा, ‘मुझे ऐसा करनेकी जरूरत नहीं । जब मैं स्वयं जानता हूं तो दुसरेकी राय क्यों लूं?’ ‘फिर मैंने उन्हें यह बताया कि मैंने २ अक्टूबरको सेवाग्राममें रहनेका निश्चित किया है। मैं ३० तारीखको रवाना होकर चार-पांच दिनमें लौट आऊंगा।’ उन्होंने कहा, ‘हम इतनी देर क्यों करें ? हम अभी ही इसे बन्द कर दें, तो ज्यादा अच्छा होगा। मैं सब-कुछ (अभिप्राय दोनोंके पत्र-व्यवहारसे था) मंगलवार तक तैयार कर लूंगा। आप प्रतिलिपियां देख लीजिये । मैं भी देख लूंगा।’ उन्होंने भूमिका तो तैयार कर ही रखी थी और मुझे वह पढ़ कर भी सुना दी। मैंने कहा, ‘मुझे उसके विरुद्ध तो कुछ नहीं कहना है, परन्तु मुझे प्रतिलिपि मिल जाती तो मैं जांच लेता। उन्होंने कहा कि मंगलवारको देख लीजिये। मैंने कहा, बहुत अच्छा। उन्हें तीसरे पक्षकी जरूरत मालूम नहीं होती थी और अपनी योजना भी वे प्रस्तुत करना नहीं चाहते थे। उन्होंने अगस्तके प्रस्तावकी निन्दा की। उन्होंने तो स्पष्ट कहा कि अगस्तका वह प्रस्ताव आपको वापिस ले लेना चाहिये।’ ”

वार्ताओंके असफल होनेके समाचार सुनाते हुए गांधीजीने २७ सितम्बरकी विशाल प्रार्थना-सभामें कहा, “यद्यपि जिस परिणामकी मैंने आशा रखी थी वह तो नहीं आया, फिर भी मुझे कोई निराशा या हताशा नहीं है। मुझे पूरा विश्वास है कि बातचीतकी असफलतामें से भी कोई अच्छा फल निकलेगा । मैंने सबकी भलाईके लिए जिन्ना साहबके दृष्टिकोणके अनुकूल बननेकी पूरी कोशिश की। मैंने कायदे आजमका द्वार खटखटाया, लेकिन मुझे सफलता नहीं मिली । परन्तु सत्य और अहिंसाके पुजारीके प्रयत्नोंका कभी वांछित परिणाम न निकले, तो उसे निराश नहीं होना चाहिये। हम ईश्वरकी योजनाके बारेमें शंका नहीं कर सकते। ईश्वर ही जानता है कि हमारे लिए उत्तम क्या है।”



दूसरे दिन गांधीजीने एक अखबारी वक्तव्यमें कहा, “सभी पार्टियोंको और खास तौर पर मुस्लिम लीगके सदस्योंको कायदे आजमसे कहना चाहिये कि वे अपनी राय बदलें। यदि राजाजीने और मैंने लाहौरके प्रस्तावको व्यर्थ बना दिया हो, तो यह वस्तु हमें समझानी चाहिये।”

गांधीजीने ‘न्यूज़ क्रॉनिकल’ के प्रतिनिधि श्री गेल्डरसे एक मुलाकातमें कहा, “मेरा विश्वास है कि मि. जिन्ना सच्चे हैं, परन्तु मेरे खयालसे उन्हें यह भ्रम हो गया है कि भारतके अस्वाभाविक विभाजनसे सम्बन्धित लोगोंको सुख या समृद्धि प्राप्त हो सकती है।”

गांधीजीने पत्रकारोंके एक अन्य दलको समझाया कि उनकी बातचीत अनिश्चित कालके लिए स्थगित ही हुई है। “मेरा विस्वास है जिन्ना साहब सज्जन पुरुष हैं। मुझे आशा है कि हम दोनों फिर मिलेंगे। . . . इस बीच जनताका कर्तव्य है कि वह स्थितिको अच्छी तरह समझे और अपनी रायका दबाव हम दोनों पर डाले।”

४

कुछ आलोचकोंने यह प्रश्न उठाया: “गांधीजी राजाजीकी योजनाका समर्थन कैसे कर सके और पाकिस्तानके सिद्धान्तको मान लेनेका साहस उन्होंने कैसे किया ? क्या उन्होंने विभाजनके प्रस्तावको असत्य और भारतके अंग-भंगको पाप नहीं बताया था?” गांधीजीने उन्हें समझाया, “मैंने जो चीज स्वीकार की है वह उस आत्म-निर्णयके सिद्धान्तसे भिन्न नहीं है, जो कांग्रेस कार्यसमिति स्वीकार कर चुकी है। [२ अप्रैल १९४२ के कांग्रेस कार्यसमितिके प्रस्तावका प्रस्तुत अंश यह है: “समिति इस दृष्टिसे नहीं सोच सकती कि किसी प्रादेशिक घटकके लोगोंको उनकी घोषित और स्थापित इच्छाके विरुद्ध भारतीय संघमें रहनेको बाध्य किया जाय | इस सिद्धान्तको स्वीकार करते हुए भी समिति यह मानती है कि ऐसी परिस्थिति पैदा करनेका पूरा प्रयत्न किया जाय, जिससे एक सामान्य और सहयोगी राष्ट्रीय जीवनका विकास करनेमें विभिन्न घटकोंको सहायता मिले।”] उसमें यह अर्थ निहित है कि जो प्रदेश अलग होना चाहें उनके निवासियोंकी इच्छा उचित ढंगसे लिये गये लोकमत द्वारा जानकर उन्हें इस प्रकार अलग होनेका अधिकार दिया जाय, जिससे संपूर्ण देशकी सुरक्षा, एकता और आर्थिक प्रगतिकी



रक्षा हो सके। जो चीज मेरे प्रस्तावमें और राजाजीकी योजनामें नहीं मानी गई है, वह है परस्पर शत्रुताके कार्य करनेमें लगे रहनकी स्वतंत्रता। इसीको मैंने पाप बताया है।”

दोनों भागोंके समान हितके विषयोंके प्रबंधके लिए विशेष तंत्र - जिसे गांधीजीने स्वयंसिद्ध मान लिया था - संविधानका अंग न होकर दोनों राज्योंके बीचकी संधिके द्वारा खड़ा किया जायगा और विभाजनके अधिकार-पत्रमें उसका उल्लेख होगा, ऐसा गांधीजीका कहना था। गांधीजीका प्रस्ताव भारतके टुकड़े करनेकी सम्मति देनेवाला नहीं था; वह तो ऐच्छिक और स्थायी एकताका सम्बन्ध निर्माण करनेका एक साहसपूर्ण प्रयोग था। गांधी-जिन्ना वार्ताओंके बीच लेबलों, नारों और सूत्रोंके परे जाकर बाहरसे परस्पर-विरोधी दिखाई देनेवाली बातोंके द्वारा सोचा हुआ परिणाम लानेकी गांधीजीकी विशेषता अपने उत्तम रूपमें प्रकट होती थी। उन वार्ताओंने गीता और उपनिषदोंमें बद्धमूल हुई परस्पर-विरोधी वस्तुओंके बीच समन्वय साधनेकी पद्धतिका उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया। यह पद्धति सत्याग्रहका प्रयोग करते समय विरोधी दृष्टियोंका समन्वय करके समझौते पर आनेमें सत्याग्रहीकी बहुत सहायता करती है।

गांधीजीके प्रस्तावके अनुसार देशका विभाजन हो जानेके बाद पाकिस्तान यदि संधिका पालन करनेसे इनकार कर दे, तो क्या होगा ? गांधीजीने स्वीकार किया कि बदनीयतीके खिलाफ कोई गारंटी नहीं होती; हो भी नहीं सकती। परन्तु उस स्थितिमें दोषी पक्ष संसारके कानूनकी दृष्टिसे अपनी प्रतिष्ठा खो बैठेगा। इसलिए बदनीयतीका खतरा तो उठाना ही होगा। पूर्ण स्वाधीनताके अस्तित्वके साथ यह खतरा लगा ही हुआ है। स्वाधीनताका भवन डरकी बुनियाद पर खड़ा नहीं किया जा सकता।

गांधीजीने कहा, राजाजीकी योजनामें मुस्लिम लीगकी मांगको, जहां तक वह उचित है, सार रूपमें मान लिया गया है। यदि उसे ‘पाकिस्तान’ का नाम दिया जाय, तो मुझे उसकी परवाह नहीं। परन्तु जिन्नाने उसे पाकिस्तानका मजाक अथवा उसका निषेध बताया और मार्च १९४० के मुस्लिम लीगके लाहौरवाले प्रस्तावको खतम करनेकी योजना कह दिया; इसलिए मैंने जिन्नाकी इस आपत्तिके आधारको समझ लेना जरूरी समझा। यदि लीगकी मांग - जिसे वह ‘पाकिस्तान’ कहती है - संपूर्ण-प्रभुता-संपन्न पाकिस्तान नहीं है तो और क्या है? उसमें केवल परस्पर युद्ध करनेकी छूटका अथवा अखंड देश माने



जानेवाले दो भागोंको हानि पहुंचायें ऐसे कदमोंसे बचनेका ही अपवाद रहेगा। यदि लीगका उद्देश्य एक ऐसा घटक रुचना ही हो, जिसमें मुस्लिम धर्म और मुस्लिम संस्कृतिके विकासके लिए तथा मुसलमान जातिके नेताओंकी प्रतिभा और व्यक्तित्वकी अभिव्यक्तिके लिए पूरा अवकाश हो और संयुक्त भारतकी अधिक प्रखर प्रतिभाके नीचे दबकर पूर्ण विकास न कर पानेका भय न रहे, तो राजाजीकी योजना पूरी तरह सन्तोष दे सकती है। इसके विपरीत, यदि 'पाकिस्तान' का उपयोग भारतके विरुद्ध सुडेटन लैण्ड जेसी चालें चलनेके - भारतके विरुद्ध भारतमें ही विरोधी दल खड़ा करनेके - केन्द्रके रूपमें करनेकी योजना हो, तो राजाजीकी योजना यह काम करनेवाली नहीं है।

गांधीजीके मनमें जिन्नाकी अनन्य ध्येयनिष्ठा, उनकी महान योग्यता और अविचल प्रामाणिकताके लिए बहुत आदर था। अवश्य ही जिन्ना देशभक्त थे। वे भाई-भाईकी लड़ाई लड़ने या समग्र दृष्टिसे देखते हुए दोनों भागोंको कमजोर करनेवाली आर्थिक या प्रतिरक्षा-सम्बन्धी कार्रवाइयां करनेकी स्वतंत्रताका आग्रह नहीं रखेंगे, ऐसा मानकर ही गांधीजीने जिन्नाका द्वार खटखटाया, उनके सामने अपनी सारी बातें खोलकर रख दीं और उनसे प्रार्थना की कि वे भी अपने मनमें कोई बात गुप्त न रखकर सब कुछ स्पष्ट बता दें।

परन्तु गांधीजीको तो भरी बंदूकका सामना करना था। प्रसिद्ध कानून-शास्त्री और महाराष्ट्रके उदारपंथी नेता डॉ. एम. आर. जयकरने गांधीजीको लिखा : “मि. जिन्ना अपने ही देशवासियोंके बजाय हमेशा अंग्रेजोंसे समझौता करना ज्यादा पसन्द करेंगे, यह उनके पत्र-व्यवहारसे स्पष्ट लगता है। . . . वे आपके प्रस्तावका ब्रिटिश सरकारसे सौदा करनेमें उपयोग करेंगे और उसीके आधार पर भारतीय नेताओंके साथ भविष्यमें संधिवार्ता चलायेंगे।” [डॉ. जयकरका पत्र गांधीजीको, २९ सितम्बर १९४४]



पांचवां अध्याय

बदलता हुआ दृश्य

१

भारतमें और भारतके बाहर भी लाखों लोगोंने यह आशा लगा रखी थी कि गांधी-जिन्ना-वार्तासे हिन्दु-मुसलमानोंके सम्बन्धमें एक नया अध्याय आरंभ होगा । परन्तु दोनोंकी वार्ताएं असफल रहीं; क्योंकि - जैसा गांधीजीने कहा था - “गुलामीमें बंधा हुआ मस्तिष्क स्वतंत्र मस्तिष्ककी तरह काम नहीं कर सकता ।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, २८ सितम्बर १९४४] तीन सप्ताहकी संधिवार्ताओंके अनुभवसे गांधीजीका यह विचार और भी पक्का हो गया था कि तीसरे दलकी अर्थात् अंग्रेजोंकी उपस्थितिसे साम्प्रदायिक समस्याके हलमें बाधा पड़ती है। जब मुस्लिम लीगके सहयोगसे राष्ट्रीय सरकारकी मांग प्रस्तुत करनेकी आशा विलीन हो गई, तो गांधीजीके मनमें यह प्रश्न पुनः रह रहकर उठने लगा: “आगे क्या?”

बंगालके अकालमें लाखों आदमी भूखसे तड़प तड़प कर मर गये । अनाजकी कमी इसका इतना बड़ा कारण नहीं थी; इसका बड़ा कारण था राज्यतंत्रमें तथा उसके बाहर भयंकर रूपमें फैला हुआ वह भ्रष्टाचार और निर्दयता, जिस पर विश्वास होना कठिन है। दलालों, छोटे व्यापारियों और बड़े व्यवसायियोंको मानव-प्राणोंकी बलि चढ़ा कर धन कमानेमें जरा भी संकोच नहीं हुआ। साथ साथ सरकारी और गैर-सरकारी शोषण भी चलता रहा। सच तो यह है कि सरकारी अधिकारियोंके शोषणके बिना गैर-सरकारी लोगोंका शोषण संभव ही न होता। [बंगालके 'प्रशासनिक सुधार' के लिए रॉलैन्ड्स कमिटीकी रिपोर्टमें यह टिप्पणी की गई थी: “भ्रष्टाचार इतना व्यापक हो गया है और उसके प्रति इतना निराशापूर्ण रुख दिखाया जाता है कि हमारे मतसे इस बुराईको मिटानेके लिए अत्यन्त कठोर और उग्र उपाय किये जाने चाहिये; क्योंकि इसने सरकारी नौकरों और जनताके सदाचारको भ्रष्ट कर दिया है। इससे कम कुछ भी किया जायगा तो वह प्रान्तके गरीब लोगोंको न्यायसे वंचित करनेके बराबर होगा।...” - इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९४४, भाग-१, पृ. ९४ से यह उद्धरण दिया गया है।]



गांधीजी गहरी पीड़ासे बोले: “ऊपरसे नीचे तक सारी व्यवस्था भ्रष्ट हो गई है। सरकार गैर-सरकारी भ्रष्टाचार पर - प्रजाजनोंके भ्रष्टाचार पर आंखें बन्द कर लेती है। यदि सरकार पर राष्ट्रका नियंत्रण होता, तो इस पाशविक घूसखोरी और भ्रष्टाचारको एक दिनके लिए भी सहन न किया जाता। इसकी तुलनाका कोई उपयुक्त उदाहरण यदि मिल सकता है, तो वह क्लाइव और बारेन हेस्टिंग्सके युगमें ही मिल सकता है। इस समस्याको जनताकी विश्वस्त राष्ट्रीय सरकार ही हल कर सकती है। परन्तु आज तो ऐसी कोई संभावना दिखाई नहीं देती। विजयकी प्रतीतिके मदमें सत्ताधारी लापरवाह हो गये हैं।

संगठित हिंसा और सत्यकी हत्या - युद्ध जिनका प्रतीक है - गांधीजीको बहुत सता रही थीं। युद्ध समाप्ति पर था, परन्तु किसी दुःस्वप्नकी स्मृतिकी भांति विलीन हो जानेके बजाय वह मूर्खतापूर्ण रक्तपात, मिथ्या स्वप्नों तथा आहत आशाओंको चिरस्थायी स्मृतिका रूप लेता दिखाई दे रहा था। गांधीजीको यह साफ दिखाई दे रहा था कि इन परिस्थितियोंमें विजय शान्तिका सूत्रपात करनेके स्थान पर तीसरे युद्धकी तैयारीकी ही भूमिका होगी।

उन भली अंग्रेज महिला म्यूरियल लेस्टरने - जिनके यहां दूसरी गोलमेज परिषद्के दिनोंमें गांधीजी लंदनके ईस्ट एण्डमें ठहरे थे - अपने एक पत्रमें इस दुःखद घटनाका उल्लेख इस प्रकार किया: “आप और मैं जिन वस्तुओंको अत्यंत मूल्यवान समझते हैं, वे सब दिनोंदिन हमारी आंखोंके सामने ही भ्रष्ट की जा रही हैं। . . . पृथ्वीके जिस किसी भी स्थान पर हमारा मन और स्मृति जाती है, वहीं लोग इस करुणतामें फंसे हुए दीखते हैं। यह भी स्पष्ट है कि जो अकल्पनीय और अदृश्य मूल्य मनुष्यको शरीर; मन और आत्मासे विवेकशील बनाये रखते हैं, वे सब घट रहे हैं।” उनके पत्रके अन्तमें यह लिखा था: “फिर भी ईश्वर है - वही सत्य है - वह हम सबके हृदयोंमें बसा हुआ है - वह पूर्ण प्रज्ञा, सत्य और शक्ति है !”

गांधीजी विचारोंमें मग्न हो गये: “बेशक, ईश्वर है और किसी दिन हमारी युद्धके कारण त्रस्त बनी हुई इस पृथ्वी पर संघर्षका अंत होकर शान्ति स्थापित होगी।” परन्तु भारत या इंग्लैण्डको इससे क्या संतोष मिलेगा, यदि भारतको उसके लाभोंसे वंचित रखा जाय और इंग्लैण्डके न चाहने पर भी भारतको



वे लाभ मिल जायें ? “विजयके पश्चात स्वतंत्रता” यह एक भ्रामक नारा है। जैसा कैप्टन लिडेल हार्टने सारगर्भित शब्दोंमें कहा था, यदि स्वतंत्रता और सारे मानव-मूल्योंका बलिदान करके लड़ाई जीती गई, तो संभव है अंतमें ऐसी कोई चीज बचे ही नहीं, जिसके लिए लड़ाई जीती जानी चाहिये।

ऐसी परिस्थितियोंमें गांधीजी अहिंसाकी क्षमताका प्रत्यक्ष प्रमाण कैसे देते और लाखों पीड़ितोंकी पीड़ाको कैसे मिटाते ? उनका दावा था कि हिंसाकी शक्तियां कितनी ही सुसंगठित क्यों न हों, अहिंसा उनकी तुलनामें सदा ही श्रेष्ठ शक्ति सिद्ध होगी। युद्धके आरंभमें कुछ अंग्रेज मित्रोंने गांधीजीको लिखकर पूछा था कि शान्तिवादी लोग व्यक्तिगत रूपमें हिंसा और रक्तपातकी फैलती हुई लहरका सामना कैसे कर सकते हैं । गांधीजीने एक उपाय उन्हें उपवासका सुझाया था। कुछ लोगोंने इस सुझावकी हंसी उड़ाई थी, परन्तु वे इस पर डडे रहे । उनका अपने ही उदाहरणमें उस उपायकी परीक्षा करनेका और उसकी क्षमताका प्रत्यक्ष प्रमाण देनेका समय आ गया था। इसी एक उपायसे वे मानव-जातिकी अन्तरात्माको जगा सकते थे।

मित्रों और साथियोंने गांधीजीसे तर्क करनेकी कोशिश की थी। गांधीजीने कुछ ही समय पूर्व उनके सामने रचनात्मक कार्यका अपना बढ़ाया हुआ और पुनर्जीवित किया हुआ कार्यक्रम प्रस्तुत किया था। क्या उनके उपवाससे भावनाकी जो महान तरंग उत्पन्न होगी, उससे वह ‘शान्ति और स्थिरता’ भंग नहीं होगी, जिसके साथ उनमें से बहुतसे साथी इस कार्यक्रममें रंगे हुए हैं?

गांधीजीने उत्तर दिया: “परन्तु यही तो मैं चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि आप या दूसरे कोई किसी कार्यमें शान्त और स्थिर होकर बैठ जायें। सैनिकों, नागरिकों और सत्यकी इस त्रिविध भयंकर हत्याके बीच किसी भी कार्यमें स्थिर होकर बैठना असंभव है। शरीर और आत्मा दोनोंकी कूच हमें अथक रूपमें जारी रखनी होगी। मेरा काम यह है कि मैं अपनेको और आसपासवालोंको जाग्रत कर दूं और मिथ्या आत्म-संतोषकी स्थितिसे बाहर निकाल दूं।”

यह माननेके लिए उनके पास क्या कारण था कि उनके उपवाससे लोगोंकी विचार-शक्ति कुण्ठित न होकर जाग्रत ही होगी ?



उन्होंने उत्तर दिया : मेरे जैसे छोटे आदमीके लिए यह सोचना धृष्टता हो सकती है कि मेरे उपवाससे लोगोंमें एकाएक नई प्राणशक्ति उत्पन्न हो जायगी। परन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि मैंने सत्य और अहिंसाका जीवन बितानेकी इतने वर्षों तक व्यर्थ ही कोशिश नहीं की है और उस विश्वासके कारण मुझे अपने उपवासके द्वारा बोलनेका अधिकार प्राप्त हो गया है। “आज लाखों आदमी निष्क्रिय लाचारीसे भूखकी पीड़ा भोग रहे हैं। इस कष्टका छोटासा अंश भी स्वेच्छासे और समझ-बूझकर सहन किया जाय, तो स्थितिमें कायापलट हो सकता है। यह उपवास किये बिना और खुद यह जाने बिना कि भूखकी पीड़ा कैसी होती है, मैं इन लाखों लोगोंके साथ कैसे बात कर सकता हूं या उनके साथ कैसे एकाकार हो सकता हूं?” उन्होंने कहा कि उपवास करनेकी प्रेरणाका मैं कोई एक कारण नहीं बता सकता, परन्तु सारी परिस्थितियोंने मुझे समग्र रूपमें अभिभूत कर लिया है। “आश्चर्यकी बात यही है कि मैं अभी तक जीवित हूं और जीनेका आनन्द अनुभव कर सकता हूं। यह मैं इसीलिए कर सकता हूं कि मुझे मरनेका आनन्द मालूम है। मैं यह जानता हूं कि सुख और दुःख एक ही सिक्केके दो पहलू हैं, इसलिए मुझ पर दोनोंका ही असर नहीं होता और ईश्वरके आदेशानुसार मैं काम करता हूं।” उन्होंने अपने अंग्रेज क्वेकर मित्र कार्ल हीथको लिखा: “मैं धधकती हुई आगके बीचमें पड़ा हूं और प्रायः अपने मनमें गुनगुनाया करता हूं: जगदाधारने अपने हृदयके द्वार मेरे लिए खोल दिये हैं; मुझे तुझमें समा जाने दें !” [गांधीजीका पत्र कार्ल हीथको, १३ नवम्बर १९४४]

“क्या आपको भूखकी पीड़ाके द्वारा ही बोलना चाहिये? क्या इसके लिए और कोई कार्य-पद्धति नहीं है?”

“अनेक हैं। वे आपके अपनानेके लिए हैं। मुझे अपनी ही पद्धति काममें लेनी होगी; क्योंकि उसे मैं लोगोंके हृदय और आत्मा पर प्रभाव डालनेके लिए ईश्वरकी विशेष देन समझता हूं।”

मित्रोंको इससे सन्तोष नहीं हुआ। इस बातका क्या विश्वास कि यदि गांधीजीको उपवासके परिणाम-स्वरूप कुछ हानि पहुंची, तो ऐसा तूफान नहीं उठ खड़ा होगा जिसे कोई भी दबा नहीं सकेगा?



गांधीजीने उत्तर दिया, “यह भी हो सकता है। मैं ऐसा नहीं चाहता। परन्तु मैं इस खतरेका भी सामना कर लूंगा, यदि आधी शताब्दीसे अधिक समय तक सत्य और अहिंसाका ज्ञानपूर्वक जीवन बितानेका यही परिणाम हो कि भारतको भी रक्तस्नान करना पड़े।”

मित्रोंने पूछा, “तो फिर आपको अहिंसाका पालन करते हुए अराजकताका खतरा क्यों नहीं मोल लेना चाहिये, जब आप उस पर नियंत्रण रखनेके लिए सशरीर विद्यमान हैं?”

गांधीजीने उत्तर दिया, “क्योंकि मैं अराजकता और अव्यवस्था नहीं चाहता। अतः मुझे अराजकताके लिए नहीं, परन्तु व्यवस्थितताके लिए काम करना चाहिये। परन्तु इस प्रयत्नमें अराजकता मेरे रास्तेमें आ जाय, तो मैं उससे विचलित नहीं होऊंगा। जापानियोंकी जीवनकी उपेक्षा करनेवाली बहादुरीसे दुनिया रोमांचका अनुभव कर रही है। इस अवसर पर यदि जंगलके कानूनके स्थान पर प्रेमधर्मकी स्थापना करनी है, तो अहिंसासे जापानियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक साहस और शौर्यकी आशा रखी जाती है।”

*

जहां मित्रोंका समझाना-बुझाना बेकार हुआ वहां कुदरत सहायताके लिए आ पहुंची।

गांधीजी अपनी अतिशय कड़ी कसौटी कर रहे थे। जेलसे वे जो पेचिश लाये थे वह पूरी मिटी नहीं थी। उस पर काबू पानेके लिए उन्हें अपना भोजन कमसे कम कर देना पड़ा। इस धीमी भुखमरीके कारण उन्हें अतिशय थकावट आ गई थी। उन्हें सख्त जुकाम हो गया और कफ भर जानेसे छातीका दर्द खड़ा हो गया। उन्होंने एक प्रसिद्ध वैद्यसे - रोगीके बजाय प्रयोगके एक पात्रके रूपमें - इसका उपचार करवाया। ये वही वैद्य थे जिन्होंने कस्तूरबा गांधीकी आगाखां महलमें उनकी आखिरी बीमारीमें बड़ी भक्तिसे चिकित्सा की थी। वैद्यजीने कोई दवा तो उन्हें नहीं दी, परन्तु ऐसा आहार बताया जिसमें बादामकी मात्रा अधिक थी। इससे गांधीजीकी पाचन-क्रियामें गड़बड़ हो गई। उसे ठीक करनेके लिए उन्होंने एक दिन अंडीके तेलकी एक खुराक ले ली, जिससे वे बेहोश हो गये और एक आश्रमवासीके समय पर पहुंच जानेके कारण ही गिरनेसे बच गये। इस घटनाके कुछ ही दिन बाद राजाजी आश्रममें आ पहुंचे। गांधीजीका उपवास करना जितना और किसीको नापसन्द था उतना ही उन्हें भी नापसंद



था। अपनी अद्वितीय कुशलतासे उन्होंने समझा-बुझा कर गांधीजीको राजी कर लिया कि वे एक महीने तक शारीरिक उपवास करनेके बजाय कार्यका उपवास कर लें - अर्थात् काम बिलकुल बन्द रखें।

गांधीजीने एक बार कहा था: “आत्म-निरीक्षणके समय में अकसर अपने आपसे पूछता हूं कि अपना मिशन सिद्ध करनेके लिए मैं अपने शरीर पर जो भयंकर जोर डालता हूं वह मेरे संकल्प-बलका चिह्न है या ईश्वरकी कृपाका। इसकी कसौटी यह है: यदि इस भारके नीचे मैं दब जाऊं, तो कहना चाहिये कि वह मेरे संकल्प-बल, मोह या फलकी आतुरताका परिणाम था; लेकिन यदि मेरा परिश्रम केवल ईश्वरेच्छासे ही हुआ है, तो उसकी कृपा मेरे साथ रहेगी और मैं इस तनावको सहन कर लूंगा।”

इस प्रसंग पर शरीरकी शक्तिका टूटना इससे विपरीत वस्तुका चिह्न था। उससे अनासक्तिका अभाव या सम्पूर्ण आत्म-समर्पणका अभाव सूचित होता था। लेकिन जो व्यक्ति भगवानका हेतु सिद्ध करनेके लिए उसका साधन बननेकी आकांक्षा रखता है, उसके लिए ये दोनों वस्तुएं अत्यावश्यक हैं। इसलिए उन्होंने अपनी शुष्क बुद्धिके सारे निर्णय और उपवास करनेकी अपनी प्रबल वृत्तिको एक ओर रख दिया और अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपना पहला निश्चय बदल कर पूरी तरह अपने आपको ‘अन्तरात्मा’ के नादके वश कर दिया।

तदनुसार, उनके वातावरणको उनके निश्चयकी भावनाके अनुकूल बनानेके लिए उनकी कुटियामें से सारे कागजात और फाइलें वगैरा हटा दिये गये। अखबारोंको भी देशनिकाला दे दिया गया। वे एक घंटा कताई करते और आध घंटा तुनाई करते थे। बाकी समय पूरा मौन रखते थे। और नितान्त आवश्यक होने पर पुर्जों पर लिख लिखकर बातचीत करते थे मनोरंजनके लिए जब भी उनके जीमें आता वे अपनी पसन्दकी किसी पुस्तकके पन्ने पलटने लगते। ऐसी एक पुस्तक थी पतंजलिका योगसूत्र और दूसरी एक उर्दू पुस्तक थी। जब उनमें काफी शक्ति आ गई तब वे पड़ोसके कुछ गावोंमें पैदल जाते थे, जहां विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियां चल रही थीं। वे स्व. सेठ जमनालाल बजाजकी समाधि पर और बजाज परिवारके लोगोंके पास भी पैदल चलकर जाते थे। (जमनालालजी गांधीजीके ‘पांचवें पुत्र’ और उनके संरक्षकताके आदर्शके अनुसार अपनी सम्पत्तिके ‘आधे संरक्षक’ थे।) परन्तु कभी कभी आश्रमकी छोटी-छोटी ‘घरेलू बातें’ गांधीजीके निश्चय पर विजय प्राप्त कर लेती थीं और उनके विश्रामके शरीर और



मन पर कार्यसे अधिक जोर डालनेवाला बन जानेका भय रहता था। राजाजीका ऐसे मौकों पर उपस्थित रहना ईश्वरका वरदान सिद्ध होता था।

गांधीजीने अत्यन्त उच्च कोटिकी अनासक्ति सिद्ध कर ली थी। फिर भी उनमें मानव-भावनायें भरपूर थीं और राजाजी जैसे पुराने साथियोंमें से किसीका उनके निकट रहना बहुत मूल्यवान था। मुझे ६ दिसम्बर, १९४४ की अपनी डायरीमें यह नोट लिखा मिलता है: “बापूके अत्यधिक आध्यात्मिक एकाकीपनमें कुछ भयंकर बात है। एक हद तक तो महानताके साथ यह वस्तु अविच्छिन्न रूपसे जुड़ी हुई है। परन्तु इसे कम करनेके लिए कुछ न कुछ जरूर किया जाना चाहिये। . . . उनके कार्यके स्वरूप और क्षेत्रमें बुनियादी परिवर्तनकी जरूरत है। आगेसे उनका काम इंजन चलानेवालेका न होकर मार्ग दिखानेवालेका होना चाहिये। उन्हें दिशा बता देनी चाहिये। नये नये विचार देने चाहिये और नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रभाव फैलाना चाहिये। मैं मानता हूं कि हमें भविष्यमें उनके पथ-प्रदर्शनकी कितनी जरूरत होगी, इसकी आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते।”

ऐसे समय रंगूनके रेवरेंड बिशप जॉर्जेका आगमन अत्यन्त मधुर सिद्ध हुआ। वे आग्रहपूर्वक सायंकालकी और प्रातः ४ बजेवाली आश्रम-प्रार्थनाओंमें शरीक हुए और गांधीजीके अनुरोध पर उन्होंने एक छोटीसी अत्यन्त प्रभा-वोत्पादक और हार्दिक प्रार्थना गाकर सुनाई, “भगवान, सारी कायरता दूर कर दो, हमारा सारा भय मिटा दो।” इस प्रार्थनामें उन्होंने ईसाका नाम तक नहीं आने दिया।

बड़े दिनके एक छोटेसे सन्देशमें गांधीजीन आश्रमवासियोंसे कहा: “हम सर्वधर्म-समभावको माननेवाले हैं, इसलिए हमें ऐसे तमाम अवसर जरूर मनाने चाहिये। . . . हम अन्तर्मुख बनें, आत्म-निरीक्षण करें। . . . अपने भीतरका सारा मैल हम धो डालें और ईश्वरकी एकताका और उसके आदेशकी मूलभूत समानताका अनुभव करें। जिसे हम सच्चा या न्यायपूर्ण मानते हैं, उसके लिए अपने प्राण भी न्योछावर करनेको तैयार रहकर हमें अपनी श्रद्धाका प्रमाण देना चाहिये। . . . इस अवसर पर हमको यह बात याद रखनी चाहिये और उसका मनन करना चाहिये कि ईसा जिसे सत्य समझते थे उसीके लिए वे सूली पर चढ़े थे।”

*



यूरोपको गांधीजीका परिचय करानेका मुख्य श्रेय रोमां रोलांको था। उनके अवसानसे गांधीजीको बड़ा आघात लगा था। १९३१ में गांधीजी रोमां रोलांके साथ विलेनवमें ५ दिन रह कर अलग हुए तब उन्होंने गांधीजीसे पूछा था, “आपके आगमनकी कृतज्ञतापूर्ण स्मृतिमें, आपकी इच्छानुसार, मुझे क्या करना चाहिये? क्या मैं संसारके सामने भारतके अहिंसक संग्रामको सही अर्थमें प्रस्तुत करूं? हिन्दुस्तानी सीखूं?” गांधीजीने उत्तर दिया, “हां।” परन्तु तुरन्त अपनी भूल सुधार कर वे बोले : “नहीं, भारतमें आकर भारतसे मिलिये, उसका परिचय करिये।” परन्तु यह होना नहीं था। वे गांधीजीके इस विश्वाससे सहमत थे कि अहिंसा मानव-जातिके लिए सर्वोच्च आदर्श है। परन्तु उनका यह मत था कि यूरोप अभी उस आदर्शको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं है; और यदि तुरन्त कोई उपाय न किया गया, तो फिर यूरोपकी संस्कृति और सभ्यताको विनाशसे बचाना असंभव होगा। यह चिन्ता लगभग उनके मन पर हावी हो गई थी और इससे वे मुक्त नहीं हो पाते थे। गांधीजीकी अनासक्तिके स्पर्शकी ही उन्हें जरूरत थी। परन्तु अफसोस है कि इसके लिए उनके अत्यन्त तार्किक और विश्लेषणशील मस्तिष्कमें स्थान ही नहीं था। उनकी प्रामाणिकता स्फटिक मणिकी तरह शुद्ध और निर्मल थी और उनकी आध्यात्मिक निष्ठा निष्कलंक थीं। गांधीजी उन्हें सत्यरूपी ईश्वरके मंदिरमें उपासना करनेवाला एक साथी मानते थे। इससे अधिक घनिष्ठ संबंध और क्या हो सकता था? उनकी मृत्युका समाचार पाकर गांधीजीने कहा, “वे सचमच अपने अनेक नामरहित मूक कार्योंमें जीवित हैं। उन्होंने सत्य और अहिंसाको जैसा समझा और समय समय पर माना, उसीके अनुसार वे चले। संसारके किसी भी भाग पर पड़े हुए दुःखसे उनका हृदय दुःखी होता था। निर्मम मानव-हत्याकांडके प्रति उनकी आत्मा विद्रोह करती थी। . . .” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १० जनवरी १९४५]

सत्य और अहिंसाके मार्गके अनेक सहयात्री थे, जिन्होंने गांधीजीकी ज्योतिसे अपने दीपक जलाये थे और जो समान ध्येयके लिए संसारके विभिन्न भागोंमें कार्य कर रहे थे। ऐसे कुछ यात्री तो एक-दूसरेको जानते तक न थे। उनमें से एक अमरीकन सज्जन रिचर्ड ग्रेग थे। वे कुछ समय तक गांधीजीके साबरमती आश्रममें रहे थे। उन्होंने अहिंसाकी शक्तिके विषयमें तथा खदरके अर्थशास्त्रके विषयमें अत्यन्त वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखे हैं। उन्होंने गांधीजीको लिखा कि वे थोड़े ही समयमें उनके पास वापस आनेकी आशा रखते हैं। दूसरी कुमारी श्लेसिन थीं, जो दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजीकी श्रद्धालु



सचिव थीं और उनकी पुत्रीके समान थीं। गांधीजीकी बीमारीके समाचारोंका उल्लेख करके उन्होंने अपनी अनुपम शैलीमें गांधीजीको लिखा: “जब आप बीमार थे तब मैं बहुत अशांत नहीं बनी थी (यद्यपि आपके कष्टसे मुझे अवश्य ही दुःख हुआ था), क्योंकि मुझे यह विश्वास था कि जब तक भारत स्वतंत्र नहीं हो जायगा तब तक आप इस धरती पर अवश्य रहेंगे। . . . मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं कि आप १२५ वर्ष तक **अवश्य जीवित रहेंगे**, यदि आप **सचमुच** चाहें तो।” उन्होंने पत्रमें यह भी लिखा कि वे गांधीजीसे सान फ्रान्सिस्कोकी शांति-परिषद में मिलनेकी और वहांसे उनके साथ भारत लौटनेकी आशा रखती हैं। “यदि शान्ति-परिषद में आपके साथ जानेवाले सचिवोंकी कमी हो, तो इधर होकर वहां जानेका कार्यक्रम बनाइये। मैं आपके साथ चलूंगी।”

गांधीजीने उत्तर दिया: “मैं नहीं मानता कि मेरे दक्षिण अफ्रीका आने या अमरीका जानेकी कोई संभावना है। परन्तु मैं जाऊं या न जाऊं, अवश्य ही मैं आशा करता हूं कि तुम किसी दिन यहां आ जाओगी और अपने बाकीके दिन भारतमें ही बिताओगी।” अपने दूसरे पत्रमें उन्होंने मिस श्लेसिनको लिखा : “तुमने देख लिया न कि सात फ्रान्सिस्कोका काम तुम्हारे और मेरे बिना चल गया ! परन्तु तुम यहां किसी दिन आ रही हो न? आशा है, मैं सवा सौ वर्षकी कहानी लिखूंगा। जब तक न लिखूं, तुम धीरज रखना।”

मिस श्लेसिनका दूसरा पत्र इस प्रकार था: “आगाखाने . . . यही कहा बताया जाता है . . . कि भारत पर जो बादल छाया हुआ है वह आपकी बुद्धावस्थाका है। क्या यह संभव है कि उन्होंने आपके सवा सौ वर्ष तक जीनेके निश्चयकी बात न सुनी हो? या वे उसे समझते नहीं हैं? जो कुछ भी हो, आपके निश्चयने वह बादल दूर कर दिया है, क्योंकि आप फिर एक बार जीवनकी वसन्त ऋतुमें आ गये हैं। यह अधिक अद्भुत वसन्त है, क्योंकि वह वर्षोंके अनुभवसे सम्पन्न हो गया है - इतना ही क्यों, आपके अक्षरोंमें भी एक नई शक्ति आई हुई दिखाई देती है। आप कहते हैं कि आप उन सवा सौ वर्षोंका अनुभव लिखेंगे। आशा है कि मुझे उस पुस्तकके कमसे कम एक भागका सम्पादन करनेमें हाथ बंटानेका सौभाग्य मिलेगा।”



जर्मन यहूदी हर्मन कैलनबैक एक और ऐसे सहयात्री थे। वे गांधीजीके अत्यन्त घनिष्ठ मित्र और दक्षिण अफ्रीकाके सारे संघर्षों और अनुभवोंमें उनके अभिन्न साथी रहे थे। उन्होंने प्रण किया था कि सारी दुनिया गांधीजीको छोड़ दे, तो भी वे गांधीजीको कभी नहीं छोड़ेंगे। गांधीजीके जीवनके सन्ध्याकालमें ये सब साथी उनके पास लौट आनेकी आशा रखते थे और एक सुदीर्घ और दुःखदायी वियोगके बाद एक परिवारके बालकोंकी तरह एक ही स्थान पर एकत्र होनेकी आशा रखते थे। परन्तु ऐसा नहीं होना था। कैलनबैक कुछ महीने बाद मर गये और बाकी दोको गांधीजीके जीवन-कालमें भाग्यने भारतमें आने नहीं दिया।

२

गांधीजीका 'कार्यका उपवास' निश्चित अवधि बीत जाने पर समाप्त हो गया। परन्तु उनका 'वाणीका उपवास' जारी रहा। इस बीच गांधीजीके दो निकटके साथी - किशोरलाल मशरूवाला और जे. सी. कुमारप्पा जेलसे मुक्त कर दिये गये। इसी प्रकार थोड़े अरसेके बाद कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्य डॉ. सैयद महमूद और डॉ. प्रफुल्ल घोष भी छोड़ दिये गये। डॉ. घोषकी मुक्ति तंदुरुस्तीकी बिना पर हुई थी। परन्तु डॉ. महमूदकी मुक्तिका कारण दूसरा ही था।

डॉ. सैयद महमूद खिलाफतके जमानेसे कांग्रेसके एक महारथी थे। वे पटनाके महान राष्ट्रवादी मुसलमान, बैरिस्टर मौलाना मजहरुल हकके दामाद थे। राजाजीकी तरह डॉ. महमूदने भी 'भारत छोड़ो' की मांगका विरोध किया था। कांग्रेस महासमितिने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास किया, इससे पहले ही ८ अगस्त, १९४२ को उन्होंने कांग्रेस कार्यसमितिसे अपना इस्तीफा दे दिया था। फिर भी कांग्रेस कार्यसमितिके अन्य सदस्योंके साथ साथ उन्हें भी दूसरे दिन सुबह गिरफ्तार कर लिया गया था, क्योंकि सरकारने सम्बन्धित व्यक्तियोंकी जिम्मेदारीकी परवाह किये बिना ही 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास होनेकी आशामें अमुक श्रेणीके कांग्रेसियोंको और गैर-कांग्रेसियोंको भी पकड़ कर जेलमें डाल देनेकी तैयारी कर ली थी। उदाहरणके लिए, मेरी बहन डॉ. सुशीला नय्यरको गांधीजीकी 'डॉक्टरी परिचारिका' बना कर पूनाके आगाखां महलमें नजरबन्द करनेका प्रबन्ध कर लिया गया था, यद्यपि वह एक वर्ष



पहले ही सेवाग्राम आश्रम छोड़ चुकी थी और जब 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास किया गया उस समय वह वास्तवमें दिल्लीके लेडी हार्डिज मेडिकल कॉलेजमें अध्यापनका कार्य कर रही थी।

डॉ. सहमूदने अपनी नजरबन्दीके स्थानसे वाइसरॉयको एक पत्र लिखा था। उसकी सूचना उन्होंने अपने साथियोंको नहीं की थी, जो उसी जेल-खानेमें उनके साथ नजरबन्द थे। अपने पत्रमें उन्होंने अपनी गिरफ्तारीके गंभीर अन्यायका उल्लेख किया था, यद्यपि कांग्रेस महासमितिमें उन्होंने 'भारत छोड़ो' प्रस्तावके साथ अपनी असहमति प्रगट की थी और उसके विरुद्ध अपना मत भी दिया था। उस प्रस्तावको उन्होंने "सब दृष्टियोंसे गांधीजीकी एक बहुत बड़ी भूल" बताया था। यह वर्णन करनेके बाद कि उन्होंने अपनी जन्मभूमि छपरा शहरमें किस प्रकार युद्ध-प्रयत्न संगठित किये थे, पत्रके अन्तमें उन्होंने 'गांधीजीके जीवन-कालमें' भारतके साथ समझौता कर लेनेकी हिमायत की थी।

डॉ. महमूदके पत्रने वाइसरॉय द्वारा राजनीतिक कैदियोंकी मुक्तिके लिए लगाई गई दोनों शर्तें पूरी कर दी थीं - अर्थात् 'भारत छोड़ो' प्रस्तावसे सम्बन्ध-विच्छेद करना और जेलसे छूटनेके बाद युद्ध-प्रयत्नका विरोध न करके उसमें सहयोगका आश्वासन देना। इसलिए सरकारके पास उन्हें जेलसे रिहा करनेके सिवा कोई चारा ही नहीं था।

नजरबन्दीसे छूटनेके बाद वे गांधीजीके पास आये और उन्होंने स्वीकार किया कि मैंने अहमदनगर किलेके अपने साथियोंकी जानकारी और अनुमतिके बिना वाइसरॉयको पत्र लिख कर उनके साथ 'घोर अविवेक' का अपराध किया है। परन्तु उन्होंने गांधीजीसे यह विश्वास करनेका अनुरोध किया कि उनका उद्देश्य कार्यसमितिके दूसरे सदस्योंसे पहले जेलसे छुटकारा पानेका नहीं था। गांधीजीने उनकी प्रामाणिकताको स्वीकार किया, उनके न्यायाधीश बननेसे इनकार कर दिया और जितना भी स्नेह और सावधानी वे दिखा सकते थे उतनी दिखाकर उनकी देखभाल की। अखबारोंके नाम एक छोटेसे वक्तव्यमें गांधीजीने कहा: "कांग्रेसियोंके लिए व्यावहारिक प्रश्न यह है कि वे डॉ. महमूदकी सेवाओंका उपयोग करें अथवा जो अविवेकपूर्ण व्यवहार करनेकी बात वे स्वीकार करते हैं उसके लिए उनका बहिष्कार करें। मुझे जरा भी शंका नहीं है कि उनकी सेवाओंका उत्तम उपयोग किया जाना चाहिये, क्योंकि कांग्रेसके साथ उनका बहुत लम्बा और अटूट सम्बन्ध उन्हें उन सेवाओंके लिए अत्यन्त योग्य



सिद्ध करता है। मेरे लिए तो वे इस अविवेकपूर्ण व्यवहारके बावजूद वही प्रिय मित्र हैं, जैसे खिलाफत और उसके पहले वे रहे हैं।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, २१ अक्टूबर १९४४]

स्पष्ट शाब्दोंमें अपनी गलती स्वीकार कर लेनेके कारण डॉ. महमूदकी प्रतिष्ठाको कोई धक्का नहीं लगा और वे कांग्रेसमें यथाशक्ति योगदान देते रहे तथा अपनी गलतीके बावजूद उसमें सम्मानित स्थान प्राप्त करते रहे। केवल अहिंसक संग्राममें ही ऐसी बातें संभव हो सकती हैं।

डॉ. महमूदकी रिहाईसे गांधीजी पहली ही बार नजरबन्दीमें रखे गये कार्यसमितिके सदस्योंके विचारोंकी कुछ कुछ झांकी पा सके। अपने मौखिक प्रमाणके सिवा डॉ. महमूद अपने साथ उस पत्रकी नकल भी लाये थे, जो कांग्रेस अध्यक्षने वाइसरॉयको लिखा था। फरवरी १९४३ में आगाखां महलमें गांधीजीका उपवास आरम्भ होनेसे पहले ‘भारत छोड़ो’ आंदोलनके सम्बन्धमें वाइसरॉयके साथ हुआ गांधीजीका पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ, उसके बाद यह पत्र भेजा गया था। उससे पता चलता था कि कार्यसमितिने ‘भारत छोड़ो’ प्रस्तावके सम्बन्धमें जो रवैया अपनाया था उससे समिति तिलभर भी इधर-उधर नहीं हुई थी। गांधीजीको भी यही आशा थी। उस पत्रका प्रकाशित होना भारतके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्रामके इतिहासमें एक और भव्य सीसा-चिह्न था। पत्र इस प्रकार था:

यह विचित्र बात है कि काफी लंबे पत्र-व्यवहारमें और विभिन्न सरकारी वक्तव्योंमें महासमितिके पास किये हुए प्रस्तावके गुण-दोषों पर कुछ भी नहीं कहा गया है।... उसमें यह स्पष्ट कर दिया गया था कि स्वतंत्र भारत... आक्रमणका अधिकसे अधिक सामना करेगा।... आपको यह मालूम होगा कि अफ्रीका, एशिया और यूरोपमें फासिस्ट, जापानी और नाजी आक्रमणोंका आरम्भ हुआ तभीसे कांग्रेस निरन्तर उसकी निन्दा करती रही है। . . . आपको यह भी मालूम होगा कि वर्तमान ब्रिटिश सरकारके कई सदस्योंने भूतकालमें फासिस्ट और जापानी आक्रमणका अनेक बार समर्थन या स्वागत किया था।

महात्मा गांधीके नाम लिखे अपने पत्रके अन्तमें आपने कहा है कि आगे-पीछे कांग्रेसको उसके विरुद्ध लगाये गये अभियोगोंका उत्तर देना होगा। हम उस दिनका स्वागत करेंगे जब हम दुनियाकी प्रजाओंके सामने खड़े हो सकेंगे और निर्णय देनेका कार्य उन्हीं पर छोड़ सकेंगे। पर



उस दिन और लोगोंको भी, जिनमें ब्रिटिश सरकार भी शामिल होगी, आक्षेपोंका उत्तर देना होगा। मुझे विश्वास है कि वे भी उस दिनका स्वागत करेंगे।

ऐसा लगता है कि सत्ताधारियोंने यह हिसाब लगाया था कि राजनीतिक जिचको दूर करनेके लिए केवल इतना ही करना जरूरी है : लोगोंको वशमें करनेके लिए लॉर्ड बेलफोरकी नीतिके अनुसार 'दस वर्ष तक सख्तीसे राजकाज चलाया जाय', कांग्रेसके तथाकथित 'दक्षिण पक्ष' और 'वाम पक्ष' के बीच फूट डाल दी जाय, 'आज्ञाकारी' नेताओंके हाथमें भारतके शासनका अधिकार दे दिया जाय और उन्हें कांग्रेस कार्यसमितिकी परवाह न करके सरकारके साथ समझौता करनेकी प्रेरणा दी जाय। इस विचार-दृष्टिका समर्थन करनेवाले बुद्धिशाली लोगोंको एकत्र करनेके लिए तथा कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंको जेलमें बन्द रखनेके एक बहानेके रूपमें उनका उपयोग करनेके लिए वाइसरॉयकी कार्यकारिणी समिति (एक्जिक्यूटिव कौंसिल) के गृह-संचिव (होम मेम्बर) सर फ्रांसिस मुडीने जनवरी १९४५ में प्रान्तोंमें प्रचार-यात्रा की। उत्तर भारतमें अपनी 'मान्यता' का समर्थन करनेवाली कुछ सामग्री पानेके बाद ये महाशय बम्बई गये और प्रान्तके भूतपूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री श्री बी. जी. खेरसे मुलाकात की। भारतके विभाजनके बाद पश्चिमी पंजाबके गवर्नरके ऊंचे पदकी इनकी कल्पना यही मालूम होती थी कि भारत-पाकिस्तान सम्मेलनके भारतीय प्रतिनिधि-मंडलके दो सदस्योंके बीच अपने साथीके [५ सितम्बर १९४७ को मुडीने जिन्नाको लिखा: "हमारी अपनी दृष्टिसे नेहरू, पटेल और उनकी मंडलीसे सफल भेंट हुई। . . . पटेलने पहले तीन घंटे तो चुप्पी साधी और फिर कहा कि हम सब अपना समय बरबाद कर रहे हैं। और इस बात पर उन्होंने एक भाषण दिया कि महीनों पहले किस तरह काम होना चाहिये था। . . . असलमें वे नेहरू पर वार कर रहे थे। नेहरू आंखें बन्द किये तन्द्रामें बैठे रहे। भेंटके बाद जब मेरा ए. डी. सी. त्रिवेदी और पटेलको उनकी गाड़ीमें बिठानेके लिए खड़ा था तब उसने यह बातचीत सुनी: 'त्रिवेदी : पंडितजी बिलकुल थके हुए दिखाई देते हैं।' 'पटेल : वे इसीके योग्य हैं। देशभरमें उड़ते फिरते हैं और हम सबको बेवकूफ बनाते हैं।' 'मुझे तो आशा है कि इस प्रान्तमें नेहरू और उनके साथी राजनीतिज्ञोंका आवागमन अब समाप्त हो गया है।' - खोसला, 'स्टर्न रेकनिंग', मद्रास, पृ. ३१५-१६] विषयमें जो निजी बातचीत हुई, उसे अपने गवर्नर-जनरल कायदे आजम जिन्नाके कानों तक पहुंचा दी जाय ! जैसा खेर साहबने वर्णन किया, सर फ्रांसिस मुडीने अपने दिमागमें उनके लिए यह मत



बनाया था कि “वे एक शालाके शिक्षक जैसे भले और भोले आदमी हैं, लेकिन कोई राजनीतिक दृष्टिकोण नहीं रखते।” उन्होंने श्री खेरसे जो प्रश्न पूछे और उनके जो उत्तर दिये गये, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

“इस गतिरोधका आपके पास क्या हल है?”

“गांधीजीसे चर्चा कीजिये और कार्यसमितिको मुक्त कर दीजिये; इससे रास्ता निकल आयेगा।”

“क्या जवाहरलाल किसी समझौतेमें रुकावट नहीं डालेंगे? उनकी रिहाईसे समझौतेमें मदद तो नहीं मिलेगी; उलटे कोई समझौता हो रहा होगा तो वे उसमें बाधा डालेंगे।”

“क्या इसी कारण उन सबको जेलखानेमें रखा गया है?”

श्री खेरने बादमें लिखा कि जिन गवर्नरों, दो वाइसरॉयों और वाइसरॉयकी कार्यकारिणीके कई सदस्योंसे वे पहले मिले थे, उनके व्यवहारके विपरीत मुडीन इतनी भी शिष्टता नहीं दिखाई कि विदाके समय एक-दो कदम उनके साथ आयें। “मैंने यह देखा, मैंने ही दरवाजा ढूँढ़ा और मैं चला आया।”

एक और कांग्रेसी नेताके साथ बम्बईमें मुलाकात करते समय सर फ्रांसिसने पूछा : “यहां राजनीतिका क्या हाल है?”

“हम गांधीजीके बताये हुए रचनात्मक कार्यक्रमका अमल कर रहे हैं।”

“क्या यह रचनात्मक कार्यक्रम कवायदकी तरह नहीं हैं? . . . सिपाही कवायद इसीलिए करता है कि अन्तमें वह युद्धमें शरीक होकर लड़नेके योग्य बन जाय।”

“रचनात्मक कार्यक्रम तो राष्ट्रीय उन्नति सिद्ध करनेके लिए है।”

“जिनसे आपका लड़नेका इरादा है उनसे आप कैसे किसी बातकी आशा रख सकते हैं?”

“हमारी लड़ाई अहिंसक है।”

“क्या कांग्रेसके दक्षिण पक्षमें सरकारके साथ समझौता करनेकी इच्छा नहीं है?”



“कांग्रेसके दक्षिण पक्षसे आपका क्या मतलब है? क्या आप गांधीजीको दक्षिण पक्षमें शामिल करते हैं?”

“हां, मैं गांधीजीको दक्षिण पक्षमें गिनुंगा। जवाहरलाल और सरदार पटेल वामपक्षमें हैं। वे किसी भी प्रकारका समझौता नहीं करता चाहते।”

इन गृह-सदस्यका रवैया गवनेरोंके शासनवाले प्रान्तोंके प्रशासनमें काफी स्पष्ट हो रहा था। मध्यप्रान्तमें एक जगह स्वाधीनता-दिवसके अवसर पर (२६ जनवरी, १९४५) रखे गये सामूहिक कताईके एक कार्यक्रमकी मनाही कर दी गई। एक दूसरे स्थान पर रचनात्मक कार्यको संगठित करनेके लिए रखी गई कांग्रेसी कार्यकर्ताओंकी एक निजी सभा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सेवाग्राममें (क) गांधीजीके पोते कनु गांधी हारा आयोजित रचनात्मक कार्यकर्ताओंके एक प्रशिक्षण शिविर पर, (ख) हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा आयोजित बुनियादी शिक्षकोंके प्रशिक्षण शिविर पर, और (ग) गांधीजीके आश्रमके व्यवस्थापक पर “शिविर और सामूहिक कूच नियंत्रण आज्ञा” के अनुसार नोटिस जारी कर दिये गये। बिहारमें रचनात्मक प्रवृत्तियोंका पुनर्गठन करनेके स्पष्ट उद्देश्यसे आयोजित कांग्रेस कार्यकर्ताओंका एक सम्मेलन होनेके बाद, घबराहटमें, पांच प्रमुख कांग्रेसी नेताओंके नाम—जिनमें दो भूतपूर्व मंत्री भी थे—उनके कार्यों पर प्रतिबन्ध लगानेवाली आज्ञा जारी कर दी गई। देशके दूसरे भागोंसे भी इसी तरहके समाचार मिले थे।

इसके साथ साथ “युद्धके बाद राष्ट्रीय पुनर्रचना” का एक भीमकाय कार्यक्रम लोगोंकी दृष्टिके सामने उन्हें ललचानेको रखा गया, ताकि स्वाधीनताका प्रश्न खटाईमें पड़ जाय। खेतीके मजदूरोंको औद्योगिक मजदूरोंके खिलाफ और भूस्वामियोंको उद्योगपतियोंके विरुद्ध खड़ा करना सरकारका उद्देश्य था। ‘नियोजित अर्थ-व्यवस्था’ और ‘ग्राम-पुनर्निर्माण’ के नाम पर ऐसी योजनाएं शुरू की गईं, जिनके द्वारा गांवोंमें खेतीकी मशीनें, सलाहकार और विशेषज्ञ तथा प्रतिदिनकी जरूरतका सस्ता मंगाया हुआ माल बहुत ही बड़ी मात्रामें भर दिया जाय। देशमें सच्ची राष्ट्रीय सरकारके अभावमें ये योजनाएं भारतीय स्वातंत्र्यके विरुद्ध षड्यंत्र जैसी बन जाती थीं और लोगोंके जीवन और देशकी साधन-सम्पत्तिके तानाशाही नियंत्रणसे गुलामीकी बेड़ियां और भी मजबूत हो जाती थीं। गांधीजीके सब साथी जेलमें थे



और वे अकेले ही कांग्रेसी चौकीके रक्षक थे, इसलिए उन्हें लगा कि जागृतिका शंख फूंकनेका समय आ गया है।

जब भारतीय उद्योगपतियोंका एक शिष्ट-मंडल, जिसमें गांधीजीके निकटके मित्र घनश्यामदास बिड़ला और जे. आर. डी. टाटा भी थे, इंग्लैंड और अमरीकाके लिए रवाना होनेवाला था, उस समय एक संवाददाताने गांधीजीसे पूछा: “राष्ट्रवादी विचारोंके . . . पूंजीपतियों द्वारा बड़ी बड़ी बातोंका आडम्बर रचाकर भारत सरकार भारतीय उद्योगोंको खतम करनेकी जो भावी योजनाएं इस समय बना रही है, उनके बारेमें आपके क्या विचार हैं?” यह कहा गया था कि ये उद्योगपति सरकारकी छत्रछायामें विदेश जा रहे हैं और सरकारका उद्देश्य यह था कि उन्हें ललचा कर विदेशी व्यापारिक स्वार्थोंके साथ कोई ‘शर्मनाक सौदा’ करवा लिया जाय।

गांधीजीने एक अखबारी वक्तव्यमें इस प्रश्नका उत्तर दिया: “सरकार समझ गई है कि हममें जो श्रेष्ठ लोग हैं वे बातें तो जोर जोरसे करेंगे, पर अपने आचरणसे उन्हें झूठा साबित करेंगे। बड़े व्यापारी, पूंजीपति, उद्योगपति और दूसरे लोग सरकारके विरुद्ध बोलते और लिखते तो हैं, परन्तु व्यवहारमें वे सरकारकी इच्छाका ही पालन करते हैं और उसके जरिये लाभ भी उठाते हैं—भले ही वह लाभ सरकारको ९५ प्रतिशत और उन्हें ५ प्रतिशत ही क्यों न मिले।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, ६ मई १९४५] गांधीजीने अपने वक्तव्यमें आगे कहा कि तमाम बड़े हितोंने एकस्वरसे घोषणा की है कि भारत अपने भाग्यका स्वयं निर्माण करनेके लिए अपनी ही चुनी हुई राष्ट्रीय सरकारसे कम कुछ नहीं चाहता और वह सरकार ब्रिटिश या दूसरे सभी विदेशी नियंत्रणसे मुक्त होनी चाहिये। परन्तु स्वाधीनता मांगनेसे नहीं मिलेगी। वह तो तभी आयेगी जब “छोटे-बड़े सभी स्वार्थ उन दुकड़ोंका मोह छोड़नेको तैयार होंगे, जो ब्रिटिश राज्य द्वारा भारतमें मचाई जा रही लूटमें ब्रिटेनके साझेदार बननेसे उन्हें प्राप्त होते हैं। जब तक यह साझेदारी अबाधित रूपसे चलती रहेगी तब तक मौखिक विरोधसे कुछ भी होना-जाना नहीं है।” गांधीजीने यह भी कहा कि यह शिष्ट-मंडल, जो विरोधियोंकी आशंकाके अनुसार (सरकारकी छत्रछायामें) इंग्लैंड और अमरीका जायगा, उस समय तक “किसी निरीक्षणके लिए या कोई शर्मनाक सौदा करनेके लिए” वहां जानेकी हिम्मत नहीं करेगा जब तक कि कांग्रेस कार्यसमितिके प्रमुख सदस्य अदालतमें किसी तरहका मुकदमा चलाये बिना नजरबन्द हैं - जिनका “एकमात्र अपराध यह है कि वे



अपने रक्तके सिवा अन्य किसीका एक बूंद रक्त भी गिराये बिना भारतकी स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए सच्चे हृदयसे प्रयत्न कर रहे हैं।”

गांधीजीने स्थितिको समझा उसके अनुसार, जहां तक अंग्रेजोंके इरादोंका सम्बन्ध था, खतरा बहुत सच्चा था। इसलिए इस विषयमें चेतावनी देना आवश्यक हो गया। और ऐसा करनेका उत्तम मार्ग यह था कि जो लोग यह जानते थे कि गांधीजी उनका बड़ा आदर करते हैं और जिनके मनमें गांधीजीके बारेमें कोई गलतफहमी पैदा नहीं हो सकती थी, उन्हीं मित्रोंको चेतावनी दी जाय । गांधीजीका यह अपना ढंग था। जब १९३१ में दूसरी गोलमेज परिषद्में लन्दनमें उन्होंने यह घोषणा की थी कि जो स्थापित स्वार्थ उचित जांचके बाद अनुचित या अन्यायपूर्ण ढंगसे प्राप्त किये हुए पाये जायेंगे उन सबको खतम कर दिया जायगा, तब बम्बईके एक सरकारी पदवीधारी महाशय गांधीजीके पास आकर कहने लगे: “महात्माजी, मैं आपको बधाई देता हूं। आपने हम पर प्रहार किये। परन्तु आपके सारे प्रहार विदेशी स्थापित स्वार्थोंकी पीठ पर ही पड़े, क्योंकि सच्चे अपराधी सब मिलाकर वे ही हैं।”

परन्तु शिष्ट-मंडलके कुछ उद्योगपति मित्र, जो गांधीजीकी इस अनोखी प्रणालीसे बहुत परिचित नहीं थे, उनकी बातको नहीं समझ सके। उन्हें चोट पहुंची । उनकी तरफसे घनश्यामदास बिड़लाने विरोधका लम्बा तार भेजा: “यह विचार बिलकुल छोड़ दिया जाता, अगर यह बात न होती कि एक बार दिया हुआ वचन, यदि वह सिद्धान्तमें गलत न हो तो, पूरा करना ही चाहिये।” [जी. डी. बिड़लाका पत्र गांधीजीको, ७ मई १९४५] तारके अन्तमें कहा गया था: “आपके आशीर्वाद और प्रार्थना पर हमारा भरोसा है।” तारके बाद श्री बिड़लाका जो पत्र आया उसमें उन्होंने समझाया कि शिष्ट-मंडलरू सर्वथा अ-सरकारी है।

गांधीजीने तारसे उत्तर दिया: “मेरे वक्तव्यका सम्बन्ध एक कल्पित उदाहरणसे है। . . . आपको किसी तरहका अफसोस नहीं होना चाहिये, क्योंकि आप सर्वथा अ-सरकारी शिष्ट-मण्डलके रूपमें जा रहे हैं। . . . नंगे-भूखे भारतकी दृष्टिसे आपके साथ मेरे आशीर्वाद और मेरी प्रार्थनाएं हैं।” [गांधीजीका पत्र जी. डी. बिड़लाको, ८ मई १९४५]



जे. आर. डी. टाटाको गांधीजीने लिखा: “अगर आप सब किसी बातमें बंधनेके लिए नहीं गये हैं, तो मेरा वक्तव्य आपकी रक्षा करेगा। . . . आपमें से किसीका उल्लेख करनेका मेरे लिए कोई प्रश्न ही नहीं था।” [गांधीजीका पत्र जे. आर. डी. टाटाको, १० मई १९४५]

एक मित्रने इस बात पर आपत्ति उठाई कि गांधीजीने उद्योगपतियोंको शर्तके साथ भी आशीर्वाद क्यों दिया। गांधीजीने अपने कार्यको उचित बताया : “अहिंसा इसी ढंगसे काम कर सकती है। . . . मेरे आशीर्वादके साथ जो शर्त लगी हुई है, उसे तोड़नेवाले व्यक्तिको मेरे आशीर्वाद भूतकी तरह सताते रहेंगे। यदि इसके बाद भी कोई गरीबोंके हितोंको हानि पहुंचा कर सौदा करता है, तो मेरा आशीर्वाद उसके लिए शाप बन जायगा।” उन्होंने समझाया कि आशीर्वाद देकर मैंने ब्रिटिश सरकारके साथ सब सम्बन्धित लोगोंके सम्मानको कसौटी पर चढ़ा दिया है और उद्योगपति मित्रोंके लिए उनके भीतर अथवा बाहर कोई प्रतिक्रिया हो तो उसका सामना करनेकी और भारतीय हितोंके लिए हानिकारक कोई योजना उन पर थोपी जाय तो उसका प्रतिकार करनेकी आसानी पैदा कर दी है।

व्यापारी समुदायको देशके अन्य लोगोंके साथ साथ विदेशी सत्ताके हाथों कष्ट उठाने पड़े थे, इसलिए कुल मिला कर वह दृढ़ रूपमें राष्ट्रवादी था; परन्तु कांग्रेसके साथ उसका निकट सम्बन्ध बहुत कुछ गांधीजीके कारण था। अपने व्यक्तिगत संपर्कके कारण गांधीजी व्यावसायिक जगतके नेताओं पर जितना प्रभाव डाल सके उतना शायद दूसरा कोई नहीं डाल सकता था। गांधीजी न होते तो - जैसा उनमें से एक उद्योगपतिने कहा - ऐसी स्थितिकी कल्पना की जा सकती थी कि देशकी प्रमुख राजनीतिक संस्था कांग्रेस बुनियादी तौर पर व्यावसायिक वर्गके विरुद्ध होती और व्यावसायिक वर्ग पर व्यक्तिगत सम्बन्धोंका कोई प्रभाव न होता। उस सूरतमें परिणाम सर्वथा भिन्न होता।

३

युद्ध-प्रयत्नके नाम पर नागरिक स्वतंत्रताओंका जो निरंकुश दमन हो रहा था, उसके बीच देशके राजनीतिक जीवनकी पुनर्रचनाका अहिंसक पद्धतिसे कैसे की जाय, यह एक प्रश्न था। इस उद्देश्यके लिए गांधीजीने जिस साधनका उपयोग किया वह था रचनात्मक कार्य। यह रचनात्मक काये राजनीतिसे



कोई सम्बन्ध नहीं रखता था, परन्तु कार्यकर्ताओं तथा जनताको इस बातका स्पष्ट भान था कि यह रचनात्मक कार्य उनके राजनीतिक ध्येयके साथ जुड़ा हुआ है।

देशके विशाल भागोंमें कांग्रेसका संगठन निष्क्रिय बना दिया गया था। परन्तु गांधीजीन कहा कि सत्याग्रहकी लड़ाईमें यह संभावना तो सदा ही रहती है। इससे सच्चे अहिंसक कार्यकर्ताओंका समूह न तो कभी निराश होगा, न पंगु और निष्क्रिय बनेगा।” कांग्रेसको फिरसे सजीव बनानेका प्रयत्न किया जा सकता है और करना चाहिये। परन्तु आप मुझसे अगर यह कहें कि कांग्रेस संस्था न हो तब तक रचनात्मक कार्य नहीं किया जा सकता, तो मैं आपसे कहूंगा कि आप नहीं जानते कि अहिंसा कैसे काम करती है। समूहों अथवा व्यक्तियोंके रूपमें काम करनेसे कांग्रेसजनोंको कोई रोक नहीं सकता। **वे एक-दूसरेसे स्वतंत्र रह कर भी परिणाममें समन्वय और संयोजन साध सकते हैं।** प्रत्येक कांग्रेसीके लिए आदर्श यह है कि वह कांग्रेसका सारा बोझा अपने कंधे पर उठा ले।” [गांधीजी अविनाशलिंगम् चेट्टियारके साथ हुई भेंटमें, २४ अप्रैल १९४५] अगर यह न हो सके तो कांग्रेसी कार्यकर्ताओंके समूह रचनात्मक कार्य जारी रखनेके लिए कामचलाऊ संस्थाएं बना लें। यदि वे ठोस, मूक और आडम्बर-रहित कार्यमें ही लगे रहें और उत्तेजना, प्रसिद्धि तथा भाषणबाजीसे बचे रहें, तो उनका मार्ग काफी सरल हो जायगा और वे अनेक कठिनाइयोंसे बच जायेंगे।

राजनीति-मात्रसे सर्वथा अलग रह कर अधिकसे अधिक राजनीतिक परिणाम प्राप्त करनेवाली रचनात्मक प्रवृत्तिकी सफलताका रहस्य यह है कि उसमें किसीके प्रति शत्रुताका भाव नहीं होता। उसमें शुद्ध अहिंसाकी अर्थात् अपने मानव-बन्धुओंकी सेवाकी भावना ही अभिव्यक्त होती है। उसका लक्ष्य व्यक्ति और समाजको उन कमजोरियों और बुराइयोंसे मुक्त करना होता है, जिनका दुरुपयोग करके अत्याचारी एक टुकड़ा डाल कर लोगोंकी आत्माओंको खरीदता है और वे मानो स्वयं अपनी गुलामीकी जंजीरें तैयार करते हैं।

ऐसी प्रवृत्तिमें उद्धतता, शेखी अथवा घमंडकी बातोंके लिए कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। वह कभी जान-बूझ कर किसीको उत्तेजित करनेवाली या कष्टमें डालनेवाली नहीं हो सकती। उसमें कायरता, सुझ-बूझके अभाव या मुखरताका कोई भी स्थान नहीं हो सकता। रचनात्मक कार्यमें लगे हुए लोग “अगर



उनके रचतात्मक प्रयत्नको विफल करनेकी कोशिश की गई तो उसका सामना करनेके लिए अवश्य तैयार रहेंगे," परन्तु वे "सविनय प्रतिकारका अवसर खोजने कभी नहीं जायेंगे।" यदि लोग बड़ी संख्यामें पूरी तरह यह रचवात्मक कार्य करें, तो उससे सविनय कानून-भंग सहित सीधी कार्रवाईका स्थान लेनेवाली एक सम्पूर्ण वस्तु मिल सकती है। कारण, कोई अत्याचारी - वह कितना ही निरंकुश अथवा अनियंत्रित क्यों न हो - आत्मशुद्धि और सेवाके किसी कार्यक्रमको इसलिए दबा देनेका साहस नहीं कर सकता कि उसका अन्तिम लक्ष्य अत्याचारी शासनका अन्त करना है, जिस प्रकार कोई अत्याचारी सत्य पर इसलिए प्रतिबन्ध लगानेका साहस नहीं कर सकता कि सत्य मनुष्यको स्वाधीन बनायेगा। और हर तरहके जलवायु और देश-कालके अनुकूल इस रचनात्मक प्रवृत्तिके अनन्त रूप हो सकते हैं, इसलिए उसके उपयोग भी लगभग अनन्त हो सकते हैं - जिनसे किसी भी तरहके दमनके होते हुए भी कोई न्यायपूर्ण संग्राम जारी रखा जा सकता है और अन्तमें उस दमन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। वर्तमान कहानीके दौरान पाठकोंको इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे।

सरकारके प्रति कांग्रेसजनोंका क्या रवैया होना चाहिये ? जहां मिल सके वहां सरकारी सहायता रचनात्मक कार्यके लिए मांगी या स्वीकार की जाय या नहीं ? इन प्रश्नोंके उत्तरमें गांधीजीने कहा कि जहां हमारी अपनी ही शर्तों पर अर्थात् अपनी प्रारंभ-शक्ति या कार्यकी स्वतंत्रता खोये बिना सरकारी सहायता मिल सकती हो वहां वह ली जा सकती है और ली जानी चाहिये ।

उनसे यह प्रश्न भी पूछा गया कि अहिंसाकी प्रतिज्ञासे बंधे हुए कांग्रेसजन सरकारकी तरफसे चलाये जानेवाले मुकदमोंमें उन लोगोंके बचावमें मदद दे सकते हैं या नहीं, जिन पर हिंसाके गंभीर अपराधोंका अभियोग लगाया गया हो? गांधीजीने उत्तर दिया कि अहिंसाका धर्म बुरेसे बुरे अपराधीको भी कानूनी न्याय दिलानेकी मनाही नहीं करता। १९४२ के आंदोलनके सिलसिलेमें जिन लोगों पर मुकदमे चल रहे हैं या जिन्हें सजा हो चुकी है, वे यदि अपना बचाव करना चाहें तो उन्हें मदद देनी चाहिये।

मध्यप्रान्तमें 'भारत छोड़ो' आन्दोलनके समय कुछ लोगोंको दंगेके एक मामलेमें मृत्युदण्ड सुनाया गया था। इस दंगेमें आष्टी और चिमूर गांवसे लोगोंकी भीड़ने कुछ पुलिसवालोंको मार डाला था। इसके



बाद सरकारकी ओरसे बदलेकी भयंकर कार्रवाइयां की गई और ऐसा कहा जाता है कि अभियुक्तोंकी गिरफ्तारीके बाद सेनाने उनकी स्त्रियों पर अवर्णनीय अत्याचार किये।

भारतके लाखों लोगोंके लिए चिमूर और आष्टीकी वह करुण घटना एक ऐतिहासिक स्मृति बन गई थी। जिन दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियोंमें वह घटना हुई, उसके जो करुण परिणाम हुए और कैदियोंको लम्बे समय तक जो सतत भयंकर मानसिक और शारीरिक पीड़ा भुगतनी पड़ी, उससे सारा किस्सा एक अनोखी वेदना और कड़वाहटसे भर गया था। उन कैदियोंको फांसीकी सजा दी जायगी, इस आशंकाने जनताकी भावनाओंको अतिशय उत्तेजित कर दिया था। देशका प्रत्येक व्यक्ति निराश हो गया था। केवल गांधीजीको ही निराशा नहीं हुई, क्योंकि उनका यह गहरा विश्वास था कि कोई व्यक्ति उद्धारसे परे नहीं होता और कोई अपराध दयाके सर्वव्यापी क्षेत्रसे बाहर नहीं होता। उन्होंने ब्रिटिश शासकोंसे अपील की : “मैं किसी भी मामलेमें राज्यकी तरफसे फांसी दिये जानेके विरुद्ध हूं। परन्तु चिमूर-आष्टी जैसे मामलोंमें तो फांसीकी सजाके अधिकसे अधिक विरुद्ध हूं। लोगोंने ८ अगस्त, १९४२ को तथा उसके बाद जो कुछ किया, वह उत्तेजनाकी स्थितिमें किया था। अगर इस समय ये फांसियां दी जायंगी, तो यह निर्दयतापूर्वक और जान-बूझकर किया हुआ खून और उससे भी अधिक भयंकर वस्तु सिद्ध होगी। क्योंकि यह विधिवत् किया जायगा और तथाकथित कानूनके नाम पर किया जायगा। इस घटनाके कारण पहलेसे ही मौजूद दुःखदायी कटुतामें अतिशय वृद्धि होनेके सिवा और कुछ नहीं होगा। मैं हृदयसे चाहता हूं कि इन फांसियोंका विचार छोड़ दिया जाय !” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, ३१ मार्च १९४५]

साथ ही उन्होंने इस विषयमें लोकमतको गति देनेका काम भी आरम्भ कर दिया। बम्बईमें गांधीजीके यजमानके घर फांसियोंके लिए नियत तारीखकी पहली रात देर तक टेलीफोन जाते-आते रहे। उन्होंने विभिन्न समाचारपत्रोंके संपादकों द्वारा प्रकाशित करनेके लिए एक अपील सबके पास भिजवाई। उनके एक आदेशमें यह कहा गया था: “जिन स्थानोंसे लोग सर्वसम्मत हो सकें और जहां मतभेद पैदा होनेका जरा भी खतरा न हो, वहां ३ अप्रैलको विरोध और प्रार्थनाके चिह्नस्वरूप कामकाज बन्द रख कर अखिल भारतीय विरोध दिवस मनाया जाय।”



सफलताकी संभावनाके विरुद्ध भारी कठिनाइयां दिखाई देती थीं। परन्तु गांधीजी मृत्युसे पहले मरनेमें विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने अंतिम क्षण तक आशा नहीं छोड़ी। सौभाग्यसे फांसीकी आज्ञामें बचाव करनेवाले वकीलको एक दोषका पता चल गया। परिणाम यह हुआ कि नजरसानी और पुनः मुकदमा चलानेके प्रार्थना-पत्रकी सुनवाई होने तक फांसियां रोक दी गईं। बादमें गांधीजीने इस सम्बन्धमें वाइसरॉयके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया। उस समय तक सारी राजनीतिक परिस्थितिमें नया मोड़ आ चुका था और बदली हुई परिस्थितियोंमें वाइसरॉयने मृत्यु-दण्डको घटा कर आजीवन कारावासकी सजामें बदल दिया।

*

यह आश्चर्यकी बात है कि स्वतंत्रताकी गम्भीर लड़ाईमें स्पष्ट और स्थिर दृष्टिवाले तथा अविचल आंतरिक शांति धारण करनेवाले व्यक्तिकी उपस्थितिसे वातावरणमें कितना बड़ा परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन उसके अमुक बात कहनेसे या अमुक कार्य करनेसे नहीं होता, परन्तु केवल ऐसे व्यक्तिके व्यक्तित्वसे ही हो जाता है। लोग गांधीजीके पास—किसी प्रामाणिक कंपासकी तरह—अपने मार्गकी दिशा निश्चित करनेके लिए जाते थे। गांधीजीके केवल उपस्थित रहनेसे ही लोगोंको शक्ति और सुरक्षितता अनुभव होती थी। छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े सबको समान रूपसे उनके प्रेम, सहानुभूति, सांत्वना और परिपक्व ज्ञानका प्रकाश मिलता था। उनके पत्र-व्यवहारके विपुल भंडारसे हमें इस बातकी झांकी मिलती है कि यह खमीर किस तरह काम करता था। इस पत्र-व्यवहारके द्वारा वे मित्रों, साथियों, विरोधियों और बाहरवालों तकसे अपना सजीव सम्बन्ध जोड़ लेते थे और वे सब गांधीजी और भारतकी ओर आकर्षित होते थे। इस आकर्षणका आधार वे विश्वव्यापी आदर्श थे, जिनके आधार पर गांधीजीका जीवन खड़ा था और उनके नेतृत्वमें भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम लड़ा जा रहा था। उदाहरणके लिए, डॉ. सुब्बारायन और डॉ. महमूद तो दोनों कट्टर कांग्रेसी थे, परन्तु उनके लड़के साम्यवादी दलमें शरीक हो गये थे। डॉ. सुब्बारायनका लड़का कैद हो गया था। उसकी रिहाई पर गांधीजीने उसके सुखी माता-पिताको लिखा, “आपके पुत्रको फिरसे स्वतंत्रता मिलने पर मुझे भी अपने आनन्दमें हिस्सेदार समझिये। परमात्मा करे वह जल्दी ही आपके पास पहुंच जाय। मोहन (उनका लड़का) को मुझसे इसी सप्ताहमें मिलना चाहिये। मुझे वह अच्छा लगता है।” [गांधीजीका पत्र डॉ. सुब्बारायनको, २१ मई १९४५]



जब लड़का उनसे मिल गया तो गांधीजीने फिर माता-पिताको लिखा: “मेरा खयाल था कि मैंने आपको यह बता दिया है कि मोहन मुझसे मिल कर चला गया है और अपने बारेमें पुनः मुझ पर अच्छी छाप छोड़ गया है। मैंने उसे अपने विचारका बनानेकी कोशिश तक नहीं की। मैंने केवल उसे यही अनुभव कराया कि मुझे उससे कितना स्नेह है।” [गांधीजीका पत्र डॉ. सुब्बारायनको, ३१ मई १९४५]

मोहनको उन्होंने बादमें लिखा: “जो भी कांग्रेसी नेता मुझसे मिलने आता है, वह (भारतीय साम्यवादियोंके बारेमें) एक ही कहानी कहता है। मैं उनके कहनेके आधार पर कोई मत नहीं बनाऊंगा। परन्तु उनकी बातें मुझ पर अनजाने ऐसा असर करती हैं, जिसे मैं खुशीसे टालना चाहूंगा। यह मैं अपने मनकी बात कह रहा हूं, ऐसा समझना। (साम्यवादियोंके साथ सहयोग करनेके बारेमें) जहां तक एल. का सम्बन्ध है, मैं उनसे सहमत हूं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं सहमत नहीं हूं। कारण, मुझे साम्यवादियोंके साथ कंधेसे कंधा मिला कर काम करनेमें कोई कठिनाई नहीं है। हम सबको अपने अपने अनुभवों पर निर्भर करना चाहिये।” [गांधीजीका पत्र मोहन कुमारमंगलम् को, २ जून १९४५]

डॉ. सैयद महमूदने साम्यवादियोंके साथ अच्छे सम्बन्ध रखनेकी हिमायत की थी। उन्हें गांधीजीने लिखा : “साम्यवादियोंकी बात यदि कहूं तो . . . मैंने उनसे मिलने और उनसे मित्रता करनेकी कोशिश अपना रास्ता छोड़ कर भी की है। परन्तु जोशीने तो मुझे एकदम यही लिख दिया कि मैं उन्हें अधिक कुछ न लिखूं। मैं स्वयं तो यह चाहता हूं कि जैसे हबीब (डॉ. महमूदका लड़का) यहां आया है वैसे उनमें से कोई भी यहां आ जाय। वे मुझे अपने विचारका बना सकते हैं। उनमें से कुछ यहां आकर रह चुके हैं। इससे अधिक मैं कुछ कर सकता हूं ? क्या मुझे करना चाहिये?” [गांधीजीका पत्र डॉ. सैयद महमूदको, १ जनवरी १९४५]

राजाजीके साथ राजनीतिक दृष्टिकोणका मतभेद पहलेकी तरह ही बना रहा। परन्तु जब एक कांग्रेसी साथीने राजाजी पर अखबारोंमें हमला किया, तो गांधीजीने राजाजीको लिखा : “मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मैं इस आदेशका अक्षरशः पालन करता हूं कि “किसी भी बातकी चिन्ता मत रखो।” यदि हम ठीक हैं तो सब कुछ ठीक हो जायगा। क्या आप अभी तक अकेले हैं? मुझे एम. का अप्रत्यक्ष प्रहार पसन्द नहीं आया। यह बात मैंने उन्हें भी लिखी है। ईश्वरको धन्यवाद है कि उसने आपको गैंडेकी



खाल दी है !” [गांधीजीका पत्र राजाजीको, ६ जून १९४५] काश, राजाजीकी चमड़ी सचमुच इतनी मोटी होती !

सरोजिनी नायडूका पुत्र चल बसा था। उन्होंने गांधीजीको ‘भाग्य-विधाता’ का विशेषण दिया था। उसीका उपयोग करके गांधीजीने उन्हें लिखा : [गांधीजीका पत्र सरोजिनी नायडूको, ९ जून १९४५]

प्रिय गायक,

मैंने पिछले महीनेकी १३ तारीखका आपका तार इसीलिए रख छोड़ा था कि आपके महान मातृस्नेहके लिए प्रेमकी कुछ पंक्तियां लिखूं। आपका तार उतना ही अच्छा था जितना किसी ऐसे तत्त्वज्ञानीका हो सकता है—जो उपयुक्त अवसर पर अपने तत्त्वज्ञानका उपयोग करता हो। आपके पत्रसे माताका उत्तम वात्सल्य प्रगट होता है। पता नहीं कि आपसे अधिकसे अधिक प्रेम कवयित्रीके नाते किया जाय अथवा तत्त्वज्ञानीके नाते या माताके नाते? आप ही बताइये।

विधाता

बादमें जब उनकी पुत्री बीमार हुई, तो गांधीजीने सरोजिनी देवीको लिखा: [गांधीजीका पत्र सरोजिनी नायडूको, १६ जून १९४५]

प्रिय गायक,

मैं उत्तम कोटिका महात्मा नहीं हूं—वास्तवमें तो महात्मा ही नहीं हूं। परन्तु मैं इतना जानता हूं कि मैं एक वत्सल पिता हूं और इसलिए मेरा हृदय आपके जैसी वात्सल्यमयी माताकी तरफ अपने आप दौड़ जाता है। लीलामणिके लिए एक पत्र भेज रहा हूं। आशा है, वह औरोंके लिए न सही, परन्तु आपके लिए तो जरूर जीवित रहेगी। लीलामणिकी प्रगतिकी सूचना मुझे देती रहिये।

आपने जिस क्षणभंगुर दृश्यका उल्लेख किया है, उसमें मेरी बहुत कम दिलचस्पी है।

विधाता



उनकी बीमार पुत्रीको गांधीजीने इस प्रकार लिखा : [गांधीजीका पत्र लीलामणि नायडूको, १६ जून १९४५]

प्रिय लीलामणि,

तुम्हें स्मरण है कि जब मैं तुम्हारे साथ 'गोल्डन थ्रेसहोल्ड' में था तब बरसों पहले तुम मेरी गोदमें बैठी थीं? अब तो तुम इतनी बड़ी हो गई हो कि मेरी गोदमें नहीं बैठ सकतीं। परन्तु मैं तुम्हारे पास होऊं तो तुम्हारा सिर उठा कर अपनी गोदमें रख लूं और तब तक तुम्हें न छोड़ूं जब तक तुम मुझे यह वचन न दे दो कि तुम तमाम डॉक्टरी आदेशोंका अक्षरशः पाकून करोगी। तुम्हारे शिष्योंको तुम्हारी जरूरत होगी। परन्तु तुम्हारी पुत्र-वियोगसे पीड़ित माताको तुम्हारी सबसे अधिक आवश्यकता है। उनके खातिर 'हां' कहो और जीती रहो ।

बापूके आशीर्वाद

हरिजन-कार्य करनेवाले एक कार्यकर्ताको यह पत्र लिखा: "अपना काता सूत आवश्यक खादीके लिए बेच देना (बजाय इसके कि सूत दानमें देकर अपने पहननेकी खादीके लिए दूसरों पर निर्भर रहा जाय), अपनी भिक्षासे जीवन—निर्वाह चलाना और बाकी हरिजन-कार्यमें लगा देना अधिक ईमानदारीकी बात है। लोगोंको तुम्हारी योग्यता मालूम हो जानी चाहिये । अस्पृश्यता-निवारणका एकमात्र उपाय हरिजनोंका मंदिर-प्रवेश ही नहीं है। वह तो अनेक उपायोंमें से एक है। सभी उपाय आजमाने चाहिये।" [गांधीजीका पत्र श्रीरामलूको, २९ मई १९४५]

एक मित्रकी लड़कीको गांधीजीने लिखा: [गांधीजीका पत्र, ३. अक्टूबर १९४४]

प्यारी बच्ची,

तुम अब भी बच्ची ही हो—सदाकी भांति ही लापरवाह हो। तुमने पता नहीं लिखा। तारीख अधूरी छोड़ दी। लिखनेमें अशुद्धियां हैं। और तुम्हारा पत्र मुझे कल मिला, जो विवाहका



दिन था। खैर, देरसे भी मिला तो सही। अस्तु, मैं 'क' और उनकी पत्नीके लिए आशीर्वाद भेजता हूं। उनमें से कौन किसके योग्य सिद्ध होगा?

बापूके आशीर्वाद

फ्रेन्ड्स एम्बुलेंस यूनिटवाले रिचर्ड साइमन्ड्सको, जिन्होंने एक साथी कार्यकर्ता ग्लैन डेविस और उनकी भारतीय पत्नी सुजाताको गांधीजीसे मिलने भेजा था, यह 'छोटा और मीठा' पत्र लिखा: "डेविसने 'चोरी कर ली है।' उसे इस चोरीके योग्य सिद्ध होना पड़ेगा !" [गांधीजीका पत्र रिचर्ड सीमन्ड्सको, १२ जनवरी १९४५]

*

गांधीजी समय समय पर ऐसे प्रेरक सन्देश भेजा करते थे, जो निर्भयतापूर्ण साहस, भारतके उज्ज्वल भविष्य तथा नैतिक नियमकी अंतिम विजयकी अमर श्रद्धासे भरे होते थे। ये सन्देश करोड़ों लोगोंके हृदयोंमें प्रतिध्वनित होते थे और उनके भीतर भी उनके (गांधीजी) जैसी श्रद्धाकी जोत जगाते थे।

"गांधीजीज़ कॉरिस्पॉन्डेन्स विथ दि गवर्नमेन्ट : १९४२-४४" नामक पुस्तकका उन्होंने एक छोटासा प्राक्कथन लिखा था, जो इस प्रकार था: "सारा भारत एक विशाल जेलखाना है। वाइसरॉय उस जेलखानेके गैर-जिम्मेदार सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। उनके मातहत बहुतसे जेलर और वॉर्डर हैं। . . . यदि कयामतका दिन है, अर्थात् कोई ऐसा न्यायाधीश है जिसे हम देखते नहीं हैं किन्तु फिर भी जो हमारे क्षणभंगुर अस्तित्वकी अपेक्षा कहीं सच्चे रूपमें विद्यमान है, तो उसका न्याय जेलरके विरुद्ध कठोर और कैदियोंके पक्षमें होगा। . . . सत्य और अहिंसा . . . कहींसे भी मिलनेवाली सच्ची सहायताका तिरस्कार नहीं करते। यदि वह सहायता अंग्रेजों और मित्रराष्ट्रोंसे मिलती है, तो और भी अच्छा। तब मुक्ति जल्दी आयेगी। यदि वे मदद नहीं करेंगे, तो भी मुक्ति तो निश्चित ही है। इतनी ही बात है कि पीड़ा . . . अधिक सहन करनी होगी, समय अधिक लगेगा। परन्तु अधिक पीड़ा और अधिक समयकी क्या चिन्ता, यदि स्वतंत्रताके पक्षमें उनका उपयोग हो; विशेष रूपमें जब सत्य और अहिंसाके द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त की जाय !"



धीरे धीरे स्थिति सुधरने लगी। ३१ मार्च, १९४५ को—राष्ट्रीय सप्ताहके समारोहसे [सन् १९१९ से भारत ६ अप्रैलसे १३ अप्रैल तकका सप्ताह राष्ट्रीय सप्ताहके रूपमें मनाता आया था। इसमें प्रथम और अन्तिम दिन उपवास रखा जाता था और सप्ताह भर जोरोंसे रचनात्मक कार्य किया जाता था। १९१९ में ६ अप्रैलका दिन विरोध-दिवसके रूपमें मनाया गया था। उस दिन रौलट कानूनके नामसे प्रसिद्ध 'राजद्रोही अपराधों' सम्बन्धी दमनात्मक कानूनके विरुद्ध अखिल भारतीय सत्याग्रह छेड़ा गया था और उपवास तथा प्रार्थना करके हड़ताल रखी गई थीं। १३ अप्रैलके 'काले शुक्रवार' के दिन जलियांवाला बागका हत्याकांड हुआ था] पहले अपने एक वक्तव्यमें गांधीजी यह कह सके थे: " हमारी अनेक भूलोंके होते हुए भी आज हम अपने लक्ष्यके जितने निकट हैं उतने पहले कभी नहीं थे।"

४

यूरोपमें युद्ध समाप्त होने आ रहा था। सुदूर पूर्वमें भी युद्धका अन्त कुछ ही समयमें होनेकी आशा बंधने लूगी थी | परन्तु ज्यों ज्यों विजय समीप आती जा रही थी त्यों त्यों शान्ति दूर चली जा रही थी। तीसरे विश्वयुद्धके बीज पहले ही बोये जा चुके थे । कुछ ही महीने बाद अगस्त १९४५ में जापान पर गिराये गये अणुबम भावी घटनाओंके स्वरूपकी आगाही कर रहे थे।

बाहरकी अव्यवस्थासे भी मनुष्योंके मनकी अव्यवस्था अधिक बुरी थी। जैसे पहले विश्वयुद्धके बाद 'कैसरको फांसी पर चढ़ाओ' का नारा जोरोंसे उठा था, वैसे ही इस बार युद्धके अपराधियों पर मुकदमा चलानेकी आवाज लोगोंके मन पर हावी हो गई थी।

यूरोपमें युद्धका अन्त हुआ उससे दो महीने पूर्व अर्थात् ७ मार्च, १९४५ को लिखते हुए गांधीजीने कहा था: "युद्ध इस वर्ष या अगले वर्ष खतम हो जायगा। उसमें मित्रराष्ट्रोंकी विजय होगी। परन्तु अफसोस यही है कि वह नाममात्रकी विजय होगी। . . . वह विजय अवश्य ही अधिक घातक युद्धकी पूर्व-भूमिका सिद्ध होगी। . . ."

१६ अप्रैलको राष्ट्रपति रूजवेल्टके निधन पर गांधीजीने श्रीमती रूजवेल्टको 'शोक और अभिनन्दन' का यह सन्देश भेजा: "अभिनन्दन इसलिए कि आपके प्रख्यात पतिका काम करते करते और ऐसे अवसर पर अवसान हुआ, जज युद्धमें मित्रराष्ट्रोंकी विजय निश्चित हो चुकी है। भगवानने उन्हें



ऐसी संधिमें साझेदार होनेके अपमानसे बचा लिया, जो अधिक घातक युद्धकी पूर्व-भूमिका बन सकती है।”

श्रीमती रूजवेल्टने उत्तर दिया: “मुझे तो हार्दिक आशा है कि संधिके बारेमें आपका भय निराधार सिद्ध होगा।” [२९ अप्रैल १९४५ को बम्बई-स्थित अमेरिकन कौंसिल मि. हॉवर्ड डोनोवनके द्वारा श्रीमती रूजवेल्टका उत्तर] परन्तु चिह्न तो ऐसी आशाके विरुद्ध ही थे।

‘कोलियर्स वीकली’ वाले श्री राल्फ कोनिस्टनने एक अनौपचारिक भेंटमें गांधीजीसे पूछा, “धुरी राष्ट्रोंकी हारमें से उत्पन्न होनेवाली संधिके स्थायी होनेके बारेमें आपको इतनी शंका क्यों होती है?”

गांधीजीने उत्तर दिया: “कारण बहुत स्पष्ट है। हिंसाका तो आगे-पीछे अन्त होने ही वाला है। परन्तु ऐसे अन्तसे शान्तिका जन्म नहीं हो सकता। मैं निश्चित रूपसे कह रहा हूं कि यदि फिरसे संसार सयानपनकी दिशामें नहीं मुड़ा, तो हिंसक मनुष्योंका पृथ्वी परसे सफाया हो जायगा। . . . जिनके हाथ खूनसे गहरे रंगे हुए हैं, वे लोग संसारके लिए अहिंसक व्यवस्थाका निर्माण नहीं कर सकते।”

गांधीजीसे मुलाकात करनेवाले मित्रका कहना था कि बड़े राष्ट्रोंके जो प्रतिनिधिगण सान फ्रांसिस्कोमें इकट्ठे होंगे, वे तो जैसे हैं वैसे ही रहेंगे; परन्तु सामान्य जनता युद्धकी भयंकरताओंका अनुभव करनेके बाद अपनी अपनी सरकारोंको इसके लिए विवश कर देगी।

गांधीजी उनसे सहमत नहीं हुए। बोले : “मैं यूरोपियन मानसको अच्छी तरह जानता हूं। जब उसे विशुद्ध न्याय और स्वार्थके बीच चुनाव करना पड़ेगा, तो वह स्वार्थकी ओर ही झपटेगा। अमरीकाका साधारण मनुष्य भी बहुत स्वतंत्र विचार नहीं करता। रूजवेल्ट जो कहेंगे उस पर वह विश्वास कर लेगा। रूजवेल्ट उसे बाजार देते हैं, उधार पूंजी देते हैं और दूसरी ऐसी अनेक चीजें देते हैं। इसी तरह चर्चिल अंग्रेज श्रमजीवी वर्गसे कह सकते हैं कि उन्होंने साम्राज्यको सुरक्षित रूपमें टिकाये रखा है और उसके लिए विदेशी बाजार भी सुरक्षित कर दिये हैं। ब्रिटेनके लोग हमेशाकी तरह उनके पीछे चलेंगे।”

“तो आप यह नहीं मानते कि यूरोप या अमरीकामें साधारण मनुष्य उन ऊंचे आदर्शोंकी बहुत परवाह करते हैं, जिनके लिए यह युद्ध लड़नेका दावा किया जाता है?”



“नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता। अगर आपका इससे उल्टा विचार हो, तो मैं आपकी मान्यताका आदर करूंगा, परन्तु मैं उसमें भागीदार नहीं बन सकता।”

“तो क्या आप नहीं मानते कि पांच बड़ी सत्तायें या तीन बड़ी सत्तायें शांतिकी गारंटी दे सकती हैं”।

“मैं निश्चय ही ऐसा नहीं मानता। अगर वे अहंकारवश यह सोचती हों कि रंगीन और तथाकथित पिछड़ी हुई जातियोंका शोषण जारी रहते हुए भी वे स्थायी शान्ति स्थापित कर सकती हैं, तो वे मूर्खोंके स्वर्गमें रहती हैं।”

“क्या आपके विचारसे वे जल्दी ही आपसमें लड़ पड़ेंगी?”

“आप तो ठीक मेरी ही भाषामें बोल रहे हैं। रूसके साथ तो झगड़ा अभीसे शुरू हो गया है। प्रश्न यही है कि अन्य दो—यानी इंग्लैंड और अमरीका कब झगड़ना शुरू करते हैं। संभव है, शुद्ध स्वार्थ उन्हें सयाना बना दे और जो लोग सान फ्रांसिस्कोमें एकत्र होंगे वे यह कहें: ‘गिरी हुई लाशके लिए हमें आपसमें नहीं लड़ना चाहिये।’ साधारण मनुष्यको इससे कोई लाभ नहीं होगा। इसके विपरीत, अहिंसक मार्गसे भारतकी स्वतंत्रता आयेगी, तो वह संसारकी शोषित जातियोंके लिए सबसे बड़ी बात होगी। इसलिए मैं इसी पर संपूर्ण ध्यान केन्द्रित करनेका प्रयत्न कर रहा हूं। यदि भारत अपनी बारी आने पर न्यायका मार्ग ग्रहण करेगा, तो वह शान्ति-परिषद् में अपनी शर्तें नहीं रखेगा। परन्तु शान्ति और स्वतंत्रता उसकी धरती पर उतर आयेंगी - एक भयंकर प्रचंड धाराके रूपमें नहीं बल्कि “स्वर्गसे बरसनेवाली कोमल वर्षा” के रूपमें। अहिंसा द्वारा प्राप्त स्वतंत्रता भारतके छोटेसे छोटे आदमीके लिए भी होगी। इसीलिए मैं अहिंसाका पुजारी हूं। जब देशका छोटेसे छोटा आदमी भी यह कह सकेगा कि “मुझे मेरी स्वतंत्रता मिल गई तभी मैं कह सकता हूं कि मुझे भी स्वतंत्रता मिल गई है।”

इसके बाद बातचीत आक्रमणकारी राष्ट्रोंके साथ युद्धके बाद कैसा व्यवहार किया जाय इस विषय पर चल पड़ी।



गांधीजी बोले: “एक अहिंसक मनुष्यके नाते मैं व्यक्तियोंको दंड देनेमें विश्वास नहीं रखता। किसी समूचे राष्ट्रको दंड देनेकी बात तो मुझे और भी कम बरदाश्त हो सकती है।”

“युद्धके अपराधियोंका क्या होगा?”

गांधीजीने तुरन्त तीखे स्वरमें पूछा, “युद्धका अपराधी क्या होता है?” क्या युद्ध स्वयं ईश्वर और मातवताके विरुद्ध एक अपराध नहीं है? और इसलिए जिन लोगोंने युद्धकी स्वीकृति दी, उसकी योजना बनाई और उसका संचालन किया, वे सब क्या युद्धके अपराधी नहीं हैं ?” युद्धके अपराधी केवल धुरी राष्ट्रोंमें ही नहीं हैं। रूजवेल्ट और हिटलर और मुसोलिनीसे युद्धके कम अपराधी नहीं हैं।

एकसे अधिक अंग्रेजोंने गांधीजीके सामने जो बात स्वीकार की थी, उसीको गांधीजीने दोहराया कि हिटलर तो ‘ग्रेट ब्रिटेनका पाप’ है। “हिटलर ब्रिटिश साम्राज्यवादका उत्तरमात्र है और यह बात मैं इस तथ्यके बावजूद कहता हूं कि हिटलरवाद और उसके यहूदी-विरोधी वादसे मुझे घृणा है। केवल जर्मनी और जापानने ही नहीं, परन्तु इंग्लैंड, अमरीका और रूस सबने अपने हाथ थोड़े-बहुत खूनसे रंगे हैं। जापानियोंने अपने आपको केवल पश्चिमका योग्य शिष्य ही सिद्ध किया है। उन्होंने पश्चिमके चरणोंमें बैठ कर जो विद्या सीखी उसीसे पश्चिमको पराजित कर दिया।”

“आप सान फ्रांसिस्कोमें किस बातका सिद्ध होना पसन्द करेंगे?”

“सब राष्ट्रोंमें समानता - बलवानसे बलवान और दुर्बलसे दुर्बल राष्ट्रके बीच समानता। बलवानोंको दुर्बलोंके स्वामी या शोषक न बन कर उनके सेवक बनना चाहिये।”

“क्या यह अतिशय आदर्शवादी बात नहीं है?”

“हो सकती है। परन्तु आपने मुझसे यह पूछा था कि मैं क्या होना पसन्द करूंगा। मेरा यह विश्वास है कि मानव-स्वभाव सदा ऊंचा उठता रहा है। इसलिए मैं मानव-स्वभावके भविष्यके बारेमें कभी निराशावादी विचार नहीं रख सकता। यदि पांच महासत्तायें यह कहें कि ‘हमारे पास जो कुछ है उसे तो हम रखेंगे ही’, तो परिणाम एक भयंकर विपत्ति होगी और फिर तो .संसारका और पांच महासत्ताओंका



भगवान ही मालिक है। फिर दूसरा अधिक संहारक युद्ध होगा, और दूसरी सान फ्रांसिस्को परिषद होगी।”

“दूसरी सान फ्रांसिस्को परिषद्के परिणाम क्या पहलीसे कुछ अधिक अच्छे होंगे?”

“आशा तो यही है। तब लोग अधिक सयाने हो जायंगे। अपने तीसरे अनुभवके बाद वे कुछ सन्तुलन प्राप्त कर लेंगे।”

“क्या आप पश्चिमके लोगोंको शान्तिकी कला सिखानेके लिए वहां नहीं जायंगे ?” मुलाकातीने पूछा।

उत्तरमें गांधीजीने बताया कि किस प्रकार दूसरे विश्वयुद्धके पहले कुछ ब्रिटिश शान्तिवादियोंने, जिनमें डिक शेपर्ड और मॉड रॉयडन भी थे, उन्हें लिख कर मार्गदर्शन चाहा था। “मेरे उत्तरका सार यह था: “यदि आपमें से एक भी शान्तिवादी सही मानेमें सच्चा अहिंसक बन सके, तो वह अकेला यूरोपके लोगोंमें अहिंसाका प्रचार कर सकेगा। मैं कितना ही चाहूं तो भी आज मैं यूरोपको नहीं बचा सकता। मैं यूरोप और अमरीकाको जानता हूं। अगर मैं वहां जाऊं तो अजनबी माना जाऊंगा। कदाचित् मेरी अतिशय प्रशंसा कर दी जाय, परन्तु इतना ही होकर रह जायगा। जिस भाषाको वे लोग समझ सकते हैं, उसमें मैं उनके सामने शान्तिका विज्ञान प्रस्तुत नहीं कर सकूंगा। परन्तु यदि मैं भारतमें अपनी अहिंसाको सफल बना सकूं, तो वे मेरी बात समझेंगे। तब मैं भारतके द्वारा बोलूंगा।” इसलिए मैंने अमरीका और यूरोपके निमंत्रण स्वीकार नहीं किये । आज भी मेरा यही उत्तर होगा।”

“अगर आप सान फ्रांसिस्कोमें हों, तो किस चीजकी हिमायत करेंगे?”

“अगर मैं यह जानता होता तो आपको जरूर बता देता। परन्तु मेरा स्वभाव कुछ अलग ही है। जब कोई स्थिति मेरे सामने पैदा होती है तब उसका हल मुझे सूझ जाता है। मैं ऐसा आदमी नहीं हूं, जो एकान्तमें बैठ कर समस्याओं पर विचार करता हो। मैं कर्मयोगी मनुष्य हूं। कोई परिस्थिति मेरे सामने खड़ी होती है तब उसमें व्यवहारकी दिशा मुझमें अपने आप स्फुरित होती है। तर्क किसी घटनाके पहले नहीं किन्तु बादमें आता है। मैं जानता हूं कि जिस क्षण मैं संधि-परिषद्में पहुंचूंगा उसी क्षण उपयुक्त



वाणी मुझे सूझ जायगी, पहले नहीं सुझेगी। परन्तु इतना मैं जरूर कह सकता हूं कि वहां मैं जो भी कुछ कहूंगा वह युद्धकी दृष्टिसे नहीं, परन्तु शान्तिकी दृष्टिसे ही कहूंगा।”

अन्तमें वे विश्व-सरकारके प्रश्न पर आये। किस प्रकारका विश्व-संगठन स्थायी शान्ति स्थापित करेगा या उसकी रक्षा करेगा?

“केवल मुख्यतः सत्य और अहिंसा पर आधारित संगठन।”

“संसारकी वर्तमान अपूर्ण अवस्था और अपूर्ण मानव-स्वभावको देखते हुए आपकी रायमें किन साधनोंसे शान्तिकी स्थापना होगी?”

“पिछले प्रश्नके उत्तरमें बताई गई शर्त लगभग पूरी हो, तो ही शान्तिकी स्थापना हो सकती है।”

“क्या आप चाहते हैं कि विश्व-सरकारकी स्थापना हो? ”

“हां, मैं व्यावहारिक आदर्शवादी होनेका दावा करता हूं। जिस हद तक सिद्धान्तोंका बलिदान न करना पड़े उस हद तक मैं समझौतेमें विश्वास करता हूं। मैं जैसी विश्व-सरकार चाहता हूं वह शायद आज ही मुझे न मिल सके। परन्तु यदि वह सरकार ऐसी हुई जो मेरे आदर्शको स्पर्श कर सके, तो मैं समझौतेके रूपमें उसे स्वीकार कर लूंगा। इसलिए यद्यपि मैं विश्व-संघ पर मोहित नहीं हूं, फिर भी यदि वह वास्तवमें अहिंसात्मक आधार पर बना, तो उसे स्वीकार करनेके लिए मैं तैयार रहूंगा।”

गांधीजी किस हद तक समझौता कर सकते थे, यह उन्होंने एक पोलिश मित्रको लिखे पत्रमें इस प्रकार समझाया था: “अहिंसामें विश्वव्यापी विश्वास उत्पन्न न हो तब तक व्यवस्था रखनेके लिए विश्व-पुलिस रह सकती है।” [गांधीजीका पत्र मॉरिस फ्रिडमैनको, २८ जुलाई १९४२]

अन्तमें उनसे यह पूछा गया: यदि संसारके राष्ट्र शान्तिकी रक्षा और सब प्रजाओंके कल्याणकी साधनाके लिए विश्व-सरकारका विचार करें, तो क्या उस सामान्य योजनामें सम्मिलित होनेके लिए आप स्वाधीनताकी भारतीय आकांक्षाका परित्याग करनेका समर्थन करेंगे?



गांधीजीने उत्तर दिया: यदि आप अगस्त १९४२ के कांग्रेसके उस प्रस्तावको, जिसकी इतनी निन्दा की गयी है, ध्यानसे पढ़ेंगे, तो आपको पता लग जायगा कि संसारमें स्थायी शान्ति बनाये रखनेकी किसी भी योजनामें असरकारी भाग लेनेके लिए भारतको स्वाधीनता मिलना आवश्यक है।

सान फ्रान्सिस्को सम्मेलनके पहले ही गांधीजीने एक वक्तव्यमें कहा था कि कांग्रेसने १९४२ में ही यह घोषणा कर दी थी कि संसारकी भावी शान्ति, सुरक्षा और व्यवस्थित प्रगति स्वतंत्र राष्ट्रोंके एक ऐसे विश्व-संघका तकाजा करती है, जो अपने अंगभूत राष्ट्रोंकी स्वतंत्रताकी, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रके शोषण तथा उस पर होनेवाले आक्रमणको रोकनेकी, राष्ट्रीय अल्प-संख्यक जातियोंके संरक्षणकी, विश्वके सारे पिछड़े हुए प्रदेशों और जातियोंकी प्रगतिकी तथा समस्त मानव-जातिके कल्याणके लिए विश्वकी साधन-सामग्रीको एकत्र करने तथा उसका उपयोग करनेकी गारंटी देगा। [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १७ अप्रैल १९४५] उस प्रस्तावमें यह भी कहा गया था कि ऐसे विश्व-संघकी स्थापना होने पर सब देश निःशस्त्रीकरण पर अमल करेंगे और स्वाधीन भारत ऐसे विश्व-संघमें सहर्ष सम्मिलित होगा।

उसी वक्तव्यमें गांधीजीने कहा था कि जीवनभर युद्धका विरोधी और शान्तिका उपासक होनेके कारण मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक मित्रराष्ट्र या संसार युद्धकी सफलता और उसके साथ लगी हुई भयंकर घोखेबाजी और छल-कपटमें विश्वास रखना नहीं छोड़ देंगे, तब तक शान्तिकी आशा नहीं रखी जा सकती। “मुझे इस बातका बड़ा भय है कि विश्व-सुरक्षाकी जो रचना खड़ी करनेका विचार किया जा रहा है, उसकी तहमें अविश्वास और भय है और ये दोनों ही युद्धको जन्म देते हैं।”

इसी प्रकार जब तक मित्रराष्ट्र समस्त जातियों और राष्ट्रोंकी समाजता और स्वतंत्रता पर आधारित सच्ची शान्ति स्थापित करनेका निश्चय नहीं कर लेंगे, तब तक विश्वशान्ति या विश्व-सुरक्षाकी आशा नहीं रखी जा सकती। “एक राष्ट्रके द्वारा दूसरे राष्ट्रके शोषण और एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्रके प्रभुत्वके लिए ऐसे संसारमें कोई स्थान नहीं हो सकता, जो युद्धमात्रका अन्त करनेका प्रयत्न कर रहा हो। ऐसे संसारमें ही सैनिक दृष्टिसे निर्बल राष्ट्र बलवान राष्ट्रोंकी धौंस या शोषणके डरसे मुक्त होंगे।”

इस स्थितिको जन्म देनेके लिए पहला कदम यह होगा कि भारतको तुरन्त स्वाधीन घोषित कर दिया जाय। जब तक भारत और उसके जैसे दूसरे देश मित्रराष्ट्रोंके पैरोंमें लोटते रहेंगे तब तक संसारमें



शान्तिकी स्थापना नहीं हो सकती। “भारतकी स्वतंत्रतासे दुनियाकी तमाम शोषित जातियोंको इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा कि उनकी स्वतंत्रता बहुत निकट है।... इस प्रकार भारतीय स्वाधीनताकी मांग किसी भी तरहसे स्वार्थपूर्ण नहीं है। उसके राष्ट्रवादमें आन्तर-राष्ट्रवाद समाया हुआ है।”

गांधीजीने यह भी कहा कि शान्तिकी संधि न्यायपूर्ण होनी चाहिये। “इसके लिए वह दण्ड देतेवाली और बदला लेनेवाली न हो। जर्मनी और जापानको अपमानित नहीं करना चाहिये। . . . तब प्रयत्न उन्हें मित्र बना लेनेका होना चाहिये। . . . बलवान कभी बदला लेनेवाले नहीं होते। . . . इसलिए शान्तिके फल सबको समान रूपसे बांट कर खाने चाहिये। . . . मित्रराष्ट्र अन्य किसी उपायसे अपने लोकतंत्रका प्रमाण नहीं दे सकते। . . . इन बातोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि जबरन निःशस्त्र बनाये हुए राष्ट्रों पर शस्त्रोंके बल पर कोई संधि नहीं थोपी जायगी।”

गांधीजीको लगता था कि शान्तिके पुजारियोंके लिए फिर कार्य करनेका समय आ गया है। युद्धके कारण दृढ़से दृढ़ मनवाले पुजारी भी निर्बल सिद्ध हुए थे। उस समय डरने लोगोंका गला दबा रखा था। इससे उनकी क्रिया कुंठित हो रही थी। परन्तु अब तो भयका वह दुःस्वप्न समाप्त हो गया है। इसलिए ऐसे लोगोंको विजेताओंकी पराजितोंसे वैरका बदला लेनेकी, उनका झोषण करनेकी तथा उनका अपमान करनेकी लालसाका साहस और दृढ़तासे विरोध करना चाहिये। विश्वशान्तिके लिए बताई हुई गांधीजीकी शर्तें अर्वाचीन सभ्यताकी सच्ची कसौटी करनेवाली थीं।

अन्तमें गांधीजीने कहा कि यदि शान्तिकी उपरोक्त जरूरी शर्तें मान ली जायं, तो सान फ्रांसिस्को सम्मेलनमें ब्रिटिश साम्राज्यवादके नियुक्त किये हुए भारतीयों द्वारा भारतके प्रतिनिधित्वकी ‘धोखाधड़ी’, एक स्वाभाविक कदमके रूपमें, बन्द होनी चाहिये। “ऐसा प्रतिनिधित्व कोई प्रतिनिधित्व न होनेसे ज्यादा बुरा होगा। या तो सान फ्रांसिस्कोमें भारतका प्रतिनिधित्व कोई चुना हुआ प्रतिनिधि करे या उसका कोई प्रतिनिधित्व ही न हो।”

परन्तु इसका समय अभी आया नहीं था। भारतको स्वतंत्र राष्ट्रोंकी परिषद में उचित स्थान पानेके लिए भयंकर अग्नि-परीक्षामें से गुजरना बाकी था।



अंतमें परिस्थितियां बदलने लगीं।

यूरोपमें युद्धके प्रवाहकी दिशा निश्चित रूपमें पलट चुकी थी। परन्तु यह माना गया था कि यूरोपमें धुरीराष्ट्रोंकी पराजय हो जानेके बाद भी जापानको मैदानसे भगानेमें कमसे कम दो वर्ष और लगेंगे; और युद्धकी इस आखिरी मंजिलमें मित्रराष्ट्रोंकी पूर्वीय फौजी कार्रवाइयोंका मुख्य केन्द्र भारत बनेगा। लॉर्ड वेवेल भारतके वाइसरॉय थे। इसलिए उन्हें कगा कि भारतके विभिन्न राजनीतिक दलोंके सहयोगके बिना अकालसे तबाह हुए और असन्तोषकी आगसे जल रहे भारतसे उन्हें वह सक्रिय सहयोग नहीं मिल सकेगा, जो इस कामके लिए जरूरी है। इसलिए वे कोई मार्ग निकालनेमें रस लेने लगे।

गांधी-जिन्ना वार्ताओंके कुछ समय बाद केन्द्रीय विधान-सभाके कांग्रेस-दलके नेता श्री भूलाभाई देसाईके साथ हुई एक भेंटमें वाइसरॉयने उनसे कहा, “राजनीतिक गतिरोधको समाप्त करनेके लिए मैं आपकी सहायता चाहता हूं। अब परिस्थितियां बहुत विषम हो गई हैं। अब उन्हें जहांका तहां नहीं रहने दिया जा सकता। आगे-पीछे तो हमें मिल कर ही काम करना होगा। यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीगके संसदीय दल मिलकर राष्ट्रीय सरकार रचें, तो मैं उसका स्वागत करूंगा।”

वाइसरॉयने श्री भूलाभाईको यह भी आश्वासन दिया कि यद्यपि मिश्र राष्ट्रीय सरकारको १९३५ के भारतीय शासन-विधानकी मर्यादाके भीतर ही रह कर काम करना पड़ेगा, फिर भी मैं स्वयं भारतीय दृष्टिकोणको अधिकसे अधिक सन्तोष देनेकी कोशिश करूंगा। श्री भूलाभाईको ऐसा लगा कि इस बातकी कोई गारंटी नहीं कि युद्ध जल्दी खतम हो जायगा या उसके अन्तमें कोई अधिक अनुकूल परिस्थिति सामने आयेगी। यह अवसर और प्रस्ताव इतना अच्छा है कि इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। साथ ही, इससे कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंकी रिहाईकी संभावता भी बढ़ जायगी, क्योंकि उनकी नजरबन्दीके कारण किसी भी राजनीतिक समझौतेमें रुकावट होती है।

वाइसरॉयके साथ हुई बातचीतसे प्रोत्साहित होकर श्री भूलाभाई केन्द्रीय विधान-सभाके मुस्लिम लीगी दलके उपनेता नवाबजादा लियाकतअली खांसे मिले। नवाबजादाने उनसे कहा कि केन्द्रमें कांग्रेस और लीगकी मिश्र सरकार न केवल वांछनीय है, परन्तु संभव भी है। श्री भूलाभाईने बादमें बताया कि



इस वार्ताओंके दौरान उन्होंने यह बात जिन्नाके कान पर डालनेकी सूचना नवाबजादाको की थी और “बादमें उन्होंने मुझे बताया कि यह बात उन्होंने जिन्नाके कान पर डाल दी थी।” [भूलाभाई देसाईका अखबारी वक्तव्य, १६ सितम्बर १९४६] श्री भूलाभाईको आशा बंधी।

जनवरी १९४५ के प्रथम सप्ताहमें श्री भूलाभाई सेवाग्राममें गांधीजीसे मिले और सारे प्रश्नकी उनसे चर्चा की। गांधीजीने उनसे कहा कि संसदीय रीति-नीतिको और जो कांग्रेसी उस दिशामें सोचते हैं उनके मानसको आप अच्छी तरह जानते हैं। मेरा अपना मन तो उलटी ही दिशामें चलता है। मैं नहीं मानता कि स्वाधीनता संसदीय प्रवृत्तिसे आ सकती है। परन्तु मैं मानता हूं कि संसदीय मनोवृत्तिकी जड़ देशमें जम चुकी है। कांग्रेसमें दोनों दृष्टिकोणोंके लिए गुंजाइश है। आप अपने निर्णयके अनुसार काम करनेको स्वतंत्र हैं। श्री भूलाभाईके साथ हुई अपनी बातचीतका सार नोट करते हुए उन्होंने लिखा: “कोई भी व्यक्ति अपने लिए इसे ढाल न बनाये। परन्तु सब स्वतंत्र रूपसे विचार और निर्णय करें। परन्तु इसका उपयोग यह बतानेके लिए किया जा सकता है कि मैं इस प्रस्तावके विरुद्ध नहीं हूं।” [गांधीजीका पत्र भूलाभाई देसाईको, ५ जनवरी १९४५]

गांधीजीने अपने नोटमें यह भी लिखा था: “यदि मेरी कल्पनाकी कांग्रेस और लीगकी मिश्र सरकार बने, तो मैं उसका स्वागत करूंगा। यदि कांग्रेस और लीग मिल कर संसदीय कार्य करें, तो मुझे अच्छा लगेगा। परन्तु इसके लिए आपको कार्यसमितिसे सत्ता प्राप्त करनी चाहिये। यह सत्ता प्राप्त किये बिना कोई समझौता कर लेनेमें मुझे खतरा दिखाई देता है। लीगको कांग्रेस कार्यसमितिकी रिहाई करानेके प्रयत्नमें शामिल होना चाहिये।” नोटके अन्तमें यह कहा गया था: “मैं नहीं चाहता कि आप इसमें किसी तरह खिंच जायें।”

इस सम्बन्धमें नीचेके विभिन्न कदम उठानेकी सूचना की गई थी। ये कदम दोनोंकी चर्चाओंके फलस्वरूप तथा समय समय पर गांधीजी द्वारा किये गये स्पष्टीकरणोंसे सामने आये थे।

१. कांग्रेस और लीग इस बातके लिए सहमत हों कि वे केन्द्रमें अन्तरिम सरकार बनानेमें शरीक होंगी। (क) इस सरकारमें केन्द्रीय विधान-सभाके सदस्योंमें से कांग्रेस और लीग द्वारा नियुक्त सदस्य समान संख्यामें होंगे। (ख) अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधि होंगे। और (ग) प्रधान सेनापति होगा।



२. सरकार तो भारतके वर्तमान शासन-विधानके ढांचेके भीतर रहकर ही बनाई जायगी और काम करेगी, परन्तु कांग्रेस और लीगके बीच यह स्पष्ट समझौता रहेगा कि केन्द्रीय विधान-सभाने जिस कदमके विषयमें कोई कानून पास न किया हो ऐसा कोई कदम विधानके अनुसार गवर्नर जनरलको प्राप्त सत्ताके आधार पर न तो उठाया जाना चाहिये और न उठानेका प्रयत्न होना चाहिये। यह वस्तु गवर्नर जनरलको विधानके अनुसार प्राप्त 'वीटो' की सत्ताको व्यवहारमें खतम कर देगी और नियुक्त किये गये सदस्योंको चुनी हुई विधानसभाके प्रति जिम्मेदार बनायेगी।

३. किसी यूरोपियन सदस्यको शामिल करना जरूरी हो, तो वह कांग्रेस और लीगका पसन्द किया हुआ होना चाहिये।

४. कांग्रेस और मुस्लिम लीगके बीच पहलेसे ही यह समझौता हो जाना चाहिये कि यदि ऐसी अन्तरिम सरकार बनी, तो उसका पहला कदम कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंको नजरबन्दीसे मुक्त करना होगा। इस मामलेमें लीगका दृढ़ और स्पष्ट वचन उसकी प्रामाणिकताका प्रारम्भिक प्रमाण होगा।

५. भूलाभाईको किसी बातसे बंध जानेके पहले यह विश्वास कर लेना चाहिये कि वे जो समझौता करना चाहते हैं उसे जिन्नाकी पहलेसे स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है, सारी चीज स्पष्ट हो जानी चाहिये और वह लेखबद्ध भी हो जानी चाहिये, ताकि बादमें कोई सन्देह या गलतफहमी न उत्पन्न होने पाये।

६. यदि केन्द्रमें ऐसी सरकार बने, तो फिर दूसरा कदम यह होगा कि प्रान्तोंसे गवर्नरोंका शासन हटा दिया जाय और जल्दीसे जल्दी मिश्र सरकारें बनाई जायं।

७. उचित समय पर गांधीजी कांग्रेसकी कार्यसमितिसे ऐसा कह देंगे कि भूलाभाईने उनकी अनुमतिसे यह काम किया है।

*

गांधीजीसे पूछा गया, “यदि कांग्रेस कार्यसमितिसे आपका मिलना सम्भव हो, तो क्या आप कार्यसमितिको यह योजना स्वीकार करनेके लिए समझानेका प्रयत्न करेंगे?”

“हां।”



“इस योजनाके पक्षमें आपकी क्या दलीलें हैं?”

“जिन्नाके साथ हुई मेरी वार्ताओंके बाद जिन्नाने कई लोगोंसे कहा कि गाँधीने अन्तरिम सरकारका उल्लेख तक नहीं किया था। भूलाभाईका प्रयत्न इसका उत्तर है। लेकिन अगर लीगकी नीयत सच्ची नहीं हो, तो इसका कोई नतीजा नहीं निकलेगा।”

“यदि वाइसरॉय कांग्रेस और लीगकी परवाह न करके अपने ‘वीटो’ का उपयोग करे तो क्या होगा?”

“उस स्थितिमें भूलाभाई और लियाकतअलीके बीच यह समझौता होगा कि सरकार त्यागपत्र दे दे।”

इसके परिणाम-स्वरूप ‘भूलाभाई-लियाकतअली करार’ के नामसे पुकारा जानेवाला एक समझौता हुआ और ११ जनवरी, १९४५ को केन्द्रमें एक अन्तरिम सरकार बतनानेके बारेमें उस करारकी हस्ताक्षरवाली प्रतियां भूलाभाई और नवाबजादा लियाकतअली खाने एक-दूसरेको दीं। नवाबजादाके साथ हुई अपनी बातचीतके अनुसार भूलाभाईने वाइसरॉयको इस समझौतेका आधार और सिद्धान्त बता दिया और उनसे तुरन्त कार्रवाई करनेका अनुरोध किया।

आरम्भसे ही गांधीजीने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि अगर किसी सन्तोषजनक समझौते पर पहुंचना हो, तो भूलाभाईको दृढ़ता और अना-सक्तिका पालन करना होगा। उन्होंने १४ जनवरीको भूलाभाईको एक पत्रमें लिखा : “अखबारोंमें जो कुछ निकला है उससे तो मैं चौंक गया हूं। जिन्ना साहब जो जीमें आता है, कहते हैं। लियाकतअली भी वही करते हैं। यह भी कहा जा रहा है कि मैं कांग्रेस कार्यसमितिको एक ओर रखकर मिश्र मंत्रि-मंडल बनाना चाहता हूं। यह सब क्या है? मुझे आपमें अपार विश्वास है। आप इसका ध्यान रखें कि कांग्रेस कार्यसमितिकी इजाजतके बिना कुछ भी न किया जाय। . . . सब बातें साथ साथ की जायं, यह तो मैं समझ सकता हूं। परन्तु आपको स्पष्ट कर देना चाहिये कि कार्यसमितिके बगैर हम एक कदम भी नहीं उठा सकते।”



इसके थोड़े ही समय बाद नवाबजादाने टिनेवेलीके अपने एक भाषणमें और बादमें विधान-सभामें इस बातसे इनकार कर दिया कि उनके और भूलाभाईके बीच कोई भी 'करार' हुआ था; और जिन्नाने तो इस बातसे बिलकुल साफ इनकार कर दिया कि इस सम्बन्धमें उनसे कोई परामर्श कभी किया गया था या वे उसमें किसी तरह शरीक थे।

३१ जनवरीको नवाबजादाके भाषणका उल्लेख करते हुए गांधीजीने भूलाभाईको लिखा: "उनके साथ कोई समझौता कैसे हो सकता है? यह केवल आपका ध्यान खींचनेके लिए है, ताकि आप सचेत हो जायं। . . . दूरसे सारी बातें मुझे जैसी दिखाई देती है, वे तो भयंकर मालूम हो रही हैं।"

भूलाभाईने जवाबमें लिखा: "मुझे उनसे (नवाबजादासे) फिर बात करके आपसे मिलना होगा। मैं आप पर भारी बोझ डाल रहा हूं, परन्तु हम लोग इसके आदी हो चुके हैं; और हमारा कल्याण तथा देशका कल्याण यही चाहता है।" [भूलाभाई देसाईका पत्र गांधीजीको, १ फरवरी १९४५]

इस बीच दोनों पक्षोंके एक सामान्य मित्र गांधीजीसे मिले। उन्होंने कुछ विवादास्पद प्रश्नों पर गांधीजीसे अधिक स्पष्टीकरण करा लिया। इन मित्रके साथ हुई बातचीतके दौरान गांधीजीने कहा, "गिरफ्तारियां फिर शुरू हो गई हैं और यह एक अपशकुन है। भूलाभाईको मजबूत रवैया अपनाना होगा और वाइसरॉयसे कह देना होगा कि यह नहीं चलेगा।"

२. फरवरीको गांधीजीने भूलाभाईको एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा: "देशमें जो घटनाएं हो रही हैं उनसे मैं उद्विग्न हो गया हूं। परन्तु आपको तो जरा भी अस्वस्थ हुए बिना आगे बढ़ना चाहिये और जो कुछ सही और उचित है वही करना चाहिये। परवाह नहीं यदि समझौतेकी बातचीत भंग हो जाय।"

इसी समय आष्टी और चिमूरके कैदियोंकी ओरसे की गई दयाकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी जानेसे गांधीजीका रवैया कड़ा हो गया। अपने चारों ओरके नैतिक वातावरणमें जरासा भी परिवर्तन होता, तो वे उसे ताड़ जाते थे। इसलिए वे 'वर्तमान काल' का अधिकाधिक आग्रह करने लगे। जब भूलाभाई उनसे जून १९४५ में महाबलेश्वरमें मिले तब यह वस्तु अधिक स्पष्टतासे सामने आई। उस दिन गांधीजीका मौन-दिन था। इसलिए उन्होंने लिख कर कहा: "हमारे चारों ओर जो घटनाएं हो रही हैं उन



पर विचार करनेसे मुझे मुस्लिम लीगके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें खतरा दिखाई देता है। इतना तो स्पष्ट है कि कांग्रेस कार्यसमितिकी मुक्ति और उसकी स्वीकृतिके बिना कांग्रेसके नाम पर कुछ नहीं किया जा सकता। यह भी उतना ही स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि यदि आष्टी और चिमूरके कैदियोंको फांसी दे दी गई, तो सारी बात बिगड़ जायगी। यदि लीगका रवैया न बदला, और वह भी किसी सौदेबाजीके बिना, तो कांग्रेस कार्य-समितिकी स्वीकृति मिलने पर भी मैं लीगके साथ कोई समझौता नहीं करूंगा। . . . जिन्ना लीगी और गैर-लीगी मुसलमानोंके बीच जो भेद करते हैं, वह खतरनाक है। . . . मैं ऐसी किसी चीजको दूरसे भी नहीं छुऊंगा। . . . मैं चाहता हूं कि आप (बाकीके) सब प्रश्नोंका स्पष्टीकरण करनेवाला एक मसौदा तैयार करें। . . . कांग्रेस लीगकी नकल नहीं कर सकती। . . . लीग लीगसे बाहरके किसी मुसलमानको भले ही न माने। परन्तु कांग्रेसको तो सारे राष्ट्रकी दृष्टिसे सोचना होगा। आप गैर-लीगी मुसलमानोंको छोड़कर अपनी नाव किनारे नहीं लगा सकते। . . . आपको मेरी मर्यादाएं पूरी तरहसे ध्यानमें रख कर आगे बढ़ना चाहिये। मेरा रवैया दिनोंदिन कठोर होता जा रहा है। . . . इसकी तहमें अहिंसक असहयोगमें मेरी बढ़ती हुई श्रद्धा है और संसदीय प्रवृत्तिके प्रति बढ़ती हुई उदासीनता है। . . . मेरे लिए यह कहना कठिन है कि मेरी वर्तमान मनःस्थिति मुझे अन्तमें कहां ले जायगी, क्योंकि उस अदृश्य शक्तिमें मेरी श्रद्धा दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। इसलिए मैं कलकी बात बहुत कम सोचता हूं।”

पर गांधीजीकी बार बारकी इन चेतावनियोंके बावजूद कि भूलाभाईको किसी भी बातसे बंधनेके पहले प्रत्येक बात लिखित रूपमें ले लेनी चाहिये और यह भी देखना चाहिये कि उसके बारेमें जिन्नाकी सम्मति है, ऐसा मालूम होता है कि भूलाभाईने परिणामोंके लिए अपनी अत्यधिक उत्सुकताको अपनी कानूनी बुद्धि और अपनी दूरदर्शिता पर छा जाने दिया और जो प्रारम्भिक सावधानियां उन्हें सुझाई गई थीं उनको ध्यानमें रखकर काम नहीं किया। उन्होंने कमसे कम विरोधका तरीका अपनाया। इसके लिए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी।

नवाबजादाके साथ हुए करारकी जो प्रति भूलाभाईने गांधीजीके पास भेजी थी, उस पर नवाबजादा और भूलाभाई दोनोंके हस्ताक्षर थे। परन्तु बादमें भवाबजादाने कहा, “यह बात नहीं है। श्री देसाईने एक प्रति हस्ताक्षर करके मुझे दे दी और दूसरी प्रति पर मेरे हस्ताक्षर ले लिये। जो प्रति मेरे पास है उस पर केवल श्री देसाईके ही हस्ताक्षर हैं और जैसा उन्होंने बताया है, उस पर हम दोनोंके हस्ताक्षर



नहीं हैं। उस समय इस बात पर इतना औपचारिक होना अनावश्यक समझा गया था। परन्तु बादमें जो घटनाएं हुई उन्हें देखते हुए ऐसा लगता है कि जो कुछ हुआ वह अच्छा ही हुआ। श्री देसाई अच्छी तरह जानते हैं कि कोई 'करार' नहीं हुआ है। केवल प्रस्ताव ही रखे गये थे और वे चर्चाका आधारमात्र थे। ..."
[लियाकतअली खांका अखबारी वक्तव्य, १८ सितम्बर १९४५]

इन प्रस्तावोंके बारेमें पहलेसे जिन्नाकी सम्मति प्राप्त कर लेनेकी महत्त्वपूर्ण शर्तके सम्बन्धमें भी भूलाभाईने अपने पर पड़ी हुई छापसे ही सन्तोष मान लिया था। बादमें नवाबजादाने कहा, "मैंने उन्हें (भूलाभाईको) स्पष्ट बता दिया था कि जो कुछ मैं कहता हूं वह मेरा अपना मत है और इस मामलेमें मि. जिन्नाकी सलाह लेनेका मुझे कोई मौका नहीं मिला था।" [वही]

इस प्रकार इस समझौतेकी गर्भमें ही मृत्यु हो गई। और कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंकी रिहाई होनेके बाद जब उनकी बैठक हुई, तो उन्होंने उसे नापसन्द किया और भूलाभाईने जिस ढंगसे अपना काम किया था उसे अत्यन्त गम्भीर समझा। जुलाई १९४५ में हुए शिमला-सम्मेलनके समय राष्ट्रीय सरकारकी रचनाके लिए उनका नाम कांग्रेसकी सूचीमें शामिल नहीं किया गया और बादके आम चुनावोंमें उन्हें केन्द्रीय विधान-सभाके लिए उम्मीदवार नहीं बनाया गया। इससे उन्हें गंभीर आघात लगा और कुछ ही समय बाद उनका अवसान हो गया। परन्तु इसी बीच जो समझौता उन्होंने किया था वह केन्द्रमें अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार बनानेके लिए जून १९४५ में लॉर्ड वेवेलने जो प्रस्ताव रखा उसकी नींव बन गया।

गांधीजी भूलाभाईके प्रयत्नका सदा बचाव करते रहे, क्योंकि वह तीसरे पक्षके हस्तक्षेपके बिना आपसमें समझौता करके गतिरोधको दूर करने और साम्प्रदायिक प्रश्नका निबटारा करनेका एक प्रयत्न था। और यदि वह सफल हो जाता, तो कांग्रेस और लीगके सम्मिलित कार्य द्वारा केन्द्रमें जिम्मेदारीके सिद्धान्तको दोनोंने अमली रूप दिया होता। इसलिए गांधीजी बाहरी सत्ताके थोपे हुए किसी हलकी अपेक्षा इसे कहीं अधिक पसन्द करते। 'तीसरे पक्ष' के दुष्ट प्रभावसे बचना अधिकाधिक उनकी नीतिका मुख्य आधार बनता गया था, क्योंकि केवल इसी प्रकार भारतके विभाजनको और शत्रुभाव रखनेवाले



दो पड़ोसी राज्योंके जन्मको रोका जा सकता था। अन्यथा भारतका विभाजन उन्हें अनिवार्य दिखाई देता था।

*

क्षितिजमें अपशकुनके अन्य लक्षण भी धीरे धीरे दिखाई पड़ने लगे।

मुस्लिम बहुमतवाले उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें कांग्रेस कार्यसमितिके निर्णयके अनुसार, अन्य प्रान्तोंके कांग्रेसी मंत्री-मंडलोंके साथ साथ, डॉ. खान साहबके कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलने भी ७ नवम्बर, १९३९ को इस्तीफा दे दिया था। वहां दूसरा कोई मन्त्रि-मंडल नहीं रचा जा सका और भारत शासन-विधानकी धारा ९३ के अनुसार प्रान्तमें गवर्नरका शासन स्थापित कर दिया गया था। यह गतिरोध मई १९४३ तक बना रहा। उस समय प्रान्तके गवर्नरने सरदार औरंगजेब खांको मुस्लिम लीगका मंत्री-मंडल बनानेका निमंत्रण दिया, यद्यपि ५. सदस्योंकी विधान-सभामें उन्हें केवल २. सदस्योंका ही समर्थन प्राप्त था। इन ५० सदस्योंमें से ३३ ही सक्रिय सदस्य थे; ७ खाली जगहें भरी नहीं गई थीं और १० कांग्रेसी सदस्य 'भारत छोड़ो' आंदोलनके सिलसिलेमें जेलमें बन्द थे। कांग्रेसी सदस्योंको लगातार जेलमें रख कर ही इस मंत्रिमंडलको पदारूढ़ रखा गया था। उसने अपनी अयोग्यता, लोभ और भ्रष्टाचारके कारण अपने-आपको लोगोंमें इतना अप्रिय बना लिया था कि उसके कुछ अनुयायियोंको भी उससे घृणा हो गई और उन्होंने अपना समर्थन वापस ले लिया। इसके फलस्वरूप और ५ कांग्रेसी सदस्योंके जेलसे रिहा होनेके कारण विधान-सभामें कांग्रेसकी संख्या २३ हो गई और लीगके मंत्री-मंडलके समर्थकोंकी संख्या २१ रह गई।

जनवरी १९४५ में श्री मेहरचन्द खन्नाके नेतृत्वमें सीमाप्रान्तसे एक शिष्ट-मंडल सेवाग्राम आया। श्री मेहरचन्द खन्ना बादमें पहले तो सीमाप्रान्तमें वित्तमंत्री बने, फिर निराधार शरणार्थी हुए और अन्तमें स्वाधीनताके बाद भारतीय संघमें पुनर्वास-मंत्री हुए। उन्होंने गांधीजीसे कहा कि विधान-सभाके सदस्योंका बहुमत औरंगजेब खांके मंत्री-मंडलके विरुद्ध अविश्वासके प्रस्तावका समर्थन करनेको तैयार है। गवर्नरने यह वचन दिया है कि यदि डॉ. खान साहब मंत्री-मंडल बनानेको तैयार हों, तो वे अविश्वासका प्रस्ताव विधानसभामें पेश करने देंगे।



भूलाभाई देसाई इस कदमके पक्षमें नहीं थे, क्योंकि इससे समझौतेकी उस बातचीतमें बाधा पड़ सकती थी, जो वे लियाकतअली खांके साथ चला रहे थे। परन्तु गांधीजीका विचार इसके विपरीत था। उन्होंने शिष्ट-मंडलसे कहा, अन्य प्रान्तोंकी बात कुछ भी हो, किन्तु मेरा यह दृढ़ मत है कि सीमाप्रान्तमें यदि अविश्वासका प्रस्ताव सफल हो जाय, तो वहां कांग्रेसियोंको दूसरा मंत्री-मंडल बना लेना चाहिये। आप गतिरोध पैदा किये बिना आजादीकी लड़ाईमें पूरा योग दे सकते हैं। मैं आपसे और तमाम कांग्रेसियोंसे भी यह अनुरोध करता कि सब कोई विधान-सभासे हट जायं और सम्पूर्ण असहयोग कर दें, यदि आप आज मैं मानता हूं उससे अधिक प्रगति अहिंसामें कर लेते। पर आजकी स्थितिमें ऐसा मार्ग गम्भीर खतरेसे भरा हुआ है। उसके लिए आज कोई वायुमंडल नहीं है। इसलिए आप अविश्वासके प्रस्तावको लेकर आगे बढ़ सकते हैं और कांग्रेसी मंत्री-मंडल बना सकते हैं।”

इस सलाहसे सुसज्जित होकर (मेहरचन्द खन्नाने बादमें अखबारवालोंको गर्वके साथ बताया था कि यह “लाख रुपयेका भेद” है) श्री खन्ना पेशाकर लौट गये । १२ मार्च, १९४५ को मुस्लिम लीगका मंत्री-मंडल उखाड़ दिया गया और उसके स्थान पर डॉ. खान साहबके नेतृत्वमें कांग्रेसी मंत्री-मंडल स्थापित हो गया। उसका पहला काम डॉ. खान साहबके छोटे भाई खान अब्दुल गफ्फार खांको जेल-मुक्त करना था। उन्हें लोग बादशाह खान कहते थे और कभी कभी ‘सरहदी गांधी’ भी कहते थे। उनके साथ खुदाई खिदमतगारोंको भी मुक्त कर दिया गया, जिन्होंने बादशाह खानके अहिंसक नेतृत्वका अनुगमन करनेके लिए अपने हथियार फेंक दिये थे।

कुछ ही रोजमें आसामने भी इसका अनुसरण किया। वहां शुद्ध लीगी मंत्री-मंडलको कांग्रेसके समर्थनसे मिश्र मंत्री-मंडलका रूप लेना पड़ा।

६

ग्रेट ब्रिटेनका लोकमत और समस्त संसारका तटस्थ लोकमत भारतीय स्वाधीनताके पक्षमें होता जा रहा था। राष्ट्रसंघकी परिषद् (कॉमनवेल्थ रिलेशन्स कान्फरेन्स) में ग्रेट ब्रिटेनको बहुत झेंपना पड़ा, जब उसके अपने नियुक्त किये हुए भारतीय प्रतिनिधि-मंडलके नेताने एक निश्चित तारीख तक भारतके लिए औपनिवेशिक स्वराज्यकी मांग परिषद् में रखी और ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंसे यह कह दिया कि वे



भारतको अपना लक्ष्य सिद्ध करनेसे अब नहीं रोक सकते। लॉर्ड वेवेल ब्रिटिश सरकार पर भारतीय गतिरोधको दूर करनेकी आवश्यकताके बारेमें सतत दबाव डालते रहते थे, क्योंकि उसके बिना सुदूर पूर्वके युद्ध-संचालनके लिए भारतका सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं किया जा सकता था। मार्च १९४५ में उन्हें सम्राट्की सरकारने सलाह-मशविरेके लिए लन्दन बुलाया। वे वहां थे तभी मईके पहले सप्ताहमें यूरोपका युद्ध समाप्त हो गया। और ब्रिटेनके मजदूर दलने जापानके साथका युद्ध समाप्त होने तक मिश्र-सरकार चलानेसे इनकार कर दिया, इसलिए २३ मईको मिश्र-सरकारने त्यागपत्र दे दिया। चर्चिलके नेतृत्वमें रक्षक सरकारने काम संभाल लिया और ग्रेट ब्रिटेनके आम चुनावोंके लिए ५ जुलाईकी तारीख निश्चित कर दी गई।

ज्यों ज्यों ब्रिटेनके चुनावका दिन नजदीक आता गया, कट्टर अनुदार दलवाले लोग भी यह अनुभव करने लगे कि वास्तविकताकी उपेक्षा अब नहीं की जा सकती। इसलिए ग्रेट ब्रिटेनकी सरकारसे सलाह करनेके बाद और उसकी सहमतिसे लॉर्ड वेवेलने १४ जूनको यह घोषणा की कि “१९३५ के भारतीय शासन-विधानके ढांचेके भीतर रहकर” वैधानिक परिवर्तन करनेका प्रयत्न किया जायगा। इस घोषणाके अनुसार वाइसरॉय ऐसी राष्ट्रीय सरकार बनानेका प्रयत्न करनेवाले थे, जो वाइसरॉयकी वर्तमान कार्यकारिणी परिषद (एक्जिक्यूटिव कौंसिल) का स्थान ले ले और उसमें राजनीतिक नेताओंकी सलाहसे अन्य सदस्योंके साथ साथ “सर्व हिन्दुओं और मुसलमानोंके बराबर सदस्य” ले लिये जायं। इस घोषणाके साथ ही कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंको नजरबन्दीसे रिहा कर दिया गया।

वाइसरॉयकी घोषणाके अनुसार उनके द्वारा चुने हुए विभिन्न दलोंके प्रतिनिधियोंका एक सम्मेलन (प्रथम शिमला-सम्मेलन) शिमलामें वाइसरॉयकी अध्यक्षतामें हुआ। सम्मेलन २५ जूनको प्रारम्भ हुआ और १४ जुलाई, १९४५ को समाप्त हुआ।

सम्मेलनमें उपस्थित रहनेके लिए २१ व्यक्तियोंको निमंत्रण भेजा गया था - ११ प्रास्तोंके मुख्यमंत्री, केन्द्रीय विधान-सभाके कांग्रेस-दलका नेता और मुस्लिम लीग दलका उपनेता, राज्य-परिषद् (कौंसिल ऑफ स्टेट) के कांग्रेस-दल और मुस्लिम लीगके नेता, केन्द्रीय विधान-सभाके नेशनलिस्ट पार्टी और यूरोपियन मंडलके नेता, एक एक नेता अनुसूचित जातियोंका और सिक्खोंका और अन्तमें



गांधीजी और जिन्ना । “इन दोनोंको मुख्य राजनीतिक पार्टियोंके नेताओंकी हैसियतसे” बुलाया गया था। कांग्रेसके अध्यक्षको उसका निमंत्रण नहीं भेजा गया था।

उस समय गांधीजी पूनाके समीप पंचगनी नामक एक हिल-स्टेशनमें थे। हालकी बीमारीमें आई उनकी कमजोरी अभी मिटी नहीं थी। इसलिए गर्मी शुरू होते ही वे डॉक्टरोंकी सलाहसे स्वास्थ्य-लाभ और आरामके लिए पंचगनी चले गये थे। वहीं एक पत्र-प्रतिनिधिने वाइसरॉय द्वारा रेडियो पर की गई घोषणाकी प्रति उनके हाथोंमें सौंपी। उन्होंने तुरन्त वाइसरॉयको तार किया कि मैं किसी संस्थाका प्रतिनिधि नहीं हूं। १९३४ से मैं कांग्रेसका प्राथमिक सदस्य भी नहीं रहा हूं। “व्यक्तिकी हैसियतसे मैं केवल सलाह दे सकता हूं।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १५ जून १९४५] उन्होंने आगे लिखा: “सम्मेलनमें मेरी उपस्थितिसे उसका सरकारी स्वरूप बदल जायगा; हां, मैं कांग्रेसका सत्ताधारी प्रतिनिधि बन जाऊं तो बात दूसरी है।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १६ जून १९४५] उन्होंने वाइसरॉयको सुझाया कि जहां तक कांग्रेसका दृष्टिकोण जाननेका सम्बन्ध है, उसके लिए कांग्रेसके अध्यक्षको बुलाना चाहिये। उसीको यह सत्ता है। वाइसरॉयने उनकी दलीलके औचित्यको मान लिया और सम्मेलनमें आनेके लिए कांग्रेसके अध्यक्षको निमंत्रण भेज कर अपनी भूल सुधार ली।

किन्तु गांधीजीने शिमला जाना, वाइसरॉयसे मिलना तथा जब तक वे चाहें तब तक वहां ठहरना मंजूर कर लिया। उन्होंने वाइसरॉयको लिखा, “आप तो स्वर्गवासी दीनबन्धुको जानते हैं। हम लोग सी. एफ. एन्ड्रूज़को प्रेमसे इसी नामसे पुकारते थे। उन्होंने कैम्ब्रिज मिशन और चर्चसे अपना अधिकृत सम्बन्ध तोड़ दिया था, ताकि वे धर्मकी, भारतकी और मानव-जातिकी अधिक अच्छी सेवा कर सकें। वे इंग्लैंड और भारतके बीच तथा समस्त वर्गों और पार्टियोंके बीच - अधिकृत अथवा अनधिकृत रूपमें - एक महत्त्वपूर्ण कड़ीका काम करते थे। और दिन-प्रतिदिन उनके इस स्थानका महत्त्व बढ़ता गया था। संभव हो तो मैं वैसा ही स्थान ग्रहण करना पसन्द करूंगा। शायद वह स्थान मुझे कभी न मिले। मनुष्य तो सिर्फ कोशिश ही कर सकता है।” [वही]

वाइसरॉयकी रेडियो घोषणामें ‘स्वतंत्रता’ शब्दको टाला गया था और प्रस्तावित राष्ट्रीय सरकारमें “सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानोंकी समान संख्या (पैरिटी)” की शर्त एक मूलभूत शर्तके रूपमें प्रस्तुत



की गई थी। यह और भी अधिक अशुभका सूचक था। गांधीजीने इस प्रश्नकी ओर ध्यान खींचकर वाइसरॉयको तारमें लिखा : “मैं स्वयं और कांग्रेसके विचारोंको यदि मैं जानता होऊं तो वह भी इस (सवर्ण हिन्दुओं तथा मुस्लिमोंकी समान संख्याकी) शर्तको हरगिज नहीं मान सकती। यद्यपि कांग्रेसमें बहुत बड़ी संख्या हिन्दू सदस्योंकी है, फिर भी उसने सदा शुद्ध राजनीतिक संस्था बने रहनेका प्रयत्न किया है। मैं कांग्रेसको तमाम अहिन्दुओं और निश्चित रूपसे असवर्ण हिन्दुओंको नामजद करनेकी सलाह दे सकता हूं।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १७ जून १९४५] उन्होंने यह भी लिखा: “कांग्रेस सवर्ण या अवर्ण हिन्दुओंके साथ कभी एकरूप नहीं हुई। स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए भी वह कभी ऐसा नहीं कर सकती; क्योंकि वह इकतरफा, असत्य और आत्म-घातक बात होगी।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १८ जून १९४५]

उत्तरमें वाइसरॉयने गांधीजीको आश्वासन दिया कि निमंत्रण स्वीकार करनेसे “दल किसी चीजसे बंध नहीं जायेंगे।” सम्मेलनमें सदस्य प्रस्तावोंके पक्ष या विपक्षकी चर्चा करनेके लिए और इच्छानुसार उन्हें मानने या न माननेके लिए स्वतंत्र होंगे। इससे सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए कांग्रेसका मार्ग खुला हो गया।

तीन वर्षकी अवधिके बाद बम्बईमें कांग्रेसकी कार्यसमितिकी बैठक हुई और शिमला-सम्मेलनमें उसके जो ९ प्रतिनिधि बुलाये गये थे उनके लिए उसने ‘आदेशरूप सूचनायें’ तैयार कर दीं। अन्य बातोंके साथ साथ बैठकमें इस बातका भी उल्लेख किया गया कि कांग्रेस महासमिति और दूसरी कांग्रेस कमेटियों पर अभी तक कानूनी प्रतिबन्ध लगा हुआ है। और यह “हमारे रास्तेमें रस्कावट है और इसे दबाव समझा जाना चाहिये।” यह भी कहा गया कि “कांग्रेसी कैदियोंकी बहुत बड़ी संख्या सम्मेलनकी प्रगतिमें बाधक होगी।” अधिकांश कांग्रेसी नेता जर्जर स्वास्थ्य लेकर जेलसे बाहर निकले थे। एक मित्रने कार्यसमितिकी बैठकको ‘बीमारोंकी कवायद’ कहा था ! फिर भी कार्यसमितिने निश्चय किया कि “कांग्रेसको संस्थाके रूपमें” आगामी सम्मेलनमें भाग लेना चाहिये। कार्यसमितिने सम्मेलनमें भाग लेनेवाले अपने प्रतिनिधियोंको खास तौर पर यह ध्यान रखनेका आदेश दिया कि: “दक्षिण पूर्वी एशियामें मित्रराष्ट्रोंकी विजयका परिणाम ब्रिटिश अथवा अन्य किसी भी साम्राज्यवादी आधिपत्यसे पराधीन



देशोंकी सम्पूर्ण मुक्ति होनी चाहिये। . . . अन्य किसी भी देशकी स्वतंत्रताका अपहरण करनेके लिए भारतीय साधनोंका उपयोग नहीं होगा, यह बात स्वीकार कर ली जानी चाहिये।”

चौंतीस महीनेके कारावासके बाद कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्य जेलमुक्त हुए, तब उन्तका स्वागत करनेके लिए बम्बई और शिमलाके बीचके ११०० मील लम्बे रास्तेमें विभिन्न स्टेशनों पर हर्षोन्मत्त बनी भीड़ इकट्ठी हुई थी। धीरज और अहिंसाकी विजय हो चुकी थी। लोगोंके आनन्दकी कोई सीमा नहीं थी। इसीके साथ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भारतमें शासकोंने कलके विद्रोहियोंके लिए सैनिक मोटरें, स्पेशियल ट्रेनें और हवाई जहाज आदिकी सुविधाएं खड़ी की थीं, ताकि वे लोग शिमला-सम्मेलनमें उपस्थित हो सकें। इसकी तुलना उस समथ पराजित जर्मनीमें होनेवाली घटनाओंसे की जाय, तो हिंसक और अहिंसक संग्रामके बीचका फर्क समझमें आयेगा।

गांधीजीने रेलके तापानुकूलित डिब्बेमें जानेसे इनकार कर दिया, जो शिमला जानेवाले दूसरे कांग्रेसी नेताओंके लिए सुरक्षित रखा गया था। उन्होंने तीसरे दर्जेमें ही सफर करनेका आग्रह किया। यूनाइटेड प्रेस ऑफ अमेरिकाके पत्र-प्रतिनिधि श्री प्रेस्टन ग्रोवर उसी गाड़ीमें गांधीजीके साथ थे। उन्हें गांधीजीके स्वास्थ्यकी चिन्ता थी, इसलिए रास्तेमें एक जगह गाड़ी ठहरी तब उन्होंने एक छोटासा पर्चा लिख कर गांधीजीके हाथमें दिया: “क्या तीसरे पहरके लिए आप कांग्रेसके अधिक ठंडे डिब्बेमें यात्रा करें यह अधिक बुद्धिमानीकी बात नहीं होगी ? इससे थोड़ी देर आप लेट कर आराम कर सकेंगे। आपको २४ घंटेसे जरा भी नींद नहीं आई है। रास्तेके स्टेशनों पर आपकी नींदमें बाधा पड़नेके कारण आप थके-मांदे शिमला पहुंचेंगे, तो इससे आपको कोई लाभ नहीं होगा। जैसा हम लोग अमेरिकामें कहते हैं, 'अपने आपको थोड़ा आराम दीजिये।' ”

उन्हें महात्माजीकी तरफसे यह उत्तर मिला: “आपके ममताभरे पत्रके लिए अनेक घन्यवाद ! लेकिन मुझे इस स्वाभाविक गर्मीमें पिघल जाने दीजिये। भाग्यकी तरह यह भी निश्चित है कि इस गर्मीके बाद ताजगी लानेवाली ठंडक आयेगी और उसका आनन्द मैं लूंगा। मुझे सच्चे भारतका थोड़ा स्पर्श अनुभव करने दीजिये।”



शिमला पहुंचकर जल्दी जल्दी नहा और खाकर गांधीजी वाइसरॉयसे पहली मुलाकात करने वाइसरॉय-भवन गये। गांधीजीने वाइसरॉयके साथ अपनी मुलाकात शुरू करते हुए कहा, “मैं भी आपकी तरह एक सैनिक हूं, यद्यपि मैं कोई हथियार नहीं रखता।” जब गांधीजी मुलाकातके अन्तमें रवाना होनेके लिए उठे, तो उन्होंने श्रीमती वेवेलको नमस्कार कहलवाया। वाइसरॉयने श्रीमती वेवेलसे उनका परिचय कराया। आधे घंटे तक गांधीजीकी उनसे बातें हुई। इस बातचीतके समय वाइसरॉयका पुत्र उपस्थित था और उसने दोनोंकी बातोंमें गहरा रस लिया।

गांधीजी राजकुमारी अमृतकौरके निवास-स्थान पर अगले तीन सप्ताह तक रहे। वहां उनके ऊंचे आसनसे हल्की हल्की धुंधके पार देवदारकी चादर ओडढ़ी हुई पहाड़ियों और गहरी घाटियोंका मनोहर दृश्य दिखाई देता था। वर्षा और धुंधके बीच बीचमें निकल आनेवाला भव्य सूर्य-प्रकाश, सूर्यकी किरणोंसे चमचमाते पहाड़ियोंके उस पार, दूर दूर तक फैले हुए नीले आकाशकी पृष्ठभूमिमें स्फटिकके मुकुटके समान चमकते हिमालयके श्वेत हिमका आंखोंको चौंधिया देनेवाला मनोरम दृश्य उपस्थित करता था। गांधीजी आनन्द-विभोर होकर बोल उठे: “दुनियामें इसके जैसा दूसरा कोई भव्य दृश्य नहीं हो सकता!” सम्मेलनके दिनोंमें गांधीजीने सख्त परिश्रम किया था। फिर भी सम्मेलनके अन्तमें शिमला छोड़नेसे पूर्व, अत्यधिक तनाव और थकानके कारण बीच बीचमें लुप्त होनेवाली उनके हृदयकी घड़कनें पुनः नियमित हो गई - इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। हिमालयके भव्य दृश्योंसे हुए आनन्दका यह फल आना स्वाभाविक था।

वाइसरॉय इस बातके लिए बहुत उत्सुक थे कि गांधीजी सम्मेलनमें प्रतिनिधिकी हैसियतसे शरीक हों। परन्तु गांधीजी मानते थे कि इस तरहके प्रतिनिधि-सम्मेलनमें ऐसे किसी व्यक्तिका - फिर वह कितना ही बड़ा हो - कोई स्थान नहीं हो सकता, जो प्रतिनिधि न हो। उन्होंने कहा कि संवैधानिक दृष्टिसे सही चीज यही होगी कि उन्हें छोड़ दिया जाय। परन्तु यदि उनकी सलाहकी जरूरत हो, तो वे सम्मेलनके दिनोंमें शिमला रहेंगे और दर्शकके रूपमें सम्मेलनमें उपस्थित भी रहेंगे। वाइसरॉयने कहा कि वे चाहते हैं कि गांधीजी सम्मेलनके दिनोंमें शिमला रहें। गांधीजीने उनकी बात स्वीकार कर ली।



बादमें पता चला कि जिन्नाने ऐसी शिकायत की कि गांधीजी सम्मेलनसे 'हट गये' हैं। गांधीजीने प्रेस्टन ग्रीवरके साथ हुई एक मुलाकातमें कहा, "यदि जिन्ना साहब मुझे वहां चाहते हैं, तो मुझे ले जा सकते हैं। उनकी ओरसे ऐसी चेष्टाका अर्थ यह होगा कि सम्मेलनके सामने जो मतभेद और कठिनाइयां हैं, उनके बावजूद वे समझौता चाहते हैं।"

सब बातोंको देखते हुए लॉर्ड वेवेलने कार्यका प्रारम्भ अच्छा किया और सम्मेलनकी चर्चाओंका बड़ी कुशलता, कोमलता और शान्त बुद्धिमत्तासे मार्ग-दर्शन किया : "मैंने अपनी रेडियो घोषणामें कहा था कि सब पक्षोंको कुछ न कुछ भूलने और क्षमा करनेकी वृत्ति अपनानी है। . . . फिलहाल आपको मेरा नेतृत्व स्वीकार करना होगा। . . . मैं इस सम्मेलनकी चर्चाओंको उसी दिशामें मोड़नेका प्रयत्न करूंगा, जिसमें मुझे देशका उत्तम हित मालूम होगा।"

वाइसरॉयके भाषणके इस भागका उल्लेख करते हुए गांधीजीने यह टीका की : लॉर्ड वेवेलने जो वचन कहे वे उचित और गौरवपूर्ण हैं। इस प्रकार वे सम्मेलनमें उसके नेताकी हैसियतसे काम करते हैं, न कि ब्रिटिश सरकारके एजेंटके रूपमें।"

वाइसरॉयने झगड़ेकी बातोंको कुशलतासे छोड़ दिया, जब उनसे सम्मेलनकी प्रगति रुक जानेका खतरा पैदा हुआ। वे यह समझानेका प्रयत्न कर रहे थे कि उन्होंने कहीं ऐसा नहीं कहा है कि कांग्रेस हिन्दू संस्था है। यह उस समयकी बात है जब जिन्नाने कांग्रेसके विरुद्ध अपनी आदतके अनुसार आक्रमण शुरू किया और उसे हिन्दू संस्था बताया। इसके बाद दोनोंके बीच यह झड़प हुई:

वाइसरॉय : "मेरे प्रस्तावोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसमें कांग्रेसको साम्प्रदायिक संस्था बताया गया हो।"

जिन्ना : "हम यहां जातियोंके रूपमें एकत्र हुए हैं और कांग्रेस हिन्दुओंके सिवा और किसीकी प्रतिनिधि नहीं है।"

वाइसरॉय : "कांग्रेस अपने सदस्योंकी प्रतिनिधि है।"

डॉ. खान साहब : "ये क्या कहना चाहते हैं? मैं कांग्रेसी हूं। मैं हिन्दू हूं या मुसलमान ?"



वाइसरॉय : “इसे यहीं रहने दीजिये। कांग्रेस अपने सदस्योंकी प्रतिनिधि है।”

*

गांधीजीने कांग्रेसी नेताओंसे कहा कि मैंने वाइसरॉयकी समान संख्या-सम्बन्धी घोषणाका यह अर्थ समझा है कि दोनोंमें से कोई एक जाति दूसरेकी अपेक्षा अधिक प्रतिनिधित्व नहीं मांग सकती, परन्तु “वह चाहे तो कम प्रतिनिधित्व स्वीकार करनेको स्वतंत्र है।” कांग्रेसको यह स्थिति स्वीकार कर लेनी चाहिये कि सवर्ण हिन्दुओंकी संख्या किसी हालतमें मुसलमानोंसे अधिक नहीं होगी और समस्त अल्पसंख्यक समूहोंमें से उत्तम भारतीयोंको नामजद करके संख्याकी समानताके सिद्धान्तको तोड़ देना चाहिये। इनमें एंग्लो-इंडियनों, अंग्रेजों, पारसियों, सिक्खों, यहूदियों (यदि मिल सके), भारतीय ईसाइयों, अनुसूचित जातियों और स्त्रियोंमें से एक एक प्रतिनिधि लिया जाय। इस बातका खयाल न रखा जाय कि वे कांग्रेसके सदस्य हैं या नहीं। इस प्रकार अनुसूचित जातियोंके प्रतिनिधियोंके अलावा एक-दो हिन्दुओंसे ज्यादा रखनेकी जरूरत नहीं। और वे भी इसलिए नहीं रखे जायं कि वे हिन्दू हैं, बल्कि इसलिए कि वे उत्तम भारतीय हैं—जैसे पं. नेहरू। इस प्रकार मुस्लिम लीगके हिस्सेमें चौदह सदस्योंकी वाइसरॉयकी परिषद् में एक राष्ट्रीय मुसलमानके साथ तीन या अधिक सदस्य नियुक्त करने रहेंगे। हिन्दुओंकी तरफसे समान संख्याके अधिकारका उपयोग करनेसे इनकार करके आप साम्प्रदायिक अथवा वर्गीय उलझनें दूर कर देंगे और स्वाधीन भारतके लिए विशुद्ध राष्ट्रीय आधार पर एक ठोस और सुरक्षित बुनियाद डाल देंगे। अगर आप समान संख्याका सिद्धान्त मान लेंगे, तो वाइसरॉयकी कार्यकारिणीमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें अनिवार्य रूपसे द्वन्द्वयुद्ध मचेगा और वाइसरॉयको विशेषाधिकार (वीटो) का उपयोग करनेका मौका मिल जायगा। परन्तु यदि आप अल्पसंख्यकोंमें से अपने अधिकांश प्रतिनिधि चुनकर हिन्दुओंके लिए संख्याकी समानतासे कम सदस्योंसे सन्तोष करेंगे, तो वाइसरॉयके प्रस्तावका समान संख्यावाला भाग बेकार हो जायगा।

पांच ‘सवर्ण हिन्दुओं’ के सामने पांच मुस्लिम सदस्य होंगे, तो मुस्लिम लीग वाइसरॉय और प्रधान सेनापतिकी सहायतासे मंत्रि-मंडलमें किसी भी समय गतिरोध पैदा कर सकती है। इसके विपरीत, यदि मंत्रि-मंडलमें अधिकांश प्रतिनिधि देशभक्त और राष्ट्रवादी विचारके अल्पसंख्यक समूहोंके होंगे और



एक, दो या तीन ही 'सवर्ण हिन्दू' होंगे, तो मंत्रि-मंडलमें कोई साम्प्रदायिक गुटबन्दी नहीं होगी; और यदि लीग "हिन्दू बहुमतके शासन" का भूत खड़ा करनेकी कोशिश करेगी, तो उसकी बात हवामें उड़ जायगी।

दुर्भाग्यसे कांग्रेस कार्यसमितिको गांधीजीका यह प्रस्ताव अपनानेके लिए राजी नहीं किया जा सका, यद्यपि कार्यसमितिके कुछ सदस्यों और प्रमुख कांग्रेसी नेताओंको व्यक्तिगत रूपमें गांधीजीके रुखकी बुद्धिमत्ताकी प्रतीति हो गई थी। एक प्रान्तके भूतपूर्व मुख्यमंत्रीने अपने एक साथीसे कहा था, "गांधीजीकी बात मुझे पसन्द है; गांधीजी सही कहते हैं।" साथीने जवाब दिया: "लेकिन आप हिन्दुओंके लिए समान संख्यासे कम प्रतिनिधियोंकी बात स्वीकार करनेके बाद मतदाताओंके सामने जा सकनेकी आशा रखते हैं?" मुख्यमंत्री चुप हो गये। २९ जून, १९४५ की मेरी डायरीमें यह लिखा है:

"बापूने समान संख्याके सिद्धान्त पर अपने विचार २५ ता. की शामको रविशंकर शुक्ल, बी. जी. खेर और श्रीकृष्णसिंह (क्रमशः मध्यप्रदेश, बम्बई और बिहारके भूतपूर्व मुख्यमंत्री) को और बादमें राजाजीको समझाये। २६ की सुबह उन्होंने मुझे यही बात समझानेके लिए मौलाना साहब और राजाजीके पास फिर भेजा। २६ ता. के तीसरे पहर मौलाना साहब बापूसे मिले। बापूने अपनी बातचीतके दौरानमें बहुत स्पष्ट कर दिया कि इस समान संख्याकी बातसे या उसे मान लेनेवाली कांग्रेससे मेरा कोई वास्ता नहीं हो सकता। जाते समय मौलाना साहब यह छाप छोड़ गये कि वे बापूके विचारोंको सिद्धान्त रूपमें दिलसे पसन्द करते हैं। परन्तु २८ ता. के तीसरे पहर जब प्रतिनिधि लोग सम्मेलनसे लौटे, तो मालूम हुआ कि सम्मेलनने समान संख्या सहित वाइसरॉय द्वारा प्रस्तुत किये हुए पांचों ही मूलभूत सिद्धान्तोंको स्वीकार कर लिया है। . . . कहा यह गया है कि एक पक्ष चाहे तो भी वेवेल-प्रस्तावमें प्रस्तुत समान संख्याकी बातको छोड़ देनेकी उसे स्वतंत्रता नहीं है। परन्तु बापूने सब सम्बन्धित लोगोंसे स्पष्ट कह दिया है कि थोपी हुई समान संख्याके कारण वाइसरॉयका प्रस्ताव उनके लिए घृणित बन जायगा और सर्वथा अग्राह्य हो जायगा।

"यह भी दलील दी गई है कि कांग्रेस जाति, धर्म या पार्टीका विचार किये बिना उत्तम मनुष्योंको चुननेके सिद्धान्तका आग्रह तो रख सकती है और अल्पसंख्यक समूहोंके प्रतिनिधियोंको तरजीह भी दे सकती है (बशर्ते कि वे स्वाधीनताका समर्थन करें और उसके लिए काम करें), परन्तु कांग्रेस हिन्दुओंके



लिए समान संख्यासे कम सदस्य लेनेका आग्रह नहीं कर सकती। ऐसा करना तो किसी शुद्ध हिन्दु संस्थाके लिए ही उचित हो सकता है। किन्तु बापुका दृष्टिकोण यह है कि राष्ट्रीय संस्थाके रूपमें काम करनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध होनेके कारण कांग्रेस यह स्थिति स्वीकार नहीं कर सकती। यदि कांग्रेस हिन्दुओंके बारेमें यह रुख अपनाये, तो सम्मेलन कोई आपत्ति नहीं उठा सकता; क्योंकि कांग्रेस भारतीय राष्ट्रके एक अंगके रूपमें हिन्दुओंकी तरफसे बोलनेका भी दावा करती है और सम्मेलनकी रचना साम्प्रदायिक स्वरूपकी न होकर राजनीतिक स्वरूपकी है। लीग सम्मेलनमें केन्द्रीय विधानसभाके प्रमुख राजनीतिक दलोंमें से एक दलके नाते शरीक हुई है। यदि आशय यह होता कि विभिन्न समूह साम्प्रदायिक आधार पर काम करें, तो हिन्दू महासभाको निमंत्रण देना चाहिये था और कांग्रेसको छोड़ देना चाहिये था।

“जिन्ना वाइसरॉयकी कार्यकारिणी परिषद् में अल्पसंख्यकोंको उदार प्रतिनिधित्व देने पर जोरदार आपत्ति करते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि अल्पसंख्यक कांग्रेसके साथ मत देंगे। . . .”

इस प्रकार गांधीजीके ‘गम्भीर विरोध’ के बावजूद समान संख्याकी बात रहने दी गई। गांधीजीने दुःखी होकर लॉर्ड वेवेलको लिखा: “इसका यह अर्थ नहीं है कि मेरे विचारोंमें कोई परिवर्तन हुआ है। मुझे पहलेसे भी अधिक यह विश्वास है कि वाइसरॉयकी कार्यकारिणीमें सवर्ण हिन्दू सदस्य मुसलमानोंसे कम होने चाहिये थे।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, ८ जुलाई १९४५]

उधर जिन्ना और उत्तरप्रदेशके भूतपूर्व मुख्यमंत्री गोविन्दवल्लभ पंतके बीच सलाह-मशविरा हो रहा था। कांग्रेस चाहती थी कि जैसे कांग्रेस अपने हिस्सेमें आती सदस्य-संख्यामें दो गैर-कांग्रेसियोंको स्थान दे रही है, वैसे ही लीग अपने हिस्सेमें दो गैर-लीगी मुसलमानोंको स्थान दे दे। सम्मेलनमें जिन्नाने पंतसे पूछा कि जब उन्होंने दो गैर-लीगी मुसलमानोंकी बात कही तब उनका मतलब क्या एक गैर-लीगी मुसलमानसे था? जब पंतने जवाब दिया कि उन्होंने जो कुछ कहा था वही उनका मतलब था, तो गतिरोध पैदा हो गया। इस पर वाइसरॉयने यह सुझाया कि जिन्ना और कांग्रेस-अध्यक्ष उनकी और यूरोपियन मंडलके नेता रिचार्डसनकी उपस्थितिमें मिलें। जिन्ना यह कह कर इसमें से छटक गये कि वे और गोविन्दवल्लभ पंत उस दिन शामको मिलेंगे, इसलिए कांग्रेस-अध्यक्षसे उनके मिलनेकी जरूरत नहीं रह



जाती। जब पंत जिन्नासे शामको मिलने गये तो उन्होंने पंतसे पूछा, “आपको कोई नया प्रस्ताव करना है?” पंतके यह कहने पर कि उनके पास कोई नया प्रस्ताव नहीं है, दोनोंकी मुलाकात खतम हो गई।

जब सम्मेलनकी बैठक २९ जूनको हुई तो वाइसरॉयने कहा कि चूंकि सरकारकी रचना और सदस्य-संख्याके मामलेमें विभिन्न दलोंमें कोई समझौता नहीं हो सका है, इसलिए वे अपना प्रभाव काममें लेकर इस कठिनाईको दूर करेंगे। उन्होंने जिन जिन हितोंके प्रतिनिधि सम्मेलनमें उपस्थित थे उन सबसे कहा कि वे जिन जिन व्यक्तियोंको राष्ट्रीय सरकारकी रचनामें पसन्द कराना चाहें उनके नामोंकी सूचियां मेरे पास भिजवा दें। उनमें कुछ नाम मैं खुद जोड़ दूंगा और सब नामोंकी जांच-पड़ताल करनेके बाद और सम्बन्धित दलोंसे सलाह करनेके बाद अन्तमें मैं एक ऐसी सूची तैयार करनेकी कोशिश करूंगा, जो सामान्यतः सम्मेलनको स्वीकार होगी।

जिन्नाको यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं था। वे पहले यह जानना चाहते थे कि अगर लीग कोई सूची भेजे, तो वाइसरॉय लीगकी पूरी सूची स्वीकार करेंगे या नहीं। वाइसरॉयने उत्तर दिया कि पहलेसे मैं ऐसा कोई आश्वासन नहीं दे सकता। अन्तिम चुनाव करना मेरा काम है। परन्तु मेरे सिफारिश किये हुए नामोंकी चर्चा करनेका और अन्तमें उन्हें स्वीकार करने या न करनेका अवसर सम्मेलनको दिया जायगा।

इसके बाद जिन्नाने पूछा कि यदि एक दल उनके प्रस्तावको अन्तिम रूपसे अस्वीकार कर दे, तो भी क्या वे अपने प्रस्तावको आगे बढ़ायेंगे ? इस पर वाइसरॉयने फिर वही जवाब दिया कि जिस विशेष स्थितिकी कल्पना की गई है उसमें मैं क्या करूंगा, इस बारेमें मैं पहलेसे अपने-आपको बांध नहीं सकता।

अन्तमें जब वाइसरॉयने उनसे सीधा प्रश्न किया कि लीग नामोंकी सूची पेश करेगी या नहीं, तो जिन्नाने उत्तर दिया कि मैं तो अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे ही सम्मेलनमें आया हुं; मुझे लीगकी कार्यसमितिके सामने रखनेके लिए लिखित रूपमें वाइसरॉयके प्रस्तावकी जरूरत होगी। उसके बाद ही मैं कोई निश्चित उत्तर दे सकूंगा। जिन्नासे कहा गया कि उन्हें प्रस्ताव लिखित रूपमें मिल जायगा।

इसके बाद सम्मेलन एक पखवाड़ेके लिए स्थगित रखा गया।



मुस्लिम लीगके सिवा अन्य सब दलोंने वाइसरॉयको अपने नामोंकी सूची दे दी। यूरोपियन मंडलने अपनी ओरसे कोई अलग सूची पेश न करनेका निर्णय किया। कांग्रेसने वाइसरॉयकी इस प्रस्तावित कार्यकारिणी परिषद् (एक्जिक्यूटिव कौंसिल) के लिए पन्द्रह नामोंकी सूची प्रस्तुत की। कांग्रेसको लगा कि अधिकसे अधिक अल्पसंख्यक जातियोंको प्रतिनिधित्व देनेके लिए कार्यकारिणी परिषद्की सदस्य-संख्या वाइसरॉय और प्रधान सेनापतिके सिवा पन्द्रहकी होनी चाहिये । कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत किये गये नामोंकी सूची इस प्रकार थी:

१. मौलाना अबुलकलाम आजाद (कांग्रेसी मुसलमान) ।
२. आसफअली (कांग्रेसी मुसलमान) ।
३. पं. जवाहरलाल नेहरू (कांग्रेसी हिन्दू)।
४. सरदार वल्लभभाई पटेल (कांग्रेसी हिन्दू) ।
५. डॉ. राजेन्द्रप्रसाद (कांग्रेसी हिन्दू) ।
६. मोहम्मद अली जिन्ना (मुस्लिम लीग)।
७. नवाब मोहम्मद इस्माइल खां (मुस्लिम लीग) ।
८. नवाबजादा लियाकतअली खां (मुस्लिम लीग) ।
९. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी (हिन्दू महासभा)।
१०. गगनविहारी मेहता (हिन्दू) ।
११. राजकुमारी अमृतकौर (स्त्री, भारतीय ईसाई) ।
१२. मुनिस्वामी पिल्ले (अनुसूचित वर्ग) ।
१३. राधानाथ दास (अनुसूचित वर्ग) ।
१४. सर आरदेशिर दलाल (पारसी) ।
१५. एक सिक्ख सदस्य (नाम बादमें पेश किया जायगा) ।

जिन्नाने लॉर्ड वेवेलको लिखा: “नामोंकी सूची पेश करनेके आपके सुझावके बारेमे . . . मुस्लिम लीगकी कार्यसमिति यह बताना चाहती है कि जब आपके पुरोगामी लॉर्ड लिनलिथगोने ऐसा ही प्रस्ताव



रखा था . . . तब कार्यसमितिने उसका विरोध किया था और जब उसके विरोधों पर लॉर्ड लिनलिथगोका ध्यान खींचा गया तब उन्होंने उस प्रस्तावको छोड़ दिया था और दूसरा विकल्प सुझाया था।” लॉर्ड लिनलिथगोका विकल्प लॉर्ड लिनलिथगोके २५ सितम्बर, १९४० को जिन्नाके नाम लिखे गये निम्नलिखित पत्रमें दिया हुआ था: “मुझे सन्तोष है कि प्रतिनिधियोंके चुनावका अधिकार गवर्नर जनरलका होते हुए भी मुस्लिम लीगके मामलेमें उसका आधार किसी औपचारिक रीतिसे प्रस्तुत की गई सूची पर न होकर सम्बन्धित दलके नेताके और मेरे (वाइसरॉय) बीचकी गुप्त चर्चा पर रहेगा।” [जिन्नाका पत्र लॉर्ड वेवेलको, ७ जुलाई १९४५] जिन्ना अपने पत्रके अन्तमें लिखा था: “कार्यसमितिका यह मत है . . . कि जहां तक मुस्लिम लीगका सम्बन्ध है, मौजूदा प्रश्न पर भी वही कार्य-पद्धति अपनाई जानी चाहिये, जो पिछले अवसर पर निश्चित हुई थी।”

जब वाइसरॉयने उस कार्य-पद्धतिको स्वीकार करनेमें अपनी असमर्थता प्रगट की, तो जिन्नाने नामोंकी सूची पेश करनेसे इनकार करते हुए फिर लिखा : “समिति . . . चाहती है कि मैं आपको बता दूं कि उसे यह जान कर बड़ा अफसोस होता है कि आप यह आश्वासन देनेमें असमर्थ हैं कि प्रस्तावित कार्यकारिणी परिषद्के सारे मुसलमान सदस्य मुस्लिम लीगमें से पसन्द किये जायेंगे . . . और ऐसी परिस्थितिमें मुझे खेद है कि मैं प्रस्तावित कार्यकारिणी परिषद् में शामिल करनेके लिए मुस्लिम लीगकी ओरसे नाम भेजनेकी स्थितिमें नहीं हूं।” [जिन्नाका पत्र लॉर्ड वेवेलको, ९ जुलाई १९४५]

१४ जुलाईको सम्मेलनकी अन्तिम बैठकमें वाइसरॉयने प्रगट किया कि मुस्लिम लीगकी ओरसे नामोंकी कोई सूची प्राप्त हुए बिना भी मैंने कागज पर एक कार्यकारिणी परिषद् बना ली है और मैं मानता हूं कि वह सम्मेलनको स्वीकार होगी । परन्तु मुसलमानोंके जो नाम उन्होंने सूचित किये थे, वे जिन्नाको मंजूर नहीं थे। मांगने पर भी वाइसरॉयने नामोंकी अपनी सूची कांग्रेस-अध्यक्षको या और किसीको नहीं बताई। अपनी सूचीको वाइसरॉयने सम्मेलनके सामने भी नहीं रखा । उन्होंने सम्मेलनमें सिफे इतनी घोषणा कर दी कि सम्मेलन अपना उद्देश्य पूरा करनेमें असफल रहा है। किन्तु सारी असफलताकी जिम्मेदारी उन्होंने अपने सिर ले ली।



अपने अन्तिम पत्रमें गांधीजीने वाइसरॉयकों लिखा, “मुझे यह देख कर दुःख होता है कि जो सम्मेलन इतने प्रसन्न और आशापूर्ण वातावरणमें आरंभ हुआ था, वह स्पष्टतः अन्तमें असफल हो गया। मालूम होता है कि इसका कारण ठीक पहले जैसा ही है। इस बार सारा दोष आपने अपने ही कन्धों पर उठा लिया है, परन्तु दुनिया तो और ही कुछ सोचेगी। भारत तो निश्चित ही ऐसा सोचता है।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १५ जुलाई १९४५] असफलताके कारणोंकी गहरी खोज करते हुए उन्होंने आगे लिखा: “मुझे अपना यह सन्देह छिपाना नहीं चाहिये कि असफलताका अधिक गहरा कारण शायद यह है कि अधिकारी वर्ग सत्ता छोड़नेके लिए अनिच्छुक है—यद्यपि एक समयके उनके कैदियोंके हाथमें भारतकी सच्ची सत्ताके चले जानें पर तो अधिकारियोंके हाथसे यह सत्ता जाने ही वाली है।”

यह दुःखकी बात थी कि गतिरोधको मिटानेका प्रयत्न इस प्रकार फिर उन्हीं पुरानी चट्टानों पर टकरा कर असफल हो गया। देश समझौतेके ब्रिटिश प्रस्तावको उसके बाह्य रूपमें स्वीकार करनेको जितना इस बार तैयार था उतना पहले कभी नहीं था। वाइसरॉयकी पहलेकी घोषणाओंने लोगोंको यह आशा दिकाई थी कि इस बार कोई नया प्रारम्भ किया जायगा। लोग अब पूछने लगे कि यह सर्वदल सम्मेलन बुलानेकी क्या जरूरत थी, यदि किसी भी प्रगतिके लिए कांग्रेस-लीग समझौतेकी आवश्यक शर्त रखनी थी या लीगके सहयोग देनेसे इनकार करने पर वाइसरॉयको अपनी योजनाएं आगे नहीं बढ़ानी थीं? उस सूरतमें कांग्रेस और लीगके अध्यक्षोंको ही बुलाना चाहिये था और बाकीके लोगोंको एक झूठे प्रदर्शनकी दिक्कतसे बचा लेना चाहिये था।

जिन्नाने एक वक्तव्यमें [जिन्नाकी अखबारी मुलाकात, १४ जुलाई १९४५] वेवेल-योजनाको मुस्लिम लीगके लिए एक ‘मोहजाल’ और ‘मुत्युदण्डका वारंट’ बताया, क्योंकि सरकारमें सारे मुसलमान सदस्य मुस्लिम लीगी होते तो भी वे मंत्रि-मण्डलमें एक-तिहाईके अल्पमतमें रहते | जिन्नाने कहा, “तमाम अल्पमतों” के प्रतिनिधि “वास्तविक व्यवहारमें सरकारके भीतर हमेशा हमारे खिलाफ मत देते।” पहले जिन्ना यह कहा करते थे कि मुस्लिम लीग भारतकी तमाम अल्पसंख्यक जातियोंकी हितेच्छु और रक्षक है और कांग्रेस समस्त हिन्दुओंकी भी प्रतिनिधि नहीं है, परन्तु केवल ‘सर्वर्ण हिन्दुओं’ की ही प्रतिनिधि है। परन्तु अब उन्होंने कहा : “अनुसूचित जातियां, सिक्ख और ईसाई आदि दूसरे सारे अल्पसंख्यक समुदायोंका वही लक्ष्य है जो कांग्रेसका है। . . . उनका लक्ष्य और उनकी विचारधारा



अखण्ड भारतकी है। जाति और संस्कृतिकी दृष्टिसे उनका हिन्दू समाजके साथ बहुत निकटका सम्बन्ध है।" अवश्य ही ये दोनों दावे सही नहीं हो सकते थे। साथ ही, यह भी पूछा जा सकता है कि यदि मंत्रिमण्डलमें सारे मुसलमानोंको मुस्लिम लीगसे ही लेनेकी लीगकी मांग स्वीकार कर ली जाती, तो भी वेवेल-योजना 'मोहजाल' और 'मृत्युदण्डका वारंट' कैसे न रहती ?

सम्मेलनमें कायदे आजमने जो रुख अपनाया, उसका गहरा विश्लेषण करते हुए डॉ. जयकरने गांधीजीको इस प्रकार लिखा: "जब मैंने (जिन्नाके) उस भाषणको पढ़ा, जिसमें उन्होंने लॉर्ड वेवेलकी योजनाको एक मोहजाल बताया है, तो मुझे स्पष्ट हो गया कि उनको डर इस बातका था कि . . . यदि उन्होंने अन्तरिम व्यवस्था स्वीकार कर ली, तो जिस कटुता और शत्रुताको भावनासे पाकिस्तानकी भावनाका जन्म और पोषण हुआ है वह कामकाजके हर दिनके मेलजोलसे धीरे धीरे मन्द पड़ जायगी; और मुसलमानोंको जब यह पता लग जायगा कि पाकिस्तानका आधार वास्तविकता पर नहीं, किन्तु केवल चिरपोषित सन्देह पर है, तो पृथक् अस्तित्वका उनका जोश खतम हो जायगा। . . . वे अपनी स्वीकृति देनेसे पहले दो शर्तें पेश करते हैं - अर्थात् (१) पाकिस्तानके बारेमें आश्वासन; और (२) भारतके अन्य सब हितोंके मतोंके साथ मुसलमानोंके मतोंकी समानता। लेकिन उन्हें समझ लेना चाहिये कि ये असम्भव शर्तें हैं। बार बारकी सफलताओंसे उनकी जो आदत गहरी हो गई है, उसके अनुसार जो रियायतें मुसलमानोंको मिली हैं उन्हें तो वे निगल जाते हैं - जैसे, सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानोंकी समान संख्या - और अब वे मुसलमानों और अन्य सब हितोंके बीच समान संख्या चाहते हैं। अर्थात् ५. प्रतिशत मुसलमानोंके लिए और ५. प्रतिशत सारे भारतके लिए। यह तो २७=७३ जैसा गणितका भयंकर अनर्थ हुआ। . . . उन्हें तो आजादी प्राप्त करनेकी कोई जल्दी नहीं है; और उसकी प्राप्तिके लिए वे ऐसा मूल्य चाहेंगे, जिससे वह आजादी लगभग बेकार हो जायगी।" [डॉ. जयकरका पत्र गांधीजीको, १९ जुलाई १९४५]

सम्मेलनका परिणाम यह निकला कि व्यावहारिक राजनीतिमें "सवर्ण-हिन्दू मुस्लिम समान संख्या" का सूत्र दाखिल हो गया और स्वाधीनताके जन्मके समय धार्मिक विभाजनके सिद्धान्तको सरकारकी मान्यता प्राप्त हो गई। सम्मेलनके समयसे 'दोहरी बात' बोलनेकी प्रथा शुरू हो गई और बादमें ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि-मंडल (कैबिनेट-मिशन) की वार्ताओंके समय इस प्रथाका मुख्यतः उपयोग



किया गया। इस प्रथाके अनुसार ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंक 'आशय' उनकी घोषणाके शब्दों द्वारा झुठलाये जाते थे और कथनमें जिन बातोंका विरोध किया जाता था उनको 'द्वि-अर्थी विधानों' की युक्तिसे व्यवहारमें उतारा जाता था।

संयुक्त राष्ट्रसंघके कष्ट-निवारण और पुनर्वास विभागके एक अधिकारी श्री फ्रांसिस सेयरने गांधीजीसे मिलने पर पूछा था: "आप स्वीकार करेंगे कि वेवेलने गतिरोधको भंग' करनेका एक प्रामाणिक प्रयत्न अवश्य किया था।?"

गांधीजीने उत्तर दिया था: "प्रामाणिक प्रयत्नका अन्त भी प्रामाणिक होना चाहिये था।" [फ्रांसिस सेयरसे गांधीजीकी भेंट, १४ जुलाई १९४५]

एक पखवाड़ेके बाद लन्दनसे पंडित नेहरूके नाम आये हुए एक पत्रसे इस बातका समर्थन हो गया: "अब यह मालूम हुआ है कि वेवेलका प्रस्ताव चुनावकी आवश्यकताओंके एक अंगके रूपमें चालू रखा गया था। यह भी मालूम हुआ है कि जिन्नाके बिना भी सरकार बनानेका स्पष्ट मार्ग ग्रहण न करके अन्तमें वेवेलने बातचीत जो खतम कर दी, उसका आदेश भी यहीसे दिया गया था।"



छठा अध्याय

जागरूक प्रहरी

१

कांग्रेस कार्यसमितिकी मुक्तिसे गांधीजीको दिन-प्रतिदिन कांग्रेसके कार्यका संचालन करनेके भारसे मनचाही मुक्ति मिल गयी। कार्यसमितिकी अनुपस्थितिमें यह भार उन्होंने अपने कंधों पर ले लिया था। परन्तु इसमें यह भय था कि “स्वतंत्र रूपसे दी हुई मेरी सलाह कार्यसमितिकी रायके विपरीत भी हो सकती है और उसको परेशानीमें डाल सकती है; और कार्यसमिति या मैं विषम स्थितिमें भी पड़ सकते हैं। इससे भी बड़ी बात यह है कि इससे जनताके दिमागमें गड़बड़ी पैदा हो सकती है।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, ४ अगस्त १९४५] इसलिए गांधीजीने यह घोषणा करनेमें देर नहीं लगाई कि आइन्दा वे कार्यसमिति और उसके अध्यक्षके द्वारा ही सलाह दे सकेंगे। इससे उनको जो राहत मिली उसके कारण वे अपने प्रिय कामोंमें अधिक मन लगा सके।

सरदार पटेल बिलकुल जर्जर स्वास्थ्य लेकर नजरबन्दीसे बाहर निकले थे। बड़ी आंतका दर्द उन्हें कष्ट दे रहा था। वह बिलकुल निष्क्रिय बन गई थी। इसलिए डॉक्टरोंने उन्हें ऑपरेशन करानेकी सलाह दी थी। परन्तु यह ऑपरेशन बड़ा और गंभीर था और उसमें बहुत बड़ा खतरा था। गांधीजीने सरदारको सुझाया कि उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा आजमानी चाहिये और उन्हें राजी करनेके लिए उपचारके दिनोंमें स्वयं उनके साथ रहनेका प्रस्ताव सामने रखा। सरदार सहमत हो गये थे। इसलिए अगस्त १९४५ के तीसरे सप्ताहमें गांधीजी सरदारके साथ डॉ. दिनशा मेहताके प्राकृतिक चिकित्सालयमें रहनेके लिए पूना चले गये।

जैसा कि गांधीजीके जीवनमें प्रायः हुआ था, इस प्रसंगने अपने जीवनका एक और बड़ा साहस आरम्भ करनेकी प्रेरणा उन्हें दी। जब पूनाके प्राकृतिक चिकित्सालयमें ३ महीने रहनेके बाद वे सेवाग्राम लौटे, तो अपने साथ प्राकृतिक चिकित्साके विश्वविद्यालयकी योजनाके रूपमें एक और पालित बालक साथ ले आये ! डॉ. दिनशा मेहता उस प्राकृतिक चिकित्सालयके संस्थापक और मालिक थे और गांधीजीकी तरह प्राकृतिक चिकित्साके अति उत्साही प्रचारक और स्वप्नद्रष्टा थे। बरसों पहले उन्होंने



अपनी निष्ठावान पत्नीके साथ एक मिशनरीके उत्साहसे प्राकृतिक चिकित्साके कार्यके लिए अपने आपको अर्पण कर दिया था। वे प्राकृतिक चिकित्साका एक विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहते थे। गांधीजी भी यही चाहते थे। डॉ. मेहताने पूना और सिंहगढ़की अपनी संस्थाएं एक ट्रस्टको सौंप दीं। गांधीजीने ट्रस्टी-मंडलका एक ट्रस्टी बनना स्वीकार कर लिया।

सरदारने गांधीजीसे विनोद किया: “७६ वर्षकी आयुमें लोग अपने घरबारकी जिम्मेदारियां भी दूसरोंको सौंप कर संन्यास ले लेते हैं और आप दूसरे लोगोंकी जिम्मेदारियां अपने कंधों पर इस उमरमें ओढ़ रहे हैं!” गांधीजीने समझाया कि बचपनसे ही प्राकृतिक चिकित्सा मेरा बड़ा प्रिय विषय रहा है। मैं अपनी अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियोंके बीच उस सपनेको मूर्तरूप देनेका प्रयत्न नहीं कर सका। “इसलिए जब ईश्वरने पूनामें मुझे अवसर दे दिया, तो मैंने उसे ईश्वरका वरदान मानकर पकड़ लिया।”

गांधीजी पूनामें थे उसी समय ट्रस्टका दस्तावेज तैयार हो गया था। डॉ. मेहताने उस अवसरकी स्मृतिरूप एक मुद्रा बनवाई थी। उसमें डॉक्टर और उनकी पत्नीके हस्ताक्षरोंसे यह मुद्रालेख अंकित किया गया था: “ इस ट्रस्टके द्वारा हम नम्रतापूर्वक यह बीज आपके हाथोंमें सौंपते हैं और भगवानसे हार्दिक प्रार्थना करते हैं कि आपका पोषण पाकर वह प्राकृतिक चिकित्सा विश्वविद्यालयका रूप ग्रहण करे। हमें दृढ़ विश्वास है कि इस कार्यके पीछे भगवानका हाथ है। हम केवल उसकी इच्छाके साधन भर हैं।” इसे कोई भावुकता कह सकता है, परन्तु यह उन भावनाशील व्यक्तियोंके स्वभावके अनुकूल ही थी, जिन्हें गांधीजी अपने पास आकर्षित कर लेते थे। एक बार उन्होंने कहा था, “सनकी, झक्की और पागल लोग मेरे आश्रममें चले आते हैं और मैं उन सबसे बड़ा पागल हूँ !”

प्रस्तावित परिवर्तनकी दिशामें उठाये जानेवाले पहले कदमके रूपमें गांधीजीने यह घोषणा की कि आगामी पहली जनवरीसे यह प्राकृतिक चिकित्सालय गरीबोंकी सेवाके लिए और गरीबोंको शोभा देनेवाली पद्धति पर चलाया जायगा। “ इसमें अमीरोंको तभी लिया जायगा जब वे गरीबोंके साथ रह सकें और इस संस्थामें गरीबोंको मिलनेवाले स्थान और आरामसे अधिककी आशा न रखें। यह आश्वासन दिया जायगा कि स्वच्छताका मापदंड वैभव और विलासितासे दूर होने पर भी इस तरहकी अन्य किसी भी संस्थामें प्राप्त मापदण्डके समान ऊंचेसे ऊंचा होगा।”



संस्थाके एकत्रित कार्यकर्ताओंसे उन्होंने पूछा : “क्या आप इस परिवर्तनके अनुकूल बन जानेको तैयार होंगे? और क्या गरीबोंकी उतनी ही लगन और सावधानीके साथ आप सेवा करेंगे, जितनी लगन और सावधानीसे आप अपने अमीर रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं?” गांधीजीने कार्यकर्ताओंका विचारपूर्ण उत्तर लिखित रूपमें मांगा, जो दो दिन बाद उन्होंने दे दिया और यथासंभव सब कुछ करनेका वचन भी दिया।

उन लोगोंको किये जानेवाले परिवर्तनोंकी अधिक अच्छी कल्पना करानेके लिए गांधीजीने चिकित्सालयका निरीक्षण किया । और यह चीज हमेशा डरानेवाली होती थी। गन्दगीको पकड़नेकी, चाहे वह भौतिक हो या नैतिक, उनकी इन्द्रियोंमें असाधारण शक्ति थी। इसलिए उन्होंने चिकित्सालयका एक एक कोना बारीकीसे देखा और पालिशवाली लकड़ीकी चीजों पर उंगलियां घिस घिस कर यह जांचा कि उन पर मैलके दाग तो नहीं हैं। लेकिन मैलके दाग तो उन पर थे ! उन्होंने व्यवस्थापकोंसे कहा: “खैर, इस बार तो मैं आपको छोड़ देता हूं, परन्तु इसका काम संभालनेके बाद मैं यहांकी स्वच्छताके मामलेमें किसी त्रुटिको बरदाश्त नहीं करूंगा।” हर आदमी जानता था कि “बरदाश्त न करने” का मतलब क्या होता है। इससे तो वे फांसी पर चढ़ना ज्यादा पसन्द करते !

कुछ दिन बाद सेवाग्राममें गांधीजीको यही पाठ पढ़ानेका एक और अवसर मिला। पूनामें वह पाठ स्वास्थ्य-सम्बन्धी था, यहां वह शिक्षासे सम्बन्ध रखता था।

नौ बरसके एक छोटेसे तेजस्वी लड़केकी विधवा मां आश्रममें भरती हुई थी। लड़केको आश्रमकी बुनियादी शालाके छात्रावासमें भेज दिया गया था। उसने शाला जाना इस शर्त पर स्वीकार किया था कि गांधीजी उसके छात्रालयमें उससे मिलने आयेंगे।

तदनुसार गांधीजी अपने बालमित्रके छात्रावासमें अचानक उससे मिलने चले गये। ज्यों ही वे कमरेमें घुसे, उनकी नजर कमरेके बीचमें चटाई पर पड़ी हुई कलम-दावात पर गई। दावात मैली-सी थी। उन्होंने कलमकी निब देखी । वह खुरदरी थी। एक रजाईमें भरी हुई रुई जगह-जगह इकट्ठी हो गई थी। एक फटी हुई चादरकी सिलाई बेढंगेपनसे की हुई थी। कुछ लड़कोंके पास सरदीके कपड़े काफी नहीं थे । गांधीजीका इरादा वहां ५ मिनटसे ज्यादा रुकनेका नहीं था। परन्तु वस्तुओंका निरीक्षण करने और



उन्हें रखनेका ढंग समझानेमें उन्होंने ४५ मिनट खर्च किये। बादमें उन्होंने एक नोटमें अपने अवलोकनको इस प्रकार व्यक्त किया: “फटी हुई चादरोंको या तो पैबंद लगाने चाहिये थे या दोहरा करके उनकी रजाई बना देनी चाहिये थी। जब मैं ट्रान्सवालके जेलमें था तब मैंने कंबलोंकी गुदड़ी और रजाई बनानेका बहुत काम किया था। ऐसे कंबल गरम और टिकाऊ होते हैं। . . . फटे हुए कपड़ोंको . . . धोकर और तहा कर रखना चाहिये। वे फटे हुए कपड़ोंसे पैबंद लगानेके काम आ सकते हैं। . . . और जिनके पास सरदीके कपड़े अपनी आवश्यकतासे अधिक हों, उनको यह क्यों नहीं सिखाना चाहिये कि वे अपनी आवश्यकतासे ज्यादा कपड़े उन लोगोंको दे दें, जिनके पास पूरे कपड़े नहीं हों? पारस्परिक सहायताका यह एक बढ़िया प्रत्यक्ष पाठ होगा।”

नोटमें उन्होंने आगे कहा था, “ये सब बातें आपको तुच्छ दिखाई दे सकती हैं, परन्तु सारी बड़ी बातें छोटी छोटी बातोंसे ही बनती हैं। मेरा सारा जीवन छोटी छोटी बातोंसे ही बना है। जिस हद तक हमने अपने लड़कोंको छोटी छोटी बातोंका महत्त्व सिखानेमें उपेक्षा की है, उसी हद तक हम असफल हुए हैं या यों कहिये कि . . . मैं असफल हुआ हूं। कारण, मैंने ही तो नई तालीमका प्रयोग आरम्भ किया है। परन्तु मैं खुद इस प्रयोगको आगे बढ़ानेके लिए समय नहीं निकाल सका, इसलिए मुझे उसे दूसरों पर छोड़ देना पड़ा। मेरी रायमें स्वच्छता, सुधड़ता और शुद्धताकी दृष्टी नई तालीमका हार्द है। इसकी आदत डालनेमें कोई खर्च नहीं होता; केवल सूक्ष्म और सावधान दृष्टि तथा कलाप्रेमकी आवश्यकता है।”

नोटके अन्तमें कहा गया था: “यदि आप मुझे यह कहें कि इस तरह तो आप एक-दो लड़कोंसे ज्यादाके साथ न्याय नहीं कर सकते, तो मैं कहूंगा, 'तब आप एक-दो लड़के ही रखिये, अधिक नहीं।' जितना काम हम अच्छी तरह कर सकते हैं उससे अधिक काम अपने सिर लेकर हम अपनी आत्माको असत्यका कलंक लगाते हैं।”

वन-कुसुम मध्य हो स्वर्गलोक,
जगतीके दर्शन रजकणमें।
करतल अनन्तको धारण कर,



शाश्वत अन्तर्हित लघु क्षणमें।

इस घटनाका उल्लेख करते हुए उस दिन बादमें गांधीजीने कहा था, “आज मैंने स्वराज्यकी इमारतमें एक और ईंट चुनी है।”

सेवाग्रामके उस अल्प निवास-कालका शेष भाग गांधीजीने अपनी नई खादीनीतिके स्पष्टीकरणमें व्यतीत किया। उसका विचार भी उन्होंने उसी मौलिकता, एकाग्रता और सूक्ष्मतासे किया। उन्होंने यह नियम बना दिया कि खादी-भंडारोंके व्यवस्थापकोंको भविष्यमें आग्रहसे समझा कर खादी खरीदनेके लिए ग्राहकोंको ललचानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। उन्हें अपने खादीभंडारोंको कताई और उसके साथ जुड़ी हुई प्रक्रियाओंसे सम्बन्धित विभिन्न कलाएं सिखानेकी सजीव संस्थाओंमें बदल देना चाहिये; उन्हें स्वावलम्बनकी कताई करनेवालों और जुलाहोंके बीच एक कड़ी बन जाना चाहिये, ताकि कातनेवाले लोग निजी उपयोगके लिए अपने सूतकी खादी बुनवा सकें; और जिन्हें जरूरत हो उनके लिए उन्हें खादी-सरंजाम इकट्ठा रखना चाहिये। “मैं यह चाहता हूं कि हम किसी स्वस्थ और अनुकूल वातावरणमें जमीनका एक बड़ा-सा टुकड़ा खरीद लें। . . . मैं तरह तरहके कारीगरों और दस्तकारोंको समझाकर वहां बसाऊंगा और हमारे खादी-कार्यकर्ताओंको भी बसाऊंगा। और उस स्थानको सचमुच एक छोटासा आदर्श गांव बना दूंगा, जो पुन-जीवित ग्रामोद्योगोंके एक जीते-जागते संग्रहालयका काम देगा। कहा जाता है कि पुराने जमानेमें तापी नदीके किनारे ईस्ट इंडिया कंपनीके कारखानेका सूरतके आसपासके सारे ग्राम-प्रदेश पर और सूरत शहर पर भी प्रभुत्व था। आपका खादी-भंडार आपका कारखाना होगा। अन्तर इतना ही होगा कि ईस्ट इंडिया कंपनीके कारखानेका काम खादी और हमारे देशी ग्रामोद्योगोंका नाश करना था; जब कि आपका काम उन मृत ग्रामोद्योगोंमें फिरसे जीवन और शक्तिका संचार करना होगा। आप स्वयं ग्रामीण मानसवाले बन जायेंगे और गांवोंका सारा माल सीधे-सादे और ग्रामीण ढंगसे तैयार करनेकी कोशिश करेंगे। आप अपने केन्द्रको शहरी लोगोंके आकर्षणका स्थान बना देंगे, ताकि वे विलास-केन्द्रोंमें जानेके बजाय अपनी सप्ताहांतकी छुट्टी वहां आकर बितायें। जो लोग खादी खरीदना चाहेंगे वे केवल वहां आकर खादी ही नहीं खरीदेंगे, बल्कि आदर्श ग्रामीण वातावरणमें सादे और स्वास्थ्यप्रद ग्राम-जीवनका आनन्द और संतोष भी प्राप्त करेंगे।



इसके अलावा, वे कातना, घुनना वगैरा क्रियाएं पहलेसे नहीं जानते होंगे तो उन्हें भी सीख लेंगे।” [अखिल भारत चरखा-संघकी कार्यकारिणी समितिकी बैठकमें गांधीजीका भाषण, २७ और २८ नवम्बर १९४५]

उनसे पूछा गया, “क्या इसका यह अर्थ है कि हम शहरोंके प्रति अपनी सारी जिम्मेदारीसे हाथ धो लें?”

गांधीजीने उत्तर दिया, आप उन शहरी लोगोंकी सहायताकी दृष्टिसे अपना काम नहीं कर सकते, जो घुड़दौड़के मैदानमें, ताशके कलबोंमें, सिनेमा और नाटक-घरोंमें भीड़ लगाते हैं। “अगर उन्हें उत्सुकता हो तो हम केवल उन्हें अपनी खुदकी खादी तैयार करना ही सिखा सकते हैं और उसमें उनकी मदद कर सकते हैं।”

कार्यकर्ताओंमें से एकने पूछा, “खादीके मोर्चे पर शहर सबसे कमजोर स्थान हैं। क्या चरखा-संघके ट्रस्टी-मण्डलमें शहरोंके प्रतिनिधियोंका होना उसके लिए कमजोरीका कारण नहीं होगा?”

“उनका असर संघको कमजोर करनेवाला नहीं होगा। . . . वे शहरोंमें नई खादी-नीतिकी चौकियोंका काम करेंगे। आज तो शहर गांवोंका शोषण कर रहे हैं। वे कहते हैं कि ‘हम भारत हैं !’ एक समय ऐसा आना चाहिये जब यह प्रक्रिया उलटी हों जाय। आपका काम उस दिनके लिए रास्ता तैयार करना है।”

एक प्रमुख खादी-कार्यकर्ताने, जो ४ वर्ष पहले बम्बईके पासके एक गांवमें बस गये थे, शिकायत की कि अब तक वे किसी स्थानीय कार्यकर्ताको अपने साथ जुड़नेकी बात समझा नहीं सके। वह स्थान मलेरियाके उपद्रव-वाला है और बाहरके कार्यकर्ता वहां आकर बसनेको तैयार नहीं हैं। उन्होंने पूछा, “मैं क्या करूं?”

गांधीजीने एक अमरीकी लेखकका उद्धरण देते हुए उत्तर दिया, “शब्द नहीं बढ़ता, किन्तु काम बढ़ता है। परमार्थ घरसे आरम्भ होना चाहिये। आप अपने घरवालोंको आपके काममें शरीक होनेके लिए क्यों नहीं समझाते?”

“मान लीजिये कि वे तैयार न हों?”



“तब आपको अकेले ही अपना काम करके संतोष मानना होगा। अगर आपमें दृढ़ संकल्प है और आप कोई बाहरी मदद न लेनेके अपने निश्चय पर अटल रहेंगे, तो समय पाकर स्थानीय लोग आपकी सहायता करने लगेंगे। यदि आप बीमार पड़ जायें, तो स्थानीय आदमियोंसे अपनी सेवा करायें। अपने घरवालोंसे आप कह दीजिये कि वे आपकी सेवा करना चाहें, तो उन्हें वहां आकर बस जानेको तैयार रहना पड़ेगा। और यदि बुरीसे बुरी बात हो जाय और आपकी मृत्यु हो जाय, तो स्थानीय लोगों द्वारा होनेवाले दाह-संस्कारसे आपको सन्तोष कर लेना होगा। यदि आप ‘करने या मरने’ का दृढ़ निश्चय प्रगट नहीं करेंगे, तो आपको अपने काममें सफलता नहीं मिल सकेगी; और वह काम तो भारतके उन करोड़ों अधभूखे गरीबोंके उद्धारका है, जो आज उदासीनता और निराशाकी गहरी नींदमें सोये हुए हैं।”

सेवाग्रामके ग्रामसेवकोंके प्रशिक्षण केन्द्रके प्रशिक्षणार्थियोंको ग्रामसेवाके आदर्श समझाते हुए गांधीजीने कहा: याद रखो कि ग्रामोद्धारके कार्यमें जबरदस्तीकी या दबावकी गुंजाइश नहीं है। तुम्हारे पास अहिंसाके सिवा और कोई शक्ति नहीं है और अहिंसा केंचुएकी चाल चलती है। परन्तु मुझे पहलेसे भी अधिक दृढ़ विश्वास है कि उसकी प्रगतिको कोई रोक भी नहीं सकता। इसलिए तुम्हें आम लोगोंका विश्वास प्राप्त करनेके लिए अनन्त धैर्य और अध्यवसायकी आवश्यकता होगी। तुम्हें न केवल कारीगर बनना है, बल्कि कुशल कारीगर बनना चाहिये। परम्परागत कारीगरमें हाथकी कुशलता अधिक हो सकती है। लेकिन तुममें अधिक बुद्धिका होना जरूरी है। तुम्हें अपने अपने क्षेत्रमें मौलिक विचारक और आविष्कारक बनना होगा। “संसारके नकशेमें भारत एक छोटासा भूभाग है और उसमें सेवाग्राम एक बहुत ही छोटा बिन्दु है। परन्तु तुम्हें कभी निराशा नहीं होगी, यदि तुम यह बात ध्यानमें रखो कि जो बात सेवाग्राममें सिद्ध की जा सकती है उसे सारे भारतमें फैलाया जा सकता है और जो बात भारतके लिए संभव है वह सारी दुनियाके लिए भी संभव होनी चाहिये। आज तो तुम केवल मुट्ठीभर ग्रामसेवक हो, परन्तु तुम्हारे हृदय लाखों भूखे लोगोंके साथ तादात्म्य साधने, उनके साथ एकरूप हो जानेकी लगनसे परिपूर्ण हों—यहां तक कि पहले उनकी भूख मिटाये बिना तुम स्वयं खाना न चाहो—तो तुम्हारे भीतरकी तीव्र लगन दूर दूर तक फैल जायगी और तुम्हारी संस्था गंगोत्रीके समान बन जायगी, जहांसे विशाल गंगाकी धारा निकलती है। गंगोत्रीसे निकलते समय गंगाकी धारा पतली-सी होती है। लेकिन जैसे जैसे वह मैदानोंमें आगे बढ़ती जाती है, हजारों नदी-नाले उसमें मिलते जाते हैं और उसका प्राण-



दायक जल संपूर्ण प्रदेशको सुख और समृद्धिसे परिपूर्ण करता है।” [सेवाग्रामके प्रशिक्षणार्थियोंके सामने गांधीजीका भाषण, २२ नवम्बर १९४५]

२

गांधीजीने ऐसा सोचा था कि पूनाके प्राकृतिक चिकित्सालयमें जो कठोर परिवर्तन उन्होंने सुझाये थे, वे उसे उनकी कल्पनाके प्राकृतिक चिकित्सा विश्वविद्यालयका केन्द्र बतानेके लिए काफी होंगे। किन्तु फरवरी-मार्च १९४६ में वे ११ दिन चिकित्सालयमें ठहरे तब उन्हें मालूम हुआ कि उनकी यह धारणा गलत थी। “मैं मूर्ख था जो यह समझ बैठा कि किसी शहरमें गरीबोंके लिए ऐसी संस्था बनाई जा सकती है। मैंने अनुभव कर लिया कि गरीब बीमारोंकी यदि मुझे चिन्ता हो, तो मुझे उनके पास जाना होगा, यह आशा नहीं रखनी चाहिये कि वे मेरे पास आयेंगे। . . . पूना आनेवाला कोई ग्रामवासी कैसे मेरी सूचनाओंको समझेगा और उनका पालन करेगा? . . . वह तो यह आशा रखेगा कि मैं उसे कोई पुड़िया या दवाकी खुराक दे दूंगा, जिसे वह निगल लेगा और चंगा हो जायगा। प्राकृतिक चिकित्सा तो एक जीवन-प्रणाली है, जिसे सीखना पड़ता है। . . . इसलिए यह उपचार तभी सफल हो सकता है जब वह किसी मनुष्यकी कुटिया या घरके भीतर या उसके नजदीक ही हो। उसके लिए चिकित्सकमें सहानुभूति और धीरज होना चाहिये और मानव-स्वभावका उसे ज्ञान होना चाहिये। जब वह इस प्रकार किसी गांव या गांवोंमें सफलतापूर्वक उपचार कर लेगा और जब काफी पुरुष और स्त्रियां प्राकृतिक चिकित्साका रहस्य समझ लेंगी, तभी प्राकृतिक चिकित्सा विश्वविद्यालयके केन्द्रकी नींव डाली जा सकेगी।” [हरिजन, १७ मार्च १९४६, पृ. ४४]

कोई साधारण गलतीकी बात होती, तो मामला वहीं खतम हो जाता। परन्तु बात इससे अधिक थी। यह गांधीजीके सत्यके प्रयोगोंका एक भाग था और जो गरीब लोग उनके प्रयोगोंके साधन थे उनके साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध बांधनेकी बात थी। उन्होंने यह अनुभव किया कि सार्वजनिक रूपसे अपना दोष स्वीकार करके और उसे सुधार कर ग्रामजनोंके साथ अपना सम्बन्ध सुधार लेना चाहिये। उन्होंने 'हरिजन' में लिखा: “मेरे लिए यह स्पष्ट है . . . कि मेरी आदत सुधर नहीं सकती। मैं अपनी गलतियोंसे ही सीख सकता हूं। मुझे अभी अभी यह पता लगा है कि मैंने एक ऐसी गलती की है, जो मुझे हरगिज



नहीं करनी चाहिये थी। . . . मैं नहीं जानता कि मुझे अपनी इस मूर्खता पर हंसना चाहिये या रोना चाहिये। . . . मेरी मूर्खता इतनी स्पष्ट है। . . . पता नहीं मैं अब अपने मानव-बन्धुओंके विश्वासका पात्र हूं या नहीं। अगर मैं वह विश्वास खो दूं, तो मैं जानता हूं कि मैं उसका पात्र हूं।" [वही]

इसका अर्थ यह नहीं कि प्रयोग छोड़ दिया जाय। परन्तु इसके विपरीत लाखों लोगोंके लिए प्राकृतिक चिकित्साके आदर्शकी पूर्ति और भी अधिक स्पष्ट रूपमें और अधिक उत्साहसे होनी चाहिये, "यदि ऐसा करना व्यावहारिक हो। संभव तो वह अवश्य है।" [वही]

तदनुसार मार्चके अन्तिम सप्ताहमें गांधीजी उरुलीकांचन चले गये। उसकी आबादी लगभग ३ हजारकी थी। वह पूना-शोलापुर रेलमार्ग पर एक छोटासा स्टेशन है। वहां रेलवेका तारघर था और डाकघर था, परन्तु टेलिफोन नहीं था। मेल और एक्सप्रेस गाड़ियां वहां ठहरती नहीं थीं। जलवायु वहांका अच्छा था। पास ही फौजी छावनी थी, जिसकी टंकीसे छना हुआ पानी काफी मात्रामें मिल जाता था। उस स्थानमें अमरूद, संतरा और पपीता खूब पैदा होता था। कुछ मित्रोंने इस कामके लिए काफी जमीन देनेका वचन दिया और प्रारम्भिक खर्चके लिए १० हजार रुपयेका दान भी दिया। एक स्थानीय निवृत्त रेलवे ठेकेदारने गांधीजीके अस्थायी निवासके लिए अपना बंगला खाली कर दिया। इस प्रकार उरुलीकांचनमें यह प्रयोग आरम्भ हुआ।

दूसरे ही दिन प्रातःकालसे रोगी आने लगे। पहले दिन लगभग ३० रोगी आये। गांधीजीने इनमें से ५-६ को देखा और सबके लिए लगभग वही उपचार, प्रत्येककी प्रकृतिके अनुसार थोड़ा फर्क करके बताया। उदाहरणके लिए, रामनामका जप, सूर्यस्नान, मालिश और कटिस्नान, दूध, खट्टी छाछ, फल और फलोंका रस तथा साथमें स्वच्छ ताजा पानी काफी पीनेकी सूचना की।

राजाजीने अपनी कटाक्षपूर्ण भाषामें एक पत्रमें महात्माजीको लिखा: "राजकुमारी लिखती हैं कि उरुलीमें आपकी प्रैक्टिस बड़े जोरोंसे चल रही है। मुझे डर है कि कहीं वह महात्माके स्पर्शके अंध-विश्वासका आधार रखनेवाला प्रपंच न बन जाय। कुछ भी हो, बुरी दवाइयोंसे यह अच्छा ही है!" [राजाजीका पत्र गांधीजीको, ३१ मार्च १९४६]



गांधीजीने लोगोंको प्राकृतिक चिकित्साका रहस्य समझाया : “जैसे सब रोगोंका एक ही कारण होता है वैसे सबका उपचार भी एक ही तरहका होता है। समस्त मानसिक और शारीरिक व्याधियां एक ही समान कारणसे होती हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनका उपचार भी एक ही हो। . . . इसलिए मैंने आज प्रातःकाल मेरे पास आनेवाले सब रोगियोंको रामनामका जप और लगभग एक ही उपचार बताया।” [हरिजन, ७ अप्रैल १९४६, पृ. ६९]

तीसरे दिन रोगियोंकी संख्या बढ़ कर ४३ हो गई। उन्होंने लोगोंसे कहा कि यदि काम योजनाके अनुसार चला, तो मेरा इरादा वर्षमें कमसे कम ४ महीने आपके बीच ठहरनेका है। मेरी अनुपस्थितिमें मेरे साथी मेरी सूचनाओंके अनुसार आपका पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। प्राकृतिक चिकित्साके लिए ऊंचे दर्जेकी पुस्तकीय योग्यताएं या विद्वत्ताकी आवश्यकता नहीं। “सादगी ही उसे सार्वत्रिक बनाती है। लाखोंके लाभके लिए जो भी चीज होती है, उसमें बहुत पांडित्यकी जरूरत नहीं होती। पांडित्य तो थोड़े ही लोग प्राप्त कर सकते हैं और इसलिए उससे केवल धनवानोंको ही लाभ पहुंच सकता है। परन्तु भारत अपने ७ लाख छोटे और दूर दूर बसे हुए गांवोंमें रहता है। . . . मुझे किसी गांवमें जाकर बसना पसन्द है। वही सच्चा भारत, मेरा भारत है, जिसके लिए मैं जिंदा हूं। आप इन गरीब लोगों तक बड़ी बड़ी डिग्रियां रखनेवाले डॉक्टरों और अस्पतालके ऊंचे महंगे साधनोंका लवाजमा नहीं ले जा सकते। ग्रामवासियोंकी एकमात्र आशा सादे नैसर्गिक उपचार और रामनाममें है।” [वही]

गांधीजीने गांववालोंको यह चेतावनी दी कि आपको जानना चाहिये कि मैं सख्त काम लेनेवाला आदमी हूं। अगर मैं आपके बीच रहा, तो न मैं खुद चैन लूंगा और न आपको लेने दूंगा। मैं आपके घरोंको देखूंगा, आपकी नालियों, रुसोईघरों और पाखानोंका निरीक्षण करूंगा। कहीं भी धूल, मैल या मक्खियां मैं बरदाश्त नहीं करूंगा।

उन्होंने समझाया कि मेरी कल्पनाकी प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीमें और दूसरी प्रणालियोंमें यह अन्तर है: दूसरी प्रणालियोंमें रोगी डॉक्टरके पास अपना रोग मिटानेकी दवाइयां लेने जाता है। रोगके असाधारण लक्षण मिट जाने पर डॉक्टरका काम खतम हो जाता है और फिर रोगीमें उसकी कोई दिलचस्पी नहीं रहती। प्राकृतिक चिकित्सक अपना उपचार ‘बेचता’ नहीं है। वह अपने रोगीको रहन-



सहनकी सही पद्धति सिखाता है, जिससे न केवल उसकी विशेष व्याधि दूर हो जाती है बल्कि वह भविष्यमें बीमार पड़नेसे भी बच जाता है। साधारण डॉक्टरकी दिलचस्पी ज्यादातर रोगके अध्ययनमें होती है। प्राकृतिक चिकित्सककी रुचि स्वास्थ्यके अध्ययनमें अधिक होती है। “जहां सामान्य डॉक्टरोंकी दिलचस्पीका अन्त होता है वहां प्राकृतिक चिकित्सककी दिलचस्पी शुरू होती है। प्राकृतिक चिकित्सामें रोगीका रोग दूर होनेके साथ एक ऐसी जीवन-पद्धतिका प्रारम्भ होता है, जिसमें बीमारी या रोगकी गुंजाइश ही नहीं रहती। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा उपचारकी पद्धति न होकर जीवनकी पद्धति है।” [वही, पृ . ६८]

और, प्राकृतिक चिकित्सक रोगीसे यह नहीं कहेगा, “मुझे बुला लो, मैं तुम्हारा रोग अच्छा कर दूंगा।” वह उसे केवल प्राणीमात्रमें बसा हुआ सारे रोगोंको मिटानेवाला सिद्धान्त बतायेगा और यह बतायेगा कि उस सिद्धान्तको जाग्रत करके और उसे अपने जीवनकी प्रेरक शक्ति बना कर रोगको कैसे मिटाया जाय। “यदि भारत उस सिद्धान्तकी शक्तिको अच्छी तरह समझ ले, तो न केवल हम स्वतंत्र ही हो जायेंगे बल्कि हमारा देश स्वस्थ व्यक्तियोंका देश भी बन जायगा और आजकी तरह संक्रामक रोगों और कमजोर स्वास्थ्यका देश नहीं रहेगा।” [वही]

गांधीजी स्वीकार करते थे कि प्राकृतिक चिकित्सासे सब रोग अच्छे नहीं हो सकते : “किसी भी चिकित्सा-प्रणालीसे ऐसा नहीं हो सकता। . . . अन्यथा हम सब अमर हो जायें। परन्तु जिस रोगको प्राकृतिक चिकित्सा मिटा नहीं सकती, उसका शान्त चित्तसे सामना करने और उसे सहन करनेकी शक्ति वह मनुष्यको देती है।” [वही]

उन्होंने प्राकृतिक चिकित्साका अपना तत्त्वज्ञान इस प्रकार समझाया: मनुष्यका भौतिक शरीर पांच नैसर्गिक तत्त्वों (महाभूतों) का बना हुआ है— वायु, जल, पृथ्वी, तेज (शरीरको शक्ति देनेवाला तत्त्व) और आकाश। आत्मा उसमें प्राण-संचार करती है। प्राकृतिक चिकित्साके विज्ञानका आधार इन्हीं पांच तत्त्वोंके उपयोग पर है, जिनसे मानव-शरीर बना हुआ है। व्यवहारमें उस चिकित्साके रूप जल-चिकित्सा, मालिश और मिट्टी-स्नान, गर्म और ठंडी मिट्टीकी पट्टियां, सूर्यस्नान और वायुस्नान आदि हैं। किन्तु इन पंचतत्त्वोंको उनके स्थूल प्रारम्भिक अर्थमें नहीं समझना चाहिये। उनका सूक्ष्मतर रूप होता



है। “पानी केवल जल नहीं है। . . . न वायु हवा है, पृथ्वी मिट्टी है या तेज प्रकाश है। आकाश भी केवल ‘ईश्वर’ नहीं है। . . . अपने मूल रूपमें पांचों तत्व जीवनकी तरह सजीव हैं।” [गांधीजी, ‘की टु हेल्थ’, अहमदाबाद, १९४८, पृ. ७५]

आकाश (ईश्वर) के बारेमें गांधीजीका विवेचन रसप्रद है: “आकाशको अवकाश कहा जा सकता है। उसका कोई ओर-छोर देखनेमें नहीं आता। जहां कुछ भी नहीं है वहां आकाश है। वह जितना दूर है उतना ही हमारे पास है। वह हमारे पाससे ही आरंभ होता है। वह हमारे भीतर भी है। . . . अगर हम ईश्वरका भेद जान सकें, तो आकाशका भेद जान सकेंगे। इस महान तत्व आकाशका उपयोग जितना हम करेंगे उतना ही अधिक आरोग्यका उपभोग हम कर सकेंगे। . . . पहला पाठ सीखनेका यह है कि इस सुदूर और अदूर तत्त्वके बीच और हमारे बीच कोई आवरण नहीं आने देना चाहिये। . . . जिस हद तक हम इस आदर्शको प्राप्त कर सकेंगे उस हद तक हम सुख, शांति और सन्तोषका अनुभव करेंगे। इस आदर्शको मैं अन्तिम सीमा तक प्रस्तुत करूं, तो मुझे कहना पड़ेगा कि शरीरका अन्तराय भी नहीं होना चाहिये। अर्थात् शरीर रहे या जाय, इस बारेमें हमें तटस्थ रहना चाहिये।” [वही, पृ. ७७]

प्राकृतिक चिकित्साके शस्त्रागारमें सबसे शक्तिशाली शस्त्र रामनामका है। किन्तु रामनामकी शक्ति कुछ शर्तों और मर्यादाओंके अधीन है। उदाहरणके लिए, यदि किसीको अधिक भोजन करनेसे पीड़ा हो रही है और वह उसके बादके परिणामोंसे इसलिए मुक्त होना चाहता है कि फिर वह मनचाहा भोजन कर सके, तो ऐसे आदमीके लिए रामनाम नहीं है। “रामनाम तो शुद्ध हृदयवालोंके लिए है और उन लोगोंके लिए है, जो शुद्धता प्राप्त करना और शुद्ध रहना चाहते हैं। वह भोग-विलासका साधन कभी नहीं बन सकता। अधिक भोजनका इलाज उपवास है, न कि प्रार्थना। प्रार्थना तभी बीचमें आ सकती है जब उपवास अपना काम कर चुकता है। वह उपवासको सरल और सह्य बना सकती है। इसी तरह रामनाम व्यर्थका मजाक हो जायगा, यदि उसके साथ हम अपने शरीरको दवाओंसे भी भरते रहें। जो डॉक्टर अपनी बुद्धिका उपयोग अपने रोगीकी बुराइयोंको प्रोत्साहन देनेके लिए करता है, वह अपना और अपने रोगीका पतन करता है। . . . इसके विपरीत, रामनाम रोगको मिटानेके साथ साथ मनुष्यकी शुद्धि भी करता है और इसलिए रोगीको ऊंचा उठाता है। इसीमें रामनामका उपयोग और रामनामकी मर्यादा दोनों हैं। . . . यदि आपको क्रोध आता है और आप भोगके लिए खाते और सोते हैं . . . केवल



शरीरके पोषणके लिए नहीं, . . . तो आपका रामनामका जप केवल मुंहका है, हृदयका नहीं। रामनाम तभी फलदायी होगा जब वह आपके व्यक्तित्वमें व्याप्त हो जायगा . . . और आपके समस्त जीवनमें प्रगट होगा।” [हरिजन, ७ अप्रैल १९४६, पृ. ६८]

गांधीजी पर लुई कुने और एडॉल्फ जुस्ट जैसे प्राकृतिक उपचारकोंकी रचनाओंका बड़ा असर पड़ा था, लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा पर गांधीजीका दृष्टिकोण मूलतः आध्यात्मिक था। उनका विश्वास था कि स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन रह सकता है। परन्तु इससे उलटी बात पर उनका और भी ज्यादा जोर था—अर्थात् बाहर हम जो कुछ देखते हैं, वह भीतरका ही प्रतिबिम्ब और आविर्भाव होना चाहिये। उदाहरणके लिए, एक निसर्गोपचारककी हैसियतसे वे शाकाहार पर बड़ा जोर देते थे। परन्तु उनके शाकाहारवादका आधार भी भौतिककी अपेक्षा नैतिक ही अधिक था। २० नवम्बर, १९३१ को लन्दनके शाकाहारी मण्डलमें भाषण देते हुए उन्होंने कहा था, “हमारे गाय-बैल भी शाकाहारी हैं और वे हमसे ज्यादा अच्छे शाकाहारी हैं। परन्तु उससे कहीं अधिक ऊंची वस्तु हमें शाकाहारकी प्रेरणा करती है। ... मनुष्य हाड़-मांसका पुतला ही नहीं है; वह इससे कुछ अधिक है। हमें मनुष्यकी आत्माकी चिन्ता है। इसलिए शाकाहारवादियोंका नैतिक आधार यह होना चाहिये कि—मनुष्य मांसाहारी प्राणी बननेके लिए उत्पन्न नहीं हुआ है, परन्तु पृथ्वी पर पैदा होनेवाले फलों और शाकभाजी पर निर्वाह करनेके लिए उत्पन्न हुआ है। . . . इसलिए मैं मानता हूं कि शाकाहारियोंको शाकाहारवादके शारीरिक परिणामों पर जोर न देकर उसके नैतिक परिणामोंकी खोज करनी चाहिये। . . . शाकाहारी यदि दूसरोंको शाकाहारी बनाना चाहते हैं, तो उन्हें सहिष्णु बनना चाहिये। थोड़ीसी नम्रता अपनाइये। जो लोग हमसे सहमत नहीं हैं, उनकी नैतिक भावनासे हमें अपील करनी चाहिये।”

गांधीजी इस विचारको मानते थे कि तमाम व्याधियां प्रकृतिके नियमोंका भंग करनेके कारण होती हैं और स्वास्थ्यका मार्ग प्रकृतिके नियमोंका पालन करना है। इसलिए जीवनकी कृत्रिम पद्धतिको—जिसे आज आधुनिक जीवन कहा जाता है—छोड़ कर मनुष्य शरीर और मनका स्वास्थ्य फिरसे प्राप्त कर सकता है। परन्तु गांधीजीका ‘प्रकृति-परायण मनुष्य’ निसर्गवादियोंका ‘उदात्त वनवासी’ नहीं था। प्रकृतिकी दिशामें फिरसे जानेका गांधीजीका आशय यह था कि पशुता पर—जो अपनी प्राथमिक अवस्थामें मनुष्यके दैवी अंशको ढांक देती है—विजय प्राप्त करके हम अपनी आत्माके धर्मका



अनुसरण करें। यह कार्य आध्यात्मिक संयम—यमनियमादिके पालन—से हो सकता है, जिसके बिना मनुष्य पशु रह जाता है:

न अपनी भूमिकासे उठ
प्रतिष्ठित हो सके उन्नत;
उसे मानव कहें? वह तो
निरा बस क्षुद्र प्राणी है !

*

गांधीजीके निसर्गोपचार और रामनामके तत्त्वज्ञानाना एक परिणाम उनका सवा सौ वर्ष तक जीनेका सिद्धान्त था। गांधीजीका कहना था कि निष्काम सेवा करनेवाले प्रत्येक मनुष्यका १२५ वर्ष जीनेका अधिकार है और उसे १२५ वर्ष तक जीनेकी अभिलाषा रखनी चाहिये। “इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिए जरूरी शर्त यह है कि . . . अनासक्त भावसे सेवा की जाय । इसका अर्थ यह हुआ कि कर्म-फलकी बिलकुल इच्छा न रखी जाय । . . . अनासक्तिकी इस अवस्थाको पहुंचे बिना १२५ वर्ष तक जीना असंभव है। . . . मानव-शरीर सेवाके लिए ही है, भोगके लिए कभी नहीं। . . . त्याग जीवन है। भोग मृत्यु है। . . . ऐसी सेवाके लिए किया गया त्याग शाश्वत आनन्द है, जो भीतरसे उत्पन्न होता है और जीवनका आधार है। इसमें चिन्ता या अधीरताके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।” [हरिजन, २४ फरवरी १९४६, पृ. १९]

गांधीजी व्यवहारमें इस आदर्शको प्राप्त करनेकी आशा कैसे रखते थे, जब कि रहन-सहनकी भूतकालमें की गई गलतियोंसे कोई भी आदमी पूरी तरह मुक्त नहीं है? यह प्रश्न एक बार कलकत्ताके प्रमुख अंग्रेजी दैनिक 'दि स्टेट्समैन' के मि. ईरान स्टीफेन्सने उठाया था: “हमारे भूतकालके जीवनके संस्कारोंका क्या होगा ? उनको बट्टे खाते तो नहीं लिखा जा सकता ?”

गांधीजीने उत्तर दिया था: “मेरे पास इसका उत्तर है। मेरा वर्तमान जीवन कितना ही अच्छा क्यों न हो, लेकिन यदि मेरा भूतकालका जीवन मुझे पूरी आयु जीने योग्य नहीं बनाता, तो मैं मन और शरीरके बीच सम्पूर्ण अनासक्ति साध कर भूतकालीन दोषयुक्त जीवनके असरको मिटा सकता हूं। अनासक्तिसे



परम्परा और वायुमण्डलकी बाधाओं और भूतकालीन दोषपूर्ण आचरणके परिणाम दोनोंको मिटाया जा सकता है। साधारणतः प्रकृतिके नियमके प्रत्येक भंगका—चाहे वह अज्ञानमें हुआ हो या जान-बूझ कर हुआ हो—जैसे क्रोध, चिड़चिड़ापन, अधीरता और विवाहित जीवनकी भूलोंका, दंड अवश्य मिलता है। परन्तु इसमें इतनी आशा है कि यदि आप सम्पूर्ण अनासक्ति साध लेते हैं, तो आप इन सब परिणामोंको मिटा सकते हैं। जब तक मनुष्य 'द्विज' नहीं बनता अर्थात् वह अपने जीवनमें परिवर्तन नहीं करता, तब तक उसे शाश्वत जीवन प्राप्त नहीं हो सकता। इसके विपरीत, मनुष्य यदि अपने जीवनको बदल दे, तो वह शाश्वत जीवन प्राप्त कर सकता है। . . . मनुष्य जब चाहे तभी अपने जीवनमें परिवर्तन कर सकता है और नया जीवन आरम्भ कर सकता है। भूतकाल उसकी गतिमें दखल नहीं देगा, बशर्ते वह अनासक्तिके कुल्हाड़ेसे उसके साथ और उसके संस्कारोंके साथ सम्पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद कर ले।” [हरिजन, ७ अप्रैल १९४६, पृ. ७२]

एक लोकतंत्रवादीके नाते गांधीजी यह मानते थे कि जो औरोंको नहीं मिल सकता वह उन्हें नहीं लेना चाहिये। परन्तु सुधारकके नाते वे यह मानते थे कि दूसरोंकी प्रतीक्षा किये बिना उनको आगे बढ़ना चाहिये और स्वयं कार्य करना चाहिये। इससे कभी कभी उनके सिद्धान्त और व्यवहारके बीच संघर्षका आभास मालूम होता था। गांधीजीका दावा था कि प्राकृतिक चिकित्सा और रामनामका उनका तत्त्वज्ञान लाखों आदमियोंके हितमें सोचा गया है। इस बारेमें एक पत्रलेखकने गांधीजीको लिखा, “मैं नहीं समझ पाता कि अपनी शारीरिक व्याधियोंके लिए आध्यात्मिक शक्ति पर मैं कैसे आधार रखूं। मुझे यह भी विश्वास नहीं है . . . कि अपने मोक्षके लिए मेरा प्रार्थना करना उचित है या नहीं, जब कि मेरे देशवासियोंमें इतना दुःखदर्द फैला हुआ है।”

गांधीजीने अपने साप्ताहिक पत्रमें उत्तर दिया, “यदि आप कुनैन लेकर मलेरियासे छुटकारा पा लेते हैं और उन लाखों लोगोंका विचार नहीं करते जिनको कुनैन नहीं मिलती, तो आप वह उपाय क्यों न काममें लें जो आपके भीतर मौजूद है और जिसका करोड़ों लोग अपने अज्ञानवश उपयोग नहीं करते ? दूसरे लाखों लोग यदि अपने अज्ञान या जड़ताके कारण साफ और तन्दुरुस्त नहीं रहना चाहते, तो क्या आपको भी साफ और तन्दुरुस्त नहीं रहना चाहिये ? यदि आप परोपकारकी गलत कल्पनाके कारण साफ-स्वच्छ नहीं रहेंगे, तो आप गन्दे और बीमार रह कर उन्हीं लाखों मनुष्योंके सेवार्थसे



अपनेको वंचित कर लेंगे। . . . किन्तु सही बात यह है कि रामनामके उपयोगका ज्ञान प्राप्त करनेसे कुनैनकी एक दो गोलियां ले लेना कहीं ज्यादा आसान है। कुनैनकी गोलियां खरीदनेके खर्चकी अपेक्षा इसमें कहीं ज्यादा प्रयत्न करना पड़ता है। यह प्रयत्न उन लाखों लोगोंके खातिर भी करने जैसा है, जिनके नाम पर और जिनके लिए पत्रलेखक रामको अपने हृदयसे निकाल देना चाहते हैं।” [हरिजन, १ सितम्बर १९४६, पृ. २८६]

गांधीजीने यह भी कहा: “मैं तो यहां तक कहता हूं कि यदि अहिंसाका पालन लाखों लोग नहीं कर सकते, तो स्वयं मेरे लिए उसका कोई उपयोग नहीं है। परन्तु यदि उपयोग करनेकी शक्ति उनमें होने पर भी वे अहिंसाका उपयोग न करना चाहें, तो बिलकुल अकेला रह जाने पर भी मैं उस पर अटल रहूंगा।

. . . इसी प्रकार यदि अकेले मुझे ही १२५ वर्ष तक जीनेकी इच्छा करने और कोशिश करनेकी छूट हो, तो मैं ऐसी इच्छा नहीं रखूंगा। परन्तु ईश्वर और उसकी सृष्टिकी सेवाके लिए १२५ वर्ष जीनेकी इच्छा प्रत्येक मनुष्य कर सकता है और उसे करना चाहिये।” [वही, पृ. २९२]

*

गांधीजीकी कल्पनाके अनुसार प्राकृतिक चिकित्सा सम्पूर्ण जीवनको व्याप्त करती है। एक दिन उरुलीकांचनमें उनके पास एक ग्रामीणको लाया गया। उसके शरीर पर चोरोंके प्रहारोंसे कई घाव हो गये थे। चोर उसके घरसे गहनें-गांठे उठा ले गये थे। इससे गांधीजीको यह समझानेका मौका मिला कि किस प्रकार प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धान्त द्वारा चोरों और दूसरे समाज-विरोधी तत्त्वोंको उनकी बुरी आदतोंसे छुड़ाया जा सकता है। इस समस्यासे निबटनेके तीन उपाय हैं। पहला है परम्परासे चला आया और पुराना उपाय पुलिसको खबर देनेका। दूसरा, जिसे साधारण ग्रामीण लोग अपनाते हैं, बिना कुछ किये-कराये चुपचाप सहन कर लेना है। यह निन्दनीय है, क्योंकि इसकी जड़में कायरता है। जब तक कायरता रहेगी तब तक अपराध फलें-फूलेंगे।” इतना ही नहीं, इस प्रकार चुपचाप सह लेनेसे हम स्वयं अपराधके भागी बन जाते हैं।” तीसरा उपाय सत्याग्रहका है। किसी चोर या अपराधीके प्रति दुर्भाव रखे बिना और उसे सजा दिलवानेकी कोशिश किये बिना हमें उसके हृदयके भीतर घुसना चाहिये और जिस



कारणसे उसने अपराध किया उसे समझ कर उसका उपाय करना चाहिये। कोई चोर या अपराधी हमसे बहुत भिन्न नहीं होता। जो धनी आदमी शोषण और दूसरे बुरे उपायोंसे दौलत जमा करता है, वह किसीकी जेब काटनेवाले आदमीसे या किसीके घरमें घुस कर चोरी करनेवाले चोरसे कम लूटका अपराधी नहीं है। फर्क इतना ही है कि धनी आदमी अपनी सम्मानित स्थितिकी आड़ लेकर कानूनके दंडसे बच जाता है। अपराधी व्यक्ति सामाजिक रोगका चिह्न मात्र होता है। इसलिए सत्याग्रहीको चाहिये कि अपना उपचार (सुधार) करनेके बाद वह चोरका उपचार करनेकी कोशिश करे। “वह एक साथ दो घोड़ों पर सवारी करनेका प्रयत्न न करे। अर्थात् एक ओर पुलिसकी मदद लेनेका और दूसरी ओर सत्याग्रहके नियमका पालन करनेका नाटक वह न रचे।” [हरिजन, ११ अगस्त १९४६, पृ. २५५] कोई भी पुलिस अधिकारी सत्याग्रहीको ऐसे आदमीके विरुद्ध गवाही देनेके लिए विवश नहीं कर सकता, जिसने उसके सामने अपना अपराध स्वीकार किया हो।

और जो बात उरुलीकांचन पर लागू होती थी वह सारे भारत पर लागू होती थी। अगस्त १९४६ में लोकमान्य तिलककी २६ वीं पुण्यतिथि पर बोलते हुए गांधीजीने कहा कि मेरी कल्पनाके स्वराज्यका निर्माण करनेमें प्राकृतिक चिकित्सा एक आवश्यक तत्त्व है। सच्चे स्वराज्यकी तालीमसे पहले शरीर, मन और आत्मा तीनोंकी शुद्धि होनी चाहिये।

मार्च १९४६ के अन्तमें गांधीजी दिल्ली बुला लिये गये, इसलिए उन्हें अपना उरुलीकांचनका प्रयोग अधूरा छोड़ना पड़ा। उसके बाद केवल एक बार अगस्तमें वे उरुली जा सके थे। परन्तु प्राकृतिक चिकित्साका महत्त्व उनके मनमें बढ़ता रहा और वे अन्त तक उरुलीके काममें सक्रिय रस लेते रहे। नवम्बर १९४७ में जब साम्प्रदायिक वैर-द्वेषके समग्र भारत पर हावी हो जानेका भय पैदा हो गया था, तब उन्होंने दिल्लीसे एक साथीको पत्रमें लिखा: “उरुलीमें सब सम्बन्धित लोगोंसे कह दीजिये कि उरुलीमें न रह सकनेका मुझे दुःख और सन्तोष दोनों होता है। सन्तोष इस बातसे होता है कि जो कुछ मैं यहां कर रहा हूं वह भी उरुलीकांचनके कामका ही एक अंग है। मेरी प्राकृतिक चिकित्सामें शरीर और आत्मा दोनोंका समावेश होता है। इसलिए मेरे विचारके अनुसार यदि मैं यहांके लोगोंको पुनः सही विचार पर ले आता हूं, तो उसका असर हमारे उरुलीकांचनके काम पर भी पड़ेगा। और उससे प्राकृतिक चिकित्साके प्रयोगका एक ज्वलन्त प्रमाण मिल जायगा। प्राकृतिक चिकित्साकी मेरी व्याख्याके अनुसार



निसर्गोपचार, ग्रामोद्धार और आश्रमकी जीवन-प्रणालीको मिला कर एक अविभाज्य सम्पूर्ण वस्तु बनती है। सर्वांगीण ग्रामोद्धार प्राकृतिक चिकित्साकी चरम सीमा है और आश्रमकी जीवन-प्रणालीके बिना गांवोंके लिए प्राकृतिक चिकित्साकी मैं कल्पना ही नहीं कर सकता । . . . इसलिए जो आदमी अपने आपको आश्रम-जीवनके अनुकूल बनानेके लिए तैयार नहीं है, वह मेरी रायमें हमारे कामका नहीं है।” [गांधीजीका पत्र मणिभाईको, १२ नवम्बर १९४७]

एक और अवसर पर गांधीजीने कहा : “जो भी संस्था मैं हाथमें लेता हूं, उसे आश्रम बना देता हूं। मालूम होता है कि मुझे और कोई धंधा आता ही नहीं है।” क्योंकि “मानव सारी वस्तुओंका मापदंड” है, इसलिए गांधीजीके लिए प्राकृतिक चिकित्साका आदर्श और उनकी सारी सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियोंका अन्तिम लक्ष्य दोनों एक ही वस्तु बन गये थे। और यह अन्तिम लक्ष्य था स्वस्थ वृत्तियों और स्वस्थ पारस्परिक सम्बन्धोंवाले स्वस्थ व्यक्तियोंके समाजकी स्थापना। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा गांधीजीके मनुष्य और समाजकी पूर्णताके स्वप्नको मूर्त रूप प्रदान करती है—प्रत्येक युग और प्रत्येक देशमें सत्ययुगकी कल्पना इस पूर्णताकी प्रतीक मानी गयी है। इसे उन्होंने रामराज्य अथवा अपने सपनोंका स्वराज्य नाम दिया था। और चूंकि अपने समयके भारतीय समाजमें उस रामराज्यको साकार करना उनके सारे प्रयत्नोंका लक्ष्य था, इसलिए उनका आश्रम उनकी सारी प्रवृत्तियोंका केन्द्र बन गया था—जहां उन्होंने सामान्य स्त्री-पुरुषोंको अपने मार्गदर्शनमें भारतकी प्राचीन संस्कृतिके आधारभूत यम-नियमोंका पालन करनेके लिए एकत्र कर लिया था।

३

ग्रेट ब्रिटेनके जुलाई १९४५ में हुए आम चुनावोंमें वामपक्षकी बड़ी जीत हुई। अनुदार पक्षके लोग हार गये और मजदूर-दल भारी बहुमतके साथ सत्तारूढ़ हुआ। सबसे उल्लेखनीय हार तो प्रतिक्रियावादी भारत-मन्त्री श्री एमरीकी हुई।

चुनावके परिणामोंसे यह सिद्ध हो गया कि ब्रिटेनमें जनताका बहुत भारी बहुमत भारतमें अंग्रेजी राज्यका अन्त करनेके पक्षमें था। नये भारत-मन्त्री लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स गांधीजीके कोई ४० वर्ष पुराने मित्र थे। उनकी नियुक्ति पर बधाई देते हुए गांधीजीने लिखा: “यदि इंडिया आफिसको शानदार ढंगसे



दफना कर उसकी भस्म पर अधिक उदात्त स्मारक खड़ा करना हो, तो इस कामके लिए आपसे अधिक योग्य व्यक्ति और कौन हो सकता है?" [गांधीजीका पत्र लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको, ४ अगस्त १९४५]

लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने उत्तर दिया: "मुझे बड़ी आशा है कि हमारी इतने वर्षोंकी व्यक्तिगत मित्रता भारत और उसकी जनताका स्थायी कल्याण साधनेके लिए सामंजस्यपूर्ण सहयोग निर्माण करनेमें सफल होगी।" [लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सका पत्र गांधीजीको, १४ अगस्त १९४५]

नई मजदूर-सरकारने अगस्तके अन्तिम सप्ताहमें लॉर्ड वेवेलको लन्दन बुलाया, ताकि उनके साथ परामर्श करके सारी भारतीय समस्याका फिरसे सिंहावलोकन किया जाय। साथ ही, भारतमें यह घोषणा की गई कि युद्धके कारण केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान-सभाओंके जो चुनाव अब तक स्थगित रहे थे, वे आगामी शीतकालमें किये जायंगे। लॉर्ड वेवेलके लन्दनसे लौटने पर १९ सितम्बर, १९४५ को भारतमें एक घोषणा की गयी, जिसमें सम्राट्की सरकार और वाइसरॉयका यह इरादा बताया गया कि केन्द्रीय विधान-सभा और प्रान्तोंके चुनाव पूरे होनेके तुरन्त बाद (१) प्रान्तोंमें प्रजाकीय मंत्री-मंडलोंको फिरसे शासनकी जिम्मेदारी ग्रहण करनेके लिए कहा जायगा। (२) जल्दीसे जल्दी संविधान बनानेवाली सभा बुलाई जायगी। और (३) प्रमुख भारतीय दलोंके समर्थनसे वाइसरॉयकी कार्यकारिणी परिषद्की पुनर्रचना की जायगी।

जब देश चुनावकी तैयारीमें लगा हुआ था तब गांधीजी बहुत दिनसे मुलतवी की हुई बंगालकी यात्राके लिए निकले। मई १९४४ में अपनी रिहाईके बादसे ही वे बंगाल जानेको उत्सुक थे, क्योंकि वहां प्रकृतिने मनुष्यके साथ षड्यंत्र करके लोगोंके दुःखोंको चरम सीमा पर पहुंचा दिया था। परन्तु बंगालमें मुस्लिम लीगी मंत्री-मंडल सत्तारूढ़ था और दोनोंके एक सामान्य मित्रने गांधीजीको बताया था कि मुख्यमंत्री ख्वाजा नजीमुद्दीनको गांधीजीका बंगाल जाना पसन्द तो बहुत होगा, परन्तु वे घबरा रहे हैं कि कहीं गांधीजीकी मुलाकातके कारण उनके मंत्री-मंडलका पतन न हो जाय। गांधीजीने कहा कि बंगालके मुस्लिम लीगी मंत्री-मंडलको परेशान करनेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं है; और जब तक लीगी मंत्री-मंडल मुझे नहीं बुलायेगा तब तक मैं वहां नहीं जाऊंगा। मार्च १९४५ में विधान-सभामें बजटकी एक बड़ी मद बंगाल सरकार स्वीकृत नहीं करा सकी, इसलिए नजीमुद्दीन मंत्री-मंडलका पतन हो गया;



और कोई दूसरी स्थायी सरकार बननेकी संभावना नहीं थी, इसलिए बंगालके युद्धकालीन ऑस्ट्रेलियन गवर्नर श्री केसीने भारतीय शासन-विधानकी धारा ९३ के अनुसार बंगालका प्रशासन संभाल लिया।

जुलाई १९४५ में शिमलामें नेताओंका सम्मेलन पूरा हो गया, उसके बाद श्री केसीने गांधीजीसे कहलवाया कि वे बंगालमें गांधीजीके आगमनका स्वागत करेंगे। बदली हुई परिस्थितियोंमें गांधीजीने निश्चय किया कि वे बंगाल जायंगे, बशर्ते उन्हें मिदनापुर जिलेमें जानेकी स्वतंत्रता हो। उस जिलेमें तूफान, बाढ़, अकाल और सरकारी दमनके कारण प्रजामें अवर्णनीय हाहाकार मचा हुआ था। गांधीजी चाहते थे कि इस मुलाकातमें उन्हें बिना किसी रुकावटके जिससे वे मिलना चाहें मिलने दिया जाय। श्री केसीका सन्तोषजनक उत्तर मिलने पर गांधीजी ३० नवम्बर, १९४५ को बंगालके लिए रवाना हुए।

गांधीजीकी पहलेकी रेलयात्राओंके अनुभवसे बचनेके लिए उनके डिब्बेसे कुछ दूर एक दूसरे डिब्बेमें लाउड-स्पीकर लगा दिया गया, ताकि लोग गाड़ीके परले सिरे पर माइक्रोफोन पर बोले हुए गांधीजीके शब्द सुन सकें और आकर उनके डिब्बेको घेर न लें। परन्तु लाउड-स्पीकरने तो काम ही नहीं किया। पहले ही बड़े स्टेशन पर लम्बा फासला तय करके आये हुए तथा प्रतिकूल मौसममें गांधीजीके दर्शनोंके लिए घंटोंसे प्रतीक्षा करते हुए हजारों लोग इससे बहुत निराश हुए। उन्होंने हरिजन-कोषमें खुले हाथों दान देकर अपना उत्साह प्रगट किया। यह दान गांधीजी जहां कहीं जाते थे वहां हरिजनोंकी सेवाके लिए और उससे भी अधिक लोगोंको अस्पृश्यता-निवारणकी शिक्षा देनेके लिए इकट्ठा किया करते थे।

कभी कभी दानके बाद भेंटमें प्राप्त हुई वस्तुओं और मानपत्रोंका नीलाम हुआ करता था। एक चांदीकी तश्तरी तीन बार नीलाम हुई और वहींके वहीं उसके ४५०० रुपये लग गये। चौथी बार वह ज्योंकी त्यों गांधीजीके पास लौट आई और फिर उन्हींके पास रही। एक और स्टेशन पर एक महिला सोने-चांदीके आभूषणोंसे लदी हुई भीड़को चीरती उनके डिब्बेमें पहुंची और अपने आभूषण उतार कर उनके पैरोंमें रखती हुई बोली, “महात्माजी, मुझे श्रद्धा दीजिये।” महात्माजीने उत्तर दिया, “यह काम तो ईश्वर ही कर सकता है। जो श्रद्धाकी खोज करता है, उसे श्रद्धा जरूर मिलती है।”



ब्रिटिश शासकोंने कांग्रेसके खिलाफ युद्ध छेड़ा तबसे आरम्भ हुआ वैमनस्यका भाव गांधीजीके साथ लम्बे समय तक बना रहा। कलकत्तेमें हुई श्री केसीके साथ गांधीजीकी भेंट उस दीर्घकालीन वैमनस्यके मरुस्थलमें हरियाली भूमिकी तरह थी। पहली ही भेंटमें दोनोंके मन मिल गये। बादमें महात्माके बारेमें अपने मन पर पड़ी हुई छापकी बात केसीने इस प्रकार लिखी थी: “वे संतोंमें राजनीतिज्ञ हैं और राजनीतिज्ञोंमें संत हैं। गांधीजीका सबसे बड़ा गुण उनकी स्नेहपूर्ण मानवता है। [केसी, ‘एन ऑस्ट्रेलियन इन इंडिया’, लन्दन, १९४७, पृ. ६१] . . . वे अपने विरोधी पर सार्वजनिक रूपमें विजय प्राप्त कर सकते हैं, फिर भी—जब वे चाहें—अपने विरोधीके मनमें कटुताकी भावना नहीं रहने देते। [वही, पृ. ६१] गांधी क्वचित् ही किसी मनुष्यकी बुराई करते हैं। मैंने उनके साथ ऐसे अनेक व्यक्तियोंकी चर्चा की, जिन्होंने उनके साथ कठोर व्यवहार किया था। परन्तु उन सबके बारेमें वे कोई न कोई अच्छी बात ढूंढ़ कर कह सकते थे, जब कि बुरी बात एक भी नहीं कहते थे। . . . जो लोग गांधी पर विश्वास करते हैं, उन पर वे भी विश्वास करते हैं।” [वही, पृ. ६०-६२]

दोनोंकी बातचीतमें श्री केसीने गांधीजीसे कहा कि आप भारतीय नेताओंको अपनी वाणी पर संयम रखनेके लिए समझाएँ, क्योंकि उनके वक्तव्योंसे नई दिललीके शासकोंकी भावनाको बहुत चोट पहुँचती है। “यदि इस समय कोई हल नहीं निकला, तो यह एक बड़ी करुण घटना होगी। अवश्य ही कोई भी ऐसा नहीं चाहता।”

गांधीजीने उत्तर दिया: “ बेशक, ऐसा कोई नहीं चाहता। परन्तु यदि आपकी यह आशा हो कि भारतको आजादी दानकी तरह स्वीकार करनी चाहिये और उसके लिए वह अंग्रेजोंका आभारी रहे, तो आप बड़ी भूल कर रहे हैं।”

श्री केसीने कहा कि यदि आप मदद करें तो भारतका गतिरोध मिट सकता है। गांधीजीने उनसे कहा कि यदि ब्रिटिश शासकोंका भारतके साथ पूरा, शुद्ध और बिना शर्त न्याय करनेका दृढ़ निश्चय न हो, तो मैं कोई मदद नहीं कर सकता । केसीने गांधीजीको विश्वास दिलाया कि स्वाधीनता आ रही है और वह बरसोंकी बात नहीं परन्तु कुछ महीनोंकी ही बात है। अंग्रेजोंने भारतको स्वतंत्र करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है। गांधीजीने उत्तर दिया, तब तो आनेवाली घटनाओंके आसार पहलेसे दिखाई देने



चाहिये। उदाहरणके लिए, राजनीतिक कैदियोंको छोड़नेका सवाल ही लीजिये। केसी बोले, मैं बहुतोंको पहले ही छोड़ चुका हूँ। अब कोई २९० के करीब रह गये हैं। “बाकी लोगोंको जब आप शासनका भार संभालें तब आप देख लीजियेगा।” गांधीजीने तर्क किया, “राष्ट्रीय सरकार पर इस प्रश्नको क्यों छोड़ें? उससे पहले ही यह कार्रवाई क्यों न की जाय ? जो काम करना है उसे रुक रुक कर करनेसे या समय बीत जाने पर करनेसे उसकी शोभा मारी जाती है।” गवर्नरकी समझमें उनकी बात आ गई। उसके बाद रिहाइयोंकी रफ्तार तेज कर दी गई और मार्च १९४६ के मध्य तक केवल ११५ व्यक्ति नजरबन्दीमें रह गये।

श्री केसीने अपनी सिंचाईकी और विकासकी अन्य योजनाओंकी चर्चा भी गांधीजीसे की और इस विषय पर उन्होंने रेडियोके लिए जो भाषण तैयार किया था उसकी प्रतिलिपि पहलेसे ही गांधीजीके पास भेज दी। गांधीजीने उन्हें बताया कि ये सब दीर्घकालीन योजनाएं हैं। अपनी जगह पर वे सब ठीक हैं, परन्तु बीचके समयमें लाखों लोगोंको अपने बेकार समयका एक एक क्षण काममें लेना सिखाना चाहिये। “मानव-श्रमको आप रुपयेसे अधिक मान लीजिये। फिर तो आपके पास आयका आज तक काममें न लिया गया एक अटूट साधन खड़ा हो जायगा, जो उपयोग करनेसे सदा बढ़ता ही रहता है।” [गांधीजीका पत्र केसीको, ८ दिसम्बर १९४५] उन्होंने मानव-प्रयत्नके तात्कालिक उपयोगके साधनके रूपमें और जिसे श्री केसीने “संसारकी सबसे बड़ी बेकारीकी समस्या” [केसीका रेडियो-भाषण, ८ दिसम्बर १९४५] बताया था, उसके उपायके रूपमें अपनी हाथ-कताई और हाथ-बुनाईकी योजना श्री केसीके सामने रखी।

श्री केसीने दलील दी कि ऐसी योजना पर अमल किया भी गया, तो “उससे वह काम नहीं होगा जो सिंचाईसे होगा—वह किसानको वर्षाकी गुलामीसे या दूसरी बहुतसी दिक्कतोंसे, जो सिंचाईके अभावसे पैदा होती हैं, मुक्त नहीं कर सकेगी।” और इसलिए उनका कहना था कि, “मेरा इस बात पर सारा जोर लगाना उचित है कि बंगालकी सम्पन्नताके लिए भौतिक वातावरण पर नियंत्रण प्राप्त करना बुनियादी तौर पर जरूरी है।” [केसीका पत्र गांधीजीको, ९ दिसम्बर १९४५]



गांधीजीने उनसे कहा, “मैंने सिंचाईकी योजनाकी उपेक्षा नहीं की है। यदि नदियोंके पानीको बांध कर बंगालके लोग उपयोगमें ले सकें और उसे खाड़ीमें बर्बाद न होने दिया जाय, तो इससे उन्हें बड़ा लाभ होगा।” [गांधीजीका पत्र केसीको, ८ दिसम्बर १९४५] परन्तु यदि पहले लोगोंको अपना बरबाद होनेवाला समय काममें लेनेकी कला सिखा दी जाय, तो वे नियंत्रित जलका सदुपयोग कर सकेंगे। मैंने तो सिंचाईकी योजनामें वृद्धि करनेका ही सुझाव दिया है, ताकि ग्रामजनोंको लगभग तुरन्त व्यक्तिगत राहत मिल जाय। मुख्य प्रश्न उनकी बरबाद होनेवाली मेहनतके उपयोगका है। . . . आपकी योजनामें मुख्य प्रश्न बरबाद होनेवाले पानीको उपयोगमें लानेका है।” [गांधीजीका पत्र केसीको, १२ दिसम्बर १९४५]

परन्तु इस विषयमें श्री केसी उन्हें कोरे मालूम हुए। बादमें बंगालके गवर्नरने यह टीका की: “इस प्रश्न पर गांधीजीके 'विचारोंके खिलाफ तर्क करना . . . समय बरबाद करना था।” [केसी, 'एन ऑस्ट्रेलियन इन इंडिया', लन्दन, १९४७, पृ. ६१]

गांधीजीने श्री केसीको अन्तमें सुझाया कि भावी परिवर्तनोंके बारेमें ब्रिटिश घोषणाओंको देखते हुए विकासकी जो भी योजनाएं अधिकारियोंके पास हों, उन सबको लोगोंसे सलाह करके तैयार किया जाय। लेकिन कोई चीज कितनी ही लाभदायी क्यों न हो, उसे ऊपरसे लोगों पर थोपना नहीं चाहिये।” स्वाधीनता कोई आकाशसे नहीं टपकनेवाली है। उसका जन्म धरतीसे होना चाहिये।”

अब दोनों साम्प्रदायिक प्रश्न पर आये। श्री केसीने इस बात पर जोर दिया कि मुसलमान अपना डर मिटानेके लिए जो भी गारंटी मांगें वह उन्हें देनी चाहिये। गांधीजीने उन्हें बताया कि औचित्यकी सीमामें रह कर इस दिशामें उन्होंने क्या क्या किया था। श्री केसीने गांधीजीको विश्वास दिलाया कि इस बार ब्रिटिश सरकारने निश्चय कर लिया है कि जिन्नाको देशकी राजनीतिक प्रगतिमें बाधक नहीं बनने दिया जायगा।

गांधीजीने केसीके साथ हुई अपनी मुलाकातके बाद पं. नेहरूसे कहा, “वे अच्छे आदमी हैं। उनसे मिलकर मुझे स्मट्सका स्मरण हो आया।”



पं. नेहरूने अपने सदाके सौम्य ढंगसे उत्तर दिया, “ये सब लोग आदमी तो अच्छे हैं, परन्तु उनकी धारणाएं सब गलत हैं। इसलिए अच्छेपनका सवाल पैदा नहीं होता।”

श्री केसीने लॉर्ड वेवेलके कलकत्ता आने पर उनकी और गांधीजीकी मुलाकातका भी प्रबन्ध किया था। यह भेंट सर्वथा असफल सिद्ध हुई। मुलाकातसे पहले कलकत्ताके एसोसियेटेड चेम्बर ऑफ कॉमसमें लॉर्ड वेवेलका भाषण बहुत ही खराब हुआ। उसमें पुरानी ब्रिटिश शासन-व्यवस्थाके वही निर्जीव जर्जर सूत्र भरे थे और उसमें इसका जरा भी संकेत नहीं दिया गया कि जिन परिवर्तनोंका श्री केसी गांधीजीको विश्वास दिला रहे थे वे आनेवाले हैं। वाइसरॉयने कहा, “‘भारत छोड़ो’ का नारा ऐसे किसी मंत्रका काम नहीं देगा, जिससे अलीबाबाकी गुफाका दरवाजा खुल जाय। समझौतेके लिए अलग अलग दल हैं, जिन्हें किसी न किसी तरह आपसमें एक हद तक समझौता करना होगा—कांग्रेस है, . . . अल्पसंख्यक जातियां हैं, . . . मुसलमान हैं, . . . देशी राजा हैं, . . . ब्रिटिश सरकार है।”

गांधीजीने लॉर्ड वेवेलको अपनी ३. मिनटकी मुलाकातमें कहा, भारतीय प्रश्नका एकमात्र हल यह है कि अंग्रेज इस बातको अच्छी तरह समझ लें कि भारत पर अधिकार बनाये रखने और ‘वानर-न्याय’ करते रहनेका उन्हें कोई नैतिक अधिकार नहीं है। जो भी दल शासन संभालनेको तैयार हो उसे सत्ता सौंप कर उन्हें भारतसे चले जाना चाहिये। लॉर्ड वेवेलने उन ‘तेज’ भाषणोंकी शिकायत की, जो कांग्रेसी नेता दे रहे थे। गांधीजीने उनसे कहा, अगर आप लोगोंने भारतसे जानेका सचमुच निश्चय कर लिया है, तो इस विषयमें भावुक बननेकी जरूरत नहीं है।

लॉर्ड वेवेलने पूछा: तो क्या आपको अंग्रेजोंकी नेकनीयत पर शक है?

गांधीजीने उल्टा प्रश्न किया: क्या अंग्रेजों द्वारा किये हुए वचन-भंगका बार बार अनुभव होनेके बाद इसके लिए काफी कारण नहीं है? वाइसरॉयने साफ इनकार करते हुए उनसे कहा कि अंग्रेजोंने कोई वचन-भंग नहीं किया। यदि भारतीय दल आपसमें समझौता कर लेते, तो अंग्रेज तुरन्त सत्ता सौंपनेको तैयार थे। गांधीजीने उनसे कहा: तब तो भारतीय प्रश्नका निबटारा कयामतके दिन तक नहीं होगा। “यदि आप कहते हैं कि जब तक भारतवासियोंमें सर्वसम्मति नहीं होगी तब तक आप यहीं रहेंगे, तो निबटारेका कोई आधार नहीं हो सकता—क्योंकि आप निबटारा कभी होने ही नहीं देंगे।”



बेचारे केसीने तो सद्भावसे प्रयत्न किया था, परन्तु उन्हें कड़वा अनुभव हुआ। दिल्लीसे वाइसरॉय और गांधीजीकी मुलाकातके बारेमें जो वक्तव्य जारी किया जानेवाला था, उसमें कहा गया था: “वाइसरॉयने गांधीजीसे मिलना स्वीकार कर लिया था।” जब वक्तव्यकी मूल प्रति गांधीजीको दिखायी गयी, तो उन्होंने बताया कि मैंने मुलाकात नहीं मांगी थी, क्योंकि उस समय मेरे पास वाइसरॉयसे कहनेके लिए कोई नई या उपयोगी बात थी ही नहीं। इसलिए इस वक्तव्यमें उचित संशोधन करना होगा। गांधीजीने आवश्यक परिवर्तन भी सुझाया, परन्तु उसे नई दिल्लीवालोंने स्वीकार नहीं किया।

इस पर श्री केसीने नई दिल्लीको सुझाया कि सारी जिम्मेदारी मुझ पर डाली जा सकती है और यह कहा जा सकता है कि वाइसरॉय और गांधीजीकी मुलाकातका सुझाव केसीकी तरफसे आया था और दोनों पक्षोंने उसे स्वीकार किया था। परन्तु नई दिल्लीवालोंको यह भी स्वीकार नहीं हुआ। अन्तमें ‘नई दिल्ली’ की तारीख लगा कर (!!!) कलकत्तेसे एक अनधिकृत वक्तव्य निकाला गया और उसमें यह स्पष्टीकरण किया गया कि कलकत्ता और नई दिल्लीके बीच कुछ गलतफहमी हो गई थी और वास्तवमें गांधीजीने यह ‘मुलाकात’ नहीं मांगी थी !

बादमें वाइसरॉयके निजी सचिवने उनकी कठिनाई समझाई। वाइसरॉयके मन पर सचमुच यह छाप पड़ी थी कि जब गवर्नर केसीने गाँधीजीसे मिलनेका सुझाव उनके सामने रखा, तब वे गांधीजीकी मांग उनके सामने रख रहे थे। वाइसरॉयके निजी सचिवने कहा, यह तो हम कह नहीं सकते थे कि वाइसरॉयने गांधीजीको बुलाया है, क्योंकि उससे यह छाप पड़ती कि वाइसरॉयने कांग्रेसके साथ संधिवार्ताएं आरम्भ कर दी हैं; और फिर उसमें से यह सवाल पैदा होता कि जिन्नाको और दूसरी अल्पसंख्यक जातियोंके प्रतिनिधियोंको क्यों नहीं बुलाया गया।

क्या यह सब बातका बतंगड़ ही था ? क्या ‘प्रतिष्ठा’ के बारेमें अत्यधिक भावुकता ही थी ? नहीं, बात इससे अधिक गम्भीर अपशकुनकी सूचक थी। स्वाधीनताके उषाकालमें जो प्रातःकालीन कोहरा छाया हुआ था, उसके भीतरसे ‘समान संख्या’ का भूत क्षितिज पर दिखाई देने लगा था। लेकिन उसके भयंकर रहस्यको भारतमें अभी तक किसीने पूरी तरह जाना नहीं था।

*



गांधीजीकी बंगाल-यात्राके दिनोंमें दिसम्बरके पहले सप्ताहमें कलकत्तामें कांग्रेस कार्यसमितिकी बैठक रखी गई। विषय-सूचीमें मुख्य वस्तु थी चुनावका घोषणा-पत्र। गांधीजीका खयाल था कि चुनावकी सबसे अच्छी तैयारी यह होगी कि कांग्रेस अपने घरको व्यवस्थित कर ले। गांधीजीके विचारके अनुसार कांग्रेसको देशमें अद्वितीय पद उसकी अहिंसाकी नीतिके कारण मिला था। अपनी उस नीतिका अधिक विकास करके वह अधिक ऊंचाई पर पहुंच सकती थी। परन्तु इस मामलेमें वह आगे बढ़नेके बजाय पीछे हटती नजर आती थी। गांधीजीने कभी जान-बूझ कर एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा था, जिसका यह अर्थ लगाया जाय कि उन्होंने किसी ऐसी बातकी निन्दा की है, जो अगस्त १९४२ में कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारीके बाद लोगोंने की हो। परन्तु वे दृढ़तापूर्वक यह मानते थे कि कांग्रेस इस प्रश्न पर चुप नहीं रह सकती। अतः वह समय आ गया है जब लोगोंके भावी मार्गदर्शनके लिए कांग्रेसको यह स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये कि 'भारत छोड़ो' संग्रामके दिनोंमें किये गये कुछ कार्य कांग्रेसकी अहिंसा-नीतिके दायरेके भीतर आते हैं या नहीं और स्वातंत्र्य-संग्रामको ऐसे कार्योंसे सहायता पहुंच सकती है या नहीं।

चुनावके खर्चका प्रश्न भी था। गांधीजीने इस बारेमें कहा कि कांग्रेसकी सच्ची जीत तभी होगी जब वह एक पाई भी खर्च किये बिना चुनावमें जीते। अगर इस सिद्धान्त पर अटल रह कर कांग्रेस चुनावमें हार भी जाय, तो उन्हें इसकी परवाह नहीं थी।

अन्तमें उन्होंने अपना यह दृढ़ मत बताया कि रचनात्मक कार्यके द्वारा ही कांग्रेसजन सत्याग्रहकी शक्ति पैदा कर सकते हैं। कुछ सदस्य ऐसे थे, जो रचनात्मक कार्यके प्रस्तावको दो भागोंमें बांटना चाहते थे। उनका कहना यह था कि गांधीजीकी व्याख्याके रचनात्मक कार्यमें और कांग्रेसकी अहिंसक नीतिमें कोई अभिन्न सम्बन्ध नहीं है। गांधीजीने इसका कड़ा विरोध किया।

गांधीजीकी अधिकांश सिफारिशें कार्यसमितिने मान लीं। उसका अहिंसा-सम्बन्धी प्रस्ताव इस प्रकार था:

कार्यसमिति . . . सब सम्बन्धित लोगोंके मार्गदर्शनके लिए स्पष्ट रूपमें यह घोषित करती है . . . कि कांग्रेस द्वारा अपनाई गई अहिंसाकी नीतिमें सार्वजनिक सम्पत्तिको जलाने,



टेलिग्राफके तारोंको काट देने, रेलोंको पटरीसे गिरा देने और डराने-धमकानेका समावेश नहीं होता है। कार्यसमितिका मत है कि अहिंसाकी नीतिसे, जो समय समय पर समझाई और विकसित की गई है, और उसके अनुसार किये जानेवाले कार्यसे भारतका दर्जा इतना ऊंचा उठ गया है जितना पहले कभी नहीं उठा था। कार्यसमितिका यह भी मत है कि कांग्रेसकी रचनात्मक प्रवृत्तियां, जो चरखेसे शुरू होती हैं और खादी जिनका केन्द्र है, अहिंसा-नीतिकी प्रतीक हैं और कांग्रेसकी अन्य सब प्रवृत्तियां—जिनमें संसदीय कार्यक्रम शामिल है—गांधीजी द्वारा समझाई हुई रचनात्मक प्रवृत्तियोंके अधीन हैं और उन्हें आगे बढ़ानेके लिए आयोजित की गई हैं। कार्यसमितिका यह मत है कि स्वतंत्रता-प्राप्तिके लिए किये जानेवाले सामूहिक या अन्य किसी प्रकारके सविनय आज्ञा-भंगकी कल्पना तब तक नहीं की जा सकती, जब तक कि भारतके साधारण लोग अधिकसे अधिक व्यापक पैमाने पर रचनात्मक कार्यक्रमको न अपना लें।

थोड़े दिन बाद बंगालके भूतपूर्व मुख्यमंत्री मौलवी फजलुल हक, जिन्हें उनके प्रशंसक लोग 'शेरे बंगाल' कहते थे, गांधीजीके पास आये। किसी समय वे बड़े पक्के मुस्लिम लीगी थे, लेकिन बादमें जिन्नाकी हां में हां न मिलानेके कारण उन्हें लीगसे निकाल दिया गया था। बंगालमें चुनावकी सरगरमी चरम सीमा पर पहुंच गई थी। मौलवी साहबने चुनावकी सभाओंमें मुस्लिम लीगके हिमायतियोंके गुंडेपनकी शिकायत की और कहा कि सरकार पूरा संरक्षण नहीं दे रही है। मैं स्वयं एक अवसर पर एक हिन्दूके घरमें शरण लेकर मौतसे बाल बालू बचा हूं।

गांधीजीने उनके साथ सहानुभूति प्रगट की और उनकी शिकायतों पर गवर्नरका ध्यान खींचा। परन्तु उन्होंने मौलवी साहबसे कह दिया कि इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि मुसलमानोंकी हमदर्दी लीगके साथ है, अन्यथा लीगी गुंडे बहुत आगे नहीं बढ़ सकते थे। मौलवी साहबने यह दलील दी कि यह लीगके साथ मुसलमानोंकी हमदर्दीकी निशानी नहीं है, परन्तु जनताकी उदासीनताकी ही निशानी है। साधारण नागरिक स्वभावसे डरपोक होता है और कमसे कम विरोधका रास्ता अपनाता है। गांधीजी उनकी बातसे सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा: मेरा अपना खयाल तो यह है कि जो लोग जनताकी उदासीनताकी शिकायत करते हैं, वे खुद जनताके प्रति उदासीन रहे हैं। उन्होंने लोगोंके बीच काम करके लोकमत तैयार करनेका बहुत कम प्रयत्न किया है। अपनी उपेक्षाके फल अब उन्हें भोगने पड़ रहे हैं।



पिछली बातों पर रोनेसे अब कोई फायदा नहीं। अब अगर वे गुंडोंसे डरते हैं और सरकार उनकी रक्षा नहीं करती, तो उनके लिए इज्जतका रास्ता यही है कि वे सार्वजनिक रूपमें अपने कारण बता कर चुनावसे हट जायें। इसके फलस्वरूप यदि पाकिस्तान बन जाय, तो उन्हें उस खतरेका सामना करना चाहिये और अहिंसक असहयोगकी शक्तिसे उसका मुकाबला करना चाहिये। क्योंकि प्रयोगमें अनेक दोष होने पर भी असहयोगने हमें ग्रेट ब्रिटेनकी सशस्त्र शक्तिके बावजूद स्वतंत्रताके द्वार तक पहुंचा दिया है। उससे या तो पाकिस्तानका अन्त हो जायगा या उसकी बुराई नष्ट होकर वह सुधर जायगा।

४

रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपनी मृत्युसे पहले गांधीजीके कन्धों पर दो भार डाले थे: (१) शांतिनिकेतनके लिए द्रव्यकी कुछ व्यवस्था करना; और (२) शान्तिनिकेतनके कामकाज और प्रबन्धमें गहरी दिलचस्पी लेना।

दक्षिण अफ्रीकासे लौटने पर गांधीजी और उनसे पूर्व भारत पहुंचनेवाले फिनिक्स आश्रमके उनके साथी यहीं आकर ठहरे थे। कविकी मृत्युके बाद गांधीजी वहां नहीं जा सके थे। दिसम्बर १९४५ के तीसरे सप्ताहमें वे इस यात्राके लिए रवाना हुए।

जब गाड़ी गांधीजीको और उनकी मंडलीको लेकर बोलपुर स्टेशन पर पहुंची, तब सायं-प्रार्थनाका समय निकट था। उनके डिब्बेके सामनेका प्लेटफार्म परम्परागत भारतीय पद्धतिसे रांगोली—अल्पना—की कलापूर्ण आकृतियोंसे सजाया गया था। स्वागतकी एक एक बातमें कला और सादगीका सुमेल दिखाई पड़ता था। कोई शोरगुल या धक्कम-धक्का नहीं हुआ। सारा दृश्य एक गहरी संयमपूर्ण भावनासे ओतप्रोत था। स्वजनके दुःखद वियोगके बाद परिवारके पुनर्मिलनका गांधीर्य सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा था।

संध्या हो रही थी। गांधीजीको सीधे प्रार्थना-सभामें ले जाया गया। प्रार्थना-सभा घने कुंजोंके बीच साफ की हुई भूमि पर हुई थी। जब सायं-कालीन समीर स्थिर और शान्त कुंजोंके बीच निशवास लेता था तब ऊपर हरे पत्तोंके बंदनवार और झंडियां हल्के हल्के लहरा रही थीं। धूपदीपकी सुगन्ध और गुरुदेवके गीतोंका कोमल संगीत संध्याके धूमिल वातावरणमें अनोखा गाम्भीर्य पैदा कर रहे थे।



छोटेसे प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने गुरुदेवको एक ऐसे जन्मदाता पक्षीकी उपमा दी, जिसके फैले हुए पंखोंकी छत्रछायामें उनकी संस्थाने विकसित होकर वर्तमान आकार प्राप्त कर लिया था। “हम सब उनके संरक्षक पंखोंकी गर्मीका अभाव अनुभव कर रहे हैं। परन्तु हमें दुःखी नहीं होना चाहिये। . . . सभी प्राणियोंको एक न एक दिन जाना होता है। . . . अब आप कार्यकर्ताओं और शान्तिनिकेतनके निवासियोंका कर्तव्य है कि सब मिल कर उनके आदर्शका प्रतिनिधित्व करें।”

मौसम सुहावना और खुशनुमा था, हवामें गुलाबी सर्दिका स्पर्श था और नीले निरभ्र आकाशमें शीत ऋतुका पूर्ण चन्द्र चमक रहा था, जब दूसरे दिन प्रातःकाल शान्तिनिकेतनके लड़के और लड़कियोंने वैतालिक गाते गाते आश्रम-भूमिकी परिक्रमा की और ‘उदीचि’ के जिस कमरेमें कविवर सदा बैठते और अपना काम करते थे उसकी खिड़कीके नीचे आकर समूह गान तथा वन्दनाका कार्यक्रम पूरा करके गांधीजीको और उनकी मंडलीको जगाया।

जिस मंदिरमें कविवर अपने साप्ताहिक प्रवचन किया करते थे, उसमें गांधीजीने संस्थाके विद्यार्थियोंकी साप्ताहिक सभामें भाषण देते समय लड़कों और लड़कियोंको अव्यवस्थित ढंगसे बैठे देख कर कहा: तुम्हारे “छोटेसे छोटे कामोंमें” भी शान्तिनिकेतनकी छाप रहना अत्यन्त महत्त्वकी बात है। तुम्हें कविवरकी शिक्षाका केन्द्रीय सन्देश अर्थात् शान्ति और विश्वव्यापी भ्रातृ-भावका मुख्य सन्देश फैलाना है। उसमें जाति, धर्म या रंगके किसी भेद या बंधनोंके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। पीड़ित संसारको शान्तिका सन्देश देना गुरुदेवका जीवन-कार्य था। इसलिए शान्तिनिकेतनके लड़के-लड़कियोंका काम है कि वे शान्तिके सैनिक बन कर संसारमें फैल जायं और उसके लिए ऐसा युद्ध करें, जिससे शान्तिनिकेतन “जैसा उसका नाम है वैसा ही वास्तवमें शान्तिका धाम” बन जाय। इसके लिए तुम्हारे हृदयमें ईश्वरके प्रति सजीव श्रद्धा होनी चाहिये। “जैसे शिल्पकारकी प्रतिभा संगमरमरके टुकड़ेमें जान डाल देती है, वैसे ही गुरुदेवकी आत्मा तुम्हारे द्वारा जिये और अपने सन्देशका प्रचार करे।”

जब कोई महान और प्रतिभाशाली व्यक्ति चला जाता है और अपने पीछे किसी संस्थाको अनाथ बनाकर छोड़ जाता है, तो यह प्रश्न सदा उठता है कि उसका स्थान कौन ले सकता है और किसे लेना चाहिये। शान्तिनिकेतनके शिक्षकों और कार्यकर्ताओंकी सभामें इस प्रश्नका उत्तर देते हुए गांधीजीने



उनसे कहा, गुरुदेव जैसे पुरुष एक युगमें एक ही बार जन्म लेते हैं। वे किसीके कहनेसे जन्म नहीं ले सकते। इसलिए कोई एक व्यक्ति गुरुदेवका स्थान नहीं ले सकता। परन्तु यदि आप लोगोंमें से प्रत्येक व्यक्ति संस्थाको सब बातोंमें प्रथम स्थान दे और अपने आपको अन्तिम स्थान दे, तो आप सब सामुदायिक रूपमें उनके आदर्शका प्रतिनिधित्व कर सकते हैं।

कार्यकर्ताओंमें से एकने दुःखपूर्वक कहा, “हम तो ऐसे नाविकोंकी तरह अनुभव करते हैं, जिनकी नावका कर्णधार नहीं रहा। हमें इसकी स्पष्ट कल्पना नहीं है कि हम किधर जा रहे हैं, हम क्या बनना चाहते हैं।”

गांधीजीने उत्तर दिया, “मेरा पक्का विश्वास है कि गुरुदेव व्यक्तिके रूपमें अपनी सारी रचनाओंसे बड़े थे, इस संस्थासे भी बड़े थे—जिसमें उन्होंने अध्यापन-कार्य किया और काव्यगान किया, जिसमें उन्होंने अपनी सारी आत्मा उड़ेल दी थी। शायद यह बात सभी महान और अच्छे पुरुषोंके बारेमें सच है। . . . इसलिए यदि आपको उस भलाई और महत्ताका प्रतिनिधित्व करना है, जिसके प्रतीक गुरुदेव थे - परन्तु जिसे वे अपने कार्यों द्वारा पूरी तरह प्रगट नहीं कर सके, . . . तो आप यह कार्य तपश्चर्याके द्वारा ही कर सकते हैं। . . . आपके सामने बंगालका या भारतका प्रतिनिधित्व करनेका ही आदर्श नहीं है। ... गुरुदेव सारी मानव-जातिके प्रतिनिधि थे। परन्तु भारतके लाखों गरीब और मूक प्राणियोंके प्रतिनिधि बनें बिना वे यह प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते थे। आपकी भी यही आकांक्षा होनी चाहिये। यदि आप भारतके सामान्य लोगोंके मानसका प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे, तो आप मनुष्यके रूपमें गुरुदेवके प्रतिनिधि नहीं बन सकते।”

एक और प्रश्नके उत्तरमें गांधीजीने कहा : “पैसेकी बातको अपने मनसे बिलकुल निकाल दीजिये। यदि आप सच्चे ध्येयके प्रतिनिधि हैं, तो पैसा आपके पीछे पीछे दौड़ा चला आयेगा। सच्चे स्त्री और पुरुष पैसेकी कठिनाईके कारण कभी पीछे नहीं हटते, यदि उनका ध्येय और उनके साधन दोनों उचित हों। विश्वभारती सच्चे प्रतिभाशाली और विद्वान लोगोंको आकर्षित नहीं कर सकेगी, यदि वह भौतिक साधनोंके बल पर अथवा उनसे मिलनेवाले भौतिक आकर्षणों पर आधार रखेगी। उसका आकर्षण नैतिक होना चाहिये। ‘प्रत्येक मनुष्यसे उसके सामर्थ्यके अनुसार काम लिया जाय और प्रत्येक मनुष्यको



उसकी आवश्यकताके अनुसार दिया जाय' यह सामान्यतः सही सिद्धान्त है। परन्तु इससे आप प्रचलित बाजारू मूल्योंसे आगे नहीं जा सकते । आप विश्वभारतीके सदस्य इसलिए नहीं हैं कि उसमें आपको भौतिक सुविधाएं मिलती हैं, परन्तु इसलिए हैं कि उसके आदर्शोंके लिए कार्य करके आपका नैतिक मूल्य दिनोंदिन बढ़ता है। . . . गत ६० वर्षोंसे अनेक संस्थाओंके साथ मेरा संबंध रहा है। मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि उनके कामकाजमें पैदा होनेवाली प्रत्येक कठिनाईका कारण नैतिक मूल्योंको समझनेके उनके दोषमें निहित था।”

एक और शिक्षकने पूछा, “नौजवानोंमें हमें जो नास्तिकता या श्रद्धाका अभाव मालूम होता है, उसके होते हुए हम आगे कैसे बढ़ सकते हैं?”

गांधीजीने उत्तर दिया, “जब आप मुझसे यह प्रश्न पूछते हैं, तो मैं निराश-सा हो जाता हूं। जब आप यह देखते हैं कि आपके शिष्य श्रद्धाहीन हैं तब आपको अपने मनमें कहना चाहिये, ‘मैं श्रद्धाहीन हूं।’ मुझे अनेक बार ऐसा अनुभव हुआ है और हर बार इस बातकी प्रतीति मेरे लिए स्नान जैसी ताजगी लानेवाली सिद्ध हुई है।”

“गुरुदेवकी बौद्धिक परंपरा तो यहां अच्छी तरह सुरक्षित रखी जा रही है, परन्तु मुझे डर है कि वे जिस आदर्शवादके प्रणेता थे उसके लिए यहां पूरी गुंजाइश नहीं है। इसका उपाय क्या है? ” एक और प्रश्न उठा।

“मैं इतना ही कह सकता हूं कि ‘मैं तो सही रास्ते पर हूं, परन्तु संस्थामें ही कुछ न कुछ खराबी है’ यह वृत्ति आत्म-संतोष प्रगट करती है। यह घातक वृत्ति है। जब आप अपने मनमें यह समझें कि आप स्वयं सब तरहसे ठीक हैं, परन्तु आपके चारों ओर खराबी ही खराबी है, तब आपको अपने लिए यह निष्कर्ष निकालना चाहिये कि दूसरी सब बातें तो ठीक हैं, परन्तु आपमें ही कोई न कोई खराबी है।”

अन्तमें कविवरकी भतीजी इन्दिरा देवीने पूछा, “क्या यहां संगीत और नृत्य अत्यधिक मात्रामें नहीं होता ? क्या यहां स्वर-संगीतमें जीवन-संगीतके डूब जानेका खतरा नहीं है?”



गांधीजी इस प्रश्नका उत्तर तुरन्त नहीं दे सके, क्योंकि उनके रवाना होनेका समय हो गया था। परन्तु यह प्रश्न उनके मनमें बराबर बना रहा। कलकत्ता लौट कर उन्होंने एक पत्रमें इन्दिरा देवीको लिखा:

मुझे संदेह है कि शायद जीवनके लिए जितना आवश्यक है उससे अधिक संगीत शांतिनिकेतनमें है। . . . स्वरके संगीतमें वहां जीवनका संगीत खो जानेका डर है। चलनेका, कूचका, हमारी हरएक गतिविधिका और हमारी प्रत्येक प्रवृत्तिका संगीत क्यों न हो? . . . मैं समझता हूँ कि हमारे लड़कों और लड़कियोंको चलना, कूच करना, बैठना, खाना, सार यह कि जीवनका प्रत्येक कार्य करनेकी पद्धति आनी चाहिये। संगीतकी मेरी कल्पना यही है। . . .

लड़कों और लड़कियोंको विश्वविद्यालयकी परीक्षाके लिए तैयार करना मुझे पसन्द नहीं है। विश्वभारती स्वयं एक विश्वविद्यालय है। गुरुदेवने निर्भय होकर मानव कमजोरियोंके लिए जो छूट दी थी, वह छूट उनकी अनुपस्थितिमें विश्वभारती नहीं दे सकती। . . . यह देखनेके लिए मैं बड़ा उत्सुक हूँ कि शांतिनिकेतन गुरुदेवके सर्वोच्च आदर्शका प्रतिनिधि बने। . . .

जब तक आप लोग कताईके बुनियादी उद्योगके साथ कामका आरंभ नहीं करेंगे तब तक आप सच्ची ग्रामीण पुनर्रचना नहीं कर सकेंगे। . . . आप जानते हैं कि मेने गुरुदेवके सामने इसकी हिमायत की थी; पहले तो वह व्यर्थ गई, किन्तु बादमें वे समझने लग गये थे कि मेरा उद्देश्य क्या है। अगर आप सब मानते हैं कि कताईके मामलेमें मैंने गुरुदेवकी बातको ठीक ठीक समझा है, तो आप शान्तिनिकेतनमें चरखेका 'संगीत' गुंजानेमें संकोच नहीं करेंगे। [गांधीजीका पत्र रथीन्द्रनाथ टागोरको, २२ दिसम्बर १९४५]

गुरुदेव और गांधीजी भारतीय आत्माके आनन्दमय और तपोमय जैसे दो ध्रुवोंके प्रतिनिधि थे। दोनोंमें एक-दूसरेके अंश मिले हुए थे। उपनिषदोंका महान द्रष्टा विश्वके आदि-कारणका आवाहन 'कविम् पुराणम्' और 'अनुशासितारम्' शब्दों द्वारा जो करता है वह अत्यन्त सूचक है। पुराण कवि तारोंको प्रकाशमान बनाता है और अनुशासन करनेवाला उन्हें उनके भ्रमण-मार्गसे विचलित नहीं होने देता। दोनों परस्पर पूरक हैं। भेद केवल इस बातका है कि किसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। दोनोंके



समुचित समन्वयमें भारतके भविष्यकी सिद्धि निहित है। गांधीजीकी अंतिम शांतिनिकेतन-यात्रा उसी समन्वयकी प्रतीक और सूचक थी।

*

अगले सप्ताह गांधीजी मिदनापुरके लिए रवाना हो गये और वहांसे लौटकर उन्होंने सात दिनका आसामका दौरा किया, जिसमें वे ब्रह्मपुत्राके साथ ऊपरकी ओर ठेठ सुआलकुची तक गये थे। इसके बाद दक्षिण भारतकी तेज यात्रा हुई। वहां उन्हें दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके रजत जयन्ती महोत्सवकी अध्यक्षता करनी थी। यह संस्था भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिए स्थापित की गई थी। उसके साथ गांधीजीका पच्चीस वर्षसे अधिकका गहरा संबंध रह चुका था।

मिदनापुर जिला अभूतपूर्व भीषण तूफान, ज्वारकी भयंकर बाढ़ और सरकारी दमनसे बरबाद हो चुका था। सरकारी दमन इतना भयंकर हुआ कि भारतके २५ वर्षके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्राममें वैसा दमन और कहीं नहीं हुआ था। उसके महीनों बाद तक धानके खेतोंमें मनुष्य और पशुओंकी लाशें तैरती रही थीं और वे खारे पानी और बंगालकी तेज धूपके असरसे इंडिया-रबरसे भी ज्यादा सख्त और काली हो गई थीं। जिस भूमि पर कोन्टाईमें गांधीजीकी प्रार्थना-सभा थी, उसके नीचे लगभग सात सौ मवेशियों और तीन सौ मानवोंकी लाशें गड़ी हुई बताई जाती थीं। वैसे तो तूफानमें इससे कहीं अधिक प्राणहानि हुई थी। मिट्टीमें मिट्टी मिल गई थी और यह कहानी कहनेके लिए वहां कोई निशान अब बाकी नहीं रहा था।

गांधीजीने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें कहा, “ईश्वर दया करके हरियालीकी चादरके नीचे मनुष्यकी दुर्दशाकी लज्जाको छिपा लेता है; फिर भी इससे उन लोगोंकी हृदयहीनता प्रगट होती है, जो इसके लिए जिम्मेवार थे। सामान्य प्रथा यह है कि प्रत्येक शरीरको अलग अलग स्थान पर दफनाया या जलाया जाता है और जिस भूमि पर यह संस्कार होता है वह पवित्र बन जाती है।” [प्रार्थना-प्रवचन, २४ दिसम्बर १९४५] उन्होंने आगे कहा, मैं इस भावनाका आदर करता हूं, परन्तु उसे मूर्तिपूजाका रूप नहीं देता। मुझे इस बातसे संतोष भी होता है कि सबकी सामान्य विपत्तिने मनुष्यों और पशुओंको मृत्युमें तो एक कर दिया और इस प्रकार यह सिद्ध कर दिया कि वास्तवमें प्राणिमात्र एक हैं। “इस विचारसे मनुष्यका



अहंकार मिटकर उसमें नम्रता आनी चाहिये और उसे अनुभव होना चाहिये कि मानव-जीवन कितना तुच्छ और भ्रमपूर्ण है और जीवनके भ्रमने उसे कैसे बंधनमें डाल रखा है। यदि मनुष्य इस भ्रमजालको तोड़ना सीख ले और अपने धर्मके पालनको अपनी जीवन-यात्राका ध्रुवतारा बना ले, तो जिस भारके नीचे दुनिया कराह रही है वह काफी हलका हो जाय।”

५

जुलाई १९४५ में हुए नेताओंके सम्मेलनके बाद शिमलासे लौटते हुए गांधीजीको स्पेशियल ट्रेनकी सुविधाका उपयोग करना पड़ा था। अधिकारियोंने उनके लिए यह प्रबन्ध किया था और जैसा गांधीजीने कहा, उन्हें कालकासे वर्धा तक ‘चोरकी तरह’ यात्रा करनी पड़ी। बादमें भी उन्हें कई बार इस मामलेमें झुकना पड़ा था। रास्तेमें कई स्टेशनों पर गाड़ीके ठहरने पर अनियंत्रित प्रदर्शनोंको नियंत्रित करना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा था। कभी कभी घातक दुर्घटनाएं केवल चमत्कारसे टल जाती थीं। इसके सिवा, रेलवे लाइन परका सारा व्यवहार रुक जाता था। अपने एक अखबारी वक्तव्यमें गांधीजीने इस सारी विचारधाराको व्यक्त किया, जो इस अनुभवसे उनके मनमें आरंभ हुई थी: “यह अनियंत्रितता स्वराज्यके आगमनकी सूचक नहीं है। वह अहिंसाकी निशानी भी नहीं है। नेताओंका स्वागत करनेके लिए लोगोंकी भीड़ तो होनी चाहिये, परन्तु वह शान्तिपूर्ण, गौरवयुक्त और बिलकुल अनुशासन-बद्ध होनी चाहिये। मैंने साधारण सैनिकोंको—चाहे वे कूच कर रहे हों या आराम कर रहे हों—हजारोंकी संख्यामें पूरी खामोशी रखते देखा है। हमारे जन-समूह यदि स्वराज्यके अहिंसक सैनिक हैं, तो उन्हें साधारण सैनिकोंसे अधिक अनुशासनबद्ध होना चाहिये।” [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १८ जुलाई १९४५]

गांधीजीने अपनी बंगाल, आसाम और दक्षिण भारतकी इन यात्राओंको भीड़के व्यवहारके निरीक्षण और अध्ययनका तथा लोगोंको शिक्षा देनेका साधन बना लिया। भारत शीघ्र स्वाधीन होने जा रहा था। उनके मनमें यह प्रश्न उठा करता था: करोड़ों लोगों पर स्वतंत्रताके पहले आघातकी क्या प्रतिक्रिया

होगी ? जहां भी वे जाते वहां उनका स्वागत करनेवाले आम लोगोंका उमड़ता हुआ जोश और भक्ति



देखकर वे अपने आपसे यह प्रश्न पूछते थे : “यह हिंसाको बताता है या अहिंसाको?” यदि लोगोंको ठीक तरहसे संगठित न किया गया और उन्हें अहिंसक आचरणकी तालीम न दी गई, तो मुझे डर है कि वे स्वतंत्रतासे बहुत लाभ नहीं उठा सकेंगे। और यह वरदान आपत्तिजनक भी सिद्ध हो सकता है। महीनोंसे वे इस महान घटनाके लिए चुपचाप तैयारी कर रहे थे। प्रार्थनाके संदर्भमें उन्होंने दैनिक विषयों पर भाषण देना शुरू कर दिया, ताकि जनतामें स्वाधीनताके लिए सही मनस्थिति निर्माण की जा सके, और तालसहित राम-धुनके सामूहिक गानकी प्रथा आरंभ की: “सामूहिक प्रार्थना सामान्य पूजाके द्वारा मानवोंकी वास्तविक एकता स्थापित करनेका एक साधन है। सामुदायिक रूपमें रामधुन गाना और ताल देना अहिंसामें वैसे ही अनुशासनके अंग हैं, जैसे सैनिक अनुशासनमें शारीरिक कवायद और हथियारोंकी तालीम है।” [हरिजन, ३ मार्च १९४६, पृ. २६]

गांधीजीने यह भी कहा : “यदि ४. करोड़ भारतीय एकस्वरसे बोल सकें, एकसाथ चल सकें और एक होकर काम कर सकें, तो स्वतंत्रता उनके हाथमें आई हुई चीज समझिये। प्रार्थना मनुष्योंको बांधनेवाली सबसे बड़ी शक्ति है और उससे मानव-परिवारमें संगठन तथा एकता पैदा होती है। यदि कोई व्यक्ति प्रार्थनाके द्वारा ईश्वरके साथ एकता स्थापित कर लेता है, तो वह सबको अपने जैसा ही समझेगा। तब कोई मनुष्य ऊंचा और कोई नीचा नहीं होगा, संकीर्ण प्रान्तवाद न होगा और छोटी छोटी स्पर्धाएं नहीं रहेंगी। . . . यदि ईश्वरके साथ हम एकराग हो जाते हैं, तो सभा कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उसमें पूर्ण शान्ति और व्यवस्था रहेगी और कमजोरसे कमजोर भी पूर्ण सुरक्षितताका अनुभव करेगा। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ईश्वर- साक्षात्कारसे सारे भौतिक भय भाग जाते हैं। ईश्वरकी शरण स्वीकार कर लेनेके बाद राजनीतिक गुलामी नहीं रह सकती। दासोंके लिए मोक्ष नहीं होता।” [वही, पृ. २९]

अहिंसाकी पद्धतिमें यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन था। गांधीजीको इसका पूरा विकास करनेका या उसकी क्षमताकी जांच करनेका समय नहीं मिला, परन्तु जितना अनुभव इसका उन्हें हुआ उससे गांधीजीका यह पक्का विश्वास हो गया था कि इस पद्धतिमें अहिंसक सामुदायिक अनुशासन और सामुदायिक कार्यके संगठनके लिए अनन्त शक्तियां भरी हैं। मिदनापुरके अपने दौरेके दिनोंमें उन्होंने सरदार पटेलको एक पत्रमें लिखा था : “सामुदायिक प्रार्थनाका लोगों पर जादूका-सा असर हो रहा है। मैं उसे रोज देख रहा हूं। प्रार्थनामें भीड़ हजारोंकी नहीं, कभी कभी तो लाखोंकी होती है। फिर भी



प्रार्थनाके समय पूरी व्यवस्था और पूरी शान्ति रहती है। कोई धक्कम-धक्का या शोरगुल नहीं होता है। यह बिलकुल नया अनुभव है।” [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, १ जनवरी १९४६]

उन्होंने नववर्षके दिन कोंटाईकी एक लाखसे अधिक लोगोंकी प्रार्थना-सभामें कहा, आज जो अनुशासन आप लोगोंने दिखाया है वैसा ही सवा छह करोड़ बंगाली यदि दिखा सकें, तो हजार हिटलर भी न तो आपकी आत्माको दबा सकते हैं और न आपकी स्वतंत्रताको छीन सकते हैं।

“भारत माताके उस अनाथ बालक ”उड़ीसाकी रेलयात्राके दिनोंमें यह प्रबन्ध किया गया था कि रातको गांधीजीकी स्पेशियल ट्रेन किसी स्टेशन पर न ठहरे। परन्तु गांधीजीने खास तौर पर कहकर कुछ स्टेशनों पर गाड़ीको ठहरवाया । कटकमें आधी रातको गाड़ी पहुंची । स्टेशन पर एकत्र भीड़में विशेष रूपसे अनुशासनका अभाव था। इससे उन्हें चोट पहुंची। उड़ीसामें ही तो उन्होंने अस्पृश्यता-निवारणके लिए कई वर्ष पूर्व अपनी प्रथम 'धर्मयात्रा' पैदल की थी। इसलिए उन्हें उड़ीसासे बड़ी बड़ी आशाएं थीं। उन्होंने लोगोंसे पूछा, क्या उड़ीसाके भले लोग यह समझते हैं कि इस तरह उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है? क्या पशुबलके अन्तिम रूप अणुबमका उत्तर अनुशासनहीन हुल्लड़बाजीसे दिया जा सकता है? समय आ गया है जब यदि आपकी आत्मामें असत्य छिपा हो, तो आप उसे निकाल दें।” मुझे आपके स्वागतके नारे नहीं चाहिये और न आपका पैसा चाहिये। परन्तु आपको अपने मन स्वच्छ कर लेने चाहिये और अपने साथ ईमानदारी बरतनी चाहिये। आपके दानकी अपेक्षा इससे मुझे अधिक प्रसन्नता होगी।”

दिनकी यात्रा वाल्टेयरसे शुरू हुई। वहां पिछली रातके अनुभवकी काफी क्षतिपूर्ति हो गई । लोगोंके प्रचंड समुदायोंको धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते और महात्माके फैलाये हुए हाथ पर अपनी पसीनेकी कमाईका पाई-पैसा शांतिपूर्वक धरते देखना एक अनोखा दृश्य था। उन्हें गिननेमें कनु गांधी और उनके ४० साथियोंको मद्रासमें लगभग दो दिन और दो रातें लगीं। दानमें ३,८९५ नोट और ५४,६०८ सिक्के आये। यात्रामें कुछ ५५,०७१ रुपये ७ आने ३ पाईकी रकम एकत्र हुई।

मदुराकी सभामें ५ या ६ लाखसे कम लोग नहीं थे। स्वयंसेवक इतने विराट मानव-समुदायका प्रबंध करनेके आदी नहीं थे । मंचके पीछेसे, जहां गांधीजी बैठे थे, दबाव बढ़ता जा रहा था। गांधीजीने घोषणा की कि वे सभामें व्याख्यान नहीं देंगे, और उन्होंने लोगोंको चले जानेके लिए समझाया। “वे चुप



रहे परन्तु गये नहीं, इसलिए मैंने सोचा कि जब तक भीड़ बिखर न जायगी या मुझे जानेका रास्ता नहीं देगी तब तक जहां हूं वहीं रातको मैं आराम करूंगा।” [हरिजन, १०. फरवरी १९४६, पृ. ५] किन्तु यह सूचना मिलने पर कि एक मोटर उनकी प्रतीक्षा कर रही है और भीड़ उन्हें रास्ता दे देगी, वे मान गये। ज्यों ही वे भीड़में घुसे उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई: “वह कोलाहल-रहित तथा अनुशासनपूर्ण भीड़के भीतरसे जानेवाला सुरक्षित मार्ग नहीं था, जिसके लिए मैं लोगोंको समझा रहा था और प्रतीक्षा कर रहा था। अपने देवताके प्रति प्रेम-प्रदर्शनका एकमात्र मार्ग वे यही जानते थे कि शोरगुल मचायें और उसकी तरफ धंसते चले जायें। परन्तु यह तो देवताकी सजीव मूर्ति थी और वह उसी मिट्टीसे बनी थी जिससे वे लोग बनें थे। और यह मूर्ति उनके कोलाहलपूर्ण प्रदर्शनको न तो सहन कर सकती थी और न करना चाहती थी। मैं अधीर और अकुशल गुरु सिद्ध हुआ। यदि मैं ठहर जाता . . . तो वह भीड़ शान्त और सयाने प्रेमका महत्त्व और शायद स्वराज्यके लिए आवश्यक अनुशासनका मूल्य समझ जाती। फिर कभी ऐसा मौका आया तो मैं अधिक समझदारीसे काम लूंगा।” [वही]

पलनीका अनुभव मदुरासे उलटा था। पलनीमें पहाड़ीकी चोटी पर एक प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय मंदिर है। सभा मंदिरकी छायामें हुई थी। हरिजन उस मंदिरमें स्वतंत्रतापूर्वक जा सकते थे, इसलिए गांधीजीने निश्चय किया कि वे मंदिरमें दर्शन करने जायेंगे। परन्तु यदि भीड़ने उनके साथ चलनेका आग्रह किया होता, जब उन्हें कुर्सी पर बिठा कर पहाड़ी पर ले जाया जा रहा था, तो उस यात्रामें ६०० सीढ़ियोंकी चढ़ाई चढ़ना असम्भव हो जाता। तब तो वे पहाड़ीके नीचेसे ही दर्शन करके संतोष मान लेते। इस सम्बन्धमें उन्होंने कहा: “लोग यह न समझें कि मैं मिट्टी या कीमती धातुकी मूर्तियोंकी शाक्तिमें विश्वास रखनेके कारण दर्शनके लिए प्रेरित हुआ था। . . . मेरा तो विश्वास है कि मैदानोंमें जहां लाखों लोग रहते हैं वहीं भारतका ईश्वर रहता है। . . . बहुत लोग पलनी गये हैं और बहुतसे आगे भी जायेंगे। परन्तु करोड़ों आदमी वहां नहीं जा सकते। मैं उनमें से ही एक रहना चाहूंगा—जैसा कि मैं हूं भी। मुझे यह भी विश्वास था कि पहाड़ीके नीचेसे मेरी प्रार्थना मंदिरके कुछ भक्तोंसे अधिक सुनी जायगी। . . . फिर भी जिन लाखों लोगोंको विश्वास दिलाया गया था कि मैं मूर्तिके ही दर्शन करूंगा, वे यदि मैं पहाड़ी पर न जा सका तो मेरे इस संदेशको नहीं समझेंगे। . . . सभामें उनके मौनसे मुझे यह आशा हुई कि मैं घोषित कार्यक्रमके अनुसार काम कर सकूंगा।” [वही, पृ. ४] भाषणके बाद प्रवेश-द्वार पर भीड़ तो काफी बड़ी थी, लेकिन



जब गांधीजीको और राजाजीको कुसियों पर बैठाकर पहाड़ी पर ले जाया जा रहा था तब किसीने उनके साथ जानेका आग्रह नहीं किया और घोषित कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा हो गया। बादमें गांधीजीने कहा, “मैं अवश्य ही आशा रखूंगा कि स्वराज्य, होमरूल या स्वाधीनता, कुछ भी नाम रख लीजिये—भोगनेवाले भारतके लिए यह शुभ लक्षण माना जायगा।” [वही]

*

जिस समारोहके लिए गांधीजी मद्रास गये थे, उसमें उनका बहुत ही कम समय लगा। परन्तु उसके बादके उनके कदमसे उन्तके कुछ साथियोंको आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीनिवास शास्त्री और डॉ. जयकर तथा डॉ. सप्रूको पत्र लिखकर पूछा कि क्या वे भविष्यमें उनसे राष्ट्रभाषामें पत्र-व्यवहार कर सकते हैं ? उन्होंने सब संबंधित लोगोंसे कह दिया कि हमारी सामान्य जनताकी स्वाधीनताकी पुकार झूठी और थोथी होगी, यदि हम उसकी भाषामें बोलने और सोचनेकी आदत नहीं डालेंगे। यह काम या तो अभी होगा या फिर कभी नहीं होगा। राजाजीको तो परस्पर-विरोधी बातोंसे हमेशा प्रेम रहता है। उन्हें जब गुरुके हाथका देवनागरीमें लिखा हुआ एक पत्र मिला, तो उनकी कलमसे यह अशोभनीय टीका निकल पड़ी: “आपकी नागरी पढ़ी नहीं जाती, इसलिए आप जो कहना चाहते थे वह बड़ी मुश्किलसे मैं समझ सका हूं। . . . जिस भाषाको हम दोनों अच्छी तरह जानते हैं और जिसका माध्यमके रूपमें हम उपयोग कर सकते हैं, उसे छोड़ कर एक कठिन माध्यमको जान-बूझकर अपनाना ठीक नहीं होगा। कभी कभी विनोदके रूपमें इसका उपयोग कर लेना दूसरी बात है ! आप पढ़ी न जा सकनेवाली नागरीमें मुझे लिखेंगे, तो मैं तमिल में उत्तर देना शुरू कर दूंगा !” [राजाजीका पत्र गांधीजीको, ३ मार्च १९४६]

गुरुने इसका उत्तर यह दिया: “हमें किसी भूलका पता चल जाय तब भी क्या हमें उसे जारी रखना चाहिये ? हमने अंग्रेजीके द्वारा प्रेमका व्यवहार आरम्भ किया था—यह भूल थी। तो क्या वह प्रेम उस प्रारम्भिक भूलको दोहरा कर ही प्रगट होना चाहिये? आप रोटीको बचाकर भी रखना चाहते हैं और उसे खाना भी चाहते हैं। प्रेम तो प्रेम ही है—भले ही उसका रूप अलग अलग हो और दोनों प्रेमी मूक ही क्यों न हों। शायद जब प्रेम मूक होता है तब वह सम्पूर्ण होता है। मैंने समझा था कि प्रेमके कोमल



और न खटकनेवाले दबावमें आप चुपकेसे और आसानीसे हिन्दुस्तानीको अपना लेंगे और इस प्रकार हिन्दुस्तानीकी अपनी सेवाको चमका देंगे। लेकिन खैर, मेरी इच्छा न सही, आपकी ही रहे।” [गांधीजीका पत्र राजाजीको, ११ मार्च १९४६]

राजाजीने पश्चात्तापके साथ उत्तर दिया: “हिन्दुस्तानीके मामलेमें मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूं और आपसे क्षमा चाहता हूं। इसका बचाव (जवानी नहीं) बुढ़ापा है। परन्तु और तर्क न कीजिये। आपकी मिठास ही मुझे इतना अधिक अपराधी बना देती है।” [राजाजीका पत्र गांधीजीको, १३ मार्च १९४६]

*

जब गांधीजी मद्रासमें थे तभी उन्होंने 'हरिजन' साप्ताहिकोंका प्रकाशन फिरसे शुरू करनेका निश्चय कर लिया था। ये पत्र 'भारत छोड़ो' संग्राम आरंभ होनेके बाद सरकारने बन्द करा दिये थे। इनके पुनः प्रकाशनमें भी थोड़ासा नाटकीय स्पर्श था। गांधीजीने यह आशा रखी थी कि पहले अंकके लिए लेख वर्धासे अहमदाबाद भेज देंगे, क्योंकि वहींसे ये साप्ताहिक छपते और प्रकाशित होते थे। आधी शताब्दीकी अपनी सक्रिय पत्रकारिताकी अवधिमें गांधीजीको इस बातका गर्व रहा था कि उनके विभिन्न पत्रोंका एक भी अंक समय पर निकलनेसे कभी नहीं चूका था—भले ही वे भारत, बर्मा और सीलोनके एक कोनेसे दूसरे कोने तक घूमते रहे हों। वे इंग्लैण्ड गये तब भी कभी ऐसा मौका नहीं आया था। परन्तु उन्हें मद्राससे वापस लानेवाली स्पेशियल गाड़ीने उस नियमित ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस गाड़ीको भी मात कर दिया, जिसको एक बार केन्द्रीय विधान-सभामें मद्रासके एक यूरोपियन सदस्यने गति और स्थिरतामें “शराब पीकर नशेकी अंतिम हद तक पहुंची हुई बीरबहूटी” की उपमा दी थी। गांधीजीकी स्पेशियल गाड़ी आधी रातको अर्थात् ७ घंटे देरसे वर्धा पहुंची। उस समय तक अहमदाबादकी डाकगाड़ी वर्धासे रवाना हो चुकी थी। गांधीजीने इसे अशुभ प्रारम्भ समझा। उन्होंने सुझाया कि, “हम साप्ताहिकोंका पहला अंक बंबईसे निकाल दें। 'इंडियन ओपीनियन' के मामलेमें मैंने एक बार फिनिक्समें ऐसा ही किया था।”

“परन्तु ग्राहकोंको अंक भेजनेका क्या होगा ? ग्राहकोंके रजिस्टर तो सब अहमदाबादमें हैं।”



किसीने सुझाव दिया, “सारी सामग्री (मेटर) हम तारसे अहमदाबाद भेज दें।”

परन्तु इसके लिए सारा हिन्दुस्तानी और गुजराती मेटर रोमन लिपिमें लिखना पड़ता, क्योंकि उस समय तक भारतीय लिपियोंमें तार लेनेकी प्रणाली आरंभ नहीं हुई थी। इसीमें सुबहका सारा समय पूरा हो गया। तब किसीको प्रेरणा हुई, “अंग्रेजी लेख तारसे भेज दें और बाकी लेख विशेष संदेशवाहकके साथ। यदि प्रेसवाले अंग्रेजी पहले निकाल दें, तो वे हिन्दी और गुजराती अंक समय पर छाप सकेंगे। ”

इसलिए विशेष संदेशवाहक भेजा गया और तीनों साप्ताहिक सारी कठिताइयोंके होते हुए भी समय पर निकल गये।

६

लॉर्ड वेवेलने १९४६ के फरवरीके दूसरे सप्ताहमें गांधीजीको लिखा, “मैं अभी दक्षिण भारतके दौरेसे लौटा हूं। मेरे विचारसे अनेक लोगोंके प्राणोंका आधार सरकारके प्रशासनिक कदमोंके विषयमें राजनीतिक दलोंके रुख पर निर्भर होगा, जो हम अनाजकी किफायत करने और अकाल-पीड़ित प्रदेशोंके लोगोंके लिए जरूरी अनाज पहुंचानेके लिए उठायेंगे।” दक्षिण भारतमें सर्दीकी फसल मारी गई थी और भारतमें व्यापक अकालकी संभावनाका खतरा एकबार फिर दिखाई देने लगा था। सरकारी तंत्र तो साधारण समयमें भी व्यवस्था करनेके लिए अत्यन्त जड़ हो चुका था। जिस संकटकी स्थितिकी संभावना दिखाई दे रही थी, उससे निबटनेके लिए तो वह बिलकुल ही असमर्थ था। यदि सरकारको परिस्थितिका सामना करनेमें कुछ भी सफलता प्राप्त करनी हो, तो उसके लिए जनताका सहयोग आवश्यक था। इसलिए लॉर्ड वेवेलने आनेवाले संकटमें गांधीजीकी सहायता और सलाह चाही।

गांधीजीको अपने बंगालके दौरेमें ही आनेवाले खतरेके आसार दिखाई देने लगे थे। उसके बाद बिहार और मद्रासकी हालतके बारेमें उन्हें जो कुछ मालूस हुआ, उससे वे और भी बेचैन हो गये थे। वाइसरॉयका पत्र आनेसे पहले ही उन्होंने 'हरिजन' में अनाज और कपड़ेकी कमी पर एक लेख लिखा था और यह समझाया था कि इस समस्याका सामना कैसे किया जाय। उन्होंने वाइसरॉयको कहलवा दिया कि वे सहर्ष सरकारको सारी संभव सहायता देंगे। परन्तु उन्होंने जुलाई १९४४ में ही 'न्यूज़ क्रॉनिकल' के श्री गेल्डरसे जो बात कही थी, वही बात उन्होंने वाइसरॉयको याद दिलाई और कहा कि



मेरा विश्वास है कि जब तक अंग्रेजोंके हाथोंसे भारतीयोंके हाथोंमें सत्ता और शासनकी जिम्मेदारी नहीं सौंपी जायगी तब तक न तो अन्न-संबंधी स्थितिका ठीक तरहसे सामना किया जा सकेगा और न लोगोंके कष्ट दूर किये जा सकेंगे। यदि अनधिकृत रूपमें भारतीय दलोंकी ओरसे मदद देनेकी कोशिश की जायगी, तो उससे अधिकारियोंके साथ संघर्ष होनेकी संभावना रहेगी। इसलिए उन्होंने वाइसरॉयको सलाह दी कि यदि विपत्तिको टालना है, तो केन्द्रकी गैर-जिम्मेदार कार्यकारिणीके स्थान पर तत्काल ही केन्द्रीय विधान-सभाके चुने हुए सदस्योंकी जिम्मेदार कार्यकारिणी नियुक्त की जानी चाहिये।

वाइसरॉयने गांधीजीकी सलाहका यह भाग तो स्वीकार नहीं किया, परन्तु “अन्न-संबंधी परिस्थिति पर उनकी अच्छी सलाह” की कद्र की। अपनी ओरसे कुछ और कदम उठानेके साथ वाइसरॉयने वाइसरॉय-भवनमें अनाजका खर्च बहुत कम कर दिया। वाइसरॉयके निजी सचिव जॉर्ज एबेलने एक पत्रमें लिखा : “गेहूं, चावल और उनकी बनी हुई चीजोंके उपयोगमें इतनी कठोर कटौती की गई है कि मुझे दिनभर भूखका ही अनुभव होता रहता है !” [जॉर्ज एबेलका पत्र राजकुमारी अमृतकौरको, १५ फरवरी १९४६]

परन्तु यह समस्याका सच्चा हल नहीं था। इसलिए वाइसरॉयने मार्चके मध्यमें दुबारा श्री एबेलको गांधीजीके पास यह प्रस्ताव लेकर भेजा कि देशके सामने अन्न-संबंधी स्थितिके बिगड़नेका जो खतरा है, उसका नियंत्रण और नियमन करनेके लिए वाइसरॉयकी अध्यक्षतामें गांधीजी, जिन्ना और भोपालके नवाबका एक सलाहकार-मंडल बनाया जाय। जैसा लॉर्ड वेवेलने गांधीजीको लिखा था, उनका यह विचार सही था कि “लोगोंको अकाल के कष्टसे बचानेके छिए नेतागण गहरे सहयोगसे काम करें यह अत्यन्त आवश्यक है।” [लॉर्ड वेवेलका पत्र गांधीजीको, १३ मार्च १९४६] परन्तु दालमें कुछ काला था।

वाइसरॉयके निजी सचिवके मुंहसे वाइसरॉयके प्रस्तावके बारेमें सब बातें सुननेके बाद गांधीजीने उनसे पूछा, “क्या आप नहीं मानते कि इसमें एक पेच है ?” निजी सचिवने उत्तर दिया, “मैं मानता हूं कि पेच है, परन्तु मुझे आशा है कि आप उससे ऊपर उठ सकेंगे।”

फिर वहीं ‘समान संख्या’ का पुराना भूत सामने आ गया। जिन्ना और गांधीमें समानता, अन्नके मोर्चे पर समानता, अंतरिम राष्ट्रीय सरकारमें समानता और अन्तमें लीगी मुसलमानों और भारतके बाकी



लोगोंमें समानता—अर्थात् पाकिस्तान ! जून १९४५ में शिमला-सम्मेलनके समय वाइसरॉयने इसी तरह गांधीजी और जिन्नाको “बड़े राजनीतिक दलोंके दो सर्वमान्य नेता” समझ कर सम्मेलनमें बुलाया था, हालांकि गांधीजी किसी दलके प्रतिनिधि नहीं थे। मुस्लिम लीगका प्रतिनिधित्व उसके अध्यक्ष जिन्नाने किया था। कांग्रेसका सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकनेवाले एकमात्र उपयुक्त व्यक्ति कांग्रेसके अध्यक्ष मौलाना आजाद थे या जिस किसीको वे अपना प्रतिनिधि नियुक्त करते वह होता—न कि गांधीजी । गांधीजी कांग्रेस संगठनके एक विनम्र सेवक थे, इसलिए वे कांग्रेसकी उपेक्षामें शरीक नहीं हो सकते थे। इसलिए उन्होंने वाइसरॉयके प्रस्तावको स्वीकार करनेमें अपनी असमर्थता प्रगट की। उन्होंने वाइसरॉयके निजी सचिवसे कहा, “प्रस्तावको मान लेनेसे पैदा होनेवाली स्थिति अवास्तविक होगी और उससे प्रस्तावका उद्देश्य ही विफल हो जायगा।” [गांधीजीका पत्र जॉर्ज एबेलको, १४ मार्च १९४६]

गांधीजी इस बातकी संभावना पर विचार करनेको तैयार थे कि कांग्रेसके अध्यक्ष मौलाना आजादको और उनकी मददके लिए स्वयं उन्हें (गांधीजीको) बुलाया जाय, क्योंकि गांधीजी अपने आपको ऐसे मामलोंमें विशेषज्ञ मानते थे। परन्तु स्पष्ट था कि वाइसरॉय यह नहीं चाहते थे।

इसलिए गांधीजी अनधिकृत रूपमें और व्यक्तिगत रूपमें अन्न-संकटका मुकाबला करनेमें देशकी जो सहायता कर सकते थे उसीसे उन्हें संतोष मानना पड़ा। सदाकी भांति उन्होंने अपने निकटके लोगोंसे ही इसका आरंभ किया। उन्होंने सेवाग्राम आश्रम और तालीमी संघके सदस्योंको एकत्र करके उनसे अनुरोध किया कि वे अन्नको बचाने, उसके उपयोगमें किफायत करने तथा अन्न पैदा करनेके काममें आनेवाली एक एक इंच जमीनमें खेती करनेकी परम आवश्यकताको समझें : “आजके संकटमें—जब लोगोंके सामने भूखसे मरनेका भय पैदा हो गया है—आपके यह कहनेसे काम नहीं चलेगा कि हम तो अपनी शिक्षाकी प्रवृत्तियोंमें लगे हुए हैं । आजकी परिस्थितिमें नई तालीमको हमारी अन्नकी पूर्ति बढ़ानेका साधन बन जाना चाहिये।” [हरिजन, ३ मार्च १९४६, पृ. २५] उन्होंने ‘हरिजन’ साप्ताहिकोंमें उपयोगी सूचनायें देना आरम्भ कर दिया कि किस तरह लोग अपने स्वेच्छापूर्ण सहकारी प्रयत्नके द्वारा इस गंभीर समस्याको सफलतापूर्वक हल कर सकते हैं: “घबराहटसे हर हालतमें बचना चाहिये। हमें घबराहटमें बिना मौत मरनेसे इनकार कर देना चाहिये। . . . पुष्पवाटिकाओंका अन्नकी पैदावारके लिए उपयोग करना चाहिये। . . . सारे औपचारिक समारोह बन्द कर देने चाहिये।” [हरिजन,



१० फरवरी १९४६, पृ. ११] हमेशाकी तरह, “स्त्रियां अपने घरोंमें किफायत करके वर्तमान कष्टके निवारणमें बड़ेसे बड़ा हाथ बंटा सकती हैं।” [वही] अन्तमें उन्होंने कहा कि यह सब और इससे भी अधिक सरकारकी सहायताके बिना ही किया जा सकता है: “हम अपने जीवनके ६/१० दैनिक कार्योंका प्रबन्ध सरकारकी मददके बिना कर सकते हैं . . . बशर्ते सरकार लोगोंके काममें हस्तक्षेप न करे।” [वही]

गांधीजीने बम्बईके अपने यजमान श्री घनश्यामदास बिड़लाके बड़े भाई श्री रामदास बिड़लाको सुझाया कि वे अपने बागमें फूलोंकी क्यारियां खुदवा कर उनमें शाकभाजी पैदा करायें। गांधीजीकी इस सूचना पर उलाहनेके स्वरमें उनकी क्वेकर मित्र मिस एगाथा हेरिसनने उनसे पूछा: “लोग फूल क्यों न उगायें ? रंग और सौन्दर्य आत्माके लिए उसी तरह आवश्यक हैं जिस तरह शरीरके लिए भोजन।”

गांधीजीने उत्तर दिया, “हमें यह मानना सिखाया गया है कि जो सुन्दर है वह उपयोगी भी हो ऐसा जरूरी नहीं और जो उपयोगी है वह सुन्दर नहीं हो सकता। मैं यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि जो उपयोगी है वह सुन्दर भी हो सकता है। मैं तो यह चाहता हूँ कि हम शाकभाजियोंके रंगके सौंदर्यकी प्रशंसा करना सीखें।”

इसलिए बिड़ला-भवनकी फूलोंकी क्यारियां खोद डाली गईं और उनके स्थान पर चुकन्दर, गोभी और खीरा आदिकी क्यारियां रूगा दी गईं !

७

दिसम्बर १९४५ में जब भारतमें चुनाव हो रहे थे, वाइसरॉयने ब्रिटिश सरकारको एक रिपोर्ट भेजी थी। उसमें भारतकी बदली हुई परिस्थितिकी ओर तथा भारतके सब वर्गोंमें सरकारकी बढ़ती हुई अप्रियताकी ओर ब्रिटिश मंत्रि-मंडलका ध्यान आकर्षित किया गया था। आगे-पीछे उन्हें कांग्रेसके साथ हिसाब निबटाना ही होगा। बेशक, कांग्रेसको ‘सर्वर्ण हिन्दू’ संस्था बताया गया था, परन्तु यह भी बताया गया था कि यदि कांग्रेसको दबा दिया गया, तो ऐसी रिक्तता पैदा हो जायगी जिसे और कोई संगठन भर नहीं सकेगा। रिपोर्टमें यह भी कहा गया था कि चुनावोंके बाद कांग्रेस जरूर अपनी मांगको और भी उग्र रूपमें पेश करेगी, यदि इस बीच आजके गतिरोधको हल करनेके लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई। और उस समय उसका मुकाबला करना बहुत कठिन हो जायगा। कांग्रेस अपनी मांग स्वीकार करानेके



लिए सीधी कार्रवाईका आश्रय भी ले सकती है और उस सूरतमें सरकारका कोई समर्थक नहीं रहेगा— राजा लोग भी नहीं रहेंगे।

जेलसे मुक्त होने पर जिस अदम्य उत्साहसे कांग्रेसी नेताओंका स्वागत हुआ, वह इस बातका स्पष्ट संकेत था कि 'करो या मरो' की भावनाने जनतामें जड़ पकड़ ली थी। दुःख और निराशाके वर्ष, सेनाके घोर दमन-कालकी स्मृतियां तथा युद्ध, अकाल और आर्थिक मन्दीके घाव भारतके लोग भूल गये थे। अब तो केवल स्वतंत्र भारतका दर्शन ही लोगोंके लिए एकमात्र महत्त्वपूर्ण वस्तु बन गयी थी।

सेना तक इस भावनासे प्रभावित हो चुकी थी। जबलपुर और कुछ अन्य स्थानोंमें भारतीय सैनिकोंने विद्रोह कर दिया था। पूनामें भारतीय सेनाके प्रतिनिधि विद्रोहके लिए गुप्त रूपसे गांधीजीकी अनुमति लेने आये थे, लेकिन उनकी सलाहसे इस प्रकारकी घटना टल गई। आजाद हिन्द फौजके जो अभियुक्त भारतकी स्वाधीनताके लिए बर्मामें अंग्रेजोंस लड़े थे, उनकी जनताने वीरोंकी तरह पूजा की थी। फरवरी १९४६ में कलकत्तेमें अचानक कौमी तूफान शुरू हुआ। उसमें पुलिसको छात्रोंके नेतृत्वमें निकले जुलूसों पर १४ बार गोली चलानी पड़ी। इससे तीन दिन तक नगरका दैनिक जीवन-व्यवहार लगभग ठप हो गया। ये सब ऐसे अशुभ चिह्न थे, जिनके महत्त्वकी उपेक्षा तहीं की जा सकती थी।

भारतमें ब्रिटिश सत्ताके प्रतिनिधियों और भारतकी जनताके बीचकी खाई जितनी चौड़ी अब हो गई थी उतनी पहले कभी नहीं हुई थी, भारतके ब्रिटिश शासकोंके इरादोंके बारेमें जनताके मनमें जितना अविश्वास अब था उतना पहले कभी नहीं था और देशकी स्वतंत्रताके लिए उसकी भावना जितनी तीव्र अब बन गई थी उतनी पहले कभी नहीं बनी थी। ऐसी हालतमें ब्रिटिश सत्ताके भारतसे पूरी तरह और स्वेच्छापूर्वक हट जानेका एकमात्र विकल्प यही था कि भारतको फिरसे जीतकर अनिश्चित काल तक उस पर सैनिक अधिकार रखा जाय। परन्तु १९४६ में यह बात ब्रिटिश लोकमत बरदाश्त करनेको तैयार नहीं था।

बड़े दिनोंके मौके पर ब्रिटिश मंत्रि-मंडलके एक प्रमुख सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्सने गांधीजीको एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने गांधीजीको "आपके अपने और जो कार्य आपको प्रिय हैं उन सबके कल्याणके लिए अत्यन्त हार्दिक और नम्र शुभेच्छाएं" भेजी थीं और यह भी लिखा था:



मुझे इस बातकी बहुत गहरी आशा है कि आनेवाले महीनोंमें हम आपसी समझ, आदर और विश्वाससे भारतके लिए अधिक सुखी और उज्ज्वल भविष्यका निर्माण कर सकेंगे। मैं जानता हूं कि आपने जीवनभर इसके लिए किस प्रकार अथक परिश्रम किया है; मेरी प्रार्थना है कि आपको अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके रूपमें अपनी आशाओंकी संपूर्ण सफलता देखनेका अवसर मिले। हमारे दोनों देशोंके सामने जो बड़ी बड़ी समस्याएं हैं, उनके सुखद अंतके लिए मैं प्रयत्न करूंगा और अपना हिस्सा अदा करूंगा। [सर स्टैफर्ड क्रिप्सका पत्र गांधीजीको, १९ दिसम्बर १९४५]

गांधीजीने उत्तर दिया, “मैं आशा करता हूं कि इस बार भारतीय विचारोंके अनुसार सही चीज करनेका निश्चय कर लिया गया है।” एक बार राजा एडवर्डने सही व्यवहारके बारेमें जो कुछ कहा था, उसकी गांधीजीने उन्हें याद दिलाई। प्रश्न अंग्रेजों और बोअरोंके बीचकी संधिका अर्थ करनेका था। राजाने कोमलतासे यह आग्रह किया था कि अंग्रेजोंके अर्थके बजाय बोअरोंका अर्थ स्वीकार किया जाय। अस्तमें गांधीजीने लिखा, “क्या ही अच्छा हो यदि इस बार भी वही सुन्दर नियम अपनाया जाय!” [गांधीजीका पत्र सर स्टैफर्ड क्रिप्सको, १२ जनवरी १९४६]

परन्तु ब्रिटिश इरादोंके प्रति अविश्वास भारतीयोंके मनमें घर करके बैठ गया था। उस अविश्वासको मिटाने और पहलेसे लोकमत तैयार करनेके लिए चुनावोंके बीच ही ग्रेट ब्रिटेनके सब दलोंके प्रतिनिधियोंका एक संसदीय मंडल भारत भेजा गया। उसने जनवरी और फरवरी १९४६ में सारे देशका दौरा किया। उसके सदस्य सब दलोंके प्रतिनिधियोंसे मिले और गांधीजीको उन्होंने मद्रासमें जा पकड़ा। गांधीजीके साथ अपने सम्पर्कके परिणाम-स्वरूप वे यह विश्वास करा सके कि इस बार अंग्रेज भारतकी समस्या हल करनेका निश्चय कर चुके हैं।

*

१९४२-४५ के कालमें जब कांग्रेसको जेलखानेकी चारदीवारीमें बन्द करके उसकी आवाज दबा दी गई थी, तब मुस्लिम लीगके प्रचार-कार्यको खुला क्षेत्र मिला हुआ था; और ब्रिटिश संरक्षण, प्रोत्साहन और सक्रिय सहयोगके बल पर उसने अपनी शक्तिको मजबूत करके मुसलमानोंके बहुत बड़े हिस्से पर



अपना असर जमा लिया था। परिणाम यह हुआ कि चुनावमें मुस्लिम लीगने उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके सिवा केन्द्रीय विधान-सभा तथा प्रान्तीय विधान-सभाओंमें लगभग सारी मुस्लिम बैठकें जीत ली थीं। सीमाप्रान्तमें तो खान-बन्धुओंके नेतृत्वमें कांग्रेसने न केवल विधान-सभाकी अधिकांश बैठकों पर बल्कि अधिकांश मुस्लिम बैठकों पर भी अधिकार कर लिया था। केन्द्र और प्रान्तोंमें भी लगभग तमाम दूसरी बैठकों पर, जिनमें कुछ मुस्लिम बैठकें भी थीं, कांग्रेसका अधिकार हो गया। इसके परिणाम-स्वरूप कांग्रेसने ११ प्रान्तोंमें से ८ प्रान्तोंमें अपने मंत्री-मंडल बना लिये और नवें प्रान्त अर्थात् पंजाबमें उसने असाम्प्रदायिक यूनियनिस्ट दलके साथ, मिल कर मिश्र सरकार बनाई। बंगाल और सिन्धमें मुस्लिम लीग अपने मंत्री-मंडल बना सकी थी। किन्तु सिन्धमें उसका बहुमत डगमगाता रहता था और वहां उसकी सत्ता गवर्नर सर फ्रांसिस मुडीके सहारे ही टिकी रही।

इस प्रकार प्रमुख राजनीतिक दलोंके समर्थनसे वाइसरॉयकी कार्यकारिणी परिषद्की पुनर्रचनाके लिए और सितम्बर १९४५ में की गई वाइसरॉयकी घोषणाके अनुसार संविधान-सभा बुलानेके लिए भूमिका तैयार हो गयी। भारतमें व्याप्त मनस्थितिको सही अर्थमें समझकर ब्रिटिश सरकारने इस बार निश्चय किया कि भारतीय प्रश्नके निबटारेकी बातचीत करनेका काम अकेले वाइसरॉयके हाथोंमें न छोड़ा जाय। १९ फरवरी, १९४६ को ब्रिटिश पार्लमेन्टमें यह घोषणा की गई कि ब्रिटिश मंत्री-मंडलके ३ सदस्योंका बना एक प्रतिनिधि-मंडल शीघ्र भारत जायगा, ताकि वाइसरॉयकी सितम्बर १९४५ की घोषणामें बताये गये कार्यक्रम पर वाइसरॉयके साथ मिल कर अमल किया जाय। ब्रिटिश मजदूर-दलके प्रधानमंत्री श्री एटलीने १५ मार्च, १९४६ को लोकसभाकी चर्चामें जो भाषण दिया, उसमें ये अर्थपूर्ण उद्गार प्रकट किये गये थे:

यह तो भारतको ही चुनना होगा कि उसका भावी संविधान कैसा होगा। मुझे आशा है कि भारतीय प्रजा ब्रिटिश राष्ट्र-मंडलके भीतर रहना पसन्द करेगी। . . . यदि वह ऐसा करे तो यह उसकी अपनी स्वतंत्र इच्छासे होना चाहिये। . . . इसके विपरीत, यदि वह स्वाधीनता पसन्द करे, तो हमारे मतसे उसे ऐसा करनेका अधिकार है। . . . मैं अच्छी तरह जानता हूं कि जब मैं भारतकी बात करता हूं तब मैं एक ऐसे देशके बारेमें बोलता हूं, जिसमें विभिन्न जातियां, विभिन्न धर्म और विभिन्न भाषाएं हैं। . . . हमें अल्पसंख्यक लोगोंके अधिकारोंका खूब ध्यान है और



अल्पसंख्यकोंको भयमुक्त जीवन व्यतीत करनेका अवसर मिलना चाहिये। दूसरी ओर, हम किसी अल्पसंख्यक समुदायको बहुसंख्यक लोगोंकी प्रगतिमें बाधा भी नहीं डालने दे सकते । . . . देशी राज्योंकी समस्या भी है। . . . मैं क्षणभरके लिए भी यह नहीं मानता कि भारतीय राजा-महाराजा भारतकी प्रगतिमें बाधक बनना चाहेंगे। परन्तु दूसरी समस्याओंकी तरह यह भी एक ऐसी समस्या है, जिसे भारतवासी ही अपने प्रयत्नसे हल करेंगे।

इस प्रकार जहां तक ब्रिटिश नीतिकी घोषणाका सम्बन्ध था, पहली ही बार वे तीनों मुख्य बाधाएं दूर कर दी गईं, जो हमेशा भारतीय प्रश्नके निबटारेमें बाधक बनती रही थीं—अर्थात् राजनीतिक प्रगतिमें अल्पसंख्यकोंका निर्णायक मत (वीटो), राजाओंके प्रति चिरकालसे चला आया उत्तरदायित्व और पूर्ण स्वाधीनताके भारतीय अधिकारकी अस्वीकृति। परन्तु “अतीतकी परिस्थितियोंसे उत्पन्न होनेवाली” दूसरी बाधाएं, जो इतनी ही भयजनक थीं, बनी रहीं—जिनसे इस घोषणामें दिया गया वचन बहुत-कुछ बेकार हो जाता था और जिनके कारण स्वातंत्र्यका गौरवपूर्ण प्रभात एक रक्त वर्णवाले अशुभसूचक प्रभातमें बदल जाता था।

सदा जाग्रत और सावधान रहनेवाले प्रहरीके समान गांधीजी समयके चिह्नोंको सूक्ष्म दृष्टिसे देख रहे थे। यह भारतके सौभाग्यका महान अवसर था। क्या उनके सपनोंका भारत ध्येयकी चरम सिद्धिके इस अवसर पर अपने गौरवपूर्ण भूतकालको शोभा दे ऐसा आचरण करेगा ? अपनी एक प्रार्थना-सभामें उन्होंने घोषणा की, “ब्रिटिश मंत्रि-मंडलके प्रतिनिधि जल्दी ही हमारे देशमें आयेंगे। पहलेसे ही उनकी नेकनियती पर सन्देह करना एक प्रकारकी दुर्बलता होगी। एक वीर प्रजाके रूपमें हमारा यह कर्तव्य है कि हम ब्रिटिश मंत्रियोंकी इस घोषणाको सत्य मान कर चलें कि वे भारतका ऋण चुकानेके लिए यहां आ रहे हैं। यदि आपका कोई कर्जदार पाश्चात्ताप करके अपना ऋण चुकानेके लिए आपके घर आता है, तो क्या उसका स्वागत करना आपका कर्तव्य नहीं होगा ? उसके द्वारा किये गये अन्यायकी याद करके उसके साथ अपमान और तिरस्कारका बरताव करना क्या कायरता नहीं होगी ?” [प्रार्थना-प्रवचन, ११ मार्च १९४६]



ब्रिटिश पत्रकार श्री ब्रेल्सफोर्डसे गांधीजीने कहा, “देशमें कटुताका ज्वार तेजीसे बढ़ता जा रहा है। यह आत्माके लिए अच्छी बात नहीं है।” ब्रिटिश प्रतिज्ञाओंके बारेमें लॉर्ड लिटनके एक उद्गारको उद्धृत करते हुए गांधीजीने यह आज्ञा प्रगट की कि जो कर्णप्रिय वचन कानको दिया जा रहा है, वह आशाको भंग करनेवाला नहीं होगा। ऐसा पहले कई बार हो चुका है। “जब आप सत्ता हस्तांतरित करने जा रहे हैं, तो आपको साहससे काम करना होगा।”

श्री ब्रेल्सफोर्डने पूछा, “आज ब्रिटेन और भारत दोनों खतरेसे भरी दुनियामें रह रहे हैं। इसलिए क्या भारत ब्रिटेनके साथ कोई प्रतिरक्षाकी संधि नहीं कर लेगा ? अथवा दोनोंके लिए सहायक हो ऐसा कोई सम्बन्ध ब्रिटेनके साथ नहीं बना लेगा?”

गांधीजीने उत्तर दिया, “मान लीजिये कि भारत इनकार कर देता है। तो क्या आप यह शर्त रखेंगे कि भारत ब्रिटेनके साथ संधि करे तभी उसकी स्वाधीनता स्वीकार की जायगी ? . . . जब एक रक्त-रंजित युद्धके अन्तमें अंग्रेजोंने बोअरोंके साथ समझौता किया था तब उनके दिमागमें ऐसा कोई विचार नहीं आया था। . . . और तबसे लेकर आज तक बोअर लोग अंग्रेजोंके मित्र रहे हैं । यदि आप मित्र बननेकी बात भारतकी इच्छा पर छोड़ेंगे, तो वह सदा आपका मित्र बना रहेगा।”

श्री ब्रेल्सफोर्डने गांधीजीको विश्वास दिलाया कि ब्रिटेनने भारतके साथ दबावका सम्बन्ध समाप्त कर देनेका निश्चय कर लिया है। परन्तु यदि किसी सौदेकी भावना न रखकर यह प्रश्न पूछा जाय कि क्या ब्रिटेन स्वाधीन भारतके साथ परस्पर सहायक सम्बन्धोंकी आशा रख सकता है, तो भारतका क्या उत्तर होगा ?

गांधीजीने उत्तर दिया, “यदि भारतको स्वाधीनताकी ज्योतिका अनुभव हुआ, तो कदाचित् वह स्वेच्छासे ऐसी संधि करनेका प्रस्ताव रखेगा ।” उन्होंने यह भी कहा, “परन्तु ब्रिटेनके लिए यह कहना शोभास्पद होगा कि स्वाधीन होनेके बाद भारत हमें कोई स्थान न दे, तो भी अपनी करनीके परिणाम हम खुखसे भोगेंगे।”

एक अंग्रेज मित्र मानव-सेवा करनेके लिए फ्रैंड्ज़ एम्बुलेंस यूनिटके साथ भारत आये थे। उन्होंने गांधीजीके सामने अपनी दुविधा रखी। उन्होंने कहा, “भारतके लोगोंके साथ हम कितनी ही मित्रता



करनेकी कोशिश क्यों न करें, उनका भूतकाल तो उनके साथ लगा ही रहता है और निराशासे उन्हें विवेक-शून्य बना देता है। यहांका वायुमंडल इतना जहरीला हो गया है कि मैं सोचने लगता हूं कि अंग्रेजोंके लिए यह बेहतर होगा कि अभी कुछ समय तक लोगोंकी सेवाके लिए भारत आनेका प्रयत्न न करके वे ज्यादा अच्छे दिनोंकी प्रतीक्षा करें।”

गांधीजीने जवाब दिया, आपको यह तथ्य स्वीकार ही कर लेना चाहिये कि जनतामें अंग्रेजोंके प्रति अविश्वास है। उसकी जड़ इतिहासमें है। भारतीयोंने अब तक अंग्रेजोंको केवल शासक-जातिके आदमी भी जाना है—या तो अपार अहंकार रखनेवाले या भारतीयोंके आश्रयदाता होनेकी भावना रखनेवाले। साधारण लोग जिन पुराने ढंगके साम्राज्य-निर्माता अंग्रेजोंसे उनका परिचय हो चुका है उनके और अपने पूर्वजोंका प्रायश्चित्त करनेकी भावनासे इस समय भारत आनेवाले नये प्रकारके अंग्रेजोंके बीच कोई भेद नहीं करते। नये लोगोंके लिए एकमात्र मार्ग यह है कि उनके विरुद्ध जो धारणा बनी हुई है उसे वे अपने उदाहरणसे दूर करनेकी कोशिश करें। यदि आप सच्चे वीर हैं, तो आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि आप प्रयत्न करते रहें, तो अन्तमें आपका विश्वास लोग करेंगे। . . . (परन्तु) जिसमें त्यागकी अग्नि नहीं है, उससे मैं कहूंगा कि “अभी भारतमें मत आओ।” [हरिजन, ३१ मार्च १९४६, पृ. ६१]

८

फरवरी १९४६ के तीसरे सप्ताहमें शाही जलसेनाके खलासियों व सैनिकोंने विद्रोह कर दिया। इसका असर ७४ जहाजों, ४ नौकादलों और २० समुद्र-तटवर्ती केन्द्रों पर हुआ—जिनमें ४ जलसेनाके बड़े केन्द्र भी थे। विद्रोहियोंने सब प्रकारके २३ जहाजों पर कब्जा कर लिया था। विद्रोहका कारण यह बताया गया था कि जलसेनाके अंग्रेज अफसरोंका बरताव उनके साथ अपमानजनक था। शायद उनका कष्ट सच्चा था, परन्तु विद्रोहका आश्रय लेकर उन्होंने बुद्धिमानीका काम नहीं किया। सरदार पटेलने बुद्धिमत्ता, स्वस्थता और साहस-पूर्ण दृढ़तासे परिस्थितिको बिगड़नेसे बचाया। उन्होंने विद्रोहियोंको यह वचन दिया कि कांग्रेस इस बातका ध्यान रखेगी कि उन्हें परेशान न किया जाय और उनकी उचित मांगें



जल्दीसे जल्दी स्वीकार की जाय। इस वचनके बाद उन्होंने विद्रोहियोंको बिना शर्त आत्म-समर्पण करनेके लिए राजी कर लिया।

इस घटनासे समयके मिजाजका पता चलता था। नौकादलके ब्रिटिश सर्वोच्च सेनापतिने यह धमकी दी थी कि “भले ही जलसेना नष्ट हो जाय”, तो भी सरकारके पास जो “जबरदस्त शक्ति” है उसका उपयोग करनेमें वह संकोच नहीं करेगी। इस धमकीके कारण सारे भारतमें विरोधका जो उग्र तूफान उठ खड़ा हुआ, उसे देखकर बादमें सफाई देनेके लिए सरकारको मजबूर होना पड़ा था।

इस विद्रोहके साथ साथ बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली और कराची आदि शहरोंमें भी बड़े पैमाने पर उपद्रव फूट पड़े। लोगोंकी हुल्लड़बाजीका मुकाबला अधिकारियोंने भीषण दमनसे किया। उसके परिणाम-स्वरूप काफी हद तक रक्तपात हुआ, जिसे आसानीसे टाला जा सकता था। सदाकी भांति सबसे अधिक कष्ट निर्दोष लोगोंको भोगना पड़ा।

गांधीजीको इन घटनाओंमें और इनसे सम्बन्धित अन्य घटनाओंमें भविष्यकी अशुभ घटनाओंके चिह्न दिखाई पड़े। भारतीय समाजवादियों और भूमिगत कार्यकर्ताओंने बालोचित उत्साहमें आकर इन विद्रोहियोंकी ‘सुन्दर भावना’ की भूरि-भूरि प्रशंसा की। गांधीजीने गंभीर चेतावनी दी कि “जब असमय आत्म-घातक रूपमें दृढ़ता दिखाई जाती है, तो वह मूर्खता बन जाती है। यदि कष्ट (दूर कराने) के लिए यह सब किया गया था . . . तो उन्हें (विद्रोहियोंको) अपनी पसन्दके राजनीतिक नेताओंके मार्गदर्शन और हस्तक्षेपकी प्रतीक्षा करनी चाहिये थी । यदि उन्होंने भारतकी आजादीके लिए विद्रोह किया हो, तो उन्होंने दोहरी भूल की। किसी तैयार क्रांतिकारी दलके आह्वानके बिना वे ऐसा नहीं कर सकते थे।” [हरिजन, ३ मार्च १९४६, पृ. ३१]

मार्चके पहले सप्ताहमें राजधानीमें विजय-दिवस (विक्टरी डे) मनानेके अवसर पर यूरोपियनोंके खिलाफ हिन्दू-मुसलमानोंकी मिली-जुली शक्तियोंने हुल्लड़बाजी की । गांधीजीने कहा, हिन्दू-मुसलमान दोनों जान-बूझ कर, हिसाब लगा कर हुल्लड़बाजी और बर्बरता करनेकी तालीम पा रहे हैं। “हिंसक कार्रवाईके लिए हिन्दू-मुसलमानों और दूसरे लोगोंका आपसे मिल जाना अपवित्र बात है। इसका नतीजा



दोनों कौमोंकी परस्पर हिंसामें आयेगा और शायद यह ऐसी हिंसाकी तैयारी ही कहा जायगा | यह भारत और दुनिया दोनोंके लिए दुर्भाग्यकी बात है।” [वही, पृ. ३०]

उपद्रवके दिनोंमें यह नारा सर्वत्र फैल गया था कि “हिन्दू-मुसलमान लड़ाईके मोर्चे पर एक हो जायं।” गांधीजीने कहा, कमसे कम फिलहाल तो भारतीय स्वातंत्र्य-संग्रामका युद्धके मोर्चेवाला दौर खतम हो गया है। “लड़नेवाले सैनिक हमेशा युद्धके मोर्चे पर नहीं रहते । . . . मोर्चेकी जिन्दगीके बाद हमेशा वैधानिक जीवन आना चाहिये। यह मोर्चा सदाके लिए निषिद्ध नहीं है।” [वही, पृ. ३१]

समाजवादी मित्रोंने इसका उत्तर यह दिया कि आम लोगोंकी अहिंसाके नीतिशास्त्रमें दिलचस्पी नहीं है। गांधीजीने प्रत्युत्तरमें कहा, परन्तु अवश्य ही लोगोंकी यह जाननेमें बहुत ज्यादा दिलचस्पी है कि किस रास्तेसे उन्हें स्वतंत्रता मिलेगी । “लाखों लोग भूगर्भमें नहीं जा सकते । लाखोंको भूगर्भमें जानेकी जरूरत भी नहीं है। कुछ चुने हुए लोग यह कल्पना कर सकते हैं कि करोड़ोंकी प्रवृत्तिका गुप्त रूपसे संचालन करके उनके लिए स्वराज्य लाया जा सकता है। यह क्या लोगोंको पंगू और परावल्म्बी बनाने जैसी बात नहीं होगी ? खुली चुनौती और खुली प्रवृत्तिका ही सब लोग अनुसरण कर सकते हैं। सच्चे स्वराज्यका स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों सबको अनुभव होना ही चाहिये। इस स्थितिके लिए परिश्रम करना सच्ची क्रांति है। भारत संसारकी तमाम शोषित जातियोंके लिए एक उदाहरण बन गया है । क्योंकि भारतका प्रयत्न सदा खुला और निःशस्त्र रहा है, जो सत्ता छीननेवालेको चोट पहुंचाये बिना सबसे त्याग और बलिदानका तकाजा करता है।” [वही]

देशको इसके लिए तैयार होना ही चाहिये। युद्धके मोर्चेको अलग रख देना चाहिये। कैबिनेट-मिशन आ रहा है। संभव है कि मिशन कोई हल न होनेवाली पहली पेश कर दे। “ऐसा हुआ तो यह उनके लिए और भी बुरी बात होगी । यदि वे अपनी ही पैदा की हुई कठिनाईसे निकलनेका कोई प्रामाणिक मार्ग खोज निकालनेको उत्सुक हैं, तो इसमें मुझे कोई शंका नहीं कि ऐसा सार्ग निकल आयेगा।” [वही] परन्तु राष्ट्रको भी इसमें अपना भाग अदा करना है। “यदि लड़ाईके मोर्चे पर (हिन्दू-मुसलमानोंकी) एकता प्रामाणिक हो, तो वैधानिक मोर्चे पर भी उनकी एकता होनी चाहिये।” [वही] इसी चुनौतीका स्वातंत्र्य-संग्रामके योद्धाओंको अब सामना करना है।



गांधीजीने 'हरिजन' में लिखा, "अब इसमें शंका नहीं कि भारत सवाधीनताके चिरपोषित लक्ष्य तक पहुंचनेवाला है। उसमें हमें प्रार्थनाकी भावनासे प्रवेश करना चाहिये।" [हरिजन, १४ अप्रैल १९४६, पृ. ८०] और वाणीके अनुसार कर्म करनेके लिए उन्होंने निश्चय किया कि भविष्यमें वे अपने धनी मित्रोंके महलों जैसे निवास-स्थान पर न ठहर कर हरिजन-बस्तीमें ठहरेंगे। उन्होंने वयोवृद्ध हरिजन-सेवक अमृतलाल ठक्करको, जो प्रेमसे ठक्करबापा कहे जाते थे, लिखा, "हम जिस क्षणसे जागते हैं उसी क्षणसे हमारा दिन निकलता है। जागनेके बाद अब मैं आराम नहीं कर सकता।" [हरिजन, ७ अप्रैल १९४६, पृ. ७५] उन्होंने एक और पत्रमें लिखा, "अंग्रेजोंके राज्यमें भारत मुश्किलसे दो सदी तक गुलाम रहा है। फिर भी हम यह देखनेको अधीर हैं कि वह गुलामी तुरन्त समाप्त हो जाय। जब भारत स्वतंत्रता देवीके द्वार पर पहुंच गया है, तो हम हरिजनोंसे कैसे कह सकते हैं कि वे दूरके आदर्श राज्यके वचन पर निर्भर रहें? हरिजनोंकी मुक्ति प्रतीक्षा नहीं कर सकती। वह आज और इसी समय होनी चाहिये।" [वही]

*

उरुलीकांचनमें एक फौजी छावनी थी। शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता होगा जब भारतीय सैनिकोंका कोई दल गांधीजीके सम्पर्कमें न आता हो। वे गांधीजीकी सुबहकी सैरमें साथ हो जाते थे। वे उनकी शामकी प्रार्थनामें उपस्थित रहते थे और उनके निवास-स्थान पर उनसे मिलते थे। गांधीजीके निवास-कालके अन्तिम दिनसे पहले दिन सैनिकोंके दो दल आये। उन्होंने कहा: "हम सैनिक हैं, परन्तु भारतकी आजादीके सैनिक हैं।"

गांधीजीने उत्तर दिया: "मुझे यह सुन कर खुशी होती है। आज तक आप अधिकतर भारतीय स्वतंत्रताके दमनके साधन बने हैं। आपने जलियांवाला बागकी बात सुनी है?" [वही] जनरल डायरके अधीन गुरखा सैनिकोंने ही किसी खतरेकी आशंका न रखनेवाली निहत्थी भारतीय भीड़ पर वहां गोलियां चलाई थीं।

"जी हां, परन्तु वे दिन अब चले गये। उन दिनों हम कुएंके मेंढकों जैसे थे। अब हमने दुनिया देख ली है। अब हमारी आंखें खुल गई हैं।"



दूसरे एक सैनिकने बीचमें ही कहा, “जैसा आपने एक बार कहा था, हम यह मानते हैं कि हम भाड़ेके टट्टू हैं। परन्तु अब हमारे हृदय वैसे नहीं हैं।”

गांधीजीने कहा, “मुझे यह सुन कर खुशी होती है। परन्तु मैं आपको बता दूं कि मैंने वह बात आप लोगों पर कोई लांछन लगानेके इरादेसे नहीं कही थी। उसमें तो ऐसे सैनिकोंका वर्णन भर था, जो निर्वाहके लिए किसी विदेशी सरकारकी नौकरी करते हैं।”

उनमें से एक और सैनिकने पूछा, “जब भारत स्वाधीन हो जायगा तब हमारी क्या स्थिति होगी?”

“आप उस स्वाधीनताके पूरे हिस्सेदार बनेंगे और अपने देशवासियोंके साथ साथ आजादीकी हवामें सांस लेंगे। . . . आपको फौजी तालीम मिली है। सामान्य खतरेके समय मिल-जुल कर उसका सामना करनेका सबक आपने सिखा है। आप अपनी इस तालीमका लाभ भारतको पहुंचायेंगे। स्वाधीन भारतको आपकी जरूरत होगी। . . . परन्तु स्वतंत्र भारतमें आजकी तरह आपके लाड़ नहीं लड़ाये जायेंगे। आप आज जो अपार विशेषाधिकार भोग रहे हैं, वे तो भारतके गरीबोंको कष्ट पहुंचा कर विदेशी सरकार द्वारा आपको दी जानेवाली एक रिश्वत है। भारत अत्यन्त दरिद्र है। यदि आप अपनी विशेष सुविधाएं छोड़नेको तैयार नहीं होंगे, तो जब स्वाधीनता आयेगी तब आपको दुःख होगा और पुराने समय और पुराने मालिकोंके वापस आनेके लिए आप तरसा करेंगे।”

उनमें से एक सैनिक बोला, “एक समय था जब हमें कोई नागरिक अखबार नहीं पढ़ने दिया जाता था। लेकिन आज हम अपने अफसरोंसे जाकर कहते हैं कि हम अपने सबसे बड़े नेतासे मिलने जा रहे हैं और कोई हमें रोकनेकी हिम्मत नहीं करता।”

गांधीजीने उत्तर दिया, “मैं जानता हूं कि सेनाके सभी विभागोंमें आज एक नया जोश और नई जागृति आ गई है। इस परिवर्तनका बहुत-कुछ श्रेय नेताजी बोसको है। मुझे उनकी कार्य-पद्धति पसन्द नहीं है, परन्तु भारतीय सैनिकोंको एक नई दृष्टि और एक नया आदर्श देकर उन्होंने भारतकी अनोखी सेवा की है।”



उनमें से एक बड़े पदवाले सैनिकने कहा, “हम सेनाके आदमी यह समझ ही नहीं सकते कि कोई आदमी भारतके दो, तीन या अधिक टुकड़े करनेकी बात कैसे सोच सकता है। हम तो एक ही भारतको जानते हैं, जिसके लिए हम लड़े हैं और हमने अपना खून बहाया है।”

गांधीजीने उत्तर दिया, “भाई, दुनियामें सब तरहके आदमी होते हैं।” और वे सब हंस पड़े।

“क्या हम नारे लगा सकते हैं?”

गांधीजीने उत्तर दिया, “अच्छा लगाइये।” और उन सबने छोटे बच्चोंकी तरह उत्साहमें आकर ‘जयहिंद’, ‘नेताजीकी जय’ आदि नारे बार बार पुकार कर गांधीजीके छोटेसे कमरेकी छतको हिला दिया।

दूसरे दिन एक विशेष रेलगाड़ी उनमें से लगभग ८०० सैनिकोंको दूसरी छावनीमें ले गई। जब उनकी गाड़ी गांधीजीके निवास-स्थानके सामनेसे गुजरी, तो उनके जय-जयकारसे आकाश गूंज उठा और गांधीजीसे विदा मांगनेवाले हाथ हिलते ही रहे। सैनिकोंके नारोंमें प्रकट होनेवाली देशभक्तिपूर्ण उमंगको देख कर ऐसा प्रतीत होता था, मानो कांग्रेसके असाधारण अधिवेशनके लिए प्रतिनिधियोंको ले जानेवाली कोई कांग्रेस स्पेशियल जा रही हो !

उसी दिन गांधीजी कैबिनेट-मिशनके प्रतिनिधियोंसे मिलनेके लिए दिल्ली रवाना हो गये।



दूसरा भाग

मंडराता तूफान



सातवां अध्याय

अरुणोदय

१

नई दिल्लीकी रीडिंग रोड पर अनेक अट्टालिकाओं और झरोखोंसे सुशोभित, लाल पत्थरों और संगमरमरोंसे रचे हुए एक भव्य काव्यके समान स्थित बिड़ला-मंदिरके पास ही, राजधानीकी तड़क-भड़क और ठाठबाटसे दूर वाल्मीकि मंदिर बना हुआ है। वह वाल्मीकि ऋषिके नाम पर समर्पित है। वाल्मीकि ऋषि डाकूसे संत बने थे और उन्होंने रामायणकी रचना संस्कृतमें की थी। वे उत्तर भारतके वाल्मीकि मेहतरोंके आदि गुरु माने जाते हैं। उस वाल्मीकि मंदिरके दक्षिण-पश्चिममें ऊबड़-खाबड़ जमीन है और उसके पीछे एक मनोहर पर्वत-श्रेणी है, जो यमुना नदी तक और उसके पार तक फैलती चली गई है।

अप्रैल १९४६ में कैबिनेट-मिशनकी वार्ताओंके समय गांधीजी इसी स्थान पर रहे थे। उसके और नई दिल्लीके म्युनिसिपल मेहतरोंकी गंदी झोंपड़ियोंके बीज दोनोंको अलग करनेवाली एक नीची दीवार ही थी। वहीं ये दरिद्र-नारायण रहते थे। रास्ता एक तंग और टेढ़ी-मेढ़ी गलीमें होकर जाता था। दिनमें भारतकी ग्रीष्मऋतुकी चिलचिलाती धूपमें तैरनेवाले रजकणों, गंदगी और भिनभिनाती मक्खियोंके मारे मानवकी आंखें दुखने लगती थीं। परन्तु सांझ होने पर सारा दृश्य जादूकी तरह बदल जाता था और चमकती हुई लाल बजरी, जो अभी अभी बिछाई गई थी, उस गलीको परियोंके देशका हीरोंसे जड़ा हुआ मार्ग बना देती थी।

यहीं पर दिन-प्रतिदिन और सप्ताह-प्रतिसप्ताह कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्य नेहरू और पटेल, मौलाना आजाद और सरोजिनी नायडू—भारतकी कवयित्री जो बादमें एक बड़े भारतीय प्रान्तकी पहली महिला राज्यपाल बनीं— आदि मिलते थे और चर्चा करते थे। यहीं पर ब्रिटिश मंत्री-मंडलके सदस्य और विभिन्न राष्ट्रोंके राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ आते थे; यहीं पर संसारके कोने कोनेसे अखबारोंके प्रतिनिधि, जगतका अमण करनेवाले यात्री, करोड़पति, चोटीके कांग्रेसी नेता और अनुभवी



नौकरशाह—जो भारतीय 'फौलादी ढांचे' के गौरव माने जाते थे—आते थे और सेवाग्रामके सन्तके साथ, जो अपने चरखे पर भारतके भाग्यका धागा कातते रहते थे, सलाह-मशविरा करते थे।

इस प्रकार १९४६ की ग्रीष्मऋतुमें एक ही रातमें एक कोनेमें पड़ी हुई यह छोटीसी भंगीबस्ती एकाएक नई दिल्लीके वाइसरॉय-भवनकी समकक्ष बन गई, क्योंकि वह भारतीय नेताओंके साथ ब्रिटिश सरकारके कैबिनेट-मिशनकी बातचीतकी रंगस्थली बन गई थी। इन्हीं वार्ताओंके परिणाम-स्वरूप भारतमें १५० वर्षके अंग्रेजी राज्यका अन्त हुआ और स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रने जन्म लिया।

इसीके साथ साथ एक और रूप प्रगट हो रहा था, जिसकी अशुभ छाया उस समय लोगोंकी नजरसे छिपी हुई थी। भंगीबस्तीके बीचोंबीच और उसी भूमि पर—जहां गांधीजी अपनी शामकी प्रार्थना-सभाएं किया करते थे—हिन्दू नौजवानोंका एक दल प्रतिदिन शारीरिक शिक्षाकी कवायद करता था, लाठी चलानेका अभ्यास किया करता था और अन्तमें भारत माताके भगवे झंडेको सलामी दिया करता था। यह गांधीजीकी भारत माता नहीं थी, जो भारतकी भूमि पर पैदा होनेवाले सभी लोगोंको जाति, धर्म या रंगका भेद किये बिना समान रूपसे अपने बालक समझती थी। वह 'महाकाली' थी, जो 'दुष्ट विधर्मियों' अर्थात् मुसलमानोंको उनके पापोंका दंड देनेका आदेश देती थी। और यह दल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघका था, जो हिन्दुओंका सैनिकवादी साम्प्रदायिक संगठन था। वह मुस्लिम नेशनल गार्ड्सके मुकाबलेकी संस्था थी। अन्तमें उसीकी कट्टर धार्मिकताके शिकार राष्ट्रपिता गांधी हुए।

२

कैबिनेट-मिशनके तीन सदस्योंमें से लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स और सर स्टैफर्ड क्रिप्स गांधीजीको पहलेसे जानते थे। श्रीमती एमेलिन पेथिक-लॉरेन्स गांधीजीकी इंग्लैंडकी एक आरम्भकी यात्रामें स्त्रियोंक मताधिकारसे सम्बन्धित आन्दोलनकी एक सभामें उनसे मिल चुकी थीं। उस सभामें गांधीजीने स्त्रियोंके अधिकार मांगनेकी प्रचलित कार्य-पद्धतिके कुछ पहलुओंकी यह कह कर आलोचना की थी कि उनका अहिंसासे मेल नहीं खाता। उनके उद्गार सुन कर तेज मिजाजवाली कुमारी पैकहर्स्ट तुरन्त खड़ी हो गई। उस अवसर पर श्रीमती पेथिक-लॉरेन्सने गांधीजीका साथ दिया था। गांधीजीने उस सुखद स्मरणको आज तक याद रखा था।



यह गांधीजीकी विशेषता थी कि सार्वजनिक जीवनके अनेक नेताओंके साथ उनका सम्बन्ध—चाहे वे मित्र हों, साथी हों, या विरोधी ही क्यों न हों— अधिकतर इस कारणसे होता था कि गांधीजी उनके निजी जीवनके कुछ गुणोंको अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे और उनका आदर करते थे। यह सम्बन्ध उनके राजनीतिक विचारोंके साथ मेल बैठनेके कारण ही नहीं होता था। कभी विवाहित जीवनमें उनकी परस्पर निष्ठासे, कभी उनकी परस्पर निष्ठाके फलस्वरूप उनमें विवाहित जीवनके अभाव अथवा उसके उदात्तीकरणसे, और कभी व्यक्तियोंके विवाहित जीवन अथवा अपरिणीत जीवनमें पैदा होनेवाली दुःखद समस्याओं या धर्म-संकटोंके अवसर पर दिखाई गई उनकी किसी तरहकी वीरतासे गांधीजी उनकी परीक्षा करते थे और उसके आधार पर उनकी सच्ची योग्यताका अंदाज निकालते थे। उदाहरणके लिए, अपनी पत्नीके खातिर भारतके वाइसरॉय-पदका त्याग करनेवाले सर माल्कम हेली, एकाग्र निष्ठासे अपने देशकी सेवा कर सकनेके लिए आजीवन अपरिणीत रहनेवाले लॉर्ड एम्प्टहिल और अपनी महान भगिनीकी विरल निष्ठा तथा आत्म-समर्पणके अधिकारी—दोनों भाई-बहन एक-दूसरेके प्रति उतनी ही निष्ठा और आत्म-समर्पणकी उदात्त भावना रखते थे—कायदे आजम जिन्ना गांधीजीके गहरे आदरके पात्र बने थे और राजनीतिक क्षेत्रके अधिकसे अधिक मतभेद या संघर्ष भी उनका यह आदर न तो मिटा सके और न कम कर सके।

यही बात लॉर्ड और लेडी पेथिक-लॉरेन्सकी थी। गांधीजी विवाहित जीवनमें पति-पत्नीके समान दर्जेके बारेमें बहुत दृढ़ मत रखते थे, यहां तक कि अपने आश्रममें उन्होंने प्राचीन हिन्दू विवाह-संस्कारमें भी परिवर्तन कराया और उसे अपने आदर्शके अनुकूल बनाया था। लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने इस बातका आग्रह किया था कि उनके नामके बदले एमेलिनका नाम स्वीकार किया जाय। इसी बातसे अन्य किसी बातकी अपेक्षा के गांधीजीके अधिक निकट आ गये थे। श्रीमती पेथिक-लॉरेन्स दोनोंके बीच एक कड़ी बन गई थीं।

सर स्टैफर्ड क्रिप्स अपनी तपस्याके समान कड़ी सादगी, शाकाहार और आत्माकी रोग-निवारक शक्तिमें विश्वासके कारण अपनी मानसिक रचनामें गांधीजीके सबसे अधिक निकट थे। यदि लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स अपनी प्रबल विवेक-बुद्धिके कारण कैबिनेट-मिशनकी अन्तरात्मा थे, तो सर स्टैफर्ड क्रिप्स उसकी बुद्धि थे। अपनी असाधारण मानसिक शक्ति, सूझ-बूझ और कानूनी प्रतिभाके कारण



उन्होंने कई अवसरों पर अपने साथियोंको गांधीजीका मानस समझनेकी कुंजी बताई थी | गांधीजीको इस बातकी खुशी थी कि सर स्टैफर्ड भी “उनके जैसे ही एक झक्की और सनकी” थे और जब कैबिनेट-मिशनकी वार्ताओंके बीच सर स्टैफर्ड बीमार हो गये तो गांधीजीने उनके पास अपने “सबसे मोहक (प्राकृतिक चिकित्साके) डॉक्टर” दिनशा मेहताको भेजा था। उनके बारेमें सर स्टैफर्डने कहा था: “उन्होंने मेरे दिल पर पूरा अधिकार जमा लिया है !” [सर स्टैफर्ड क्रिप्सका पत्र गांधीजीको, ५ मई १९४६] गांधीजीके हृदय पर पूरा अधिकार जमानेवाली बात यह थी कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स उन्हें ऐसे व्यक्ति मालूम हुए, जिनमें अपने विश्वासके अनुसार आचरण करनेका साहस था। गांधीजीकी यह राय सच्ची साबित हुई जब बादमें अपनी अन्तिम बीमारीके समय सर स्टैफर्ड क्रिप्सने एक प्राकृतिक चिकित्सावादी होनेके नाते आत्माकी चिकित्सा-शक्तिकी अपनी श्रद्धा पर आधार रखा। इससे उनका रोग तो नहीं मिठा, लेकिन गांधीजीके रामनामकी तरह इस श्रद्धासे सर स्टैफर्डको आध्यात्मिक सान्त्वना, बल और दृढ़ता प्राप्त हुई और वे निश्चित होकर उस प्राणघातक रोगका स्वस्थता, साहस, धीरज और शान्तिके साथ सामना कर सके।

लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स और सर स्टैफर्ड क्रिप्स दोनोंकी गांधीजीके समान ही गहरी धार्मिक पृष्ठभूमि थी। दिल्लीसे भेजे हुए अपने प्रथम पत्रमें सर स्टैफर्डने गांधीजीको कैबिनेट-मिशनके सदस्योंके साथ मित्रोंकी मूक प्रार्थनामें सम्मिलित होनेका निमंत्रण दिया था। इस प्रार्थनाका आयोजन दो अंग्रेज क्वेकर मित्रों—अर्थात् स्वर्गीय सी. एफ. एन्ड्रुजके निकटके साथी एगाथा हेरिसन और हॉरेस एलेक्जेंडरने अपने ईसाई शान्ति-प्रचारके सिलसिलेमें किया था। सर स्टैफर्डने गांधीजीको लिखा: “मैंने एगाथा हेरिसनको वचन दिया है कि अगले रविवारको मौन विचार और प्रार्थनाके समय मैं शरीक होऊंगा और मुझे सचमुच बड़ी आशा है कि आप भी वहां उपस्थित होंगे, ताकि हम थोड़ी देरके लिए आध्यात्मिक एकरसतामें सम्मिलित हो सकें। मेरी तीव्र इच्छा है कि आप वहां उपस्थित रहें। इससे मुझे आपके साथ अधिक सरकारी वातावरणमें मिलनेसे पूर्व अनौपचारिक बातचीतके लिए मिलनेका अवसर मिल सकेगा।” [सर स्टैफर्ड क्रिप्सका पत्र गांधीजीको, २८ मार्च १९४६] गांधीजीने हर्षपूर्वक यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उधर सर स्टैफर्ड गांधीजीकी प्रार्थना-सभामें सम्मिलित हुए, जब वे गांधीजीसे मिलनेके लिए भंगीबस्तीमें आये । दोनोंके बीच आध्यात्मिक बातोंमें कितना गहरा मेल था यह उस पत्रसे



प्रगट होता है, जो सर स्टैफर्डने इंग्लैंड लौटने पर गांधीजीको लिखा था। वह पत्र उनकी लड़कीकी बीमारीके बारेमें था, जिसे स्टैफर्ड दंपतीनें एक विशेष क्वेकर-भवनमें रख दिया था। उस पत्रमें इस बातका उल्लेख था कि उस स्थानमें “अद्भुत आध्यात्मिक वातावरण” है और कहा गया था कि “हमारी आशा है कि वहां लड़कीकी जो अन्य चिकित्सा की जायगी उसके साथ उस स्थानका भी स्वास्थ्यदायी प्रभाव होगा।” [सर स्टैफर्ड क्रिप्सका पत्र गांधीजीको, २८ अगस्त १९४६]

इन मौन प्रार्थना-सभाओंके कारण कैबिनेट-मिशनके प्रतिनिधियों तथा गांधीजीको परस्पर आध्यात्मिक सम्पर्क साधनेका अमूल्य अवसर मिला। बादके सप्ताहोंमें गांधीजी कभी कभी लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स और सर स्टैफर्डको 'हरिजन' के अपने किसी लेखकी प्रकाशित होनेसे पहले एक प्रति या प्रार्थना- सभामें गाये गये और उन्हें तन्मय बनानेवाले किसी सुन्दर भजनका अंग्रेजी अनुवाद भेज दिया करते थे। कभी लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स अपनी ओरसे कोई लोकप्रिय अंग्रेजी कहानी भिजवा देते थे, जिसमें सर्वव्यापी प्रभुके उपकारके प्रति साधारण अंग्रेजकी श्रद्धा प्रगट होती थी। एक-दूसरेको समझनेका जो गाढ़ सम्बन्ध इन आध्यात्मिक संपर्कोंसे पैदा हो गया था, उससे राजनीतिके साथ अनिवार्य रूपसे जुड़े हुए संघर्षों और मतभेदोंके अनेक आघात वे सहन कर सके। इस सम्बन्धने अन्तिम समझौते पर पहुंचनेमें भी काफी सहायता की।

क्वेकर लोगोंका यह विश्वास है कि सामूहिक मौन प्रार्थनामें ईश्वर “हमसे अवश्य बोलता है” और हम “जीवनके सामान्य कार्योंमें” उसकी इच्छाको समझ सकते हैं। साप्ताहिक मौन-दिवसके पालन पर आधारित गांधीजीका अपना अनुभव भी इससे मिलता था। “यदि हम उस शान्त और मन्द आवाजको सुनना चाहते हों, जो हमारे भीतर सदा बोलती रहती है, तो हमारे लगातार बोलते रहनेसे वह हमें सुनाई नहीं देगी।” [यंग इंडिया, ६ अगस्त १९२५, पृ. २७४-७५] मौन-वृत्तिमें “आत्माको अधिक स्पष्ट प्रकाशयुक्त मार्ग मिल जाता है और जो वस्तु भ्रामक और धोखेमें डालनेवाली होती है वह स्फटिकके समान स्पष्ट हो जाती है।” [प्रभु और राव द्वारा 'दि माइन्ड ऑफ महात्मा गांधी' (१९४६) में दिया गया गांधीजीका उद्धरण, पृ. ३८] इस फलदायक मौनकी साधना और अभ्यास कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है। यह उदात्त कला है। “सीये हुए होठोंका मौन सच्चा मौन नहीं होता। जीभ काट लेनेसे भी यही परिणाम निकल सकता है, परन्तु वह मौन नहीं कहा जायगा। सच्चा मौनी वह है जो बोलनेकी शक्ति होते हुए



भी कोई व्यर्थका शब्द नहीं बोलता।” [हरिजन, २४ जून १९३३, पृ. ५] क्वेकरोंकी जिस पहली सभामें गांधीजी कैबिनेट-मिशनके सदस्योंके साथ सम्मिलित हुए थे, उसमें उन्होंने यह आशा प्रकट की थी कि, “इस मौन सामुदायिक प्रार्थनासे हमें उपद्रव और तूफानके बीच अटल शान्ति अनुभव होगी, हस क्रोधको शान्त कर सकेंगे और धैर्यकी साधना कर सकेंगे।” [हरिजन, २८ अप्रैल १९४६, पृ. १०९]

क्वेकरोंकी मौन प्रार्थनामें मौन तब भंग होता है जब समुदायमें से कोई व्यक्ति शेष लोगोंको ‘अपनी चिन्ता’ में हिस्सेदार बनानेकी जरूरत अनुभव करता हो। इस विशेष अवसर पर समुदायके एक भारतीय क्वेकरने चार्ली एन्ड्रूजका स्मरण दिला कर मौन भंग किया। एन्ड्रूज “भारत और इंग्लैंडकी अच्छी बातोंके बीच एक आध्यात्मिक कड़ी” के समान थे। सर हेनरी कैम्प- बेल-बैनरमैनके चरित्र-लेखकने लिखा है कि किस प्रकार बोअर युद्धके बुरेसे बुरे दिनोंमें एमिली हॉबहाउस नामकी एक अंग्रेज महिलाने स्पष्ट शब्दोंमें और साहसपूर्वक बोअरोंकी हिमायत की और किस प्रकार उससे युद्धकी घटनाओंसे पैदा होनेवाले द्वेषभावके मिटनेमें और दोनों राष्ट्रोंके बीच अन्तिम समझौता होनेमें मदद मिली थी। चार्ली एन्ड्रूजका भारतके लिए वही स्थान था, जो ‘एमिली हॉबहाउसका दक्षिण अफ्रीकामें बोअरोंके लिए था। गांधीजी कहा करते थे, “जब हमारे सामने चार्ली एन्ड्रूजका उदाहरण मौजूद है, तब भारत अंग्रेजोंसे अंग्रेज होनेके कारण द्वेष कैसे रख सकता है?” उस सभामें गांधीजीने अपना वक्तव्य इस आज्ञाके साथ समाप्त किया था कि भारतीय स्वाधीनताके पक्षमें चार्ली एन्ड्रूजका परिश्रम “ब्रिटिश साम्राज्यवादने भारतके प्रति जो कुछ किया हो” [वही, पृ. ११०] उसकी पर्याप्त मात्रामें क्षतिपूरि कर देगा।

३

कैबिनेट-मिशनकी वार्ताएं साम्प्रदायिक उपद्रवोंकी अन्धकारपूर्ण पृष्ठभूमिमें हुई थीं। मुस्लिम लीगको १५ मार्च, १९४६ के श्री एटलीके पार्लमेन्टमें दिये गये वक्तव्यमें यह धमकी नजर आई थी कि उसके हाथसे वह निषेधाधिकार (वीटो) छीन लिया जायगा, जो लॉर्ड लिनलिथगोने अपने अगस्त १९४० के प्रस्तावके द्वारा उसे दे दिया था। वह प्रस्ताव इस प्रकार था कि ब्रिटिश



सरकार अपनी जिम्मेदारी किसी ऐसी शासन-व्यवस्थाको हस्तान्तरित नहीं करेगी, जिसकी सत्ताको भारतके राष्ट्रीय जीवनके विशाल और शक्तिशाली तत्त्व प्रत्यक्ष रूपमें अस्वीकार करते हों। जिन्नाने कैबिनेट-मिशनके 'लीगकी उपेक्षा' करनेके किसी भी प्रयत्नको 'घोर विश्वासघात' कह कर उसकी निन्दा की थी। इसके बाद बहुतसे स्थानों पर साम्प्रदायिक ढंगकी छुरेबाजीकी कई घटनाएं लगातार हुईं। ये ऐसे अज्ञात गुंडों द्वारा और ऐसी परिस्थितियोंमें हुईं, जिनसे उनके पीछे रहे राजनीतिक हेतुके विषयमें स्पष्टतः कोई शंका नहीं रह जाती थी।

महान खिलाफत और असहयोग आन्दोलनोंके सुवर्ण-कालमें सिद्ध हुई हिन्दु-मुस्लिम एकताकी स्मृतियोंकी सुगन्धसे आज भी दिल्ली सुवासित थी, लेकिन अब उसके बुरे दिन आ गये थे। फिर भी गांधीजीकी दृष्टिमें वह नगर सच्चे ईसाई आचार्य एस. के. रुद्रका तथा महान सुधारक और शिक्षाकार स्वामी श्रद्धानन्दजीका नगर था। रुद्र चार्ली एन्ड्रूजके सम्मानित साथी और गांधीजीके दिल्लीके सबसे पहले यजमान थे और स्वामी श्रद्धानन्दको उसी नगरमें गांधीजीसे २१ वर्ष पहले शहीद होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह हकीम अजमल खां और डॉ. अन्सारीका नगर था। ये दोनों सज्जन इस्लामी संस्कृतिके उत्तम उदाहरण थे और इस्लामी उदारवाद तथा उत्तम हिन्दू-मुस्लिम-एकताके सजीव स्मारक थे। उनसे सभी जातियां प्रेम करती थीं और सभी जातियां उनका सम्मान करती थीं। वह अली बन्धुओंका भी शहर था, जो बादमें गांधीजी और कांग्रेससे अलग होने तक गांधीजीके लिए सगे भाईके समान रहे थे। यह व्यक्तिगत सम्बन्ध राजनीतिक सम्बन्ध टूट जानेके बाद भी बना रहा। यहीं पर १९१९ में भारतके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्राममें शहीद बने हिन्दू और मुसलमान शहीदोंका रक्त पहले-पहल एक साथ बहा था।

दिल्लीमें जामिया मिलिया या मुस्लिम राष्ट्रीय विद्यापीठका पौधा हकीम अजमलखां, डॉ. अन्सारी और अली भाइयोंने गांधीजीके साथ मिलकर १९२० में असहयोग आन्दोलनके प्रारंभमें लगाया था। उसकी रजत-जयन्ती थोड़े ही दिनोंमें मनाई जानेवाली थी। गांधीजी अपने व्यस्त कार्यक्रमके बीच भी एक दिन अचानक उस संस्थाको देखने चले गये और विद्यार्थियों तथा शिक्षकोंकी एक शान्त पारिवारिक बैठक की। एक विद्यार्थीने पूछा, "हिन्दू-मुस्लिम-एकता स्थापित करनेके लिए हम क्या कर सकते हैं?" गांधीजीने उत्तर दिया, अगर सारे हिन्दू गुंडे हो जायें और आपको गालियां दें, तो भी आप उन्हें अपने



सगे भाई मानना न छोड़ें। यही बात मुसलमानोंको लागू होती है। “अगर कोई भलाईके बदलेमें भलाई करता है, तो यह तो सौदा हुआ। ऐसा तो चोर और डाकू भी करते हैं। मानवता हानि-लाभके हिसाबसे नफरत करती है। . . . अगर सारे हिन्दू मेरी सलाह मानें या सारे मुसलमान मेरी सलाह मानें, तो भारतमें ऐसी शांति कायम हो जाय जिसे कोई भंग नहीं कर सकेगा। जब बदला लेनेके लिए आक्रमण नहीं किया जायगा या बदलेमें उभाड़नेका प्रयत्न नहीं किया जायगा, तो गुंडे छुरेबाजीके क्रूर कृत्यसे थक जायंगे। कोई अदृश्य शक्ति उनके उठे हुए हाथको पकड़ लेगी और वह हाथ गुंडेकी दुष्ट आज्ञा माननेसे इनकार कर देगा। . . . ईश्वर भला है और वह दुष्टताको एक निश्चित मर्यादासे ज्यादा बढ़ने नहीं देता।”

जामियाके मैदानके एक कोनेमें डॉ. अंसारीकी कब्र है। घर लौटनेसे पहले गांधीजीने उसकी यात्रा की। डॉक्टर गांधीजीके लिए सगे भाईके समान थे। १९३३ में गांधीजीने पूनामें जो २१ दिनका आत्मशुद्धिका उपवास किया था, उस बीच उनकी स्थिति अचानक नाजुक हो गई। गांधीजीने दिल्लीमें उन्हें संदेश भेजा, मुझे आपकी गोदमें मरनेसे ज्यादा खुशी और किसी बातसे नहीं होगी। भले डॉक्टरका उत्तर आया, मैं आपको अपनी या और किसीकी गोदमें नहीं मरने दूंगा ! और वे अपनी यूरोपकी यात्रा स्थगित करके तुरन्त अपने मित्रके पास पहुंच गये, ताकि वे अपना उपवास सुरक्षित रूपमें पूरा कर सकें। डॉक्टरकी कब्र पर कई सीढ़ियोंका एक चबूतरा है। एक सादी-सी संगमरमरकी तख्ती पर डॉक्टरका नाम और उनके जन्म और मृत्युकी तारीखें खुदी हुई हैं। स्मारककी इस अत्यन्त सादगीके कारण वहांकी यात्राको गंभीरता और भी बढ़ गयी। यह यात्रा गांधीजीकी इस अमर श्रद्धाका प्रतीक थी कि अन्तमें हिन्दू-मुस्लिम-एकता होकर रहेगी।

४

लाल किलेके मुकदमे पूरे जोरसे चल रहे थे। आजाद हिन्द फौज (आई. एन. ए.) के कैदियोंका भाग्य अधरमें झूल रहा था। सारे देशमें भारी खलबली मच गई थी। वकील भूलाभाई देसाईने आई. एन. ए. के सैनिकोंके ध्येयका ज्वलन्त समर्थन करके बड़ा यश कमाया था।

आजाद हिन्द फौजके कैदियोंको अतिशय गुप्ततासे भारत लाया गया था। परन्तु सरदार पटेलकी चतुर आंखने इसे भांप लिया था। इस बातकी सूचना उन्होंने गांधीजीको भी कर दी थी। कुछ कैदियोंको



फौजी अदालतमें मुकदमा चला कर गोली मार दी गई थी। ज्यों ही गांधीजीको इसका पता चला उन्होंने लॉर्ड वेवेलको लिखा:

इस भयसे मैं यह पत्र कांपते कांपते लिख रहा हूं कि कहीं मैं अपनी सीमाका उल्लंघन तो नहीं कर रहा हूं। श्री सुभाषबाबू द्वारा खड़ी की गई सेनाके सैनिकों पर चल रहे मुकदमेकी कार्रवाईको मैं ध्यानसे देख रहा हूं। यद्यपि शस्त्रबलसे किये जानेवाले किसी संरक्षणसे मैं सहमत नहीं हो सकता, फिर भी शस्त्रधारी व्यक्तियों द्वारा अकसर जिस वीरता और देशभक्तिका परिचय दिया जाता है उसके प्रति मैं अन्धा नहीं हूं। . . . जिन लोगों पर मुकदमा चल रहा है, उनकी भारत पूजा करता है। निःसन्देह सरकारके पास जबरदस्त शक्ति है। परन्तु यदि सर्वव्यापी भारतीय विरोधके बावजूद उस शक्तिका उपयोग किया गया, तो वह उस शक्तिका दुरुपयोग होगा। यह कहना मेरा काम नहीं कि उनके साथ कैसा व्यवहार होना चाहिये। मैं तो इतना ही कहूंगा कि जो कुछ किया जा रहा है वह उचित नहीं है। . . . [गांधीजीका पत्र वाइसरॉयके प्राइवेट सेक्रेटरीको, २९ अक्टूबर १९४५]

इस बारेमें गांधीजी भारतके प्रधान सेनापति जनरल ऑचिनलेकसे भी मिले और उनसे आश्वस्त करनेवाला उत्तर पाकर गांधीजीको प्रसन्नता हुई। यद्यपि गांधीजीने आई. एन. ए. के अभियुक्तोंके ध्येयको पूरी तरह अपना लिया था—क्योंकि वे उनके प्राण बचानेको उत्सुक थे—और वे यह भी चाहते थे कि शासक इसे अच्छी तरह समझ लें कि सारा भारत उन लोगोंके पीछे है, परन्तु गांधीजीका यह भी दृढ़ विश्वास था कि भारतकी आजादी आजाद हिन्द फौजके मार्गसे नहीं आ सकती। उन्हींके आग्रहसे—और उसे पंडित जवाहरलाल नेहरूका समर्थन प्राप्त था, क्योंकि आजाद हिन्द फौजके उदाहरणसे उन्हें अंतिम रूपसे यह विश्वास हो गया था कि सशस्त्र युद्धसे अथवा विदेशी सत्ताकी मददसे भारतकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेका प्रयत्न व्यर्थ है—कांग्रेस कार्यसमितिने अपनी यह राय व्यक्त की थी कि, “यह सही और उचित भी है कि कांग्रेस आजाद हिन्द फौजके सदस्योंका मुकदमेमें बचाव करे और संकट-ग्रस्तोंको सहायता दे, फिर भी कांग्रेसियोंको यह नहीं भूलना चाहिये कि इस समर्थन और सहानुभूतिका अर्थ यह नहीं है कि कांग्रेस शांतिपूर्ण और उचित उपायोंसे स्वराज्य प्राप्त करनेकी अपनी नीतिसे किसी भी तरह विचलित हो गई है।” [कांग्रेस कार्यकारिणीका प्रस्ताव, ११ दिसम्बर १९४५]



गांधीजी सरदार पटेलके साथ इन कैदियोंसे दो बार मिलने गये—एक बार काबुल लाइन्समें और दूसरी बार लाल किलेमें। उन लोगोंने गांधीजीसे कहा कि जब हम सचमुच लड़ रहे थे तब हमने नेताजी बोसके प्रेरक नेतृत्वमें अपने बीचसे सम्प्रदायवादको सर्वथा तिलांजलि दे दी थी। वहां आजाद हिन्द फौजमें हिन्दू-मुसलमानोंके लिए अलग अलग भोजनालय नहीं थे। यह सुनकर गांधीजीको प्रसन्नता हुई। परन्तु कैदियोंने शिकायत की कि युद्धबन्दीके रूपमें भारत लौटने पर छावनीके अधिकारी फिर उन पर जबरदस्ती “हिन्दू चाय” और “मुस्लिम चाय” का अभिशाप लाद रहे हैं।

गांधीजीने उनसे कहा कि आपको इसे बरदाश्त नहीं करना चाहिये। “आपको दोनों चाय आधी आधी मिलाकर आपसमें बांटना चाहिये !”

सैनिकोंने उत्तर दिया, “हम ठीक यही कर रहे हैं।”

छावनीके अंग्रेज अफसर पर भी गहरा असर हुआ जब बिदाईके समय सैनिकोंने कंटीले तारोंके पीछे गोलाकार खड़े होकर पूरी आवाजमें, अपने भाग्यके बारेमें जरा भी भय अथवा चिन्ता दिखाये बिना, कविवर टागोरका ‘जन-गण-मन’ राष्ट्र-गीत गया। यह उसका हिन्दुस्तानी रूपान्तर था और इसीको गाते गाते वे भारतकी आजादीके खातिर रणभूमिमें मृत्युका आलिंगन करनेके लिए आगे बढ़े थे। उनका यह राष्ट्र-गान अत्यन्त स्वाभाविक और अनुशासनबद्ध था। उनका अफसर बोल उठा, “ये लोग बड़े अच्छे हैं। मुझे आशा है कि इनका मामला अच्छी तरह निबट जायगा।”

बारकोंसे चलकर गांधीजी जनरल मोहनसिंहसे मिलने गये। ये आजाद हिन्द फौजके संस्थापक थे और उसकी भीतरी फूटके कारण दूसरोंसे अलग रहना पसन्द करते थे। वहांसे गांधीजी फौजी अस्पतालमें गये, जहां मेजर जनरल चटर्जी, मेजर जनरल लोकनाथन् और कर्नल हबिबुर्रहमान थे।

आई. एन. ए. के एक सैनिकने पूछा, “यदि इस बार कोई निबटारा न हुआ तो हम क्या करेंगे? जहां तक हमारा संबंध है, हममें से एक एक आदमी हमेशा मरनेको तैयार रहेगा।”

गांधीजीने उत्तर दिया, “हमारा मार्ग दूसरोंको मारे बिना खुद मरनेका है।”



जो सैनिक अफसर गांधीजीके साथ था, वह इस संवादको ध्यानसे सुन रहा था। वह बीचमें ही बोल उठा, “मारने और मरनेकी बात बहुत हो चुकी; हमें दोनों ही नहीं चाहिये।”

गांधीजीको एक पेशेवर सैनिक अफसरके मुंहसे ऐसे भाव सुनकर सानंद आश्चर्य हुआ और वे बोल उठे, “यह आप कहते हैं !”

आजाद हिंद फौजके मित्रोंसे गांधीजीने कहा: “मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि मेरा मार्ग कहीं ज्यादा अच्छा है।”

अब तक गांधीजीने नेताजी बोसकी मृत्युके सब समाचारों पर अविश्वास किया था। इस भेंटसे उनकी यह राय बदल गई। जब वह दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई थी उस समय कर्नल हबिबुर्रहमान नेताजीके साथ ही विमानमें थे। उन्होंने दुर्घटनाका सारा वर्णन सजीव रूपमें गांधीजीके समक्ष किया: “नेताजीके हाथ और शरीरके दूसरे हिस्से बहुत ज्यादा जल गये थे। परन्तु इसकी परवाह न करके उन्होंने मुझसे पूछा कि मेरा क्या हाल है। मैंने उनसे कहा कि मैं बिलकुल ठीक हूं और मुझे लगता है कि मैं बच जाऊंगा। उन्होंने कहा कि मेरे बचनेकी आशा नहीं है। और उन्होंने मुझे अपना अंतिम संदेश दिया: “मैं तो जा रहा हूं, परन्तु मेरे देशवासियों और तमाम संबंधित लोगोंसे कह देना कि जब तक लक्ष्य सिद्ध न हो जाय तब तक भारतीय स्वाधीनताकी लड़ाई जारी रहनी चाहिये।” यह दुर्घटना ९॥ बजे प्रातःकाल हुई थी। तीसरे पहर ३॥ बजे उनका प्राणान्त हो गया। वे लगभग अन्त तक होशमें रहे। अतिशय पीड़ाके बावजूद उनके मुंहसे उफ तक नहीं निकली।” वर्णन-कर्ताका हृदय बोलते बोलते भर आया। गांधीजीने दूसरे दिन अपनी प्रार्थना-सभामें यह घोषणा कर दी कि पहले तो मेरी मान्यता दूसरी थी, परन्तु अब मुझे विश्वास हो गया है कि नेताजी इस दुनियामें नहीं रहे।

आजाद हिन्द फौजकी उस टुकड़ीका एक और सैनिक बोला, “हमें न हताशा है और न निराशा है। अब जब सारे देशने स्वतंत्रता-संग्रामको अपना लिया है, तो हमें लगता है कि हमारा काम पूरा हो गया। यह देखकर हमारे हृदयको प्रसन्नता होती है कि जिस ध्येयके लिए हमने कोशिश की थी, वह रक्तपातके बिना पूरा होने जा रहा है। इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है?”



जैसा मेजर जनरल शाहनवाजने गांधीजीसे कहा था, अंग्रेजोंके आगे अन्तमें आत्म-समर्पण करनेसे पहले जुदा होते समय दी गई नेताजी बोसकी सलाहमें भी यही भावना थी।

आजाद हिन्द फौजके एक और सैनिकने गांधीजीसे पूछा, “हम राष्ट्रकी सेवा कैसे कर सकते हैं?” गांधीजीने उत्तर दिया, “मन-प्राणसे रचनात्मक कार्यमें ओतप्रोत होकर। रणभूमिमें शत्रुसे लड़ते लड़ते जितने लोगोंके प्राण गये, उससे अधिक प्राण जानेका खतरा देश पर मंडरा रहे अकालके कारण आज पैदा हो गया है।”

नेताजी बोस गांधीजीके लिए पुत्रके समान थे। गांधीजी उनकी योग्यता, सच्चाई, त्याग, देशभक्ति और सूझबूझकी बड़ी तारीफ करते थे। परन्तु यह बात उन्होंने कभी नहीं छिपाई कि वे नेताजीकी कार्य-पद्धतिसे सहमत नहीं हो सके। इसलिए उन्होंने “बोसकी लोककथा” को कभी भी प्रोत्साहन नहीं दिया। उन्होंने आजाद हिन्द फौजकी एक और टुकड़ीसे कहा, “हमने पिछले २५ वर्ष बरबाद कर दिये, यदि मारने और नाश करनेके धंधे पर मुल्म्मेकी जो मोटी परत दीर्घकालसे चढ़ी हुई है उसे हमने उतार नहीं फेंका।” [हरिजन, १० मार्च १९४६, पृ. ३६] उन्होंने आजाद हिन्द फौजके सैनिकोंकी बहादुरी और भारतकी स्वतंत्रताके खातिर मरनेकी उनकी तैयारीकी खुले हृदयसे प्रशंसा की। परन्तु उन्होंने कहा कि इसमें मैं अपने स्थितप्रज्ञके आदर्शको लेकर आपके साथ प्रतिस्पर्धा करनेको तैयार हूं, क्योंकि स्थितप्रज्ञका आदर्श मनुष्यसे निःशस्त्र होने पर भी उतने ही साहसके साथ मृत्युका सामना करनेकी अपेक्षा रखता है। उन्होंने आजाद हिन्द फौजके लोगोंसे कहा: सशस्त्र युद्धमें जिस साहस और देशभक्तिकी जरूरत होती है, उससे कहीं ऊंचे साहस और देशभक्तिकी आवश्यकता झाड़ू और बाल्टी उठाने और भंगी बनकर नीचेसे नीचे मनुष्योंके साथ तादात्म्य सिद्ध करनेमें होती है। सब कोई आजाद हिन्द फौजके सैनिकोंकी शारीरिक वीरताकी बराबरी नहीं कर सकते। परन्तु स्थितप्रज्ञका आदर्श तो सबके लिए है—न कि थोड़ेसे चुने हुए लोगोंके लिए, केवल संतों और ऋषियोंके लिए ही। “एक विनीत साधकके नाते मैं गवाही देता हूं कि कोई भी आदमी—यहां तक कि एक भोलभाला देहाती भी चाहे और प्रयत्न करे, तो गीतामें वर्णित मानसिक संतुलनकी स्थितिको प्राप्त कर सकता है। हम सब कभी कभी अपना सयानपन खो देते हैं, भले ही हम इसे स्वीकार न करें। परन्तु स्थितप्रज्ञके आदर्शका तकाजा है कि किसी बच्चेके साथके व्यवहारमें भी मनुष्य धीरज न छोड़े या क्रोध अथवा गाली-गलौज न करे।



मैंने धर्मको जिस रूपमें समझा है उस रूपमें वह हमारे इसी जीवनमें पालन करनेकी वस्तु है। हमारे इस जन्मके किसी भी कार्यसे कोई सम्बन्ध न रखते हुए परलोकमें श्रेयप्राप्तिका साधन धर्म नहीं बन सकता।

गांधीजीने कहा, इसलिए इस नाजुक मौके पर आजाद हिन्द फौजवालोंका भारतके लिए यह संदेश है कि “झगड़ोंका निबटारा करनेके लिए शस्त्रबलका आश्रय न लिया जाय, परन्तु अहिंसा, एकता, मेल-मिलाप और संगठनका विकास किया जाय।” गांधीजीकी दृष्टिमें उनकी सबसे बड़ी सिद्धि यह थी कि उन्होंने भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियोंके लोगोंको एक झंडेके नीचे एकत्र किया था और किसी भी साम्प्रदायिक अथवा प्रादेशिक भावनाके बिना उनमें एकताकी वृत्ति पैदा की थी। उन्होंने युद्धके जादुई आकर्षण और उत्तेजनाके वश होकर जो कुछ किया था वह अब उन्हें सर्वथा भिन्न और कहीं अधिक कठिन परिस्थितियोंमें कर दिखाना है और दूसरोंमें भी यह भावना पूरनी है। इसके अलावा, उन्हें दूसरोंको मारे बिना मरना सीखना है, अर्थात् गीतामें बताये गये स्थितप्रज्ञके गुण अपनेमें पैदा करने हैं।

आजाद हिन्द फौजके दलने गांधीजीको बताया कि हमने भी समझ लिया है कि अब हमें अहिंसाके सैनिक बनकर भारतकी सेवा करनी होगी। यह बात उनमें से कुछ लोगोंने नोआखाली और बिहारके संकटपूर्ण दिनोंमें प्रशंसनीय ढंगसे सिद्ध कर दिखाई थी।

आजाद हिन्द फौजके कैदियोंसे गांधीजीने अपनी मुलाकातमें जो प्रेरणाप्रद बातें कीं, वे स्वतंत्रताके उषाकालमें भारतकी आत्माके नव-प्रस्थानका तादृश चित्र प्रस्तुत करती हैं। वह नया जन्म और नई चेतना पाया हुआ भारत था; जिस स्वर्णयुगकी वह चिरकालसे प्रतीक्षा करता आ रहा था उसके आगमनकी आशाओंसे पुलकित भारत था। भारतीय जनताने ब्रिटिश शासकोंके खिलाफ लड़ी गई अपनी लड़ाईमें दूसरोंको मारे बिना स्वयं मरनेकी कलाकी सफलताके दर्शन कर लिये थे। अब गांधीजी उसे यह समझानेकी कोशिश कर रहे थे कि भविष्यमें एक-दूसरेके साथ व्यवहार करते समय इस पाठको यदि उसने याद नहीं रखा, तो उसका स्वातंत्र्य-संग्राम अपनी आखिरी मंजिलमें भाई-भाईके गृहयुद्धमें बदल जायगा; और फिर जिस पुरस्कारके लिए वह अब तक लड़ रही थी उसे यह गृहयुद्ध जड़मूलसे नष्ट कर देगा।



एक अंग्रेज उपन्यासकारने अपनी एक अमर कहानीमें एक डॉक्टरका चित्रण किया है। उस डॉक्टरको एक अंधेरे जेलखानेमें लंबे अर्से तक बन्द रखनेके बाद अचानक दिनके प्रकाशमें लाया जाता है। उस समय वह बड़ी मुश्किलसे आंखें खोल पाता है और फिरसे अपनी उसी अंधेरी कोठरीमें चला जाना चाहता है। क्या भारत वास्तविकताका सामना करनेकी हिम्मत दिखायेगा, जब लगभग २०० वर्षकी गुलामीके बाद स्वाधीनता उस पर आ धमकेगी? अथवा उसकी हिम्मत उसे जवाब दे देगी और वह फिरसे गुलामीके आराम और सुरक्षिततामें लौट जाना चाहेगा ? क्या लोग आजादीकी कीमत चुकानेको और वे कुर्बानियां करनेको तैयार होंगे, जो आजादी मांगती है? या वे उन विशेष सुविधाओं और लाभोंसे चिपके रहेंगे, जिनका आदी विदेशी शासकोंने उन्हें बना दिया है? गांधीजीने देख लिया था कि स्वतंत्रताके मंदिरमें प्रवेश करनेसे पहले ऐसे कुछ लाभों और विशेष अधिकारोंका देशवासियोंको स्वेच्छासे त्याग करना होगा।

जमींदारोंका एक प्रतिनिधि भंगीबस्तीमें गांधीजीसे मिलने आया था। उसे गांधीजीने जो उत्तर दिया वह बड़ा लाक्षणिक था:

“जब भारत स्वाधीन हो जायगा, तो हमारी क्या स्थिति होगी ?”

“आप उतने ही स्वतंत्र होंगे जितना, उदाहरणके लिए, कोई भंगी होगा।”

परन्तु मुलाकातीका मुद्दा यह नहीं था। वे तो यह जानना चाहते थे कि भारतके स्वतंत्र होनेके बाद उनका वर्ग अपने विशेषाधिकारोंकी रक्षा कर सकेगा या नहीं।

गांधीजीने उत्तर दिया, “अहिंसक मनुष्यके नाते मैं किसीको न्यायपूर्ण अधिकारोंसे वंचित करना पसन्द नहीं करूंगा। परन्तु अंग्रेजी राज्यमें कुछ असाधारण विशेषाधिकार हथियाये हुए जैसे ही थे। ऐसे अधिकारोंको नहीं रहने दिया जा सकता।”

प्रतिनिधिने फिर पूछा, “बहुतसे जमींदार अंग्रेजोंके यहां आनेसे बहुत पहले भारतमें मौजूद थे। क्या आपके खयालसे उन्हें बने रहनेका अधिकार नहीं है?”



गांधीजीने उत्तर दिया, “जो भी वस्तु नैतिक मूल्योंके साथ सुसंगत है, उसे मौजूद रहनेका अधिकार है। इसके विपरीत, बुराईको केवल इस कारणसे टिके रहनेका अधिकार नहीं है कि वह बहुत समयसे चली आई है।”

अन्तमें उन मित्रने तर्क किया, “हम निष्पक्ष न्याय चाहते हैं। स्वाधीन भारत सब प्रकारके स्थापित स्वार्थोंको मिटा दे, तो हमें कोई आपत्ति नहीं। हम तो इतना ही चाहते हैं कि हमारे विरुद्ध खास तौर पर कोई भेदभाव ना किया जाय।”

गांधीजीने जवाब दिया, “न्याय-परायण मनुष्यको स्वाधीन भारतसे किसी भी तरहका डर रखनेकी जरूरत नहीं है।”

एक और दलने पूछा, क्या इस बातका विश्वास रखा जा सकता है कि स्वाधीनतामें “धर्म-परिवर्तन करानेके अधिकार” की कानूनी गारंटी होगी? इस पर गांधीजीने प्रश्न किया, क्या आप लोग सचमुच स्वाधीनताके आदर्शमें विश्वास रखते हैं या किसी शर्त पर आप स्वाधीनताके आदर्शका समर्थन करेंगे ? यदि इसके लिए आपकी कोई शर्त हो, तो मैं कहूंगा कि न तो स्वाधीनतामें आपका विश्वास है और न धर्ममें। यदि आपकी रग-रगमें सत्य भरा हो, तो उसकी आवाजको कौन दबा सकता है? इसके विपरीत, यदि आपके भीतर सत्यकी साक्षी बननेवाली आग न हो, तो कानूनी गारंटी किस कामकी ?

मुलाकातियोंमें से एक मित्र बीचमें ही बोल उठे, यह निर्विवाद है कि सत्यको कोई नहीं दबा सकता। परन्तु क्या आप यह आश्वासन दे सकते हैं कि सत्यको दबानेका प्रयत्न नहीं किया जायगा ?

महात्माजी ऐसा कोई आश्वासन नहीं दे सकते थे। क्या प्रश्नकर्ता डेनियलका किस्सा भूल गये थे, जिसने राजा डेरियसकी आज्ञा भंग करनेका साहस किया था ? राजाने अपने राज्यमें यह आज्ञा निकाली थी कि “मेरे सिवा किसी देवता या मनुष्यकी पूजा न की जाय।” जब डेनियलको भूखे शेरकी गुफामें फेंकनेकी आज्ञा दी गई तब क्या डेनियलने इस अग्नि-परीक्षामें से सकुशल बाहर निकल आनेकी ‘गारंटी’ मांगी थी या उसे ऐसी गारंटीकी जरूरत थी ? कहानी यह है कि डेनियलकी श्रद्धाका राजा पर इतना गहरा प्रभाव हुआ कि उसने अपनी पहली आज्ञा—जो “मीडों और ईरानियोंके कानूनके अनुसार अपरिवर्तनीय थी”—रद्द कर दी और उसके स्थान पर इस आशयकी आज्ञा निकाली कि “मेरे राज्यके



हर एक प्रदेश में लोग डेनियल के ईश्वर के सामने कांपें और डरें, क्योंकि वह जीता-जागता और सदा स्थिर रहनेवाला ईश्वर है। . . .” और इस प्रकार डेनियल “डेरियस और साइरस दोनों के राज्य में फला-फूला !” [हरिजन, २८ अप्रैल १९४६, पृ. १०२-०३]

बिदाई के समय गांधीजी ने उनको वही सलाह सुना दी, जो लॉर्ड सैलिस्बरी ने पादरियों के एक शिष्ट-मंडल को दी थी। लॉर्ड सैलिस्बरी उस समय

इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री थे और पादरी लोग चीन में धर्म-परिवर्तन कराने की अपनी

प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उनसे मिलने आये थे। लॉर्ड सैलिस्बरी ने उन लोगों से कहा, अगर आपको अपने मिशन के लिए ब्रिटिश तोपों की रक्षा की जरूरत है, तो आप हीन कोटि के मिशनरी हैं।

साधारण नागरिकों से जिन बातों का त्याग करने की अपेक्षा रखी गई थी, उनमें सबसे कठिन त्याग बन्दूकों की हिफाजत में मिलनेवाली सुरक्षा और सुविधा का त्याग था। इस सुरक्षा और सुविधा का सामान्य नागरिक ब्रिटिश राज्य में आदी हो गया था। गांधीजी ने सबको यह समझाने में कसर नहीं रखी कि जो स्वाधीनता आयेगी, वह कोई हंसी-खेल और मौज-शौक की चीज नहीं होगी। उनकी व्याख्या की भारतीय स्वाधीनता का अर्थ न केवल राजनीतिक और आर्थिक स्वाधीनता था, बल्कि नैतिक स्वाधीनता भी था। ‘राजनीतिक’ स्वाधीनता का अर्थ यह था कि प्रत्येक स्वरूप में ब्रिटिश सेना का नियंत्रण भारत से हट जाय; ‘आर्थिक’ स्वाधीनता का अर्थ यह था कि ब्रिटिश पूंजीपतियों और पूंजी से तथा भारतीय पूंजीपतियों और पूंजी से पूरी तरह मुक्ति मिल जाय। और ‘नैतिक’ स्वाधीनता का अर्थ यह था कि सशस्त्र सेना की रक्षा से छुटकारा मिल जाय। इस स्वतंत्रता में ब्रिटिश सेना की जगह राष्ट्रीय सेना के लिए भी कोई अवकाश नहीं हो सकता। “जिस देश पर उसकी राष्ट्रीय सेना का भी शासन हो, वह कभी नैतिक दृष्टि से स्वतंत्र नहीं हो सकता; और इसलिए उस देश का सबसे कमजोर नागरिक कभी अपनी संपूर्ण नैतिक ऊंचाई तक नहीं उठ सकता।” [हरिजन, ५ मई १९४६, पृ. ११६]

गांधीजी की श्रद्धा ऐसी उत्कट थी जैसी किसी पैगम्बर की होती है। अतः उनके सत्संग में सभी लोग उन्हीं की तरह सोचने और अनुभव करने लगते थे। वे गांधीजी की भाषा बोलते थे और जब गांधीजी उन्हें रणक्षेत्र में ले जाते थे तब उनके आदर्शों की प्रेरणा से ओतप्रोत हो जाते थे। परन्तु जब संग्राम में



अन्तिम उग्रता आई और गांधीजीकी श्रद्धाके गृढार्थ अधिकाधिक प्रगट होने लगे, तब बहादुरसे बहादुर लोग भी पीछे हट गये और अपनी एकाकी यात्रा जारी रखनेके लिए गांधीजी अकेले ही रह गये।

६

भंगीबस्तीमें ठहरनेका गांधीजीका निर्णय उनके लिए केवल प्रतीक जैसा ही नहीं था। यह निर्णय गांधीजी स्वराज्यकी जिस इमारतकी धैर्यपूर्वक रचना कर रहे थे उसीका एक अंग था। भंगीबस्तीमें पहुंचने पर उन्होंने कह दिया, मेरे मनमें यह भ्रम नहीं है कि यहां ठहर कर मैं हरिजनोंके वास्तविक जीवनका भागीदार बन रहा हूं। मेरा यहां ठहरनेका निश्चय उस दिशामें पहला कदम है, आखिरी नहीं। मुझे आशा है कि किसी दिन हरिजनोंके मकानोंमें सफाई, तन्दुरुस्ती और म्युनिसिपल सुविधाओंके बारेमें ऐसी स्थिति पैदा हो जायगी कि मेरे जैसा आदमी भी यहां आकर बिना किसी हिचकके रह सकेगा। गांधीजी उनकी गंदी झोंपड़ियोंमें जाते थे और अपने सहायकोंसे भी वहां जानेको कहते थे। उन्होंने हरिजनोंके जीवनकी परिस्थितियोंमें सुधार करानेके लिए म्युनिसिपल अधिकारियोंसे पत्र-व्यवहार शुरू किया। उन्होंने हरिजनोंकी समस्याओंका अध्ययन किया, उनके लिए अपना काफी समय दिया और उन्हें नेक सलाह भी दी; और जब उनके शिविरका प्रबन्ध करनेवाले स्वयंसेवकोंने अपनी रैली की तो उनसे कहा, आप प्रेमपूर्वक मेरी जो सेवा कर रहे हैं, उसके लिए मैं आपका आभारी हूं। परन्तु मुझे अधिक संतोष तब मिलेगा जब आप उतनी ही मेहनतसे उन 'नीचेसे नीचे लोगों' की भी सेवा करेंगे, जो मेरे पड़ोसमें रहते हैं और "अतिशय गंदगी और दरिद्रतामें जीवन बिताते हैं।"

भंगीबस्तीमें गांधीजीकी एक प्रार्थना-सभामें एक हिन्दी भजन गाया गया था। उसमें गांधीजीको अपने स्वतंत्र भारतका चित्र उसके महत्त्वपूर्ण अंशोंमें मूर्त रूप लेता दिखाई दिया। उस पर वे मोहित हो गये और उसका अंग्रेजी अनुवाद करके उन्होंने लॉर्ड पेथिक-लॉरेंसके पास भिजवा दिया। भजन इस प्रकार था:

हम ऐसे देशके वासी हैं,

जहां शोक नहीं और आह नहीं।

जहां मोह नहीं और ताप नहीं,



जहां भरम नहीं और चाह नहीं ॥

जहां प्रेमकी गंगा बहती है,

सब सृष्टि आनन्दित रहती है।

जो है यां एक जहेती है,

दिन रात नहीं, सन् माह नहीं ॥

सबको है सब कुछ मिला हुआ,

यां सब सौदा है तुला हुआ।

एक सांचेमें सब ढला हुआ,

कुछ कमी नहीं परवाह नहीं ॥

जहां स्वारथके नाम-रूप नहीं,

कोई खास नहीं, कोई आम नहीं।

कोई करता और गुलाम नहीं,

जहां दीप्ति रहती पर दाह नहीं ॥

तेरे अंतरमें वह है,

वह स्वराज्य और स्वदेशी है।

तेरे अंतर मांह निलय,

जय, जय, जय, जय !

जय चाहनेसे मिलती है।

गांधीजीके मन चरखा उनके सपनोंके इस स्वराज्यका मूर्त रूप और प्रतीक था—जिस स्वराज्यमें साधारण मनुष्योंको अपने मूल अधिकार फिर प्राप्त होंगे। चरखेमें उन्हें ताल, संगीत, काव्य, साहस तथा



शौर्य और आध्यात्मिक संतोष भी मिलता था। कुछ दिन बाद कनु गांधीने भंगीबस्तीमें कताई और उससे सम्बन्धित दूसरी प्रक्रियाएं सिखानेके लिए ११ दिनका जो वर्ग चलाया था, उससे गांधीजीको जितना संतोष हुआ उतना और किसी बातसे नहीं हुआ। ११० व्यक्ति कताईकी अन्तिम परीक्षामें बैठे थे। आम तौर पर नवागतन्तुकोंने एक सप्ताहके भीतर इस कलाको सीख लिया। कताईकी सारी प्रक्रियाओंकी प्रदर्शनीका उद्घाटन समाजवादी नेता जयप्रकाशनारायणने किया। इस समारोहकी मुख्य घटना यह थी कि गांधीजीको उनकी ७७ वीं वर्षगांठ पर भेंट-स्वरूप देनेके लिए सारे देशसे सूतकी ७७ हजार गुंडियां [एक गुंडी ८४० गज तारके बराबर होती है] इकट्ठी की गई थीं।

जो लोग वर्गमें शरीक हुए उनमें 'न्यूज़ क्रॉनिकल' लंदनके प्रतिनिधि श्री नॉर्मन क्लिफ और 'न्यूयॉर्क पोस्ट' के प्रतिनिधि श्री एन्ड्रयु फ्रीमैन भी थे। दोनोंने कातना सीख लिया और चरखे खरीद लिये। श्री एन्ड्रयु फ्रीमैनने अपने पत्रसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद गांधीजीके कताई-वर्गके "एक भूतपूर्व सदस्यके नाते" उनसे अनुमति मांगी कि वे अपने नामका उपयोग करके "गांधी स्पिनिंग सोसायटी ऑफ दि यूनाइटेड स्टेट्स" का संगठन उन्हें करने दें। गांधीजीका लाक्षणिक उत्तर इस प्रकार था, "क्या अमरीकामें कताई-मंडल शुरू करनेका विचार पागलपन नहीं है ? पागलपन हो या बुद्धिमानी, आप मेरा नाम उसके साथ क्यों जोड़ना चाहते हैं ? हाथ-कताईका अपना ही विशेष विश्वव्यापी कार्य है। . . . यदि अमरीकाको सचमुच चरखेमें दिलचस्पी हो, तो वह आविष्कारक प्रतिभाके अपने सारे भूतपूर्व पराक्रमोंको तोड़ सकता है। इसलिए मैं कहता हूं कि एक महान वस्तुको मेरे नामके साथ मिलाकर छोटी न बनाइये। चरखेके बारेमें लोगोंको समझाते समय मेरे नामका उपयोग करनेका आपको पूरा अधिकार है। और आप सही अर्थमें यह कह सकते हैं कि चरखेके बारेमें आपका उत्साह मेरे उस उत्साहका ऋणी है, जो मैं भारतमें चरखेके लिए दिखाता हूं।"

एन्ड्रयु फ्रीमैनने प्रस्ताव रखा था कि वे प्रस्तावित मंडलके सदस्योंका काता हुआ सारा सूत गांधीजीके पास भेज देंगे। इसके बारेमें गांधीजीने उन्हें लिखा, "अवश्य ही मैं उस सारे हाथकते सूतका स्वागत करूंगा, जो आप भारत भेज सकते हैं। परन्तु ठेठ अमरीकासे भारत तक हाथकते सूतका जो पार्सल आप भेजेंगे, उसके भीतर छिपे विनोदकी ओर मैं आपका ध्यान खींचना चाहूंगा। . . . शायद हाथकता सूत अमरीकासे भेजनेका डाकखर्च कताईमें उपयोग की गई रुईके मूल्यसे पचास गुना ज्यादा



होगा !” अन्तमें उन्होंने यह लिखा, परन्तु अमरीका तो “लक्ष्मीका पुजारी देश है” इसलिए शायद आप “इस तरहका महंगा विनोद कर सकते हैं !”

७

आदर्शवादियोंको आम तौर पर गगन-विहारी, अव्यावहारिक समझा जाता है। पर गांधीजीका आदर्शवाद गगन-विहार करने जैसा नहीं था। उनका यह दावा था और उसे उन्होंने सिद्ध कर दिखाया था कि वे व्यावहारिक आदर्शवादी थे। उन्होंने दिखा दिया कि भलाईको परिणामकारी कैसे बनाया जा सकता है। अपने सत्यके आग्रह और पूर्ण पालनसे उन्हें वास्तविकता पर पूरा नियंत्रण प्राप्त हो गया था और मानव-स्वभावका अद्वितीय ज्ञान प्राप्त हो गया था। उसकी शक्तियों और उसकी दुर्बलताओंको भी जाननेके कारण वे अचूक अंतर्ज्ञानसे अपने अस्त्र चुन सकते थे और मिट्टीमें से शूरवीरोंको जन्म दे सकते थे। शायद हमारी जानकारीमें अन्य कोई व्यक्ति गांधीजीकी तरह इतने विभिन्न प्रकारके मनुष्यों और प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको अपने चारों तरफ इकट्ठा करने या उन्हें एक साथ रखनेमें समर्थ नहीं हुआ। पंडित नेहरूने अपनी अनोखी शैलीमें लिखा है, “हमारा एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न लोगोंका शंभुमेला था। हमारी पृष्ठभूमियां, हमारी जीवन-प्रणालियां और हमारी विचारधाराएं सब कुछ भिन्न थीं। परन्तु . . . हमने . . . एक सामान्य उद्देश्यकी पूर्तिके लिए ऐसे नेताके साथ अपना विकास किया, जिसे . . . (हम) अपने विभिन्न दृष्टिकोणोंसे एक महान और भव्य विभूति समझते थे।” [‘टु ए गांधियन केपिटलिस्ट’ पुस्तकका पंडित नेहरू द्वारा लिखा प्राक्कथन, बम्बई, १९५१। यह सेठ जमनालाल बजाजको लिखे गांधीजीके पत्रोंका संग्रह है]

उदाहरणार्थ, गांधीजीके निकटके लोगोंमें घनश्यामदास बिड़ला जैसे चतुर पूंजीपति और व्यवसायी थे, पंडित नेहरू जैसे बुद्धिवादी और क्रान्तिवादी थे, राजाजी जैसे सुक्ष्मबुद्धि और प्रतिभाशाली वकील थे, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जैसे मानवतावादी और देशभक्त थे, मौलाना अबुलकलाम आजाद जैसे प्रगाढ़ पंडित और धर्मशास्त्री थे, मरहम डॉ. अंसारी और हकीम अमजल खां—अपने अपने क्षेत्रमें दोनों ही अत्यन्त प्रतिभाशाली थे—जैसे सफल चिकित्सक थे, मातृतुल्य वात्सल्य बरसानेवाली सरोजिनी नायडू जैसे रंगीन व्यक्तित्ववाले लोग थे और सरदार वल्लभभाई जैसे लौहपुरुष थे।



ये लोग अपने अपने क्षेत्रमें स्वयं महान थे। इनके मन और इनके हृदय पर गांधीजीने जो अनोखा प्रभाव जमाया था, उसका क्या रहस्य था? वे गांधीजीको अपनेमें सर्वश्रेष्ठ और अपना ही एक उत्तम अंग क्यों समझते थे ?

इसका रहस्य गांधीजीके गहरे और विविध यथार्थवादमें था, जिसके कारण ये सब उनकी ओर आकर्षित हुए थे। इसका रहस्य उनके व्यवहार-कौशल, गहरी सहानुभूति, कोमलता और व्यक्तिगत आकर्षणमें भी था, जो इन सबको एक साथ बांध रखते थे। उदाहरणके लिए, घनश्यामदास बिड़ला गांधीजीकी ओर इसलिए आकर्षित हुए थे कि उन्हें गांधीजीमें एक ऐसा ईश्वर-परायण व्यक्ति मिला, जो सांसारिक मनुष्य भी था और जिसमें उन्होंने व्यक्तिगत शुद्धताके अपने आदर्शको मूर्तिमन्त हुआ देखा। क्रांतिकारियोंने उन्हें अपनेसे भी अधिक संपूर्ण क्रांतिकारी पाया, जिनमें युद्धका दृढ़ संकल्प और साहस था, खतरोंका हंसते हंसते सामना करनेकी वृत्ति थी और प्रतिकारकी अजेय भावना थी। गांधीजीके इन गुणोंके सामने क्रांतिकारियोंको अपने साहसिक कार्य बच्चोंके खेल जैसे मालूम होते थे। सुसंस्कारी और बुद्धिवादी पंडित नेहरूको गांधीजीके प्राणवान व्यक्तित्व और जीवनकी पूर्ण कलामयताने मोहित किया था। एक और राजनीतिज्ञ, पंडित नेहरूके पिताजीने एक बार कहा था: “मुझे गांधीजीकी आध्यात्मिकतामें विश्वास नहीं है और न भविष्यमें कभी होगा। मैंने उनसे कह दिया है कि कमसे कम इस जीवनमें तो मेरा ईश्वरमें कभी विश्वास नहीं होगा। परन्तु हम यह देखते हैं कि राजनीतिमें गांधीजी हमारे ही खेलमें हमें हरा देते हैं!” देशबन्धु चित्तरंजन दासको गांधीजीमें भारतीय स्वाधीनताके लिए ऐसी उत्कट समर्पण-भावना और आवश्यकता होने पर उसके लिए अपनेको मिटा देनेकी ऐसी तत्परता दिखाई दी, जो उनकी अपनी समर्पण-भावना तथा भारतकी स्वाधीनताके लिए अपने आपको मिटा देनेकी तत्परतासे कहीं बढ़ी-चढ़ी थी। मौलाना साहबको गांधीजी अपने जैसे एक गहरे धार्मिक विचारक और पूर्वी संस्कृति तथा परंपराके उत्कट प्रतिनिधि मालूम हुए। मौलाना स्वयं अपने व्यक्तित्व द्वारा इन दोनोंका उच्च प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होंने कुरानकी शोधमें जिस विशाल दृष्टिकोणको मूर्त किया है, वही दृष्टिकोण उन्हें गांधीजीमें दिखाई दिया। राजाजीने देखा कि गांधीजीमें विचारोंकी स्वच्छता और स्पष्टता है, किसी बातको जल्दी समझ लेनेकी अद्भुत क्षमता है, विरोधीकी बातकी कदर करनेकी शक्ति है और कानूनकी ऐसी सूक्ष्म और वेधक दृष्टि है, जिसके सामने पुरानी परंपराके कानूनी महापंडित भी



लज्जित हो जाते थे। डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादको उनमें आदर्श नम्रता और मानव-सेवाकी उत्कट वृत्तिके दर्शन हुए। डॉक्टर अंसारीको अपने समकालीन अनेक प्रसिद्ध डॉक्टरोंकी तरह, गांधीजीमें स्वास्थ्य और रोगके बारेमें अपने ही जैसी वैज्ञानिक और तटस्थ प्रयोगात्मक दृष्टिवाले तथा अपनी 'नीम-हकीमी' द्वारा—डॉ. अंसारी गांधीजीके कुदरती उपचारोंके प्रयोगको मजाकमें नीम-हकीमी कहते थे— डॉक्टरी चिकित्साकी पाठ्यपुस्तकोंके सिद्धान्तोंको गड़बड़ीमें डाल देनेवाले और झूठे सिद्ध करनेवाले एक डॉक्टरके दर्शन हुए थे। श्रीमती सरोजिनी नायडूकी कवि-प्रतिभाने गांधीजीमें एक ऐसे “कार्यरत कवि” को पाया, जो एक प्राचीन और गौरवमय राष्ट्रका उद्धारक था—जिसे उसने सीना तानकर और सिर ऊंचा रखकर चलना सिखाया—और जिसके भीतर उन्हींके जैसा कोमल और वात्सल्यपूर्ण हृदय था। अन्तमें ब्रिजके खिलाड़ी और निरन्तर सिगरेट फूंकनेवाले बैरिस्टर वल्लभभाई पटेलको—जो अहमदाबादके अपने ‘भजिया क्लब’ के एकान्त कोनेमें बैठकर भारतके राजनीतिक दृश्य पर नास्तिककी वृत्तिसे दृष्टि घुमाते रहते थे—महात्मामें ऐसे राजनीतिक नेताके दर्शन हुए, जो बात करनेवाला नहीं किन्तु कार्य कर दिखानेवाला था और जो किसी कामको एक बार हाथमें लेनेके बाद उसे पूरा करके ही दम लेता था। इसलिए ये सब लोग गांधीजीके दास बन गये। और बादके वर्षोंमें जब अपने भिन्न भिन्न स्वभावोंके कारण और भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें कार्य करना जरूरी होनेके कारण आचरणमें गांधीजीके सिद्धान्तों पर टिके रहना उनके लिए अधिकाधिक कठिन बनता गया, तब गांधीजीके नैतिक और बौद्धिक नेतृत्वसे, और इससे भी अधिक गांधीजीकी व्यावहारिक बुद्धिमत्ताके नेतृत्वसे, पिण्ड छुड़ाना उनके लिए कठिन—नहीं, लगभग असंभव हो गया।

गांधीजी मानते थे कि वे अन्य मानवोंकी तरह धरतीके सामान्य मानव हैं और उन्हींकी तरह दोषों और दुर्बलताओंके पुतले हैं। इसलिए दूसरोंके दोष देखनेमें उन्हें देर लगती थी। वे अपने साधनोंके बारेमें कभी शिकायत नहीं करते थे। वे मानव-स्वभाव जैसा है उसीको स्वीकार करके चलते थे। उन्होंने पशुबलके उपयोगका त्याग कर दिया था, इसलिए उन्हें मानवकी मनोवृत्तिके रहस्योंमें गहरे गोते लगाने पड़ते थे और मानव-हृदयके विविध तारों पर अधिकार प्राप्त करना पड़ता था। और इस कारण वे हमारे युगके सबसे बड़े मानव-निर्माता बन गये थे।



उनकी बातका हर किसी पर गहरा प्रभाव इसलिए पड़ता था कि वे अपने साधनोंका कभी दुरुपयोग नहीं करते थे। सैनिक तानाशाह गौरव प्राप्त करनेके लिए अपने सिपाहियोंको तोपकी खुराक बना लेता है। गांधीजी कभी किसीसे ऐसा काम नहीं लेते थे, जो स्वयं उस आदमीके लिए सबसे अधिक हितकर न हो। गांधीजी अपने साधनोंका उपयोग इस प्रकार करते थे कि उनके भीतरके उत्तम गुणोंका पूर्ण विकास हो और वे दिनोंदिन अधिक शक्तिशाली और उदात्त बनें।

जो बलिदान करनेको वे स्वयं तैयार नहीं होते थे, वह दूसरोंसे वे कभी नहीं कराते थे। अपनी दुर्बलताओंके बारेमें वे जितने असहिष्णु थे, उतने ही दूसरोंकी दुर्बलताओंके विषयमें सहिष्णु थे। जिस कठोर मार्गसे उन्होंने अपने आप पर नियंत्रण प्राप्त किया था, उसे याद करके वे दूसरे लोगोंकी दुर्बलताओंको सहन करते थे। यह जानते हुए कि मानव-स्वभावको अपने बारेमें कितना पक्षपात हो सकता है, उन्होंने यह सिद्धान्त बना लिया था कि हमें स्वयं अपने छोटे दोषोंको पर्वत जितने बढ़ाकर और दूसरोंके बड़े दोषोंको राई जितने घटाकर देखना चाहिये। इसे वे 'अतिशयोक्तिका धर्म' कहते थे। वे न्याय-परायण रहनेके लिए जान-बूझकर अपने विरोधियों और अपने साथ मतभेद रखनेवालोंके प्रति पक्षपात करनेकी कोशिश करते थे।

विरोधीके साथ इस प्रकार आध्यात्मिक तादात्म्य साध लेनेके कारण उन्हें यह शक्ति प्राप्त हो गई थी कि वे किसीका जी दुखाये बिना कटुसे कटु सत्य भी कह सकते थे और कठोरसे कठोर 'आध्यात्मिक शल्यक्रिया' करके भी विरोधीका सहर्ष पूरा सहयोग प्राप्त कर लेते थे। जब साम्प्रदायिक उपद्रवोंके दिनोंमें जघन्य अपराध करनेवाले बहुतसे लोगोंके साथ उन्हें निबटना पड़ता था, तब यह चीज उनके लिए बड़ी सहायक सिद्ध हुई थी।

गांधीजी अहिंसक पद्धतिसे कार्य करते थे, इस बातका उनके साधनोंके चुनाव पर असर पड़ता था। उनमें बालक और अपढ़ स्त्रियां भी थीं, बूढ़ों और बीमारोंका भी समावेश होता था। उन्हें यह पता लग गया था कि अहिंसा तुच्छ दिखाई देनेवाली वस्तुओंके द्वारा उत्तम रूपमें प्रगट होती है। और वे यह दुहराते कभी नहीं थकते थे कि उनका अपना जीवन ऐसी चीजोंसे बना हुआ है, जो अपने आपमें साधारण और छोटी दिखाई देती हैं। यदि सत्याग्रह छोटी छोटी चीजोंको संगठित करनेकी ओर ध्यान न



दे, तो उसका उपयोग जन-साधारण नहीं कर सकते । उनके तमाम सामूहिक आन्दोलनोंमें स्त्रियां और बच्चे ही उनके हार्द और खमीरका काम करते थे और उन्हींसे आन्दोलनोंको दिनोंदिन बढ़ती हुई, शक्ति मिलती थी। कोई आश्चर्य नहीं यदि उस समयकी अत्यावश्यक समस्याओंमें दिन-रात उलझे रहने पर भी उन्हें स्त्रियों और अच्चोंकी समस्याओं पर विचार करनेका समय मिल जाता था और उनके आश्रयमें जिस कोढ़ी (परचुरे शास्त्री) ने शरण ली थी उसकी अपने हाथसे मालिश करनेका भी समय वे निकाल लेते थे। और जब कुछ आश्रमवासियोंने कुष्ठरोगीको अपने बीच रखने पर आपत्ति उठाई, तो उन्होंने कहा, “आश्रममें कोढ़ीके लिए यदि स्थान नहीं है, तो मेरे लिए भी नहीं हो सकता !”

गांधीजीने दुनिया देखी थी, वे दुनियामें आंखें खोल कर रहते थे और कड़ीसे कड़ी अग्नि-परीक्षाओंमें से गुजरे थे। किसी न किसी तरह उन्हें इसका पता लग गया था कि वे मानव-प्राणियोंके भीतरसे उत्तम गुणोंको बाहर ला सकते हैं और इससे ईश्वर तथा मानव-स्वभावमें उनकी श्रद्धा बनी रही।

अन्य लोगोंने केवल क्रांतिकी बातें ही की थीं; गांधीजीने क्रांति करके दिखा दी। जब उनका जोश ठंडा पड़ गया और बोलते बोलते उनके गले थक गये, तब वे गांधीजीके पास आये और गांधीजीने उन्हें बताया कि काम कैसे किया जाता है । उन लोगोंने गांधीजीके भीतरके विद्रोहीकी तो प्रशंसा की, लेकिन वे गांधीजीकी आत्म-समर्पणकी क्षमता और शून्यवत् बननेके उनके अथक प्रयत्नकी कदर न कर सके—क्योंकि उनकी अपरिपक्व दृष्टि इस चीजको ग्रहण करनेमें असमर्थ थी—यद्यपि इन्हीं दो गुणोंसे गांधीजीकी आक्रमण करनेकी शक्ति पैदा होती थी।

८

गांधीजीके लिए ब्रिटिश कैबिनेट-मिशनके साथ बातचीत करना भी सत्यकी अनन्त शोधका ही एक बड़ा कार्य था। अपनी कल्पनाके सार्वजनिक जीवनको वे मनुष्यके उच्चतम आध्यात्मिक गुणोंकी परीक्षा तथा साधनाका क्षेत्र समझते थे। उनका सत्याग्रह केवल वरदान-मात्र नहीं था, परन्तु कर्मका साधन था। मनुष्यका अपने कर्म पर ही अधिकार है, उसके फल पर नहीं। परन्तु यदि उसके कर्म उसके भीतरके सत्यको ही शुद्ध रूपमें प्रगट करते हैं, तो अन्तमें इहलोक और परलोक दोनोंमें उसका श्रेय ही होता है। गांधीजी दोनों लोकोंमें कोई भेद नहीं करते थे—“सब लोक एक ही हैं।” उनका दावा यह था



कि इहलोक या परलोककी ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसका सत्य और अहिंसाकी दृष्टिसे हल न मिल सके। जब कभी पेचीदा राजनीतिक वार्ताओंके बीच कोई चक्करमें डालनेवाला प्रश्न पैदा हो जाता था और किसीको उसका हल सूझता नहीं था, तब वे सत्यरूपी ईश्वरकी ही आराधना करते थे और वह सदा उनकी सहायता करता था।

आजकलकी कूटनीतिमें खेलके कुछ नियम स्वीकार कर लिये गये हैं। वह सब चतुराईकी लड़ाई होती है। उसके खिलाड़ियोंसे यह आशा रखी जाती है कि वे इस सिद्धान्तको मान चुके हैं: “धोखा देनेमें जितना आनन्द है, उतना ही धोखा खानेमें भी है !” यदि ‘क’ अपने विरोधीको सफलतापूर्वक मात दे देता है या उससे खुद मात खा जाता है, तो यह सब खेलका ही एक भाग होता है। इसलिए कोई शिकायत नहीं होती। इसके सामने गांधीजीने अपनी विशिष्ट कूटनीति, सत्यकी कूटनीतिको खड़ा किया। उसमें अपनी चतुराईका पूरा प्रयोग करनेकी मनाही नहीं थी। वे भी रियायतें देते थे, समझौते करते थे और अनुकूलताओंका खयाल करते थे, परन्तु अपने सिद्धान्तोंको हानि पहुंचाये बिना; वे भी लोगोंसे उनके मुंह पर अप्रियसे अप्रिय सत्य कहते थे, परन्तु इस ढंगसे कि उनका जी न दुखे। उनका उद्देश्य कभी विरोधीको मात करनेका नहीं होता था। उनका सत्याग्रह नैतिक ज्यु-जित्सु (कुश्ती) नहीं होता था, बल्कि इसका उल्टा होता था। वे विरोधीको सत्यकी खोजमें अपना साथी बना लेते थे। उनका लक्ष्य विरोधीकी शक्तिको नष्ट करना नहीं होता था। वे उसकी शक्तिका परिवर्तन करके उसे विकसित करते थे। तर्कमें विरोधीको अपने बौद्धिक प्रहारोंसे हराने या दबा देनेकी कोशिश वे नहीं करते थे, बल्कि यह दिखा कर कि उसकी दृष्टिमें क्या दोष है, वे उसका हृदय जीत लेते थे। ऐसा करनेमें कभी कभी उन्हें अपनी ही भूलका पता चल जाता था। इससे विरोधीका मन विरोध करनेके बजाय ग्रहणशील बननेकी ओर झुकता था। अन्तमें ‘विजेता’ या ‘विजित’ की भावना बाकी ही नहीं रहती थी। दोनों पक्षोंको सत्यका पता लगने और उसकी विजय होनेसे एकसा रोमांच और प्रसन्नता होती थी।

गांधीजी स्वभावसे इतने सच्चे थे कि—जैसा एक बार श्री लॉरेन्स हाउसमैनने कहा था—कुछ लोग उन पर सन्देह करने लगते थे; इतने सरल और निखालस थे कि कुछ लोगोंको आश्चर्यमें डाल देते थे। इस गुणोंके कारण कभी कभी उनके विरोधियों और मित्रों तकके लिए बहुत परेशान करनेवाली स्थिति खड़ी हो जाती थी। उदाहरणके लिए, वे हर आदमीकी बातका विश्वास करते थे। इससे उनके



सामने झूठ बोलना बहुत कठिन हो जाता था। लेकिन अगर कोई उनके सामने ऐसी बात चलाना चाहता था जो सच्चे दिलसे न कही गई हो, तो उस चालको उनकी पैनी दृष्टि फौरन् पकड़ लेती थी। इससे भी बड़ी बात यह थी कि वे अपनी शंका बहुत ही विनोदपूर्ण ढंगसे परन्तु स्पष्ट शब्दोंमें, और कभी कभी तो सामनेवालेको बिलकुल धराशायी कर दे इतने अधिक स्पष्ट शब्दोंमें, प्रगट कर देते थे। विरोधी यह समझ कर उस शंकाका विरोध करता था कि कूटनीतिक भाषाके ऐसे आडम्बरको मूर्खके सिवा कोई गम्भीर नहीं मानेगा। गांधीजी इस विरोधको तुरन्त अक्षरशः मान लेते थे और छल करनेवाला आदमी उस समय तो यह सोचकर मन ही मन खुश हो जाता था कि इतनी आसानीसे बच गये। परन्तु हलके मनसे उसने जो बात स्वीकार की हो उसके तर्कशुद्ध फलितार्थ जब गांधीजी ऐसी उत्कट नैतिक भावनासे उसके सामने रखते—जो उसकी आत्माकी गहराईमें छिपे असत्यको जलाकर भस्मीभूत कर डाले—तब उसे तुरन्त समझमें आ जाता कि उसने कठिनाईका पूरा विचार किये बिना बात मुंहसे निकाल दी है। इसलिए राजनीतिज्ञ गांधीजीको ऐसा सन्त बताते थे, जो राजनीतिमें अपना अध्यात्मवाद घुसेड़ कर उसे बिगाड़ देता है; और धार्मिक लोग उन्हें 'छिपा राजनीतिज्ञ' कहते थे। किन्तु उनमें ये दोनों ही बातें नहीं थीं। लेकिन चूंकि सत्य सबसे ऊंची बुद्धिमत्ता है, इसलिए उनके कार्योंमें आम तौर पर ऊंचीसे ऊंची कक्षाकी राजनीतिज्ञता रहती थी। और जब वे यह कहते थे कि वे अपने देश या धर्मके उद्धारके लिए भी सत्य या अहिंसाकी कुर्बानी नहीं करेंगे, तो उसका अर्थ यही होता था कि "इन दोनोंमें से एकका भी उद्धार इस तरह नहीं हो सकता।" [यंग इंडिया, २० जनवरी १९२७, पृ. २१] उनके नैतिक निर्णय बिना सोचे-विचारे नहीं किये जाते थे। अपनी परम श्रद्धाके बावजूद वे अपने तमाम कार्योंको व्यावहारिक कसौटी पर कसनेका आग्रह करते थे। इतनी ही बात थी कि जब और लोग बुद्धि जहां हार जाती वहीं रुक जाते थे, तब गांधीजी अपनी श्रद्धाके बल पर वहांसे आगे बढ़ते थे।

गांधीजीका जीवन अविभाज्य और सम्पूर्ण था। उनकी सारी प्रवृत्तियां एक-दूसरेमें गुंथी हुई थीं। उन सबकी जड़ उनकी सत्यकी लगनमें होती थी। ब्रिटिश राज्यके विरुद्ध उनके रोषपूर्ण विद्रोहमें भी उनकी गहरी नैतिक भावना ही थी। उन्हें यह देख कर गहरा आघात रूगता था कि भारतके ४. करोड़ मनुष्य ब्रिटिश शासनके बुरे असरसे इतने ज्यादा पतित हो गये हैं कि जो वे अनुभव करते हैं उसे कह भी नहीं सकते और उनका कायरतापूर्ण जीवन एक जीता-जागता असत्य तथा ईश्वरके इनकार जैसा



बन गया है। गांधीजीकी बहुत बड़ी कार्यशील शक्तिका स्रोत थी उनकी उत्कट सत्यनिष्ठा तथा वह महत्त्व जो वे 'नैतिक स्वतंत्रता' को देते थे। उनकी सत्यकी सतत साधनासे उन्हें विचारोंमें इतनी स्पष्टता, ब्यौरे पर इतना प्रभुत्व और ऐसी 'अचूक सूझ-बूझ' प्राप्त हो गई थी कि उसे देख कर पुराने विचारके घुटे हुए कूटनीतिज्ञों और राजनीतिज्ञोंके मनमें भी ईर्ष्या और प्रशंसाके भाव पैदा होते थे। उस सत्यकी आराधनासे उनमें लगभग छठी इंद्रियके समान विलक्षण अंतर्दृष्टि आ गई थी। उससे वे साधारण लोगोंकी दृष्टिमें न आनेवाले असत्य और भ्रष्टाचारको देख लेते थे।

सत्य उनके लिए कोई निर्विवाद सिद्धान्त या प्राणहीन नियम नहीं था, बल्कि एक बहुविध, लचीला और निरन्तर विकासशील सजीव तत्त्वबोध था। इससे उनका व्यक्तित्व सम्पन्न, बहुरूपी और परस्पर विरोधी गुणोंसे पूर्ण हो गया था, जिससे जड़ दिमाग रखनेवाले और ऊपर ऊपरसे देखनेवाले लोग कभी चक्करमें पड़ जाते थे और कभी चिढ़ भी जाते थे। उदाहरणके लिए, वे सादगीको मानते थे, परन्तु फूहड़पनको नहीं मानते थे। उनकी सादगी इतनी सीधी-सादी बात नहीं थी जितनी वे बताते थे। वह एक "अत्यन्त अटपटी कला" थी। सम्पूर्ण कलात्मकतासे उसमें अनोखा आकर्षण पैदा हो गया था। ये 'नंगे फकीर' वाइसरॉयों, राजाओं और राज्याध्यक्षोंके साथ स्वाभाविकता अनुभव करते थे। वे भौतिकवादकी निन्दा करते थे, परन्तु करोड़ों लोगोंको प्रारम्भिक भौतिक सुविधाएं प्रदान करानेके लिए सबसे अधिक परिश्रम करते थे और यहां तक कहते थे कि भूखेके लिए रोटी ही ईश्वर है। वे सब लोगोंसे कहते थे कि सत्य-पालनमें जो भी कष्ट और दुःख भुगतने पड़ें, उनके लिए हम तैयार रहें; परन्तु कष्टको कष्टके लिए ही सहन करनेको कभी उन्होंने धर्म नहीं बनाया था। वे खतरेका सामना करते हुए जीनेमें तो विश्वास करते थे, परन्तु "खतरेसे भरा जीवन जीने" में नहीं। वे कायाको कष्ट देनेमें विश्वास करते थे, परन्तु उनकी मानसिक रचनामें शहीद बननेकी कोई ग्रन्थि नहीं थी। सच तो यह है कि वे शहीद बननेकी इच्छाको अनैतिक और पाप समझते थे, क्योंकि यह इच्छा किसी न किसीका अधःपतन होनेसे ही पूरी हो सकती है।

गांधीजी अपने समयके सबसे बड़े लोकतंत्रवादी थे, परन्तु दूसरी गोलमेज परिषद् में खुदको कांग्रेसका एकमात्र प्रतिनिधि बनानेकी या सविनय अवज्ञा- आन्दोलनमें कांग्रेसका सर्वाधिकारी बनानेकी सूचना करनेमें उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ।



और उनके इस सर्वाधिकारके पीछे प्रेम और समझाने-बुझानेकी शक्तिके सिवा अन्य कोई बल नहीं था। और सर्वाधिकारी होनेके लायक सबसे योग्य व्यक्ति वे ही थे, क्योंकि उन्हें किसी पर भी अपना हुक्म चलानेसे घृणा थी।

उन्होंने अपने आपको पद-दलित और अत्याचार-पीड़ित मानव-समाजका संरक्षक बना लिया था, इसलिए दुर्बल दया-भावनाके प्रति उन्होंने अपना हृदय फौलाद जैसा बना लिया था। वे दयालु बननेके लिए निर्दय हो सकते थे, क्योंकि वे जानते थे कि इस कठोर और क्रूर संसारमें दुर्बलताका कोई स्थान नहीं है। और इसलिए जहां अहिंसा उनके जीवनके लिए प्राणोंके समान थी वहां वे शान्त चित्तसे यह बात भी कह सकते थे कि 'खूनकी नदियां' बहाकर भारत आजाद बने—खून विरोधीका नहीं, परन्तु अपनी ही निर्दोष संतानोंका।

९

ब्रिटिश सरकारके कैबिनेट-मिशनके साथ चल रही वार्ताओंमें जब नाजुक स्थिति खड़ी हुई तब दो बार कार्य-पद्धतिके दो तत्त्वज्ञानोंमें संघर्ष जमा : (१) 'साधन और साध्य' का तत्त्वज्ञान, जिस पर गांधीजीका जीवन रचा गया था; (२) ब्रिटिश सरकारके कैबिनेट-मिशन द्वारा प्रस्तुत अनुभवजन्य ब्रिटिश तत्त्वज्ञान ।

गांधीजी मानते थे कि यदि हम साधनोंको विशुद्ध रख सकें, तो साध्य अपने-आप विशुद्ध हो जायगा। कैबिनेट-मिशन इस सिद्धान्त पर काम करता था कि कभी कभी सिद्धान्तोंके साथ भी अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए समझौते करने पड़ते हैं और दो बुराइयोंमें से 'छोटी बुराई' को पसन्द करना पड़ता है। जब कैबिनेट-मिशन और समस्त भारतीय दल दुविधामें पड़ गये, तो गांधीजीने लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको 'दि अननोन' (अज्ञात) शीर्षकसे 'हरिजन' के लिए लिखे अपने लेखकी एक पेशगी नकल भेजी:

कुछ विद्वान ईश्वरका वर्णन अज्ञेय बताकर करते हैं, कुछ उसे अज्ञात कहते हैं और कुछ 'नेति नेति' कहते हैं। . . .



जब मैंने कल प्रार्थना-सभामें श्रोताओंके सामने कुछ शब्द कहे थे तब मैं इससे अधिक कुछ नहीं बोल सका कि सब लोगोंको उस महान अज्ञात शक्तिसे मिलनेवाले बल और मार्गदर्शनके लिए हृदयसे प्रार्थना करनी चाहिये और उस पर भरोसा रखना चाहिये। जो महान भारतीय नाटक आप सबके सामने हो रहा है, उसमें खड़ी होनेवाली कठिनाइयों पर सब दलोंको विजय प्राप्त करनी चाहिये। सबको अज्ञात शक्ति पर निर्भर रहना चाहिये, क्योंकि वह अकसर मनुष्यकी बुद्धिको चकित कर देती है और उसकी बनाई हुई झूठी योजनाओंको पल भरमें उलट देती है। ब्रिटिश दलका दावा है कि वह अज्ञात ईश्वरमें विश्वास करता है। . . .

मेरा आशावाद तो अदम्य है, परन्तु कमसे कम राजनीतिक भाषामें मैं निश्चित रूपसे ऐसा नहीं कह सकता कि मैं यह लिख रहा हूं तब सब कुछ सुरक्षित है। इसलिए मैं इतना ही कह सकता हूं कि यदि सब दलोंके उत्तम प्रयत्न होते हुए भी विपरीत या प्रतिकूल घटना घटे, तो मैं सबसे कहूंगा कि वे मेरे इस कथनमें शरीक हो जायें कि यह अच्छा ही हुआ और अरक्षामें ही सुरक्षा है। [हरिजन, १६ जून १९४६]

इसका उत्तर लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने यह दिया: “मेरी भी यह प्रबल भावना है कि जहां मुझे अपनेसे बाहरकी शक्तियों पर अवलम्बित रहना पड़े वहां मुझे दैवकी—जिसे आप अज्ञात शक्ति कहते हैं—इच्छाको स्वीकार करके सन्तोष करना चाहिये; और कभी कभी जोर्सनके शब्दोंमें परिणाम हमारी शक्तिके बाहर हो सकता है। लेकिन जहां मेरे अपने निर्णयकी बात आती है वहां उन सबके प्रति मेरी गंभीर जिम्मेदारी खड़ी होती है, जिन पर उसका असर होनेवाला है। मुझे अपना निर्णय सही ही करना चाहिये।” [लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सका पत्र गांधीजीको, १० जून १९४६]

लेकिन लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने यह सिद्ध करनेकी कोशिश की कि वे जो रवैया अपना रहे हैं उसमें श्रद्धाका निषेध नहीं है, वैसे ही जैसे गांधीजीकी श्रद्धामें बुद्धिके उपयोगका निषेध नहीं है : “क्या मैंने कभी आपको वह कहानी बताई है, जिसमें अन्यायके पीछे न्यायके रहनेमें गहरा मानव-विश्वास प्रगट किया गया है? किसी किसानको किसी बातकी चिन्ता थी। उसे पादरीने कहा, ‘भाई, भगवान पर भरोसा रखो।’ किसानने कहा, ‘नहीं, मुझे भगवान पर भरोसा नहीं है। उसने दो वर्ष हुए मेरा सूअर खो जाने



दिया था। पिछले साल उसने मेरा घर जल जाने दिया था। पिछली गर्मियोंमें उसने मेरी पत्नीको छीन लिया था। नहीं, मैं भगवान पर भरोसा नहीं करता। परन्तु मैं आपको बता दूँ कि मैं किस पर भरोसा करता हूँ। ईश्वरके ऊपर भी कोई शक्ति है—जो उसके कान खींच लेगी, अगर वह बहुत ज्यादाती करेगा ! ”

परन्तु इन दोनों वृत्तियोंमें जो मौलिक भेद है, उसे सब समझ सकते हैं। यदि श्रद्धा “अपेक्षित वस्तुओंका सार है, अदृश्य चीजोंका प्रमाण है,” तो “अन्यायके पीछे रहनेवाले न्याय” में विश्वास होनेके कारण अच्छी वस्तुकी प्राप्तिके प्रयत्नमें संदिग्ध वस्तुके साथ समझौता नहीं होना चाहिये। कारण, मर्त्य मनुष्योंको अपने कर्मों पर ही अधिकार दिया गया है, कर्मोंके फल पर नहीं । इसलिए श्रद्धाको वहां आना पड़ता है जहां बुद्धि काम नहीं देती, ताकि उचित साधनों पर हम सदा डटे रहें और अरक्षिततामें सुरक्षितता समझें—यदि कोई ‘असुरक्षित’ घटना सारी मानव दूरदर्शिता और सावधानीके बावजूद हो जाय । सत्य वस्तु ‘असुरक्षित’ मालूम होती है, इसलिए उसके बजाय कार्यसाधक वस्तुको उसका स्थान नहीं दिया जा सकता । जैसा प्रोफेसर जैक्सने कहा है, जहां निश्चितता समाप्त होती है वहीं नैतिकता आरम्भ होती है। दुर्भाग्यसे अनुभवसिद्ध कार्यसाधकताकी वृत्ति विजयी सिद्ध हुई। उसका परिणाम हम जानते हैं। यदि भारत और ब्रिटेनके प्रश्नके निबटारेके लिए गांधीजीकी पद्धति आजमायी जाती, तो भारतीय इतिहासका क्रम क्या होता, यह संसारकी संभावनाओंमें हमेशा अनुमानकी वस्तु ही रहेगी ।



आठवां अध्याय

जटिल और उलझी हुई कहानी

१

गांधीजी ब्रिटिश सत्ताके साथ अहिंसक असहयोग और सविनय अवज्ञाके द्वारा लड़े थे। जब दमन चरम सीमा पर था तब उन्होंने रचनात्मक अहिंसाके द्वारा संग्रामको निराशा और पराजयसे बाहर निकाल कर उसे टिकाये रखा। अब उसे संधिवातके स्तर पर जारी रखना था। साधन वे ही थे—सत्य और अहिंसा; और लक्ष्य भी वही था—विरोधीका हृदय-परिवर्तन, जिसके लिए स्वयं कष्ट उठा कर रास्ता तैयार किया गया था। पहले मुख्यतः हृदयसे अपील की गई थी, ताकि सहानुभूति जाग्रत हो—जो समझदारी पैदा करनेकी दिशामें पहला कदम था। अब अपील दिमागसे करनी थी। यम-नियम भी इसके लिए वही थे जो सत्याग्रहकी लड़ाईके समय जरूरी थे—अर्थात् परिस्थितिके अनुरूप बुद्धिमत्ता, लचीलापन, आत्म-संयम, धैर्य, सहिष्णुता और कर्मकौशल; और सबसे अधिक सर्वव्यापक प्रेम।

कैबिनेट-मिशनके तीनों सदस्य—लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और श्री ए. वी. एलेक्जेंडर—२३ मार्च, १९४६ को कराचीके हवाई अड्डे पर पहुंचे और दूसरे दिन दिल्ली आये। १ से १७ अप्रैल तक वे भारतीय प्रतिनिधियोंसे मुलाकात करनेमें लगे रहे। वे ४७२ नेताओंसे १८२ बैठकोंमें मिले और उन्होंने यह प्रयत्न किया कि विभिन्न दलोंमें “अधिकसे अधिक सहमति हो जाय।”

आरम्भ उन्होंने अच्छा किया। नौकरशाहीकी प्रतिष्ठा और अंग्रेजोंके दूर दूर रहनेके अहंकारको छोड़ कर उन्होंने भारतीय नेताओंके साथ व्यक्तिगत स्तर पर सम्पर्क स्थापित किया। पहले सप्ताहके बाद ऐसी आशा अधिकाधिक होने लगी कि जल्दी ही केन्द्रमें अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जायगी। परन्तु यह आशा असामयिक सिद्ध हुई। उसका पूरा होना ब्रिटिश सरकारकी इस तैयारी पर निर्भर था कि जिस किसी दल पर उसका विश्वास हो और जो दल शासनका भार अपने कंधों पर लेनेको तैयार हो उसे सत्ता सौंप दी जाय। वह इस बातको टालना चाहती थी इस कारण ही १९४५ की शिमला-वार्ता असफल रही थी। ब्रिटिश लोकसभामें श्री एटलीकी घोषणासे लोगोंको यह विश्वास हुआ था कि पुराना इतिहास दोहराया नहीं जायगा।



अप्रैलके दूसरे सप्ताहमें कैबिनेट-मिशनके अधिकारियोंमें से एक श्री वुडरो व्याट गांधीजीसे मिले। उन्होंने गांधीजीसे पूछा, “आपको ऐसा लगता है कि हम आपकी पीठ परसे उतर रहे हैं?”

“मुझे लगता है कि आप हमारी पीठ परसे उतरेंगे। परन्तु आपमें इसके लिए आवश्यक बल होना चाहिये।”

श्री व्याटने मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी मांगसे पैदा होनेवाली कठिनाईका जिक्र किया। “मान लीजिये कि जिसे हम न्यायपूर्ण हल समझें उसे भारत पर थोप कर हम चले जायं तो?”

“तो सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जायगा।”

“तो क्या उसे भारतके निर्णय पर छोड़ दिया जाय?”

“हां। कांग्रेस और लीग पर छोड़ दीजिये। अपनी प्रतिभा और अंग्रेजोंके सहयोगके बल पर जिन्नाने एक बलशाली संगठन बना लिया है, जिसमें सब तो नहीं परन्तु देशके अधिकांश मुसलमान शामिल हैं। मेरी सलाह है कि आप उन्हें आजमाइये और यदि आपको लगे कि वे सौदा नहीं निबटा सकते, तो कांग्रेसको विश्वासमें लीजिये। . . . परन्तु हर हालतमें अंग्रेजोंके आधिपत्यका अन्त हो जाना चाहिये।”

“और अंग्रेजोंके जानेके बाद क्या होगा?”

“कदाचित् पंच-फैसला होगा। . . . परन्तु रक्तस्नान भी हो सकता है। यदि भारतको मैं अपने रास्ते पर चला सका, तब तो अहिंसासे समस्या दो दिनमें हल हो जायगी; नहीं चला सका तो अग्नि-परीक्षा लम्बे समय तक भी चल सकती है। फिर भी अंग्रेजी राज्यमें आज भारतकी जो हालत है उससे बुरी हालत वह नहीं होगी। . . .”

“मान लीजिये कि हम अन्तरिम सरकारकी स्थापना करके चले जायें ? . . . बादमें यदि कांग्रेस पाकिस्तानको स्वीकार कर ले, तो यह उसकी जिम्मेदारी होगी।”



“यह शुभारम्भ होगा। इस प्रकार यदि सारा भारत लीगके मातहत हो जाय, तो भी कोई परवाहकी बात नहीं। वह जिन्नाकी कल्पनाका पाकिस्तान नहीं होगा। तब भारतके समक्ष कोई ऐसी वस्तु होगी, जिसके लिए जीना और प्राण निछावर करना सार्थक होगा।”

“वर्तमान सरकारके स्थान पर हम किसे रखें?”

“आप विधान-सभाके चुने हुए सदस्योंको अपने प्रतिनिधि नामजद करनेके लिए कह सकते हैं। मान लीजिये कि कांग्रेसका भारी बहुमत होता है, तो वह अन्तरिम सरकारके लिए नाम चुन लेगी। यदि कांग्रेस लीगके साथ समझौता कर सके, तो कोई कठिनाई नहीं होगी। परन्तु यदि जिन्ना अन्तमें सरकारमें शरीक होना पसन्द न करें, तो कांग्रेसको और आपको डरना नहीं चाहिये। अथवा जैसा मैं कह चुका हूं, आप जिन्नाको विधान-सभाके वर्तमान सदस्योंमें से नामजद करने दीजिये।”

अन्तमें श्री व्याटने पूछा, “मान लीजिये कि मुस्लिम लीग जन-धनका विनाश आरम्भ कर देती है, तो क्या आप उसे जेल भेजेंगे?”

गांधीजीने उत्तर दिया, “मैं उसे जेलमें नहीं भेजूंगा। परन्तु हो सकता है कि कांग्रेस लड़नेका निश्चयकरे। तब वह साफ और शुद्ध लड़ाई होगी, न कि आजकी तरह मार कर भागनेकी कायरतापूर्ण लड़ाई होगी, और न एक अंग्रेजके बदले सौ आदमियोंके प्राण लेनेकी लड़ाई होगी।”

किन्तु कैबिनेट-मिशन इस निर्णय पर पहुंचा था कि कांग्रेस और लीगके परस्पर अनुकूल बननेके प्रयत्नके परिणाम-स्वरूप ऐसी स्थिति आ गई है कि वास्तवमें कांग्रेस जो रियायतें देनेको तैयार है या तैयार की जा सकती है, वे उस चीजसे बहुत भिन्न नहीं हैं जो मुस्लिम लीग चाहती है या काफी दबाव डालने पर मंजूर कर लेगी।

सर गोपालस्वामी आयंगरके साथ हुई बातचीतमें सर स्टैफर्ड क्रिप्सने कहा कि, “जहां समझौता करना ही पड़ता है, वहां मजबूतसे मजबूत पक्षवाले दलके लिए भी यह आवश्यक हो सकता है कि वह जिस चीजका उचित रूपमें अधिकारी समझा जाय उससे कम लेनेको तैयार हो, **ताकि उसके विरुद्ध निर्णय होनेकी संभावना न रह जाय।**” [सर स्टैफर्ड क्रिप्सके साथ गोपालस्वामी आयंगरकी भेंटके



आयंगर द्वारा लिखे नोट्स (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) क्या भारतीय इतिहासमें पहले भी ऐसा नहीं हो चुका है कि देशने अन्तमें उन निर्णयोंको मान लिया, जिनसे उनकी घोषणाके समय किसी दलको प्रसन्नता नहीं हुई—उदाहरणार्थ, साम्प्रदायिक निर्णय ?

सर गोपालस्वामीने कहा कि उस समय विरोध न करनेका कारण यह था कि निर्णय पर अमल करानेके लिए अंग्रेज मौजूद थे। बदली हुई परिस्थितियोंमें उनके किसी निर्णयके सफलतापूर्वक कार्यान्वित किये जानेकी एकमात्र सम्भावना यह है कि वह गुणवत्ताकी दृष्टिसे उचित हो। यदि ऐसी ही बात हो तो क्या इससे जिन्नाका पाकिस्तान निरर्थक नहीं हो जाता ?

सर स्टैफर्ड सहमत हुए कि जिन्नाका पाकिस्तान एक 'असम्भव विचार' है। लीगने भी इस बातको अच्छी तरह समझ लिया है। "जब मैं देखता हूं कि कोई आदमी अपने विरोधियोंकी निन्दा अधिक जोरशोरसे और अधिक हिंसक रूपमें कर रहा है, तब मैं सोचता हूं . . . कि वह मानने लगा है कि जिस उग्र पक्षकी वह हिमायत करता है उसके लिए उसे कोई आशा नहीं रह गई है।" उन्होंने यह भी कहा: "मैं आपसे यह कह दूं कि मुस्लिम कन्वेंशनमें पिछले दो दिनोंमें जो हिंसापूर्ण भाषण दिये गये हैं, उनके बावजूद मुस्लिम समाजके प्रमुख प्रतिनिधि, अभी हम बात कर रहे हैं तब भी, जोरोंसे यह सोच रहे हैं कि वे अपनी प्रकाशित मांगोंको उत्तम ढंगसे कैसे नरम कर सकते हैं।"

सर गोपालस्वामीने सर स्टैफर्डसे पूछा: तो क्या उस सूरतमें जिन्नाको उनके अत्यन्त उच्च स्थानसे नीचे उतार लानेका अधिक परिणामकारी मार्ग यह नहीं होगा कि कैबिनेट-मिशन जल्दीसे जल्दी उन्हें मोटे तौर पर यह इशारा कर दे कि इस बातकी संभावना नहीं है कि कैबिनेट-मिशन अथवा सम्राट्की सरकार पाकिस्तानकी मांग स्वीकार कर लेगी ?

सर स्टैफर्डने स्वीकार किया कि यह ज्यादा परिणामकारी होगा। परन्तु हमारी रायमें अभी ऐसा समय नहीं आया है कि "अनौपचारिक रूपमें भी यह प्रगट कर दिया जाय कि हमारा अन्तिम निर्णय क्या होगा—यदि हम ऐसा कोई निर्णय कर चुके हों तो भी !"

इससे पर्याप्त संकेत मिल गया कि कैबिनेट-मिशन कौनसा मार्ग अपनानेका इरादा रखता था।



*

१७ अप्रैलको कैबिनेट-मिशनने थोड़े आरामके लिए अपना कार्य स्थगित कर दिया और नेताओंके साथ हुई मुलाकातों और अनौपचारिक वार्ताओंके परिणामोंका सिंहावलोकन करनेके लिए वह ७ दिनकी छुट्टी पर काश्मीर चला गया। २४ अप्रैलको वह दिल्ली लौटा और २७ अप्रैलको लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने कांग्रेस और मुस्लिम लीगके अध्यक्षोंके नाम लिखे एक पत्रमें सुझाया कि हमें मुस्लिम लीग और कांग्रेसके बीच समझौता करानेका एक और प्रयत्न करना चाहिये।

समझौतेके आधारके रूपमें उन्होंने एक योजना सुझाई। उसके “मूलभूत सिद्धान्त” ये थे कि एक संघ-सरकार (यूनियन गवर्नमेन्ट) रची जाय, जो विदेशी मामलों, प्रतिरक्षा और यातायात विभागोंका संचालन करे। प्रान्तोंके दो समूह होंगे। एक मुख्यतः हिन्दू आबादीवाले प्रान्तोंका और दूसरा प्रधानतः मुस्लिम आबादीवाले प्रान्तोंका। ये समूह (ग्रुप्स) ऐसे अन्य सब विषयोंका संचालन करेंगे, जिनका प्रत्येक समूहके प्रान्त साथ मिल कर संचालन करना चाहेंगे। बाकी सब विषयोंका संचालन प्रान्तीय सरकारें करेंगी और शेष समूचे सार्वभौम अधिकार (सॉवरेन राइट्स) सब उनके पास होंगे। लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सके पत्रमें यह भी कहा गया था कि यदि मुस्लिम लीग और कांग्रेस इस आधार पर बातचीत करनेको तैयार हों, तो कैबिनेट-मिशनके साथ उनके सम्मेलनकी भी व्यवस्था (कदाचित् शिमलामें) की जायगी। इसके लिए कांग्रेस अध्यक्ष कृपा करके अपनी तरफसे वार्तालाप करनेके लिए चार व्यक्ति नियुक्त करके उनके नाम भेज दें।

कांग्रेस इस बातके विरुद्ध थी कि साम्प्रदायिक ढंग पर प्रान्तोंके ऐसे समूह बनाये जायं, जिनमें से प्रत्येक समूहके लिए अलग विधान-सभा और प्रबंध-तंत्र हो। उसको इस बात पर भी आपत्ति थी कि प्रारम्भिक स्थितिमें किसी प्रान्तको एक विशेष समूहमें शरीक होनेके लिए बाध्य किया जाय। कांग्रेस-अध्यक्षने लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सके पत्रके उत्तरमें यह लिखा, “किसी भी हालतमें किसी प्रान्तको उसकी अपनी इच्छाके विरुद्ध काम करनेके लिए विवश करना बिल्कुल गलत होगा।” [मौलाना आजादका पत्र लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको, २८ अप्रैल १९४६] उदाहरणके लिए, सीमाप्रान्तको, जो स्पष्ट रूपमें कांग्रेसी प्रान्त है, कांग्रेसके विरोधी समूहमें शामिल होनेके लिए क्यों बाध्य किया जाय ? यदि प्रान्त चाहें तो



समूहकी रचनाके विचारका कांग्रेस त्याग नहीं करती। परन्तु उसे ऐसा लगता है कि यह एक ऐसा मामला है, “जिसे निर्णयके लिए संविधान-सभा पर छोड़ना ठीक होगा।”

कांग्रेस-अध्यक्षने यह भी लिखा: “आपने पत्रमें कुछ 'मूलभूत सिद्धान्तों' का उल्लेख किया है। परन्तु हमारे सामने जो आधारभूत प्रश्न है उसका आपने कोई उल्लेख नहीं किया है। वह प्रश्न है भारतीय स्वाधीनता और उसके परिणाम-स्वरूप भारतसे ब्रिटिश सेनाका हटना। यही एकमात्र आधार है जिस पर हम भारतके भविष्यकी या किसी अंतरिम सरकारकी चर्चा कर सकते हैं। हम किसी भी दलके साथ भारतके भविष्यके बारेमें वार्ताएं करनेको तैयार हैं, परन्तु हमें अपना यह दृढ़ विश्वास व्यक्त करना चाहिये कि जब तक कोई बाहरी शासक सत्ता भारतमें मौजूद रहेगी तब तक किसी भी वार्तामें वास्तविकता नहीं होगी।”

कैबिनेट-मिशनने यह समझाया कि प्रस्तावित सम्मेलनके लिए निमंत्रण स्वीकार करनेका अर्थ यह नहीं होगा कि जो शर्तें सुझाई गई हैं उन्हें पहले ही स्वीकार कर लिया गया है या उनका समर्थन किया गया है। इस पर कांग्रेस-अध्यक्षने सम्मेलनमें उपस्थित होनेका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीगने भी सम्मेलनमें भाग लेना स्वीकार किया, परन्तु किसी प्रकारसे 'वचन-बद्ध' हुए बिना और पाकिस्तान पर १९४० के लाहौर प्रस्तावमें जो रुख अपनाया गया था तथा ९ अप्रैल, १९४६ को मुस्लिम लीगके विधान-सभाके सदस्योंके कन्वेन्शनमें जिसका समर्थन किया गया था, उसे 'कोई हानि पहुंचाये' बिना।

२८ अप्रैलके तीसरे पहर जब कांग्रेसकी कार्यसमिति कैबिनेट-मिशनके प्रस्तावकी जांच करनेमें लगी हुई थी तभी गांधीजीको कैबिनेट-मिशनका सन्देश मिला कि लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स और सर स्टैफर्ड क्रिप्स उनसे या तो भंगीबस्तीमें या वाइसरॉय-भवनके बागमें तुरन्त मिलना चाहते हैं। दूसरा स्थान उन्हें अधिक पसन्द था, क्योंकि वे चाहते थे कि यह मुलाकात खानगीमें हो; भंगीबस्तीमें उनके आनेसे मुलाकातकी प्रसिद्धि होनेकी आशंका थी। संध्याके समय गांधीजी उनसे मिलने गये। जब वे वाइसरॉयके बागमें गोल तालाबके पास बैठ कर बातें कर रहे थे, तब गांधीजीको पता चला कि कांग्रेसके भीतर ही कुछ गड़बड़ है। ऐसा मालूम होता है कि कैबिनेट-मिशनको गांधीजीके एक कांग्रेसी साथीका पत्र मिला



था—जिसकी जानकारी न तो गांधीजीको थी और न कार्यसमितिको थी। इसमें महत्त्वकी बात यह नहीं थी कि पत्रमें लिखा क्या था, बल्कि यह थी कि वह किन परिस्थितियोंमें लिखा गया था। गांधीजीको पत्रके बारेमें जानकर बड़ा गहरा आघात लगा। लौटने पर उन्होंने इसका उल्लेख दो मित्रोंके समक्ष किया। उनमें से एक कार्यसमितिके सदस्य थे। उन्हें विश्वास नहीं हुआ। उन्हें लगा कि गांधीजीको जो कुछ कहा गया है उसे या तो उन्होंने गलत सुना या गलत समझा है। परन्तु गांधीजीने दृढ़तापूर्वक कहा : “मैं न तो बहरा हूं और न इतना मूर्ख हूं कि इतनी सीधी-सी बातको सुन न सकूं और सही सही बता न सकूं।” दूसरे दिन सर स्टैफर्ड क्रिप्स पत्रके साथ गांधीजीसे मिले। सर स्टैफर्डने कहा, “जब हम कल शामको बातें कर रहे थे, तब हमें ऐसा मालूम हुआ कि आपको इस पत्रकी जानकारी नहीं थी। इसलिए हमने सोचा कि आपके साथ इस मामलेकी सफाई कर लेना बेहतर होगा।” सर स्टैफर्ड क्रिप्स जो पत्र लाये थे वह गांधीजीने अपने शंकाशील साथियोंको दिखाया, तो उन्हें भी आश्चर्य हुआ।

कैबिनेट-मिशन चाहता था कि गांधीजी शिमलामें मौजूद रहें, ताकि सम्मेलनके दिनोंमें उनसे सलाह-मशविरा किया जा सके। गांधीजी सहमत हो गए, परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि वे ब्रिटिश प्रजा और कैबिनेट-मिशनके मित्र और हितैषीके नाते ही सलाह दे सकेंगे। कांग्रेसका दृष्टिकोण उसके अध्यक्ष मौलाना आजाद साहब या पंडित नेहरू ही प्रस्तुत कर सकते हैं। गांधीजीने उन्हें कहा कि यदि मेरी सलाह पंडित नेहरूकी सलाहके विपरीत हो, तो आपको मेरी बात न मान कर पंडित नेहरूकी बात माननी चाहिये। परन्तु मुझे अपने भीतर अशान्ति मालूम हो रही है। मुझे यह पसन्द नहीं कि सत्ता हस्तांतरित करनेके पहले संविधान बनानेके ब्योरेको महत्त्व दिया जाय। उन्होंने सर स्टैफर्ड क्रिप्सको लिखा: “आप नहीं जानते कि मुझे कितनी बेचैनी मालूम हो रही है। कोई न कोई अनुचित वस्तु हो रही है।” [गांधीजीका पत्र सर स्टैफर्ड क्रिप्सको, २९ अप्रैल १९४६]

गांधीजी सदा पिण्डमें ब्रह्माण्डका दर्शन करते थे। शिमला पहुंचकर वे एगाथा हैरिसनसे कहने लगे, “संकटके भीतर संकट है। भीतर भी संकट और बाहर भी संकट है।” उनके पास ऐसी स्थितिके लिए एक ही इलाज था—अपने आपको सर्वथा ईश्वर पर छोड़ देना। उन्होंने इसका प्रयोग अपने मामलेमें तो शुरू कर दिया। उस दिन सायंकालके प्रार्थना-प्रवचनका विषय उन्होंने अपने प्रिय ईशोपनिषद्के पहले मंत्रको चुना: “सब कुछ भगवानको समर्पण कर दो और फिर जो नितान्त आवश्यक हो उतनेका



ही, उससे जरा भी अधिक नहीं— उसकी सेवाके लिए उपयोग करो ।” इसे समझाते हुए उन्होंने कहा : “पहले तो सब कुछ उसे समर्पण कर देना चाहिये और फिर उसकी कृपासे जो भी सामग्री मिल जाय उससे उसका काम करना चाहिये।”

इसे अपनी ही दुविधाके संदर्भमें रख कर उन्होंने अपने चिन्तनको शब्दोंमें व्यक्त किया: “जिसने सब कुछ ईश्वरको अर्पण कर दिया है, उसके लिए सब एकसा ही होना चाहिये। मैं कांग्रेसके लिए, कैबिनेट-मिशनके लिए और दूसरोंके लिए बहुत घटिया मार्गदर्शक सिद्ध हूंगा, यदि मैं आसक्तिकी भावनाको अपने पर हावी होने दूं। . . . मेरा मार्गदर्शन विशुद्ध होना चाहिये। यदि आप अपने परिवारसे घिरे हुए हैं, तो वे आपका ध्यान, चाहे कितना ही कम या सूक्ष्म क्यों न हो, बंटा लेंगे। इस संकटमें मैं अपनी सम्पूर्ण आत्मा ईश्वरको सौंप देना चाहता हूं। वर्तमान संदर्भमें इसका अर्थ यह है कि अपनी सचाईकी परीक्षाके तौर पर मुझे अपने-आपको तालीम पाये हुए सहायकोंकी सेवासे वंचित करके भगवान जो भी सहायता भेज दे उसीसे काम चला लेना चाहिये । यदि उनकी अनुपस्थितिमें कोई मुझे मदद देना चाहता है, तो इससे मेरी परीक्षा होगी । कारण, यदि कलसे बाजी बिगड़ने लगी, तो उसके लिए मैं अपने सिवा और किसीको जिम्मेदार नहीं मानूंगा। और इस परीक्षामें यदि मैं टूट जाऊं तो मैं कहूंगा, “मेरी परीक्षा हुई और उसमें मैं पूरा नहीं उतरा।”

उन्होंने मुझसे कहा कि यदि मुझे उनकी बात ठीक लगती हो, तो उसे मैं अपने साथियोंके सामने रखूं। उन्होंने कहा: अगर तुम लोगोंका पूरा सहयोग मुझे न मिल सके, तो मैं कोई कदम नहीं उठाना चाहता। “श्रद्धाका बटवारा नहीं हो सकता। या तो हम ईश्वर पर पूरी श्रद्धा रखें या बिलकुल न रखें। इसमें तुम्हारी और मेरी दोनोंकी श्रद्धाकी परीक्षा है।” मैंने अपने साथियोंके सामने उनकी बात रखी। वे तुरन्त सहमत हो गये। मैंने गांधीजीसे कहा, “जैसा आप चाहते हैं वैसा ही होगा। हम पहली गाड़ीसे दिल्ली लौट जायेंगे।”

मुझे पता नहीं था कि हमारे निर्णय पर सरदार क्या कहेंगे। परन्तु मुझे आनन्दके साथ आश्चर्य हुआ कि जब मैंने उन्हें हमारा निश्चय बताया, तो उन्होंने इतना ही कहा : “तुमने ठीक किया । हम सदा उनकी ऊंची उड़ानमें उनका साथ नहीं दे सकते या उनके तर्कको पूरी तरह समझ नहीं सकते । परन्तु



हमें उनके मार्गमें बाधक बननेका कोई अधिकार नहीं है।" दूसरे दिन गांधीजीने अखबारोंमें घोषणा कर दी कि उन्होंने अपने स्थायी सहयोगियोंको वापस दिल्ली भेज देने और "अपने-आपको केवल ईश्वरके हाथोंमें सौंप देनेका" फैसला कर लिया है।

२

शिमला-सम्मेलनकी कार्रवाई ५ मईसे १२ मई तक चली । दो दिन तक सम्मेलन चला। उसके बाद सम्मेलनकी बैठकोंमें जो चर्चायें हो चुकी थीं, उनके प्रकाशमें कैबिनेट-मिशनने "समझौतेके लिए कुछ और सुझाव" पेश किये। कांग्रेसके दृष्टिकोणके सम्बन्धमें रियायतके तौर पर संघ-सरकारके विषयोंकी मूल सूचीमें विदेशी मामलों, प्रतिरक्षा और यातायातके अलावा 'मूलभूत अधिकारों' का विषय और बढ़ा दिया गया और यह प्रस्ताव पेश किया गया कि संघ-सरकारको इन विषयोंके लिए आवश्यक धन प्राप्त-करनेकी आवश्यक सत्ता होनी चाहिये। लीगके लिए संघको स्वीकार्य बनानेके लिए यह सुझाव रखा गया कि संविधान-सभाके तीन विभाग (सेक्शन्स) कर दिये जायें। एक विभाग हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तोंका प्रतिनिधित्व करे, दूसरा मुस्लिम बहुमतवाले प्रांतोंका और तीसरा देशी राज्योंका प्रतिनिधित्व करे। इसके बाद प्रथम दो विभागोंकी बैठक अलग अलग होगी और वे अपने समूहोंके लिए प्रान्तीय संविधानोंका, और यदि वे चाहें तो समूहके संविधानोंका निर्णय करेंगे। विभाग (सेक्शन) में प्रान्तोंकी जबरदस्ती समूह-बद्ध करनेके बारेमें कांग्रेसकी जो आपत्ति थी उसको दूर करनेके लिए कैबिनेट-मिशनने यह प्रस्ताव रखा कि किसी प्रान्तको प्रान्तीय अथवा समूहका संविधान स्वीकार न हो, तो उसे अपने बहुसंख्यक प्रतिनिधियोंके मतोंसे मूल समूहसे बाहर निकलनेकी और दूसरे समूहमें जानेकी अथवा किसी भी समूहसे अलग रहनेकी स्वतंत्रता होगी। उसके बाद तीनों विभागोंकी संयुक्त बैठकमें संघका संविधान (यूनियन कॉन्स्टिट्यूशन) तैयार किया जायगा।

संघके संविधानके अधीन इस प्रकार तीन उपसंघ (सब-फेडरेशन) होंगे । एक मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्तोंका, दूसरा हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तोंका और तीसरा देशी राज्योंका । मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्तोंको संघ-राज्यकी विधान-सभामें और संघ-सरकारमें भी हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तोंके बराबर प्रतिनिधित्व मिलेगा, चाहे सम्बन्धित प्रान्त अपने समूह बनायें या न बनायें । इसके सिवा, मुस्लिम



बहुमतवाले समूहसे उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके संभवतः बाहर निकल जानेके कारण और उस समूहसे आसामके बाहर रहनेके कारण—मुस्लिम लीगने मुस्लिम बहुमतवाले समूहके लिए आसामकी मांग की थी—लीगको जो नुकसान हो सकता है, उसकी पूर्तिके लिए यह सुझाया गया कि एक अतिरिक्त संरक्षणकी योजना भी की जाय। वह संरक्षण यह होगा कि संघके संविधानमें ऐसा कोई कानून, जिसका सम्बन्ध किसी साम्प्रदायिक प्रश्नसे हो, तब तक पास नहीं होगा जब तक दोनों बड़ी कौमोंका बहुमत उसके पक्षमें अपना मत न दे।

कांग्रेस समूहोंकी रचनाको स्वीकार करनेके लिए तैयार थी, बशर्ते वह पूरी तरह स्वेच्छापूर्ण हो। परन्तु उसकी यह राय थी कि संविधान-सभा अखिल भारतीय संघ-राज्य (ऑल इंडिया फेडरल यूनियन) के लिए संविधान बना दे उसके बाद प्रान्तोंके प्रतिनिधि इस सम्बन्धमें निर्णय करेंगे। इसके विपरीत, मुस्लिम लीगकी यह मांग थी कि छह 'मुस्लिम प्रांतों' के लिए—अर्थात् पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान, सिंध, बंगाल और आसामके लिए— शुरूसे ही संविधान बनानेवाली अलग संस्था होनी चाहिये (हालांकि आसाम एक हिन्दू बहुमतवाला प्रान्त था।) पाकिस्तानकी संघ-सरकार और प्रान्तोंके संविधान बन जानेके बाद दोनों समूहोंकी—अर्थात् पाकिस्तान समूह और हिन्दुस्तान समूहकी—संविधान-सभाएं इकट्ठी बैठ कर तीनों विषयोंका अर्थात् विदेशी मामलों, प्रतिरक्षा और “रक्षाके लिए आवश्यक यातायात” का विचार करेंगी।

मतभेदके और मुद्दे भी थे। कांग्रेस चाहती थी कि संघ-सरकारको अपने कर्तव्योंका पालन करनेके लिए आवश्यक आय कर लगाकर प्राप्त करनेकी सत्ता होनी चाहिये। मुस्लिम लीगका आग्रह था कि संघ-सरकारको अपने ही अधिकारसे कर वसूल करनेकी किसी भी हालतमें सत्ता नहीं होनी चाहिये; उसे प्रान्तोंका दिया हुआ पैसा ही मिलना चाहिये। लीग यह भी चाहती थी कि संघ-सरकारको तीन-चौथाई बहुमतके बिना किसी भी विवादास्पद प्रश्न पर कानूनी, व्यवस्था-सम्बन्धी या प्रशासन-सम्बन्धी निर्णय नहीं करना चाहिये।

यह स्पष्ट था कि कैबिनेट-मिशनका सारा रुख और दृष्टिकोण कांग्रेससे भिन्न था। शिमला-सम्मेलनके पहले सत्रके बाद ६ मईको कांग्रेस-अध्यक्षने लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको लिखा, “मुझे यह



स्वीकार करना चाहिये कि हमारी बातचीतकी अस्पष्टता और उनकी तहमें रही कुछ धारणाओंके कारण मैं उलझनमें पड़ गया हूं और अस्वस्थ बन गया हूं। जब तक भारतकी भूमि पर विदेशी सेना मौजूद है, तब तक स्वाधीनता जैसी कोई वस्तु नहीं हो सकती। हम इसी समय, न कि किसी दूर अथवा निकट भविष्यमें, सारे भारतके लिए स्वाधीनता चाहते हैं। दूसरी सब बातें गौण हैं और उन पर चर्चा और निर्णय करना संविधान-सभाके लिए ही उपयुक्त हो सकता है। . . . संविधान-सभा स्वाधीनताके प्रश्नका निर्णय नहीं करेगी; इस प्रश्नका निर्णय अभी होना चाहिये और हम मानते हैं कि यह निर्णय अब हो गया है।”

कांग्रेसके अध्यक्षने यह भी लिखा: अगर ऐसी बात है, तो इससे कुछ परिणाम अनिवार्य रूपसे निकलते हैं। फिर तो संविधान-सभा “स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रकी इच्छाका प्रतिनिधित्व करेगी और उसे कार्यान्वित करेगी।” इसके लिए पहले एक अस्थायी सरकार स्थापित करनी होगी, “जिसे यथासंभव स्वतंत्र भारतकी सरकारके रूपमें काम करना होगा और संक्रमण-कालके लिए सारी व्यवस्था करनेका बीड़ा उठाना होगा।”

परन्तु इस मंजिल पर कैबिनेट-मिशन इसके लिए तैयार नहीं था। उसका इरादा इस चीजको दोनों मुख्य दलोंके लिए प्रलोभनके रूपमें सुरक्षित रखनेका था, ताकि भारतके भावी संविधानके बारेमें वे अपने अपने दृष्टिकोणोंकी खाई पाट लें। कैबिनेट-मिशनकी रायमें यह खाई पहले ही काफी कम हो गई थी, क्योंकि कांग्रेसने प्रान्तोंके संबंधमें समूह बनानेका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था और मुस्लिम लीगने समग्र भारतके लिए संघ-सरकार स्वीकार कर ली थी। यह खाई सचमुच कम हो जाती, अगर एक समान ध्येयको पूरा करनेके लिए कांग्रेस और लीगमें हार्दिक समझौता होनेके बाद यह लेनदेन हुआ होता। तब कैबिनेट-मिशनको मजबूर होकर वास्तविकताओं पर ध्यान देना पड़ता। परन्तु

तीसरे पक्षकी उपस्थिति, जिसके हाथमें सत्ताका सन्तुलन था, इस वास्तविकताको दूषित कर देती थी और वह सब केवल अपनी अपनी स्थितिको सुरक्षित रखनेके लिए दावपेंचका साधन बन गई। कांग्रेसने तो प्रान्तोंके ऐच्छिक समूह रचनेकी बातको और साम्प्रदायिक प्रश्नों पर मुस्लिम निषेधाधिकार (वीटो) को स्वीकार कर लिया था, ताकि मुसलमानोंकी चिन्ता मिट जाय और हिन्दू तथा मुसलमान



अपनी समान मातृभूमिमें एक राष्ट्र बनकर साथ साथ रह सकें। परन्तु मुस्लिम लीग इन रियायतोंको पाकिस्तानके लिए लड़ी जा रही अपनी लड़ाईमें एक व्यूहात्मक लाभ समझती थी।

कांग्रेसने अपना यह दृढ़ मत व्यक्त किया कि भारतके किसी भी प्रकारके बंटवारेका विचार सम्मेलन नहीं कर सकता। “अगर बंटवारा होना ही है, तो वह वर्तमान शासक-सत्ताके प्रभावसे सर्वथा मुक्त संविधान-सभाके द्वारा होगा।” [मौलाना आजादका पत्र लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको, ६ मई १९४६]

जैसा कि शुरूसे ही डर था, १९ करोड़की आबादीके हिन्दू बहुमतवाले ७ प्रान्तों और ९ करोड़से कुछ अधिककी आबादीके ५ मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्तोंके बीच कार्यकारिणी या विधान-मंडलके सम्बन्धमें समान संख्यावाली कठिनाई अजेय सिद्ध हुई। ८ मईको गांधीजीने सर स्टैफर्ड क्रिप्सको लिखा, “यह तो पाकिस्तानसे भी बुरी चीज है।” उन्होंने इसका उपाय यह सुझाया कि लीग और कांग्रेसके बीच “मतभेदके इस और दूसरे सभी मामलों पर, जो और किसी तरह सुलझ न सकें, एक निष्पक्ष गैर-ब्रिटिश पंच अपना निर्णय दे।”

१९४५ के शिमला-सम्मेलनमें कांग्रेसने सवर्ण हिन्दू और मुस्लिमोंकी समान संख्या (पैरिटी) का सिद्धान्त मान लिया था, यद्यपि इसके विरुद्ध गांधीजीकी सलाह यह थी कि ऐच्छिक रियायतके रूपमें हिन्दुओंकी समान संख्यासे कम संख्याकी बात स्वीकार कर ली जाय। उनका कहना था कि यह वस्तु अधिक उदारतावाली भले मानी जाय, परन्तु लोकतंत्रके साथ उसका मेल बैठ सकता है। परन्तु जातियोंके बीच कानूनसे निश्चित की जानेवाली समान संख्या तो लोकतंत्रका मजाक ही होगी। गांधीजीकी इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया और कांग्रेस हाई कमांडको व्यवहार-कुशलताके अपने प्रयोगकी कीमत अब ब्याज सहित चुकानी पड़ रही थी। १९४५ के शिमला-सम्मेलनमें कांग्रेसके अध्यक्षने तो स्पष्ट कर दिया था कि कांग्रेसने समान संख्याको “शुद्ध अस्थायी और अन्तरिम रूपमें माना है और उसे भविष्यके लिए कोई स्थायी व्यवस्था नहीं समझा जाना चाहिये।” [मौलाना आजादका अखबारी वक्तव्य, १४ जुलाई १९४५] परन्तु अब उनके सामने संघकी विधान-सभा और संघ-सरकार दोनोंमें समान संख्याकी बातके भारतके भावी संविधानका एक स्थायी अंग बना दिये जानेकी संभावना खड़ी हो गई थी।



किसी प्रान्त या कौमके मनसे भय और शंकाको मिटानेके लिए औचित्यकी सीमाके भीतर रहकर कांग्रेस कुछ भी करनेको तैयार थी। परन्तु वह ऐसी 'अवास्तविक पद्धतियों' का समर्थन नहीं कर सकती थी, जो 'लोकतंत्रकी मूलभूत पद्धति' के खिलाफ पड़ते हों; क्योंकि उसी पद्धति पर तो वह अपना संविधान बनानेकी आशा रखती थी। [मौलाना आजादका पत्र लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको, ६ मई १९४६]

सम्मेलनकी असफलता अब अनिवार्य मालूम होती थी। इस पर कांग्रेसने सुझाया कि दलोंके बीच मतभेदके मामले निबटा देनेके लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग एक पंच नियुक्त कर दें। किन्तु इस सुझावको लीगने ठुकरा दिया।

१२ मईको यह घोषणा कर दी गई कि सम्मेलन कांग्रेस और लीगमें समझौता नहीं करा सका। इसके बाद कैबिनेट-मिशनके सदस्य दिल्ली लौट आये।

३

राष्ट्रवादी भारतका धैर्य अब लगभग चुक गया था और कैबिनेट-मिशनकी घोषणाओंसे शुरू शुरूमें जो आशाएं उत्पन्न हुई थीं वे विलीन होने लगीं। २ अप्रैलको ही गांधीजीने लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको दो कदम सुझाये थे, जिससे जनताको स्वतंत्रताका पहलेसे अनुभव होने लगे। पहला कदम यह था कि राजनीतिक कैदियोंको तुरन्त छोड़ दिया जाय और उनमें वे लोग भी रहें, जिन पर स्वातंत्र्य-संग्राममें हिंसात्मक अपराध करनेका आरोप भी लगाया जा सकता हो। वे लोग अब राज्यके लिए खतरनाक नहीं हो सकते, क्योंकि स्वाधीनताकी आवश्यकता अब दोनोंके लिए समान ध्येय बन गयी है। इसलिए जयप्रकाश नारायण अथवा डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे व्यक्तियोंको कारागारमें रखना हास्यास्पद मालूम होता है। "किसी व्यक्तिको भूमिगत कार्यकर्ता माननेके लिए भी कोई कारण नहीं है। कैदियोंकी मुक्तिके प्रश्नको भावी राष्ट्रीय सरकारके फैसलेके लिए छोड़ना एक ऐसा कदम होगा, जिसे न तो कोई समझेगा और न उसकी कदर करेगा। इससे स्वाधीनताकी शोभा मारी जायगी।"

गांधीजीके दूसरे प्रस्तावका असर आम लोगों पर पड़ता था। उसका संबंध नमक-करसे था। नमक-कर फ्रांसके घृणित गेबेले अथवा फ्रांसके नमक पर स्थापित सरकारी एकाधिकार जैसा अप्रिय और अन्यायपूर्ण था। फ्रांसकी क्रांतिके पूर्व वहांकी प्रजाकी शिकायतें पेश करनेवाली जो पत्रिकायें



निकाली गई थीं, उनमें फ्रांस इस सरकारी एकाधिकारको अत्यन्त गंभीर आर्थिक अनिष्ट बताकर उसकी निन्दा की गई थी। भारतके नमक-करकी निन्दा सर जेम्स वेस्टलैंड (१८८८), भारत-मंत्री लॉर्ड क्रॉस और भारतके उपमंत्री सर जॉन गॉस्टे (ब्रिटिश लोकसभामें, १८९०), सर इवेलिन बेरिंग (अर्ल ऑफ क्रोमर) और हालमें ही श्री रैम्जे मैकडोनल्डने की थी। मैकडोनल्ड साहबने तो यह कहा था कि, “यह रुपये ऐंठने और अत्याचारकी बात है और . . . एक मुनाफाखोर कम्पनीने भारतकी गरीबीका जो सामान्य शोषण किया था उसीका अवशेष है।” [राम्से मैकडोनल्ड, ‘गवर्नमेंट ऑफ इंडिया’, पृ. १२६-२७] आधी शताब्दीसे अधिक समयसे नमक-करका अन्त कांग्रेसकी मांगका एक अविभाज्य अंग रहा था। दादाभाई नौरोजी, वाच्छा, फिरोजशाह मेहता और गोखले जैसे देशभक्तोंने इस करको रद्द करानेके लिए अविश्रान्त युद्ध किया था।

कैबिनेट-मिशनके आनेकी आशामें गांधीजीने ६ मार्च, १९४६ को लॉर्ड वेवेलके सामने नमक-कर रद्द करनेकी बात रखी थी। उसका इतना-सा ही उत्तर उनकी ओरसे मिला था: “गांधीजीके इस सुझावकी जांच की गई कि नमकके निजी तौर पर बनाये जाने पर लगाई गई तमाम पाबंदियां हटा ली जायं। मुझे डर है कि . . . सरकार इस सुझावको माननेमें असमर्थ है।” [जॉर्ज एबेलका पत्र राजकुमारी अमृतकौरको, १ अप्रैल १९४६]

लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सके दिल्ली पहुंचनेके दूसरे दिन गांधीजीने उन्हें एक पत्रमें लिखा: “आयके साधनके रूपमें तो यह नमक-कर तुच्छ है। यदि नमककी ठेकेदारीका बोझा उसे दुःख देता रहेगा, तो आम जनता शायद ही स्वाधीनताकी कदर कर सकेगी।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको, २ अप्रैल १९४६]

५ अप्रैलको वाइसरॉयकी कार्यकारिणी परिषद्के वित्त-सदस्य सर आर्चिबाल्ड रोलैन्ड्स गांधीजीसे मिले, ताकि उनके प्रस्तावकी तफसील उनसे समझ लें। मुलाकातके अन्तमें सर आर्चिबाल्डने स्वीकार किया कि वे पूरी तरह गांधीजीके दृष्टिकोणसे सहमत हो गये हैं। इसका उल्लेख करते हुए गांधीजीने दूसरे दिन लॉर्ड वेवेलको लिखा: “ हमारी बातचीतके अन्तमें उन्होंने (सर आर्चिबाल्डने) मुझसे खुले दिलसे यह कहा कि यदि वे मुझसे तीन महीने पहले मिले होते, तो नमक-कर उठा दिया



जाता। . . . अब उनका इरादा ३-४ महीनेके भीतर यह कर उठा देनेका है। . . . मैं इस दयाके काममें आपकी सहायता चाहता हूं। इससे भी अधिक महत्त्व इस बातका है, जो मैंने कैबिनेट-मिशनके सामने रखी थी, कि स्वाधीनताका शुभ आरंभ अधिकसे अधिक सद्भावनाके साथ होना चाहिये, जिससे दूर दूरके गांवोंमें बसे गरीबसे गरीब ग्रामीण भी तुरन्त उसका अनुभव कर लें।”

बादमें पता चला कि गांधीजीसे सीधे मिल लेनेके लिए वाइसरॉयने वित्त-सदस्यको उलाहना दिया। एक समान मित्रको उन्होंने क्षमा-याचनाके रूपमें बताया कि कुछ कारणोंसे वे गांधीजीसे दुबारा नहीं मिल सकेंगे। वे कारण भी उन्होंने समझाये। जब गांधीजी वाइसरॉयसे बादमें मिले तो उन्होंने इस मामलेको जोरके साथ उठाया। तब कहीं वित्त-सदस्य पर लगी पाबन्दी उठाई गई और वे वाइसरॉयके ‘आदेशानुसार’ गांधीजीके साथ पुनः बातचीत करनेमें समर्थ हुए !

इसके बाद राजनीतिक कैदी धीरे धीरे छोड़ दिये गये। जयप्रकाश और डॉ. लोहिया १२ अप्रैलको रिहा किये गये। दो दिन बाद आजाद हिन्द फौजके अभियुक्त कैदियोंको छोड़नेकी आज्ञा दी गई। परन्तु नमक-कर उठा देनेका सवाल अधरमें ही लटकता रहा। ३ मईको गांधीजीने शिमलामें वाइसरॉयके सामने फिर इस मामलेको उठाया: “नमकका प्रश्न मेरे दिमागसे निकला नहीं है। ब्रिटेनके सम्मानके खातिर मैं यह कहता हूं कि इस एकाधिकारको उठा देनेमें एक दिनकी भी देर नहीं होनी चाहिये। इस एकाधिकारका क्या परिणाम हुआ है, यह श्रीमानके मन पर जमानेके लिए मैं साथमें श्री प्यारेलालका तैयार किया हुआ एक नोट भेजता हूं।” [गांधीजीका पत्र जॉर्ज एबेलको, ३ मई १९४६]

वाइसरॉयका उत्तर दुबारा भी निराशाजनक ही आया। उसका उत्तर गांधीजीने भी तेज दिया:

यह इस बातकी बढ़िया मिसाल है कि गैर-जिम्मेदार दिमाग किस तरह काम करता है। आपने पिछले सोमवारको मुझे कृपा करके बताया था कि . . . अंग्रेज प्रतिष्ठाकी परवाह नहीं करते। . . . आपके कथनसे यह फलित होता दीखता है कि ब्रिटिश लोग किसी कार्यसे पैदा हुई अप्रतिष्ठाकी भी परवाह नहीं करते।

मेरा मन तो सदा आम जनताकी ही बात सोचता है, उसके प्रति जिम्मेदार रहता है और उसके साथ एकराग हो गया है। इसलिए उससे तो यही सीधा उत्तर निकलता है कि इस घृणित



एकाधिकारको और करको . . . खास तौर पर अकालके इन दिनोंमें उठा दिया जाय। [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, ११ मई १९४६]

गांधीजीके प्रस्तावके सम्बन्धमें वाइसरॉयके निजी सचिवने राजकुमारी अमृतकौरसे कहा, “यह जिन्ना और मुस्लिम लीगके लिए कड़ी चोट होगी।” क्या वाइसरॉयकी अनिच्छाका यही कारण था कि इससे कांग्रेसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और जिन्ना नाराज होंगे ? बादकी घटनाओंमें ऐसा ही संकेत दिखाई दिया। गांधीजीने इसके अशुभ मर्मको समझ लिया।

४

१६ मईको कैबिनेट-मिशनने “ब्रिटेनके सम्राट्की सरकारकी पूरी अनुमतिसे” “नया संविधान जल्दीसे रचा जाय इस हेतुसे” अपनी सिफारिशें प्रकाशित कीं। उसकी इस योजनाके दो भाग थे: दीर्घकालीन योजना संविधान बनानेवाली सभाकी रचना करनेके लिए थी और अल्पकालीन प्रस्ताव १६ मईके वक्तव्यको स्वीकार करनेके लिए तैयार “बड़े राजनीतिक दलोंके समर्थनसे एक अन्तरिम सरकार बनानेका था।”

प्रश्न यह था कि भारतका विभाजन किया जाय अथवा वह अविभाजित रहे । मुस्लिम लीगका कहना यह था कि शुद्ध एककेन्द्री (यूनिटरी) राज्यवाले भारतमें मुसलमानोंको सदा ही हिन्दू-बहुमतके शासनमें रहना पड़ेगा। इसलिए उसने मांग की कि देशका विभाजन कर दिया जाय और दो प्रदेशोंका एक अलग सर्वथा स्वाधीन मुस्लिम राज्य अर्थात् पाकिस्तान बना दिया जाय—इनमें से एक प्रदेश उत्तर-पश्चिममें पंजाब, सिंध, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त और बलूचिस्तानके प्रान्तोंका हो; और दूसरा उत्तर-पूर्वमें बंगाल और आसामके प्रान्तोंका हो। इससे मुसलमानोंके हाथमें उन सब बातोंका संपूर्ण नियंत्रण आ जायगा, जो उनकी संस्कृति, धर्म और आर्थिक तथा दूसरे हितोंकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु जहां लीग मुस्लिम बहुमतवाले प्रदेशोंके लिए उनकी इच्छानुसार शासनकी पद्धति रचनेका अधिकार चाहती थी, वहां वह यही अधिकार उन काफी बड़े प्रदेशोंको देनेके लिए तैयार नहीं थी जिनमें गैर-मुस्लिमोंका बहुमत था और जिन्हें वह पाकिस्तानके लिए इस बिना पर मांगती थी कि पाकिस्तानको प्रशासनिक तथा आर्थिक दृष्टिसे स्वावलम्बी बनानेके लिए उनकी जरूरत है। उदाहरणके लिए, वह सारा



आसाम चाहती थी, यद्यपि उसकी ६६ प्रतिशत आबादी गैर-मुस्लिम थी; और पंजाब तथा बंगालके वे हिस्से भी मांगती थी, जहां गैर-मुस्लिमोंका भारी बहुमत था। इसका विशेष बुरा असर पंजाबके सिक्खों पर पड़ता था। उन्हें मनमाने ढंगसे पाकिस्तानमें रखे जाने पर प्रबल आपत्ति थी। इसके पीछे कारण वही था जो मुस्लिम लीगने मुस्लिम क्षेत्रोंको शेष भारतसे अलग करनेके लिए दिया था। उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त ऐसा दूसरा प्रान्त था। वहां आबादी तो मुख्यतः मुसलमानोंकी थी; परन्तु वहां कांग्रेसी मंत्रि-मंडल सत्तारूढ़ था। उसने मुस्लिम लीगकी विचारधाराको, विशेषतः उसके 'दो राष्ट्रोंके सिद्धान्त' को, और पाकिस्तानकी योजनाको कभी स्वीकार नहीं किया था। उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें १९४६ का चुनाव निश्चित रूपसे इसी प्रश्न पर लड़ा गया था और मतदाताओंने उसके खिलाफ अपना स्पष्ट निर्णय दिया था।

पाकिस्तानके पक्षमें जो भी दलील दी जा सकती थी, वही गैर-मुस्लिम प्रदेशोंको पाकिस्तानसे बाहर रखनेके लिए भी उसी तरह दी जा सकती थी। इसलिए कैबिनेट-मिशनने ध्यानपूर्वक विचार करनेके बाद अपनी १६ मईकी योजनामें मुस्लिम लीगकी मांगके अनुसार पाकिस्तानको एक अलग और पूरी तरह स्वाधीन प्रभुसत्ताधारी राज्य बनानेके प्रस्तावको ठुकरा दिया। इसी तरह उसने मुस्लिम बहुमतवाले प्रदेशोंमें ही सीमित "अधिक छोटे प्रभुसत्ताधारी पाकिस्तान" के प्रस्तावको भी अस्वीकार कर दिया। जिन्ना ऐसे छोटे पाकिस्तानको "कटाछंटा और दीमकका खाया हुआ पाकिस्तान" बताकर पहले ही उसे मुस्लिम लीगके लिए सर्वथा अस्वीकार्य घोषित कर चुके थे। और सिक्ख इस बात पर तुले हुए थे कि कुछ भी हो जाय, पंजाबके बंटवारेसे वे अपनी जातिका अंग-भंग नहीं होने देंगे। परन्तु भविष्यके गर्भमें ऐसी घटनायें छिपी थीं, जिन्होंने बादमें विभाजनके अत्यन्त उत्कट विरोधियोंके भी पैर उखाड़ दिये और जिनके समक्ष देशका अंग-भंग छोटी बुराई और एक बड़ी विपत्तिके निवारणका एकमात्र साधन दिखाई देने लगा।

मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी मांगके बजाय कैबिनेट-मिशनने १६ मईकी अपनी "तीन स्तरोंवाली योजना" की सिफारिश की। इस योजनाका संकेत शिमला-सम्मेलनमें समझौतेके लिए प्रस्तुत कैबिनेट-मिशनके सुझावोंमें मिलता था। ब्रिटिश भारत और देशी राज्योंका एक संघ सबसे ऊपर होगा, जिसके हाथमें विदेशी मामलों, प्रतिरक्षा और यातायातके तीन विषय होंगे। बिलकुल नीचेके स्तरमें प्रान्त



और देशी राज्य होंगे, जिनके पास समस्त शेष सत्तायें होंगी। इसके साथ साथ एक व्यवस्था ऐसी भी होगी, जिससे प्रान्तोंकी अपनी व्यवस्थापिका-सभाओं तथा विधान-सभाओंके साथ अपने समूह बनानेकी आजादी होगी। यह बीचका स्तर होगा। समूह बनानेका उद्देश्य मुस्लिम लीगको “पाकिस्तानका सार तत्त्व” देना था।

समूह बनानेकी कार्यविधि यह रखी गई कि समूची संविधान-सभाकी प्रारंभिक बैठकके बाद प्रांतोंके प्रतिनिधि ‘अ’, ‘ब’ और ‘क’ इन तीन विभागों (सेक्शन्स) में मिलेंगे; ‘ब’ विभागमें पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान और सिन्ध होंगे; ‘क’ विभागमें बंगाल और आसाम होंगे; और ‘अ’ विभागमें बाकीके वे प्रान्त होंगे, जो इन दोनों विभागोंमें से किसीमें भी शामिल नहीं किये गये हों। इसके पश्चात् ये सारे विभाग प्रत्येक विभागमें सम्मिलित प्रान्तोंके लिए प्रान्तीय संविधान रचनेका काम करेंगे और यह भी निर्णय करेंगे कि इन प्रान्तोंके लिए कोई समूह-संविधान (ग्रुप कॉन्स्टिट्यूशन) रचा जाय या नहीं। अन्तिम व्यवस्था यह रखी गई कि किसी भी प्रान्तको नये संविधानके अनुरार चुनी गई प्रान्तकी विधान-सभाके निश्चय द्वारा किसी समूहमें से निकल जानेकी सत्ता होनी चाहिये, यदि वह संविधान अपने अंतिम रूपमें उसकी पसन्दका न हो। यह आशा रखी गई थी कि इस व्यवस्थासे उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्वमें अलग मुस्लिम क्षेत्रोंकी मुस्लिम लीगकी मांग भी पूरी हो जायगी और साथ ही अविभक्त भारतकी एक समान केन्द्रवाली कल्पना भी ज्योंकी त्यों बनी रहेगी, यद्यपि उसके कार्य सीमित रहेंगे ।

सम्प्रदायवादके राक्षसको पहले-पहल ब्रिटिश सत्ताने ही जन्म देकर और पाल-पोसकर अपनी “फूट फैलाकर राज्य करने” की नीतिके अनुसार निरंकुश और जिद्दी बनाया था। परन्तु अब उसकी अपनी इच्छाशक्ति भी विकसित हो गई थी और वह इंग्लैंडके अनुदार दलके कट्टर लोगोंका सहारा पाकर किसीके समझाने-बुझानेकी परवाह नहीं करता था। कैबिनेट-मिशनको एक तरफ तो यह पक्का विश्वास था कि भारतका विभाजन अव्यावहारिक और हानिकारक सिद्ध होगा और दूसरी तरफ उसके सामने प्रभुसत्ताधारी पाकिस्तानकी मुस्लिम लीगकी अटल मांग थी। इसलिए उसको विवश होकर “नरो वा कुंजरो वा” के शंकास्पद उपायका आश्रय लेना पड़ा। उसकी १६ मईवाली योजना गेटेकी एक



सुप्रसिद्ध रचनाकी नायिकाके स्वरूपके अनुसार बनाई गई थी। उस नायिकाके पात्रके आलेखनमें सभीको अपनी प्रियतमाकी छवि दिखाई देती थी। उस योजनामें प्रत्येकके लिए कुछ-न-कुछ था। कांग्रेसके लिए उसमें एक समान केन्द्र दिया गया था, यद्यपि वह दुर्बल था; और प्रान्तोंकी समूह बनाने या न बनानेकी 'स्वतंत्रता' दी गई थी। मुस्लिम लीगको उसमें उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी भारतमें 'मुस्लिम क्षेत्र' बनानेकी संभावना दिखाई देती थी, क्योंकि उसमें प्रान्तोंके प्रतिनिधियोंके लिए प्रान्तीय संविधान रचनेके लिए विभागोंमें बैठना अनिवार्य कर दिया गया था। राजाओंके लिए सार्वभौम सत्तासे मुक्ति प्राप्त करनेकी बात उसमें थी और वह सत्ता उत्तराधिकारिणी सरकारको हस्तांतरित नहीं की जानेवाली थी। सिक्खोंके लिए उसमें उनके घरकी एकताको सुरक्षित रखनेकी आशा दिखाई गई थी।

कठिनाई यह थी कि जो बात योजनाके शुरूके हिस्सेमें दी हुई दिखाई देती थी, उसे पिछले भागकी व्यवस्थाओंसे लगभग रद्द कर दिया गया था। योजनाके पैरा १५ धारा (५) की भाषामें और पैरा १९ उपधारा (४) और (५) की भाषामें स्पष्ट विरोध था। धारा (५) के पैरा १५ में कहा गया था कि, "प्रान्त समूह, व्यवस्थापिका-सभा और विधान-सभा बनानेको स्वतंत्र होने चाहिये और प्रत्येक समूह एक साथ लिये जानेवाले प्रान्तीय विषयोंका **निश्चय कर सकता है।**" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) परन्तु उपधारा (४) और (५) के पैरा १९का अर्थ ऐसा समझा जा सकता था जिससे आसामका, जो एक गैर-मुस्लिम प्रान्त था, मुस्लिम प्राधान्यवाले समूह 'क' में शामिल होना लगभग अनिवार्य हो जाय; और उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तका, जहां कांग्रेसका मंत्रि-मंडल काम कर रहा था, उसके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी इच्छाके विरुद्ध मुस्लिम लीगकी प्रधानतावाले समूह 'ब' में शरीक होना अनिवार्य हो जाय। वह पैरा इस प्रकार था: "इसके बाद प्रान्तीय प्रतिनिधि तीन विभागोंमें बंट जायंगे। . . . ये **विभाग** प्रान्तीय संविधानोंकी रचनाका कार्य हाथमें लेंगे . . . और यह निर्णय करेंगे कि उन प्रान्तोंके लिए कोई समूह-संविधान रचा जायगा या नहीं।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

यह सच है कि नये संविधानके अनुसार चुनाव हो जानेके कुछ समय बाद प्रान्तोंको "बाहर निकल जाने" की स्वतंत्रता दी गई थी। यह संविधान विभाग (सेक्शन) को, संविधान रचनेके अपने अधिकारके अनुसार, नये संविधानके मातहत रहनेवाले प्रान्तोंके विधान-सभाके सदस्योंके बहुमतसे रचना था। परन्तु यह तो वस्तुतः मूल मुद्देको छोड़ देनेकी बात हुई। विभाग 'ब' और 'क' इस तरहसे बनाये गये थे कि स्पष्ट



ही एक प्रान्त अर्थात् पंजाबकी विभाग 'ब' में और बंगालकी विभाग 'क' में प्रधानता रहे। दोनों प्रान्तोंमें मुस्लिम लीगका बड़ा बहुमत था और दोनोंमें उसका प्रतिनिधित्व बड़ी मात्रामें था। अतः यह कल्पना की जा सकती थी कि ये प्रभुत्व रखनेवाले प्रान्त अपने अपने विभागोंमें दूसरे सहभागियों अर्थात् सिन्ध, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त और आसामकी इच्छाओंके बिलकुल विरुद्ध प्रान्तीय संविधान तैयार करते। "यह भी कल्पना की जा सकती थी कि वे चुनावोंसे सम्बन्धित नियम और दूसरे ऐसे नियम बना दें, जिनसे किसी प्रान्तके किसी समूहके बाहर निकल जानेकी व्यवस्था बेकार हो जाय।" [मौलाना आजादका पत्र लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको, २० मई १९४६]

इस प्रकार मई १९४६ के शिमला-सम्मेलनमें प्रस्तावित समूह-रचनाकी व्यवस्थाके अनुसार मूल समूहसे बाहर निकल जानेका अधिकार—यदि समूह द्वारा बनाया हुआ समूहका संविधान या प्रान्तीय संविधान किसी प्रान्तको पसन्द न हो तो—उस प्रान्तके पास ही था, परन्तु अब व्यवहारमें वह स्वतंत्रता उस प्रान्तसे छीन ली गई थी और उस विभागके बहुमतको सौंप दी गई थी, जो प्रान्तीय संविधानोंकी रचना करनेवाला था।

उदाहरणके लिए, आसाममें ३४.४२ लाख मुसलमान थे और ६७.५ लाख गैर-मुस्लिम थे। परन्तु इन गैर-मुस्लिमोंमें २४.८४ लाख पहाड़ी आदिवासी भी शामिल थे। मुस्लिम लीगकी बाजी सबको मालूम थी। वह यह थी कि आदिवासियोंको हिन्दुओंसे अलग कर दिया जाय, उन्हें अलग मताधिकार दिया जाय और स्वशासनका वचन दिया जाय तथा बंगालके अत्यधिक घनी आबादीवाले सीमावर्ती कुछ जिलोंसे मुसलमानोंको सामूहिक रूपमें लाकर असाममें बसा दिया जाय और इस तरह आसामको मुस्लिम बहुमतवाला प्रान्त बना दिया जाय। इस प्रकार यूरोपियनोंके सहयोगसे—जिन्हें वर्तमान शासन-विधानमें अन्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त था—आसामके लिए समूह 'क' से बाहर निकलना लगभग असंभव बना दिया जाता। संविधान-सभामें विभाग 'क' के विभिन्न जातियोंके प्रतिनिधित्वकी स्थिति यह थी:

मुस्लिम	यूरोपियन	अन्य	कुल



बंगाल	३३	५	२२	६०
आसाम	३	१	६	१०

पैरा १९ की भाषासे लाभ उठानेमें मुस्लिम लीगने जरा भी देर नहीं की। जिन्नाने यह घोषणा कर दी कि उन्हें कैबिनेट-मिशनकी योजनामें 'पाकिस्तानका आधार' मालूम होता है; और तदनुसार ६ जूनको मुस्लिम लीग कौंसिलने प्रस्ताव पास किया कि विभाग 'ब' और 'क' में "छह मुस्लिम प्रान्तोंको जो अनिवार्य रूपमें रखा गया है उसे देखते हुए ब्रिटिश सरकारके कैबिनेट-मिशनकी योजनामें पाकिस्तानकी नींव और आधार निहित है और इसलिए . . . कैबिनेट-मिशन द्वारा प्रस्तावित संविधान बनानेवाले तंत्रके साथ लीग सहयोग करनेको तैयार है।" प्रस्तावमें यह आशा छिपायी नहीं गयी कि, "अन्तमें इसका परिणाम सम्पूर्ण प्रभुसत्ताधारी पाकिस्तानकी स्थापना होगा," जिसे कैबिनेट-मिशनने अपने निवेदनमें आरंभसे ही रद्द कर दिया था !

लीगके इस प्रस्तावसे कैबिनेट-मिशन असमंजसमें पड़ गया। ब्रिटिश सरकारकी परंपरागत नीतियोंकी कृपासे उसकी ऐसी स्थिति हो गई कि जो कुछ भी वह करने जाता था उसीमें वह गलत साबित होता था। परन्तु उसकी कठिनाईसे उसकी योजनाके भीतर रहे स्वाभाविक दोष उचित नहीं ठहरते थे। गांधीजीने वे दोष भी दिखाये और उनका उपाय भी बताया।

कैबिनेट-मिशनकी १६ मईवाली योजनाकी घोषणाके बाद अपनी मुलाकातके दौरान लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने गांधीजीको उनके एक प्रश्नके उत्तरमें यह विश्वास दिलाया था कि उनकी योजनाका संपूर्ण आधार स्वेच्छापूर्ण है। उसमें कहीं भी अनिवार्यताका तत्त्व नहीं है। गांधीजीने कहा कि अगर ऐसी बात है, तो बाकी बातें अर्थ लगानेकी पद्धतिसे ठीक की जा सकती हैं। गांधीजीने अपने सामने जो काम था उसमें अपना कानूनी दिमाग लगाया। जब वे वकालत करते थे तब भी यही समझते थे कि कानून सत्य और न्यायकी रक्षाके "नियमोंका नीतिशास्त्र" है। १६ मईवाली योजनाके संबंधमें उन्होंने 'हरिजन' के एक लेखमें यह लिखा:



ब्रिटिश सरकारकी ओरसे कैबिनेट-मिशन और वाइसरॉयने जो राज्य-पत्र (स्टेट पेपर) प्रकाशित किया है, उसकी ४ दिन तक बारीकीसे जांच करनेके बाद मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि वर्तमान स्थितिमें ब्रिटिश सरकारका यह उत्तम दस्तावेज है।

किन्तु मेरी प्रशंसाका यह अर्थ नहीं है कि जो चीज ब्रिटिश दृष्टिकोणसे उत्तम है, वह भारतीय दृष्टिकोणसे भी उत्तम अथवा कमसे कम अच्छी है। उनकी उत्तम वस्तु हानिकारक भी हो सकती है। . . .

वह राज्य-पत्र एक अपील है और एक सलाहके रूपमें है। उसमें कोई अनिवार्यता नहीं है। इस प्रकार प्रान्तीय विधान-सभाएं चाहें तो प्रतिनिधि चुनें भी या न भी चुनें। प्रतिनिधि चुन लिये जानेके बाद वे संविधान-सभामें चाहें तो शरीक हों भी या न भी हों। संविधान-सभाका अधिवेशन होने पर वह ऐसी कार्य-प्रणाली बना सकती है, जो कैबिनेट-मिशनके निवेदनमें बताई गई कार्य-प्रणालीसे भिन्न हो। किसी व्यक्ति अथवा दलके लिए कोई भी बात, जो बंधनकारक है, स्थितिकी आवश्यकतासे पैदा होती है।

इसलिए जब लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने किसी पत्र-प्रतिनिधिसे कहा कि, “यदि वे लोग उस आधार पर एकत्र हो जाते हैं, तो इसका अर्थ यह होगा कि उन्होंने उस आधारको स्वीकार कर लिया है; परन्तु फिर भी वे उसे बदल सकते हैं, यदि प्रत्येक दलके बहुमतसे वे उसे बदलना चाहें,” तब उनकी बात इस अर्थमें सही थी कि जो लोग निवेदनमें रही वस्तुको भलीभांति समझकर प्रतिनिधि बनते हैं उनसे निवेदन रचनेवाले यह आशा रखते हैं कि प्रतिनिधि उस आधारको स्वीकार करेंगे—सिवा इसके कि मुख्य दल उसमें आवश्यक परिवर्तन करें। . . .

यहां तक तो उनका निवेदन पूर्ण है। परन्तु घटकों (यूनिट्स) के बारेमें क्या होगा ? सिक्खोंका तो एकमात्र वतन भारतमें पंजाब ही है। क्या वे अपनी इच्छाके विरुद्ध अपने आपको उस विभागका अंग समझें, जिसमें सिन्ध, बलूचिस्तान और सीमाप्रान्त शामिल हैं? मेरी रायमें निवेदनके ऐच्छिक स्वरूपका यह तकाजा है कि प्रत्येक घटककी स्वतंत्रतामें कोई फर्क नहीं आना चाहिये। कोई भी घटक या विभाग उसमें शरीक होने या न होनेको स्वतंत्र है। बाहर



निकलनेकी स्वतंत्रता एक अतिरिक्त संरक्षण है। वह पैरा १५ (५) में जो स्वतंत्रता रखी गई है, उसका स्थान कभी नहीं ले सकता। [हरिजन, २६ मई १९४६, पृ. १५२]

गांधीजीने कैबिनेट-मिशनके वक्तव्य पर भी सत्यकी वही कठोर कसौटी लगाई, जो वे अपने जीवनके प्रत्येक कार्य पर लगाते थे। क्या मिशनके दस्तावेजका वही अर्थ है, जो उसमें कहा गया है? उन्होंने कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यको एक ऐसे रुक्के (प्रामिसरी नोट) की उपमा दी, जिसकी कीमत बिलकुल उसके सच्चे होने पर निर्भर करती है। उन्होंने कहा था कि कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यमें मुझे “शोक और दुःखसे मुक्त देश” के अपने आदर्शकी पूर्तिके बीज दिखाई देते हैं; परन्तु इसके साथ यह शर्त है कि उसमें जो कुछ कहा गया है वही उसका आशय होना चाहिये। “यदि किसी रुक्के (प्रामिसरी नोट) पर लिखे गये वचनका पालन नहीं किया जाता, तो वह निकम्मा ही है और फाड़ कर फेंक देने लायक होता है।” [वही] १७ मईको लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने अपने पत्रकार-सम्मेलनमें कहा था कि यह वक्तव्य कोई निर्णय नहीं है, बल्कि एक सिफारिश है। क्या कोई सिफारिश प्रस्तावित संविधान-सभाके किसी घटक अथवा सदस्य पर बंधनकारक मानी जा सकती है? गांधीजीने लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको लिखा, “इस उद्गारमें कुछ ऐसी ही ध्वनि है। जो लोग उस राज्य-पत्रका उत्साहपूर्वक स्वागत करते हैं, परन्तु इतने विवेकशील हैं कि, उदाहरणके लिए, समूह बनानेकी बातको अस्वीकार करते हैं, वे क्या समूह-रचनासे सम्बन्धित धाराके विरुद्ध देश और संविधान-सभाको शिक्षित बनानेका प्रामाणिक प्रचार कर सकते हैं?” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको, १९ मई १९४६] लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने उसी पत्रकार-सम्मेलनके दौरान यह तर्क भी किया था कि यदि दल उनकी योजनाके आधार पर एकत्र होते हैं, तो “उसका यह अर्थ होगा कि उन्होंने उस आधारको स्वीकार कर लिया है।” परन्तु राज्य-पत्रके पैरा १५ का आधार भी सिफारिशके रूपमें ही था। गांधीजीने यह भी कहा, “मैं कानूनी स्थितिको जानता हूँ । मेरे प्रश्नका संबंध समूह बनानेके विरोधकी प्रामाणिकतासे है।”

ब्रिटिश सरकारके कैबिनेट-मिशनके वक्तव्य द्वारा कानको दिये गये आश्वासनको हृदयके सामने भंग करनेका इरादा नहीं है ऐसा मानकर तथा इस सूत्रके आधार पर चलकर कि हर प्रकारके अन्यायका कानूनमें इलाज है, गांधीजीने यह सुझाया कि इस वक्तव्यका अर्थ समग्र रूपमें करना चाहिये, जिससे इसके विभिन्न भागोंके बीच रही असंगतियां और विरोध दूर हो जायं तथा अपनी मूलभूत व्यवस्थाओं



और कैबिनेट-मिशन द्वारा पहले दिये गये वक्तव्योंके साथ इस वक्तव्यका संपूर्ण मेल बैठ जाय । बादमें लॉर्ड वेवेलने भी कांग्रेस-अध्यक्षके नाम अपने एक पत्रमें इसका समर्थन किया था कि १६ मईके वक्तव्यमें समूह-रचना अनिवार्य वस्तु नहीं है। [लॉर्ड वेवेलका पत्र मौलाना आजादको, १५ जून १९४६] उसमें व्यवस्था यही की गई थी कि अमुक प्रान्तोंके प्रतिनिधियोंको विभागोंमें मिलना चाहिये, ताकि वे यह निश्चय कर सकें कि वे समूह बनाना चाहते हैं या नहीं। कांग्रेसका कहना यह था कि यदि प्रान्तोंको दी गई स्वतंत्रता वास्तविक स्वतंत्रता है और खाली दिखावा नहीं है, तो राज्य-पत्रके पैरा १५ (५) का केवल इतना ही अर्थ हो सकता है कि यदि कोई प्रान्त यह चाहे कि समूहका कोई संविधान न बनाया जाय, तो उसके प्रतिनिधियोंकी इच्छाके विरुद्ध उस मामलेमें उस विभागके दूसरे प्रान्त या प्रान्तोंके प्रतिनिधियोंके बहुमतसे कोई निर्णय उस पर लादा नहीं जायगा । अन्यथा प्रान्तोंको दी गई स्वतंत्रताका कोई अर्थ नहीं है। मौलाना आजादने लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सके नाम लिखे अपने २. मईके पत्रमें लिखा: “बुनियादी व्यवस्था (वक्तव्यके पैरा १५ के अनुसार) किसी प्रान्तको जैसा वह चाहे वैसा करनेकी पूरी स्वतंत्रता देती है और बादमें इस मामलेमें कुछ अनिवार्यता दिखाई देती है, जिससे उस स्वतंत्रताका स्पष्ट भंग होता है। . . . यह बात स्पष्ट नहीं है कि किसी प्रान्तको या उसके प्रतिनिधियोंको कोई ऐसी बात करनेके लिए, जिसे वे नहीं करना चाहते, कैसे मजबूर किया जा सकता है ।” इस प्रकार, “कोई प्रान्तीय विधान-सभा अपने प्रतिनिधियोंको आदेश दे सकती है कि वे किसी भी समूहमें या किसी विशेष समूह अथवा विभागमें शामिल न हों।” गांधीजीने बताया कि किसी प्रान्तकी इच्छाओंको निश्चित रूपमें जाननेका सबसे सीधा उपाय यह है कि संविधान-सभाका सभापति सभाकी पहली बैठकमें प्रान्तोंके प्रतिनिधियोंसे यह पूछ ले कि उनके प्रान्तको जिस समूह या विभागमें जुड़नेके लिए कहा गया है उसमें जुड़ना उन्हें मान्य है या नहीं। यदि किसी विशेष प्रान्तके प्रतिनिधि वैसा करनेसे इनकार कर दें, तो उस प्रान्तको विभाग द्वारा बनाये जानेवाले समूहसे बाहर रहनेकी स्वतंत्रता होगी और उसके लिए उस विभागमें अधिक बैठनेकी जरूरत नहीं रहेगी। [हरिजन, २६ मई १९४६, पृ. १५२]

तदनुसार २४ मईके कांग्रेस कार्यसमितिके प्रस्तावमें यह कहा गया था: “कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यमें प्रान्तीय स्वशासनके और शेष सत्ताएं प्रान्तोंके पास रहनेके मूलभूत सिद्धान्तका समर्थन किया गया है। उसमें यह भी कहा गया है कि प्रान्तोंको समूह बनानेकी स्वतंत्रता होनी चाहिये। परन्तु बादमें



यह सिफारिश की गई है कि प्रान्तीय प्रतिनिधि विभागोंमें बंट जायेंगे और ये विभाग 'प्रत्येक विभागके प्रान्तोंके लिए प्रान्तीय संविधान बनानेका काम हाथमें लेंगे तथा यह भी निर्णय करेंगे कि उन प्रान्तोंके लिए कोई **समूह-संविधान रचा जायगा या नहीं**।' इन दो अलग अलग व्यवस्थाओंमें स्पष्ट विसंगति है। . . . वक्तव्यके सिफारिशी स्वरूपको कायम रखने और धाराओंको एक-दूसरेके साथ युक्तिसंगत बनानेके लिए समितिने पैरा १५ का यह अर्थ समझा है कि सबसे पहला मौका मिलते ही सम्बन्धित प्रान्त इस बारेमें अपना चुनाव कर लेंगे कि उन्हें जिस **विभागमें** रखा गया है उसमें वे रहेंगे या नहीं रहेंगे।" (मोटे टाइप में किये हैं।)

किन्तु कैबिनेट-मिशनकी यह राय थी कि कांग्रेसने जो यह अर्थ लगाया है कि "प्रान्त मौका मिलते ही पहले यह चुनाव कर सकते हैं कि जिस विभागमें उन्हें रखा गया है उसमें वे रहेंगे या नहीं," वह अर्थ कैबिनेट-मिशनके 'आशयों' के अनुरूप नहीं है; विभाग और समूह बनानेकी व्यवस्था जिन विचारोंके कारण की गई वे "सबको विदित" थे। जाहिर है कि मिशनका मतलब इस प्रश्न पर मुस्लिम लीगके कड़े रुखसे था; और "यह उस योजनाका आवश्यक पहलू है", जो एक सम्पूर्ण वस्तु थी। [कैबिनेट-मिशनका वक्तव्य, २५ मई १९४६]

इसने विभिन्न दलोंके सामने यह प्रश्न खड़ा कर दिया कि क्या किसी राज्य-पत्रमें उसे बनानेवालोंके 'आशयों' की बात दलोंको बांधनेवाली मानी जा सकती है। एक बार जब कोई फैसला किसी कानूनी अथवा राजनीतिक दस्तावेजमें शामिल कर लिया जाता है, तो उसके "आशय " का अनुमान कानून-शास्त्रके माने हुए नियमोंके अनुसार असली दस्तावेजके मूल पाठसे ही करना पड़ता है। संसदीय कानूनोंका अर्थ करनेमें कानूनके पास होनेके दौरान चर्चामें दिये गये प्रस्तावकके भाषणोंका भी प्रमाण नहीं दिया जा सकता। इसलिए यदि कैबिनेट-मिशनकी १६ मईवाली योजनाका कांग्रेसने एक तरहसे अर्थ लगाया, मुस्लिम लीगने दूसरी तरहसे लगाया और कैबिनेट-मिशनने तीसरी तरहसे लगाया, तो उचित मार्ग यही था कि किसी न्यायपंचको सौंपकर इस मतभेदका समाधान करा लिया जाता।



गांधीजीके साथ हुई एक मुलाकातमें लंदनके 'न्यूज़ क्रॉनिकल' के प्रतिनिधि नार्मन क्लिफने पूछा: "इसका वही अर्थ क्यों न लगाया जाय, जो वे लगाते हैं? उनका आशय क्या था, इसका निर्णय वे ही उत्तम रूपसे कर सकते हैं।"

"जो कुछ मूल पाठमें लिखा हो उसके बाहर बनानेवालेके आशयको कानून नहीं मानता और यह ठीक ही है।"

"क्या दस्तावेजको फिरसे लिखकर आशयको स्पष्ट नहीं किया जा सकता?"

"यह असंभव है। इसका अर्थ होगा उसमें हमेशा परिवर्तन और काटछांट करते रहना।"

"क्या भावनाके अनुसार अर्थ लगाना शब्दार्थसे बेहतर नहीं होगा?"

"इन सब प्रश्नोंका निर्णय करना अदालतका काम है।"

"क्या आत्मोत्सर्ग आपकी एक बुनियादी मान्यता नहीं है?"

गांधीजी जोरसे हंसकर बोले: "शैतान भी धर्मकी दुहाई दे सकता है!"

५

२४ मईको पास हुए कांग्रेस कार्यसमितिके प्रस्तावमें १६ मईकी कैबिनेट-मिशनकी योजना पर कोई अन्तिम मत नहीं दिया गया था। समितिको लगा कि वह तब तक ऐसा नहीं कर सकती जब तक उसके सामने कामचलाऊ राष्ट्रीय सरकार और संविधान-सभा स्थापित करनेसे संबंधित समस्याओंका संपूर्ण चित्र न हो, क्योंकि दोनों पर एक साथ विचार करना आवश्यक है। जब समूह-रचनाके बारेमें विवाद चल रहा था, तब कार्यसमिति उन प्रश्नों ('आन्तरिक कसौटियों') की बारीकीसे जांच करनेमें लग गई। पहला प्रश्न था ब्रिटिश सेनाको भारतसे हटा लेनेका। २० मईको गांधीजीने लॉर्ड पेथिक-लॉरेस्सको १८ और १९ मईकी कैबिनेट-मिशनके साथ हुई अपनी बातचीतका सार बताते हुए लिखा: "मैं आपकी और सर स्टैफर्डकी स्पष्टवादिताकी प्रशंसा करता हूं, परन्तु मैं अपना यह दृढ़ विश्वास लेखबद्ध कर देना चाहता हूं कि स्वाधीनता वास्तवमें मजाक हो जायगी, यदि भीतरी शान्ति और व्यवस्थाके लिए अथवा बाहरी खतरेसे देशकी रक्षा करनेके लिए भी ब्रिटिश सेना भारतमें रही। संविधान-सभाका काम पूरा



होनेके बाद भी इस मामलेमें भारतकी दशा आजसे अच्छी नहीं होगी । यदि सेनाके सम्बन्धमें आजकी स्थिति बनी रही, तो 'अगले महीने स्वाधीनता' की बात या तो झूठी है या एक विचारहीन नारा है। अंग्रेजोंको 'भारत छोड़ो' की बात बिना किसी शर्तके स्वीकार करनी है, चाहे संविधान-सभाको संविधान बनानेमें सफलता मिले या न मिले । हर बातमें अंग्रेजोंके रुखमें क्रांतिकारी परिवर्तन होना आवश्यक है। . . . अन्तमें, यह किसी तरह भी नहीं कहा जा सकता कि ब्रिटिश सेनाके भारतमें रहते हुए संविधान-सभामें स्वाभाविक व्यवहार होगा।" (मोटे टाइप में किये हैं।)

दूसरा प्रश्न था सार्वभौम सत्ता (पैरेमाउन्टसी) का। भारतमें छह सौसे अधिक देशी राज्य थे। उनका प्रदेश ७ लाख १२ हजार वर्गमीलमें फैला हुआ था—अर्थात् देशके कुछ क्षेत्रफलका वह लगभग एक-तिहाई भाग था। और भारतकी कुछ आबादीका चौथाई भाग इन राज्योंमें बसा था। इन देशी राज्यों पर ब्रिटिश सत्ता सार्वभौम अधिकारका दावा करती थी तथा इस पर वह अमल भी करती थी। वे ज्यादातर अंग्रेजोंकी ही सृष्टि थे। "कुछ राज्योंको अंग्रेजोंने बचाया था, औरोंको उन्होंने पैदा किया था।" [प्यारेलाल कृत 'स्टेट्स ऑफ इन्डियन प्रिंसेज़', अहमदाबाद, १९४१, पृ. ३३ में दिया गया बटलर कमिटीकी रिपोर्टका उद्धरण] लॉर्ड कैनिंगके शब्दोंमें कहें तो १८५७ के सिपाही-विद्रोहके दिनोंमें "उन्होंने (देशी राज्योंने) ऐसे तूफानको रोका, जो अन्यथा एक प्रचण्ड लहरमें हमें बहा ले जाता। शान्तिकालमें उनके कई उपयोग हैं।" [वही, पृ. ३८] जैसा श्री वेजवुड बेनने ब्रिटिश लोकसभाकी संयुक्त प्रवर-समितिमें बताया था, १९३५ के रिफार्म्स एक्टमें देशी राज्य संघ-शासनमें "केन्द्रको अनुदार और अंग्रेजोंका हिमायती" [वही, पृ. ४२] बनानेके लिए लाये गये थे। इन देशी रियासतोंको भारत सरकारका पोलिटिकल विभाग अपने सुरक्षित स्थान समझता था। भारत सरकारकी बराबर यह नीति बनी रही कि उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवादकी आज्ञाकारिणी कठपुतलियोंके रूपमें बढ़ने दिया जाय। जैसा कि सर जॉन माल्कमने कहा था, "किसी भी तरहकी राजनीतिक सत्ताके बिना शाही हथियारों" [वही, पृ. ३९] का पार्ट अदा करनेके लिए ये राज्य गौरव अनुभव करते थे।

राजाओं और उनकी प्रजाके आपसी सम्बन्धोंके बारेमें ब्रिटिश नीतिका सार लॉर्ड एल्गिनके १८६२ के इस रहस्यपूर्ण उद्गारमें आ गया था : "सिन्धिया और होल्कर हमारे प्रति उतने ही वफादार हैं जितने वे कमजोर हैं और यह जानते हैं कि उन्हें अपनी ही प्रजा और पड़ोसियोंके विरुद्ध हमारी सहायता



और सहारेकी जरूरत है।” [वही, पृ. ४१] तदनुसार पोलिटिकल विभाग देशी राज्योंके भीतर जन-आन्दोलनोंको निरुत्साहित करता था और राष्ट्रवादी भारतके साथ देशी राज्योंकी प्रजाका सम्पर्क स्थापित होने पर नाराज होता था।

यद्यपि कानूनसे देशी रियासतोंके सम्बन्ध ब्रिटिश सम्राट्के साथ थे, फिर भी ब्रिटिश शासन-विधान और उसकी भारतीय शाखाकी रचना ऐसी थी कि सम्राट्के साथके सम्बन्धोंका **सिद्धान्त व्यवहारमें** भारत सरकारके साथके सम्बन्धमें ही प्रगट होता था, अन्य किसी मार्गसे नहीं। ब्रिटिश सरकार अपनी सार्वभौम सत्ताके अनेक लक्षणोंमें से एक लक्षणके रूपमें सार्वभौम सत्ताका अर्थ करने तथा अपने कार्योंका क्षेत्र निश्चित करनेके अबाधित अधिकारका दावा करती थी। देशी राज्योंके भविष्यके बारेमें कोई भी व्यवस्था करते समय उनकी सलाह लेना उसका फर्ज है, ऐसा ब्रिटिश सरकारने कभी नहीं माना। जब उसने १८६० में सार्वभौम सत्ताकी पहली घोषणा की अथवा जॉन कम्पनीके हाथसे भारतके शासनकी बागडोर संभाली, तब भी उसने देशी राज्योंकी सलाह नहीं ली थी। जब १८७६ के रॉयल टाइटल्स एक्टके अनुसार ब्रिटेनकी महारानीको भारतकी सम्राज्ञी घोषित किया गया तब भी उसने उनकी सलाह नहीं ली। और न उस समय उनकी सलाह ली जब सार्वभौम सत्ताका कानूनी आधार स्थापित करनेवाला १८८९ का इन्टरप्रिटेशन एक्ट पास किया गया।

भारत-मंत्री सर सेम्युअल होरने ब्रिटिश लोकसभामें भारत शासन-विधानके मसविदे (१९३५) सम्बन्धी बहसके दौरान यह घोषणा की थी कि राजाओंको दोमें से किसी एक बातका चुनाव करना है: या तो वे सम्राट् की सार्वभौम सत्ताके अधीन सामन्त बने रहें या संघ-शासन (फेडरेशन) में आ जायें। देशी राज्योंमें जितना ही अधिक संघ-शासन होगा और जितने अधिक प्रतिनिधित्ववाली सरकार होगी, उतनी ही उनकी सम्राट्की सार्वभौम सत्ताकी मातहत कम होगी। सार्वभौम सत्ताके अनन्त चक्रसे बचनेका और कोई मार्ग नहीं है, क्योंकि सार्वभौम सत्ता किसी प्रकारकी व्याख्या ही स्वीकार नहीं करती है और इसलिए उसका कार्यक्षेत्र अनन्त और अपार है।

इसलिए सत्ताके हस्तान्तरित होने पर स्वाभाविक घटनाक्रम तो यह था कि अनुगामी सरकार या सरकारोंको उत्तराधिकारमें सार्वभौम सत्ता सहित वे सब विशेष अधिकार मिल जाते और वह या वे



सरकारें उन सब कामोंको करतीं, जो सम्राट्के प्रतिनिधिको अपनी ही सत्तासे अथवा सम्राट्की दी हुई सत्तासे प्राप्त थे या करने होते थे। परन्तु १६ मईकी अपनी योजनामें कैबिनेट-मिशनने यह घोषित कर दिया कि भारतीय हाथोंमें सत्ताके हस्तान्तरित होने पर सार्वभौम सत्ता 'विलीन' हो जायगी। वह न तो ब्रिटिश सम्राट्के पास रहेगी और न उत्तराधिकारी सरकारको सौंपी जायगी। इसका परिणाम यह होता कि भारतको विरासतमें छह सौसे अधिक ऐसे राजाओंसे निबटनेकी समस्या मिलती, जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवादकी परम्पराकी तालीम मिली थी और जिनमें से प्रत्येक अपने लिए 'स्वाधीन' होनेका दावा करता था। जब भारतकी छाती पर छह सौसे अधिक साम्राज्यवादी मनोवृत्तिके राज्य हों और उन्हें सरकारी तौर पर हिन्दू और मुस्लिम राज्योंके रूपमें विभाजित किया गया हो, तब तो भारतको राजनीतिक दृष्टिसे सुदृढ़ करनेका कार्य लगभग असंभव ही था और भारतको मजबूर होकर इस समस्याको हल करनेके लिए अंग्रेजोंकी मदद लेनी ही पड़ती। इस प्रकार ब्रिटिश सत्ताके हट जानेके बाद भी अंग्रेजोंकी पराधीनता लम्बे समय तक देशमें बनी ही रहती। गांधीजीने कैबिनेट-मिशनके सदस्योंको सुझाया कि अगर सार्वभौम सत्ताका अंत करना है, तो जब संविधान-सभा संविधान तैयार करनेके कार्यमें लगी हुई हो और “कानूनसे न सही परन्तु वास्तवमें” स्वाधीनता कार्य करने लगी हो, तभी सार्वभौम सत्ताका अन्त हो जाना चाहिये:

सर स्टैफर्ड क्रिप्सको मेरे सुझाव पर अमर करनेमें खतरा दिखाई दिया। परन्तु मेरा विचार इसके विपरीत था। मेरे प्रस्तावको माननेसे कलमके एक ही झटकेमें राज्योंके लोगोंमें जान आ जाती। अन्तरिम सरकार राजाओंके लिए भी वरदान सिद्ध होती। क्योंकि राजा लोग वैसे तो सार्वभौम सत्ताके ही पैदा किये हुए हैं और अपनी हस्ती कायम रखनेके लिए उसी पर अवलम्बित हैं, परन्तु उसके भारी बोझके नीचे वे दबे रहते हैं। सार्वभौम सत्ताके तत्काल समाप्त होनेसे राजाओं और सार्वभौम सत्ताकी सचाईकी परीक्षा हो जायगी। [गांधीजीका पत्र लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको, २० मई १९४६]

गांधीजीने यह भी सुझाया कि यदि इस भारतीय भावनाकी राजाओंके दयोंमें प्रतिध्वनि न हो, तो मैं स्वयं तो “सर स्टैफर्ड क्रिप्सके विचार” से सन्तुष्ट हो जाऊंगा। सर स्टैफर्डका विचार यह था कि “सार्वभौम सत्ताका उपयोग अब तक तो निश्चित रूपसे प्रजाके विरुद्ध राजाओंकी रक्षा करनेमें और



प्रजाकी स्वतंत्रता और प्रगतिका दमन करनेमें हुआ है। लेकिन अब वह राज्योंकी प्रजाकी रक्षा और प्रगतिके लिए कुछ समय तक बनी रहनी चाहिये।” यदि देशी राज्योंके लोग पिछड़े हुए हैं, तो इसका कारण यह नहीं है कि सीधे ब्रिटिश राज्यके अधीन रहनेवाले भारतके दूसरे भागोंके लोगोंसे वे भिन्न प्रकारके हैं, बल्कि इसका कारण यह है कि वे दोहरी गुलामीमें कराहते रहे हैं। “मैंने इस सुझावका भी समर्थन किया कि सार्वभौम सत्ताका उपयोग राष्ट्रीय सरकारके परामर्शसे होना चाहिये।”

तीसरे, कांग्रेसका कहना था कि अगर संविधान-सभाको असमान तत्त्वोंकी नहीं बनाना है, तो संविधान-सभामें आनेवाले देशी राज्योंके प्रतिनिधि लगभग उसी तरह आने चाहिये जिस तरह प्रान्तोंके प्रतिनिधि आने चाहिये; और यह हेतु सिद्ध करनेके लिए भारतीय प्रजाको राजाओंसे यह आग्रह करनेकी आजादी होनी चाहिये कि वे ब्रिटिश भारतमें जो राजनीतिक स्थिति है वैसी ही स्थिति अपने राज्योंमें पैदा करें।

चौथे, यूरोपियनोंके मतका प्रश्न था। श्री एटलीकी घोषणाके अनुसार भारतके संविधानका निर्णय भारतीयोंको करना था। इसलिए यूरोपियनोंको संविधान-सभाके चुनावमें खड़े होनेका या मत देनेका कोई अधिकार नहीं हो सकता था। १६ मईके वक्तव्यमें यह व्यवस्था की गई थी कि दस लाखकी आबादीके प्रतिनिधिके रूपमें संविधान-सभाका एक सदस्य चुना जाय। इस आधार पर भी यूरोपियनोंको संविधान-सभामें जानेका अधिकार मिलता नहीं था। परन्तु १९३५ के भारत शासन-विधानके अनुसार बंगाल और आसामके २१... यूरोपियनोंको इन दो प्रान्तोंमें जो विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया था, उसके अनुसार उन्हें ६० लाखकी आबादीके बराबर प्रतिनिधित्व मिला हुआ था। बंगाल और आसामको कुल मिलाकर जो ३४ सामान्य बैठकें दी गयी थीं, उनमें से ये लोग ६ सदस्य संविधान-सभाके लिए भेज सकते थे। विभाग 'क' में इससे एक तरहसे संतुलन-शक्ति उनके हाथमें आ जाती थी और यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न हल करनेके लिए उनको सत्ता मिल जाती थी कि उत्तर-पूर्वी भारतमें कोई समूह बनाया जाय या नहीं।

आखिरी प्रश्न था केन्द्रमें राष्ट्रीय सरकार और संविधान-सभाके अधिकारोंका। यदि संविधान-सभाको ऐसी सार्वभौम सत्ता धारण करनेवाली संस्थाके रूपमें काम करना हो, जो उसके सामने



आनेवाले मामलेमें जैसा चाहे वैसा निर्णय कर सके और अपने निर्णयों पर अमल करा सके, तब तो वह सच्चे अर्थमें अंतरिम राष्ट्रीय सरकारके द्वारा बुलाई जानी चाहिये। इसके साथ यह मर्यादा लगी हुई थी— और उसे कांग्रेसने स्वेच्छापूर्वक मान लिया था—कि कुछ बड़े साम्प्रदायिक प्रश्नोंके बारेमें दोनों बड़ी कौमोंके बहुमतसे निर्णय होना चाहिये। गांधीजीने लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको लिखा: “में जितना ही सोचता हूं और देखता हूं उतना ही मेरा यह मत दृढ़ होता जा रहा है कि संविधान-सभाके सदस्योंके चुनावका आदेश जारी होनेसे पहले उचित स्वरूपवाली राष्ट्रीय सरकार, जो **कानूनकी दृष्टिसे न सही परन्तु वास्तवमें** केन्द्रीय विधान-सभाके चुने हुए सदस्योंके प्रति **जिम्मेदार** हो, स्थापित हो जानी चाहिये। तभी—उससे पहले नहीं—आनेवाली घटनाओंकी सही तसवीर पेश की जा सकती है।” [वही] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

पहले मुद्दे पर कैबिनेट-मिशनका उत्तर स्पष्ट ‘नहीं’ था। यह मुद्दा था भारतसे ब्रिटिश सेनाएं हटा लेनेका। “नये संविधानके मातहत स्वाधीन भारतकी इच्छाके विरुद्ध भारतमें ब्रिटिश सेनाएं रखनेका तो कोई इरादा नहीं है . . . परन्तु अंतरिम कालमें . . . भारतकी सुरक्षाकी आखिरी जिम्मेदारी . . . ब्रिटिश पार्लियामेन्टकी है और इसलिए ब्रिटिश सेनाएं (यहां) रहनी चाहिये।” [कैबिनेट-मिशनका वक्तव्य, २५ मई १९४६] परन्तु इसके साथ ही खुश करनेके लिए यह आश्वासन दिया गया कि सम्राट्की सरकार इस बातके लिए “अत्यंत उत्सुक है कि यह अंतरिम काल छोटेसे छोटा हो।” [लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सका पत्र मौलाना आजादको, २२ मई १९४६]

सार्वभौम सत्ता (पैरेमाउन्टसी) के अमलके प्रश्नका उत्तर भी कैबिनेट-मिशनकी तरफसे उतना ही स्पष्ट था। सत्ता हस्तान्तरित होने तक उसका प्रयोग सम्राट्का प्रतिनिधि करता रहेगा और वह प्रयोग राष्ट्रीय सरकारके परामर्शसे नहीं होगा। हां, समान आर्थिक हितके मामलोंमें अंतरिम सरकार और देशी राज्योंके बीच सलाह-मशविरा हो सकता है। लेकिन यह भी कह दिया गया कि अंतरिम कालमें सम्राट्का प्रतिनिधि देशी राज्योंके लोकतांत्रिक आन्दोलनको बढ़ानेमें स्वाभाविक रूपमें सहायता देना चाहेगा, जिससे उनके लिए संघ-सरकारमें शामिल होना आसान हो जाय।



संविधान-सभाके कार्यमें यूरोपियनोंके भाग लेनेके बारेमें भी कैबिनेट-मिशन इसके सिवा कोई आश्वासन नहीं दे सका कि वह अपने प्रभावका उपयोग करके यूरोपियनोंको समझायेगा कि १६ मईकी योजनाके अनुसार उन्हें जो अधिकार दिया गया है उसका प्रयोग वे न करें। परन्तु सिद्धान्ततः इसका निर्णय यूरोपियनोंको ही करना है।

संविधान-सभाके अधिकारोंके बारेमें कैबिनेट-मिशनका कहना था कि एक बार संविधान-सभाके बन जाने और कार्यारंभ कर देनेके बाद “उसके अधिकारोंमें हस्तक्षेप करने या उसके निर्णयों पर प्रश्न उठानेका कोई इरादा नहीं है।” [कैबिनेट-मिशनका वक्तव्य, २५ मई १९४६]

अन्तमें कैबिनेट-मिशन केन्द्रीय विधान-सभाके प्रति कानूनी तौर पर जिम्मेदार अन्तरिम सरकार बनानेका प्रस्ताव माननेको तैयार नहीं हुआ, परन्तु उसने यह आश्वासन दिया कि: “सम्राट्की सरकार उन परिवर्तनोंके परिणामको स्वीकार कर लेगी”, जो केन्द्रमें करने हैं और “उनको पूरा महत्त्व देगी तथा भारतके दैनिक प्रशासन-कार्यमें भारतीय सरकारको अधिकसे अधिक स्वतंत्रता देगी।” [वही]

*

ये बातें और दूसरी सम्बन्धित कुछ बातें, जिनकी चर्चा गांधीजीने कैबिनेट-मिशनके साथ १८ और १९ मईको की थी, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं, इसलिए गांधीजीने उनके साथ हुई अपनी बातचीतका सार लिखकर जांचके लिए लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सके पास भेज दिया। लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने उत्तरमें लिख भेजा कि आपके पत्रके कुछ अंश कैबिनेट-मिशनके स्मरणोंके साथ मेल नहीं खाते। उन्होंने साथमें एक नोट भेजा जिसमें मतभेदके मुद्दे लिख दिये और इस बातसे साफ इनकार किया कि सर स्टैफर्ड क्रिप्सने कभी यह “स्वीकार किया था” कि भूतकालमें सार्वभौम सत्ताका उपयोग देशी राज्योंकी प्रजाकी स्वतंत्रता और प्रगतिका दमन करके राजाओंकी रक्षाके लिए किया गया था: “सर स्टैफर्डने जो कुछ कहा था उसका आप गलत अर्थ लगा रहे हैं। उन्होंने यह कहा था कि उन्हें इस प्रचलित मान्यताका पता है कि भूतकालमें सार्वभौम सत्ताका कुछ मामलोंमें प्रजाके विरुद्ध राजाओंका समर्थन करनेके लिए उपयोग किया गया था . . .” [लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सका पत्र गांधीजीको, २१ मई १९४६]



और मुद्दे भी ऐसे थे जिन पर कैबिनेट-मिशनके स्मरणमें फर्क था। लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सके पत्रमें आखिरी बात यह कही गई थी कि “कैबिनेट-मिशन चाहता है कि मैं यह बात विशेष रूपसे स्पष्ट कर दूं कि स्वाधीनता नये संविधानके अमलमें आनेके बाद आयेगी, न कि उसके पहले।”

गांधीजीने दूसरे दिन उत्तर दिया: “मैं तुरन्त उत्तर देनेके लिए तो आपका आभारी हूं . . . परन्तु यह जरूर कहूंगा कि यह उत्तर दुर्भाग्यपूर्ण है। इसमें वही सत्ताधारियोंकी पुरानी मनोवृत्तिकी गंध आती है। क्या ‘व्यवहारमें स्वाधीनता’ के सूत्रकी कोई बुनियाद ही नहीं है ? मैंने अपने पत्रमें जो कुछ कहा है, उस सब पर मैं अडिग हूं। . . . मैं तो समझा था कि साम्राज्यवाद भारतसे हमेशाके लिए चला गया है। लेकिन आपका पत्र साम्राज्यवादका उत्तम नमूना है। यह बात आपका एक पुराना मित्र लिख रहा है।”

परन्तु यह सब “गर्जना और प्रति-गर्जना” ही सिद्ध हुआ ! दोनों एक-दूसरेको बहुत अच्छी तरह समझते थे। बादमें ‘प्रेमपत्रों’ का आदान-प्रदान हुआ और सारा झगड़ा गायब हो गया !

२४ मई, १९४६

गांधीजी द्वारा लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको :

प्रिय लॉर्ड : . . . आशा है, आपके परिश्रमका आप पर बहुत ज्यादा बोझ नहीं पड़ रहा होगा।
आपका सच्चा, मो. क. गांधी

२५ मई, १९४६

लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स द्वारा गांधीजीको :

प्रिय गांधीजी: . . . मैं यहां भारतको सार्वभौम सत्ता और स्वाधीनताके पथ पर अग्रसर करनेके विशेष हेतुसे आया हूं और मुझे आपके सहयोगकी बड़ी जरूरत है। आपका सच्चा, पेथिक-लॉरेन्स

२७ मई, १९४६

गांधीजी द्वारा लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको :

प्रिय लॉर्ड : . . . आशा है, मिशनका सब काम अच्छी तरह पूरा हो जायगा। आपका सच्चा,
मो. क. गांधी



२८ मईको कांग्रेस कार्यसमितिके सारे सदस्य बिखर गये और गांधीजी थोड़ेसे आरामके लिए उनमें से कुछके साथ मसूरी चले गये। जब तक १६ मईवाली योजना पर मुस्लिम लीगका निर्णय मालूस न हो जाय तब तक दिल्लीमें उनके लिए और कुछ काम न था। और मुस्लिम लीग कौंसिलकी बैठक ६ जूनसे पहले नहीं हो सकती थी, क्योंकि जिन्ना कौंसिलकी बैठक बुलानेके लिए हमेशाकी तरह १५ दिनका नोटिस चाहते थे।

दिल्लीकी झुलसानेवाली गर्मी और आंधियोंका अनुभव लेनेके बाद महात्माजी मसूरी पहुंचे, तब हवाखोरीके पहाड़ी स्थलोंकी महारानीके समान मसूरीने अपनी ठंडी और देवदारकी सुगंधसे सुगंधित हवाओं, वृक्षोंकी घनी छायावाले मार्गों तथा घने जंगलोंवाली पहाड़ियों तथा दर्रोसे उन्हें थोड़ा स्वागतयोग्य आराम दिया। परन्तु गांधीजीको मसूरीके फैशन-परस्त लोगोंके वैभव-विलास और सुख-चैनको देखकर बेचैनी होती थी। वे लोग मसूरीमें आनंद भोगते थे, जब कि उनका भारी सामान पीठ पर उठा कर और सीधी चढ़ाई चढ़ कर उसे तड़क-भड़कवाले होटलोंमें ले जानेवाले चिथड़ोंमें लिपटे मजदूरकी कमर उनके खातिर झुककर दुहरी हो जाती थी; और रिक्शा खींचनेवालोंका दम भर जाता था और रिक्शा खींचनेके अपार श्रमसे वे हृदय या फेंफड़ेके रोगोंके शिकार हो जाते थे और असमय ही मृत्युकी गोदमें सो जाते थे। अपनी प्रार्थना-सभाओंमें आनेवाले इन फैशन-परस्तोंको इन बातोंका स्मरण कराकर गांधीजीने उनकी अन्तरात्माको जाग्रत किया। गांधीजीको इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने अपनी मंडलीके दो सदस्योंको उन गरीबोंके गंदे, अंधेरे तथा हवा-प्रकाशसे वंचित झोंपड़ोंको देखनेके लिए भेजा और उनकी रिपोर्ट 'हरिजन' में प्रकाशित की। उन्होंने धनवान लोगोंको समझाया कि कोई ऐसी धर्मशाला या मुसाफिरखाना बना दिया जाय, जहां गरीब लोग ठहर सकें और पहाड़के ठंडे जलवायुका लाभ उठा सकें : “यह बड़े दुःखकी बात है कि इस गरीब देशमें, जहां धर्मग्रन्थोंके अनुसार दरिद्रताको कुछ गौरव प्राप्त है, सार्वजनिक स्थानोंमें गरीबोंके साथ लगभग तिरस्कारका व्यवहार किया जाता है और उस तिरस्कारको ग्रहण करनेके लिए उन्हें कीमत भी चुकानी पड़ती है।” [हरिजन, १६ जून १९४६, पृ. १८४]



गांधीजीके मसूरीके निवास-कालमें एक विदेशी पत्र-प्रतिनिधिने उनसे पूछा : “अगर आपको एक दिनके लिए भारतका तानाशाह बना दिया जाय, तो आप क्या करेंगे?”

गांधीजीने उत्तर दिया: “प्रथम तो मैं उसे स्वीकार ही नहीं करूंगा। परन्तु यदि मैं एक दिनके लिए तानाशाह बन ही गया, तो दिल्लीके हरिजनोंके झोंपड़े, जो वाइसरॉय-भवनके अस्तबल जैसे हैं, साफ करनेमें वह दिन बिताऊंगा।” [हरिजन, २३ जून १९४६, पृ. १९९]

“मान लीजिये कि लोग आपकी तानाशाही दूसरे दिन भी जारी रखें ?”

“तो दूसरे दिन भी वही पहले दिनका काम जारी रहेगा।”

एक और मित्र बोले, “आपने हमें स्वाधीनताके द्वार तक पहुंचा दिया है। आप तो इसका श्रेय अहिंसाको ही देंगे। परन्तु हम मानते हैं कि हमें आपकी अहिंसाकी अपेक्षा सत्यसे अधिक बल मिला है।”

गांधीजीने उत्तरमें कहा: “आपका यह खयाल गलत है . . . कि देशको अहिंसाकी अपेक्षा सत्यसे अधिक बल मिला है। इसके विपरीत, मेरा दृढ़ विश्वास है कि देशने जो कुछ प्रगति की है, वह अहिंसाको संग्रामकी पद्धति बनानेके कारण ही हुई है।” [वही]

मित्रने कहा: “मेरा मतलब यह है कि देशने आपकी अहिंसाको तो नहीं समझा, परन्तु सत्यको समझ लिया और इसीसे उसकी शक्ति बढ़ गई।”

गांधीजीने जवाब दिया, “बात इससे बिल्कुल उल्टी है। देशमें इतना ज्यादा असत्य छाया हुआ है कि कभी कभी मेरा दम घुटने लगता है। इसलिए मेरा दृढ़ विश्वास है कि अहिंसाके पालनसे ही हम यहां तक पहुंचे हैं, चाहे उस पालनमें कितनी ही त्रुटि रही हो। साथ ही, मैंने सत्यको गौण स्थान नहीं दिया है। . . .”

“फिर भी आपका भार हमेशा अहिंसा पर रहता है। आपने अहिंसाके प्रचारको अपने जीवनका ध्येय बनाया है।”



“आपका यह खयाल भी गलत है। अहिंसा लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो सत्य है। परन्तु हमारे पास अहिंसा-पालनके सिवा मानव-सम्बन्धोंमें सत्यकी साधनाका कोई और उपाय नहीं है। . . . क्योंकि अहिंसा साधन है, इसलिए स्वाभाविक रूपमें हमारे दैनिक जीवनमें अहिंसाका ज्यादा सम्बन्ध रहता है। इस कारण हमें अपने यहांके आम लोगोंको अहिंसाकी ही शिक्षा देनी पड़ेगी। सत्यकी शिक्षा तो अहिंसाकी शिक्षासे अन्तमें उन्हें मिल ही जायगी।”

७ जूनको गांधीजी लगभग १७५ मील मोटरमें यात्रा करके आधी रातको दिल्ली लौटे। यमुना-पुल पर उनकी गाड़ीको सन्तरीने रोक दिया। सन्तरीने गाड़ीकी खिड़कीमें अपना सिर डाल कर पूछा, “गाड़ीमें कौन है?” सिक्ख ड्राइवरने उत्तर दिया, “भारतके गरीबोंके राजा हैं !” संतरीने श्रद्धासे सिर झुका कर कहा, “गाड़ी आगे जाने दो।”

*

जब ८ जूनको कांग्रेस कार्यसमितिकी बैठक हुई, तो मालूम हुआ कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स जिन्नासे मिले थे और जिन्नाने स्वीकार कर लिया था कि केन्द्रमें मिश्र अन्तरिम सरकार रची जाय, जिसमें समान संख्याका विचार किये बिना सबसे योग्य व्यक्तियोंको लिया जाय। ११ जूनको गांधीजीके साथ हुई एक मुलाकातमें वाइसरॉयने सुझाया कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग मिल कर इस आधार पर केन्द्रमें मिश्र सरकार बनानेके लिए नाम निश्चित कर लें। गांधीजीने वाइसरॉयके प्रस्तावका स्वागत किया। उन्होंने कहा कि वे लोग “प्रमाणित योग्यता और शुद्धता” वाले व्यक्ति होने चाहिये; [गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १२ जून १९४६] किसीको भी समान संख्याकी बात नहीं करनी चाहिये। वे एक बन्द कमरेमें बैठ जायं और जब तक समझौता न हो जाय तब तक कोई बाहर न निकले। अगर तमाम कोशिशोंके बावजूद दोनों पक्षोंमें समझौता न हो, तो दोनों पक्षोंकी अलग अलग सूचियोंके गुण-दोषकी जांच वाइसरॉयको करनी चाहिये और दोनोंमें से किसी एक सूचीको, “न कि दोनोंकी मिलावटको”, स्वीकार कर लेना चाहिये।

परन्तु अब एक और कठिनाई पैदा हो गई। जिन्ना कांग्रेस-अध्यक्ष मौलाना आजादके साथ एक ही टेबल पर बैठनेको तैयार नहीं थे, क्योंकि वे गैर-लीगी मुसलमान थे। हिन्दू ‘शत्रु’ थे, परन्तु गैर-लीगी



मुसलमान गद्दार थे; जिन्ना ऐसे 'गद्दारों' से कोई वास्ता नहीं रख सकते थे ! लेकिन अपनी तरफसे कांग्रेस इन शर्तों पर जिन्नाके साथ कोई संधि-वार्ता करनेको तैयार नहीं थी। वाइसरॉयने एक उपाय सुझाया कि प्रस्तावित सम्मेलनमें कांग्रेसके अध्यक्ष मौलाना साहबका प्रतिनिधित्व पंडित नेहरू करें। गांधीजीने कांग्रेसको सलाह दी कि निबटारेके खातिर यह बात मान ली जाय, बशर्ते कि यह स्पष्ट कर दिया जाय कि पंडित नेहरू वहां केवल मौलाना साहबके प्रतिनिधि बन कर ही जायेंगे।

१२ जूनको दोपहरमें पंडित नेहरू प्रस्तावित सम्मेलनके लिए वाइसरॉय-भवन गये। परन्तु जिन्ना नहीं आये। पंडित नेहरूने वाइसरॉयको अन्तरिम सरकारके लिए कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित नामोंकी सूची दिखाई। परन्तु जो बातचीत हुई उसमें पंडित नेहरूको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक तरहसे वाइसरॉयने फिर वही समान संख्याकी बात निकाली। दूसरे दिन गांधीजीने लॉर्ड वेवेलको एक पत्रमें लिखा: "आप एक महान योद्धा हैं—साहसी सैनिक हैं। आप सही बात करनेकी हिम्मत दिखाइये। आपको एक या दूसरा घोड़ा चुन लेना होगा। जहां तक मैं समझता हूं, आप दोनों घोड़ों पर एक साथ सवारी करनेमें कभी सफल नहीं होंगे। कांग्रेस या लीगके दिये हुए नामोंमें से किसी एकके नाम आप पसन्द कर लीजिये। ईश्वरके लिए नामोंका बेमेल मिश्रण न कीजिये और ऐसा करनेके प्रयत्नमें भयंकर विस्फोट न कीजिये।"

परन्तु लॉर्ड वेवेल उस मिट्टीके नहीं बने थे। शिमलामें १९४५ में हुई पहली मुलाकातमें गांधीजीने उनके सामने यह आशा प्रकट की थी कि सैनिक वाइसरॉयमें उन्हें कवि वर्ड्सवर्थके 'सुखी योद्धा' के दर्शन होंगे:

वीर यह, उसका विधान विवेक है,
मित्र-सा जिसका लिए आधार दृढ़—
क्योंकि जब बचने जधन्य अनिष्ट से
सनुज धरता छोर अन्य अनिष्ट का;
और जो कुछ सगूण, सुकृत कि भव्य है
क्वचित् ही होता प्रतिष्ठित सत्य पर;



—हर विजय है निहित मानव की सदा
स्वयं अपने ही सु-आत्मचरित्र में,
जान इतना मर्म-भर यह वीरवर,
सत्य पर शिवकी प्रतिष्ठा कर रहा।

मुलाकातके अन्तमें लॉर्ड वेवेलने अपनी ही संग्रह की हुई एक काव्यमाला 'अदर मेन्स फ्लॉवर्स' की एक प्रति गांधीजीको भेंट की। गांधीजीने घर लौट कर उत्सुकतापूर्वक उसके पन्ने पलटे, तो देखा (क्या यह केवल संयोग ही था ?) कि उसमें उनकी प्रिय कविता "कैरेक्टर ऑफ दि हैप्पी वॉरियर" नहीं थी !

गांधीजीने एक अत्यन्त व्यक्तिगत पत्रमें सर स्टैफर्ड क्रिप्सको लिखा:

आप अपने जीवनका सबसे कठिन कार्य हाथमें ले रहे हैं । मुझे तो ऐसा दीखता है कि कैबिनेट-मिशन आगके साथ खेल रहा है। अगर आपमें साहस हो तो आप वही करेंगे, जो मैंने आरम्भमें ही सुझाया था। . . . आप रोटीको रख भी लें और उसे खा भी लें, ये दोनों बातें एक साथ नहीं कर सकेंगे। आपको मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनोंमें से एकका चुनाव करना पड़ेगा। दोनों संस्थाएं आपकी ही कृतियां हैं। . . . कभी कांग्रेसको, कभी लीगको और फिर कांग्रेसको मनानेका प्रयत्न करनेसे आप अपनेको थका लेंगे, परन्तु इससे काम नहीं बनेगा । आप या तो जो सही है उस पर कायम रहिये अथवा ब्रिटिश नीतिकी दृष्टिसे आपको जो ठीक लगे वह कीजिये । दोनों ही सूरतमें बहादुरीकी जरूरत है। इतना ही है कि कार्यक्रम पर आप स्थिर रहिये। आकाश टूट पड़े तो भी अपनी तारीखों पर अटल रहिये। १६ (जून) को आप चले जाइये, भले ही आप कांग्रेसको मिश्र सरकार बनाने दें या लीगको बनाने दें । अगर आपका यह विचार हो कि आपकी पैदा की हुई इन दोनों संस्थाओंसे संचित ब्रिटिश सयानपन अधिक ज्ञानवान है, तो मुझे और कुछ नहीं कहना है। परन्तु मेरी कल्पना यह है कि आप उस ढांचेमें नहीं ढले हैं। [गांधीजीका पत्र सर स्टैफर्ड क्रिप्सको, १३ जून १९४६]



पत्रके अन्तमें यह सलाह दी गई थी : “यदि वीरोचित ब्रिटिश घोषणा पर भारतकी आशाओंके अनुसार अमल न हो, तब तो आप निजी जीवनमें डूब जाइये। बुद्धिमानको इशारा काफी है।”

सर स्टैफर्डने उत्तर दिया: “मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि न तो मुझमें और न मेरे साथियोंमें ही साहसकी कमी है, परन्तु **हम विवेकके द्वारा उस साहसकी तीव्रताको कम करना चाहते हैं।**” [सर स्टैफर्ड क्रिप्सका पत्र गांधीजीको, १३ जून १९४६] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) गांधीजीने विभिन्न अवसरों पर उन्हें “इन कठिन प्रश्नोंका निबटारा करते समय अपार धैर्य दिखानेकी” सलाह दी थी। उसका उल्लेख करते हुए सर स्टैफर्डने आगे लिखा: “अवश्य ही मैं घर लौट कर आराम करनेकी अपनी इच्छाको अपने इस निश्चयके सामने हरगिज महत्त्व नहीं दूंगा कि कोई ऐसा प्रयत्न न छोड़ा जाय, जिससे भारतकी कठिन समस्याओंको हल करनेमें सहायता मिलती हो। . . . मुझे बड़ी आशा है कि भारतसे जानेके पहले हम इस समस्याको हल करनेमें सहायक हो सकेंगे।”

गांधीजीका मन अनेक अशुभ आशंकाओंसे भरा था । वस्तुस्थिति बिगड़ती जा रही थी। क्या इसका कारण यह था कि सदाकी भांति सिविल सर्विसकी गुप्त शक्ति कैबिनेट-मिशनके इरादोंको निष्फल बनानेका काम कर रही थी ? १९४५ के शिमला-सम्मेलनमें वाइसरॉयने यह स्वीकार किया था कि कांग्रेसने प्रामाणिकतासे कार्य किया है। उस समय तमाम अल्पसंख्यकोंका स्वर कांग्रेसके साथ मिला हुआ था । गांधीजीने उस समय सलाह दी थी कि यदि लीग जिम्मेदारीका भार उठानेको तैयार न हो, तो वह कांग्रेसको सौंप दिया जाय । परन्तु ऐसा नहीं किया गया और सम्मेलनको निष्फल हो जाने दिया गया। और अब फिर कैबिनेट-मिशन लीग और कांग्रेसको साथ लानेकी कोशिश करके व्यर्थ ही पीड़ाका समय बढ़ा रहा था। यह काम उसके बूतेके बाहर था।

आजाद हिन्द फौजको इस बातकी प्रतीति हो गई थी कि स्वतंत्रताकी परिस्थितियोंमें वास्तविकताका सामना करते हुए वह जिस प्रकार सोचती और करती थी, वह उससे सर्वथा भिन्न था जिसके भारतीय चरित्रमें जन्म-सिद्ध होनेकी बात उसे सिखाई गई थी। आजाद हिन्द फौजमें साम्प्रदायिक समस्या पूरी तरह हल हो गई थी। कैबिनेट-मिशनके व्यर्थ परिश्रमसे इसकी उल्टी बात साबित हुई । क्या गांधीजी बार बार यह नहीं लिख चुके थे कि जब तक तीसरा पक्ष भारतमें मौजूद है



तब तक सच्ची हिन्दू-मुस्लिम एकताकी आशा नहीं रखी जा सकती ? उन्होंने अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें कहा, “गुलाम और उनके मालिक दोनों अस्वाभाविक स्थितिमें रहते हैं। वे स्वाभाविक ढंगसे सोच और काम कर नहीं सकते ।” [हरिजन, २३ जून १९४६, पृ. १८६] एक मित्रके साथ बातचीत करते करते गांधीजीने उनसे कहा: “मुझ पर एक अज्ञात भय सवार हो गया है। . . . इसके परिणाम-स्वरूप मुझे पक्षाघात-सा महसूस होता है । परन्तु मैं अपना निराधार सन्देह आपको बता कर आपका मन नहीं बिगाड़ूंगा।” [वही] उन्होंने कैबिनेट-मिशनको एक ऐसी माताकी उपमा दी, जो यह देखती है कि उसका बच्चा मर रहा है। “फिर भी वह आशा नहीं छोड़ती। वह डॉक्टरों, वैद्यों और नीम-हकीमोंके नुस्खे आजमाती रहती है। कभी एकका नुस्खा, फिर दूसरेका ओर फिर तीसरेका। वह आखिरी दम तक इलाज करती ही रहती है।” [प्रार्थना-प्रवचन, १४ जून १९४६] इसी तरह कैबिनेट-मिशन भी आशा नहीं छोड़ना चाहता।

१३ जूनको यूरोपियन एसोसियेशनके अध्यक्षके वक्तव्यसे सामने खड़ी चट्टानोंकी पहली चेतावनी मिली। उस वक्तव्यमें यूरोपियनोंका यह विश्वास व्यक्त किया गया था कि “संविधान बनानेमें उन्हें भी अपना कर्तव्य पूरा करना और योगदान देना है” और वे अपने अधिकारका उपयोग करेंगे। [दि स्टेट्समैन, १३ जून १९४६] परन्तु यदि कांग्रेस और लीग मिल कर उनसे अपील करें, तो वे अपनी बैठकें घटा सकते हैं !

गांधीजीने ‘हरिजन’ में इसकी आलोचना की, “यूरोपियन एसोसियेशनके अध्यक्षने शेरका पंजा दिखा दिया है।” [हरिजन, २३ जून १९४६, पृ. १८८] उन्होंने १४ जूनकी प्रार्थना-सभामें कहा, “हमें यह समझ लेना चाहिये कि उनके सामने भिखारी बन कर जानेका कोई प्रश्न नहीं है।” यूरोपियनोंका पिछला इतिहास भी ऐसा नहीं था, जिससे जनतामें विश्वास पैदा होता। उन्होंने सदा ही अपने मतका उपयोग ब्रिटिश सत्ताको भारतमें कायम रखनेमें किया था। और उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच फूट डालनेका ही काम किया था। कानूनी प्रश्नको छोड़ भी दें तो शिष्टता और सद्भावका यह तकाजा था कि वे भारतवासियोंके मामलोंमें दखल न दें और न तो संविधान-सभाके उम्मीदवारोंके चुनावमें मतदान करें और न उम्मीदवार बन कर खड़े हों। कैबिनेट-मिशनकी इस दलीलके बारेमें कि यूरोपियनों पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है, गांधीजीने लिखा:



भारतमें ब्रिटिश सत्ताकी चार भुजाएं हैं—सरकारी सेना, सरकारी मुल्की कर्मचारी, गैर-सरकारी मुल्की कर्मचारी और गैर-सरकारी सेना। इसलिए जब शासक-वर्ग यह कहता है कि गैर-सरकारी यूरोपियन उसके नियंत्रणमें नहीं हैं, तो यह बूढ़ा बात मालूम होती है। सरकारी कर्मचारियोंका अस्तित्व गैर-सरकारी लोगोंके लिए ही है। अगर गैर-सरकारी लोग न हों, तो सरकारी कर्मचारियोंका कोई काम ही नहीं रहेगा। ब्रिटिश झंडा ब्रिटिश व्यापारके पीछे पीछे यहां आया। सारा भारत ब्रिटिश सेनाके आधिपत्यके नीचे है। . . . तिनकेसे ही पता चलता है कि हवा किस तरफ बह रही है। . . . यूरोपियन एसोसियेशनका यह अविवेकपूर्ण कृत्य . . . मिशनके कार्यकी वास्तविकतामें रहे विश्वासको हिला देनेवाला सबसे बड़ा अशान्तिकारक तत्त्व है। . . . क्या ब्रिटिश बन्दूकोंकी रक्षामें रहनेवाले भारतके यूरोपियन लोग अपनी बन्दूकें बन्द करके अपने भविष्यको भारतकी आम जनताके सद्भाव पर ही सुरक्षित नहीं समझ सकते ? . . . उन्होंने अपने हालके वक्तव्यमें यहां तक कहनेकी मूर्खता दिखाई है कि वे स्वयं अपने लिए तो मत नहीं देंगे, परन्तु भारतीय चमड़ीवाले अपने पिट्टुओंको चुनवानेके लिए अपने मताधिकारका प्रयोग करेंगे ! संभव हुआ तो यह चालाकी वे बार बार करेंगे, जिससे वे अब तक मुट्ठीभर होते हुए भी भारतके करोड़ों मूक लोगोंका गला घोट सके हैं। यह पीड़ा कब तक बनी रहेगी ! [वही]

अपनी आदतके अनुसार उन्होंने मामलेको यहीं लाकर नहीं छोड़ दिया। उन्होंने संविधान बनानेके कार्यमें यूरोपियनोंके भाग लेनेके वैधानिक अनौचित्य पर कानूनी मत एकत्र करना और उन्हें प्रकाशित करना शुरू कर दिया। पहला मत दिल्लीके एडवोकेट श्री शिवनारायणसे मिला। वे उस समय तक ऊंचे कानूनी क्षेत्रोंमें अज्ञात-से ही थे। राजधानीके वाक्पटु राजनीतिज्ञ अपनी अपनी भौंहें तान कर एक-दूसरेसे कहने लगे, “यह शिवनारायण कौन है? हमने तो कभी उसका नाम सुना नहीं !” गांधीजी मन ही मन हंस दिये। वे कौन हैं, इससे क्या बनता-बिगड़ता था ? महत्त्व तो उनकी कानूनी रायका था और इस बातका था कि उनकी राय सबसे पहले आई। उसके तुरन्त बाद डी. एन. बहादुरजी, सर अल्लादि कृष्णस्वामी, कन्हैयालाल मुंशी और बख्शी टेकचंदकी कानूनी रायें भी एकके बाद एक मिलीं और प्रकाशित की गईं। ये सब प्रथम श्रेणीके प्रसिद्ध वकील थे। इससे यूरोपियन एसोसियेशनका अहंकारपूर्ण दावा तो पूरी तरह दब गया। परन्तु उसे विधिवत् वापस नहीं लिया गया और न कैबिनेट-मिशनकी ओरसे



ही जितना आश्वासन वह पहले दे चुका था उससे अधिक कोई निश्चित आश्वासन दिया गया। अन्तमें १४ जूनको कांग्रेसके अध्यक्षने वाइसरॉयको लिखा: “जहां अधिकारोंका सम्बन्ध है वहां हम कृपा या सद्भावना पर अवलम्बित नहीं रह सकते।” और बात यहीं रुक गई।

अब समान संख्याकी कठिनाई बाकी रही। मुसलमान भारतकी सारी आबादीके चौथे भागसे कुछ अधिक थे। लोकतांत्रिक सिद्धान्तके अनुसार वे कुल प्रतिनिधित्वके एक-तिहाईसे कमका दावा कर सकते थे। परन्तु मुस्लिम लीगका तर्क यह था कि मुसलमान कोई अल्पसंख्यक जाति नहीं हैं, परन्तु एक ‘राष्ट्र’ हैं और एक राष्ट्रके नाते उनका संख्याबल चाहे जितना हो तो भी किसी रची जानेवाली सरकारमें बहुमतवाले समुदायके साथ उन्हें समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। मुस्लिम लीगकी समान संख्यावाली मांग लीगके ‘दो-राष्ट्रके सिद्धान्त’ का स्वाभाविक परिणाम थी। इस सिद्धान्तको कांग्रेसने पूरी तरह अस्वीकार कर दिया था। संविधानकी दृष्टिसे यह किसी लोकतांत्रिक व्यवस्थामें बहुमतकी समान कक्षामें खड़े होनेके अल्पमतके अनुचित दावेको उचित और तर्कशुद्ध दिखानेकी तरकीब थी। १९४५ में शिमला-सम्मेलनमें रखे गये प्रस्तावके अनुसार “सर्व हिन्दुओं और मुसलमानों” के बीच समान संख्याकी बात शुरू की गई थी। अब मुस्लिम लीग और कांग्रेसके बीच समान संख्याकी बात सामने आई। लेकिन दोनोंमें एक महत्वपूर्ण अन्तर यह था कि जहां पहले मुसलमानोंके ५ सदस्योंके हिस्सेमें एक गैर-लीगी मुसलमान शामिल किया जानेवाला था वहां अब सारे ही मुसलमान मुस्लिम लीगके सदस्य रहनेवाले थे। इसके अलावा, एक राष्ट्रवादी संस्थाकी हैसियतसे कांग्रेसको अपने छह सदस्योंके हिस्सेमें से एक जगह किसी राष्ट्रवादी मुसलमानके लिए और एक जगह परिगणित जातियोंके प्रतिनिधिके लिए सुरक्षित रखनी थी; इसलिए देशमें जो कौम बहुमतवाली थी, उसे १३ सदस्योंकी बनी अन्तरिम सरकारमें ४ के अल्पमतमें रह जाना पड़ता ! कांग्रेसके अध्यक्षने १४ जूनको वाइसरॉयको लिखा, “हम इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं कर सकते। यदि यूरोपियल मतदान और ‘समान संख्या’ के बारेमें यही स्थिति रहती है, तो मेरी समितिके लिए अनिच्छापूर्वक आपको यह बताना जरूरी हो जाता है कि आपके सामने जो कठिन काम है उसमें समिति आपकी कोई मदद नहीं कर सकेगी।”



वाइसरॉयके नाम कांग्रेस-अध्यक्षके १४ जूनके इस पत्रसे अन्तरिम सरकार रचनेके बारेमें कैबिनेट-मिशनकी बातचीतका अन्त आ गया। कुछ समयसे गांधीजीको फिर बेचैनी रहने लगी थी। उन घटनापूर्ण दिनोंकी मेरी डायरीके पन्ने पलटने पर मुझे १५ जूनकी तारीखमें यह चीज लिखी मिलती है:

बापू फिर अपनी 'अन्तःप्रेरणा' के प्रभावमें हैं ! पिछले तीन दिनसे उन्हें ऐसा लग रहा है कि बात बिगड़ रही है। वाइसरॉय सहित सभी लोग जिन्नासे भयभीत मालूम होते हैं और किसी भी कीमत पर उन्हें राजी करनेकी व्यर्थ कोशिश कर रहे हैं। वे मानते हैं कि जिन्नाका रवैया अनुचित है, फिर भी दोष सारा कांग्रेसके मत्थे ही मढ़ा जाता है ! क्रिप्स अपने साथियोंसे अलग पड़े हुए दिखाई देते हैं।

यह गांधीजीकी उस अज्ञेय अन्तःस्फूर्तिका उल्लेख है, जिससे उन्हें सभी बाहरी संकेतोंके विपरीत भावी घटनाओंका प्रायः पहलेसे आभास मिल जाता था।

१६ जूनको वाइसरॉय और कैबिनेट-मिशनने एक वक्तव्य निकाल कर अधिक बातचीत बन्द कर दी और अन्तरिम सरकार बनानेके लिए अपना ही प्रस्ताव प्रस्तुत किया। तदनुसार १४ व्यक्तियोंको निमंत्रण-पत्र भेजे गये, जिनमें छह कांग्रेसके हिन्दू सदस्य थे (इनमें से एक परिगणित जातिका सदस्य था), ५ मुस्लिम लीगके मुसलमान थे और ३ अल्पसंख्यक जातियोंके प्रतिनिधि थे—अर्थात् १ सिक्ख, १ भारतीय ईसाई और १ पारसी।

लॉर्ड वेवेलने वक्तव्यकी एक प्रति गांधीजीके पास पहलेसे ही भेज दी। नामोंकी सूचीमें पांचों मुस्लिम नाम वही थे, जो लीग द्वारा दिये गये थे। परन्तु कांग्रेसके दिये हुए नामोंमें उसकी सलाह लिये बिना परिवर्तन कर दिये गये थे। शरत् चन्द्र बोसका नाम हटा दिया गया था और उनके स्थान पर हरेकृष्ण मेहताबका नाम रख दिया गया था, जो कांग्रेसके अनुशासनमें थे। कांग्रेसने अपनी सूचीमें कांग्रेसकी एक महिला-सदस्यका नाम शामिल किया था। वे थीं राजकुमारी अमृतकौर, जो भारतीय ईसाई भी थीं। परन्तु उनका नाम भी नहीं रहा। डॉ. जाकिरहुसैनको एक राष्ट्रवादी मुसलमानकी हैसियतसे कांग्रेस अपने मनोनीत व्यक्तिके नाते सरकारमें रखना चाहती थी। लेकिन उन्हें भी नहीं लिया गया। कांग्रेसने लीगकी



५ नामोंकी सूचीमें अब्दुर्रब निश्तरको शामिल करने पर शुरूसे आपत्ति उठाई थी, क्योंकि वे १९४६ के चुनावमें हार गये थे। परन्तु वाइसरॉयने इस आपत्तिकी परवाह नहीं की। कांग्रेसके आग्रह पर १३ की मूल संख्याको बढ़ा कर १४ कर दिया गया, परन्तु वाइसरॉयकी सूचीमें १४वां नाम एक सरकारी अधिकारीका था। ये थे एन.पी. इंजीनियर—एडवोकेट जनरल, जिन्होंने आजाद हिन्द फौजके मुकदमोंमें सरकारी वकीलके तौर पर काम किया था। यह नाम भी कांग्रेससे किसी तरहका विचार-विमर्श किये बिना सम्मिलित कर दिया गया था।

१६ जूनको गांधीजीने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें जनताको धीरज रखनेकी सलाह दी। वे बोले, किसी चित्रको देखनेके दो तरीके हैं। या तो हम चित्रके उज्ज्वल पक्षको देख सकते हैं या कृष्ण पक्षको। मैं खुद तो उज्ज्वल पक्षको देखनेमें ही विश्वास करता हूं। इस दृष्टिसे वाइसरॉयकी घोषणामें जो दोष दिखाई देते हैं, वे असलमें उसकी खूबियां दिखाई देंगी। “आपको कैबिनेट-मिशनको भी सहन करना चाहिये। उन्हें साम्राज्यवादका उत्तराधिकार मिला है। वे उन संस्कारोंको एकदम नहीं छोड़ सकते। . . . वे एक दिनमें उन्हें तिलांजलि न दें, तो हमें उन्हें दोष नहीं देना चाहिये। हम उनकी नेकनीयती पर विश्वास रखें। हमें केवल सन्देहके आधार पर कोई काम नहीं करना चाहिये।”

रातको गांधीजी १॥ बजे उठ गये और कार्यसमितिके लिए वाइसरॉयकेनाम भेजे जानेवाले एक पत्रका मसौदा लिखवाया। उसमें उन्होंने खास तौर पर चार बातों पर जोर दिया: (१) मुस्लिम लीग चूंकि मानी हुई मुस्लिम संस्था है, इसलिए वह अपनी सूचीमें किसी गैर-मुस्लिम प्रतिनिधिको सम्मिलित नहीं कर सकती; (२) कांग्रेसके राष्ट्रवादी संस्था होनेके नाते अपनी सूचीमें किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको सम्मिलित करनेका अधिकार उसे होना ही चाहिये; (३) अपने ५ मुसलमानोंके हिस्सेके सिवा मुस्लिम लीग और किसी भी नामके चुनावमें कुछ नहीं कह सकती। इसका अर्थ यह होगा कि अल्पसंख्यकोंको दिये गये स्थानोंमें से कोई स्थान खाली हो, तो उसे भरनेके लिए नाम चुननेका अधिकार कांग्रेसको ही होगा; क्योंकि वह अपने सेवाके अधिकारसे सब वर्गोंका प्रतिनिधित्व करनेका दावा करती है; और (४) व्यवहारमें अन्तरिम सरकारको विधान-सभाके चुने हुए प्रतिनिधियोंके प्रति जिम्मेदार माना जाना चाहिये।



किन्तु कार्यसमितिने दूसरे दिन अपनी तीसरे पहरकी बैठकमें गांधीजीके मसौदेको लगभग खटाईमें डाल दिया। वाइसरॉयके प्रस्ताव पर तो समिति भी मोहित नहीं थी, परन्तु वह उसके सम्बन्धमें 'ना' नहीं कहना चाहती थी। शरत् बोसकी जगह हरेकृष्ण मेहताबका नाम रख देनेसे पैदा होनेवाली कठिनाई आसानीसे दूर की जा सकती थी, क्योंकि मेहताब कांग्रेसी थे और कांग्रेसकी सलाहको स्वीकार कर लेनेवाले थे। इसी तरह किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको सम्मिलित न करनेकी भूलको कांग्रेसकी सूचीमें एक हिन्दू सदस्यके स्थान पर एक राष्ट्रवादी मुसलमानको रख देनेसे दूर किया जा सकता था, यद्यपि इससे अन्तरिम सरकारमें बहुमतवाली जाति अल्पसंख्यक बन जाती। यूरोपियनोंके मतसे सम्बन्धित कठिनाई भी कुछ अंशमें दूर हो गई, जब यूरोपियन एसोसियेशनने घोषणा कर दी कि वह संविधान-सभाके चुनावोंमें भाग नहीं लेगा। अन्तरिम सरकारकी सत्ताके सम्बन्धमें लॉर्ड वेवेलने कांग्रेस-अध्यक्षके नाम लिखे अपने ३० मईके पत्रमें इससे इनकार कर दिया कि उन्होंने किसी भी समय वार्ताओंके दौरान यह कहा था कि अन्तरिम सरकारकी वही सत्ता होगी, जो औपनिवेशिक मंत्रि-मंडल (डोमिनियन कैबिनेट) की होती है। परन्तु उसी पत्रमें उन्होंने यह आश्वासन दिया था कि, "सम्राट्की सरकार नई अन्तरिम सरकारके साथ वैसा ही व्यवहार करेगी, जैसा किसी औपनिवेशिक सरकारके साथ करती है":

अत्यन्त उदार आशय जब किसी विधिवत् तैयार किये दस्तावेजमें प्रकट करने पड़ते हैं तब लगभग वे ऐसा रूप ग्रहण कर लेते हैं कि उन्हें पहचानना कठिन होता है। मुझे कोई शक नहीं कि अगर आप मेरा विश्वास करनेको तैयार हों, तो हम इस ढंगसे सहयोग सिद्ध कर सकेंगे जिससे भारतको बाहरी नियंत्रणसे मुक्त होनेकी प्रतीति हो जाय और नया संविधान बनते ही वह पूर्ण स्वाधीनताके लिए तैयार हो जाय।

वाइसरॉयकी अपीलके मैत्रीपूर्ण स्वरको और आनेवाले संकट—अन्नका संकट और रेलवे हड़तालकी संभावना—को देखते हुए कार्यसमितिने बाकीके मुद्दोंको इतना खींचना उचित नहीं समझा कि बात टूट जाय। इसलिए अन्तरिम सरकारकी योजना उस समय जिस रूपमें सामने आई. उस रूपमें उसे स्वीकार करनेका अस्थायी निर्णय कार्यसमितिकी १८ जूनकी बैठकमें किया गया और उस आशयके प्रस्तावका मसौदा तैयार कर लिया गया। परन्तु वाइसरॉयको उसकी सूचना नहीं की गयी, क्योंकि कार्यसमिति खान अब्दुल गफ्फारखांसे सलाह-मशविरा करना चाहती थी। दूसरे दिन उनके आनेकी



संभावना थी। उनसे परामर्श विशेष रूपसे मुस्लिम लीगकी सूचीमें अब्दुर्ब निश्तरका नाम शामिल करनेके बारेमें करना था। परन्तु दूसरे दिन पंडित नेहरू काश्मीर चले गये। वहां शेख अब्दुल्ला पर मुकदमा चल रहा था। शेख अब्दुल्ला काश्मीर नेशनल कान्फरेन्सके अध्यक्ष थे। यह राष्ट्रीय संस्था अखिल भारत देशी राज्य लोक-परिषद्से सम्बद्ध थी, जिसके अध्यक्ष पंडित नेहरू थे। कार्यसमितिके कुछ सदस्य भी उसी दिन दिल्लीसे चले गये, क्योंकि उन्होंने समझा कि दिल्लीमें उनका काम लगभग पूरा हो गया है। परन्तु उसी समय अचानक एक नाटकीय घटना हो गई। “दि स्टेट्समैन” ने लॉर्ड वेवेलको लिखे जिन्नाके एक पत्रका सार छाप दिया। उसमें अन्तरिम सरकारके बारेमें कुछ आश्वासन मांगे गये थे, जिनमें से कुछ बिलकुल नये थे और जिनसे कांग्रेस कभी भी सहमत नहीं हो सकती थी। इस पर कांग्रेस-अध्यक्षने वाइसरॉयको लिखा कि उन्हें जिन्नाके मूल पत्र और वाइसरॉयके उत्तरकी नकल दी जाय। वाइसरॉयने अपने २० जून, १९४६ के पत्रमें जिन्नाको जो आश्वासन दिये, उनमें से एक इस आशयका था कि दोनों बड़े दलोंकी स्वीकृतिके बिना नामोंकी सूचीमें सिद्धान्त रूपसे कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा। इसका अर्थ यह था कि लीगकी अनुमतिके बिना अपने हिस्सेके भीतर भी कांग्रेस किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको नामजद नहीं कर सकती थी। वाइसरॉयने जिन्नाको दूसरा आश्वासन यह दिया था कि अल्प-संख्यकोंकी जगहोंमें (परिगणित जातियों सहित) से कोई जगह खाली हुई, तो उसे भरनेके पहले दोनों बड़े दलोंसे सलाह ली जायगी। इससे मुस्लिम लीगको परिगणित जातियोंका प्रतिनिधि चुननेमें भी वस्तुतः निषेधाधिकार (वीटो) मिल जाता था। ये जातियां हिन्दू समाजका अविभाज्य अंग थीं और वाइसरॉय उन्हें ऐसा ही समझते थे। उन्होंने कांग्रेसके साथ उन जातियोंको जोड़ भी दिया था, जब कांग्रेसके अध्यक्षके नाम लिखे अपने १५ जूनके पत्रमें उन्होंने इस बातसे इनकार कर दिया कि ब्रिटिश कैबिनेट-मिशन और उनके द्वारा प्रस्तावित अन्तरिम सरकारकी बुनियादमें लीग और कांग्रेसकी अथवा हिन्दुओं और मुसलमानोंकी समान संख्या है, क्योंकि उस सरकारमें ६ कांग्रेसी (एक परिगणित जातिके प्रतिनिधि सहित) और ५ मुस्लिम लीगके प्रतिनिधि होंगे और ६ हिन्दू (५ सवर्ण हिन्दू और एक परिगणित जातिका प्रतिनिधि) और ५ मुसलमान होंगे। परन्तु अब समान संख्या पिछले दरवाजेसे फिर वापस लाई जा रही थी, यद्यपि उसको सिद्धान्त रूपसे स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया गया था। वेवेल-जिन्नाके बीच हुए समझौतेके अनुसार ऐसा मालूम होता था कि परिगणित जातिका प्रतिनिधि



हिन्दुओंके हिस्से और कांग्रेसी हिस्सेसे बाहर माना गया था; अन्यथा उसके चुनावमें मुस्लिम लीगकी कोई आवाज क्यों होनी चाहिये थी ? इसका यह परिणाम होता कि न सिर्फ कांग्रेस और लीगके बीच, बल्कि सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच भी समान संख्या स्थापित हो जाती और कांग्रेसको हिन्दू संगठनका भी नहीं, परन्तु 'सवर्ण हिन्दू' संगठनका दर्जा मिल जाता !

इससे कार्यसमितिके मनमें यह भावना पैदा हुई कि वाइसरॉय लीगके साथ मिल न गये हों तो भी उसके साथ पक्षपात जरूर कर रहे हैं। जब २२ जूनको वाइसरॉयने कांग्रेस-अध्यक्षके नाम लिखे अपने एक पत्रमें कहा कि कांग्रेस अपने प्रतिनिधियोंमें अपनी पसन्दके एक मुसलमानको शामिल करनेकी अपनी मांगका आग्रह न रखे, तब तो कार्यसमितिकी यह भावना और भी दृढ़ हो गई : "कैबिनेट-मिशनके या मेरे लिए यह अनुरोध स्वीकार करना संभव नहीं है। इसके कारण आप भलीभांति जानते हैं।" यह उस जवाबसे स्पष्टतः उल्टा था, जो कि वाइसरॉयने १५ जूनको कांग्रेस-अध्यक्षको दिया था, जब कांग्रेसने अन्तरिम सरकारके लिए लीगके एक मनोनीत सदस्यके विषयमें आपत्ति की थी: "मैं कांग्रेसका यह अधिकार स्वीकार नहीं कर सकता कि वह मुस्लिम लीग द्वारा रखे हुए नामों पर आपत्ति उठाये। इसी तरह लीग द्वारा उठाई गई आपत्तियोंको भी मैं स्वीकार नहीं करूंगा।"

गांधीजी शक्तिके सन्तुलनकी दृष्टिसे इस प्रश्न पर नहीं सोचते थे। उनके लिए यह एक बुनियादी प्रश्न था। कांग्रेसने सदा एक राष्ट्रीय संगठन होनेका दावा किया था। राजनीतिक आत्महत्या किये बिना वह समूची जातियोंका प्रतिनिधित्व करनेके अपने अधिकार और कर्तव्यका सौदा किसी भी प्रकारके व्यूहात्मक कारणोंसे नहीं कर सकती थी। इसी तरह वह राजनीतिक लाभके लिए अपने परखे हुए और वफादार मित्रोंको भी धता नहीं बता सकती थी। ऐसी अवसरवादिता उसके नैतिक जीवनको नष्ट कर देती और अन्तमें उसके लिए घातक सिद्ध होती। यह तो अपनी आत्माको बेच कर सारी दुनिया पाने जैसा धाटेका सौदा होता। परन्तु कार्यसमितिकी अपनी कठिनाइयां थीं। पुनः अपनी डायरीका एक उद्धरण यहां देता हूं:

नई दिल्ली, १९ जून, १९४६



मंत्रि-मंडलमें किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको शामिल करनेके लिए कांग्रेसको एक हिन्दू नाम छोड़ देना होगा। यदि मौलाना साहब जैसे किसी प्रसिद्ध व्यक्तिको वहां रख दिया जाय, तो किसीको आपत्ति नहीं होगी, भले ही इससे हिन्दुओंका हिस्सा कम हो जाय। परन्तु मौलानाको यह स्थिति बड़ी नाजुक लगती है और बापूके खुद समझाने पर भी उन्होंने बिलकुल इनकार कर दिया है।

बापूने आज कार्यसमितिको अन्तिम सूचना दे दी कि यदि उसने किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको न लेनेकी बात और वाइसरॉयके थोपे हुए एन. पी. इंजीनियरका नाम मंत्रि-मंडलमें शामिल करनेकी बात स्वीकार कर ली, तो उनका सारे मामलेसे कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा और वे दिल्लीसे चले जायेंगे।

८

१६ जूनका वाइसरॉयका वक्तव्य प्रकाशित होनेके बादके सप्ताहमें राजधानीमें अटकलों और अफवाहोंका बाजार खूब गरम रहा। अन्तिम दिनोंमें चिन्ता चरम सीमाको पहुंच गई और आशा तथा भयकी लहरें बारी बारीसे उठती रहीं। मेरी डायरीमें लिखी नीचेकी बातोंसे बाकीकी कहानी मालूम हो जायगी :

नई दिल्ली, २० जून, १९४६

कार्यसमितिमें बापूने फिर अपना रवैया किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको लेनेके बारेमें दोहराया। सरदारने उनका जोरदार समर्थन किया और सदस्योंसे कहा कि बापूको छोड़कर हम लोग कैबिनेट-मिशनके साथ समझौता करनेकी हिम्मत नहीं कर सकते। अन्तमें बापूका तैयार किया हुआ पत्रका मसौदा कैबिनेट-मिशनको भेजनेका निश्चय किया गया। इसी बीच खबर आई कि काश्मीर सरकारने पंडित नेहरूको गिरफ्तार कर लिया है। शंकरराव देव, गोविंदवल्लभ पंत और नरेंद्रदेव आदि अनुपस्थित सदस्योंको वापस बुलानेके लिए तार भेज दिये गये।

दोपहरके बाद १॥ और २॥ बजेके बीच क्रिप्स आये और बापूसे मिले। बापूने फिर आग्रहपूर्वक उनसे कहा कि कैबिनेट-मिशनको दोनोंमें से किसी एक दलको चुन लेना चाहिये। दोनोंका मिश्रण करनेकी कोशिश नहीं की जाय; कैबिनेट-मिशन गलत मार्ग पर चल रहा है। क्रिप्स अपना बचाव कर



रहे थे। इतनी दूर आ जानेके बाद फिर नये सिरेसे बातचीत आरम्भ करना कठिन होगा; जिन्ना नहीं मानेंगे, इत्यादि। अन्तमें बापूने उनसे कहा कि तब तो कैबिनेट-मिशन जो चाहे सो कर सकता है। मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

नई दिल्ली, २१ जून, १९४६

बापूके मसौदे पर कार्यसमितिमें फिर चर्चा की गई। बापूने सदस्योंको चेतावनी दी कि घुटने टेक कर नया साहस करनेसे उनको कोई लाभ नहीं होगा। उन्होंने अपनी यह राय दोहराई कि यदि कैबिनेट-मिशन उनकी शर्तें न माने, तो बेहतर होगा कि अन्तरिम कालमें मुस्लिम लीगको केन्द्रमें राष्ट्रीय सरकार रचने दी जाय।

मौलाना साहबने काश्मीर सरकारको तार किया कि जवाहरलालजीकी उपस्थिति कार्यसमितिके विचार-विमर्शमें बहुत आवश्यक है। उन्होंने वाइसरॉयको भी यह सन्देश भेजा कि जवाहरलालजीके दिल्ली लौटनेके लिए सवारीकी उचित व्यवस्था की जाय।

तदनुसार वाइसरॉयने रेसिडेन्टको जरूरी हिदायतें भेज दी हैं। बादमें समाचार आया कि काश्मीर दरबारने जवाहरलालजीके लौटनेके लिए हवाई- जहाज और मोटरकी व्यवस्था कर दी है।

शामको बापूने सरदारसे कहा कि मंत्री-मण्डलमें किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको लेनेकी बातचीत मौलाना साहबको न करके किसी औरको करनी चाहिये, क्योंकि मौलाना साहब खुद एक राष्ट्रवादी मुसलमान होनेके कारण आग्रहको ठेठ तक चालू रखनेमें संकोच अनुभव कर सकते हैं।

नई दिल्ली, २२ जून, १९४६

सुधीर घोष क्रिप्ससे मिले। उन्होंने बताया कि क्रिप्सने उनसे यह कहा था कि किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको लेनेके बारेमें कांग्रेसका रवैया बिलकुल तर्कसंगत है और उचित है, परन्तु क्या कार्यसमिति इसे छोड़ नहीं सकती ? उन्होंने मौलाना साहबकी ओरसे मिले हुए इस लिखित आश्वासनके आधार पर काम किया था कि कार्यसमिति इस बात पर अड़ेगी नहीं। और अब वे अपने आपको बड़ी विषम स्थितिमें पाते हैं। सुधीरके यह पूछने पर कि कांग्रेस कैबिनेट-मिशनकी शर्तों पर यदि सत्ता स्वीकार नहीं करती,



तो वह लीगको सत्ता क्यों नहीं सौंप देता ? क्रिप्सने उत्तर दिया कि उन्हें ऐसा नहीं लगता कि अकेली लीगको सत्ता सौंपी जा सकती है।

“तो फिर कांग्रेसको क्यों नहीं सौंपते ?”

“इसके लिए हमें सम्राट्की सरकारकी सत्ताकी आवश्यकता होगी।”

“क्या यह काम यहांसे नहीं किया जा सकता?”

“नहीं, इसके लिए व्यक्तिगत चर्चाकी जरूरत होगी।”

दोपहरको वाइसरॉयकी ओरसे एक पत्र मिला, जिसमें कांग्रेसके अध्यक्षसे अनुरोध किया गया था कि अन्तरिम सरकारमें कांग्रेसके प्रतिनिधियोंमें अपनी पसन्दका कोई मूसलमान शामिल करनेकी मांग पर जोर न दिया जाय। इस पत्रने वह काम कर दिया, जो बापूके समझाने-बुझानेसे अब तक नहीं हो सका था। कार्यसमितिमें जब इस प्रश्न पर मत लिये गये तो उन शर्तों पर सत्ता स्वीकार करनेका एकके सिवा सबने विरोध किया।

नई दिल्ली, २३ जून, १९४६

तीसरे पहर कार्यसमितिकी बैठकमें बापूने अपना यह विचार दृढ़तासे रखा कि कांग्रेसको अन्तरिम सरकारसे बाहर रहना चाहिये, परन्तु संविधान- सभामें जाना चाहिये; क्योंकि वह एक विशुद्ध निर्वाचित संस्था है और उसके प्रतिनिधि-स्वरूपको ब्रिटिश सरकार भी स्वीकार करती है। वाइसरॉय उसके कार्यमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। वह अधिकारपूर्वक उसमें बैठ भी नहीं सकता। और यदि बुरीसे बुरी बात हुई, तो उसे एक विद्रोही संस्थामें भी बदला जा सकता है। . . . अन्यथा मुझे लड़ाईकी कोई संभावना नहीं दिखाई देती, क्योंकि अहिंसाका आवश्यक वातावरण देशमें नहीं है। मैं खुद जो सविनय अवज्ञा आदि छेड़नेका विचार तक नहीं कर सकता।

जब बापूजी इस ढंगसे बोल रहे थे तब राजेन्द्रबाबूने एक तार पढ़ कर सुनाया । वह उनके नाम आसामसे आया था और उसमें उस फार्मकी तरफ ध्यान आकर्षित किया गया था, जो वाइसरॉयके रिफार्म्स ऑफिसने संविधान-सभाके सदस्योंके चुनावके लिए अलग अलग प्रान्तीय विधान-सभाओंके



अध्यक्षोंके नाम भेजा था। अन्य बातोंके साथ साथ उस फार्ममें यह बताया गया था कि उम्मीदवारोंको यह घोषणा करनी होगी कि ब्रिटिश कैबिनेट-मिशनके १६ मईके “वक्तव्यके १९ वें पैरेके हेतुओंके लिए प्रान्तके प्रतिनिधियोंके रूपमें हम सेवा करनेको तैयार” होंगे। १९ वें पैरेमें समूहोंके निर्माण-सम्बन्धी विवादास्पद धाराएं थीं। सरदार पटेलको भी बम्बईके मुख्यमंत्री बी. जी. खेरसे ऐसा ही सन्देश मिला था: यदि कांग्रेसी उम्मीदवार इस घोषणा पर हस्ताक्षर कर दें, तो क्या वे पैरा १९ के अनुसार समूह-रचनाके और विभाग (सेक्शन) में मतदान करनेके सिद्धान्तसे बंध नहीं जायेंगे ? बापू तारका मूल पाठ पढ़ कर बोल उठे : “अब तो संविधान-सभाकी योजनामें भी दुर्गंध आ रही हैं। मुझे लगता है कि हम उसे छू नहीं सकते।”

शामको प्रार्थना-प्रवचनमें इस नई रुकावटका उल्लेख करते हुए बापू बोले : “विषकी एक ही बूंदसे अमृतका सारा घड़ा घातक विषमें बदल सकता है। मुझे यह देख कर दुःख होता है कि जिन लोगोंने संविधान-सभाको जन्म दिया, उन्हींके मातहत काम करनेवाले लोग उसकी हत्या कर रहे हैं।” बापूने राज्य-पत्रके निर्माताओंको निर्दोष बताया। लेकिन साथमें यह कहा कि आगे चलकर यह पता चला कि उन्हें इस तरहकी सूचनाओंका ज्ञान था, तो मैं उन्हें दोषी घोषित करूंगा। उनके मनमें अभी भी यह आशा थी कि यह एक भूल ही है और जल्दी ही सुधार ली जायगी।

शामको राजकुमारी अमृतकौर वाइसरॉयके निजी सचिव एबेलसे मिलने गईं। एबेलने कहा कि जिन्ना बड़े दुराग्रही हैं। परन्तु हम क्या कर सकते हैं ! हमें जिन्नाके साथ चलना पड़ता है। एबेलने राजकुमारीको कांग्रेसका वह पत्र दिखाया, जो कार्यसमितिको बताये बिना लिखा गया मालूम होता था। एबेलने कहा, उस पत्रके मिलनेके बाद ही समझौता करनेके हेतुसे हमने जिन्नाकी मांगें स्वीकार की थीं। इसके लिए हमें कैसे दोष दिया जा सकता है? एबेलने यह आशा प्रगट की कि कांग्रेस बात टूठनेकी हद तक अपने आग्रहको नहीं ले जायगी।

नई दिल्ली, २४ जून, १९४६

मालूम होता है भाग्य-चक्र कल तेजीसे घूमता रहा। प्रातःकाल मौन-प्रार्थना सभासे बिड़ला-भवन लौटते हुए, बापूको भंगीबस्तीमें छोड़नेके बाद, सरदारकी मोटर सामनेकी दिशासे आती हुई लॉर्ड



पेथिक-लॉरेन्सकी मोटरके सामनेसे गुजरी। लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स मौन-प्रार्थानसे सीधे सरदारसे मिलने बिड़ला-भवन गये थे। परन्तु वहां सरदार उन्हें नहीं मिले। उन्होंने सरदारकी कार पहचान ली, सरदारको अपनी कारमें बिठा लिया और उन्हें अपने निवास-स्थान पर ले गये। वहां आध घंटे तक दोनोंकी बातचीत हुई।

दोपहरको लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स और श्री ए. वी. एलेक्जेंडरने बिड़ला-भवनमें सरदारके साथ खाना खाया। राजाजी भी उपस्थित थे। तीसरे पहर सरदार, मौलाना, पंडित नेहरू और राजेन्द्रबाबू कैबिनेट-मिशन और वाइस-रॉयसे मिले।

आज सुबह जब सुधीर बापूसे मिलने आये, तो उन्होंने कहा कि रातको वे क्रिप्ससे मिले थे। क्रिप्सने उनसे कहा था कि हमने निर्णय कर लिया है कि यदि कांग्रेस दीर्घकालीन योजनाको स्वीकार करे और अल्पकालीन प्रस्तावको अस्वीकार कर दें, तो कैबिनेट-मिशनने १६ जूनवाली अपनी घोषणाके अनुसार अन्तरिम सरकार बनानेके लिए जो कुछ किया था उसे रद्द कर दिया जायगा और उसके लिए फिर नये सिरेसे प्रयत्न किया जायगा। उन्होंने बापू और सरदारको मिलनेके लिए बुलाया। मालूम होता है कि लॉर्ड वेवेलकी तरफसे जिन्नाको दिये गये आश्वासनोंसे पैदा हुई गड़बड़ीको दूर करनेका उन्होंने निश्चय कर लिया है।

७ बजे सुबह बापू सरदार और सुधीरको साथ लेकर कैबिनेट-मिशनसे मिलने गये। आज बापूका मौन-दिवस था, इसलिए उनकी ओरसे बातचीत छोटी छोटी पर्चियों पर लिख कर की गई। वह इस प्रकार थी:

मैं समझा हूं कि अन्तरिम सरकारकी रचनाकी योजनाके बारेमें अब तक जो कुछ किया गया है, उसे आप खतम कर देना चाहते हैं और सारी परिस्थिति पर नये सिरेसे विचार करना चाहते हैं।

तब अगर आप यह कहते हैं कि जो लोग आपकी बात स्वीकार करेंगे उनको लेकर आप सरकार बनायेंगे, तो जहां तक मुझे दिखाई देता है गाड़ी चलेगी नहीं। यदि आपको बहुत ही जल्दी न हो और आप मुझसे इस बातकी चर्चा करना चाहें, तो मेरा मौन टूट जानेके बाद अर्थात्



रातके ८ बजे बाद मैं खुशीसे आपके साथ बात करूंगा। इस बीच, आपको आपत्ति न हो तो, आप २२ ता. के वाइसरॉयके पत्रमें रखे गये प्रस्तावको अस्वीकार करनेवाले कार्यसमितिके पत्र पर विचार करें। मेरी रायमें उस पत्रसे अन्तरिम सरकारको एक नया स्वरूप मिलता है | जहां तक मैं जानता हूं, कार्यसमितिका उद्देश्य कैबिनेट-मिशनको सहायता देना है, न कि उसके कार्यमें बाधा पहुंचाना। सिवा इसके कि उसकी योजना कार्यसमितिकी आत्महत्या करनेवाली सिद्धि हो। सुधीरकी बातचीतसे मुझे व्यापक अन्धकारमें प्रकाशके दर्शन हुए थे। परन्तु क्या सचमुच प्रकाश है?

जहां तक संविधान-सभाकी बात है, कल तीसरे पहर तक मेरा विचार बिलकुल स्पष्ट था कि कांग्रेसको यथाशक्ति उत्तम रूपमें संविधान सभाका कार्य पार लगाना चाहिये। परन्तु कल मैंने जो नियम पढ़े, उनसे मेरी मनःस्थितिमें कायापलट हो गया है। उनमें एक गम्भीर दोष है। मैं किसी पर आक्षेप नहीं लगाता, परन्तु दोष तो आखिर दोष ही है। तीन दल यदि तीन दिलोंसे काम करें, तो उन्हें सफलताकी आशा नहीं रखनी चाहिये।

इसके सिवा, आपको किसी एक धाराको सम्पूर्ण योजनासे अलग करके नहीं देखना चाहिये। आप यह क्यों नहीं कहते कि “समूचे राज्य पत्रके अनुसार?”

किन्तु शामको मैं आपके साथ इस प्रश्नकी भी चर्चा खुशीसे करूंगा। आप सबको यह कष्ट देनेका मुझे दुःख है। मैं इतनी ही आशा रखता हूं कि इस सारे प्रयत्नमें आप मेरा हेतु समझ रहे होंगे।

इस मुलाकातके बाद सरदारने अपनेको मौलानाकी कोठी पर उतार देनेको कहा। रास्तेमें उन्होंने बापूसे पूछा : “कार्यसमितिकी बैठक चल रही है; तो उन लोगोंसे मैं क्या कहूं?” बापूने उत्तर दिया कि कैबिनेट-मिशनके साथ बात करके मुझे सन्तोष नहीं हुआ। इस पर सरदार चिढ़ गये : “आपने १९वें पैरेके बारेमें शंकाएं उठाईं। उस पर उन्होंने स्पष्ट आश्वासन दे दिया है। अब आपको और क्या चाहिये?” बापूने यह उत्तर लिखा: “हमारी मुलाकातके दौरान जब क्रिप्सने मुझसे कहा कि अगर हम लोगोंको रिफोर्म्स ऑफिसकी भेजी हुई सूचनाओंकी भाषाके बारेमें आशंका हो, तो वे १९ वें पैराका उल्लेख



निकाल सकते हैं और उसके बजाय '१६ मईकी घोषणाके हेतुके लिए' शब्द रख सकते हैं, तब लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने तुरन्त हस्तक्षेप करके कहा: 'नहीं, इससे कठिनाई पैदा होती है।' " सरदार इससे सहमत नहीं थे। बापूने सुधीरसे पूछा । सुधीरने बापूके कथनका समर्थन किया, परन्तु यह भी कहा कि मेरा अपना खयाल यह बना था कि वे बापूकी मांग स्वीकार करनेको तैयार थे।

कैबिनेट-मिशनकी मुलाकातका विवरण सुननेके बाद मौलाना साहब बापू और सरदार दोनोंको कार्यसमितिमें ले गये। वहां लम्बी चर्चा हुई। सरदारने कहा कि, हमने आज तीसरे पहर कैबिनेट-मिशनको अपना निर्णय बता देनेका वचन दे रखा है। बापू इससे सहमत नहीं थे। कई पर्चियों पर लिख लिख कर उन्होंने यह सुझाया कि, जब तक शामको मैं कैबिनेट-मिशनसे मिल लूं और उनसे अधिक स्पष्टीकरण न करा लूं, तब तक आपको अपना निर्णय स्थगित रखना चाहिये। अन्तमें उन्होंने यह लिख कर दिया: "मेरी भावनाओंको ठेस पहुंचनेका कोई प्रश्न नहीं है। मैं इस प्रश्नका निर्णय आज करनेके विरुद्ध हूं। परन्तु आप जैसा चाहें वैसा निर्णय करनेको स्वतंत्र हैं।"

कैबिनेट-मिशनने कहा था कि उसके प्रस्तावों पर कांग्रेस और लीगका अन्तिम निर्णय दो बजे तक उसके पास पहुंचा दिया जाय। दोपहरको वाइसरॉय-भवनसे किसीने पंडित नेहरूको टेलिफोन पर यह कहा कि कार्यसमितिका उत्तर तुरन्त भेज दिया जाय। पंडित नेहरूने सरदारको टेलिफोन किया। उन्होंने उत्तर दिया कि मुझे जल्दीका कोई कारण दिखाई नहीं देता। फिर उन्होंने सुधीरसे कहा कि वे कैबिनेट-मिशनके स्टाफमें काम करनेवाले श्री ब्लेकरसे सम्पर्क स्थापित करके कह दें कि ऐसी अधीरता और आग्रहसे बात अकारण बिगड़ जायगी। बापूको इसकी सूचना मिलने पर उन्होंने एक छोटा-सा अन्तरिम उत्तर तुरन्त भेज देनेके लिए तैयार कर दिया और कहा कि कैबिनेट-मिशनको यह सूचना दे दी जाय कि विस्तृत पत्र बादमें भेजा जायगा। ऐसा ही किया गया। बादमें मालूम हुआ कि जिस अति-उत्साही कर्मचारीने टेलिफोनसे सन्देश भेजा था वह शायद मुस्लिम लीग—जो कांग्रेसके निर्णयकी प्रतीक्षा कर रही थी (देखिये अध्याय ९, विभाग २)—की मदद करना चाहता था; इसीलिए उसने यह अनधिकार चेष्टा की थी और इसके लिए उसे फटकारा गया था।



कार्यसमितिकी तीसरे पहरकी बैठकमें बापूने मुझे एक टिप्पणी पढ़ कर सुनानेको कहा, जो उन्होंने कार्यसमितिके लिए लिखी थी। उस टिप्पणी में उन्होंने बताया कि संविधान-सभाके पास कोई कानूनी (डी जूरे) सत्ता नहीं है, क्योंकि उस पर ब्रिटिश पार्लियामेंटकी मुहर नहीं लगी हुई है। वह केवल कैबिनेट-मिशनकी सिफारिश पर आधारित है। “उसकी सिफारिश या तो उसके मुंहमें रह जायगी या छपे हुए कागज पर। यदि संविधान-सभामें कोई झगड़ा हुआ, तो हमारे पास किसी पुलिसके सिपाहीको हुक्म देनेकी भी सत्ता नहीं होगी। यह एक खतरनाक स्थिति है । उसके पीछे पार्लियामेंटकी मुहरका पृष्ठबल होना चाहिये और केन्द्रीय सरकारके पास वास्तविक सत्ता होनी चाहिये, तभी संविधान-सभा हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। पार्लियामेंटकी मुहर लग जानेसे संविधान-सभाके सभापतिका रास्ता साफ हो जायगा और जरूरत होने पर वे बड़े महत्त्वके किसी मुद्देको (उस मुद्देको न्यायालयके निर्णयके योग्य ठहराकर) निर्णयके लिए फेडरल कोर्टके पास भेज सकेंगे। ”

बादमें जो चर्चा हुई उसमें सरदारने अपना यह मत अत्यन्त दृढ़तापूर्वक रखा कि रिफोर्म्स ऑफिस द्वारा निकाले गये फार्मके विषयमें कैबिनेट-मिशनका स्पष्टीकरण बिलकुल पर्याप्त है; और कांग्रेस यदि तुरन्त अपना निर्णय देना स्थगित करेगी, तो उसकी प्रतिष्ठाको हानि पहुंचेगी । बापूने लिख कर दिया : “मेरा दिमाग साफ नहीं है। . . . वह १९वें पैरेके उल्लेखकी बात जोड़ने पर और (अन्तरिम सरकारकी) ‘सारी योजनाको रद्द कर देने’ के अर्थ पर केन्द्रित है।” सरदारका धीरज टूट गया। बापूने शरत् बोस और राजेन्द्रबाबूसे इस प्रश्न पर अपना कानूनी मत देनेको कहा कि जो घोषणा विधान-सभाओंके अध्यक्षोंको भेजी गई थी उस पर हस्ताक्षर करके जो सदस्य संविधान-सभामें जायंगे, उन्हें १६ मईकी योजनाके १९वें पैरेके सम्बन्धमें कार्यकी स्वतंत्रता रहेगी या नहीं । शरत् बोसका मत यह था कि उस घोषणाकी सूचनाओंमें १९ वें पैरेका उल्लेख होनेसे सदस्योंकी कार्यकी स्वतंत्रता छिन नहीं जाती, क्योंकि राज्य-पत्र (स्टेट-पेपर) की उनकी स्वीकृति विवादास्पद धाराओंके कानूनी अर्थ पर आधार रखती है। राजेन्द्रबाबूका मत यह था कि १९ वां पैरा समूह-रचनाको अनिवार्य नहीं बनाता । वह केवल प्रान्तोंको समूह बनानेकी स्वतंत्रता देता है, जैसा कि दस्तावेजकी भाषासे ही स्पष्ट है। राज्य-पत्र पर पार्लियामेंटकी मुहर लगवानेके बारेमें पंडित नेहरूका मत था कि वह “मर्यादा बांधनेवाली प्रक्रिया”



होगी और उससे अर्थ लगानेका क्षेत्र सीमित हो जायगा। (इसके लिए कांग्रेसको भारी कीमत चुकानी पड़ी। देखिये खण्ड २, अध्याय ६)

*

एक बार तो यह डर झूठा साबित हुआ। कैबिनेट-मिशनने शामको यह स्पष्टीकरण निकाला कि जिस फार्म पर संविधान-सभाके सदस्योंको हस्ताक्षर करने हैं, उससे वे १९वें पैरेके अनुसार संविधान बनानेके लिए बंध नहीं जाते। जिस प्रतिज्ञा पर उन्हें हस्ताक्षर करने हैं, उसमें यही अपेक्षा रखी गई है कि वे भारतके लिए नया संविधान बनानेमें सहयोग दें।

*

८ बजे शामको जब बापूका मौन टूटा, तो वे और सरदार वाइसरॉय-भवनमें वाइसरॉय और कैबिनेट-मिशनके सदस्योंसे मिले। वहांसे लौटने पर सरदारने बापूसे पूछा : “आपको सन्तोष हुआ ?” बापूने उत्तर दिया: “उल्टे मेरा सन्देह गहरा हो गया है। मेरा सुझाव है कि अब आप कार्यसमितिका मार्गदर्शन करें।” सरदारने उत्तर दिया, “बिलकुल नहीं। मैं एक शब्द भी नहीं कहनेवाला हूं। आप स्वयं जो कुछ चाहें उससे कह दें।”

*

रातके १० बजे बापूने क्रिप्सको एक पत्र लिखा: “मैं चाहता तो यही था कि यह पत्र न लिखूं। ... कांग्रेस कार्यसमितिकी संविधान-सभामें जानेकी तैयारी होने पर भी मैं अंधेरेमें कूदनेकी उसे सलाह नहीं दे सकूंगा। . . . अगर आपका सचमुच अब तकके दिये हुए वचनोंको रद्द कर देनेका इरादा हो, तो उसके बाद शून्यके सिवा दूसरा कुछ नहीं रह जाता। . . . गवर्नरोंके नाम (रिफोर्म्स ऑफिस द्वारा निकाली गई) सूचनायें निर्दोष सिद्ध हुई, परन्तु उन्होंने एक भयानक मार्ग खोल दिया है। इसलिए मैं कार्य-समितिको सलाह देना चाहता हूं कि वह दीर्घकालीन प्रस्तावको अन्तरिम सरकारके साथ सम्बद्ध किये बिना उसे स्वीकार न करे। मुझे अपनी अन्तःप्रेरणाके विरुद्ध काम नहीं करना चाहिये। . . .”

नई दिल्ली, २५ जून, १९४६



८ बजे प्रातःकाल बापू कार्यसमितिकी बैठकमें भाग लेनेके लिए गये। उन्होंने रात क्रिप्सके नाम जो पत्र लिखा था, उसे पढ़ कर सुनानेके लिए मुझसे कहा। फिर उन्होंने बहुत छोटा-सा भाषण दिया: “मैं हार स्वीकार करता हूं। आप मेरे निराधार सन्देशके अनुसार चलनेके लिए बंधे हुए नहीं हैं। आपको मेरी अन्तःप्रेरणाका अनुसरण तभी करना चाहिये जब वह आपकी बुद्धिको जंचे। नहीं तो आपको स्वतंत्र मार्ग अपनाना चाहिये। अब मैं आपकी अनुमतिसे चला जाऊंगा। आपको अपनी बुद्धिके आदेश पर चलना चाहिये।”

सभामें सन्नाटा छा गया। कुछ समय तक कोई नहीं बोला। मौलाना साहबने अपनी अचूक जागरूकतासे तुरन्त स्थितिको संभाल लिया उन्होंने पूछा, “आप लोग क्या चाहते हैं ? क्या बापूको और अधिक रोकनेकी कोई जरूरत है ?” सब शान्त रहे। सबने समझ लिया कि निर्णयकी इस घड़ीमें बापूका उनके लिए कोई उपयोग नहीं है। उन्होंने कर्णधारको छोड़ देनेका निर्णय किया। बापू अपने निवास-स्थानको लौट आये।

कार्यसमितिकी बैठक दोपहरको फिर हुई। उसने कैबिनेट-मिशनको एक पत्र लिख कर केन्द्रमें अन्तरिम सरकार बनानेका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और दीर्घकालीन योजनाको विवादग्रस्त धाराओंके अपने (कार्यसमितिके) ही अर्थ-सहित स्वीकार किया। इसके बावजूद बापूसे कार्यसमितिने अपनी तीसरे पहरकी बैठकमें उपस्थित रहनेका आग्रह किया। दोपहरको कैबिनेट-मिशनने कार्यसमितिके सदस्योंको मिलनेके लिए बुलाया। बापू सदस्य नहीं थे इसलिए बुलाये नहीं गये; और वे नहीं गये। लौट कर किसीने बापूको एक शब्द भी नहीं बताया कि मुलाकातमें क्या हुआ !

९

कैबिनेट-मिशनके साथकी वार्ताओंके आखिरी दौरके साथ गांधीजी और उनके कुछ अत्यन्त घनिष्ठ साथियोंके बीच मतभेद प्रारम्भ हुआ। सत्ताके हस्तांतरणकी अन्तिम स्थितिमें दोनोंकी दिशाएं बिलकुल भिन्न हो गईं। वार्ताओंके प्रारम्भिक कालमें दोनों एक-दूसरेके बहुत निकट आ नये थे। कार्य-समितिके करीब करीब सारे महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों और मसौदोंकी कल्पना पहले-पहल गांधीजीके दिमागमें उत्पन्न होती थी और बादमें कार्यसमिति उन्हें मूल रूपमें अपना लेती थी या कुछ सुधारोंके बाद स्वीकार



कर लेती थी। ऐसी सम्पूर्ण सहमति फिर कभी नहीं हुई। आंतरिक व्यवस्था बनाये रखनेके लिए ब्रिटिश सेनाके उपयोगके बारेमें गांधीजीका रुख; ब्रिटिश लोगोंके साथ चाहे जितना लाभदायक राजनीतिक सौदा करनेकी अपेक्षा उनके भारत छोड़कर चले जानेके बाद गृह-युद्धका खतरा उठाकर भी मुस्लिम लीगके साथ सीधी मंत्रणा करके समझौता करनेका उनका आग्रह; अंग्रेजोंके शस्त्रोंके बलसे लादी गई शान्तिकी अपेक्षा अराजकता और अंधाधुंधीका सामना करनेकी उनकी तैयारी—इन सब बातोंमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि समयके साथ ये सब अधिक दृढ़ होती गई। कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंकी दृष्टि शुद्ध राजनीतिक थी, इसलिए वे इस अनजाने समुद्रमें जहाज चलानेकी हिम्मत न कर सके।

छोटे छोटे कुछ और भी मतभेदके मुद्दे थे। गांधीजी इस बातके विरुद्ध थे कि आजाद हिन्द फौजके सैनिकोंको पैसेसे खुश रखा जाय। उनकी इच्छा थी कि वे लोग क्रॉमवेलकी बिखेरी हुई सेनाके लौहसैनिकों (आयरनसाइड्स) की तरह आदर्श नागरिकों और राष्ट्रसेवकोंमें बदल जायें। क्रॉमवेलकी उस सेनाके लिए यह कहा जाता है कि उसके तोड़ दिये जानेके बाद कुछ ही मासमें ५. हजार सैनिकोंमें से एक भी सैनिकका कोई निशान बाकी नहीं रहा था और दुनियाकी सबसे शक्तिशाली सेना समाजमें बिलकुल समा गई थी। “राजावादियोंने स्वयं यह स्वीकार किया था कि प्रामाणिक उद्योगके हर विभागमें ये अस्वीकृत योद्धा दूसरे लोगोंकी अपेक्षा अधिन सम्पन्न बन गये। . . . किसी पर भी चोरीका अथवा कोई डाकेका अभियोग नहीं लगा। . . . किसीको भीख मांगते नहीं सुना गया। . . . (और) यदि कोई भटियारा, कोई राज अथवा गाड़ीवाला अपनी परिश्रमशीलता और सौम्यतासे लोगोंका ध्यान आकर्षित करता था, तो अधिकतर वह क्रॉमवेलके पुराने सैनिकोंमें से ही होता था।” [मेकॉले, 'हिस्टरी ऑफ इंग्लैंड']

गांधीजी इस बातके विरुद्ध थे कि कांग्रेस रुपयेके जोरसे चुनाव लड़े। पर उनकी राय नहीं मानी गई। बादमें आजाद हिन्द फौजके सवाल पर कई पेचीदगियां पैदा हुईं। आजाद हिन्द फौजके कुछ लोगोंने हिंसाकी भी धमकी दी। इसी तरह कुछ उम्मीदवार, जिन्हें कांग्रेसने नामजद किया था अथवा जिनका कांग्रेसने समर्थन किया था या जिनकी कांग्रेसने रुपयेसे मदद की थी, चुनावमें हार गये और मुस्लिम लीगमें शरीक हो गये। उनमें से एकने, मियां गुलाम सरवरने, बादमें नोआखालीके दंगे संगठित किये।



दिल्लीमें अन्तिम दिन कार्यसमितिकी बैठकमें एक घटना घटी थी और उसके सम्बन्धमें गांधीजीकी सरदारसे बादमें बात भी हुई थी। दोनोंके विषयमें गांधीजीने सरदारको पूनासे १ जुलाई, १९४६ को लिखा: “हमारी आजकी बातचीत मुझे पसन्द नहीं आई। इसमें किसीका दोष नहीं है। अगर दोष है तो परिस्थितियोंका है। इसके लिए मैं और आप क्या कर सकते हैं? आप अपने अनुभवसे चलते हैं; मैं अपने अनुभवसे चलता हूं। आप जानते हैं कि कई बातोंको, जो आपने की हैं, मैं समझ नहीं सका हूं। . . . आप समितिमें बहुत गरम होकर बोलते हैं। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। इतने पर आज संविधान-सभाका प्रश्न आया। . . . यह सब मैं शिकायतके तौर पर नहीं कह रहा हूं। परन्तु मैं देखता हूं कि हम भिन्न दिशाओंमें बहे जा रहे हैं।”

इसका उत्तर सरदारने यह दिया: “आपके पत्रके बाद मैं क्या कह सकता हूं। मेरा ही दोष होगा। इतना ही है कि मुझे वह दोष अभी तक दिखाई नहीं देता और इससे मुझे दुःख होता है। मैं भिन्न मार्ग ग्रहण करना नहीं चाहता। . . . मेरी अन्तःप्रेरणा तो दूसरी ही थी। परन्तु जो कुछ मैंने किया वह मैं न करता, तो बादमें कांग्रेसको दोषी ठहराया जाता। . . . जब मैं समितिमें बोलता हूं, तो मुझमें जरूर कुछ गर्मी आ जाती है। . . . यह स्वभावका दोष है। . . . परन्तु इसके भीतर दूसरा कुछ नहीं है।”

इस तरह अपने मतभेद रखते हुए भी दोनों एकता कायम रखते थे। दोनों अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार काम करते थे और इस कारण एक-दूसरेका और भी अधिक आदर करते थे।

१०

कार्यसमितिके २५ जूनके निर्णयसे कठिनाई हल नहीं हुई, क्योंकि कैबिनेट-मिशन विवादग्रस्त धाराओंके अपने ही अर्थ पर अड़ा रहा; परन्तु उससे कुछ समयके लिए कठिनाई टल गई। कैबिनेट-मिशनने अपनी बैठकमें ‘निश्चय किया’ कि कांग्रेसका निर्णय उनकी १६ मईवाली योजनाको स्वीकार करता है और इसलिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों अन्तरिम सरकारमें जानेके योग्य हो गई हैं। इसलिए उन्होंने कुछ समयके लिए अन्तरिम सरकार बनानेकी अधिक बातचीत मुलतवी कर दी और वे २९ जूनको दिल्लीसे लन्दनके लिए रवाना हो गये।



जो लोग गांधीजी और कार्यसमितिके बीच मतभेदके नामसे पुकारी जानेवाली वस्तुसे समयके पहले ही खुश हो रहे थे, उन्हें निराशा होनी ही थी। वे समझ नहीं पाये कि अहिंसा कैसे काम करती है। गांधीजीने कार्यसमितिके अपनी बुद्धि और सूझके अनुसार काम करनेका जोरदार बचाव किया। उन्होंने कहा, मेरा अपना अन्धकार ईश्वरके प्रति मेरी श्रद्धामें कमी बताता है। जिसका संपूर्ण व्यक्तित्व ईश्वरसे ओतप्रोत है, उसे कभी अन्धकारका अनुभव नहीं होना चाहिये।” [प्रार्थना-प्रवचन, २५ जून १९४६] बड़ी बात तो यह है कि मैं अपने डरका कोई कारण भी नहीं बता सकता। “जिनका काम देशका नेतृत्व करना है, वे दूसरेकी तर्कहीन अन्तःप्रेरणाके अनुसार नहीं चल सकते। वे देशके भाग्यका निर्णय नहीं कर सकते, यदि उनमें स्वयं सोचने और दूसरोंको अपनी बातका विश्वास करानेकी क्षमता न हो। कार्यसमितिके सदस्य राष्ट्रके सेवक हैं। जिस जनताकी सेवा करनेका व्रत उन्होंने लिया है, उसकी स्वेच्छापूर्ण अनुमतिके सिवा उनके पास दूसरा कोई बल नहीं है। . . . लोगोंको कार्यसमितिके नेतृत्वका अनुगमन करना चाहिये।” [वही]

तो वह सन्देह किस प्रकारका था, जिसका वे कोई ठोस कारण नहीं बता सके और फिर भी जिसे वे अपने साथियोंके सामने और कैबिनेट-मिशनके सदस्योंके सामने रखने जितना महत्वपूर्ण समझते थे? उसके लिए उनका बुनियादी कारण क्या था? इसका कुछ संकेत गांधीजीकी एक मुलाकातमें मिलता, जो अमरीकी पत्रकार और लेखक लुई फिशरसे १८ जुलाईको हुई थी:

“यदि कार्यसमिति आपके ‘अंधेरेमें टटोलने’ की बात पर अमल करती, तो क्या वह कैबिनेट-मिशनकी योजनाको अस्वीकार कर देती?”

“हां, परन्तु मैंने उसे ऐसा करने नहीं दिया।”

“आपका मतलब यह कि आपने आग्रह नहीं किया।”

“इतना ही नहीं, मैंने उसे अपनी अन्तःप्रेरणा पर चलनेसे रोक दिया, जब तक वह भी मेरी तरह ही अनुभव न करे। डॉ. राजेन्द्रप्रसादने मुझसे पूछा, ‘क्या आपकी अन्तःप्रेरणा यहां तक जाती है कि आप हमें दीर्घकालीन प्रस्तावोंको स्वीकार करनेसे रोक दें, भले ही आपकी बात हमारी समझमें आये या न आये?’ मैंने कहा, ‘नहीं, आप अपनी बुद्धिके अनुसार चलिये, क्योंकि मेरी अपनी बुद्धि भी तो मेरी



अन्तःप्रेरणाका समर्थन नहीं करती।' जब तक मेरी बुद्धिने समर्थन नहीं किया तब तक मैंने स्वयं कभी अपनी अन्तःप्रेरणाका अनुसरण नहीं किया है।"

"परन्तु आपने कहा है कि जब कुछ अवसरों पर आपकी अन्तःप्रेरणा आपसे कहती है तब आप उसका अनुसरण करते हैं।"

"हां, परन्तु उन मामलोंमें भी मेरी बुद्धि मेरी अन्तःप्रेरणाका अनुगमन कर सकी थी। कैबिनेट-मिशनके दीर्घकालीन प्रस्ताव पर मेरी बुद्धिने मेरी अन्तःप्रेरणाका साथ नहीं दिया।"

"तब आप राजनीतिक परिस्थितिमें अपनी अन्तःप्रेरणाको क्यों बीचमें लाये ?"

"क्योंकि मैं अपने मित्रोंके प्रति वफादार था, क्योंकि मैं कैबिनेट-मिशनकी नेकनीयतीमें भी अपनी श्रद्धाको टिकाये रखना चाहता था। इसलिए मैंने अपनी शंकाएं कैबिनेट-मिशनको बता दीं। मैंने अपने मनसे कहा: मान लो कि उनका इरादा अच्छा नहीं है, तो उन्हें शर्म मालूम होगी। वे कहेंगे, 'गांधी कहते हैं कि उनकी अन्तःप्रेरणा उनसे ऐसा कहती है, परन्तु हम कारण जानते हैं।' उनकी अपराधी अन्तरात्मा उन्हें कचोटेगी।"

"उसने नहीं कचोटा। . . . या आपके कहनेका यह मतलब है कि कोई बुराई थी ही नहीं?"

"मेरी अन्तःप्रेरणा सच्ची सिद्ध हुई। आपको बादका इतिहास मालूम नहीं है। वह विनाशकारी सिद्ध होता, यदि (बम्बईके मुख्यमंत्री) खेरने यह आग्रह न किया होता कि संविधान-सभाके उम्मीदवारोंके हस्ताक्षर करनेके फार्ममें से १९वें पैरेका सारा उल्लेख बिलकुल निकाल दिया जाय।"

२९ जूनको एक व्यक्तिगत स्वरूपकी भेंटमें गांधीजीने नॉर्मन क्लिफको समझाया कि, मुझे कैबिनेट-मिशनके सदस्यों अथवा वाइसरॉयके प्रति अविश्वास नहीं था। परन्तु "जिस ढंगसे बातें हुई हैं" उस पर भरोसा नहीं था। मैंने कैबिनेट-मिशनको उसका कार्य आरम्भ करते समय ही जो कुछ कहा था वह सच निकला। उन्हें इसका पता नहीं था कि उनके सामने क्या क्या कठिनाइयां आनेवाली हैं। "उन्हें तो आज भी उनका पता नहीं है। . . . उनका एक विशेष विचारधारामें पालन हुआ है। प्रामाणिकताके विचारको अधिकसे अधिक खींचनेके बावजूद वे दूसरी तरहसे नहीं सोच सकते।"



उन्होंने (कैबिनेट-मिशनने) स्वीकार किया था कि किसी एक दलको सत्ता सौंप देनेके लोकतांत्रिक सिद्धान्तका अनुसरण करना ही एक आदर्श मार्ग है। वे सिद्धान्ततः इस बातमें गांधीजीसे सहमत थे कि यदि लीग पर वे विश्वास नहीं कर सकते, तो उन्हें ईमानदारीसे कांग्रेसके कंधों पर बोझा रख देना चाहिये और यह विश्वास करना चाहिये कि वह समूचे भारतके साथ न्याय करेगी। परन्तु जैसा सर स्टैफर्डने गांधीजीके नाम २० जुलाईके अपने पत्रमें लिखा था, हमारा खयाल है कि जिस परिस्थितिमें हम पड़ गये हैं, उसमें हमें “दोनों पक्षोंके सहयोगके लिए” प्रयत्न करना ही चाहिये; किसी और समय “जब भीतरी संघर्ष कम हों” कोई दूसरा मार्ग संभव हो सकता है। इसलिए हमें उत्तम या आदर्श मार्गके बजाय मध्यम मार्गका अनुसरण करना पड़ता है, “सिद्धान्त रूपमें उत्तम मार्ग व्यावहारिक नहीं हो सकता।”

जिस धारणा पर उनके इस अनुमानका आधार था उसे स्वीकार कर लिया जाता, तो उनका यह अनुमान निर्विवाद था। उनके रवैयेके मूलमें यह धारणा थी कि सत्ता छोड़नेसे पहले वे ऐसा कोई हल खोज निकालनेकी “नैतिक जिम्मेदारी” से मुक्त नहीं हो सकते, जो दोनों दलोंको स्वीकार हो। गांधीजीकी दृष्टिसे अल्पसंख्यकोंके लिए कैबिनेट-मिशनकी यह चिन्ता साम्राज्यवादका अवशेष थी। ब्रिटेनकी मजदूर सरकार अपने वामपक्षी दावोंके बावजूद “चाहे अनजानमें ही सही” उससे मुक्त नहीं हो सकी। मजदूर सरकारको तो उसे फेंक देना चाहिये था और “कुछ लोगोंको नाराज करके भी सही काम करनेका साहस दिखाना चाहिये था।” यह काम साम्राज्यवादी ढंगसे नहीं किया जा सकता था। [गांधीजीकी नॉर्मन क्लिफसे भेंट, २९ जून १९४६]

गांधीजीको वह संकोच भी बड़ा अर्थपूर्ण मालूम हुआ, जो उन्होंने २४ जूनको प्रातःकाल कैबिनेट-मिशनके साथ अपनी मौन भेंटके समय लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्समें देखा था। क्या वह संकोच मिशनके मनमें रही इस चोरीका सूचक था कि १६ मईके उसके वक्तव्यकी विवादास्पद धाराओंके उसी अर्थसे मिशन किसी भी तरह चिपटा रहेगा, जो वह करता है—और जैसा कि अन्तमें किया गया था ? क्या उसमें कोई अवरोध था और कैबिनेट-मिशन जान-बूझकर कांग्रेसको अंधेरेमें कूद पड़नेकी गलती करने दे रहा था? यदि ऐसी बात थी तो वह खतरनाक थी। कैबिनेट-मिशनके २६ जूनके निर्णयके बाद यह प्रश्न सचमुच अप्रस्तुत बन गया था कि १६ मईके राज्य-पत्र (स्टेट-पेपर) को ब्रिटिश पार्लियामेंटके कानूनोंका अथवा



सरकारी दस्तावेजों (स्टेट डॉक्यूमेन्ट्स) का अर्थ करनेवाले सिद्धान्त लागू होते हैं—जिसमें दस्तावेज या कानूनके मूल पाठ (टेक्स्ट) परसे आशयका अनुमान लगाया जाता है—अथवा वह राज्य-पत्र करारों और समझौतोंकी श्रेणीमें आता है, जहां पक्षोंका 'आशय' मूल पाठका अर्थ निश्चित करता है? कैबिनेट-मिशनके निर्णयके साथ उस अर्थकी स्वीकृति गर्भित रूपमें जुड़ी हुई थी, जिस अर्थके साथ कांग्रेस कार्यसमितिके १६ मईके वक्तव्यको स्वीकार किया था। गांधीजीको अस्पष्ट रूपमें ऐसा लगा करता था कि मिशनके सदस्य कोई बात मनमें छिपाये हुए हैं, जिसे उन्होंने सामने नहीं रखा है और जिसे वे बादमें सामने रखेंगे। वे घुटे हुए ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंके साथ इस प्रकारका खेल खेलना बहुत नापसन्द करते थे। कूटनीतिके बल पर भारत १०० वर्षका रास्ता एक ही पीढ़ीमें तय नहीं कर पाया था; और न कूटनीतिके भारतको १५० वर्षकी गुलामीसे छुड़ा कर उसे स्वतंत्रताके द्वार पर पहुंचाया था। गांधीजीका बल कूटनीतिमें नहीं, परन्तु सत्याग्रहमें था।

आखिरी बात यह थी कि जिस ढंगसे वाइसरॉयका रिफार्म्स ऑफिस सारा काम चलानेका प्रयत्न कर रहा था, उसे गांधीजी अपशकुन मानते थे। वे बार बार अपना यह दृढ़ विश्वास प्रगट कर चुके थे कि जब तक भारतीय 'फौलादी ढांचे' का हृदय-परिवर्तन नहीं हो जाता, तब तक भारतको आजादी नहीं मिलेगी। जैसा श्रीनिवास शास्त्रीने लन्दनकी दूसरी गोलमेज परिषद्के अन्तमें कहा था, पहले भी व्हाइट हॉलके बहुतसे शुभ आशयोंकी "नई दिल्लीके सचिवालयकी अंधेरी गलियोंमें" हत्या हो चुकी थी। क्या पुराना इतिहास फिर दोहराया जायगा ? क्या कैबिनेट-मिशन अपने समयसे पहले आ गया है ?

गांधीजी तो अदम्य आशावादी ठहरे। वे निराशाओंके बावजूद आशा रखते रहे और अपनी शंकाओं और मिशनकी कार्रवाइयोंके बावजूद उसकी सफलताके लिए काम करते रहे। साथ ही उन्होंने अपने प्रामाणिक सन्देशको उनसे या जनतासे छिपाया भी नहीं। उन्होंने २७ मईको सर स्टैफर्ड को लिखा, "विश्वासका दिखावा तो व्यर्थसे भी बुरा होता है। हृदयमें विश्वास हो तभी उसका मूल्य है। . . . (मिशनकी ओरसे) विश्वसनीय कार्य होने पर सारा अविश्वास या गलत विश्वास उसी तरह विलीन हो जायगा, जैसे सूर्यके निकलने पर प्रातःकालका कोहरा विलीन हो जाता है।"



२८ जूनको गांधीजी दिल्लीसे पूनाके लिए रवाना हुए। पिछली रात जब गांधीजीको ले जानेवाली विशेष रेलगाड़ी नेरल और करजतके बीच पूरी रफ्तारसे जा रही थी, तब वह कुछ पत्थरोंसे टकरा गई। ये पत्थर गाड़ीको पटरी परसे उतार देनेके लिए जान-बूझकर पटरी पर रखे गये मालूम होते थे। पीछेके डिब्बेका डायनेमा नष्ट हो गया और इंजिनके नीचेके लोहेके ढांचेको नुकसान पहुंचा। इंजिन-ड्राइवर श्री पेरेरा यदि सावधान न रहते और वे समय पर गाड़ीको रोक न देते, तो भयंकर दुर्घटना हो जाती। यांत्रिकोंका दल रातको दो घंटेसे अधिक समय तक काम करता रहा और नष्ट हुए फौलादी कल-पुर्जोंको खोलता और हटाता रहा, उस बीच हथौड़ोंकी चोटोंकी आवाजमें गांधीजी न्यायपरायण और निर्दोष व्यक्तिकी नींद सोते रहे। जब दूसरे दिन उनसे पूछा गया कि रातकी घटनाका उन्हें पता है या नहीं, तो वे बोल उठे, “अरे, मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं हुआ !” नॉर्मन क्लिफने, जो उसी गाड़ीसे यात्रा कर रहे थे और दुर्घटनासे पहले रास्तेमें किसी स्टेशन पर उतर गये थे, गांधीजीको लिखा: “मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि जब मैंने आधी रातको आपकी गाड़ी छोड़ी, तो आगे जाकर पटरी पर मैंने पत्थर नहीं रखे थे ! संसारको मेरी तरह, जो उसका एक छोटासा अंग है, आपकी रक्षाके लिए परमात्माका आभारी होना चाहिये।” [नॉर्मन क्लिफका पत्र गांधीजीको, ४ जुलाई १९४६]

जब ७ जुलाईको बम्बईमें कांग्रेस महासमितिकी बैठक हुई तब तक अंधकार मिटा नहीं था, शायद कुछ गहरा ही हुआ होगा। कांग्रेसने दीर्घकालीन योजनाको स्वीकार कर लिया, इसका विरोध ज्यादातर समाजवादियों तथा दूसरे वामपक्षी दलोंकी ओरसे हुआ। अतः महासमितिमें गांधीजीके उद्गार अधिकतर उन्हीं लोगोंके लिए थे : “कार्यसमितिके सदस्योंके साथ मेरे सम्बन्ध आपको मालूम हैं। . . . मैं उन्हें संविधान-सभा सम्बन्धी प्रस्तावको ठुकरा देनेके लिए कह सकता था। . . . परन्तु इसके लिए मैं कोई कारण नहीं बता सकता था। . . . उनका निर्णय, जो . . . सर्व-सम्मत है, आपके सामने है। . . . कार्यसमितिके सदस्य आपके वफादार और परखे हुए सेवक हैं; आपको उनका प्रस्ताव हलके मनसे अस्वीकार नहीं कर देना चाहिये।” समाजवादियोंके इस भयको कि संविधान-सभा एक जाल और फंदा साबित हो सकती है, पराजयवादी वृत्ति बताते हुए गांधीजीने आगे कहा:



मैं यह स्वीकार करनेको तैयार हूं कि प्रस्तावित संविधान-सभा जनताकी पार्लियामेन्ट या संसद नहीं है। उसमें अनेक दोष हैं। परन्तु आप सब अनुभवी और महारथी योद्धा हैं। सैनिक खतरेसे कभी नहीं डरता। खतरेमें उसको आनन्द आता है। यदि प्रस्तावित संविधान-सभा में त्रुटियां हैं, तो उन्हें दूर कराना आपका काम है। वह तो लड़ाईकी चुनौती होना चाहिये, न कि इनकारका एक कारण। मुझे आश्चर्य होता है कि श्री जयप्रकाशनारायणने कल यह कहा कि प्रस्तावित संविधान-सभामें भाग लेना खतरनाक होगा और इसलिए कार्यसमितिका प्रस्ताव अस्वीकार कर देना चाहिये। जयप्रकाश जैसे परखे हुए योद्धाके मुंहसे ऐसी हारकी भाषा सुननेके लिए मैं तैयार नहीं था। . . . सत्याग्रही तो पराजयको जानता ही नहीं।

एक सत्याग्रहीसे मैं यह बात सुननेकी भी आज्ञा नहीं रखता कि अंग्रेज जो कुछ करेंगे वह बुरा ही होगा। यह जरूरी नहीं कि अंग्रेज बुरे ही हों। अन्य प्रजाओंकी तरह अंग्रेज प्रजामें भी भले और बुरे आदमी हैं। अंग्रेजोंकी आजकी शक्ति बन नहीं सकती थी, अगर उनमें कोई अच्छाई न होती। हम स्वयं दोषोंसे मुक्त नहीं हैं। . . . कुछ लोग यह कहते हैं कि जिस मनुष्यमें नैतिक भावना नहीं होती, उसके सामने सत्याग्रह व्यर्थ है। मैं इस कथनका विरोध करता हूं। अगर हम सच्चे हैं और हममें काफी धीरज है, तो पत्थरके दिलवालेको भी पिघलना पड़ेगा। सत्याग्रही अपने प्राण दे देता है, परन्तु अपनी बात कभी नहीं छोड़ता। “करो या मरो” का यही अर्थ है। . . .

विलास या आरामके लिए समय नहीं है। . . . संविधान-सभा आप लोगोंके लिए कोई फूलोंकी शय्या सिद्ध नहीं होगी, बल्कि कांटोंकी शय्या होगी। आप उससे बच नहीं सकते। . . .

अगर आप मुझसे यह पूछे कि आप प्रस्तावित संविधान-सभाको रद्द कर दें, अथवा संविधान-सभा अस्तित्वमें आये ही नहीं, तो क्या मैं लोगोंको सविनय अवज्ञा—व्यक्तिगत या सामूहिक रूपमें—छेड़ देनेकी सलाह दूंगा अथवा मैं स्वयं उपवास करूंगा ? तो मेरा उत्तर होगा ‘नहीं’। मैं तो अकेले ही चलनेमें विश्वास करता हूं। मैं इस दुनियामें अकेला ही आया था, मृत्युकी छायामें अकेला ही चला हूं और समय आने पर अकेला ही चला जाऊंगा। मैं जानता हूं कि



अकेला होने पर भी मुझमें सत्याग्रह छेड़नेकी पूरी क्षमता है। मैंने इसके पहले भी ऐसा किया है। परन्तु यह अवसर उपवास या सविनय अवज्ञाका नहीं है। मैं संविधान-सभाको सत्याग्रहका स्थानापन्न मानता हूं। वह रचनात्मक सत्याग्रह है।

इसका विकल्प वह रचनात्मक कार्यक्रम है, जिसके साथ आपने कभी न्याय नहीं किया। . . . परन्तु सत्याग्रही कार्य करनेमें देर नहीं कर सकता और पूर्णतया अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न होने तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। उसके पास जो भी सामग्री है उसीको लेकर वह काम आरम्भ कर देगा। उसका मैल साफ करके वह उसे शुद्ध सोना बना लेगा। . . .

हमें अपने दृष्टिकोणमें कायर नहीं होना चाहिये, बल्कि अपने कामको विश्वास और साहसके साथ हाथमें लेना चाहिये। वंचनाके डरसे हमें हताश नहीं होना चाहिये। सत्याग्रहीको कोई धोखा नहीं दे सकता। मेरे मनमें जो अंधकार भरा हुआ है, उसकी आप बिलकुल परवाह न कीजिये। ईश्वर उसे प्रकाशमें बदल देगा।

मत लिये जाने पर कैबिनेट-मिशनकी १६ मईवाली योजनाको स्वीकार करनेका कांग्रेस कार्यसमितिका प्रस्ताव पास हो गया। २०४ मत उसके पक्षमें और ५१ मत उसके विरुद्ध थे।

इसके छह महीने बाद भी गांधीजीकी यह राय बदली नहीं थी कि उनकी 'अन्तःप्रेरणा' सच्ची थी और उसे अस्वीकार कर देनेवाली कार्यसमिति भी सच्ची थी।



नवां अध्याय

सीधी कार्रवाई

१

जुलाईके दूसरे सप्ताहमें बम्बईमें महासमितिके अधिवेशनके बाद गांधीजी गमियोंके दिन बिताने पंचगनी चले गये। उनके जीवनके पिछले वर्षोंमें वर्षमें दो महीने पहाड़की हवा उनके शरीरका स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए जरूरी हो गई थी। जब गांधीजीकी मंडली पंचगनी पहुंची तब वहांका मौसम खुशनुमा और ठंडा था और कभी धूप तो कभी बादल दिखाई देते थे। हवा सौम्य और सुखद थी और आसपासकी एकाकी पहाड़ियों पर स्वप्न-संसारका-सा मौन सतत छाया रहता था। अंधेरा होने पर पहाड़के ढालू जंगलों और कोहरेसे आच्छादित घाटियोंके घने अंधकारको असंख्य जुगनू प्रकाशित करते रहते थे और ये ढालू जंगल तथा घाटियां तारोंसे जड़े आकाशके चंदोवाकी प्रतिछाया जैसे दिखाई देते थे। गांधीजीको इन सब चीजोंका ध्यान नहीं था। उनको तो सिर्फ चावलकी फसलकी ही चिन्ता थी, जिसके समय पर वर्षा न होनेसे बिगड़ जानेका डर था। अन्तमें वर्षा हुई और अपने साथ वह काटनेवाली ठंडी हवा भी ले आई, जो हड्डियोंका मज्जा तकको जमा देती थी। और इस खराब मौसमके कारण सभी अपने घरोंमें कैद हो गये। परन्तु गांधीजीको इस बातकी खुशी थी कि योग्य समय पर बढ़िया फसल होगी और गरीब किसानोंके खलिहान धानसे भर जायेंगे।

गांधीजीकी गहरीसे गहरी भावनाएं गरीबोंके जीवनके चिन्तनसे सदा जाग्रत हो जाती थीं। दरिद्रता उनके लिए ऐसी ही थी, जैसी गगन-विहारियोंके लिए 'निसर्गकी स्थिति'। पंचगनीके अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने स्वेच्छापूर्ण दारिद्र्यका एक आदर्श चित्र खींचा था। उन्होंने कहा, ईश्वरके जो अपने आदमी होते हैं उन्हें दरिद्रता ईश्वरकी सबसे प्रिय देन है। वे बोले, हमारे देशमें गरीबीकी एक अनोखी शान है। गरीब आदमीको अपनी गरीबीकी शर्म नहीं होती। भौतिक सम्पत्तिमें दरिद्र होते हुए भी वह आत्मासे दरिद्र नहीं होता। किसी हद तक समाजमें सम्पत्तिकी असमानता अनिवार्य है, क्योंकि जन्मसे सबकी बुद्धि समान नहीं होती। गरीब अपने मनमें कह सकते हैं, "चूंकि हम सब धनवान बनकर महलोंके मालिक नहीं हो सकते, इसलिए कमसे कम अमीरोंके महलोंको गिरा कर हम उन्हें अपने जैसे



तो कर दें।” परन्तु इससे न तो उन्हें सुख या शान्ति मिल सकती है, न और किसीको। और ईश्वर भी ऐसे गरीबोंका मित्र और सहायक नहीं होगा। परन्तु भारतमें एक ऐसे प्रकारके भी लोग हैं, जिन्हें कमसे कम आवश्यकताएं रखनेमें आनन्द आता है। ऐसे आदमीके पास थोड़ासा आटा, चुटकीभर नमक और मिर्च अंगोछेमें बंधी होती है। उसके पास कुएंसे पानी निकालनेके लिए एक लोटा और डोर होती है। उसे और किसी चीजकी जरूरत नहीं होती। वह १०-१२ मील रोज पैदल चल लेता है। वह अपने अंगोछेमें आटा गूंद लेता है और इधर-उधरसे जलानेकी कुछ लकड़ियां बीन लेता है और उसी आग पर अपनी बाटियां सेंक लेता है। ऐसे आदमीका साथी और मित्र भगवान होता है और वह अपने आपको राजा या सम्राट्से भी अधिक संपन्न और समृद्ध समझता है। [हरिजन, २१ जुलाई १९४६, पृ. २३२]

*

दक्षिण अफ्रीकाकी यूनियन सरकारने जमीन पर भारतीयोंके अधिकारका विरोध करनेवाला कानून जारी किया था। उसके विरुद्ध दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय समाजने वीरोचित संग्राम छेड़ रखा था और दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्रामके महारथी योद्धा पारसी रुस्तमजीके पुत्र सोहराबजी रुस्तमजीके नेतृत्वमें कई नौजवानोंका एक दिष्ट-मंडल उसी सिलसिलेमें भारत आया था। इन नौजवानोंको दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रहकी तालीम गांधीजीसे मिली थी। ये लोग गांधीजीसे कई बार मिले। उन्होंने स्वीकार किया कि उनके बीच फूट है। गांधीजीने उन्हें याद दिलाया कि जब वे ५० वर्ष पहले वहां थे तब भी दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय समाजमें धोखेबाजोंकी कमी नहीं थी, परन्तु दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके आखिरी दौरमें वे सब एक व्यक्तिकी तरह खड़े हो गये थे। “उस इतिहासको आज फिर आप दोहरा दें तो आपकी जीत होगी; और नहीं दोहरायेंगे तो आपकी हार होगी।” [हरिजन, १९ मई १९४६, पृ. १३४]

उनमें से एक सदस्य बोले, “कभी कभी हमारा समाज कठिन बन जाता है”। “और झगड़ालू भी,” दूसरे सदस्यने कहा। उन्होंने यह भी शिकायत की कि व्यापारी समुदाय उनका साथ नहीं देता।

गांधीजीने उत्तर दिया, “यदि एक भी व्यापारी सामने नहीं आता, तो समूचे व्यापारी समुदायका सफाया हो जायगा। परन्तु आपको निराश नहीं होना चाहिये। फिर तो सत्याग्रह दूसरा ही रूप धारण



करेगा। मुझे याद है कि किस प्रकार 'इंडियन ओपीनियन' के पहले ही लेखमें मैंने यह कहा था कि दक्षिण अफ्रीकामें अन्तमें एक आदमी भी सच्चा होगा, तो सब लोग उसमें समा जायेंगे। उस लेखमें मैंने यह भी लिखा था कि 'खोटे सिक्कोंके पूरे ढेरमें यदि एक भी सच्ची मोहर हुई, तो उस ढेरकी कीमत उस एक मोहरके बराबर होगी। . . . यदि आप एक भी योग्य सत्याग्रही पैदा कर दें, तो वह आपकी नैया पार लगा देगा। जब तक ऐसा सत्याग्रही आपके पास न हो तब तक आप लड़ाई शुरू न कीजिये।' "

शिष्ट-मंडलके एक सदस्यने गांधीजीसे पूछा कि, जूलू और बन्दू लोगोंके साथ मिलकर गोरा-विरोधी मोर्चा बनानेके बारेमें आपकी क्या राय है? गांधीजी पूरी तरह इसके पक्षमें थे। परन्तु उन्होंने चेतावनी दी कि यदि गोरा-विरोधी समान मोर्चा रचनेके प्रयत्नमें उन्होंने अपनी मूल वस्तुको छोड़ दिया, तो यह विनाशकारी सिद्ध होगा। "यदि किसीने काले लोगोंको सत्याग्रहका शास्त्र नहीं बताया, तो एक दिन काली जातियां रौद्र रूप धारण करके अपने गोरे अत्याचारियोंके विरुद्ध बदला लेनेके लिए उठ खड़ी होंगी। . . . अगर आप उनमें अहिंसाकी भावना जाग्रत कर दें तो अच्छा हो। तब आप उनके उद्धारक बन जायेंगे। परन्तु यदि आप जोशमें आकर भान भूल जायेंगे और अपना मूल आधार छोड़ देंगे, तो आपका और उनका सर्वनाश निश्चित है।"

एक और सदस्यने गोरोंकी फूठ फैलानेवाली चालका जिक्र किया: "हम भारतीय बन्दू लोगोंसे लाभ उठाते हैं। हमें अपने आपको देशी (नेटिव) कहलानेमें शर्म आती है। . . . हमारे खिलाफ उनमें क्रोधकी भावना बढ़ती जाती है और गोरे उस भावनाको प्रोत्साहन देते हैं . . . ताकि हमारे और बन्दूओंके बीचकी खाई चौड़ी होती जाय।"

गांधीजीने उत्तर दिया, "गोरे इस प्रयत्नमें सफल हो गये, तो आपके लिए वह बुरा दिन होगा।"

शिष्ट-मंडलने उनसे पूछा, "क्या हमारा संगठन और नेतृत्व करनेके लिए भारतसे कोई नेता नहीं भेजा जा सकता?"

गांधीजीने उनसे कहा, नेता आपमें से ही निकलना चाहिये। मुझे आशा है कि समय पाकर ऐसा नेता पैदा हो जायगा। इस संबंधमें उन्होंने बताया कि कैसे वे अपने पुत्र मणिलाल गांधी पर जोर डालते रहे हैं कि वह इस कामके लिए अपने बच्चोंको तैयार करे और कैसे उस सिद्धान्तके अनुसार उन्होंने



अपने बच्चोंको लवडेल और फोर्ट हेयर जैसी शिक्षा-संस्थाओंमें पढ़ने भेजनेसे इनकार कर दिया था। इसीलिए आज मणिलाल और उनका सारा परिवार संग्राममें भारतीय समाजके साथ है।

दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारके भारतीय-विरोधी कानूनके विरोधमें भारत सरकारने बदलेमें वैसा ही व्यवहार करनेकी नीति अपना ली थी। गांधीजीके साथ हुई बातचीतमें लुई फिशरने उनसे कहा कि बंबईके ताजमहलू होटलमें प्रबन्धकोंने एक सूचना ऐसी लगा रखी है: “दक्षिण अफ्रीकावालोंके लिए प्रवेश बन्द है।” फिशर बोले, “मुझे यह पसन्द नहीं है। आपकी अहिंसाको आपको अधिक उदार बनाना चाहिये।”

गांधीजीने उत्तर दिया, “यह अहिंसा नहीं होगी। आज तो भारतमें गोरोंका राज्य है। इसलिए यदि ताजमहल होटलने ऐसी सूचना लगानेकी हिम्मत दिखाई है, तो यह उसके लिए शोभाकी बात है।” [हरिजन, ४ अगस्त १९४६, पृ. २४७]

“कोई भी राष्ट्रवादी यही कहेगा। किन्तु आपको तो इससे कुछ ज्यादा अच्छी बात कहनी चाहिये।”

“तब एक बार तो मैं राष्ट्रवादी बन ही जाऊंगा।”

लुई फिशर बोले, “आज गोरा-विरोधी भावनाका कोई पार नहीं है। यूरोप बुरी तरह थक गया है। परन्तु अणुबमके आ जानेसे मानव-प्राणियोंका अब उतना महत्त्व नहीं रहा। . . . इसीलिए गोरों और कालोंके बीचका युद्ध अतिशय खतरनाक हो गया है।”

गांधीजीने उत्तर दिया, “कायरतासे कोई भी चीज अच्छी है; कायरता दोहरी हिंसा है।” अपने अर्थको स्पष्ट करनेके लिए उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके एक भीमकाय हबशी पादरीका किस्सा सुनाया। जब इस काले पादरीका एक गोरेने रेलमें अपमान किया, तो उसने कहा, “भाई, माफ कीजिये।” और वह चुपकेसे रंगीन लोगोंके डिब्बेमें चला गया। “यह अहिंसा नहीं है। यह ईसाकी शिक्षाका विपर्यास है। इसके बदले अपमान करनेवाले गोरेका अपमान करना उसके लिए अधिक पुरुषोचित होता।”

*



कांग्रेसियोंमें एक वर्ग ऐसा था, जिसकी यह राय थी कि कांग्रेस संविधान-सभाका उत्तम उपयोग यही कर सकती है कि उस पर अधिकार कर ले, उसे प्रभुसत्ताधारी (सार्वभौम) संस्था घोषित कर दे और फ्रांसके 'स्टेट्स जनरल' के ढंग पर उसे क्रांतिकारी संस्थाका रूप दे दे। गांधीजीने इस प्रकारके विचारोंकी प्रबल भर्त्सना की। वे बोले, "मेरे जीते जी ऐसा नहीं हो सकता।" मेरी रायमें कांग्रेसके लिए इस तरहके झूठे बहानेसे संविधान-सभामें चुपकेसे घुस जाना असम्मानपूर्ण होगा। मैं प्रस्तावित संविधान-सभाको अक्रान्तिकारी नहीं समझता। कोई भी संस्था केवल कहने मात्रसे प्रभुसत्ताधारी संस्था नहीं बन जाती। "प्रभुसत्ताधारी बननेके लिए आपको उसी तरहका व्यवहार करना होगा।" [वही, पृ. २४५] दृष्टान्तके रूपमें उन्होंने जोहानिसबर्गके टूली स्ट्रीटके तीन दर्जियोंकी कहानी सुनाई, जिन्होंने अपने आपको एक प्रभुसत्ताधारी संस्था घोषित कर दिया था ! "उसका कुछ भी फल नहीं निकला। वह सिर्फ मजाक बनकर रह गया।"

लुई फिशरने गांधीजीसे पूछा, "क्या वैधानिक पद्धतिके विकल्प, हिंसाके डरसे ही आप प्रबल संविधानवादी बन गये हैं?" गांधीजीने उत्तर दिया, यदि भारतके भाग्यमें रक्तस्नान करना ही लिखा है, तो वह करेगा। मुझे हिंसाका डर नहीं है। "मुझे अपनी ही कायरता या बेईमानीका डर है।" [वही, पृ. २७४] मैंने देशको संविधान-सभामें जानेकी सलाह दी है, क्योंकि "यह बात अहिंसक वृत्तिके विरुद्ध है कि सविनय विद्रोहके स्थान पर कोई सम्मानपूर्ण उपाय स्वीकार न किया जाय।" [वही]

आजाद हिन्द फौजके एक कैप्टनने आकर गांधीजीसे पूछा, "हमें एक मौका दीजिये; अब आप हमसे क्या कराना चाहते हैं?"

गांधीजीने उत्तर दिया, "आजाद हिन्द फौजमें पूरी एकता थी। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और पारसी सभी कौमोंके लोग सगे भाइयोंकी तरह रहते थे। . . . उस एकताका प्रत्यक्ष प्रमाण आप यहां दीजिये।" [हरिजन, ११ अगस्त १९४६, पृ. २५३]

लेकिन कैप्टनका उद्देश्य यह नहीं था। उन्होंने अपने प्रश्नको और स्पष्ट करनेके लिए पूछा, "स्वाधीनताके भावी संग्राममें हमारा क्या योगदान होना चाहिये?"



गांधीजीने जवाब दिया, “स्वाधीनताका संग्राम आज भी चालू है; वह कभी बन्द नहीं हुआ। लेकिन मेरा बस चले तो वह अहिंसक संग्राम होगा।”

*

लेकिन न तो आसपासकी हरी पहाड़ियोंसे आनेवाली ताजी, भीनी, ओज़ोनसे भरी वायु और न मनुष्यके रोम-रोममें व्याप्त होनेवाली उस स्थानकी प्राणदायक शान्ति ही गांधीजीको पंचगनीमें आवश्यकतासे एक क्षण भी अधिक रोक सकती थी। वे आध्यात्मिक दृष्टिसे पंचगनीमें ऊब गये और अगस्तके दूसरे सप्ताहमें उन्होंने सेवाग्राम और धूमधाम तथा शोरगुलसे भरे मैदानोंमें लौट जानेका निश्चय कर लिया। पंचगनीसे नीचे उतरते समय नीचेकी तलेटियोंमें शांतिसे फैले हुए सुन्दर आकृतिवाले खेत तथा छोटे छोटे सुन्दर गांव ऐसे मालूम होते थे, मानो गहरे नीले और सुनहरे रंगकी भूमितिकी सुरेख आकृतियोंवाले मखमलके कीमती गालीचे बिछे हुए हों; तथा अस्ताचलकी दिशामें जानेवाले सूर्यके घने प्रकाशको प्रतिबिम्बित करनेवाले झरनों और पानीसे भरी धानकी क्यारियोंके कारण वे छोटे छोटे असंख्य आइनों और चांदीकी टेढ़ी-तिरछी रेखाओं जैसे चमकते मालूम होते थे। मार्गमें गांधीजी दो दिनके लिए उरुलीकांचन ठहरे। वहांके कार्यक्रमका बोझ आशासे अधिक भारी साबित हुआ। एक दिन इस भारसे दबकर वे बोले, “देखना है सेवाग्राम मेरे लिए क्या कर सकता है।” उन्होंने यह भी कहा, “लेकिन भारकी इतनी परवाह नहीं जितनी अनासक्तिके अभावकी है। अभी तक मैंने ईश्वर पर सब-कुछ छोड़ देनेकी पर्याप्त शिक्षा नहीं ली है। लेकिन जिसकी ईश्वरमें सजीव श्रद्धा हो, उसके लिए यह चिन्ताका अतिरिक्त कारण नहीं बनना चाहिये।” [हरिजन, १८ अगस्त १९४६, पृ. २६३]

२

जूनके चौथे सप्ताहमें कांग्रेस कार्यसमिति जब अपने विचार-विमर्शमें दिल्लीमें व्यस्त थी, जिसके परिणाम-स्वरूप उसने कैबिनेट-मिशनके दीर्घकालीन प्रस्तावको स्वीकार तथा अल्पकालीन प्रस्तावको अस्वीकार करनेका निश्चय किया था, उस समय मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिकी बैठकें लगातार नगरके दूसरे भागमें हो रही थीं और वहां कांग्रेसके निर्णयके समाचारकी अधीरतासे प्रतीक्षा की जा रही थी। लीगने कैबिनेट-मिशनकी १६ मईवाली योजनाको स्वीकार करके अपने लिए एक अनुकूल स्थिति प्राप्त



कर ली थी। उसने समूह-रचनाके बारेमें अपना ही अर्थ लगाया था और कैबिनेट-मिशनने उसका समर्थन किया था तथा बादमें लॉर्ड वेवेलने अपने २० जूनके पत्रमें उसको और भी आश्वासन दे दिये थे । इन आश्वासनोंको कांग्रेस राजनीतिक आत्महत्या किये बिना चुपचाप स्वीकार नहीं कर सकती थी। इसलिए लीगको यह विश्वास हो गया था कि कांग्रेसका तो पत्ता कट गया है, अब अकेली लीगको ही अन्तरिम सरकार बनानेके लिए कहा जायगा। परन्तु वह अपने शिकारके बारेमें पहले निश्चिन्त हो जाना चाहती थी।

कांग्रेस अपना निर्णय घोषित करे तब तक अपनी बाजी न खोलने तथा कांग्रेसका निर्णय जाननेके बाद अपनी कार्यदिशा निश्चित करनेकी पद्धति जिन्नाने लम्बे समयसे अपना रखी थी। इसमें उन्हें अच्छी सफलता मिली थी। परन्तु इस बार वे गलती करके जल्दी कर बैठे। कांग्रेसका उत्तर मिलनेके बाद २५ जूनकी शामको वाइसरॉय और कैबिनेट-मिशनने जिन्नाको बुलाया । परन्तु जैसी उन्हें आशा थी, कांग्रेसके बिना अन्तरिम सरकार बनानेका निमंत्रण देनेके बजाय कैबिनेट-मिशनने उन्हें सूचना दी कि हमारे विचारके अनुसार कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनोंने १६ मईवाली योजनाको स्वीकार कर लिया है, इसलिए अन्तरिम सरकारमें भाग लेनेके लिए दोनों ही संस्थायें पात्र हो गयी हैं। किन्तु मिशनके १६ जूनके वक्तव्यमें प्रस्तावित अन्तरिम सरकार बनानेमें सहयोग देनेसे कांग्रेसने असमर्थता प्रगट कर दी, इसलिए ऐसी स्थिति पैदा हो गई जिसमें उस वक्तव्यका ८वां पैरा लागू होता था। उस पैरेमें यह कहा गया था कि यदि दोनों बड़े दलोंमें से कोई एक दल उस वक्तव्यमें उल्लिखित ढंग पर मिश्र-सरकार रचनेमें सम्मिलित होनेको तैयार न हो, तो वाइसरॉय ऐसी अन्तरिम सरकार रचनेका काम शुरू कर देंगे (स्पष्टतः किसी नये आधार पर तथा आवश्यक रूपमें मिश्र-सरकार नहीं), जो १६ मईके वक्तव्यको स्वीकार करनेवाले दलोंका अधिकसे अधिक प्रतिनिधित्व करनेवाली हो । जिन्नाकी इस बारेमें क्या राय थी?

जिन्नाने इस विचारसे प्रबल असहमति प्रगट की । उन्होंने कैबिनेट-मिशनसे कहा कि जो कुछ वह करना चाहता है वह लिखित रूपमें दे। परन्तु वे अपनी स्थितिके बारेमें (अथवा अपनी शक्तिके बारेमें ?) इतने निश्चिन्त मालूम होते थे कि वाइसरॉय-भवनसे सीधे मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिमें गये और कैबिनेट-मिशनके पत्रकी प्रतीक्षा किये बगैर उन्होंने लीगसे यह प्रस्ताव पास करा लिया कि उसे



अन्तरिम सरकार बनानेका १६ जूनवाला प्रस्ताव स्वीकार है। उनका कहना था कि मिशनके १६ जूनके प्रस्तावके ८ वें पैरेके अनुसार कांग्रेस द्वारा १६ मईवाली योजनाका स्वीकार और १६ जूनके वक्तव्यका अस्वीकार उसमें उल्लिखित आधार और सिद्धान्तको नहीं बदल सकते और इसलिए वाइसरॉय कांग्रेसके बिना सरकार रचनेकी दिशामें आगे बढ़नेके लिए कर्तव्य-बद्ध हैं। परन्तु कैबिनेट-मिशन इस राय पर आया कि, “यदि कांग्रेस या मुस्लिम लीग मिश्र-सरकारमें आनेको तैयार नहीं होती, तो **मिश्र**-सरकारकी योजनाका अन्त हो जाता है, क्योंकि वह मिश्र-सरकार नहीं होगी; और हमें कोई और अन्तरिम सरकार उन लोगोंकी बनानी होगी, जिन्हें १६ मईकी योजना स्वीकार हो।” [पार्लियामेन्टमें सर स्टैफर्ड क्रिप्सका भाषण, १८ जुलाई १९४६] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) उसकी रायमें चूंकि कांग्रेसने १६ मईके वक्तव्यको स्वीकार कर लिया था, इसलिए देशकी सबसे बड़ी राजनीतिक संस्थाके नाते उसे अंतरिम सरकार रचनेके लिए निमंत्रण पानेका अधिकार है। तदनुसार २६ जूनको मिशनने इस आशयका वक्तव्य जारी किया कि १६ जूनके प्रस्तावके आधार पर कोई अन्तरिम मिश्र-सरकार रचना संभव नहीं है, इसलिए उस प्रस्तावके ८ वें पैरेके अनुसार थोड़े दिनके लिए काम बन्द कर देनेके बाद अन्तरिम सरकार रचनेके प्रयत्न फिरसे शुरू किये जायेंगे और उस बीच संविधान-सभाके चुनाव होते रहेंगे।

इससे मुस्लिम लीगको गुस्सा आया। लीगको लगा कि उसे उसीकी चालमें छकाया गया है, नीचे गिराया गया है और उसके साथ धोखा किया गया है। जिन्नाने यह मांग की कि अन्तरिम सरकार बनानेका मामला खटाईमें डाल दिया गया है, इसलिए संविधान-सभाका चुनाव भी स्थगित रहना चाहिये; और जब मिशनने उनकी यह मांग ठुकरा दी, तो उन्होंने मिशन पर घोर ‘विश्वासघात’ का दोष लगाया तथा मिशनने ८ वें पैरेका जो अर्थ लगाया उसे ‘अत्यन्त मनमाना और अप्रामाणिक’ बताया।

जिन्नाकी इस किरकिरी पर किसीको भी सहानुभूति नहीं हुई। सबके मुखसे यही स्वर निकला कि “पारधीने अपने ही गलेमें फंदा डाल लिया।” परन्तु गांधीजीके दिलको इससे चोट लगी और अपमान भी अनुभव हुआ। उन्होंने कहा, “कैबिनेट-मिशनको जिन्नाके साथ इस तरह निरे कानूनी ढंगसे व्यवहार नहीं करना चाहिये था। वे एक महान भारतीय हैं और एक बड़े संगठनके माने हुए नेता हैं।”



लीगकी कौंसिलकी बैठक हुई और २९ जुलाईको उसने मिशनकी १६ मईकी योजनाकी अपनी पूर्व-स्वीकृति वापस ले ली। उसने यह भी निश्चय किया कि पाकिस्तान प्राप्त करनेके लिए 'सीधी कार्रवाई' छेड़ दी जाय और "मुसलमानोंको आगामी संग्रामके लिए संगठित किया जाय तथा वह संग्राम जैसे और जब जरूरी हो छेड़ा जाय।" १६ अगस्त, १९४६ का दिन 'सीधी कार्रवाई' का दिन घोषित कर दिया गया, जो भारत भरमें विरोध-दिवसके रूपमें मनाया जानेवाला था।

'सीधी कार्रवाई' का प्रस्ताव पास होनेके तुरन्त बाद जिन्नाने मुस्लिम लीग कौंसिलके अन्तिम अधिवेशनमें तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच यह घोषणा की : "आजसे हम वैधानिक पद्धतियोंको अलबिदा कहते हैं।" और फिर कहा : "हमने भी एक पिस्तौल तैयार कर ली है और हम उसका उपयोग करनेकी स्थितिमें हैं।"

३१ जुलाईको एक पत्रकार-सम्मेलनमें इसका अर्थ और भी स्पष्ट करते हुए जिन्नाने कहा कि जब ब्रिटिश सरकार और कांग्रेसके पास अपने अपने ढंगके हथियार हैं, एकके पास तोप-बन्दूक हैं और दूसरीके पास सामूहिक संग्रामकी धमकी है, तब मुस्लिम लीगको लगता है कि उसके लिए भी अपना बल तैयार करनेका और पाकिस्तानकी अपनी मांग मनवानेके लिए युद्धकी तैयारी करनेका समय आ पहुंचा है। [हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड, १ अगस्त १९४६] उन्होंने प्रस्तावित 'सीधी कार्रवाई' के ब्योरेकी चर्चा करनेसे इनकार कर दिया और कहा, "मैं अभी आपको यह बतानेके लिए तैयार नहीं हूँ।" यह पूछने पर कि वह हिंसक होगी अथवा अहिंसक, उन्होंने उत्तर दिया कि, "मैं नीतिशास्त्रकी चर्चा नहीं करूंगा।"

परन्तु बंगालके लीगी नेता ख्वाजा नजीमुद्दीन इतने अस्पष्ट नहीं रहे। जब उनसे एक पत्र-प्रतिनिधिने मुस्लिम लीगके 'सीधी कार्रवाई' के निर्णयके फलितार्थ समझानेको कहा, तो वे बोले : "हम सैकड़ों तरहसे कठिनाइयां पैदा कर सकते हैं, खास तौर पर जब हम पर अहिंसाकी कोई पाबन्दी नहीं है। बंगालकी मुसलमान जनता अच्छी तरह जानती है कि सीधी कार्रवाईका क्या मतलब होगा। इसलिए हमें उसकी रहनुमाई करनेकी चिन्तामें पड़नेकी जरूरत नहीं ?" [इंडियन एन्युअल रजिस्टर, भाग-२, १९४६, पृ. ६९]



जिन्नाके दाहिने हाथ नवाबजादा लियाकतअली खाने एसोसियेटेड प्रेस ऑफ अमेरिकाको समझाया कि, 'सीधी कार्रवाई' का अर्थ है "अवैधानिक कार्य-पद्धतियोंका आश्रय लेना और जिन परिस्थितियोंमें हम रहते हैं उनके अनुकूल वे पद्धतियां कोई भी रूप धारण कर सकती हैं।" [लीडर, ५ अगस्त १९४६] उन्होंने यह भी कहा: "हम किसी भी कार्य-पद्धतिको छोड़ नहीं सकते। 'सीधी कार्रवाई' का अर्थ है कानूनके विरुद्ध कार्रवाई करना।"

उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके लीगी नेता सरदार अब्दुर्रब निश्तरने विवेककी मर्यादाका उल्लंघन करके स्पष्ट बातें कह डालीं। उन्होंने यह कहा बताते हैं कि, पाकिस्तान खून बहाकर ही लिया जा सकता है और अगर मौका आया तो गैर-मुस्लिमोंका खून बहाना ही पड़ेगा; क्योंकि मुसलमान अहिंसाको नहीं मानते। [खोसला, 'स्टर्न रेकनिंग', मद्रास, पृ. ४३]

तो क्या यही वह 'पिस्तौल' थी, जिसके लिए जिन्नाने घोषणा की थी कि उन्होंने पिस्तौल तैयार कर ली है और जिसका "उपयोग करनेकी स्थितिमें वे हैं"? अगर ऐसी बात थी तो वह 'पिस्तौल' तो तभीसे न सिर्फ मौजूद थी, बल्कि बहुत कुछ काममें भी लायी जा रही थी, जब कैबिनेट-मिशनने २६ जूनको अकेली मुस्लिम लीगके हाथोंमें केन्द्रकी अन्तरिम सरकार सौंप देनेसे या जिन्नाकी मांगके अनुसार संविधान-सभाके चुनाव स्थगित करनेसे इनकार कर दिया था। अहमदाबाद, बंबई, इलाहाबाद, अलीगढ़, ढाका और दूसरे स्थानों पर साम्प्रदायिक उपद्रव और योजना-बद्ध तुफान हुए थे। अज्ञात गुंडों द्वारा छूरे भोंकनेकी घटनायें और निर्दोष, बेकसूर राहगीरों पर अमानुषिक आक्रमण संक्रामक हो गये थे। जब कैबिनेट-मिशनकी वार्ताएं हो रही थीं तब भी हिन्दुस्तान भरमें भिन्न भिन्न स्थानों पर पुलिसको छूरियों, कटारों और दूसरे घातक हथियारोंके गुप्त पार्सलोंके बारेमें समाचार मिले थे और उन्हें बीचमें ही पुलिसने जब्त कर लिया था।

मुस्लिम लीगने २९ जुलाईके अपने प्रस्तावके अनुसार एक कार्रवाई- समिति नियुक्त की। उसने बन्द कमरेमें अपनी बैठकें कीं। परन्तु कार्रवाईका जो कार्यक्रम उसने तैयार किया था और जिसे बादमें मुस्लिम लीगी अखबारोंने विस्तारपूर्वक छापा था, वह बहुत स्पष्ट था। उसमें मुसलमानोंको याद दिलाया गया था कि रमजानके महीनेमें ही अरबके ३१३ मुसलमानोंने "इस्लाम और कुफ्रकी पहली खुली लड़ाई"



लड़ी थी और जीती थी। इस धर्मयुद्धके लिए जिस पत्रिकामें खास प्रार्थना की गई थी, उसमें घोषणा की गई थी कि १० करोड़ हिन्दुस्तानी मुसलमान, जो “बदकिस्मतीसे हिन्दुओं और अंग्रेजोंके गुलाम हो गये थे”, “रमजानके इसी महीनेमें जिहाद” शुरू करेंगे। एक और पत्रिकामें तलवार हाथमें लिये हुए जिन्नाकी तसवीर थी और उसमें कहा गया था: “हम मुसलमानोंके पास ताज रहा है और हमने हुकूमत की है। सब तैयार हो जाओ और अपनी तलवारें संभाल लो। . . . ऐ काफिर ! . . . तुम्हारी कयामत दूर नहीं है और कत्लेआम आनेवाला है !”

*

बंगालमें मुस्लिम लीगी सरकार सत्तारूढ़ थी। शहीद सुहरावर्दी उसके मुख्यमंत्री थे। लीग और कैबिनेट-मिशनकी बात टूट जानेके बाद सुहरावर्दीने यह घोषणा की थी कि यदि केन्द्रमें कांग्रेसको सत्तारूढ़ किया गया, तो बंगाल विद्रोहका झंडा खड़ा करेगा। प्रान्तीय आयका कोई भाग केन्द्रको नहीं दिया जायगा और बंगाल अपना एक स्वाधीन राज्य स्थापित कर लेगा, जिसकी केन्द्रीय सरकारके प्रति कोई वफादारी नहीं होगी।

कलकत्तेमें सीधी कार्रवाईके लिए पहलेसे ही लम्बी-चौड़ी तैयारियां की गई थीं। कानून और व्यवस्था-विभागके मंत्री होनेके नाते सुहरावर्दीने महत्त्वपूर्ण जगहोंसे हिन्दू पुलिस अफसरोंको व्यवस्थित रूपमें अन्यत्र हटाना शुरू कर दिया था। इस प्रकार १६ अगस्तको कलकत्तेके २४ में से २२ थाने मुसलमान अफसरोंके अधीन थे और बाकी दो पर एंग्लो-इंडियनोंका नियंत्रण था। प्रान्तीय विधान-सभामें विरोधी दलकी चेतावनियों और विरोधके बावजूद बंगाल सरकारने प्रान्तभरमें १६ अगस्तके दिन सरकारी छुट्टी घोषित कर दी थी। लाठियां, भाले, कुल्हाड़े, छुरियां और दूसरे घातक हथियार, जिनमें बन्दूकें और पिस्तौलें भी शामिल थीं, बड़ी संख्यामें पहलेसे ही मुसलमानोंको बांट दिये गये थे। लीगके स्वयंसेवकों और मुस्लिम गुंडोंके लिए सवारीका बन्दोबस्त कर दिया गया था। सीधी कार्रवाईके दिनसे ठीक पहले मंत्रियोंको सैकड़ों गैलन पेट्रोलकी अतिरिक्त चिट्ठियां देकर और खुद भी लेकर मुख्य-मंत्रीने पेट्रोलके राशनकी कठिनाई दूर कर दी थी। सीधी कार्रवाईके दिन जिनके हताहत होनेकी आशा रखी गई थी, उनके इलाजके लिए पूरा, व्यवस्थित और व्यापक प्रबंध कर दिया गया था। कलकत्ता मैदानमें



जहां सीधी कार्रवाईके दिन मुसलमानोंकी विराट सभा होनेवाली थी उस स्थानसे दिखाई पड़नेवाला एक प्राथमिक सहायता-केन्द्र स्थापित कर दिया गया था। यह भी बन्दोबस्त कर दिया गया था कि हर बड़े जुलूसके साथ उसका अपना प्राथमिक सहायताका सामान रहे।

कहा जाता है कि हावड़ामें शरीफखां नामक विधान-सभाके एक मुसलमान सदस्यने गुंडोंको हथियार बांटे। शरीफखां उस मोहल्लेके गुंडों पर नियंत्रण रखता था और सुहरावर्दीका पिट्टू माना जाता था। मोहम्मद उस्मान उस समय कलकत्तेका मुस्लिम लीगी मेयर और कलकत्ता मुस्लिम लीगका मंत्री था। वह खुद शरीफखांके साथ हावड़ा क्षेत्रमें गया था और कहा जाता है कि उसने गुंडोंको हिंसाके लिए उभाड़ा था।

सीधी कार्रवाईके कार्यक्रमकी चरम सीमा १६, १७ और १८ अगस्तको कलकत्तेके भीषण नर-संहारमें हुई। १५ अगस्तकी आधी रातसे मुसलमानोंकी संगठित टोलियां तरह तरहके हथियार लिये कलकत्तेके मार्गों पर घूमती दिखाई दीं। उनके लड़ाईके नारोंसे रातकी शान्ति भंग हो रही थी। १६ अगस्तके प्रभातका उदय बादलोंसे छाये हुए आकाशमें हुआ। लगता था कि मूसलाधार बरसात होगी। परन्तु बरसात शाम तक रुकी रही। १६ को तड़केसे ही मुस्लिम गुंडे अपने काममें लग गये। दोपहर तक शहरके अनेक भागोंमें साधारण कामकाज ठप हो गया। लाठियां, भाले और छूरे लिये हुए मुसलमानोंका एक बहुत बड़ा जुलूस उस सामूहिक प्रदर्शनमें भाग लेनेके लिए हावड़ासे कलकत्तेके लिए रवाना हुआ। हावड़ा पुल पर एक यूरोपियन सार्जन्टने उसे रोक दिया। जुलूसवालोंके हथियार छीन लिये गये। जो घातक शस्त्र और आग लगानेकी सामग्री उनसे छीनी गई, उससे दो ट्रकें भर गईं।

शाम तक यह दावानल सब जगह फैल गया और सारे शहरमें हाहाकार मच गया, जब उस विराट सभाके बाद—जिसके अध्यक्ष सुहरावर्दी थे—बढ़ती हुई निरंकुश भीड़ मैदानसे लौटते समय उन लोगोंके काममें हस्तक्षेप करने लगी, जो हड़तालमें शामिल नहीं हुए थे। उनकी दुकानें लूट ली गईं और दुकानोंका माल रास्तोंमें फेंक दिया गया। निजी मोटर-कारों और ट्रामोंको जला दिया गया। इक्के-दुक्के राहगीरों पर हमले किये गये और उन्हें छूरे भोंके गये। तमाम सवारियोंका आना-जाना और आवश्यक सेवाओंका कार्य रोक दिया गया। रास्तों पर सिर्फ मुस्लिम लीगकी मोटर-लारियां और जीपें ही घूमती दिखाई देती



थीं, जिनमें मुस्लिम गुंडे लदे हुए थे और वे पाकिस्तानके नारे लगा लगा कर भीड़को हिंसाके लिए उत्तेजित कर रहे थे।

अगले दो दिनोंमें शहरको भयंकर नरकमें बदल दिया गया और वह एक बड़ा वधस्थान बन गया। क्या अप्रैल १९४६ में मुस्लिम लीगी धारासभाइयोंके सम्मेलनमें बोलते हुए वाइसरॉयकी कार्यकारिणी परिषद्के भूतपूर्व सदस्य सर फीरोजखां नूनने यह घोषणा नहीं की थी कि “हमें एक केन्द्रीय सरकारके अधीन रख देनेके कारण यदि ग्रेट ब्रिटेनसे हमें लड़ना पड़ा, तो जिस हत्याकांडका सर्जन मुसलमान करेंगे उसके आगे चंगेजखां और हलाकूके हत्याकांड भी फीके पड़ जायेंगे ?” जब गुंडोंके संगठित दल अपने विनाश-कार्यके लिए शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर मुस्लिम लीगके झंडे लिये हुए और पाकिस्तानके नारे लगाते हुए हत्या, आगजनी, बलात्कार और लूटका निरंकुश तांडव मचा रहे थे, तब पुलिस खास तौर पर पहले दो दिनोंमें लगभग तमाशा देखती रही। पुलिस अफसरोंके बारेमें जान-बूझकर निष्क्रिय बने रहनेकी अनेक शिकायतें हुईं। तीसरे दिन सेना बुलाई गई। तब तक दावानल फैलानेवालोंके विरुद्ध लड़ाईका ज्वार पलट चुका था। १७ अगस्तकी शामको जब क्षेत्रीय सेनानायक ब्रिगेडियर सिक्सस्मिथने शहरका नियंत्रण संभाला तबकी स्थितिका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा, “पुलिसने अब तक एक बार भी गोली नहीं चलाई थी। एक दो मामलोंमें अश्रुगैसका उपयोग किया गया था।”

इस अंधाधुंधीमें वृद्धि करनेके लिए सुहरावर्दी पुलिसके प्रधान केन्द्रके नियंत्रण-कक्ष (कंट्रोल रूम) में जाकर जम गये। वहां वे सन्देश लेते थे, मौखिक और लिखित सूचनायें देते थे और पुलिसके मुखियाके निर्णयोंको रद्द करके अपने निर्णय चलाते थे तथा उनके काममें हस्तक्षेप करते थे। इन्स्पेक्टर वेडने १६ अगस्तकी शामको लूटे हुए मालकी छारीके साथ ८ मुसलमानोंको रंगे हाथों पकड़ा और उन्हें गिरफ्तार करके थाने पर भेज दिया। थोड़ी ही देर बाद सुहरावर्दी वहां आ धमके और “अपनी निजी जिम्मेदारी” पर उन्हें फौरन छोड़ देनेका हुक्म दे दिया। नियंत्रण-कक्षमें उनके आचरणके बारेमें गवर्नरसे शिकायत की गई और यह प्रार्थना की गई कि मुख्यमंत्रीको नियंत्रण-कक्षसे दूर रहना चाहिये।

कुछ मोहल्लोंमें लगातार ४० घंटे तक लूटपाट और मारकाट होती रही। सड़कों पर जहां तहां लाशें बिछ गईं तथा सड़ी हुई और सड़नेवाली लाशोंकी बदबू हवामें भर गई, क्योंकि कई दिन तक वे यों



ही पड़ी रहीं। लाशोंको गटरोंके ढक्कन खोलकर अंदर ढकेल दिया गया। नतीजा यह हुआ कि गटरोंका मार्ग रुंध गया। गलियोंमें लाशोंके ढेर लग गये और आवारा कुत्तों, गीदड़ों और गिद्धोंकी भयावनी दावत होती रही। लाशें नदीमें भी तैरती हुई देखी गईं। बच्चोंको घरोंकी छतोंसे नीचे फेंक देने या जीवित जला देनेकी कहानियां भी सुनी गईं। स्त्रियों पर बलात्कार करके उनका अंगभंग करने और फिर मार दिये जानेके किस्से भी सुने गये।

किम क्रिस्टिनने 'दि स्टेट्समैन' में लिखा : "लड़ाईके अस्पतालका अनुभव करके मेरा हृदय कठिन बन गया है। लेकिन लड़ाईमें कभी ऐसी बातें नहीं हुई।" [दि स्टेट्समैन, २४ अगस्त १९४६] 'दि स्टेट्समैन' ने सम्पादकीय टिप्पणी लिखी, "यह दंगा नहीं है। इसके लिए मध्यकालीन इतिहासमें पाया जानेवाला एक शब्द चाहिये, जिसे 'जनून' कह सकते हैं। परन्तु 'जनून' में सहजताकी ध्वनि मालूम होती है, जब कि इस जनूनको आगे बढ़ानेके लिए कोई निश्चित हेतु और संगठन जरूर रहा होगा। जो झुंड ८ फुट लंबी लाठियोंसे लोगोंको पीटते और मारते थे, उन्हें या तो ये लाठियां इधर उधर पड़ी हुई मिल गई होंगी या ये लाठियां गुंडोंने अपने पैसेसे खरीदी होंगी। परन्तु यह मानने लायक बात नहीं। हम पहले ही टीका कर चुके हैं कि इन टोलियोंको आसानीसे पेट्रोल और गाड़ियां मिल गईं, जब कि दूसरे लोगोंको सड़कों पर जानेकी भी इजाजत नहीं थी। यह निरी कल्पना नहीं है कि धाक जमानेमें मदद करनेके लिए लोगोंको कलकत्तेमें बाहरसे लाया गया था।" [दि स्टेट्समैन, २० अगस्त १९४६]

उसी अंकके एक सम्पादकीय लेखमें, जिसका शीर्षक था 'अधमताकी पराकाष्ठा', उस पत्रने आलोचना की:

एक महान प्रान्तकी राजधानीमें जो भयंकर रक्तपात और बरबादी हुई, उसका मूल मुस्लिम लीगका राजनीतिक प्रदर्शन था। हम यह मानते हैं कि भारतके इतिहासमें यह सबसे बुरा साम्प्रदायिक दंगा था। . . . दंगेसे पहलेके लीगके आचरणका यदि सिहावलोकन करें, तो उससे यह अनुमान निकाला जा सकता है—और वह राजनीतिक विरोधियोंके द्वारा ही नहीं—कि उसके मनमें यह दुविधा थी कि अमुक प्रकारका दंगा-फसाद अच्छा होगा या खराब। . . . इस देशका सबसे बड़ा शहर भयंकर हत्याकांडका स्थल बन गया, यह अधमताकी पराकाष्ठा है।



बंगालका मंत्री-मंडल मुख्यतः लीगो मंत्री-मंडल होनेके कारण इससे स्वयं लीगकी अखिल भारतीय ख्याति पर गम्भीर कलंक लग गया है।

लीगके सीधी कार्रवाईके कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेके लिए बंगालके मुख्यमंत्रीसे अधिक योग्य साधन दूसरा कोई नहीं हो सकता था। वे कार्यक्षम, बुद्धिशाली और क्रियाशील व्यक्ति थे। उन्हें एक और सुविधा यह भी थी कि सुसंगतताका जो “भूत छोटे दिमागोंको” सताया करता है, उससे वे बिलकुल अछूते थे ! कलकत्तेके महान हत्याकांडके बाद २१ अगस्तको एक रेडियो-भाषणमें उन्होंने अत्यन्त उदात्त भावनाएं प्रगट कीं और लोगोंसे शान्ति तथा भ्रातृस्नेहकी भावनासे रहनेका अनुरोध किया। साथ ही, उन्होंने विदेशी पत्रकारोंके समक्ष एक बिलकुल दूसरे ही ढंगका वक्तव्य [२४ अगस्तको कलकत्तेसे ‘संडे एक्सप्रेस’ (लन्दन) के प्रतिनिधिने जो तार भेजा था, उसका प्रस्तुत अंश यह है: “सुहरावर्दी परस्पर विरोधी बातें करते हैं: “मुझे कैबिनेट-मिशनकी सचाईमें विश्वास है। मुझे भरोसा नहीं होता कि अंग्रेजोंका कभी भी भारतसे निकल जानेका इरादा है। अब तो उन्हें यहां रहना ही होगा। यदि ब्रिटिश सेना हटा ली जाय, तो यहां हत्याकांड मच जायगा।’ सुहरावर्दी आग्रहपूर्वक कहते हैं कि दंगा हिन्दुओंने शुरू किया। ‘मुसलमानोंका विचार केवल शान्तिपूर्ण प्रदर्शन करनेका था। वे लड़नेके लिए तैयार नहीं थे। हिन्दुओंके पास ही बन्दूकें, छाठियां, पत्थर, खौलता हुआ पानी और तेजाबकी बोतलें आदि हथियार थे, जो उन्होंने छतोंसे मुसलमानों पर फेंके। उत्तके पास पेट्रोल और परिवहनकी व्यवस्था भी थी।’”] दिया, जिससे विवश होकर ‘दि स्टेट्समैन’ को ये सम्पादकीय उद्गार प्रगट करने पड़े: बंगालके मुख्यमंत्रीने विदेशी समाचार-संस्थाओंके समक्ष “स्पष्टतः केवल विदेशोंमें उपयोग करनेके लिए” जो वक्तव्य दिया, वह ‘शायद ही प्रामाणिक’ कहा जा सकता है। वह वक्तव्य सूचित करता है कि “अपनी पसन्दके अलग अलग श्रोतावर्गोंके सामने उन्हीं घटनाओंको, लगभग उसी समय, सर्वथा विसंगत रूपमें रखनेमें उस मंत्रीको जरा भी संकोच नहीं होता।” [दि स्टेट्समैन, २७ अगस्त १९४६] १६ अगस्तकी शामको जब उपद्रव चरम सीमा पर पहुंच गया था और सारे शहरमें स्थिति तेजीसे बिगड़ती जा रही थी, उन्होंने एसोसियेटेड प्रेस ऑफ इन्डियाको यह बताया कि परिस्थिति सुधरती जा रही है। बादमें उन्होंने इनकार कर दिया कि ऐसा कोई वक्तव्य उन्होंने दिया था। आगे चल कर इस अभियोगका कि उन्होंने पहलेसे उपद्रवोंको रोकनेके पर्याप्त उपाय जान-बूझ कर नहीं किये, उत्तर देते हुए उन्होंने इस बातको



अस्वीकार कर दिया कि “हिन्दुओं था मुसलमानोंकी ओरसे तैयारियां होने” का सत्ताधारियोंको पहलेसे कोई पता चल गया था। लेकिन बादमें पुलिस-कमिश्नरकी कलकत्तेके दंगों पर प्रकाशित रिपोर्टसे साफ मालूम हो गया कि जासूसी-विभागको और बातोंके साथ साथ यह **निश्चित जानकारी प्राप्त हुई थी** कि (१) “यदि गैर-मुस्लिम हड़ताल नहीं करेंगे, तो मुसलमानोंके गुंडा-तत्त्व उपद्रव कर सकते हैं;” और (२) यह कि “कई मुस्लिम छात्रालयोंको सूचनायें दे दी गई थीं कि १६ अगस्तको ट्रामगाड़ियों और फौजी लॉरियोंको आग लगा देनेकी तैयारियां की जायं।” ऐसा नहीं मालूम होता कि सेना भी इन तैयारियोंसे सर्वथा अनभिज्ञ थी, क्योंकि कलकत्तेके दंगों पर स्पेन्स जांच-कमीशनके सामने गवाही देते हुए ब्रिगेडियर सिक्सस्मिथने कहा था कि १. अगस्तको जनरल बुशोरने उन्हें बुला कर यह चेतावनी दी थी कि मुस्लिम लीगकी सीधी कार्रवाईके दिन उपद्रवकी संभावना है।

यह अनुमान लगाया गया था कि कलकत्तेके भीषण हत्याकांडमें ५ हजारसे अधिक व्यक्ति मारे गये और १५ हजारसे ज्यादा घायल हुए। जिन्नाने इसे लीग और बंगालके लीगी मंत्रि-मंडलको बदनाम करनेका हिन्दुओंका एक संगठित षड्यंत्र बताया और सारा दोष कैबिनेट-मिशन, कांग्रेस और गांधीजी पर थोप दिया !

३

जब कलकत्तेके भयंकर हत्याकांडके समाचार पहुंचे तब गांधीजी सेवाग्राम आश्रममें थे। २४ अगस्तको शामकी सामूहिक प्रार्थनाके बाद उन्होंने आश्रम-वासियोंको संबोधित करते हुए कहा, देश जिस दावानलमें फंस गया है उसे देखते हुए हम लोग अपने कर्तव्यका विचार करें। “हम नम्र बनें और यह स्वीकार करें कि लोग हमसे जो आशाएं रखते हैं, उन सबको पूरा करनेकी आज हममें शक्ति नहीं है।” यदि उन सिद्धान्तोंको हमने पूरी तरह समझ लिया होता जिन्हें आश्रमने अपनाया है, तो हम इस भीषण दावानलमें कूद पड़ते और वह विशुद्ध बलिदान करते जो “संभवतः दावानलको बुझा देता।” शुद्ध बलिदानका यह अर्थ नहीं है कि “दीपकमें पतंगेकी तरह विचारहीन आत्मनाश किया जाय । त्याग सफल तभी होता है जब वह . . . स्वेच्छासे और . . . श्रद्धासे तथा आशाके साथ किया जाय और उसे करते समय हृदयमें जरा भी दुर्भाव अथवा द्वेष न हो। . . . ऐसे बलिदानसे हर वस्तु सिद्ध की जा सकती है।”



अन्तमें उन्होंने प्रार्थना की कि ईश्वर हमें पवित्र बलिवेदीके योग्य बलिदान करनेके लिए आवश्यक पवित्रता और निर्भयता प्रदान करे। [हरिजन, ८ सितम्बर १९४६, पृ. ३०५]

गांधीजीको कलकत्तेके भीषण हत्याकांड और उसके बादकी बुरी घटनाओंमें भारतके लोगोंके लिए स्वतंत्रताकी चुनौती दिखाई दी। उनकी पारदर्शी दृष्टिने आनेवाली घटनाओंका स्वरूप देख लिया। उन्होंने 'हरिजन' में लिखा, "अभी तक हम गृह-युद्धके बीचमें नहीं फंसे हैं। परन्तु हम उसके पास जा रहे हैं। अभी तो हम उसके साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। . . . यदि अंग्रेज बुद्धिमान हैं, तो वे उससे दूर रहेंगे। परन्तु आसार तो उलटे ही दिखाई दे रहे हैं।" [हरिजन, १५ सितम्बर १९४६, पृ. ३१२] ऐसा मालूम होता है कि ईश्वर अपने "भयानक प्रकाश और गर्जनाके साथ" हमें ऐसे समय पर जगाने आया है जब हमारे मन "भ्रम और तूफानकी धूलसे अंधे हो गये हैं।" [हरिजन, १३ अक्टूबर १९४६, पृ. ३४५] लोगोंके लिए ब्रिटिश राज्यकी शान्ति और आजादीके बीच अन्तिम चुनाव करनेकी घड़ी आ पहुंची है। उन्होंने भविष्यवाणी की कि ब्रिटिश सत्ताने भारत छोड़ कर जानेका निश्चय कर लिया है, इसलिए वह अधिकाधिक कमजोरियां और दोष प्रदर्शित करेगी। "अब दिलोंको यह पता चल जायगा कि . . . उसका आधार पोला है।" [हरिजन, १५ सितम्बर १९४६, पृ. ३१२] उन्होंने चेतावनी दी कि यदि भाई-भाईकी हत्याका संघर्ष सारे भारतमें फैल गया और ब्रिटिश बन्दूकें दोनोंको आपसमें छूरे भोंकनेसे बचाती रहीं, तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि, "ब्रिटिश सत्ता अथवा उसका स्थान लेनेवाली कोई अन्य सत्ता बहुत समय तक भारत पर अधिकार जमाये रहेगी। यह अधिकार तब तक बना रहेगा जब तक दोनों पक्षोंमें सयानपन नहीं आयेगा। वह आयेगा या तो विदेशी तत्त्वोंसे स्वतंत्र होकर लड़ी जानेवाली आपसकी लड़ाईसे दोनों पक्षोंके थकनेके बाद अथवा तब जब कोई एक पक्ष भारीसे भारी कठिनाइयोंके बावजूद हिंसाका सर्वथा त्याग करेगा।" [हरिजन, ८ सितम्बर १९४६, पृ. ३९६]

गांधीजीने कहा : "कुछ लोग शंका प्रकट करते हैं कि आम जनता तो क्या, परन्तु छोटे समूहोंके द्वारा भी अहिंसाका पालन संभव नहीं है। वे तो उसका पालन विरले व्यक्तियों तक ही सीमित मानते हैं। बात इतनी ही है कि यदि अहिंसा व्यक्तियोंके लिए ही सदा सुरक्षित रहती है, तो मानव-जातिके लिए उसका कोई उपयोग नहीं हो सकता।" [वही] कुछ भी हो, यदि लोग वीरोंकी अहिंसाका पालन करनेके लिए तैयार नहीं है, तो उन्हें आत्मरक्षाके लिए बल-प्रयोग करनेको तैयार रहना चाहिये। परन्तु उस सूरतमें



आत्मरक्षा एक साफ-सुथरा और सीधा-सादा काम होगा। जो कुछ इस समय हो रहा है—मार कर भाग जाना—उसमें नीचता और गंवारपन दोनों हैं। हम निहत्थे लोग हैं और हमें शस्त्र-प्रयोगकी तालीम नहीं मिली, यह अच्छा है या बुरा—इस विषयमें मतभेद रहेगा ही। परन्तु इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि “आत्मरक्षाके लिए शस्त्र-प्रयोगकी तालीमकी किसीको जरूरत नहीं होती। इस कामके लिए तो बलशाली भुजाएं और उनसे भी अधिक बलशाली संकल्प चाहिये।” [वही]

यद्यपि स्वतंत्रता स्वतंत्रता चिल्लाते तो बहुत लोग थे, परन्तु थोड़े ही लोग उसे इस कीमत पर खरीदनेको पूरी तरह तैयार थे। उन लोगोंको गांधीजीकी वीरतापूर्ण सलाह पर विश्वास ही नहीं हुआ—लगभग वे गांधीजीकी सलाहसे चकित हो गये। ऐसे ही एक परेशान पत्र-लेखकने कलकत्तेकी घटनाओंका उल्लेख करते हुए गांधीजीको लिखा: “दूरसे अहिंसाके उपदेश देना बेकार है। अहिंसक प्रतिकारका परिणाम यह होता कि सारी सम्पत्ति नष्ट होने दी जाती और प्रत्येक हिन्दूको मरने दिया जाता। ऐसी परिस्थितियोंमें हमारा क्या कर्तव्य है?” गांधीजीने भी तुरन्त उत्तर दिया: “कांग्रेस कार्यसमितिके अधिकसे अधिक स्पष्ट नेतृत्व किया है। . . . डराने-धमकाने और हिंसा करनेसे भाई-भाईका यह हत्याकांड शान्त नहीं होगा। . . . **यदि जान-बुझ कर साहसपूर्वक हिन्दुओंका एक एक आदमी मर जाता, तो इससे हिन्दुत्वका और भारतका उद्धार हो जाता और इस देशमें इस्लाम धर्मकी शुद्धि हो जाती। पर हुआ यह कि तीसरे पक्षको हस्तक्षेप करना पड़ा। . . . इस हस्तक्षेपसे न तो मुसलमानोंका लाभ हुआ और न हिन्दुओंका हुआ।**” [वही] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) गांधीजीने यह भी लिखा: “हिन्दू और मुसलमान दोनों . . . अच्छी तरह समझ लें कि यदि भारतको स्वाधीन राष्ट्र बनना है, तो एकको या दोनोंको रक्षाके लिए ब्रिटिश सत्ताकी ओर देखना विचारपूर्वक बन्द कर देना पड़ेगा। . . . मेरी सलाह तो शुरूमें भी सत्याग्रहकी और आखिरमें भी सत्याग्रहकी ही है। . . . जो भी कोई स्वतंत्रताकी प्राणवायुमें सांस लेना चाहता है, उसे अपना दिल फोलादकी तरह कड़ा करके निश्चय कर लेना चाहिये कि फौज या पुलिसकी मदद नहीं ली जायगी। उसे या उन्हें अपने ही बाहुबल पर और उससे भी कहीं अच्छा यह होगा कि अपने शक्तिशाली मन और दृढ़ संकल्प पर सदा विश्वास रखना चाहिये। ये दोनों वस्तुएं अपने या दूसरोंके शस्त्रोंसे बिल्कुल स्वतंत्र हैं।” [हरिजन, १५ सितम्बर १९४६, पृ. ३१२]



जब मुस्लिम लीगने १६ मई, १९४६ वाली कैबिनेट-मिशनकी योजनाकी अपनी स्वीकृति वापस ले ली और सीधी कार्रवाईका मार्ग अपना लिया, तब वाइसरॉयके लिए कांग्रेसको अन्तरिम सरकार बनानेका निमंत्रण देनेके सिवा अन्य कोई मार्ग न रह गया। उन्होंने ६ अगस्तको यह निमंत्रण दिया। २ सितम्बरको पंडित नेहरूके मनोनीत सदस्योंकी एक अन्तरिम सरकार सत्तारूढ़ कर दी गई। वाइसरॉयके सामने अपने मंत्रि-मंडलके सदस्योंकी सूची पेश करनेसे पहले पंडित नेहरूने एक बार फिर जिन्नाको यह समझानेकी कोशिश की कि वे केन्द्रमें अन्तरिम सरकार बनानेमें कांग्रेसके साथ सहयोग करें। परन्तु उन्होंने यह निमंत्रण अस्वीकार कर दिया और मुस्लिम लीगने २ सितम्बरका दिन नई दिल्लीमें सचिवालयके सामने काले झंडोंका प्रदर्शन करके मनाया।

साथ ही साथ कई जगहों पर छुरा भोंकनेकी छूटपुट वारदातें फिर होने लगीं। सर शफात अहमद खां एक गैर-लीगी मुसलमान थे, जिन्होंने पंडित नेहरूकी सरकारमें शरीक होना मंजूर कर लिया था। उनकी हत्या करनेकी शिमलामें शायद किसी कट्टर मुस्लिम लीगीने कोशिश की। उनके शरीर पर छुरेके सख्त घाव करके आक्रमणकारी उन्हें मुर्दा समझ कर सड़क पर छोड़ कर भाग गया। उत्तरप्रदेशके राष्ट्रीय मुसलमान मंत्री रफी अहमद किदवईके भाई शफी अहमद किदवईकी मसूरीमें हत्या कर दी गई। अगस्त, सितम्बर और अक्टूबरके महीनोंमें कलकत्ता खुद डाइनकी कड़ाहीकी तरह उबलता और खदबदाता रहा। सीधी कार्रवाईके पहले आघातके बाद कलकत्तेकी गैर-मुस्लिम आबादीने अपना संगठन करके उतने ही जोरके साथ बदलेमें मुसलमानों पर आक्रमण किया। प्रारम्भिक बर्बरता भयंकर थी, परन्तु प्रतिशोध भी कठोर और अतिकी सीमाको पहुंच गया था; और नितान्त बर्बरतामें अन्तमें दोनों दलोंके बीच कोई फर्क नहीं रह गया था।

साम्प्रदायिक तनाव कलकत्तेसे बंगालके गांवोंमें फैलने लगा। मुस्लिम लीगने हिन्दुओंको 'दुश्मन' बताने और पाकिस्तानको बलसे लेनेका उत्तेजक प्रचार जारी रखा। गांधीजीको एक गुमनाम पत्र मिला, जिसमें हत्यारेकी कटारसे टपकते खूनका चित्र दिया गया था। एक नकशा छाप कर व्यापक रूपमें प्रसारित किया गया, जिसमें भारतको पाकिस्तान बना दिया गया और उसका नाम 'दीनिया'



(ईमानवालोंका देश) रख दिया गया। उसे लगभग आधे दर्जन 'स्तानों' (फारुकिस्तान, उस्मानिस्तान, बंगिस्तान इत्यादि) में बांठ दिया गया । पाकिस्तानको पूर्व, पश्चिम और दक्षिणमें फैला हुआ दिखाया गया। हिन्दुस्तानको उत्तरप्रदेशमें एक छोटेसे भूखंडके रूपमें बताया गया; और शेष भारतको पाकिस्तानके विविध घटकोंको जोड़नेवाला एक "बीचका संकरा रास्ता" (कॉरीडोर) बना दिया गया ! समुद्रों और जल-डमरूमध्योंका भी पाकिस्तानीकरण कर दिया गया और पाकिस्तानका मूल भूस्तरशास्त्रके युगोंको भेद कर ठेठ अटलांटिसकी पौराणिक कथा तक पहुंचा दिया गया। यह सब इतनी धर्माधतासे और कल्पना तथा सत्यके बीचके भेदोंको मिटा कर किया गया था कि गोबेल्स या रोज़नबर्गको भी ईर्ष्या होती। मौलवियों और आग उगलनेवाले कट्टरपन्थी प्रचारकोंको देशके भीतरी भागों में प्रचारके लिए भेजा गया। मुस्लिम नेशनल गार्डसका फिरसे संगठन किया गया। कलकत्तेका 'बदला लेनेकी' अनाप-शनाप बातें होने लगीं।

गांवोंसे असन्तोष और अराजकताके अशान्तिकारक समाचार आने लगे। ३० सितम्बरके 'दि स्टेट्समैन' में एक संवाददाताने लिखा, "पूर्वी बंगालमें लोगोंका जान-माल सुरक्षित नहीं है। बदमाद लोग रेलवे पर अपनी कार्रवाइयां करते हैं, अपनी पसन्दके स्थानों पर गाड़ियां रोक लेते हैं, लूट-खसोट करते हैं और अगले स्टेशन तक समाचार पहुंचनेसे पहले ही नावों या बैलगाड़ियोंमें लूटका माल लेकर चम्पत हो जाते हैं।"

१२ सितम्बरके 'दि स्टेट्समैन' में एक मुस्लिम सज्जनका यह पत्र छपा : "जब मैं १४ अगस्तके दिन (सीधी कार्रवाईके दिनसे दो दिन पहले) सफर कर रहा था, तो मैंने देखा कि कुछ मुसलमान रेलवे स्टेशनों पर लम्बी लम्बी छुरियां खुलेआम बेच रहे हैं। जब कलकत्तेकी घटनाओंके बाद २६ अगस्तको मैं फिर गाड़ीसे सफर कर रहा था, तो एक मुसलमान महाशय मेरे दूसरे दर्जेके पासवाले पहले दर्जेके डिब्बेमें बैठे हुए थे। हर स्टेशन पर वे मुसलमानोंको भड़काते थे कि 'मीर जाफरी' गैर-लीगी मुसलमान और हिन्दू दोनोंको कत्ल कर दिया जाय और इस सलाहके साथ वे क्रूरताके हावभाव भी दिखाते जाते थे। (इन सज्जनका नाम और प्रभावशाली पद मैं आपको सिर्फ आपकी जानकारीके लिए पत्रके अन्तमें बता रहा हूं।)।"



कुमिल्ला (पूर्व बंगाल) के कामिनीकुमार दत्तनें, जो बंगाल विधान-सभाके सदस्य थे, एक वक्तव्यमें तिपराके गांवोंकी दस घटनाओंका विस्तृत वर्णन किया। इनमें हिन्दुओंकी दुकानों पर और अमीरोंके घरों पर तथा कैवार्तो (परिगणित जातियों) के घरों पर किये गये आक्रमण शामिल थे। अनेक कैवार्तोके घर संगठित भीड़नें लूट कर दिन-दहाड़े जला दिये। उनके कीमती सामानको नुकसान पहुंचाया गया और उनकी मछली पकड़नेकी नावें और जाल जबरन् छीन लिये गये। [अमृतबाजार पत्रिका, १२ सितम्बर १९४६] कामिनीकुमार दत्तका एक और अखबारी वक्तव्य यों था: “पूर्व बंगालमें हमें और अल्पसंख्यक जातिको इस बातने भयभीत कर दिया है कि अब व्यवस्था और अराजकतामें भयंकर रूपसे थोड़ा ही अन्तर रह गया है। मुस्लिम लीगी प्रचारक बढ़ा-चढ़ा कर ये कहानियां फैला रहे हैं कि कलकत्तेमें हिन्दुओंने मुसलमानों पर बर्बर अत्याचार किये; और यह प्रचार . . . कानून और व्यवस्थाको टिकाये रखनेके लिए परिस्थितिको गम्भीर बना रहा है। हमारी जानकारीमें एक बहुत बड़े मुस्लिम कर्मचारीको यह घोषणा करते सुना गया कि जल्दी ही देशमें हजारों लाशें . . . बिछी हुई दिखाई देंगी। एक बार पूर्व बंगालके किसी भागमें कोई बड़ा उपद्रव यदि फट पड़ा, तो फिर वह आग सब जगह फैल जायगी।” [अमृतबाजार पत्रिका, १९ सितम्बर १९४६]

जो स्थिति पैदा हो रही थी उससे बंगाल सरकार अनभिज्ञ नहीं थी। यह उस वक्तव्यसे स्पष्ट हो जाता है, जिसमें बंगालके मुख्यमंत्री सुहरावर्दीने कहा था : “हां, मैंने पूर्व बंगालमें फैले हुए इस दुर्भाग्यपूर्ण साम्प्रदायिक तनावके समाचार देखे हैं। हम सबको इसका दुःख होना चाहिये।” फिर भी साम्प्रदायिक अराजकताके बढ़ते हुए ज्वारको रोकनेके लिए कुछ नहीं किया गया। सम्प्रदायवादका राक्षस अपनी सीमाएं तोड़ चुका था। परन्तु उसके पालकको इस बातकी चिन्ता नहीं थी कि वह बंधन तोड़ कर निकल गया, बल्कि इस बातकी चिन्ता थी कि उसने अपने प्रथम कृत्यमें उनकी आशा पूरी नहीं की।



दसवां अध्याय

अन्तिम घड़ी

१

भारतीय स्वाधीनताकी लड़ाईकी आखिरी मंजिलमें तीन प्रमुख दल थे: कांग्रेस, मुस्लिम लीग और ब्रिटिश सत्ता। ब्रिटिश सत्ताके प्रतिनिधि थे वाइसरॉय और बड़े बड़े अंग्रेज अधिकारी। सत्ता सौंपनेकी अन्तिम घड़ी समीप आई, तब प्रत्येक दलने अपने विशिष्ट ढंगसे आचरण किया।

कांग्रेसके लिए वह विजयी राष्ट्रवादका सपना सिद्ध और साकार होनेकी परम घड़ी थी। इसके लिए भारतके उत्तमसे उत्तम सपूतोंने तीन पीढ़ियों तक सतत घोर परिश्रम किया था और बड़े बड़े बलिदान दिये थे। कांग्रेस जनताकी सबसे पुरानी और व्यापक संस्था थी। अपने जन्मसे ही उसने सारे अलग अलग धर्मों, प्रान्तों और समूहोंका प्रतिनिधित्व किया था। उसकी स्थापना एक अंग्रेजकी प्रेरणासे हुई थी, जो लम्बे समय तक उसके मंत्री रहे थे। वे थे स्व. एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम। हिन्दू, मुसलमान, पारसी और अंग्रेज उसके अध्यक्ष रह चुके थे। इनमें दो महिलाएं थीं—एक अंग्रेज और एक भारतीय। भारतकी एक सबसे छोटी अल्पसंख्यक जाति—पारसी कौम—का प्रतिनिधित्व करनेवाले दादाभाई नौरोजी उसके निर्माताओंमें से थे। भारत उन्हें अपना पितामह कहनेमें गर्व और आनन्द अनुभव करता है। एक और पारसी फिरोज-शाह मेहताको भारतका 'बेताजका बादशाह' कहा गया था। कांग्रेसने अपने अभी तकके जीवन-कालमें अपना उदार और राष्ट्रीय स्वरूप निरन्तर बनाये रखा था। कैबिनेट-मिशनकी वार्ताओंके समय उसकी कार्यसमितिके १५ सदस्योंमें से ३ सदस्य मुसलमान थे और एक समय तो उनकी संख्या ५ तक पहुंची थी। उसने धर्म-निरपेक्ष राज्यके अपने आदर्शके विषयमें कभी समझौता नहीं किया; ऐसा धर्म-निरपेक्ष राज्य जिसमें भारतको अपना घर समझनेवाले सभी लोगोंको, जाति, धर्म अथवा रंगके भेदभावके बिना, समान अधिकार और कर्तव्य प्राप्त होंगे।

गांधीजी इस संस्थाके प्राण और अन्तरात्मा थे और उसकी आशाओं और आकांक्षाओंके प्रतीक थे। गांधीजीकी ७७ वीं वर्षगांठके अवसर पर पंडित नेहरूने कहा था, "महात्मा गांधी . . . ऐसे प्रहरी रहे हैं, जो हमारे गलत रास्ते जाने पर हमें रोक कर सीधे रास्ते लगा देते हैं। . . . हमें भारतीय स्वतंत्रता और



मानव-उद्धारके उस महान कार्यके लिए, जो महात्माजीको प्रिय रहा है, फिरसे अपने आपको समर्पित करना चाहिये और यह कार्य हमें महात्माजीकी प्रियतम पद्धतिसे करना चाहिये। . . . इसके लिए हमें उनके अत्यन्त प्रिय रचनात्मक कार्यको निष्ठासे आगे बढ़ानेकी कोशिश करनी चाहिये। . . . अवश्य ही उनके ज्ञानपूर्ण मार्गदर्शनमें हम अन्तिम कदम (स्वतंत्रताकी ओर) उठायेंगे।” [पंडित नेहरूका कांग्रेसियोंको आदेश, १८ सितम्बर १९४६] गांधीजीकी यह हार्दिक आशा थी कि स्वतंत्र भारत सारे संसारको शान्ति और अहिंसाका मार्ग दिखायेगा। यह आशा उनके प्रार्थना-प्रवचनोंमें और अन्तरिम सरकारके सदस्योंको दिये गये निर्देशोंके रूपमें प्रगट होती थी।

एक प्राणवान जन-संगठनके रूपमें कांग्रेसका रुझान सदा ही क्रान्तिकारी और समतावादी आदर्शकी ओर बना रहा था और गांधीजीके नेतृत्वमें उस आदर्शने वर्तमान समाज-व्यवस्थाके अहिंसक कायापलटके आन्दोलनका रूप ग्रहण कर लिया था। औरोंके साथ साथ तथाकथित परिगणित जातियोंकी जागृतिके लिए भी कांग्रेस ही जिम्मेदार थी, क्योंकि वह कानून और हकीकत दोनोंमें हर प्रकारकी ‘अस्पृश्यता’ के सम्पूर्ण उन्मूलनके लिए तथा सवर्ण-अवर्णका सारा भेदभाव मिटा देनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध थी।

कांग्रेसके विरुद्ध मुस्लिम लीग, जैसा कि उसके नामसे प्रगट होता है, आरम्भसे ही एक राजनीतिक-धार्मिक संस्था थी। वह हिन्दू महासभाकी प्रतिस्पर्धी थी। लीग खुले तौर पर यह दावा करती थी कि वह केवल भारतीय मुसलमानोंके हितोंका ही प्रतिनिधित्व करती है। कुछ समयसे उसने भारतीय मुसलमानोंको हिन्दू कहे जानेवाले भारतके दूसरे ‘राष्ट्र’ से भिन्न ‘राष्ट्र’ कहनेका फैशन अपना लिया था। इस तर्कके अनुसार उसने सिक्खों और ईसाइयों जैसे अन्य धार्मिक समूहोंको भी ‘राष्ट्र’ बतानेमें संकोच नहीं किया। लीग कष्ट-सहन और अनुशासनकी उन परीक्षाओंमें से नहीं गुजरी थी, जिनमें से कांग्रेस गुजरी थी। जैसा हम देख चुके हैं, वह ‘भारत छोड़ो’ संग्रामसे अलग रही थी, जिस संग्रामके लिए जिन्नाने यह कहा था कि वह “लीगकी उपेक्षा करनेका प्रयत्न” था। भारतकी स्वतंत्रताके आगमनको लीग एक ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण दिवस मानती थी, जिससे वह लम्बे समयसे डरती चली आ रही थी; क्योंकि भारतकी स्वतंत्रताको वह जिन्नाके शब्दोंमें ‘हिन्दू कांग्रेस’ का प्रभुत्व मानती थी और उसे टालनेके अनेक प्रयत्न करने पर भी यह संकट उस पर आ पड़ा था। कांग्रेसके ‘भारत छोड़ो’ के नारेके विपरीत लीगने ‘विभाजन



करो और छोड़ो' का नारा अपनाया था। परन्तु जिन्नाको इतनेसे सन्तोष नहीं हुआ। “विभाजन करो और छोड़ो” से आगे बढ़ कर वे “विभाजन करो और अवश्य छोड़ो” तक पहुंच गये (अर्थात् आपको जाना ही पड़े तो जरूर जाइये, परन्तु पहले बंटवारा कर दीजिये) । अन्तमें “बंटवारा कीजिये और ठहरिये” की नौबत आ गई। उन्होंने इस बातको नहीं छिपाया कि यदि भारतमें लोकतांत्रिक संविधान हो और उसमें हिन्दू कांग्रेसका बहुमत होता हो, तो उसकी अपेक्षा भारतमें अंग्रेजी राज्यका बना रहना अधिक अच्छा होगा।

२९ फरवरी, १९४४ को हुई उनकी 'न्यूज़ क्रॉनिकल' वाली प्रसिद्ध भेंटमें स्टीवर्ट ऐमिनीने उनसे पूछा, क्या भारतके बंटवारेका आग्रह करके वे भारतीय अल्स्टर पैदा नहीं कर देंगे—जिस पर हिन्दू संयुक्त भारतके नाम पर किसी दिन आक्रमण कर सकते हैं? जिन्नाका उत्तर यह था: “मैं इससे सहमत नहीं हूं। परन्तु नये संविधानके अनुसार निबटारे और समझौतेका एक ऐसा काल होगा, जिसमें ब्रिटिश सत्ता सेना और विदेशी मामलोंके सम्बन्धमें सार्वभौम रहेगी। **इस संक्रमण-कालकी लम्बाई इस बात पर निर्भर रहेगी कि दोनों जातियां और ग्रेट ब्रिटेन अपने आपको नये संविधानके अनुकूल कितनी तेजीसे बनाते हैं।**” (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

“यदि उस समय इस बिना पर कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तानके सम्बन्ध इतने अच्छे नहीं हैं कि वे पड़ोसी बने कर रह सकें, ब्रिटेन यदि भारतको छोड़नेसे इनकार कर दे तो क्या होगा?”

“यह हो सकता है। . . तो भी हम किसी हद तक स्वायत्त सत्ता भोगेंगे, जो आज हमारे पास नहीं है।” (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

अन्तमें, भारतमें ब्रिटिश सत्ता थी। वह पाव सदीसे भी अधिक समयसे कांग्रेसके साथ लड़ाई लड़ती रही थी और उसमें हारती रही थी। परन्तु उसने यह निश्चय कर रखा था कि अन्तिम लड़ाई लड़े बिना वह झुकेगी नहीं । वह अपने हाथोंमें यदि सत्ता नहीं रख सकती तो कमसे कम अपने 'परम्परागत मित्रों' अर्थात् राजाओं, यूरोपियनों और मुस्लिम लीगके हाथमें सत्ता सौंप कर यथासंभव अधिक मात्रामें और अधिक समय तक उसे सुरक्षित रखनेका प्रयत्न अवश्य कर सकती है।



दूसरे महायुद्धके बादसे ब्रिटिश वैदेशिक नीतिमें मध्यपूर्वके ब्रिटिश तेलके स्वार्थोंकी रक्षाकी चिन्ताका प्राधान्य रहा था। चर्चिल-होर-एमेरी गुटकी बनाई हुई इस नीतिका केन्द्रबिन्दु यह था कि मध्यपूर्वमें मुस्लिम राज्योंका एक मित्र-मंडल उत्पन्न किया जाय। इस विचारधाराका प्रतिनिधित्व कैबिनेट-मिशनके परामर्शदाताओंमें सर विल्लियम क्रॉफ्ट करते थे। वे किसी समय सर सेम्युअल होरके निजी सचिव थे और मध्यपूर्वके मामलोंमें विशेषज्ञ समझे जाते थे। लॉर्ड वेवेलके अधीन उच्च कोटिके ब्रिटिश अधिकारियोंका एक शक्तिशाली समूह भी इस विचारधाराका प्रतिनिधित्व करता था। उनमें से एक अधिकारी सर ओलेफ कैरो उस समय उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके गवर्नर थे। उन्होंने अवकाश प्राप्त करनेके बाद 'वेल्स ऑफ पावर' नामक पुस्तक लिखी थी, जिसमें ऐंग्लो-अमेरिकन सत्तागुटकी मिडिल ईस्ट डिफेन्स आर्गेनिज़ेशन (एम. ई. डी. ओ.) की योजनाका बीज था।

लॉर्ड वेवेल और ये ब्रिटिश अधिकारी कांग्रेसके प्रति अपना अविश्वास कभी नहीं छोड़ सके। उन्होंने अपने मनमें कांग्रेसका अर्थ 'हिन्दू राष्ट्रवाद' समझ लिया था और यह मान लिया था कि ब्रिटिश हितोंके प्रति वह कभी भी मित्रभाव नहीं रख सकता और किसी भी हालतमें उसका कोई राजनीतिक महत्त्व उनकी मध्यपूर्व-सम्बन्धी व्यूह-रचनामें नहीं था। वे मानते थे कि अविभाजित स्वाधीन भारतमें मुस्लिम लीग पर यह विश्वास रखा जा सकता है कि वह 'हिन्दू कांग्रेस' के दुष्प्रभावको बेकार बनाती रहेगी; और भारतके विभाजित होनेकी स्थितिमें भारतकी उत्तर-पश्चिम सीमा पर एक शक्तिशाली प्रभुसत्ताधारी मित्रतापूर्ण पाकिस्तानके बन जानेसे उनकी मध्यपूर्व-सम्बन्धी नीतिको सुदृढ़ बनानेमें सहायता मिलेगी।

भारतके ब्रिटिश उच्चाधिकारियोंके तत्कालीन सारे रवैये और आचरणसे यह प्रमाण मिलता है कि उनमें और मुस्लिम लीगमें, पंडित नेहरूके शब्दोंमें 'मानसिक मित्रता' थी। लॉर्ड वेवेल उनकी नीतियोंके वाहन बन गये थे। बादमें पंडित नेहरूने यह शिकायत की थी कि उन्हें पता चला है कि वाइसरॉय "धीरे धीरे गाड़ीके पहिये निकाल रहे हैं" ! इन ब्रिटिश कर्मचारियोंकी एक सुसंगत नीति यह बनी रही कि कांग्रेस और मुस्लिम लीगको समान दर्जा दिया जाय और जिन्नाको गांधीजीकी कोटिका प्रतिनिधि माना जाय।



कैबिनेट-मिशनके साथ हुई सारी बातचीतके दौरान और बादमें भी इस अधिकारियों और मुस्लिम लीगके बीच गहरा गठ-बंधन रहा। वे लीगके वरिष्ठ नेताओंको सरकारी क्षेत्रोंमें होनेवाली घटनाओंसे पूरी तरह परिचित रखते थे और कांग्रेसकी योजनाओंके सम्बन्धमें लीगके लिए उपयोगी होनेवाली जो भी महत्वपूर्ण जानकारी होती वह लीग तक पहुंचा देते थे। यह जानकारी उन्हें या तो अपने कामके कारण स्वाभाविक रूपमें मिलती थी या किसी न किसी प्रकार वे उसे बीचमें से उड़ा लेते थे।

२

मुस्लिम लीगने 'सीधी कार्रवाई' का प्रस्ताव पास किया उसके एक सप्ताह पहले वाइसरॉयने जून १९४६ के अन्तमें कैबिनेट-मिशन द्वारा इंग्लैंडके लिए रवाना होनेसे पहले दिये गये वक्तव्यके अनुसार केन्द्रमें मिश्र अन्तरिम सरकार रचनेके प्रयत्न फिरसे आरम्भ कर दिये। २२ जुलाईको एक "व्यक्तिगत और गुप्त" पत्रमें उन्होंने पंडित नेहरू—जो इस बीच मौलाना आजादके बाद कांग्रेसके अध्यक्ष हो गये थे—और कायदे आजम जिन्नाके समक्ष मिश्र सरकारकी अपनी योजना रखी। उसमें यह आश्वासन दोहराया गया था कि "सम्राट्की सरकार नई अन्तरिम सरकारके साथ वैसा ही विचार-विमशका व्यवहार रखेगी तथा उसका वैसा ही आदर करेगी, जैसा किसी औपनिवेशिक सरकारके साथ वह करती है और देशके दैनिक प्रशासन-कार्यमें भारतीय सरकारको अधिकसे अधिक स्वतंत्रता देगी।" उस पत्रमें यह भी कहा गया था कि, "कांग्रेस या मुस्लिम लीगको दूसरे पक्ष द्वारा दिये हुए नामों पर आपत्ति उठानेका अधिकार नहीं होगा, बशर्ते कि वे नाम वाइसरॉयको स्वीकार हों।" इसका अर्थ यह हुआ कि कांग्रेस अब अन्तरिम सरकारके लिए एक या अधिक राष्ट्रवादी मुसलमान मनोनीत कर सकती थी। इसी प्रश्न पर जूनमें समझौतेकी वार्ता भंग हो गयी थी। अन्य सब बातोंमें वाइसरॉयका प्रस्ताव पहले जैसा ही था।

उत्तरमें पंडित नेहरूने वाइसरॉयको सूचित किया कि इस रूपमें आपका प्रस्ताव कांग्रेसको स्वीकार नहीं है। पिछली बातचीतके अनुभवने हमें बता दिया है कि पुराने तरीके पर चल कर सफलताकी कोई आशा नहीं रखी जा सकती। हम जिसे अन्तरिम सरकारकी 'व्यवहारमें स्वाधीनता' कहते हैं, उसे हम सदा अधिकतम महत्व देते रहे हैं। 'व्यवहारमें स्वाधीनता' के आधार पर ही समस्याको सुलझानेका संतोषजनक प्रयत्न किया जा सकता है। इसलिए कामचलाऊ अन्तरिम सरकारके दर्जे और सत्ताके



प्रश्नका निर्णय पहले स्पष्ट शब्दोंमें होना जरूरी है। अन्तमें पंडित नेहरूने लिखा कि इन सब बातोंको देखते हुए वाइसरॉयके सुझावके अनुसार सरकार रचनेमें अपना सहयोग देनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूं। [पंडित नेहरूका पत्र लॉर्ड वेवेलको, २३ जुलाई १९४६]

इसके बाद एक पखवाड़े तक वाइसरॉयकी ओरसे कोई भी प्रयत्न नहीं हुआ। परन्तु इस बीच मुस्लिम लीगने 'सीधी कार्रवाई' वाला प्रस्ताव पास कर दिया और कैबिनेट-मिशनकी योजनाको दी हुई अपनी स्वीकृति वापस ले ली। इससे वह काम हो गया, जो कांग्रेस अब तक नहीं कर सकी थी। ब्रिटिश मंत्री-मंडलकी प्रतिक्रियाके समाचार गांधीजीको लन्दनसे एक मित्रने अपने पत्रमें अगस्तके पहले सप्ताहमें इस प्रकार दिये:

जिन्नाकी (सीधी कार्रवाईकी) धमकीके बाद ब्रिटिश मंत्री-मंडलने वाइसरॉयसे कहा कि वे जिन्नाको बुला कर ऐसा कह दें कि यदि वे खेलमें भाग लेनेको तैयार नहीं हैं, तो ब्रिटिश मंत्री-मंडलने कांग्रेसको और अन्य ऐसे लोगोंको—जो उसके साथ काम करनेको तैयार हों—जिम्मेदारी सौंप देनेका तथा जिन्नाके बिना ही आगे बढ़नेका निश्चय कर लिया है। वाइसरॉयने कहा कि सीधी कार्रवाईकी धमकीके बाद तुरन्त जिन्नाको बुलानेसे यह छाप पड़ेगी कि अंग्रेज उनकी धमकीसे डर गये हैं। अतः वाइसरॉयने यह सुझाया कि जिन्नासे न मिला जाय। मंत्री-मंडल उनकी इस बातसे सहमत हो गया।

जिन्नाके विस्फोटने . . . ब्रिटिश मंत्रियोंको और यहांके तथा भारतके प्रशासन-तंत्रको अच्छी तरह झंझोड़ दिया है। इसकी बड़ी जरूरत थी। . . . मंत्री-मंडलने निर्णय किया है कि शीघ्र ही जिम्मेदारी कांग्रेसको सौंप दी जाय। उन्होंने अपने प्रतिनिधिको आवश्यक सूचनायें दे दी हैं। परन्तु वे हृदयसे चाहते हैं कि न्यायपूर्ण और उचित शर्तों पर यदि संभव हो, तो लीगको सरकारमें लानेका अन्तिम प्रयत्न आपको करना चाहिये। वे अनुभव करते हैं कि इस सम्बन्धमें वाइसरॉयका कोई भी प्रयत्न व्यर्थ है। उनका यह सुझाव है कि किसी निमंत्रणकी प्रतीक्षा किये बिना और किसी शिष्टाचारकी परवाह किये बिना कांग्रेस-अध्यक्षको यह काम वाइसरॉयके हाथसे अपने हाथमें ले लेना चाहिये। . . . यदि जिन्ना सहयोग देनेसे इनकार करते हों और ऐसी शर्तें



चाहते हों जिन्हें कांग्रेस-अध्यक्ष मान ही नहीं सकते, तो अध्यक्ष वाइसरॉयको सूचित कर दें कि उन्होंने पूरा प्रयत्न कर लिया है और सचमुच जिन्नाके साथ काम करना उनके लिए संभव नहीं है। . . . यदि अध्यक्ष सफल न हों तो वाइसरॉयको आदेश दे दिये गये हैं कि वे कांग्रेस-अध्यक्षको बुलायें और उनसे कहें कि वे कांग्रेसके और दूसरी अल्पसंख्यक जातियोंके प्रतिनिधियोंकी सरकार रचनेमें वाइसरॉयकी सहायता करें। . . . इस तरह जो सरकार अस्तित्वमें आयेगी वह—कानूनकी दृष्टिसे—तो वाइसरॉयकी सरकार ही होगी, परन्तु सरकारका वास्तविक मुखिया कांग्रेसका अध्यक्ष होगा। और वाइसरॉयको आदेश दे दिया गया है कि वे कोई हस्तक्षेप न करें।...

तदनुसार ६ अगस्तको लन्दनके आदेशानुसार वाइसरॉयमने कांग्रेस-अध्यक्ष पंडित नेहरूको अन्तरिम सरकारकी रचनाका प्रस्ताव पेश करनेके लिए निमंत्रित किया :

अन्तरिम सरकारके बारेमें आपके २३ जुलाईके पत्रका उत्तर मैंने नहीं भेजा है। बादकी घटनाओंसे इस समस्याके हलके लिए नया दृष्टिकोण आवश्यक हो गया है। . . . सम्राटकी सरकारकी सहमतिसे मैंने निश्चय किया है कि कांग्रेस-अध्यक्षकी हैसियतसे अन्तरिम सरकार रचनेका प्रस्ताव मेरे समक्ष रखनेके लिए आपको निमंत्रित करूँ। . . . यह सोचना आपका काम होगा कि मि. जिन्नाके साथ आपको पहले उसकी चर्चा करनी चाहिये अथवा नहीं; यदि आप उनके साथ समझौता कर सकें, तो मुझे स्वाभाविक रूपमें आनन्द होगा।

इससे निमंत्रण स्वीकार करनेके लिए कांग्रेसका रास्ता साफ हो गया। १० अगस्तको पंडित नेहरूने वाइसरॉयको लिखा, “मुस्लिम लीगके साथ मिश्र सरकार रचनेका हम स्वागत करते।” परन्तु मुस्लिम लीगने जो प्रस्ताव पास किया है और उसकी तरफसे हालमें जो वक्तव्य निकाले गये हैं, उनको देखते हुए यह आशा नहीं रखी जा सकती कि आजकी स्थितिमें लीग सहयोग देना स्वीकार करेगी। “उसे ऐसा करनेके लिए समझानेकी कोशिश समयसे पहले करनेका शायद उल्टा ही नतीजा निकले। ऐसे प्रयत्नका अनिवार्य रूपसे सबको पता चल जायगा और उसका परिणाम साम्प्रदायिक विवाद तथा अधिक विलम्बमें आयेगा, जिसे आप उचित रूपमें नापसन्द करते हैं।” इसलिए पंडित नेहरूने सुझाया कि वाइसरॉयके लिए उत्तम मार्ग यह होगा कि वे इस आशयकी सार्वजनिक घोषणा कर दें कि उन्होंने



कांग्रेस-अध्यक्षको कामचलाऊ सरकार रचनेका निमंत्रण दिया है और उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। “तब हमारे लिए मुस्लिम लीगके पास जाना और उसका सहयोग मांगना संभव होगा। हम उसके सहयोगका स्वागत करेंगे। लेकिन यदि वह न मिला, तो हम उसके बिना आगे बढ़नेको तैयार होंगे।”

वाइसरॉयने पंडित नेहरूका सुझाव मान लिया और १२ अगस्तको आवश्यक घोषणा कर दी। घोषणाके बाद पंडित नेहरूने जिन्नाको मनानेका एक और प्रयत्न किया। परन्तु जिन्नाने पंडित नेहरूका ठंडा स्वागत किया। कायदे आजमका उत्तर उनकी लाक्षणिक शैलीमें था:

पं. नेहरूको जिन्नाका पत्र

१५ अगस्त, १९४६

मैं नहीं जानता कि आपके और वाइसरॉयके बीच क्या क्या हुआ और न मुझे इसकी कोई कल्पना है कि आप दोनोंके बीच क्या व्यवस्था हुई है। मुझे तो इतना ही मालूम है . . . कि वाइसरॉयने कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे आपको तुरन्त अन्तरिम सरकार रचनेका प्रस्ताव उनके सामने पेश करनेका निमंत्रण दिया है और आपने वह निमंत्रण स्वीकार कर लिया है।

यदि इसका यह मतलब हो कि वाइसरॉयने आपको गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्की रचनाका अधिकार दे दिया है और पहलेसे यह स्वीकार कर लिया है कि आपकी सलाहको मान कर उसके अनुसार वे अपनी कार्यकारिणी रचनेकी दिशामें आगे बढ़ेंगे, तो मेरे लिए उस आधार पर ऐसी स्थितिको स्वीकार करना संभव नहीं है।

३

मालूम होता है कि पंडित नेहरूके नामका निमंत्रण-पत्र वाइसरॉयकी मेजसे निकला ही होगा कि उन्हें अपने किये पर पछतावा शुरू हो गया। उन्होंने अपना पत्र वापस मंगानेकी भी कोशिश की, परन्तु उन्हें सूचना दी गई कि तीर हाथसे निकल चुका है। उसके बाद उनका अपना प्रयत्न तो लीगको किसी तरह अन्तरिम सरकारमें लाकर अपने कदमका असर मिटाने पर केन्द्रित हो गया। इसके कुछ दिन बाद कलकत्तेके हत्याकांडने उनको संपूर्णतः नीतिशून्य बना दिया। सरकारके लिए पंडित नेहरू नामोंकी



अपनी सूची पेश करें, इससे पहले ही उन्होंने अपनी जिम्मेदारी पर जिन्नाको बुला कर अन्तरिम सरकारमें आनेके लिए उन्हें राजी करना चाहा। इससे परेशान होकर पंडित नेहरूने १९ अगस्तको उन्हें लिखा:

जब आपने मुझे यह लिखा था कि ब्रिटिश सरकारकी सहमतिसे आपने मुझे कांग्रेसके अध्यक्षके नाते अन्तरिम सरकार रचनेका प्रस्ताव रखनेको निमंत्रित करनेका निर्णय किया है, तो हमने इस शर्त पर आपका निमंत्रण स्वीकार किया था कि सरकार रचनेकी जिम्मेदारी हमारी होगी। . . . मैंने मि. मोहम्मद अली जिन्नासे सम्पर्क स्थापित किया और मुस्लिम लीगका सहयोग चाहा। लेकिन मि. जिन्ना हमारे साथ सहयोग करनेको तैयार न हुए। . . . तब हमें उनके और लीगके बिना आगे बढ़ना पड़ा। . . .

आपके नये प्रस्तावसे समस्याको हाथमें लेनेकी सारी दृष्टि बदल जाती है और वह जिम्मेदारी खतम हो जाती है, जो आपके कहनेसे हमने ली थी। अब हमसे पूर्वस्थितिमें लौट जानेको कहा जाता है, जिसके लिए हमने माना था कि वह महीनोंके व्यर्थ प्रयत्नके बाद अन्तिम रूपमें समाप्त हो गई है। . . .

लॉर्ड वेवेलने कुछ समयके लिए हार मान ली, जब जिन्नाने खुद ही अपने १८ अगस्तके वक्तव्यसे यह बात काट दी। “मैंने आजके अखबारमें मि. जिन्नाका वक्तव्य पढ़ा और आजकी स्थितिमें मैं इससे सहमत हूं कि मेरा उन्हें बुलाना बेकार होगा।” [लॉर्ड वेवेलका पत्र पंडित नेहरूको, १९ अगस्त १९४६]

अन्तरिम सरकार रचनेके लिए अपना प्रस्ताव रखते हुए पंडित नेहरूने इस बात पर जोर दिया कि राज्यका कामकाज अच्छी तरह चलाने और एंग्लो-इंडियन समुदायके एक प्रतिनिधिको सरकारमें सम्मिलित कर सकनेके लिए नये मंत्रि-मंडलके सदस्योंकी संख्या बढ़ा कर १५ कर दी जाय। वाइसरॉयको “कार्यकारिणी परिषद् में एक एंग्लो-इंडियन प्रतिनिधि रखनेका लाभ” तो नजर आया, परन्तु उन्होंने पुनः इस बिना पर उसका विरोध किया कि इससे लीगका सरकारमें सम्मिलित होना और भी कठिन हो जायगा और कहा कि “सर्वोपरि महत्त्वकी बात तो यह है कि मुस्लिम लीगको कार्यकारिणी परिषद् में लानेके लिए कोई प्रयत्न उठा न रखा जाय।” [लॉर्ड वेवेलका पत्र पंडित नेहरूको, २२ अगस्त १९४६] पंडित नेहरूने इस बातका और अन्तरिम सरकारको कार्यकारिणी परिषद् कहनेका सख्त विरोध



किया। यह बात अच्छी तरह मान ली गयी थी कि नई सरकार वर्तमान कानूनकी मर्यादाओंमें रहकर बने तो भी वह अपनेसे पहलेकी सरकारोंसे अपने स्वरूप और रचनामें भिन्न होगी। इसके अतिरिक्त, कांग्रेसको भेजे गये निमंत्रणमें तथा इस सम्बन्धमें की गई सरकारी घोषणामें इसका उल्लेख 'अन्तरिम सरकार' के रूपमें किया गया था। तब फिर उसके पुराने नामकी ओर क्यों लौटा गया ? क्या यह भी जिन्नाको खुश करनेके लिए ही किया गया था ?

लॉर्ड वेवेलको पं. नेहरूका पत्र

२२ अगस्त, १९४६

मुझे पता नहीं कि प्रस्तावित कामचलाऊ सरकारकी आपकी कल्पना क्या है। क्या यह भी कोई निरी रक्षक सरकार होगी, जो इस बातकी प्रतीक्षा और आशा करेगी कि मुस्लिम लीग जब चाहे तब आकर उसमें शामिल हो जाय ? इसका मतलब तो इतना ही होगा कि यह एक अपरिणामकारी और अस्थिर सरकार होगी . . . जिसका अस्तित्व थोड़ा-बहुत दूसरोंकी मेहरबानी पर आधार रखेगा। . . . इससे स्थिति और भी खराब हो सकती है और सम्भव है कि इससे कलकत्तेकी भयंकर घटनाओंकी पुनरावृत्ति भी हो। हम इसके लिए कामचलाऊ सरकारमें सम्मिलित नहीं होना चाहते।

हम नहीं मानते कि अन्याय-अत्याचार करनेवालोंको राजी रखनेसे उनका सहयोग मिलेगा। . . . ऐसा समय जरूर आयेगा जब हम सब या अधिकांश लोग आपसमें सहयोग करेंगे। गलत कार्य-पद्धति तथा गलत प्रयत्नोंसे सहयोगमें बाधा पहुंचेगी। भविष्यमें हमें तुफानका सामना करना पड़ सकता है। यदि हमें उसका सामना विश्वासके साथ करना है, तो हमारा जहाज मजबूत और स्थिर होना चाहिये।

कलकत्तेके भीषण हत्याकांडके बाद लॉर्ड वेवेलने प्रान्तीय स्वराज्यके बहाने बंगालके मंत्रि-मंडलके बारेमें हस्तक्षेप न करनेकी केन्द्रीय सरकारकी नीतिको उचित बताया। २४ अगस्तको अन्तरिम सरकार-सम्बन्धी अपने रेडियो-भाषणमें उन्होंने अपनी मर्यादाका उल्लंघन करके भी यह आश्वासन दिया कि प्रान्तीय शासनके क्षेत्रमें हस्तक्षेप करनेकी न तो उनकी सरकारके पास सत्ता है, न इच्छा। अब उन्होंने कांग्रेसके नेताओंसे कहा कि "साम्प्रदायिक एकरागताके हितमें" कांग्रेसको प्रान्तों द्वारा समूहों (



ग्रुप्स) तथा विभागों (सेक्शन्स) में जुड़नेके सम्बन्धमें उपयोग किये जानेवाले विकल्पके बारेमें अपना पहला निर्णय बदलनेके लिए तथा १६ मईके वक्तव्यके 'आशय' को स्वीकार करनेके लिए तैयार रहना चाहिये। इतना ही नहीं, कांग्रेसके नेताओंके साथ हुई अपनी बातचीतमें उन्होंने यह धमकी भी दी कि यदि कांग्रेस उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं करेगी, तो संविधान-सभा नहीं भी बुलाई जाय। और यह सब 'न्याय्य व्यवहार' के नाम पर किया गया । यह सिद्धान्त बना लिया गया था और ब्रिटिश उच्चाधिकारियोंकी व्यक्तिगत बातचीतमें उसकी खुली चर्चा भी होती थी कि चूंकि मुस्लिम लीग "राजनीतिक दृष्टिसे पीड़ित पक्ष" है, इसलिए उसका अराजकता उत्पन्न करना न केवल 'स्वाभाविक' और 'क्षम्य' ही है, बल्कि 'प्राथमिक न्याय' की दृष्टिसे उचित भी है !

लॉर्ड वेवेलकी योजना यह थी:

साम्प्रदायिक एकरागताके हितमें कांग्रेस १६ मईके वक्तव्यका आशय स्वीकार करनेको तैयार है। वह आशय यह है कि १६ मईके वक्तव्यके पैरा १९ (८) में कल्पित निर्णय नई विधान-सभा—नई वैधानिक व्यवस्था अमलमें आने तथा प्रथम सामान्य चुनाव हो जानेके बाद—करे, तब तक प्रान्त विभागों और समूहोंकी रचना होनेकी स्थितिमें अपनी सदस्यता पर असर डालनेवाले किसी भी विकल्पका अमल नहीं कर सकेंगे।

२८ अगस्तको पंडित नेहरूने लॉर्ड वेवेलको लिखा:

आपने २४ अगस्तके अपने वायु-प्रवचनमें संविधान-सभा और समूह-रचनाके प्रश्नका इस प्रकार उल्लेख किया है: "मैं मुस्लिम लीगको यह विश्वास दिला सकता हूं कि प्रान्तीय और समूह-सम्बन्धी संविधान बनानेके बारेमें १६ मईके वक्तव्यमें जो कार्यविधि निश्चित की गई है, उसका सचाईके साथ पालन किया जायगा . . . और कांग्रेस यह स्वीकार करनेको तैयार है कि अर्थके सम्बन्धमें यदि कोई झगड़ा होगा, तो वह संघ-न्यायालय (फेडरल कोर्ट) के सामने रखा जा सकता है।"

इस प्रकार इस बारेमें आपने अपने वायु-प्रवचनमें जो कुछ कहा था, वह हमने जो कहा है उसके अनुरूप ही था। अब आप जो सुझा रहे हैं . . . उसका अर्थ यह है कि इस विशेष प्रश्नको



संघ-न्यायालयके सामने नहीं रखना चाहिये और हमें इसका वह अर्थ स्वीकार कर लेना चाहिये जो कैबिनेट-मिशन और आप करें, भले ही वह उस कानूनी अर्थसे भिन्न हो जो संघ-न्यायालय करे। आपने इस पर और साम्प्रदायिक एकरागताकी आवश्यकता पर शायद कलकत्तेकी घटनाओंके कारण जोर दिया है। यह दृष्टि नई है। कलकत्तेकी घटनाएं आपके उस वायु-प्रवचनसे पहले हुई थीं, जिसमें आपने अर्थ घटानेसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंका निर्णय संघ-न्यायालय द्वारा होनेका उल्लेख किया है।

हम सब साम्प्रदायिक एकरागता बढ़ानेके लिए यथाशक्ति सब- कुछ करनेको अत्यन्त उत्सुक हैं। परन्तु जो मार्ग आप सुझाते हैं, उसका हमारे विचारसे विपरीत परिणाम निकलेगा। हमारी घोषित नीति सामान्यतः न्यायपूर्ण मानी जाती है। उसे डराने-धमकानेसे बदलना अवश्य ही शान्तिका मार्ग नहीं है। . . .

आपका सुझाया हुआ मार्ग यदि हम लोग न अपनायें तो संविधान- सभा नहीं बुलाई जायगी, आपका यह कथन हमें आश्चर्यजनक लगता है। . . . अब संविधान-सभाकी दिशामें आगे बढ़ना कानूनी और नैतिक दोनों दृष्टियोंसे हमारा कर्तव्य है। . . . उसे इसीलिए नहीं रोका जा सकता कि कुछ लोग उसमें सम्मिलित होना पसन्द नहीं करते और देशमें उपद्रव होते हैं। . . . यदि वे सम्मिलित होनेसे इनकार करते हैं . . . तो संविधान-सभाको उनके बिना आगे बढ़ना चाहिये।

परन्तु लॉर्ड वेवेल दुराग्रहपूर्वक यही मानते रहे कि समस्या “कानूनी नहीं बल्कि व्यावहारिक” [लॉर्ड वेवेलका पत्र पंडित नेहरूको, २९ अगस्त १९४६] है। रणक्षेत्रमें तो वे अपनी कलामें निपुण थे। लेकिन जब राजनीतिके क्षेत्रमें उन्हें रखा गया तब उन्होंने अपने-आपको उस शुभचिन्तक क्रीड़ा-शिक्षककी कोटिमें उतार दिया, जो बालकों द्वारा खेले जानेवाले फौजी सिपाहियोंके खेलके कृत्रिम रणक्षेत्र पर अध्यक्षता करता है। खेलके नियमोंके अनुसार अधिक शक्तिशाली शस्त्रोंका उपयोग करनेवाला पक्ष रणक्षेत्रका स्वामी बनता है। इस सैनिक-राजनीतिज्ञके दिमागमें कानून और संविधानका



पहलू प्रवेश ही नहीं कर सका। मुस्लिम लीगके पास अधिक शक्तिशाली शस्त्र था। इसलिए वह रणक्षेत्रकी स्वामिनी बती। इस तथ्यको स्वीकार करके ही कांग्रेसको “खेल खेलना चाहिये” :

विभागों और समूह-रचनाके विषयमें कांग्रेसका विचार संघ-न्यायालयके समक्ष प्रस्तुत किया जाय और वह उसे मान ले, तो भी कांग्रेसको कोई लाभ नहीं होगा। मुस्लिम लीग भाग लेनेसे अनिवार्य रूपमें इनकार करेगी और संविधान-रचनाकी प्रगति रुक जायगी। उधर देशमें साम्प्रदायिक तनाव अधिकसे अधिक बढ़ते जायंगे। मुझे विश्वास है कि जब तक समूह-रचनाके प्रश्न पर कोई दृढ़ सर्व-सम्मत मत नहीं हो जाता, तब तक संविधान-सभाको बुलाना बुद्धिमानीकी बात नहीं होगी। [वही]

पंडित नेहरूने उत्तर दिया, “मैं आपसे सहमत हूं कि समस्या केवल कानूनी ही नहीं, परन्तु व्यावहारिक भी है। हमने इसके समस्त व्यावहारिक पहलुओं पर विचार किया है। . . . यदि कांग्रेस आपके वर्तमान सुझाव पर अमल करे, तो अनेक अल्पसंख्यक जातियोंको यह लगेगा कि हम उनके प्रति और उनके हितोंके प्रति किसी दिशासे दबाव पड़नेके कारण विश्वासघात करनेको तैयार हो गये हैं। . . . यदि कोई परिवर्तन करना ही है, तो वह किसी स्वीकृत प्रणालीके द्वारा—हमने ऐसी एक प्रणाली बतायी है—होना चाहिये, न कि मनमाने ढंगसे और असंख्य सम्बन्धित लोगोंका ध्यान रखे बिना। रही बात संविधान-सभाकी। . . . उसे अनिश्चित काल तक स्थगित कर देना न सिर्फ सिद्धान्तकी दृष्टिसे गलत होगा, परन्तु मुस्लिम लीगका जो सहयोग हम चाहते हैं उसे प्राप्त करनेकी दृष्टिसे भी उसके व्यावहारिक परिणाम हानिकारक होंगे।” [पंडित नेहरूका पत्र लॉर्ड वेवेलको, २९ अगस्त १९४६]

गांधीजीको इन घटनाओंमें खतरेका संकेत दिखाई दिया और वाइसरॉयसे भेंट करनेके बाद २७ अगस्तको उन्होंने समुद्री तार द्वारा सम्राट्की सरकारको यह सन्देश भेजा कि “बंगालकी करुण घटनाके कारण वाइसरॉयकी हिम्मत टूट गई है” और उन्हें किसी “अधिक योग्य और कानूनी ज्ञान रखनेवाले आदमी” की मददकी जरूरत है; अन्यथा “बंगालकी करुण घटना अवश्य दोहराई जायगी।” और वाइसरॉयको उन्होंने एक मित्रतापूर्ण पत्रमें लिखा :



कल शामको आपने कई बार यह दोहराया कि आप एक “सीधे-सादे आदमी और सैनिक” हैं और आप कानून नहीं जानते। हम सब सीधे-सादे आदमी हैं, भले ही हम सब सैनिक न हों और भले ही हममें से कुछ लोग कानून भी जानते हों। मैं यह मान लेता हूं कि हमारा ध्येय ऐसे उपाय ढूंढ़ निकालना है, जिनसे कलकत्तेकी हालकी भयंकर घटनाओंकी पुनरावृत्ति न हो। हमारे सामने प्रश्न यह है कि इसका उत्तम उपाय क्या है ?

कल शाम आपकी भाषा धमकीसे भरी थी। सम्राट्के प्रतिनिधिके नाते आपका कार्य केवल सैनिक पुरुष होनेसे ही नहीं चल सकता और न कानूनकी अवहेलना करनेसे ही चल सकता है। तब आपके अपने ही बनाये हुए कानूनकी उपेक्षा तो आप कर ही कैसे सकते हैं? जरूरी हो तो आपको अपने पूरे भरोसेके किसी कानूनी ज्ञान रखनेवाले आदमीकी सहायता लेनी चाहिये। आपने यह धमकी दी है कि जो प्रस्ताव आपने पंडित नेहरूके और मेरे सामने रखा उस पर कांग्रेस यदि अमल नहीं करेगी, तो संविधान-सभा नहीं बुलाई जायगी। यदि सचमुच यही बात हो तो आपने १२ अगस्तको जो घोषणा की थी, वह आपको नहीं करनी चाहिये थी (उसमें आपने कांग्रेसके अध्यक्षको तुरन्त अन्तरिम सरकार बनानेके लिए अपने प्रस्ताव रखनेका निमंत्रण दिया था)। परन्तु जब आप वह घोषणा कर चुके हैं तो आपको अपना वह कदम वापिस लेना चाहिये और अपने पूरे विश्वासका दूसरा मंत्री-मंडल बनाना चाहिये। . . .

वाइसरॉयने यह तर्क किया था कि यदि संविधान-सभा मुस्लिम लीगके विरोधके बावजूद बुलाई गई, तो उससे साम्प्रदायिक झगड़े अधिक बढ़ेंगे और उन्हें दबानेके लिए ब्रिटिश सेनाकी आवश्यकता होगी। परन्तु सम्राट्की सरकार इससे बचना चाहती है। इस तर्कका उल्लेख करते हुए गांधीजीने स्पष्ट कर दिया कि भारत ब्रिटिश सेनाके बिना अपना काम अच्छी तरह चला सकता है, बशर्ते कि अंग्रेज लोग भारतको अपनी व्यवस्था खुद करनेके लिए स्वतंत्र छोड़ दें :

यदि ब्रिटिश सेना भीतरी शान्ति और व्यवस्थाके लिए यहां रखी जाती है, तो आपकी अन्तरिम सरकार एक मजाक बन कर रह जायगी। कांग्रेसको ब्रिटिश शस्त्रोंके प्रयोगसे भारतके आपसमें लड़नेवाले तत्त्वों पर अपनी मर्जी लादना पुसा नहीं सकता। कांग्रेससे यह आशा भी



नहीं रखी जा सकती कि बंगालमें हालमें हुए पशुताके प्रदर्शनसे हार कर वह जिस रास्तेको गलत समझती है उसे अपनाये । इस तरह झुक जानेसे ऐसी करुण घटनाओंको प्रोत्साहन मिलेगा और उनकी पुनरावृत्ति होगी। **दोनों ओर प्रतिशोधकी भावना गहरी होगी और जब अवसर आयेगा तब उसका अधिक भयंकर और उग्र रूपमें प्रदर्शन होगा; और यह सब मुख्यतया इसलिए होगा कि अपने शस्त्र-बल पर गर्व करनेवाली विदेशी सत्ता भारतमें बराबर बनी रहेगी।** (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

गांधीजीने वाइसरॉयसे अनुरोध किया कि उनके पत्रका सारा पाठ ब्रिटिश मंत्रि-मंडलको समुद्री तार द्वारा भेज दिया जाय । वाइसरॉयने वैसा ही किया।

गांधीजीकी चेतावनीका पूरा महत्त्व उस समय न तो ब्रिटिश प्रधान-मंत्रीने अनुभव किया और न भारत-मंत्रीने अनुभव किया। परन्तु श्री एटली गांधीजीकी चेतावनीसे बेचैन हो उठे थे। एक मित्रसे, जो उनसे मिले थे, उन्होंने यह कहा बताते हैं कि “यदि गांधीजीकी रायमें स्थिति ऐसी है कि वाइसरॉयको उनके अपने दिमागसे अधिक योग्य दिमागवाले व्यक्तिकी सहायताकी आवश्यकता है और यदि गांधीजी यह सोचते हैं कि अन्यथा कलकत्तेकी करुण घटनाकी पुनरावृत्ति संभव ही नहीं परन्तु निश्चित है, तब तो यह एक ऐसी बात है जिस पर गंभीरतासे ध्यान देना पड़ेगा।” किन्तु श्री एटलीको आशा थी कि गांधीजीने जिस “अधिक योग्य और कानूनका ज्ञान रखनेवाले” की सिफारिश की थी, उसे शायद पंडित नेहरू पूरा कर देंगे। लेकिन जब उनसे यह पूछा गया कि क्या इसका यह अर्थ है कि अन्तरिम सरकारके उपाध्यक्षके नाते पंडित नेहरू वाइसरॉयको जो भी सलाह देंगे उसे लॉर्ड वेवेल मानेंगे, तो उन्होंने किसी वचनमें बंधनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने यह तो स्वीकार किया कि नये वाइसरॉयकी नियुक्तिके लिए पर्याप्त कारण हैं। परन्तु उनकी कठिनाई लॉर्ड वेवेलके स्थान पर अधिक योग्य वाइसरॉय खोजनेकी थी।

दूसरी ओर लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने यह रवैया अपनाया कि झगड़ेकी जड़ मुस्लिम लीगका असन्तोष है और उसका एकमात्र उपाय यह है कि कांग्रेस “जो इस समय सबल स्थितिमें है” कुछ और रियायत दे, “जिससे मि. जिन्ना सरकारमें आनेके लिए आकर्षित हों।” लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने कहा कि कांग्रेसके लोग दोनों हाथोंमें लड्डू नहीं रख सकते। एक ओर तो वे वाइसरॉय और प्रान्तीय गवर्नरोंके



सुरक्षित अधिकारोंके प्रयोगसे अधिकसे अधिक मुक्ति पानेका दावा करते हैं और दूसरी ओर प्रान्तीय मामलोंमें अपने असाधारण अधिकारोंका उपयोग करनेका अनुरोध भी उनसे करते हैं; ब्रिटिश सेनाओंसे भारत छोड़ कर चले जानेके लिए भी कहते हैं और साथ ही यह शिकायत भी करते हैं कि दंगोंका दमन करनेके लिए सेनाओंका कारगर उपयोग नहीं किया गया।

यह बिलकुल तर्कसंगत स्थिति होती और गांधीजी स्वयं तो इसे बहुत न्यायपूर्ण चुनौती समझ कर इसका स्वागत करते, बशर्ते कि ब्रिटिश सरकार भारतीय हाथोंमें पूरी सत्ता सौंपनेको तथा शालीनता और सद्भावके साथ भारतकी भूमिसे अपनी सेनाएं हटा लेनेको तैयार होती। परन्तु ब्रिटिश सरकार भारतमें भारतके खर्चसे अपनी सेना रखे हुए थी और वाइसरॉय तथा गवर्नर अपनी विशाल और असाधारण सत्ताओंको अपने हाथमें रखे हुए थे; इन सत्ताओंका उपयोग वे ज्यादातर देशके जिन भागोंमें कानून और न्यायका तंत्र भंग हो गया था वहां प्रचलित स्थितिको जैसीकी वैसी कायम रखनेके लिए करते थे।

इसके कुछ उदाहरण लीजिये : नवम्बर १९४६ के पहले सप्ताहमें सरदार पटेल और लियाकतअली खां बिहारके उपद्रव-ग्रस्त भागोंके लिए सेनाकी कुछ अधिक सहायता प्राप्त करनेके लिए साथ साथ वाइसरॉयसे मिले। उन्हें सहायता तो बहुत नहीं मिली, परन्तु उसके बजाय बिनमांगा उपदेश जरूर मिला। अन्तरिम सरकार लाचारी महसूस करने लगी। प्रान्तीय गवर्नरोंने भी वही बात कही, जो कि वाइसरॉयने कही थी—अर्थात् भारतवासियोंको एक-दूसरेसे प्रेम करना चाहिये। बम्बईके मुख्यमंत्री बी. जी. खेरने सरदार पटेलको टेलिफोन पर एक अत्यन्त महत्त्वका सन्देश भेजा, जिसका अर्थ लगभग यह था कि बम्बईके गवर्नरने यह नोटिस दे दिया है कि प्रान्तमें यदि गम्भीर साम्प्रदायिक उपद्रव हुआ, तो आपको सैनिक सहायता नहीं मिलेगी; और इसलिए आपको शान्तिसे रहना हो तो लीगके साथ मित्रता करनी चाहिये। जब लॉर्ड वेवेल बिहारके दंगोंके बाद वहां गये तब उन्होंने भी बिहारके मुख्यमंत्री श्रीकृष्णसिंहसे इसी तरह कहा बताते हैं कि सैनिक सहायताके मामलेमें वाइसरॉयको बिहारका ही नहीं बल्कि सारे भारतकी आवश्यकताओंका विचार करना पड़ता है। व्यवहारमें इसका अर्थ यह हुआ कि भारतमें शान्ति और व्यवस्था स्थापित करनेका एकमात्र उपाय मुस्लिम लीगकी मांगको मान लेना है, फिर चाहे वह न्यायपूर्ण हो या अन्यायपूर्ण हो।



इस नीतिका कुल मिलाकर यह नतीजा आया। एक तरफ तो संगठित गुंडागीरीको उसने राजनीतिक दबाव डालनेकी एक स्वीकृत पद्धति मानकर उसे प्रोत्साहन दिया और दूसरी तरफ जो लोग गुंडागीरीके शिकार हो सकते थे उनमें यह भावना पैदा की कि उनके जान-मालको और उनकी स्त्रियोंकी आबरूको बचानेका एकमात्र उपाय कानूनको अपने हाथमें लेना है। और जब तक 'ब्रिटिश शान्ति' की बेड़ियोंसे वे जकड़े हुए थे तब तक यह उपाय सफल नहीं हो सकता था, इसलिए कायर रोषका आवेग भीतर ही भीतर बढ़ता गया और अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करता रहा और आखिरमें बाहरी दबावके दूर होते ही वह एक भयानक विस्फोटके साथ एकाएक फूट पड़ा।

४

नवनिर्मित अन्तरिम सरकार एक दल (टीम) की तरह मिल-जुल कर कुशलतापूर्वक काम करने लग गई थी। मंत्री लोग प्रतिदिन अनौपचारिक रूपमें मिलते थे। सारे महत्वपूर्ण निर्णय आपसके विचार-विमर्शके बाद किये जाते थे और सर्व-सम्मत निर्णय वाइसरॉयके सामने रखे जाते थे। वाइसरॉय, स्थायी अधिकारियों तथा विशेष रूपमें पोलिटिकल विभागको नये राजनीतिक वातावरणके अनुकूल बननेमें बड़ी कठिनाई मालूम हुई।

दो सदस्य—सर शफात अहमद खां और राजगोपालाचार्य—आरंभमें अपने विभागोंका काम नहीं संभाल सके थे। पहले सदस्य पर तो घातक आक्रमण हुआ था और दूसरे सदस्यका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। इसी प्रकार कुछ और सदस्य भी भिन्न भिन्न कारणोंसे तुरन्त अपना काम नहीं संभाल सके थे। वाइसरॉयका कहना था कि उनके विभाग या तो खाली रहने चाहिये या गवर्नर-जनरलके पास चले जाने चाहिये। पंडित नेहरूने इसका विरोध किया:

मैं पूरी तरह समझ नहीं पाता कि किसी सदस्यके कुछ अर्सेके लिए संयोगवश अनुपस्थित रहनेके कारण कोई विभाग खाली क्यों रहे या गवर्नर-जनरलके पास क्यों चला जाय ? . . . समग्र मंत्रि-मंडल बड़े बड़े निश्चयोंके लिए सम्मिलित रूपसे जिम्मेदार है। . . . यदि कोई सदस्य थोड़े अर्सेके लिए अनुपस्थित हो, तो क्या उसका विभाग एकाएक गवर्नर-जनरलके पास चला जाता है और उसके बारेमें सम्मिलित जिम्मेदारीकी भावना खतम हो जाती है? . . . ऐसे



उदाहरणोंमें स्पष्ट मार्ग यही मालूम होता है कि वह विभाग या तो किसी दूसरे सदस्यको सौंप दिया जाय या उपाध्यक्षके नाते वह मेरे पास रहे। . . .

जैसा आपने स्वयं सूचित किया है, मौजूदा कार्यकारिणीका स्वरूप और रचना पहलेकी कार्यकारिणियोंसे भिन्न है। इसके लिए भारतीय जनताका आधार है और इसीलिए आपने निर्णय किया कि विभागोंके सचिव आपके पास सीधे न पहुंच कर सदस्यके मार्फत ही पहुंचें। . . . इसके विकल्पके रूपमें आपने जो बात रखी है उसका परिणाम यह होगा कि एक दो सदस्योंके थोड़े समयके लिए अनुपस्थित होनेके कारण कुछ विभागोंके सम्बन्धमें लोकप्रिय सरकारका काम एकाएक बन्द हो जायगा। . . . मुझे निश्चित ही ऐसा लगता है कि इस समस्याके प्रति दृष्टि वही होनी चाहिये, जो जिम्मेदार मंत्रियोंके मातहत चलनेवाली लोकप्रिय सरकारके विकासके अनुरूप हो। [पंडित नेहरूका पत्र लॉर्ड वेवेलको, ४ सितम्बर १९४६]

इसके अलावा, लॉर्ड वेवेलने उत्तरप्रदेशके मंत्री-मंडलके निर्णयको रद्द कर दिया, जब मंत्री-मंडलने अपने अंग्रेज इन्स्पेक्टर-जनरल ऑफ पुलिसको हटाना चाहा। उसने मंत्री-मंडलकी सत्ताकी अवगणना की थी और उसके आचरणको मंत्री-मंडलने पसन्द नहीं किया था। लॉर्ड वेवेलने कलकत्तेके भीषण हत्याकांडके बाद जो कुछ किया था, उसके यह बिलकुल विरुद्ध था। स्पष्ट है कि बंगालमें प्रान्तीय स्वराज्यका एक अर्थ था और उत्तरप्रदेशमें दूसरा। एक और मौके पर वाइसरॉयने एक ऐसे विभागमें, जो सरदार पटेलके अधीन था, अपने एक कृपापात्रके साथ विशेष व्यवहार करनेका आग्रह किया। और कारण यह बताया कि वह स्थान “आश्रयका स्थान” (पैट्रोनेज पोस्ट) है। सरदारको उन्हें यह याद दिलाना पड़ा कि आखिर आपको जाना तो है ही, इसलिए नई व्यवस्थामें ऐसा कदम अवसरके अनुरूप नहीं होगा।

जिस दिन अन्तरिम सरकार बनी उस दिन वाइसरॉयके निजी सचिवने यह आदेश जारी किया कि सरकारके जो सदस्य किसी देशी राज्यमें जायं, उनसे आशा रखी जायगी कि वे अपने जानेकी पूर्व-सूचना पोलिटिकल विभागको दें। उसमें यह भी कहा गया कि सदस्योंको देशी राज्योंमें “राजनीतिक स्वरूप ” के भाषण देनेसे बचना चाहिये। इससे पंडित नेहरूका धीरज चुक गया: “यह तो पुरानी प्रथा



मालूम होती है। . . . मैं तो बिलकुल नहीं समझ पाता कि हमें किसी रियासतमें पोलिटिकल विभागके आश्रयमें क्यों काम करना चाहिये। . . . इसकी अपेक्षा अधिक उचित यह होगा कि पोलिटिकल विभाग वर्तमान सरकारके साथ साथ चले।” [वही]

पोलिटिकल विभागने इसका बदला पंडित नेहरूसे ले लिया, जब वे अक्टूबरके मध्यमें सीमाप्रान्त गये। पठानोंने तो उनका बिलकुल शाही स्वागत किया, परन्तु मालकन्द पोलिटिकल एजेन्सीमें कुछ कबाइलियोंने छिप कर उनकी गाड़ी पर हमला किया। इस मामलेमें पोलिटिकल विभागका हाथ होनेका सन्देह था और सम्बन्धित पोलिटिकल अधिकारीके विरुद्ध कर्तव्य- विमुखताके लिए कार्रवाई करनी पड़ी थी।

लॉर्ड वेवेलने अन्तरिम सरकारको पल भर भी चैन नहीं लेने दिया। २६ सितम्बरके दिन उन्होंने गांधीजीको मिलने बुलाया। दोनोंकी बातचीतमें उन्होंने फिर अपना प्रिय विषय छेड़ा :

वाइसरॉय : “लीगको किसी न किसी तरह अन्दर लेना ही चाहिये।”

गांधीजी : “कांग्रेस तो तैयार है, यदि लीग सीधे ढंगसे आनेके लिए रजामन्द हो। जिन्ना पंडित नेहरूसे मिलें और उनसे सम्मानपूर्ण समझौता कर लें। वह तो एक महान दिन होगा, जब कांग्रेस और लीग आपसमें समझौता करनेके बाद अन्तरिम सरकारमें एकसाथ हो जायंगी। परन्तु उन्हें मनमें कोई बात छिपाकर नहीं रखनी चाहिये और न असहयोग करने तथा लड़नेके लिए सरकारमें आना चाहिये।”

वाइसरॉय : “इसमें एकमात्र रुकावट अन्तरिम सरकारमें किसी राष्ट्रीय मुसलमानको सम्मिलित करनेकी है। कांग्रेसको निःसन्देह किसी राष्ट्रवादी मुसलमानको मनोनीत करनेका अधिकार है। परन्तु इस हकीकतको देखते हुए कि इस मामले पर जिन्नाने जिद पकड़ ली है, उस अधिकारको छोड़ देनेमें क्या हानि है?”

गांधीजी : “मनुष्य अधिकार तो छोड़ सकता है, परन्तु कर्तव्य नहीं छोड़ा जा सकता।”

वाइसरॉय : “लेकिन अगर लीग अन्दर आनेसे इनकार करती है, तो संविधान-सभाका क्या होगा?”



गांधीजी : “मैं यह स्वीकार करता हूं कि उस सूरतमें संविधान-सभा उचित रूपमें मिल नहीं सकती। लेकिन मैं यह स्पष्ट कर देता हूं कि इस मामलेमें मैं अपने सिवा और किसीका प्रतिनिधि नहीं हूं।”

वाइसरॉय : “इस विचारको हम जरा और आगे बढ़ायें। यदि संविधान-सभा नहीं बुलाई जाती, तो फिर क्या होगा?”

गांधीजी : “राष्ट्रीय अन्तरिम सरकार जैसे अभी प्रशासन चला रही है वैसे ही वह आगे भी चलाती रहेगी। यदि आप उसे चालू नहीं रहने देंगे, तो आपकी नेकनीयती पर शंका होगी।”

वाइसरॉय : “ऐसा तो हम कैसे कर सकते हैं?”

गांधीजी : “तब क्या आप इस बहानेसे सत्ता अपने ही हाथमें रखना चाहते हैं? यदि आप ऐसा करेंगे, तो सारा संसार आपकी निन्दा करेगा। आप इतना ही आग्रह कर सकते हैं कि अन्तरिम सरकारमें मुस्लिम लीगके प्रतिनिधि होने चाहिये। कांग्रेस वैसा करनेके लिए तैयार है।”

वाइसरॉय : “इसके लिए मुझे ब्रिटिश मंत्रि-मंडलसे आदेश लेनेकी जरूरत होगी। मैं तो उसके आदेशोंके अनुसार ही काम कर सकता हूं। मैं स्वीकार करता हूं कि मेरी सहानुभूति लीगके साथ है। लीगको अन्तरिम सरकारमें लानेका मेरा प्रयत्न जारी रहेगा।”

दूसरे दिन गांधीजीने वाइसरॉयको एक पत्र लिखा, जिसमें उनके साथ हुई बातचीतका सार दिया गया था:

आपने कृपा करके मुझे विस्तारसे यह समझाया कि कांग्रेस और मुस्लिम लीगमें समझौता करानेके आपके आज तकके प्रयत्नोंका क्या परिणाम निकला। हमारी बातचीतमें आपने मुझे यह बताया कि आपका झुकाव लीगकी ओर है। आपकी रायमें दोनों पक्षोंके बीच मतभेदका मुद्दा एक ही रह गया है—अर्थात् कांग्रेसके हिस्सेकी संख्यामें एक गैर-लीगी मुसलमानके प्रतिनिधित्वका प्रश्न। आप कांग्रेसकी स्थितिको पूरी तरह उचित मानते हैं, परन्तु आपकी राय है कि यदि कांग्रेस शान्तिके खातिर अपने इस अधिकारको छोड़ दे, तो यह ऊंचे



दर्जेकी राजनीतिज्ञताका काम होगा। मैंने कहा कि यदि किसी अधिकारको छोड़नेका सवाल हो, तब तो यह सीधी-सादी बात होगी। परन्तु यह एक ऐसे कर्तव्यका पालन न करनेका प्रश्न है, जो कांग्रेस गैर-लीगी मुसलमानोंके प्रति समझती है। मैं इस बातमें आपसे पूरी तरह सहमत हूं कि यदि और जब कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगमें कोई बात मनसे या अन्य किसी प्रकारसे छिपाये बिना आपसी समझौता हो जायगा, तो वह एक महान दिन होगा। और यदि दोनों एक-दूसरेके साथ लड़नेको ही इकट्ठी हों, तो वह बहुत बुरी बात होगी। इसके सिवा, मैंने इस मुद्दे पर जोर दिया कि कायदे आजम जिन्नाको पंडित नेहरूसे मिलना चाहिये और सम्मानपूर्ण समझौता करनेकी कोशिश करनी चाहिये। किन्तु यदि बुरीसे बुरी बात हुई और संविधान-सभाका मुस्लिम लीगी बहिष्कार बना रहा तथा ब्रिटिश सरकारने संविधान-सभाको चालू न रखनेका निश्चय किया, तो मैं इसे पूरी तरह सम्मानपूर्ण बात समझूंगा। कारण, यद्यपि कैबिनेट-मिशनकी बातोंसे यह आशा पैदा हुई थी कि संविधान-सभा चालू रखी जायगी; फिर भी मैंने यह आशा नहीं रखी थी कि बड़े दलोंमें से एकके सफल बहिष्कारके बावजूद उसे चालू रखा जायगा या चालू रखा जा सकेगा। तब आपने बीचमें यह उद्गार प्रगट किया कि भारतमें पक्ष दो ही नहीं, परन्तु तीन हैं। आपने यह भी कहा कि यदि मुस्लिम लीगका बहिष्कार जारी रहा, तो आपको गम्भीर शंका है कि देशी राज्य संविधान-सभामें सम्मिलित नहीं होंगे।

भले ही यह विचार मैं अकेला ही रखता हूं, तो भी मैंने आपसे कहा कि यदि दोनोंमें से एक पक्ष सहयोग न दे और बहिष्कार करनेवालोंको नियंत्रणमें रखनेके लिए बल-प्रयोग करना पड़े, तो मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि कोई व्यावहारिक संविधान बनाया जा सकता है।

तब आपने मुझसे यह अनुमान लगानेको कहा कि संविधान-सभाको जारी न रखनेका तर्कसंगत परिणाम क्या होगा और मुझसे पूछा कि अन्तरिम सरकारके बारेमें मेरा क्या विचार है। मैंने आपसे कहा कि इसमें कोई शंका नहीं कि, चाहे कुछ भी हो जाय, एक बार बुला ली जानेके बाद राष्ट्रीय सरकारको अपना काम करते रहना चाहिये। वे लोग स्वयं ही यह महसूस करें कि अपनी अयोग्यता अथवा असमर्थताके कारण वे काम नहीं कर सकते तो बात दूसरी है। मैंने आपसे यह भी कहा कि कांग्रेसने अपने उत्तम व्यक्तियोंको अन्तरिम सरकारमें अपने दलके



लिए सत्ता हथियानेकी भावनासे नहीं परन्तु समग्र राष्ट्रकी निःस्वार्थ सेवाकी भावनासे प्रेरित होकर ही रखा है। वे आपका और लीगका इतना लिहाज रखते हैं कि लीग अन्तरिम सरकारमें शामिल होगी इस आशामें वे दोनों मुस्लिम स्थानोंको भरनेमें हिचकिचाते हैं। आपको इस बारेमें शंका थी कि अन्तरिम सरकारके जारी रहनेकी कल्पना की जा सकती है, और आपने कहा कि हर हालतमें आप तो सम्राट्के सेवक हैं और आपको सम्राट्की सरकारसे आदेश प्राप्त करने होंगे। मैंने आपकी स्थितिको तो समझ लिया, लेकिन मैंने कहा कि केन्द्रमें एक सच्ची राष्ट्रीय सरकार काम करती रहे, यह बड़ी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है और इस मार्गसे हटने पर अंग्रेज लोगोंके प्रति भारतवासियोंके मनमें गंभीर शंकाएं उत्पन्न होंगी और यह एक अत्यन्त करुण घटना होगी ।

वाइसरॉयने इससे इनकार कर दिया कि उन्होंने कभी भी मुस्लिम लीगकी ओर अपना झुकाव होनेकी बात कही है। कुछ और बातोंमें भी उनकी स्मृति गांधीजीसे भिन्न थी। परन्तु आग्रह करने पर भी उन्होंने दोनोंकी बातचीतका अपना सार देनेसे इनकार कर दिया: “मेरे विचारसे इस समय जैसी वार्ताएं चल रही हैं उनके बीच बातचीतका स्वीकृत सार लिखवा लेनेकी कोशिश करना बुद्धिमानी नहीं होगी । कैबिनेट-मिशनकी वार्ताओंके समय ऐसा न करनेका निर्णय हुआ था। . . . और भी कई बातें ऐसी हैं जिनके बारेमें यदि हमें लिखित सहमति प्राप्त करनी होती, तो मुझे परिवर्तन सुझाना पड़ता ।” [लॉर्ड वेवेलका पत्र गांधीजीको, २७ सितम्बर १९४६] लॉर्ड वेवेलके पत्रके अन्तमें कहा गया था, “मुझे आशा है कि आप अपने प्रभावका उपयोग समझौता करानेमें करेंगे।”

गांधीजीने वाइसरॉयका खंडन तो स्वीकार कर लिया। परन्तु वे वाइसरॉयकी इस आशाको कैसे पूरा करते कि उन्हें (गांधीजीको) “समझौतेके लिए अपने प्रभावका उपयोग करना चाहिये,” यदि वाइसरॉय अपने मानसको पूरी तरह और ठीक ठीक समझनेमें उनकी मदद न करें?

गांधीजीका पत्र लॉर्ड वेवेलके नाम

२८ सितम्बर, १९४६

मेरी समझके अनुसार हमारी बातचीत महत्त्वपूर्ण थी, इसलिए मैंने सोचा कि आपको यह बता दूं कि मुझ पर क्या छाप पड़ी, ताकि मैंने भूल की हो तो आप उसे सुधार दें। कारण,



मुझे हमारी बातचीतका सार पंडित नेहरू और दूसरे मित्रोंको बताना था। कैबिनेट-मिशनकी वार्ताओंके दौरान भी मैंने लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको या सर स्टैफर्ड क्रिप्सको हमारी बातचीतका सार लिख भेजा था और उससे लाभ हुआ था। आपने जो सुधार सुझाये हैं, उन्हें मैं निःसंकोच स्वीकार कर लेता हूं। परन्तु आपके और कायदे आजम जिन्नाके बीच जो कुछ विचार-विमर्श हुआ उसके आपके द्वारा किये गये वर्णनके आरम्भमें ही मैंने आपके कहनेका यह अर्थ समझा था कि यद्यपि उनकी (जिन्नाकी) कुछ बातें उचित नहीं थीं, फिर भी आपका झुकाव मुस्लिम लीगकी ओर था। मेरे मन पर तो ऐसी निश्चित छाप पड़ी थी। परन्तु आपके द्वारा सूचित सुधारोंके बाद मेरी छापका कोई मूल्य नहीं रह जाता।

आपके पास समय हो तो मैं चाहूंगा कि आप दूसरे सुधार भी मुझे लिख भेजें। भले ही हमारी बातचीतका हम कभी सार्वजनिक उपयोग न करें, तो भी मैंने अपने ५५ वर्षके तूफानी सार्वजनिक जीवनमें यह देखा है कि आपसी समझाइश और बातचीतको आगे बढ़ानेकी दृष्टिसे लिखित प्रमाण बहुमूल्य सिद्ध होते हैं। परन्तु इस मामलेमें तो बेशक मैं आपके हाथोंमें हूं और आप जैसा चाहेंगे वैसा ही होगा; क्योंकि मैं आपकी यह 'आशा' पूरी करना चाहता हूं कि मुझे "समझौतेके लिए अपने प्रभावका उपयोग करना चाहिये।" इस कामके लिए, जो मुझे बहुत प्रिय है, मेरी यह इच्छा होना स्वाभाविक है कि मैं आपको सही रूपमें पूरी तरह समझ लूं, क्योंकि और कोई कारण न हो तो भी कमसे कम यह तो है ही कि भारतमें सब व्यक्तियोंमें आपकी स्थिति अनोखी है।

परन्तु लॉर्ड वेवेल स्वीकृत विवरण न लिखवानेके अपने 'सिद्धान्त' को छोड़नेके लिए तैयार नहीं थे: "निश्चित विवरण लिखवा लेनेके बारेमें आपकी दृष्टिको मैं पूरी तरह समझ रहा हूं। परन्तु मैं इसी सिद्धान्त पर स्थिर रहना पसन्द करूंगा कि इन वार्ताओंके दौरान जो व्यक्तिगत चर्चाएं हों, उनका स्वीकृत विवरण न लिखवाया जाय; और इसलिए मैं आपके पहले पत्रके बारेमें अधिक विवेचन नहीं करूंगा। मुझे यह जान कर बहुत खुशी हुई कि आप अपने महान प्रभावका उपयोग समझौतेके लिए करेंगे।" [लॉर्ड वेवेलका पत्र गांधीजीको, २९ सितम्बर १९४६]



बात यह थी कि अंग्रेज अधिकारियोंके लीग-पक्षी वर्गको ऐसा लगा कि उनकी कृपापात्र मुस्लिम लीगने अन्तरिम सरकारसे बाहर रह कर जरूरतसे ज्यादा हिम्मत की है। इसलिए उन्होंने निश्चय कर लिया था कि लीगको किसी भी कीमत पर अन्तरिम सरकारमें लाया जाय । इस उद्देश्यसे वाइसरॉय और उनकी मंडलीने अब अपनी ही ओरसे मुस्लिम लीगके साथ वार्ताएं आरम्भ कर दीं।

५

४ अक्टूबर, १९४६ को जिन्नाकी उन नौ मांगोंकी नकल, जिनके आधार पर लीग अन्तरिम सरकारमें सम्मिलित हो सकती थी, और लॉर्ड वेवेलका उत्तर वाइसरॉयने पंडित नेहरूके हाथमें दिया। मुख्य मुद्दे ये थे:

(१) मुस्लिम लीगको यह तो मान्य है कि कांग्रेसका छठा मनोनीत सदस्य १४ सदस्योंकी अन्तरिम सरकारमें परिगणित जातियोंका कोई प्रतिनिधि हो। परन्तु उसका कहना है कि इस बारेमें अन्तिम दायित्व गवर्नर-जनरलका है और यह नहीं मान लेना चाहिये कि परिगणित जातिके प्रतिनिधिका जो चुनाव हुआ है, उसे मुस्लिम लीगने स्वीकार कर लिया अथवा पसन्द कर लिया है। इस पर लॉर्ड वेवेलकी टिप्पणी यह थी: “आपका कहना मेरे ध्यानमें है और मैं स्वीकार करता हूं कि अन्तिम दायित्व मेरा है।”

(२) मुस्लिम लीगने यह मांग की कि उपाध्यक्ष दोनों बड़ी जातियोंमें से बारी बारीसे अथवा विकल्पके रूपमें लिया जाय। वाइसरॉयने यह प्रस्ताव रखा कि इसकी व्यावहारिक कठिनाइयोंको देखते हुए इसके बजाय वे “यह व्यवस्था कर देंगे कि गवर्नर-जनरल और उपाध्यक्षकी अनुपस्थितिमें किसी मुस्लिम लीगी सदस्यको मंत्री-मंडलकी अध्यक्षता करनेके लिए मनोनीत किया जाय ।” उन्होंने यह भी कहा कि वे मंत्री-मंडलकी समन्वय समिति (को-ऑर्डिनेशन कमिटी) के उपसभापतिके रूपमें किसी मुस्लिम लीगी सदस्यको ‘मनोनीत’ कर देंगे, “जो कि एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पद है। मैं इस समितिका सभापति हूं और भूतकालमें लगभग हमेशा मैंने उसकी अध्यक्षता की है। परन्तु अब विशेष अवसरों पर ही मैं उसकी अध्यक्षता करूंगा।”



(३) मुस्लिम लीगने इस अधिकारका दावा किया कि सिक्ख, भारतीय ईसाई और पारसी आदि अल्पसंख्यक जातियोंके प्रतिनिधियोंके चुनावमें लीगसे सलाह ली जाय और वाइसरॉयने इस सम्बन्धमें यह आश्वासन दिया कि इन स्थानोंमें से कोई भी स्थान खाली होगा तब उसे भरनेसे पहले दोनों बड़े दलोंसे परामर्श किया जायगा।

(४) मुस्लिम लीगने अन्तरिम सरकारमें तमाम बड़े साम्प्रदायिक प्रश्नोंके निर्णय पर निषेधाधिकारका दावा किया। इस पर वाइसरॉयने यह जवाब दिया था कि मिश्र सरकार या तो “आपसी समझौतेकी प्रक्रिया द्वारा काम करती है या बिलकुल काम नहीं करती,” इसलिए सारे मतभेद” मित्रतापूर्ण चर्चाएं करके मंत्री-मंडलकी बैठकोंसे पहले ही” दूर कर लिये जायंगे।

वाइसरॉय मुस्लिम लीगकी इन मांगोंके बारेमें ‘सम्मत’ हो गये कि अन्तरिम सरकारमें सदस्योंकी कुल संख्या १४से अधिक नहीं होनी चाहिये; मुख्य मुख्य विभागोंका बंटवारा कांग्रेस और लीगके बीच बराबर बराबर होना चाहिये; और प्रस्तावित व्यवस्थामें कोई परिवर्तन या सुधार दोनों मुख्य दलोंकी स्वीकृतिके बिना नहीं होना चाहिये। जिन्नाने यह भी मांग की कि दीर्घकालीन योजनाके निबटारेका प्रश्न उस समय तक स्थगित रहना चाहिये “जब तक कि अधिक अच्छा और अधिक अनुकूल वातावरण” उत्पन्न न हो जाय और महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंका निबटारा करके अन्तरिम सरकार “सुधरे हुए और अन्तिम रूपमें स्थापित न कर ली जाय ।” परन्तु इस विषयमें लॉर्ड वेवेलका उत्तर स्पष्ट और असंदिग्ध था: “बेशक, मंत्री-मंडलमें सम्मिलित होनेका आधार १६ मईके वक्तव्यकी स्वीकृति है, इसलिए मैं मान लेता हूँ कि लीगकी कौंसिलकी बैठक अपने बंबईके प्रस्ताव पर फिरसे विचार करनेके लिए बहुत जल्दी होगी।” वाइसरॉय जिन्नाकी यह मांग भी स्वीकार नहीं कर सके कि कांग्रेसको “अपने हिस्सेके शेष पांच सदस्योंमें अपनी पसंदका कोई मुसलमान सदस्य” शामिल नहीं करना चाहिये। परन्तु वाइसरॉयकी अस्वीकृतिका कारण यह था कि “प्रत्येक दलको अपने अपने प्रतिनिधि मनोनीत करनेकी समान स्वतंत्रता होनी चाहिये।” मुस्लिम लीगने इसका तुरन्त लाभ उठाकर अपने हिस्सेमें परिगणित जातियोंका एक प्रतिनिधि रख दिया।

पंडित नेहरूने उसी दिन वाइसरॉयको उत्तर भेज दिया और अपनी प्रतिक्रियाएं बता दीं:



(१) मि. जिन्ना कहते हैं कि कांग्रेसके छह मनोनीत सदस्योंमें परिगणित जातियोंका एक प्रतिनिधि भी शामिल होगा। फिर भी आगे चलकर वे कहते हैं कि “यह नहीं मान लेना चाहिये कि परिगणित जातिके प्रतिनिधिका चुनाव मुस्लिम लीगने स्वीकार कर लिया है अथवा पसन्द कर लिया है।” मेरी समझमें नहीं आता कि कांग्रेसके सदस्योंके बारेमें मुस्लिम लीगकी संमति या पसन्दगीका प्रश्न कैसे उठता है। . . . यह सच है कि कानून और विधानकी दृष्टिसे कहा जाय, तो सदस्योंकी नियुक्तिकी अन्तिम जिम्मेदारी गवर्नर-जनरलकी है। परन्तु यह समझाइश हो गई थी कि कानूनी जिम्मेदारीका अमल उसी व्यक्तिकी सलाहसे किया जायेगा, जिसे सरकार रचनेका काम सौंपा गया हो। . . .

(२) मैं स्वयं तो इससे सहमत हूं . . . कि मंत्री-मंडलकी समन्वय समिति (को-ऑर्डिनेशन कमिटी) का उपसभापति कोई मुस्लिम लीगी सदस्य चुना जाय। . . .

परन्तु मुझे लगता है कि इस प्रश्नके आपके दिये उत्तरसे एक नये तत्त्वका प्रवेश होता है, जो कठिनाई पैदा करता है। आप कहते हैं कि गवर्नर-जनरल और उपाध्यक्षकी अनुपस्थितिमें मंत्री-मंडलकी अध्यक्षता करनेके लिए आप किसी मुस्लिम लीगी सदस्यको **मनोनीत करनेकी** व्यवस्था करेंगे। मुझे लगता है कि आपके द्वारा की जानेवाली ऐसी कोई नियुक्ति न तो वैधानिक होगी और न अन्यथा वांछनीय होगी। किन्तु यह काम हमारे आपसके **समझौतेसे** किया जा सकता है। . . . (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

(३) यदि हम मंत्री-मंडलके रूपम काम करते हैं—जैसा कि हमें करना चाहिये—तो कोई भी निर्णय करनेसे पहले सारे मंत्री-मंडलकी सलाह लेनी चाहिये। यह तो स्वाभाविक ही है कि मुख्य दल मिलकर विचार करेंगे। . . . गवर्नर-जनरल प्रत्येक समूहसे अथवा अलग अलग सदस्योंसे सलाह करके किसी मामलेका निर्णय स्वयं कर लेगा, तो मंत्री-मंडलकी प्रणालीमें और इस प्रथाके विकासमें कि मंत्री-मंडलकी सलाह मानी जानी चाहिये, एक गंभीर हस्तक्षेप होगा।

(४) मैंने जो कुछ ऊपर कहा है वह इस सिद्धान्तके स्वीकार कर लेनेसे फलित होता है कि जिम्मेदारी मंत्री-मंडलकी होगी और गवर्नर-जनरल मंत्री-मंडलकी सिफारिशोंको मानेगा। . .



. हमारा संपूर्ण उद्देश्य आवश्यक रूपमें यह होना चाहिये कि मंत्रि-मंडल मिल-जुलकर काम करे और उसे अलग अलग गुटोंका बना हुआ न समझा जाय, क्योंकि गुटोंकी अलग अलग सलाह लेनेसे मंत्रि-मंडलकी संयुक्त जिम्मेदारीकी भावना तथा एकताका अंत आ जायगा। जैसा कि आपने बताया है, यह स्वाभाविक है कि . . . मिश्र सरकार या तो आपसके समझौतेकी प्रक्रियासे काम करती है या बिल्कुल काम नहीं करती। . . . हमने मंत्रि-मंडलकी अनौपचारिक बैठकें रोज करने और उनमें न सिर्फ मंत्रि-मंडलकी औपचारिक विषय-सूची पर बल्कि किसी भी विभाग-संबंधी सारे महत्वपूर्ण मामलों पर भी विचार करनेकी प्रथा अपनाई है। इस प्रकार हमारे निर्णयका संबंध किसी भी विभागसे क्यों न हो, प्रत्येक महत्वपूर्ण निर्णयका विचार हम मिल-जुलकर करते हैं और वस्तुतः वह सम्मिलित निर्णय बन जाता है और उसकी जिम्मेदारी भी संयुक्त हो जाती है। इससे मंत्रि-मंडलके भीतर गुटबन्दी नहीं होती और साथ ही समग्र हल अथवा निर्णय करनेमें सहायता मिलती है। यदि कोई ऐसी कार्यविधि अपनाई जाय जिससे मंत्रि-मंडलके भीतर गुटबन्दीको उत्तेजन मिले और अलग अलग गुटोंको अलग अलग काम करनेका प्रोत्साहन मिले, तो वह मंत्रि-मंडलीय सरकारकी सारी कल्पनाके लिए एक गम्भीर बाधा बन जायगी। हम इसी तरहकी प्रणालीका विकास करना चाहते हैं और पिछले महीनेमें इस तरहका बहुत-कुछ विकास हमने कर भी लिया है।

इसके उत्तरमें लॉर्ड वेवेल जो एकमात्र आश्वासन दे सके, वह उनके ५ अक्टूबरके छोटेसे पत्रमें इस प्रकार था: “जैसा आपको मालूम है, मैं मंत्रि-मंडलमें हर प्रकारसे एकताको प्रोत्साहन देना चाहता हूं। मेरी यह उत्कट इच्छा है कि मंत्रि-मंडल मिल-जुलकर काम करे और मुझे आशा है कि हमें इसमें सफलता मिलेगी।”

इस प्रकार कांग्रेस इस बातको अधिकसे अधिक महत्त्व देती थी कि मंत्रि-मंडल सम्मिलित जिम्मेदारीके साथ मिल-जुलकर एक दलकी तरह काम करे और गवर्नर-जनरल मंत्रि-मंडलकी सलाहके अनुसार चले, जब कि वाइसरॉय वस्तुतः अपनेको सरकारका सर्वोच्च अधिकारी समझते थे। और सर्वोच्च अधिकारीके नाते वे यह मानते थे कि संक्रांति-कालमें अंतरिम सरकारके विभिन्न दलोंके बीच भी संतुलन बनाये रखनेके लिए मध्यस्थ (अम्पायर) के रूपमें और अपीलके अंतिम न्यायालयके रूपमें



हस्तक्षेप करनेका उन्हें अधिकार है। इस धारणाको वे पूरी तरह कभी छोड़ नहीं सके। इसी बातसे उनके सारे मतभेद खड़े हुए। इसीसे लीगकी जिदको बढ़ावा मिला और कांग्रेसके साथ समझौता करनेकी उसकी सारी तत्परता खतम हो गयी।

इस बीच भोपालके नवाब मैदानमें आये। बहुत समयसे गांधीजीके साथ उनके बड़े हार्दिक सम्बन्ध रहे थे । १ अक्टूबरको वे गांधीजीसे मिले और उनसे एक योजनाकी चर्चा की। उस योजनाका सार यह था कि जहां तक मुस्लिम जगहोंका संबंध है, हालके चुनावोंमें मुस्लिम लीगकी भारी जीत हुई है; इसलिए कांग्रेसको यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि वर्तमान परिस्थितियोंमें **लोक-तांत्रिक सिद्धान्तके** अनुसार **अकेली** मुस्लिम लीगको ही **सामान्यतः** भारतके मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करनेका अधिकार है, बशर्ते कि उसी दृष्टिसे लीग अन्य सब लोगोंका प्रतिनिधित्व करनेके कांग्रेसके अधिकार पर आपत्ति न करे। अन्य सब लोगोंमें ऐसे मुसलमान भी शामिल हैं, जिन्होंने कांग्रेसके साथ अपना भाग्य जोड़ लिया है। कांग्रेसको यह भी अधिकार होगा कि इन लोगोंमें से वह जिन्हें ठीक समझे उन्हें सरकारके लिए प्रतिनिधि चुन ले । इसका सीधा अर्थ यह है कि कांग्रेस तमाम अल्पसंख्यक जातियोंकी जगहोंके लिए और राष्ट्रवादी मुसलमानोंके लिए भी अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर सकती है; और लीग स्वयं अपने हिस्सेसे बाहर अन्तरिम सरकारमें खाली होनेवाली जगहोंको भरनेके बारेमें कोई निषेधाधिकारकी मांग नहीं कर सकती । बेशक, आपसके समझौतेसे तो हर बात संभव हो सकती है । यदि लीगके सदस्य एक दलकी तरह मिल-जुलकर कांग्रेसके साथ काम करेंगे, जैसी कि स्पष्ट रूपमें कल्पना की गई है, तो सारे निर्णय संयुक्त विचार-विमर्शके बाद किये जायंगे और कोई मतभेद बाकी नहीं रह जायगा।

ये सब बातें बहुत स्पष्ट कर दी गई थीं और भोपालके नवाबके साथ हुई बातचीतमें मान ली गई थीं; और गांधीजीके मन पर यह छाप पड़ी थी कि जिस योजनाके सम्बन्धमें वे सहमत हुए हैं उसमें यह बात स्पष्ट रूपमें आ गई है। योजनाका अन्तिम मसौदा तैयार किया गया और ४ अक्टूबरको गांधीजीने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। उन्होंने उस दस्तावेजको अन्तिम रूपमें नहीं देखा और यह समझ लिया कि जो बातें उनके मनमें थीं वे सब लिखित रूपमें दस्तावेजमें आ गई हैं। परन्तु असलमें वे बातें उसमें आई नहीं थीं। राजकुमारी अमृतकौरने और मैंने गांधीजीसे आग्रह किया कि हस्ताक्षर करनेसे पहले वे



दस्तावेजको एक बार और देख लें। परन्तु समय थोड़ा था और गांधीजी थक कर चूर हो गये थे। उन्होंने हमारे सुझावको हलके मनसे टाल दिया और कहा, मुझे भरोसा है कि मैं अपने-आपको नवाबके हाथोंमें सुरक्षित छोड़ सकता हूं। नवाब मुझे कभी धोखा नहीं देंगे।

इस योजनाके दो भाग थे:

१. मुस्लिम लीग अब भारतीय मुसलमानोंके भारी बहुमतकी अधिकृत प्रतिनिधि है। कांग्रेस इस बातको चुनौती नहीं देती और मान लेती है। इस प्रकार और लोकतांत्रिक सिद्धान्तोंके अनुसार आज उसीको भारतके मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करनेका निर्विवाद अधिकार है। परन्तु कांग्रेस इस बातको स्वीकार नहीं कर सकती कि अपने सदस्योंमें से वह जिन्हें पसन्द करे उन्हें अपने प्रतिनिधि चुननेके उसके अधिकार पर कोई नियंत्रण या मर्यादा लगाई जाय।

२. यह स्वीकार कर लिया गया है कि अन्तरिम सरकारके सारे मंत्री समग्र भारतके हितके लिए एक दलकी तरह मिल-जुल कर काम करेंगे और किसी भी मामलेमें गवर्नर-जनरलके हस्तक्षेपकी कभी मांग नहीं करेंगे।

जिन्नाने योजनाके पहले भागको स्वीकार करते हुए कहा कि जहां तक उनका संबंध है, दूसरे भागके लिए अधिक चर्चा और विचारकी जरूरत होगी। किन्तु गांधीजीकी दृष्टिमें इस योजनाका मूल्य दूसरे भागमें था, क्योंकि उससे भारतीय प्रश्न तीसरे पक्षके हाथोंसे पूरी तरह निकाला जा सकता था और भारतीय स्वयं आपसके समझौतेसे उसे निबटा सकते थे। उन्होंने भोपालके नवाबसे यह कह दिया कि पहले भागकी मेरी स्वीकृति इस शर्त पर निर्भर होगी कि जिन्ना सारी योजनाको स्वीकार करें।

कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंको प्रस्तावकी भाषा पसन्द नहीं आई। उन्हें लगा कि जब तक कुछ बातें और स्पष्ट न कर दी जायं, तब तक वे योजनासे बंध नहीं सकते। उन्होंने सुझाया कि योजनाके पहले भागमें सुधार करके इतना और जोड़ दिया जाय: “ऐसे ही कारणोंसे लीग कांग्रेसको तमाम गैर-मुसलमानोंकी और जिन मुसलमानोंने कांग्रेसके साथ अपने भाग्यको मिला दिया है उनका प्रतिनिधित्व करनेवाली अधिकृत संस्था मानती है।”



इससे गांधीजीके कान खड़े हो गये। वे बोल उठे, “परन्तु यह सब तो योजनाके मसौदेमें लिखित रूपमें मौजूद है !” यह ४ अक्टूबरके तीसरे पहरकी बात थी । थोड़ी देर बाद कार्यसमिति बिखर गई । प्रत्येक सदस्य किसी न किसी कारणसे जल्दीमें था। गांधीजीका शामका समय कार्यक्रमोंसे खूब भरा था, जिससे उन्हें एक क्षणकी भी फुरसत नहीं मिल पाई। ज्यों ही वे अकेले पड़े उन्होंने योजनाकी मूल प्रति मंगाई। तब उन्हें पता चला कि वे किस तरह भारी धोखेमें फंस गये हैं। उस समय रातके १० बजे थे। उन्होंने मुझे तुरन्त भोपालके नवाबके पास यह संदेश लेकर भेजा कि, मुझे अपनी भूलका पता लग गया है और उसके लिए प्रारम्भिक और अन्तिम जिम्मेदारी मेरी ही समझी जानी चाहिये। मैं इसका दोष अपने ऊपर ले लूंगा और जरूरत हुई तो दंड-स्वरूप सार्वजनिक जीवनसे भी हट जाऊंगा। परन्तु योजना जैसी है उस रूपमें उसे माननेके लिए कार्यसमितिसे कह कर मैं कांग्रेसके साथ विश्वासघातका अपराधी नहीं बन सकता।

परन्तु कार्यसमितिने लीगके साथ समझौता करनेकी दृष्टिसे निर्णय किया कि गांधीजीकी योजना जैसी है उसी रूपमें उसके दोनों भाग मान लिये जायं और अपना यह निर्णय उसने जिन्नाको बता दिया। ५ अक्टूबरको पंडित नेहरूने भोपालके नवाबके निवास-स्थान पर जिन्नासे अत्यंत विस्तृत और उनके खयालसे मित्रतापूर्ण चर्चा की । और ७ ता. को फिर दोनोंके बीच चर्चा हुई । परन्तु ७ अक्टूबरको उन्हें जिन्नाका एक पत्र पाकर आश्चर्य हुआ। वह पत्र न केवल दोनोंकी सारी बातचीतकी भावना और धाराके विरुद्ध था, बल्कि उसके साथ जिन्नाने अपनी उन ९ मुद्दोंवाली मांगकी यथातथ प्रति भी भेजी थी—जो उन्होंने वाइसरॉयके सामने रखी थी और जिसे वाइसरॉयने अपने ४ अक्टूबरके पत्रमें आंशिक रूपमें स्वीकार कर लिया था। परन्तु कांग्रेस इस शर्त पर उन मुद्दोंकी सार रूपमें स्वीकार करनेके लए तैयार थी कि मुस्लिम लीग गांधीजीकी योजनाके दूसरे भागको मान ले और कांग्रेसके साथ समझौता कर ले, जब कि वाइसरॉयने उसी बातको ऐसी किसी शर्तके बिना मान लिया था।

गांधीजीने हमेशा इस बातकी तैयारी दिखाई थी कि लीगके साथ सीधा समझौता करके कम भी स्वीकार कर लिया जाय, परन्तु ब्रिटिश सत्ताके हाथों अधिक भी न लिया जाय । जिन्नाने जब यह देखा कि कांग्रेससे और अधिक नहीं ऐंठा जा सकता, तो उन्होंने कांग्रेसके साथ समझौता न करके वही चीज वाइसरॉयके हाथों पाना अधिक पसन्द किया। १५ अक्टूबरको यह घोषणा की गई कि वाइसरॉयके



निमंत्रण पर लीगने अन्तरिम सरकारमें सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया है। उसके सदस्य पुनर्निर्मित अन्तरिम सरकारमें लगभग “राजाका पक्ष” (किंग्स पार्टी) बन गये और वाइसरॉय उनके नेता बने।

इस प्रकार मुस्लिम लीगके साथ न्यायपूर्ण समझौता करनेका कांग्रेसका प्रयत्न विफल कर दिया गया । भारतवासियोंके लिए यह अनुभव कोई नया नहीं था। सर सेम्युअल होरने १९३२ में यही काम और भी लज्जापूर्ण ढंगसे किया था । कांग्रेस कितनी ही उदार रहने और अनुकूल बननेकी कोशिश क्यों न करे, तीसरा पक्ष हमेशा भारतको हानि पहुंचा कर अधिक उदार हो सकता था।

६

गांधीजीकी बुरीसे बुरी शंकाएं लगभग तुरन्त सच्ची पड़ीं। जब वाइसरॉयने मुस्लिम लीगके अन्तरिम सरकारमें आनेके निर्णयकी सूचना दी, तो पंडित नेहरूने १४ अक्टूबरको लॉर्ड वेवेलको लिखा:

हमारे लिए निश्चित रूपमें यह समझ लेना महत्त्वपूर्ण है कि जिन्ना किस तरह सरकारमें सम्मिलित होना चाहते हैं। . . . आपने जो प्रस्ताव रखा था . . . वह यह था कि ५ स्थान . . . मुस्लिम लीग ले सकती है (और) . . . आपने यह स्पष्ट कर दिया था कि मिश्र सरकारको अवश्य एक दलकी तरह मिल-जुलकर काम करना चाहिये। मिश्र सरकार कोई ऐसे प्रतिस्पर्धी गुटोंको मिला देनेकी जगह नहीं हो सकती, जो किसी समान उद्देश्यके लिए सहयोग न दें (और) . . . **ब्रिटिश सरकारके कैबिनेट-मिशनके १६ मईके वक्तव्यकी स्वीकृति . . . मंत्रि-मंडलमें सम्मिलित होनेका आधार माना जाना चाहिये। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)**

जिन्नाके जिस पत्रमें अन्तरिम सरकारमें ५ स्थान देनेका वाइसरॉयका प्रस्ताव स्वीकार किया गया था वह भी ऐसी भाषामें लिखा गया था, जिसमें “अन्तरिम सरकारकी रचनाके आधार और उसकी योजनाको सामान्यतः नापसन्द किया गया था और किये हुए निर्णय” का खंडन किया गया था। “सहयोगके इरादेसे” सरकारमें शरीक होनेकी यह अनोखी प्रस्तावना थी ! इससे भावी घटनाएं कैसी होंगी, इसका संकेत मिलता था। लीगने जो नाम पसन्द किये थे, उनसे भी यही सूचित होता था। वाइसरॉयको अपनी शंकायें बताते हुए पंडित नेहरूने लिखा:



मुस्लिम लीगकी ओरसे प्रस्तावित नामों पर हमने कोई आपत्ति नहीं की है। . . . परन्तु मेरे खयालसे आपको व्यक्तिगत रूपमें और निजी तौर पर यह बता देना मेरा कर्तव्य है कि मुस्लिम लीगने जो चुनाव किया है, उस पर मुझे गहरा अफसोस है। इस चुनावसे ही पता चलता है कि लीगकी इच्छा सहयोगसे काम करनेकी अपेक्षा संघर्ष करनेकी अधिक है। [पंडित नेहरूका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १५ अक्टूबर १९४६]

४ दिन बाद अन्तरिम सरकारके लिए मुस्लिम लीग द्वारा मनोनीत एक सदस्य गजनफर अली खाने लाहौरमें विद्यार्थियोंके सामने एक भाषण दिया। उससे इस विषयमें कोई संदेह बाकी नहीं रह गया कि अन्तरिम सरकारमें मुस्लिम लीग किस आशयसे आता चाहती है। अन्तरिम सरकारको “सीधी कार्रवाईकी मुहिमका एक मोर्चा” बताते हुए उन्होंने कहा: “हम पाकिस्तानके अपने प्रिय लक्ष्यके लिए लड़नेके खातिर पैर जमानेका स्थान बनानेको अंतरिम सरकारमें जा रहे हैं। . . . अन्तरिम सरकार सीधी कार्रवाईकी मुहिमके हमारे मोर्चोंमें से एक है।” यह एक सर्वथा अनुचित रुख था। यदि पाकिस्तानका प्रश्न लड़कर हल करना भी था, तो उसके लिए उचित स्थान संविधान-सभा थी, न कि अन्तरिम सरकार। अन्तरिम सरकारका काम तो नया संविधान बने तब तक कार्यक्षमता, निष्पक्षता और सरलतासे देशका प्रशासन चलाना था।

थोड़े ही समय बाद पंडित नेहरू दिल्लीसे सीमाप्रान्तके दौरे पर चले गये। पंडित नेहरूकी अनुपस्थितिमें सरदार पटेलकी तरफसे वाइसरॉयके नाम एक पत्रका जो मसौदा गांधीजीने २. अक्टूबरको तैयार किया, वह इस प्रकार था:

क्या अन्तरिम सरकारको राजनीतिक दलबन्दी और षड्यंत्रोंका अखाड़ा और विभाजनकी वही मेख ठोकनेका साधन बनाना है, जिसे दीर्घकालीन व्यवस्थाने सदाके लिए वापस ले लिया है और उसके स्थान पर समूह-रचना (ग्रुपिंग) की व्यवस्था की गई है? . . .

यह बिलकुल स्पष्ट मालूम होता है कि **मिश्र सरकारके अस्तित्वमें आनेसे पहले** और विभागोंके फिरसे बंटनेके पहले (गजनफर अलीका) भाषण तो वापस लिया ही जाना चाहिये। साथ ही लीगकी कौंसिलको स्पष्ट रूपसे घोषणा कर देनी चाहिये कि उसने दीर्घकालीन



व्यवस्थाको स्वीकार कर लिया है तथा लीगकी कार्यसमितिका मूल प्रस्ताव मंत्री-मंडलके वर्तमान सदस्योंको दिया जाना चाहिये। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

मुझे विश्वास है कि यदि अन्तरिम सरकारको कार्यक्षम रूपमें चलाना है और वर्तमान कठिनाईको दूर करना है, तो आप स्वयं उपरोक्त बातें पूरी होनेकी आवश्यकताको स्वीकार करेंगे।

परन्तु न तो गजनफर अलीका भाषण वापस लिया गया और न लीगको कौंसिलकी बैठकमें कैबिनेट-मिशनकी योजना स्वीकार की गई। सरहदके दौरेसे लौटकर पंडित नेहरूने २३ अक्टूबरको वाइसरॉयको फिर लिखा और उन्हें याद दिलाया कि किस आधार पर कांग्रेसने मुस्लिम लीगका अन्तरिम सरकारमें आना स्वीकार किया था:

आप जानते हैं कि अस्पष्ट छोड़े गये किसी मामले पर भूतकालमें किस प्रकार दलीलें और कठिताइयां पैदा हुई हैं। यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण होगा, यदि हम इस नये प्रयोगको आरम्भ करनेसे पहले स्थितिको पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर लेंगे। . . .

आपके साथ मेरे पत्र-व्यवहारमें तथा मुझे और मि. जिन्नाको लिखे गये आपके पत्रमें यह स्पष्ट कर दिया गया था कि मुस्लिम लीगके अन्तरिम सरकारमें शरीक होनेका अर्थ यह है कि उसने दीर्घकालीन योजनाको अनिवार्य रूपमें स्वीकार कर लिया है। . . . मुस्लिम लीगने मूलतः इस योजनाको अस्वीकार करनेका प्रस्ताव पास किया था, इसलिए मुस्लिम लीगकी कौंसिल विधिपूर्वक उसके स्वीकारका निर्णय करे यह जरूरी है। फिर भी यह स्पष्टता की गई थी कि लीगकी कार्यकारिणी समिति स्वयं इस योजनाकी स्वीकृतिकी सिफारिश करेगी और बादमें तुरन्त विधिवत् निर्णय कर लिया जायगा। इसी आधार पर हम आगे बढ़े थे। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

अब यह किसी भी तरह स्पष्ट नहीं है कि दीर्घकालीन व्यवस्थाके बारेमें मुस्लिम लीगकी क्या स्थिति है। . . . जहां तक हम जानते हैं, मुस्लिम लीगकी कौंसिलकी बैठक नहीं बुलाई गई है। . . . मुझे (पिछले दिनकी बातचीतमें वाइसरॉयने) कहा था कि मि. जिन्ना कुछेक आश्वासन



चाहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मि. जिन्ना और उनकी कार्यसमितिको भी उस समय तक १६ मईका वक्तव्य स्वीकार नहीं है, जब तक कि कोई और बात न हो जाय।

पंडित नेहरूने मांग की कि विभागोंका बंटवारा होनेसे पहले दो बातें स्पष्ट हो जानी चाहिये। दूसरा कदम पहले कदमसे पहले नहीं उठाया जा सकता था, क्योंकि दूसरा पहलेका अनुगामी था। वे दो बातें ये थीं: (१) लीगको दीर्घकालीन योजना स्वीकार करनी चाहिये और लीगकी कौंसिलकी बैठकके लिए कोई तारीख निश्चित हो जानी चाहिये; और (२) यह भी स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये कि क्या अन्तरिम सरकारके प्रति लीगका दृष्टिकोण वही है जो गजनफर अली खां और लियाकत अली खांके भाषणोंमें व्यक्त हुआ है: “यह और भी ज्यादा जरूरी है, क्योंकि मुस्लिम लीग कांग्रेसके साथ समझौता करनेके बाद अंतरिम सरकारमें सम्मिलित नहीं हो रही है। . . . हम कमसे कम यह आशा अवश्य रख सकते हैं कि मुस्लिम लीगकी ओरसे एक स्पष्ट वक्तव्य दे दिया जाय कि अन्तरिम सरकारमें सम्मिलित होनेके पीछे उसका क्या आशय है और यह कि दीर्घकालीन योजनाको उसने स्वीकार कर लिया है।” [पंडित नेहरूका पत्र लॉर्ड वेवेलको, २३ अक्टूबर १९४६]

यह विचित्र मालूम होता है कि कांग्रेसके नेताओंने जितनी बार वाइसरॉयसे यह मांग की कि अंतरिम सरकारमें सम्मिलित होनेसे पहले लीगको ऐसा स्पष्ट वक्तव्य देना चाहिये कि उसने दीर्घकालीन योजना स्वीकार कर ली है, उतनी बार वाइसरॉयने इसके बदलेमें लीगकी ओरसे बिना हस्ताक्षरका एक चैक कांग्रेसके पास भेज दिया और कांग्रेस इस बातकी परीक्षा किये बिना कि चैक पर उचित ढंगसे हस्ताक्षर किये गये हैं या नहीं, उसे स्वीकार करके सन्तोष मानती रही।

पंडित नेहरूके नाम लॉर्ड वेवेलका पत्र

२३ अक्टूबर, १९४६

मैंने मि. जिन्नाको स्पष्ट कर दिया है . . . कि मुस्लिम लीगका अन्तरिम सरकारमें प्रवेश इस शर्त पर आधार रखता है कि उसने कैबिनेट-मिशनकी . . . १६ मईकी योजनाको स्वीकार कर लिया है . . . और यह भी कह दिया है कि इस स्वीकृतिके लिए उन्हें अपनी कौंसिलकी बैठक जल्दी ही बुलानी होगी।



जैसा मैंने आपको बता दिया है, मि. जिन्नाने मुझे इसका विश्वास दिलाया है कि मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकारमें और संविधान-सभामें सहयोग देनेके इरादेसे आयेगी।

उत्तरमें पंडित नेहरूने लिखा, “मुझे इस बातकी प्रसन्नता है कि मि. जिन्नाने आपको यह विश्वास दिला दिया है कि मुस्लिम लीग सहयोगके इरादेसे अन्तरिम सरकार और संविधान-सभामें आ रही है . . . और यह भी कि . . . मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकारमें इस शर्त पर आयेगी कि उसने कैबिनेट-मिशनकी . . . १६ मईकी योजनाको स्वीकार कर लिया है। **आपने तो मि. जिन्नाके सामने यह स्पष्ट कर दिया है, परन्तु उतना ही स्पष्ट यह नहीं है कि इस विषयमें मुस्लिम लीगका क्या मत है।**” [वही] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

सीमाप्रान्तके दौरे पर रवाना होनेसे पहले पंडित नेहरू १५ अक्टूबरको वाइसरॉयसे मिले थे। ऐसा लगता था कि वाइसरॉयको मुख्य चिन्ता कांग्रेस और लीगके बीच विभागोंके ‘न्यायपूर्ण’ बंटवारेकी थी। पंडित नेहरूने विभागोंकी पुनर्व्यवस्थाके सम्बन्धमें वाइसरॉयका प्रस्ताव माननेमें कांग्रेसकी जो कठिनाइयां थीं उन पर प्रकाश डालनेवाला एक पत्र उसी दिन वाइसरॉयको लिखा। उन्होंने अपने पत्रमें वाइसरॉयको यह भी बताया कि कांग्रेसके तीन सदस्य लीगके सदस्योंके लिए जगह खाली करनेके खातिर इस्तीफे दे देंगे (कांग्रेसने लीगके लिए दो मुस्लिम स्थान तो पहलेसे ही रिक्त रखे थे) और इस आशयकी घोषणा भी तुरन्त की जा सकती है, परन्तु वास्तविक पुनर्व्यवस्था और बंटवारेकी तफसील तब तक मुलतवी रखी जाय जब तक कि वे अपने सीमाप्रान्तके दौरेसे लौट न आयें।

परन्तु लॉर्ड वेवेल अन्तरिम सरकारमें लीगके प्रवेशके साथ लगी हुई शर्तें पूरी करानेके मामलेमें नरम रुख दिखाते थे, जब कि विभागोंके बंटवारेके सम्बन्धमें उनका आग्रह अपने साथियोंके प्रति अशिष्टताकी सीमा तक पहुंच जाता था । उन्होंने २३ अक्टूबरको एक पत्रमें पंडित नेहरूको लिखा : “जैसा मैंने आपको बताया है, मेरा विचार है कि विदेशी मामलोंका विभाग, गृह-विभाग और प्रतिरक्षा-विभाग—इन तीन विभागोंमें से किसी एककी मुस्लिम लीग अधिकारी है । यदि आप मुझे बता दें कि आपकी रायमें इनमें से कौनसा विभाग मुस्लिम लीगको देना चाहिये, तो मैं आपका आभारी हुंगा।” पंडित नेहरूके यह कह देनेके बावजूद कि “ इन तीनों विभागोंमें परिवर्तन करना अनुचित होगा,” इस



तरहका आग्रह करके तो वाइसरॉयने हद ही कर दी। पंडित नेहरूने उसी दिन उत्तर दिया, “हमारा विचार है कि यह एक बिलकुल गलत कदम होगा और उसके अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होंगे, यदि प्रतिरक्षा और गृह-विभागोंमें कोई परिवर्तन किया जायगा।” वास्तवमें पंडित नेहरूने वाइसरॉयसे कह भी दिया कि सरदारके विभागको छोड़ा गया, तो मंत्रि-मंडलमें रहनेकी अपेक्षा वे त्यागपत्र दे देंगे: “यदि मुस्लिम लीग सरकारकी रचनाके समय शामिल हो जाती, तो उस समय कुछ भी कर लिया जाता। परन्तु इस समय सरदार पटेलको अपना विभाग छोड़नेके लिए कहना उनके प्रति अत्यन्त अशिष्टताका कार्य होगा। मुस्लिम लीगके अधिकृत मुखपत्रने उन्हें अपने आक्रमणका विशेष लक्ष्य बनाया है, इसलिए यह और भी अशोभनीय हो जाता है कि हम उन्हें यह विभाग छोड़नेको कहें। सच तो यह है कि यदि उनसे ऐसा करनेको कहा जायगा, तो वे सरकारमें रहनेकी भी परवाह नहीं करेंगे।” [पंडित नेहरूका पत्र लॉर्ड वेवेलको, १५ अक्टूबर १९४६]

कलकत्ता और पूर्व बंगालमें जो घटनाएं हो चुकी थीं उन सबके बाद (देखिये अध्याय ११) तथा लियाकत अली खां और गजनफर अलीके भाषणोंके बाद तो उपरोक्त दोनों विभागोंमें से कोई भी एक विभाग मुस्लिम लीगको सौंप देनेसे देशभरमें एक मनोवैज्ञानिक उल्कापात हो जाता: “विदेशी मामलोंके विभागके बारेमें भी ऐसे ही विचार उत्पन्न होते हैं, खास तौर पर कबाइली इलाकेमें मेरे हालके दौरके बाद और वहांके मेरे अनुभवके बाद—जिसका सारे देशमें लोगों पर बड़ा जबरदस्त असर हुआ है।” [पंडित नेहरूका पत्र लॉर्ड वेवेलको, २३ अक्टूबर १९४६] साथ ही, “यह हमें अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि विभागोंके प्रश्नका विचार करनेसे भी पहले दूसरी बातोंका स्पष्टीकरण हो जाना चाहिये।” [वही] अन्तमें २४ अक्टूबरको पंडित नेहरूने वाइसरॉयको लिखा:

मैंने अपने साथियोंसे परामर्श किया है। . . . यदि हमारी इच्छाके विरुद्ध हम पर कोई निर्णय लादा जायगा, तो हम सरकारम नहीं रह सकते। . . . यदि वे गूढ़ार्थ और परिस्थितियां न होतीं, जिनका मैंने पहले ही उल्लेख कर दिया है और जिन्होंने हमें विवश कर दिया है, तो हम विभागोंके बंटवारेको महत्त्व न देते।



दो महीने पहले मुझे अन्तरिम सरकार बनानेको कहा गया था और मैंने वह जिम्मेदारी ले ली थी। यह उन सारी चर्चाओं और वार्ताओंके परिणाम-स्वरूप किया गया था, जो सम्राट्की सरकारकी सहमतिसे पहले हुई थीं। अब एक ऐसा संकट उपस्थित हो गया है, जिसके कारण हमारा त्यागपत्र और इस सरकारका अन्त हो रहा है। इसलिए मेरे विचारसे सम्राट्की सरकारको सारी घटनाओंकी जानकारी दे देनी चाहिये।

लॉर्ड वेवेल इसके लिए तैयार नहीं थे। उनकी एकमात्र इच्छा लीगको अन्तरिम सरकारमें लानेकी थी। इसलिए विभागोंके प्रश्न पर उन्होंने हार मान ली और कांग्रेस पदारूढ़ बनी रही। परन्तु दूसरे मुद्दों पर कांग्रेस अपने आग्रहको ठेठ तक पूरा नहीं करा सकी। सत्ताकी राजनीतिकी दृष्टिसे शायद यह कांग्रेसकी जीत थी। कांग्रेसी नेताओंका खयाल था कि कुछ विभागोंके उनके पास रह जानेसे उन्हें ऐसा राजनीतिक लाभ होता है, जिसे वे छोड़ नहीं सकते। किन्तु यह सौदा उन्हें मंहगा पड़ा। गांधीजीके लिए बात दूसरी ही थी। वे बुनियादी सिद्धान्तोंको पहला स्थान देते थे। दूसरे मुद्दों पर, जिनका सम्बन्ध एक बुनियादी सिद्धान्तसे था, त्यागपत्र देनेके लिए कहीं अधिक बलवान कारण था। यदि वे ऐसा करते तो वाइसरॉयको झुकना पड़ता और लीग कांग्रेसके साथ समझौता करके ही अन्तरिम सरकारमें आती। अन्यथा भी अन्तमें कांग्रेसको लाभ ही होता। खैर, लीग अन्तरिम सरकारमें आ गई और इस बातका स्पष्ट वचन दिये बिना ही वहां रही कि उसने दीर्घकालीन योजनाको स्वीकार कर लिया है। इसका परिणाम अत्यन्त दुःखद हुआ।

७

वस्तुतः तो लीगके अन्तरिम सरकारमें प्रवेश करनेका वैसा ही स्वागत किया जाता, जैसा कहावतके अनुसार काले बादलोंमें विद्युत् रेखाका होता है। परन्तु उसके प्रवेशके ढंगने अच्छाईकी सारी संभावनाओंको नष्ट कर दिया और उस प्रवेशको शंकास्पद नीतिमत्ताकी पद्धतिमें बदल दिया। जैसा हम देख चुके हैं, गांधीजी बराबर लीगके इस अधिकारको अस्वीकार करते रहे थे कि उसके सदस्योंकी सूचीमें मुसलमानोंके सिवा अन्य किसीको सम्मिलित किया जाय; क्योंकि उसके द्वार सभी गैर-मुस्लिमोंके लिए बन्द थे। परन्तु ऐसा लगता है कि कांग्रेसके नेताओंने अपने शुद्ध राजनीतिक दृष्टिकोणसे



इसे केवल ब्योरेकी बात समझ लिया। गांधीजीका आग्रह था और कार्यसमितिमें यह स्वीकार कर लिया गया था कि इस बातको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जायगा। परन्तु कांग्रेसके नेताओंने इस मुद्दे पर काफी जोर नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि जिन्नाने लॉर्ड वेवेलसे लिखित आश्वासन प्राप्त कर लिया कि लीग अपने हिस्सेके स्थानोंमें जिसे चाहे उसे मनोनीत करनेके लिए स्वतंत्र है। उसके मनोनीत सदस्योंमें चार मुसलमान थे और एक परिगणित जातिके बंगाली सदस्य श्री जोगेन्द्रनाथ मंडल थे। इससे सबको आश्चर्य हुआ।

१६ अक्टूबरके अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने यह कहा : “मैंने ऐसी आशा रखी थी कि अन्तरिम सरकारमें मुस्लिम लीगका प्रवेश एक शुभ शकुन होगा।” आप कह सकते हैं कि मेरे जैसे आदमीको प्रसन्न होना चाहिये कि एक और जगह किसी हरिजनको मिल गई। परन्तु यदि मैं ऐसा कहूं तो अपने आपको धोखा दूंगा और जिन्ना साहबको भी धोखा दूंगा। उन्होंने यह कह दिया है कि मुसलमान और हिन्दू दो राष्ट्र हैं; और लीग एक शुद्ध मुस्लिम साम्प्रदायिक संस्था है। “तब वह किसी हरिजनको अपना प्रतिनिधि कैसे मनोनीत कर सकती है?” मुझे भय है कि मंत्री-मंडलमें आनेका लीगका सारा तरीका सीधा नहीं रहा।

राजनीतिक आधारके लिए नैतिक आधारका सौदा करके कांग्रेसके नेताओंने अपनी एकमात्र शक्ति—नैतिक शक्ति—गुमा दी। उसके बाद कांग्रेसको एकके बाद एक प्रश्न पर हार खानी पड़ी और अन्तमें अखंड भारतके प्रश्न पर भी उसे हार स्वीकार करनी पड़ी। लीग जोगेन्द्रनाथ मंडलका कांग्रेसके विरुद्ध और बादमें गांधीजीकी नोआखालीकी शान्ति-यात्राके विरुद्ध उपयोग करती रही। अन्तमें ४ वर्ष बाद अल्पसंख्यकोंके प्रति अपने नये स्वामियोंके व्यवहारसे अपमानित होकर उनकी आंखें खुलीं और पाकिस्तानमें अपने ही समुदायके प्रति उन स्वामियोंका व्यवहार देख कर उन्हें खुद भी अन्य हजारों लोगोंके साथ भाग कर भारतीय संघमें शरण लेनी पड़ी।

इस सारे प्रकरणका सबसे विस्मयकारी भाग यह था कि मुस्लिम लीगसे उसका सीधी कार्रवाई सम्बन्धी निर्णय बदलनेके विषयमें तथा १६ मईकी योजनाकी स्वीकृतिके विषयमें पहलेसे विधिवत् लिखित गारंटी लिये बिना ही वाइसरॉय उसे अन्तरिम सरकारमें लाये थे। इसके बजाय वाइसरॉयने



मौखिक वचन पर ही भरोसा कर लिया, जो उनके कथनानुसार जिन्नासे उन्हें मिला था और जिससे बादमें जिन्नाने साफ इनकार कर दिया। ब्रिटिश लोकसभामें मार्च १९४७ में इस अटपटे घोटालेका सर स्टैफर्ड क्रिप्सने जो स्पष्टीकरण किया, वह यह था कि मुस्लिम लीगके प्रतिनिधियोंको वाइसरॉयकी कार्यकारिणीमें सम्मिलित होनेका निमंत्रण लीगके संविधान-सभामें भाग लेनेके आधार पर दिया गया था, “इसलिए सम्बन्धित अधिकारियोंने यह मान लिया था कि चूंकि उसने (मुस्लिम लीगने) इसका खंडन नहीं किया है इसलिए वह इससे बंधी हुई रहेगी।” परन्तु ऐसा मालूम होता है कि जिन्ना सर हुडिब्रासके इस कथनसे सहमत थे:

जो दिलाता है शपथ, लेता वही,
वह न सुविधा-वश कि जिसने ली कहीं;
दोष उसके शीश फिर कैसे मढ़ें,
बढ़ स्वयं जिसने शपथ ली ही नहीं ?

यदि सम्बन्धित लोगोंने अंध विश्वास करके धोखा खाया, तो दोष उन्हींका था। खरीदारको सावधान रहना चाहिये ! अन्तमें जिन्नाने मिशनके साथ सदाके लिए अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। २१ नवम्बर १९४६ को उन्होंने एक आदेश निकाला कि “मुस्लिम लीगका कोई प्रतिनिधि संविधान-सभामें भाग नहीं लेगा और मुस्लिम लीगकी कौंसिलका २९ जुलाईका (कैबिनेट-मिशनकी योजनाकी स्वीकृति वापस लेनेवाला) बम्बईवाला प्रस्ताव वैसा ही कायम है।”

यह सबको विदित था कि सम्राट्की सरकार यह चाहती थी कि नेहरू मंत्री-मंडलको वास्तविक मंत्री-मंडलके रूपमें काम करने दिया जाय। यदि मुस्लिम लीग पंडित नेहरूके निमंत्रण पर अन्तरिम सरकारमें आतीं, जैसा कि सामान्यतः होना चाहिये था, तो वह कांग्रेसके साथ सन्तोषजनक समझौता करके आती और उसका परिणाम यह होता कि मिश्र सरकार एकरागसे और सफलतापूर्वक काम करती । तीसरे पक्षके हस्तक्षेपसे अन्तरिम सरकारमें एक ऐसा दल आ गया, जिसका तोड़फोड़का इरादा जग-जाहिर था। इन लोगोंने आते ही सम्मिलित जिम्मेदारीके सिद्धान्तका खुलेआम खंडन शुरू कर दिया, लीगी मंत्री अपने विभागों-सम्बन्धी सारे मामले पंडित नेहरूको एक ओर रख कर सीधे वाइसरॉयके पास



ले जाने लगे और अन्तरिम सरकारको उन्होंने साम्प्रदायिक संघर्षका अखाड़ा बना दिया। जिन्नाके “निजी राजदूत” इस्फहानीने अमेरिकामें फोरमके समक्ष दिये गये एक वायु-प्रवचनमें कहा : “लीग सरकारमें मुख्यतया इसलिए आई है कि सरकारी तंत्रको, कमसे कम आंशिक रूपमें, अपने राजनीतिक विरोधियोंके एकाधिकारसे बचाये। लीगके नई सरकारमें भाग लेनेका . . . अर्थ यही है कि पाकिस्तानकी लड़ाई अब सरकारके भीतर और बाहर दोनों जगह लड़ी जायगी।” [न्यूयॉर्क हेराल्ड ट्रिब्यून, २९ अक्टूबर १९४६] जिन्नाने कहा कि वे वहां एकमात्र मुस्लिम हितोंके ‘संरक्षक’ बन कर रहें। गजनफर अली खाने तो देशमें जिस हिंसाकांडका बोलबाला हो गया था उस पर संतोष भी प्रगट कर दिया: “केन्द्रमें शुद्ध कांग्रेसी सरकारके स्थापित होनेके बाद देशके अनेक भागोंमें जो उपद्रव हुए हैं, उनसे यह बात सिद्ध हो गई है . . . कि १० करोड़ भारतीय मुसलमान किसी ऐसी सरकारको नहीं मानेंगे, जिसमें उनके सच्चे प्रतिनिधि न हों।” [लाहौरमें गजनफर अलीका भाषण, १९ अक्टूबर १९४६] और इस प्रकार जिन्होंने खुले तौर पर देशमें हिंसाका साम्राज्य फेलानेका इरादा जाहिर किया था, उन्हीं लोगोंके हाथोंमें अन्तरिम सरकारमें सत्ताकी बागडोर आ गई।

जिस दिन लीग वाइसरॉयकी प्रेरणा और आमंत्रण पर अन्तरिम सरकारमें प्रविष्ट हुई, उसी दिन अखंड भारतकी लड़ाई हमेशाके लिए हाथोंसे निकल गई। सम्राटकी सरकारने स्पष्ट सूचनायें दे दी थीं कि पंडित नेहरूको अन्तरिम सरकार बनानेके लिए कहा गया है, इसलिए मंत्रि-मंडल प्रणालीके अनुसार लीगको सरकारमें सम्मिलित करनेकी आगेकी कार्रवाई सर्वथा उन्हीं पर छोड़ देनी चाहिये। कैबिनेट-मिशनके कुछ सदस्योंने बादमें आश्चर्य प्रगट किया बताते हैं जब उन्हें यह मालूम हुआ कि लीग तो वाइसरॉयके द्वारा अन्तरिम सरकारमें लाई गई थी। यह उस समय कैसे हुआ और इस तरहकी कार्रवाईमें कांग्रेस चुपचाप कैसे सहमत हुई—ये ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर भावी इतिहासकार प्रकाश डालेंगे।

“सरकारके भीतर रहकर सीधी कार्रवाई” के अंगके रूपमें मुस्लिम लीगके प्रतिनिधियोंने अपने अधीन विभागोंमें तमाम महत्वपूर्ण पदों पर अपनी पसन्दके मुसलमान रखनेका काम व्यवस्थित रूपमें आरम्भ कर दिया और मंत्रि-मंडलके सचिवालयमें जगह जगह ‘अन्दरकी बात जाननेवाले’ (सेल्स) बैठा दिये गये। सरकारमें मुस्लिम लीगसे सहानुभूति रखनेवाले और उसके एजेन्ट ‘पांचवीं कतार’ का काम करने लगे और प्रशासनकी एकता तथा कार्य-क्षमतामें बाधा डालने लगे। इस प्रकार जिस विपत्तिके



विरुद्ध गांधीजीने कैबिनेट-मिशनको चेतावनी दी थी और जिस विपत्ति—अपनी पसन्दकी सरकार देश पर जबरदस्ती थोपकर बेमेल मिश्रण उत्पन्न करने—से बचनेका अन्तमें मिशनने भी निश्चय कर लिया था, वह वाइसरॉय और ब्रिटिश कर्मचारियोंकी चलाई हुई नीतिके कारण देश पर आखिर आ गई।

८

‘भारतकी स्वाधीनता’ ब्रिटिश पक्षके प्रतिनिधि वाइसरॉयके, कांग्रेसके और मुस्लिम लीगके बीच एक समान शब्द-प्रयोग था। परन्तु प्रत्येकके लिए उसका अर्थ अलग अलग था और इसलिए वह अतिशय संदिग्ध शब्द-प्रयोग बन गया। अंग्रेजोंके लिए उसका यह अर्थ था कि कानूनी स्वाधीनता उनकी लगाई हुई कुछ शर्तोंके पूरा होनेके बाद आयेगी। तब तक ब्रिटिश सेनाएं भारत पर अधिकार जमाये रहेंगी और दोनों दलों पर अंग्रेजोंकी इच्छा लादी जाती रहेगी। मुस्लिम लीगके लिए स्वाधीनताका अर्थ यह था कि देशका विभाजन पहले हो और दोनों भागों तथा दोनों ‘भारतीय राष्ट्रों’ के लिए स्वाधीनता बादमें हो। कांग्रेसके लिए स्वाधीनताका अभिप्राय यह था कि समस्त भारतके लिए बिना किसी शर्तके स्वतंत्रता हो—जिसमें राजाओं द्वारा शासित देशी राज्य भी सम्मिलित हों।

लॉर्ड वेवेलकी तरफसे यह दलील दी गई है कि वे भारतकी एकताके पक्षमें थे और इस कारण जिन्ना उनका तिरस्कार करते थे। यह हो सकता है। इसी प्रकार लॉर्ड लिनलिथगो भी भारतकी ‘भौगोलिक एकता’ की बातें कहते थे; और सर सेम्युअल होर तथा ब्रिटिश अनुदार दलके लोग उनसे भी पहले यही बात कहते थे। परन्तु उनका भारत वह भारत था, जो ब्रिटिश स्वार्थोंके लिए, अंग्रेजोंके पिटूओंके लिए और ब्रिटिश राष्ट्र-मंडलके लिए सुरक्षित कर दिया गया हो। यदि इन शर्तों पर सारा भारत प्राप्त न किया जा सकता हो, तो भारतके टुकड़े करनेके लिए वे कृतनिश्चय थे।

२५ अप्रैल, १९४६ को भारतीय नेताओंके साथ कैबिनेट-मिशनकी पहली भेंटके बाद श्री ए. वी. एलेक्जेंडरने मिशनके प्रतिनिधियोंके अनौपचारिक सम्मेलनमें यह भय प्रगट किया था कि अखंड भारतमें मुसलमानोंके लिए पर्याप्त संरक्षण प्राप्त करना कठिन होगा। इस पर सर विलियस क्रॉफ्टने सुझाव दिया था कि मौजूदा संविधानके अधीन यदि कांग्रेस अन्तरिम सरकारकी रचनाके बारेमें सम्मत न हो, तो जिन्ना जिसकी मांग करते हैं उसमें से केवल पंजाबके अम्बाला विभाग और पश्चिम बंगालको



छोड़कर ब्रिटिश सरकारको मध्यम आकारका पाकिस्तान बना देना चाहिये। अंग्रेजोंको शेष भारत खाली कर देना चाहिये और करार करके पाकिस्तानमें रहना चाहिये। ऐसा मालूम होता है कि वाइसरॉय ऐसी सम्भावनाको बिलकुल अस्वीकार नहीं करते थे।

जिन्ना कभी कभी कैबिनेट-मिशनके सदस्योंको घबराहटमें डाल देते थे। वे उनके 'उद्धृत शिशु' थे। वे कई बार उन्हें सिरदर्द पैदा करा देते थे। फिर भी वे उनके लाड़ले थे। जिन्नाके प्रति उनका रवैया ऐसा था जैसा माता-पिताका अपने बिगड़े हुए बच्चेके प्रति होता है। लॉर्ड वेवेलने अपने मनको समझा लिया था कि 'न्याय' लीगके पक्षमें है और यदि लीगको सरकारमें लाया जा सके—फिर वह किसी भी तरह और किसी भी कीमत पर क्यों न हो—तो उससे भारत रक्तपातसे बच जायगा। इस नीतिकी कीमत भारतको एक बड़े युद्धकी अपेक्षा भी अधिक मारकाट, रक्तपात और असमानुषिकताके अनुभवके रूपमें चुकानी पड़ी। नवम्बर १९४६ में भारतके उपमंत्रीने ब्रिटिश लोकसभामें यह घोषणा की कि १ जुलाईसे ३० अक्टूबरके बीच भारतमें साम्प्रदायिक लड़ाइयोंके कारण—सरकारी रिपोर्टोंके अनुसार भी—५,०१८ आदमी मारे गये और १३,३२० घायल हुए। इस संख्यामें पूर्व बंगाल और बादमें बिहारकी मारकाटमें मारे गये अथवा घायल हुए लोगोंकी संख्या शामिल नहीं थी।

लॉर्ड वेवेल बड़े गौरवशाली पुरुष थे। वे मितभाषी थे। उनका हृदय शुद्ध था और वे प्रेमालु थे। उनका व्यक्तित्व सर्वथा प्रीतिपात्र था। उनकी सचाई असंदिग्ध थी। निःसन्देह वे भी अपने ढंगसे भारतको स्वतंत्रताके मार्ग पर अग्रसर होनेमें सहायता देना चाहते थे। उनमें अद्भुत वफादारी थी, जिसके कारण कई बार वे दूसरे लोगोंका दोष अपने कंधों पर उठा लेते थे। उनका व्यवहार एक योद्धाको शोभा देनेवाला था, जो बहुत प्यारा लगता था। परन्तु उनमें ऐतिहासिक दृष्टि और कल्पनाका सर्वथा अभाव था और उनका एक ही दिशामें चलनेवाला योद्धाका मस्तिष्क कानूनी और वैधानिक औचित्यकी बातें कम समझता था तथा उनकी परवाह तो वह और भी कम करता था। ऐसा लगता था कि इन बातोंसे वे घबरा उठते थे और कभी कभी चिढ़ भी जाते थे। भारतके अंग्रेज कर्मचारियोंने उनकी भलमनसाहत और मर्यादाओंका भी अपनी योजनाएं पूरी करनेमें पूरा उपयोग किया। नतीजा यह हुआ कि भारतको एक अभूतपूर्व करुण घटनाका शिकार होना पड़ा और अन्तमें यहांसे उन्हें वापिस बुला लेना जरूरी हो गया।



ग्यारहवां अध्याय

तुफान फट पड़ा

१

मुस्लिम लीगका कलकत्तेवाला 'सीधी कार्रवाई' का कार्यक्रम सोचा हुआ परिणाम न ला सका। उसने पलट कर उन्हीं लोगोंको अपना शिकार बनाया, जिन्होंने उसका आरम्भ किया था। अब यह नारा उठा: "कलकत्तेका बदला लिया जाना चाहिये।" १० अक्टूबर, १९४६ को नोआखालीमें नरककी पाशविक लीलाका ताण्डव नृत्य हुआ। परन्तु लगभग १ सप्ताह तक बाहरकी दुनियाको उसका कुछ भी पता नहीं चलने दिया गया।

भूगर्भ-शास्त्रकी दृष्टिसे गंगाके मुहानेमें बसा सबसे तरुण जिला नोआखाली है और वह पूर्व बंगालके चटगांव विभागका दक्षिणी-पश्चिमी भाग है। वहांकी मुख्य उपज चावल, सन, नारियल और सुपारी है। वहां भारी वर्षा होती है। सारे जिलेमें खालों या नहरोंका उलझा हुआ जाल बिछा हुआ है, जिससे खालोंमें छह महीने परिवहनका सस्ता साधन मिल जाता है। संचारके दूसरे साधन अच्छी दशामें नहीं हैं। रेलका सम्बन्ध कहीं कहीं है और मोटरकी अच्छी सड़कें क्वचित् ही पाई जाती हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य अद्भुत है। सारा प्राकृतिक दृश्य एक मुस्कुराता हुआ उद्यान दिखाई देता है। नारियल और सुपारीके आकाशको छूनेवाले घने झाड़ोंके सिरे आपसमें मिल कर एक हो जाते हैं और उनकी एक कुदरती छत्री-सी बन जाती है। इस घनी छत्रीको मध्याह्नका सूर्य भी कठिनाईसे भेद सकता है। घनी अमराइयोंमें छिपी कोयल अपनी आवेगपूर्ण और शोकपूर्ण कूकोंसे उनके भयंकर मौनको भर देती है। केले और पपीते, लीची और अनन्नास, अत्यन्त मीठे कटहल और आम तथा स्फूर्तिदायक दूधसे भरे नारियल—खट्टे फलोंका तो कोई पार ही नहीं है—आदि फल विपुल मात्रामें वहां पैदा होते हैं। और ये फल लगभग प्रत्येक व्यक्तिके लिए सुलभ हैं। सुगंधित वनस्पतियों तथा सागभाजीकी विविधताका कोई अन्त नहीं है। उनका सौरभ और उनका आकार अद्वितीय होते हैं; और वे कमसे कम मेहनतसे उत्पन्न की जा सकती हैं। लगभग आधे दर्जन प्रकारके कन्द-मूल वहां विपुल मात्रामें होते हैं। मछलियों और रंग-बिरंगे कमलोंसे भरे तालाब, पानीसे भरे सनके खेतोंके तरल आईनेमें प्रतिबिम्बित उज्ज्वल



आकाशके खण्ड तथा उनके आसपास—शरद् ऋतुके निरभ्र आकाशके नीचे—सीधे खड़े सनके पौधोंकी हरित छायाएं ऐसा अद्भुत सौन्दर्य प्रस्तुत करती हैं, जिसे एक बार देखनेके बाद कभी भुलाया नहीं जा सकता।

परन्तु प्रकृतिके इस मोहक चित्रके पीछे खतरा छिपा हुआ है। गांव दूर दूर बिखरे हुए होते हैं। घने जंगल, ऊंचे ऊंचे सनके खेत और पानीकी बेशुमार नहरें इन गांवोंको एक-दूसरेसे बिलकुल अलग कर देते हैं। उन गांवोंके चारों ओर जो घने जंगल हैं, उनके अभेद्य एकान्तमें संकट और दुःखकी पुकार दिनमें भी विलीन हो जाती है। और घनी तथा ताने-बानेकी तरह गांवोंको अपने बीच गूंथ लेनेवाली वनस्पति तथा अनगिनत तालाब और जलूमें बढ़नेवाली लताओंसे भरीपूरी खालें (नहरें) कालेसे काले कृत्योंको छिपानेके लिए आदर्श स्थान सिद्ध होती हैं।

१४ अक्टूबरको अर्थात् अन्तरिम सरकारमें मुस्लिम लीगके प्रवेशकी घोषणासे एक दिन पहले बंगालकी प्रेस एडवाइज़री कमिटीने यह विज्ञप्ति प्रकाशित की थी:

नोआखाली जिलेमें संगठित दंगा-फसाद होनेके समाचार कलकत्ते पहुंचे हैं। १० अक्टूबरसे तूफानी टोलियां घातक हथियार लेकर गांवों पर धावे कर रही हैं और वहां बहुत बड़े पैमाने पर लूटमार, हत्या और आगजनी हो रही है। जबरदस्ती बड़ी संख्यामें लोगोंका धर्म-परिवर्तन करने, स्त्रियोंको भगा ले जाने और पूजाके स्थानोंको भ्रष्ट तथा अपवित्र करनेके समाचार भी मिले हैं।

अब तक सदर और फेनी तालुकोंके २०० वर्गमीलसे अधिकके प्रदेशमें ये उपद्रव हो रहे हैं। उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंके मार्गों पर सशस्त्र गुंडे पहरा लगा रहे हैं।

बहुत बड़ी संख्यामें लोगोंकी हत्या होनेके या जिन्दा जला दिये जानेके समाचार मिले हैं। उनमें जिला वकील मंडलके अध्यक्ष और उनका परिवार तथा जिलेके एक प्रमुख जमींदार भी शामिल हैं।



कलकत्तेके सरकारी क्षेत्रोंमें पूछताछ करनेसे पता चलता है कि सेना और सशस्त्र पुलिस उपद्रव-पग्रस्त क्षेत्रोंमें भेज दी गई है। इन क्षेत्रोंमें संपूर्ण रामगंज, बेगमगंजके कुछ भागों, लक्ष्मीपुर, रायपुर, सेनबाग, फेनी, चागलानैया और संद्वीप थानोंका समावेश होता है।

एक और सन्देशके अनुसार उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंसे पीड़ित लोगोंके आवागमनके तमाम मार्ग बन्द कर दिये गये थे; और उन पर “घातक शस्त्रोंसे सुसज्जित गुंडे” कड़ा पहरा लगा रहे थे। इस तारमें यह भी उल्लेख किया गया था कि “इस भयंकर मारकाट, आगजनी और लूटपाटके पीछे योजनाबद्ध संगठन था।” [बेंगाल प्रेस एडवाइज़री बोर्ड द्वारा प्रकाशित किया गया तार, १६ अक्टूबर १९४६]

१६ अक्टूबरको कलकत्तेमें एक पत्रकार-सम्मेलनमें बंगालके मुख्यमंत्री शहीद सुहरावर्दीने नोआखालीके ‘अत्यन्त गम्भीर अत्याचार’ की बात स्वीकार करते हुए कहा कि “उपद्रव-ग्रस्त प्रदेशमें सेनाओंका आना-जाना” कुछ मुश्किल हो गया है, क्योंकि “नहरोंके बांध बांध दिये गये हैं, पुलोंको तोड़-फोड़ दिया गया है और सड़कों पर रुकावटें डाल दी गई हैं।” इसी कारण “एक बहुत ऊंचे दर्जेका” सैनिक अधिकारी वहां भेजा गया था। उन्होंने कहा कि अधिक सेनाएं आवश्यकतानुसार उपद्रव-पग्रस्त प्रदेशमें भेजनेके अलावा यह विचार किया गया है कि ये उपद्रव बन्द कर देनेकी बात लोगोंको समझानेके लिए उनके नाम “छपी हुई अपील और चेतावनी” आकाशसे गिराई जाय। मुख्य-मंत्रीने यह भी कहा कि नोआखालीमें स्थिति अत्यन्त खराब है और वहां जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन, लूटपाट और डाकेजनी हुई है। लेकिन उन्हें इसकी बिलकुल कल्पना नहीं है कि ये उपद्रव वहां क्यों हुए। उन्होंने यह भी कहा कि तुरन्त नोआखाली जानेका उनका विचार नहीं है। उसी दिन वे दार्जिलिंग चले गये, जहां गवर्नर मंत्रि-मंडलकी बैठक करनेवाले थे।

१८ अक्टूबरको ‘दि स्टेट्समैन’ ने अपनी संपादकीय टिप्पणीमें लिखा: “यह अजीब बात लगती है कि प्रान्तके एक भागमें इस प्रकारकी भयंकर आपत्तिका खतरा हफ्तोंसे लोगोंके सिर पर मंडरा रहा था और वहांका प्रशासनिक तंत्र टूटनेके प्रमाण भी मिलने लगे थे, फिर भी उस भयंकर आपत्तिके स्थान पर पहुंचनेकी गवर्नर या मुख्यमंत्रीकी कोई प्रवृत्ति अभी तक दिखाई नहीं देती। एक दार्जिलिंगमें बैठे हैं; दूसरे उनसे मिलनेके लिए दार्जिलिंग गये हैं।”



इसके बाद उपद्रवोंका दावानल उत्तरकी ओर फैला। जो उन्मत्त भीड़ रामगंज, बेगमगंज, रायपुर, लक्ष्मीपुर और सेनबाग थानोंमें दस दिनसे उत्पात मचा रही थी, उसका बड़ा भाग तिपरा जिलेके फरीदगंज थाने और हैमचर-चांदपुर क्षेत्रमें जा पहुंचा। भीड़ना एक भाग 'अधिकृत' प्रदेशोंका पहरा लगानेके लिए पीछे छोड़ दिया गया। २२ अक्टूबरको नोआखालीसे लिखते हुए 'दि स्टेट्समैन' के कार्यालय-प्रतिनिधिने प्रगट किया कि १३ वें दिन भी "नोआखाली जिलेमें रामगंज, लक्ष्मीपुर, बेगमगंज और सेनबाग थानोंके लगभग १२० गांव गुंडोंसे घिरे हुए रहे, जिनमें ९० हजारकी हिन्दू आबादी थी। यही हाल तिपरा जिलेमें चांदपुर और फरीदगंज थानोंमें लगभग ४० हजारकी हिन्दू आबादीवाले कोई ७० गांवोंका हुआ।" [दि स्टेट्समैन, २४ अक्टूबर १९४६]

इन्स्पेक्टर-जनरल ऑफ पुलिस मि. टेलरके कथनानुसार गुंडे "बन्दूकों और तरह तरहके दूसरे हथियारोंसे सुसज्जित थे तथा अभी तक कानूनकी अवहेलना करते थे और पुलिस तथा सेनाका सामना करनेमें उन्हें डर नहीं लगता था।" जैसे जैसे भीड़ आगे बढ़ती थी "वह तार काटती जाती थी, पुलोंको तोड़ती जाती थी, नहरोंके बांध लगा देती थी और सड़कोंको नुकसान पहुंचा कर वहां रुकावटें खड़ी कर देती थी और इस प्रकार जिन स्थानों पर आक्रमण हुआ था वहां आवागमनको असम्भव (अथवा कठिन) बना देती थी।" [दि स्टेट्समैन, २० अक्टूबर १९४६]

कांग्रेसके निर्वाचित अध्यक्ष आचार्य कृपालानीने शरत्चन्द्र बोस और दूसरे कांग्रेसी नेताओंको साथ लेकर उपद्रव-ग्रस्त प्रदेश पर १९ अक्टूबरको विमानी यात्रा की। विमान बहुत नीचा उड़ रहा था और उस मंडलीको सारा उपद्रव-ग्रस्त प्रदेश साफ दिखाई देता था। कुछ गांवोंमें बहुतसे घर अब तक जल रहे थे और एक उत्तेजित भीड़ एक विशेष क्षेत्रमें एक पुलको नष्ट कर रही थी तथा लोगोंके समूह जब विमान ऊपर उड़ रहा था तब अलग अलग स्थानों पर जमा हुए दिखाई देते थे। लौटते समय मुख्यमंत्रीने भी उसी विमानसे यात्रा की और वे जलते हुए गांवोंके चित्र लेते दिखाई दिये। सैनिक गुप्तचर-विभागकी जो रिपोर्टें नई दिल्ली पहुंचीं, उनमें बंगाल विधान-सभाके एक भूतपूर्व सदस्य (मियां गुलाम सरवर) का उल्लेख किया गया था। वे १. अक्टूबरसे बहुत पहले साम्प्रदायिक भावनाओंको भड़कानेका विषैला प्रचार कर रहे थे और उसीका परिणाम नोआखालीके भयंकर हत्याकांडमें आया था। वे अभी तक स्वतंत्रतासे घूमते थे। जब यह बात अधिकारियोंकी जानकारीमें लाई गई तो उन्होंने कहा कि उनके



खिलाफ वारन्ट जारी किया गया है, परन्तु उनका पता नहीं लगता । किन्तु कहा यह जाता था कि वे खुले तौर पर घूम रहे थे और अपना काम कर रहे थे।

अब कुल उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्र ५०० वर्गमीलसे ज्यादा बढ़ गया। जिन स्थानोंसे आशा नहीं थी वहांसे भी इस तरहके समाचार मिलने लगे कि गुंडे कष्ट-निवारण कार्यमें बाधा पहुंचा रहे हैं। लेफ्टिनेन्ट जनरल एफ. आर. आर. बुशेर, जी. ओ. सी., ईस्टर्न कमाण्डने २६ अक्टूबरको कलकत्तेमें बताया, “यह अनुमान लगाना असम्भव है कि उपद्रव-पग्रस्त प्रदेशोंसे फिरसे विश्वास स्थापित करनेमें कितना समय लगेगा।” [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, २७ अक्टूबर १९४६]

उपद्रव-ग्रस्त प्रदेशसे लोगोंका बाहर निकलना बन्द करनेकी गुंडोंकी कोशिशोंके बावजूद बहुत लोग बाहर भाग निकले थे। ज्यों ज्यों समय बीतता गया उपद्रव-ग्रस्त प्रदेशों और तूफानकी संभावनाओंवाले प्रदेशोंसे आनेवाले शरणार्थियोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। बंगाल सरकारके सिविल रिलीफ कमिश्नर सर वाल्टर गुर्नरके कथनानुसार लगभग १२०० शरणार्थी नोआखाली और तिपरासे रोज कलकत्ता आ रहे थे। आचार्य कृपालानीने बताया कि तिपरा जिले और त्रिपुरा राज्यमें शरणार्थियोंकी संख्या ४० हजारसे कम नहीं हो सकती।

ये शरणार्थी भारतके आधुनिक इतिहासमें जिसका दूसरा उदाहरण न मिल सके इतने बड़े पैमाने पर हुई क्रूर और भयंकर घटनाओंकी कहानियां अपने साथ लेकर आये । लगभग सभी सम्पन्न और प्रतिष्ठित हिन्दू परिवारोंके घर जला दिये गये थे, रक्षाके झूठे आश्वासन देकर व्यवस्थित रूपमें रुपया ऐंठा गया था, हत्यायें की गई थीं और सैकड़ों निर्दोष लोगों पर पाशविक आक्रमण हुए थे। परिवारके परिवार जबरदस्ती धर्मेभ्रष्ट कर दिये गये थे। अविवाहित कन्याओंका विवाह और विवाहित स्त्रियोंका पुनर्विवाह मुसलमानोंके साथ उनके निकटतम और प्रियतम जनोंके सामने जबरदस्ती कर दिये गये थे। जिन लोगोंका धर्मे-परिवर्तन कर दिया गया था और जिन्हें तरह तरहसे सताया गया था, वे अब मुस्लिम पोशाक पहने हुए दिखाई देते थे। उन्हें बलात् निषिद्ध आहार कराया गया था और बलात् उनसे मुस्लिम धार्मिक कर्मकांड कराये गये थे।



रामगंज पुलिस थानेमें नोआखाली गांवके एक प्रसिद्ध घरानेकी नौजवान लड़कीने जो बर्बरताएं की गई थीं उनका विशिष्ट विवरण दिया। ११ अक्टूबरको प्रातःकाल गांवके लोगोंकी एक मंडली उनके घर पर आई। उसने घमकी दी कि यदि उन्होंने तुरन्त एक स्थानीय संस्था (मुस्लिम लीग) के कोषमें ५०० रुपयेका दान नहीं दिया, तो वे सब मार दिये जायंगे, उनकी सम्पत्ति लूट ली जायगी और उनके घर जला दिये जायंगे। यह रुपया तुरन्त चुका दिया गया। थोड़ी देर बाद एक बहुत बड़ी खतरनाक भीड़ घरके चारों तरफ जमा हो गयी। परिवारके एक सदस्यने भीड़को शान्त करनेकी कोशिश की। उसके मुंहसे एक शब्द भी मुश्किलसे निकला होगा कि गुंडोंने एक दावसे (एक भारी टेढ़े छुरेसे) उसका सिर धड़से उड़ा दिया। फिर उन्होंने परिवारके सबसे बड़े आदमी पर हमला किया। उसकी निर्दय हत्या करनेके बाद उन्होंने उसके दूसरे लड़केको पकड़ा और उसके पिताकी लाश पर जबरन रख दिया। मां अपने बेटे पर गिर पड़ी और उसे न मारनेकी याचना की। इस हस्त-क्षेपसे ऋद्ध होकर उन्होंने मां पर लाठीका भारी वार किया और मूर्छित अवस्थामें उसे दूसरे स्थान पर हटा दिया। अपने कैदीके साथ पहले जैसा बरताव करके उन्होंने (लड़कीके) पिताकी तरफ ध्यान दिया। लड़की घरमें छिपी हुई थी। वह बाहर निकल आई और अपने पिताके प्राण बचानेकी कीमतके रूपमें उसने पिताके भावी हत्यारेको कुछ गहने और ४०० रुपये नकद दे दिये। “उस आदमीने रुपये और गहने बायें हाथमें ले लिये और दाहिने हाथसे उसके पिता पर घातक प्रहार किया।” [दि स्टेट्समैन, २७ अक्टूबर १९४६]

बादमें पता चला कि मारे गये आदमियोंकी संख्या (५ हजार) के बारेमें जो पहले समाचार थे, वे बिलकुल घबराहटमें दिये गये थे। दुर्भाग्यसे बिना जांच-पड़ताल किये यह वक्तव्य एक बहुत ही जिम्मेदार व्यक्तिने, जिन्हें अधिक सजग रहना चाहिये था, दिया था। इस वक्तव्यकी व्यापक प्रसिद्धि हुई और उसने अपार हानि की।

अधिकारियोंके सामने लोगोंसे शिकायतें दर्ज करवाना कठिन था। नोआखालीकी उद्धार, कष्ट-निवारण और पुनर्वास समितिकी ओरसे समितिके वकीलोंकी मददसे हत्याके २५० मामले दर्ज कराये गये। परन्तु यह सूची किसी भी तरह पूरी नहीं कही जा सकती। स्त्रियों पर हुए बलात्कारके सम्बन्धमें लोग जानकारी देनेको तैयार नहीं थे। परन्तु बादकी जांच-पड़तालसे सिद्ध हुआ कि बलात्कारके मामले जितने अधिकारियोंने स्वीकार किये उनसे कहीं अधिक थे।



नोआखालीके उत्पातका पहला परिणाम तो यह हुआ कि लोग स्तब्ध हो गये। उसके बाद देशभरमें रोष और क्रोधकी भावना भड़क उठी। लोकमत हत्याओं और मारकाटकी अपेक्षा स्त्रियोंके प्रति किये गये अत्याचारोंसे, उन्हें जबरदस्ती भगा ले जानेसे, जबरदस्ती उनका धर्म-परिवर्तन करनेसे और बलात् उनसे विवाह कर लेनेके प्रमाणोंसे अधिक क्षुब्ध हो गया। यह क्रोध बंगालके बाहर भी दूर दूर तक फैल गया।

२५ अक्टूबरको 'दि स्टेट्समैन' ने यह संपादकीय टिप्पणी लिखी, "आग लगाना, लूटमार करना, हत्या करना, स्त्रियोंको भगा ले जाना, बलात् उनका धर्म-परिवर्तन करना और उनसे विवाह कर लेना आदि घटनायें हर जगह हुई हैं। और जांच करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिने बताया है कि नोआखालीके तूफानोंकी यह विशेषता रही है। सबको स्त्रियों-सम्बन्धी इन अपराधोंका बहुत अधिक प्रमाण मिला है, जो जनसाधारणको मालूम नहीं होने दिया गया है। अगस्तमें हुई कलकत्तेकी भयंकर घटनाओंके बाद खास तौर पर उसी भागमें, जहां ये भीषण घटनाएं अब दुबारा हुई हैं, कड़ी सावधानियां रखनेका पर्याप्त कारण था। गुंडोंकी गिरफ्तारियां बहुत कम हुई मालूम होती हैं। मालूम होता है, कहीं न कहीं कार्यशक्तिका सर्वथा अभाव रहा है।" यह जो दलील दी गई थी कि अपूर्ण यातायात व संचार-व्यवस्थाके कारण एक बड़े प्रशासनिक पक्षाघातको नहीं संभाला जा सका, उसके बारेमें 'दि स्टेट्समैन' आगे चल कर कहता है: "सार्वजनिक मानसके लिए यह स्पष्टीकरण पर्याप्त नहीं है। वह प्रदेश खराब है, परन्तु गुंडे भी तो किसी तरह इधर-उधर चल फिर लेते हैं। और फिर पुलिसको तो आम जनता जानकारी देकर मदद भी करती है; वह युद्धकालमें जापानियों द्वारा अधिकृत किसी देशमें तो काम नहीं कर रही है।"

अंग्रेज शान्तिवादी और किंग्सले हॉलकी प्रसिद्ध समाजसेविका कुमारी म्यूरिल लेस्टर उन दिनों संयोगवश भारतमें ही थीं। नोआखालीकी घटनाओंका समाचार सुन कर वे सीधी वहां पहुंचीं। नोआखालीके एक कष्ट-निवारण केन्द्रसे अपनी रिपोर्टमें उन्होंने नवम्बरके पहले सप्ताहमें लिखा:

सबसे बुरी स्थिति स्त्रियोंकी हुई। उनमें से कइयोंको अपने पतियोंकी हत्या आंखोंके सामने होते देखनी पड़ी। फिर उनका बलात् धर्म-परिवर्तन किया गया और जो लोग उन हत्याओंके लिए जिम्मेवार थे, उन्हींके साथ उनकी शादियां कर दी गईं। ये स्त्रियां मृत्युकी जीवित



प्रतिमाओं जैसी दिखाई देती थीं। यह कोई निराशाकी भावना नहीं थी; ऐसी कोई सक्रियता उनमें थी ही नहीं। वह तो निरा शून्य भाव था। . . . हजारोंको लाचारीसे गोमांस खाकर और इस्लामके प्रति वफादारी घोषित करके अपने प्राणोंका मूल्य चुकाना पड़ा। . . . इस आगजनी और हत्याकांडके बारेमें कोई बात बिलकुल निश्चित रूपमें और भारपूर्वक कदाचित् कही जा सके तो वह यह है कि यह कोई ग्रामवासियोंका स्वाभाविक उत्पात नहीं था | बंगालमें कितने ही गुंडे क्यों न रहते हों, वे स्वयं अपने बल पर ऐसे तूफानको संगठित करनेमें असमर्थ हैं। घरों पर पेट्रोल छिड़क कर उन्हें जला दिया गया। यह कंट्रोलवाला ईंधन उन्हें किसने दिया ? इस ग्रामीण प्रदेशमें पेट्रोल छांटनेकी पिचकारियां कौन लाया ? उन्हें हथियार किसने दिये? . . . गुंडे यह समझते मालूम होते हैं कि बंगालके इस सुन्दर आकर्षक प्रदेशके शासक वास्तवमें वे ही हैं। **जिन लोगोंने विनाश, अत्याचार और आक्रमण किया और जो लोग उसे देखते रहे, उनमें कोई भयका लक्षण दिखाई नहीं देता। उन्हें भावी दंडकी कोई चिन्ता हो, ऐसा मालूस नहीं होता।**” [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ८ नवम्बर १९४६] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

२

नोआखालीके उपद्रव न तो संयोगवश हुए थे और न वे अप्रत्याशित थे। कलकत्तेमें सीधी कार्रवाईकी असफलताका कारण उसके जन्मदाताओंने दूसरे समुदायकी अपेक्षा कलकत्तेमें मुसलमानोंकी कम संख्याको बताया। यदि उस असफलताकी क्षतिपूर्ति करनी हो, तो वार वहां करना चाहिये जहां मुसलमानोंकी प्रधानता है। नोआखालीमें इसकी असाधारण सुविधाएं थीं।

नोआखालीकी कुछ २२ लाखकी आबादीमें १८ लाख अथवा ८१.३३ प्रतिशत मुसलमान थे और ४ लाख हिन्दू थे। जिलेका कुल क्षेत्रफल १,६५८ वर्गमील था। धन्धेकी दृष्टिसे ७५ प्रतिशत आबादी काश्तकारों, जमींदारों और तालुकदारोंकी थी। मध्यम वर्गके लोग १७ प्रतिशत और दस्तकार ७ प्रतिशत थे। यद्यपि हिन्दुओंकी आबादी १८.६७ प्रतिशत ही थी, फिर भी वे ६४ प्रतिशत जमींदारीके स्वामी थे। लेकिन वस्तुतः जमीनमें खेती किसान करते थे, जो बहुत अधिक संख्यामें मुसलमान थे। जहां हिन्दू मालिक अपनी जमीनमें खेती करता था वहां भी उसे मुसलमान मजदूरों पर निर्भर रहना पड़ता था।



कुछ समय पहले तक अधिकांश व्यवसाय हिन्दुओंके हाथमें था और अधिक शिक्षित होनेके कारण शिक्षित धन्धोंमें भी उन्हींकी प्रधानता थी। एक वर्गके रूपमें नोआखालीके हिन्दू जमींदारोंमें पतनशील सामन्तोंके समग्र लक्षण दिखाई देते थे। मूलतः वे अगुआ बन कर नोआखाली आये थे। अपनी लगन, साहस, शक्ति और संगठन-कौशलसे उन्होंने जंगलोंको साफ किया, वहां तालाब, सड़कें और नहरें बनाई, ग्रामीण प्रदेशमें खेती की और कई तरहसे उसका विकास किया। परन्तु उनकी बादकी संतानोंने अनुपार्जित आयके नैतिक पतन करनेवाले प्रभाव तथा बंगालके निष्क्रिय बनानेवाले जलवायुके कारण ये सब गुण गंवा दिये और वे परोपजीवियोंका-सा जीवन व्यतीत करने लगे। किसी समय उन्होंने ऐतिहासिक महत्त्वका कार्य किया था। लेकिन अब वे पिछली पूंजी पर जी रहे थे। उनमें से बहुतसे अन्य जमींदारोंकी तरह अनुपस्थित भूस्वामी हो गये थे। उनकी जमीन-जायदादों पर भारी कर्ज हो गया था और हालमें जो ऋण-निवारण कानून बना था उसने उनको और भी कमजोर कर दिया था। एक ऐसे क्षेत्रमें—जहां वे ९ : २ के अल्पमतमें थे—वे अभी तक भी अस्पृश्यताकी अमानुषिक प्रथासे चिपटे रह कर अपने ही घरमें फूट बनाये रखने पर तुले हुए थे।

नोआखालीके अधिकांश मुसलमान हिन्दूसे मुसलमान बने हुए हैं। सामान्यतः वे निरक्षर और पिछड़े हुए, स्वभावसे सीधे-सादे, प्रेमी और शान्तिप्रिय हैं। उन्हें भीरु भी कहा जा सकता है। डब्ल्यू. एच. थॉम्सनके शब्दोंमें कहें तो, “उनके आपसके झगड़े लाठियां चलवानेके बजाय उन्हें अदालतोंमें ले जाते हैं।” [थॉम्सन : फाइनल रिपोर्ट ऑन दि सर्वे एण्ड सेटलमेंट ऑपरेशन्स इन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ नोआखाली, १९१४-१९१९] परन्तु वे निरे अज्ञान हैं, उन्हें आसानीसे उत्तेजित किया जा सकता है और विशेषतः उनकी धर्मान्धताको अपील करके उन्हें आसानीसे गुमराह किया जा सकता है। तब उनमें संगठित सामूहिक कार्यकी असाधारण क्षमता प्रगट होती है। एक छोटासा उदाहरण यहां दूं। असहयोग आन्दोलनके दिनोंमें उन्होंने चटगांवसे चांदपुर तक ‘अल्लाहो अकबर’ का एक अखंड नारा संगठित किया था। यह अन्तर १० मीलसे ज्यादाका है। जब हम नोआखालीमें थे तब हमें विश्वास न हो सके इतने अल्प समयमें इतनी दूर उस नारेके फैल जानेकी बात भी कही गई थी। इस प्रकार बटन दबाते ही चलने लगनेवाले यंत्रकी तरह नोआखालीके मुसलमान तत्काल सामूहिक हिंसाको जन्म देनेकी आदर्श सामग्री प्रस्तुत करते हैं।



यह बात सामान्यतः लोगोंको मालूम नहीं है कि नोआखालीकी एक विशेष उपज और निर्यात की जानेवाली एक मुख्य वस्तु वहांके मौलाना और मुल्ला हैं। नोआखालीमें जितने मौलाना और मुल्ला हैं उतने भारतके और किसी भागमें नहीं हैं। हरएक बड़े गांवमें एक या दो हाजी होते हैं। हाजी वह भक्त मुसलमान होता है, जिसने मक्काकी यात्रा की हो और इस कारण जिसका आदर होता हो। मि. थॉम्सन लिखते हैं: “मौलवियों और हाफिजोंकी संख्या बहुत बड़ी है। (हाफिज वे होते हैं जिन्हें पूरा कुरान कंठस्थ होता है) । . . . फिर भी बन्दोबस्तके तमाम कर्मचारियोंकी एक यही शिकायत थी कि दूसरी जगहोंकी अपेक्षा यहांके लोगोंमें ईमानदारी और सचाईका आदर कम है।” [वही] उत्तर प्रदेशके देवबंद और आजमगढ़के मजहबी मदरसोंमें ज्यादातर विद्यार्थी नोआखालीसे आते हैं। पश्चिम बंगालकी अधिकांश मस्जिदोंमें इमाम नोआखाली देता है और बंबई तथा मद्रास तकके दूर दूरके स्थानोंमें भी यहींसे इमाम जाते हैं।

इस सदीकी बीसीके अर्सेमें असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलनके दिनोंमें नोआखालीके मुस्लिम कार्यकर्ता—जिनमें पीर, मौलवी और मौलाना भी थे—बड़ी संख्यामें कांग्रेसके आन्दोलनमें शरीक हुए थे। कांग्रेसवालोंने हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रारंभिक उत्साहकी बाढ़में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा दी। बारडोलीमें १९२२ में सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलनके स्थगित हो जानेके बाद और कमाल अतातुर्क द्वारा खिलाफतका अन्त कर देने पर खिलाफत आन्दोलनके टूट जानेके बाद, इनमें से ज्यादातर लोग पीछे हट गये; और १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें उन्होंने बहुत थोड़ा हिस्सा लिया। १९३१ के गांधी-इरविन समझौतेने उनके गिरते हुए जोशको फिर बढ़ा दिया। नोआखाली जिला नमक पैदा करनेवाला प्रदेश है। गांधी-इरविन समझौते [गांधी-इरविन समझौतेकी मानवतावादी धाराके अनुसार व्यक्तियों और परिवारोंको यह छूट दी गई थी कि वे कोई कर चुकाये बिना अपने उपयोगके लिए नमक बना लें, बशर्ते कि वे उसे सिर पर रख कर ले जायें और किसी सवारीका उपयोग न करें] के अनुसार नमकके संबंधमें जो रियायत मिली, उससे कृषक-वर्ग व्यापाक रूपसे नमक बनाने लगा। करमुक्त नमकका उत्पादन और बिक्री ५ लाख रुपये वार्षिकसे कम नहीं थी। फिर १९३२ में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आया। उसने सारे जिलेमें उथल-पुथल मचा दी और एक समय तो जिलेमें ब्रिटिश प्रशासनके लगभग ठप हो जानेकी नौबत आ गई। नौकरशाहीने इस चुनौतीका तुरन्त उत्तर दिया। वह भूली नहीं



थी कि किस प्रकार १९२१ में एक निरक्षर हिन्दू चमार और दो निरक्षर मुस्लिम भटियारोंने कांग्रेस-टिकट पर खड़े होकर चुनावमें एक सरकारी वकीलको, जो रायबहादुर था, और दो खानबहादुरोंको बुरी तरह हराया था। इन तीनों पदवीधारी उम्मीदवारोंकी जमानतें जब्त हो गई थीं। जब अन्य सब उपाय आजमा लिये गये तो साम्प्रदायिक फूटके प्रिय शस्त्रका आश्रय लिया गया। जिला-अधिकारियोंने अपने इर्द-गिर्द उन तमाम पीरों, मौलवियों और मुल्लाओंको इकट्ठा कर लिया, जो कांग्रेसको छोड़ चुके थे। एक कृषक-समितिका आन्दोलन कुछ समय पहलेसे चल रहा था। आरंभमें वह किसानोंका आन्दोलन था। नये रूपमें उसे बिलकुल साम्प्रदायिक और प्रतिगामी रंग दे दिया गया। उसके प्रचारको बढ़ानेके लिए सरकारके 'ऐच्छिक कोष' का खुलकर उपयोग किया गया। नोआखालीका तत्कालीन जिला-मजिस्ट्रेट इस नये आन्दोलनके साथ बिलकुल घुल-मिल गया था और खुद कृषक-समितिकी सभाओंमें भाषण दिया करता था। इन सभाओंमें जो भाषण दिये जाते थे और जुलूसोंमें जो नारे लगाये जाते थे, वे कांग्रेस-विरोधी, घोर साम्प्रदायिक और प्रत्येक वर्ग तथा समूहके हिन्दुओंके लिए—जिनमें हिन्दू स्त्रियां भी शामिल थीं—अपमानजनक होते थे।

नौकरशाहीके रवैयेका एक उदाहरण बंगाल सरकारके मुख्य सचिवके मुंहसे निकले हुए एक उद्गारसे मिलता है। एक प्रसिद्ध पत्र-प्रतिनिधिके साथ बातचीत करते हुए उन्होंने यह कहा बताया जाता है: "तुम हिन्दू क्रान्तिकारी हो। तुम असहयोग करते हो। तुम सविनय अवज्ञा द्वारा हमारा विरोध करते हो। हमें कमसे कम एक दलको अपने पक्षमें रखना पड़ता है, इसलिए हमने मुस्लिम लीगको अपने साथ ले लिया है। यदि तुम हमसे सहयोग करो, तो हम उन्हें लात मार देंगे (और उन्होंने शब्दोंके अनुरूप अभिनय करके भी बता दिया)।" जिस विशेष सिविल अधिकारीके हाथमें उन दिनों नोआखाली जिलेका कामकाज था, उसके बारेमें मुख्य सचिव बोले : "हम तो अपने पास जो रिपोर्टें आती हैं, उनके आधार पर शासन चलाते हैं। और मि. डी. (विभागीय कमिश्नर) की रिपोर्ट यह थी कि मि. एन. (जिला मजिस्ट्रेट) ने नोआखाली में सविनय अवज्ञा आन्दोलनको सफलतापूर्वक मार दिया है। हम उसे कैसे हटा सकते हैं ?"

नोआखाली में खेतीके सब तरहके मजदूर मुसलमानोंमें से मिलते हैं—धान बोना और काटना, नारियल और सुपारियां पेड़ों परसे उतारना और जमीन खोदना वगैरा सब काम वे करते हैं। कृषक-



समितिवालोंने दूसरी एक युक्ति आजमाई। उन्होंने हिन्दुओंका आर्थिक बहिष्कार करनेका निर्णय किया और मुसलमानोंसे कहा कि वे हिन्दुओंके यहां किसी भी तरहकी मजदूरी न करें। इस धमकीके पीछे समितिवालोंका हेतु यह था कि इससे हिन्दू कृषक-समितिको पैसा देकर शांति खरीदनेके लिए मजबूर होंगे। जो हिन्दू इस बहिष्कारसे डरे नहीं उन्हें सताया गया और उनके लिए जीना दूभर कर दिया गया। यह त्रास कई प्रकारका था। उदाहरणके लिए, बर्गदार (फसलके हिस्सेदार) हिन्दू भूस्वामियोंको उनके हिस्सेकी उपज देनेसे या उनकी जमीनका कब्जा छोड़नेसे इनकार कर देते थे; उनके मवेशी चुरा लिये जाते थे; घासकी गंजियोंको तथा बगीचोंकी बाड़को आग लगा दी जाती थी; खड़ी फसलें चुरा ली जाती थीं या जबरदस्ती उठा ली जाती थीं; सशस्त्र दलों द्वारा हिन्दू घरोंमें डाके डाले जाते थे; हिन्दू स्त्रियों पर अक्सर बलात्कार किया जाता था और उसका कोई उपाय नहीं था; मन्दिरोंसे मूर्तियों और सोनेके आभूषणोंकी चोरी कर ली जाती थी और मन्दिरोंको भ्रष्ट किया जाता था। अधिकांश मंडियों और साप्ताहिक हाटोंकी व्यवस्था हिन्दुओंने अपनी ही जमीन पर की थी । उन मंडियोंसे हिन्दुओंको निकाल देनेके लिए कृषक-समितिने वहां गोमांस बेचनेकी चतुराईभरी युक्तिका आश्रय लिया। जब हिन्दुओंने इस पर आपत्ति की, तो उनका बहिष्कार कर दिया गया और मुस्लिम जमीनों पर दूसरी मंडियां शुरू कर दी गई। इस प्रकार रायपुर, दत्तपारा, नंदीग्राम, करपारा, लामचर आदि कई फलती-फूलती मंडियोंका सफल बहिष्कार करके उनका नाश कर दिया गया। उनमें से कुछ मंडियां तो ५. वर्षसे भी अधिक पुरानी थीं।

इस संगठित धाक-धमकी, अराजकता और जुल्मके आन्दोलनके पीछे बंगालकी विधान-सभाके एक मुस्लिम सदस्यका दिमाग काम कर रहा था। वह अपने अनुयायियोंमें “शाह सैयद गुलाम सरवर हुसैनी, नोआखाली जिलेके शामपुर गांवके दौरा शरीफके पीरसाहब” के नामसे मशहूर था । वह नोआखालीका स्थानीय ‘हिटलर’ बन गया था। उसने एक ओर कानून तथा प्रशासनके स्थानीय तंत्र पर नियंत्रण रखने तथा दूसरों पर अपना प्रभाव डालनेके लिए उसका उपयोग करनेकी तथा दूसरी ओर नीचेसे दबाव डालकर सत्ताधारियोंसे अपना मनचाहा काम करानेकी चतुराईभरी कार्य-पद्धति अपनाई थी। साथ ही, अज्ञान ग्रामवासियों पर अपना प्रभाव डालनेके लिए ऊपरसे वह सत्ताधारियोंके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध भी बनाये रखता था।



यह सब १९३२ से १९३९ तक चलता रहा । फिर दूसरा महायुद्ध आ गया । उसके बाद ही लगातार खेतीकी दृष्टिसे तीन कमजोर वर्ष (१९४०-१९४२) आये । उनके बाद बाढ़ आ गई, जिससे १६५ वर्गमीलसे अधिक भूभागमें फसल बरबाद हो गई। साधारण समयमें भी नोआखाली जिलेमें अनाजकी तंगी रहती है । अनाज प्राप्त करनेकी और कंट्रोलकी सरकारी युद्धकालीन नीतिने इस संकटको और भी तीव्र कर दिया। १९४२ के आरंभमें चावलका भाव ६ रुपये मन था, जो बढ़कर मार्चमें १५ रुपये तक और जुलाई १९४३ में ६० रुपये तक चला गया। १९४२-४३ के अकालमें लगभग ५० हजार लोग भूखसे मर गये और करीब करीब २५ हजार पश्चिम बंगालमें चले गये । १९११ में जिलेका क्षेत्र-फल १,६४४ वर्गमील और आबादी १,१७४,७२८ कूती गई थी । इस हिसाबसे प्रति वर्गमील ७१४ व्यक्तियोंकी घनी आबादी हुई। १९४६ में जिलेका क्षेत्रफल १,६५८ वर्गमील और आबादी २,२१७,४०२ हो गई । इस हिसाबसे आबादीकी घनता प्रति वर्गमील १,३३७ आदमियोंकी हुई । द्वितीय विश्वयुद्धसे पहले भूमिहीन मजदूरोंका अनुपात ३६ प्रतिशत था और युद्धके अन्तमें बढ़ कर वह ६० प्रतिशत हो गया। जीवन-निर्वाहका खर्च दुगना हो गया, चोरबाजारीका बोलबाला हो गया और अपराधोंमें उल्लेखनीय वृद्धि हो गई। और संयोगवश हुआ यह कि जल्दी धनवान बन जानेवाले अधिकांश लोग हिन्दू थे, इसलिए वे सम्प्रदायवादियोंके आक्रमणके आसान लक्ष्य बन गये।

इस प्रकार कैबिनेट-मिशनके आनेसे ठीक पहले नोआखाली सचमुच एक बारूदखानेकी तरह दिखाई देता था। उसे सुलगानेके लिए एक चिनगारीकी ही जरूरत थी। और वह चिनगारी मुस्लिम लीगके 'सीथी कार्रवाई' वाले प्रस्तावसे मिल गई। कलकत्तेकी गोदियोंमें, कारखानोंमें और विविध व्यवसायोंमें नोआखालीके बहुतसे मुसलमान नौकरी करते थे। कलकत्तेके भीषण हत्याकाण्डके बाद उनमें से बहुतसे नोआखाली लौट गये और उन्होंने कलकत्तेके दंगोंकी भयंकर बातें फैलानेमें मदद की । इससे वहांकी मुस्लिम जनता भड़क उठी।

इसमें एक और उत्तेजनाका कारण मिल गया । मुस्लिम लीगने पाकिस्तानके लिए सारे बंगाल पर दावा किया, क्योंकि उसका कहना था कि वहां मुसलमानोंका बहुमत है। विरोधी पक्ष इस दावेको नहीं मानता था। लीगके दावेका अधिकसे अधिक आधार एक थोड़ेसे फर्क पर था, क्योंकि मुसलमान बंगालकी सारी आबादीके ५४.७३ प्रतिशत ही थे। यदि पूर्वमें एक मुस्लिम राज्यकी स्थापना हिन्दुओं



और मुसलमानोंके सिर गिनने पर आधारित हो, तो 'सीधी कार्रवाई' से उसका जल्दीका रास्ता आसानीसे मिल गया था; क्योंकि अज्ञान और कट्टर लोगोंने 'सीधी कार्रवाई' का अर्थ लगाया था बड़े पैमाने पर हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन और उनकी हत्या। और यदि नोआखालीमें उसे सफल बनाया जा सकता है, तो बंगालके अन्य भागोंमें और अन्तमें समूचे भारतमें क्यों नहीं बनाया जा सकता ? धर्मान्ध लोगोंकी यही दलील थी। क्या भारतके अधिकांश मुसलमान हिन्दूसे मुसलमान नहीं हुए थे या ऐसे लोगोंकी सन्तान नहीं थे ? यह पागलपनका विचार दिखाई दे सकता है, परन्तु वे दिन ही रोमांचकारी उन्मादके थे !

*

२९ अगस्त, १९४६ को नोआखाली शहरमें अचानक आग भड़क उठी। वह मुसलमानोंके ईद-उल्-फ़ित्रके त्योहारका दिन था। यह अफवाह फैला दी गई कि हिन्दुओंके भाड़ेके टट्टू सिक्ख सामूहिक रूपमें मुसलमानोंको कत्ल कर रहे हैं। मुसलमानोंकी उत्तेजित भीड़ उपनगरकी मस्जिदोंमें से शहरमें उमड़ पड़ी। जो भी हथियार हाथ लगा उसे लेकर लोग शहरमें चले आये। कुछ हिन्दू मछुओंके साथ मारपीठ की गई। दूसरे दिन समाचार मिले कि इसी तरहकी अफवाहोंसे जिले भरमें दंगे-तुफान हुए और उनसे बड़ी हानि हुई। बाबूपुर गांवके एक महत्त्वपूर्ण कांग्रेसीका पुत्र दिन दहाड़े मार डाला गया और वहांके कांग्रेस-भवनको आग लगा दी गई। आम रास्तों पर, गांवोंकी गलियोंमें और खालों (नहरों) पर हिन्दुओंको लूटने और मार डालनेकी छुटपुट घटनाओंके समाचार गांवोंसे मिले।

६ सितम्बरको ढोल बजाकर मियां गुलाम सरवरने घोषणा करायी कि "कलकत्तेके भीषण हत्याकांडका बदला लेनेके उपाय सोचनेके लिए" उलेमाओं और मुस्लिम लीगकी संयुक्त सभा होगी। उस सभामें भड़कानेवाले भाषण दिये गये और श्रोताओं पर यह असर डाला गया कि अब हथियार बनाने और हिन्दुओंके विरुद्ध उनका उपयोग करनेका समय आ गया है। यह सभा ७ सितम्बरको शाहपुरमें हुई।

दूसरे दिन एक और सभा दसघरिया गांवमें हुई और लोगोंकी भीड़से कहा गया कि वह नोआखालीके हिन्दुओंके विरुद्ध 'सीधी कार्रवाई' शुरू करनेसे पहले 'वरिष्ठ नेताओं' (हाई कमांड) के



आदेशोंकी प्रतीक्षा करे। इस सभामें मंदिरोंकी मूर्तियां तोड़ने और हिन्दुओंके पुजास्थानोंको भ्रष्ट करनेकी खुली घोषणा की गई। सभासे लौटते हुए भीड़ शाहपुरके एक प्रसिद्ध हिन्दूके कुल-मंदिरमें से मूर्तियां उठा ले गई और मंदिरको भ्रष्ट कर दिया। दूसरे दिन लगभग १ हजार आदमियोंने तीन दल बनाकर और हाथमें मुस्लिम लीगके झंडे लेकर शाहपुरके बाजारमें मछली, पान और गुड़के हिन्दू व्यापारियोंको लूट लिया।

कुछ दिन बाद पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट शाहपुर, करपारा, लामचर और आसपासके गांवोंके मुस्लिम लीगी सदस्योंसे एक विशाल सभामें मिले। लीगके प्रतिनिधियोंका रुख विरोधी था। स्थानीय हिन्दुओंने हाटके दिनोंमें सशस्त्र पुलिसके पहरेकी मांग की। परन्तु उनके अनुरोधका कोई फल नहीं निकला। दूसरे दिनसे उपद्रवियोंके नेताओंकी ओरसे यह बात फैलाई जाने लगी कि हफपतेभर तक मुसलमान हिन्दुओंके प्राणों और सम्पत्तिके साथ जो चाहें सो कर सकते हैं; सरकार इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगी।

नोआखालीके अधिकतर बुद्धिशाली और सम्पन्न लोग या तो कलकत्तेमें नौकरी अथवा व्यापार करते थे या शिक्षाके लिए अपने बालकोंको वहां भेजते थे। अक्टूबरके महीनेमें पूजाकी छुट्टियोंमें जो लोग कलकत्तेसे नोआखालीके गांवोंमें अपने घरोंको लौट रहे थे, उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि प्रत्येक पुल पर और खाल (नहर) के हर मोड़ पर अपनेको 'लीगके स्वयंसेवक', 'मुस्लिम नेशनल गार्ड्स' आदि बतानेवाले लोग नावोंकी तलाशी ले रहे हैं। नोआखालीमें नाव चलानेवाले ज्यादातर मुसलमान हैं। उन्हें उपद्रवी नेताओंने आदेश दे रखा था कि वे हिन्दू यात्रियोंको न लें जायं। कभी कभी हिन्दू यात्रियोंके साथ मारपीट की जाती थी और उनका सामान छीन लिया जाता था। रातको मुसलमानोंकी गुप्त सभाएं होती थीं और उनमें हिन्दुओंको बिलकुल नहीं आने दिया जाता था। किसी मोहल्लेमें पहुंचने पर तमाम हिन्दू नवागन्तुकोंसे पूछताछ की जाती थी, उनके आने-जाने पर गुप्त निगरानी रखी जाती थी और उनकी घूमने-फिरनेकी स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था। उनके मुसलमान पड़ोसी उन्हें एक-दूसरेसे मिलने या अन्य लोगोंसे मिलने जानेसे रोकते थे। हवामें किसी अपशकुनकी, किसी अनिष्टकी गंध आ रही थी। निराश होकर नोआखालीकी हिन्दू महासभाके अध्यक्ष और नोआखाली नगरपालिकाके कार्यवाहक सभापतिने जिला मुस्लिम लीगके नेताओंके पास जाकर शान्ति और सुरक्षाकी अपील की। लीगके नेताओंके उत्तर अस्पष्ट थे। शिष्ट-मंडलने उन्हें जिलेका साथ साथ दौरा करनेका निमंत्रण दिया:



“मैं उनसे कहता हूँ कि जिला मजिस्ट्रेटने आखिर एक जीपकी मंजूरी दे दी है, और हम साम्प्रदायिक मेलजोलके लिए जिलेका एक सिरेसे दूसरे सिरे तक दौरा कर सकते हैं। परन्तु वे हिचकिचा कर कहते हैं कि . . . निश्चित उत्तर वे दूसरे दिन देंगे। परन्तु दूसरे दिन वे हमारे साथ चलकर संयुक्त सभाओंमें भाषण देनेसे साफ इनकार कर देते हैं। . . . मैं घबरा जाता हूँ। . . . मैं जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टसे मिलकर उन्हें समझानेकी कोशिश करता हूँ कि आनेवाली विपत्ति . . . (कितनी भारी) और किस स्वरूपकी है। परन्तु पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट इतना ही कहता है कि हमने जिन घटनाओंका उल्लेख किया है वे निराधार और झूठी हैं और किसी भी ऐसी घटनाके होनेका खतरा नहीं है जिसे मेरी पुलिस काबूमें न कर सके। उसका खयाल है कि सेना या अधिक सशस्त्र पुलिसकी जरूरत नहीं है।” [नोआखाली नगरपालिकाके उपसभापति और कार्यवाहक सभापति क्षितीशचन्द्र रायचौधरीका ७ नवम्बर १९४६ का वक्तव्य] जिला मजिस्ट्रेट एन. जी. राय तबादलेकी आज्ञाके अनुसार १२ अक्टूबरको नोआखालीसे चले जानेवाले थे। “मैं उनसे ठहरनेके लिए अपील करता हूँ। वे स्थितिकी गंभीरता और आनेवाले खतरेको समझते हैं। परन्तु उनका कहना है कि उन्हें जाना पड़ेगा। फिर भी वे अल्पसंख्यकोंको बचानेके लिए जो कुछ कर सकते हैं करेंगे।” [वही]

और जिला मजिस्ट्रेट १२ अक्टूबरके बजाय १० अक्टूबरको ही चले गये—उसी दिनांक नोआखालीमें भयंकर हत्याकांड हुआ।

३

१० अक्टूबर अर्थात् लक्ष्मीपूजाके दिन भयंकर हत्याकांड आरम्भ हो गया। वर्षाऋतु कभीकी शुरू हो गई थी। खालें (नहरें) पानीसे उमड़ पड़ी थीं। चावलके खेतोंमें बाढ़-सी आई हुई थी। जिला बोर्डकी सड़क भारी बरसातके कारण टूट गई थी। छोटी सड़कें जलमग्न हो गई थीं। शंकों (बांसके सारे पुलों) पर गुंडोंका पहरा लग गया था।

करपाराकी चौधरीबाड़ीवाले रायसाहब राजेन्द्रलाल चौधरी, जो नोआखाली वकील-मंडलके अध्यक्ष थे, स्थानीय हिटलरकी आंखोंकी किरकिरी बने हुए थे; क्योंकि उन्होंने बढ़ती हुई अराजकताके विरुद्ध रक्षात्मक संगठन खड़ा किया था। उन दिनों उनकी बाड़ीमें त्र्यम्बकानन्द नामक भारत सेवाश्रमके



एक साधु रहा करते थे। वे हिन्दू बाड़ियोंमें शीतला-पूजाकी परम्पराको फिरसे जारी करनेका कुछ हद तक सफल प्रयत्न कर रहे थे। चारों ओर यह अफवाह फैली हुई थी कि साधुने डींग हांकते हुए यह कहा है कि पूजाके आगामी अवसर पर वे बकरेके साधारण रक्तके स्थान पर मुसलमानोंके रक्तसे पूजा करेंगे। करपारासे हिटलर गुलाम सरवरका सुख्यकेन्द्र शामपुर थोड़ी ही दूर था। यह समाचार सुनकर वह आग-बबूला हो गया और उसने धमकी दी कि वह उस साधूका और रायसाहब राजेन्द्रलाल चौधरीका सिर उड़ा देगा। १. अक्टूबरको प्रातःकाल उसने एक चौकीदारको पत्र देकर उन दोनोंको शाहपुर बाजारमें मिलनेके लिए बुलाया। रायसाहबको शंका हुई कि दालमें कुछ काला है, इसलिए उन्होंने जानेसे इनकार कर दिया। इससे हिटलर उत्तेजित हो गया। ८ बजे सुबह उसने शाहपुर बाजारमें कई हजार लोगोंकी सभामें भाषण दिया। कहा जाता है कि उसने राजेन्द्रलालका और साधुका सिर काट कर लानेको कहा और भीड़को आगजनी और लूटपाटके लिए उत्तेजित किया। रामगंजका एक मुसलमान थाना-अफसर वहीं मौजूद था। हिटलरने उसे आज्ञा दी कि वह अपने आदमियोंके साथ उस नावके पास चला जाय, जो नीचे खालमें लंगर डाले हुए है और वहीं ठहरे। अफसरने भेड़की तरह कायर बनकर उसकी आज्ञा मान ली। फिर भीड़ने बाजारके काली-मन्दिरको आग लगा दी और पवित्र वटवृक्ष (काली गाछ) को थाना-अफसरकी आंखोंके सामने ही काट डाला। बाजारकी सारी हिन्दू दुकानें लूट ली गईं और जला दी गईं।

शाहपुर बाजारको खतम करनेके बाद भीड़ तीन भागोंमें बंट गई। एक भाग उत्तर-पश्चिममें रामगंज बाजारकी तरफ बढ़ा, दूसरेने दसघरिया बाजारमें हिन्दू दुकानें लूटीं और वहांके ठाकुर-मन्दिरको जला दिया। और तीसरेने नारायणपुराके जमींदार सुरेन बोसकी कचहरी पर हमला कर दिया। सुरेन बोसको एक हितैषी पुलिस अफसरने उसी दिन प्रातःकाल आनेवाले खतरेकी चेतावनी देकर भाग जानेकी सलाह दी थी। परन्तु उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया, “मैं अपने भाइयोंको पीछे छोड़कर जाना नहीं चाहता। . . . मुझे उनके साथ ही मौतका सामना करना चाहिये।” जब हमला हुआ तो उन्होंने दंगाइयों पर गोली चलाई। भीड़ उन पर टूट पड़ी। उन्हें मार डाला गया, कचहरीको आग लगा दी गई और उनकी लाशको आगमें फेंक दिया गया। इसी तरह घरके ५ और आदमी भी मार दिये गये।



११ अक्टूबरको प्रातःकाल ८ बजेके करीब चौधरीबाड़ी पर आक्रमण किया गया। पहले ३०-४० दंगाइयोंकी एक छोटीसी टोली 'अल्लाहो अकबर', 'हिन्दुर रक्त चाई' (हमें हिन्दुओंका रक्त चाहिये) चिल्लाती हुई आई। राजेन्द्रलाल चौधरी और उनके पुत्रने कुछ नौजवानोंके साथ मुख्य मकानसे थोड़ी दूर उसका सामना किया। आक्रमणकारियोंके तीन आदमी मारे गये। तब भीड़ पीछे हट गई और लगभग तीन घंटे बाद कमसे कम १० हजार आदमियोंकी कुमुक लेकर वापस आई । इस बीच राजेन्द्रलालके परिवारके लोगोंने और आसपासकी बाड़ियोंके पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंने रायसाहबके मकानकी छत पर शरण ली और अपने सामने रक्षाके लिए आड़ खड़ी कर ली। वहांसे कालीप्रसन्न राउत नामक एक व्यक्तिने अपनी तोड़ेदार बन्दूकसे कुशलतापूर्वक गोलियां चलाई और कई घंटे तक दंगाइयोंको रोके रखा। अन्तमें उसका गोला-बारूद खतम हो गया। तब उसने अपने पैरोंसे बन्दूकको तोड़ कर मकानमें फेंक दिया। कहा जाता है कि आक्रमणकारियोंके ३०-४० आदमी मारे गये और कई सौ घायल हुए।

जब गोली चलना बन्द हो गया तब दंगाई लौट आये और लकड़ी, बांस तथा बाड़के टुकड़े वगैरा मकानके सहारे इकट्ठे करके उन्होंने पेट्रोल और घासलेटकी मददसे आग लगा दी। "आग तुरन्त भड़क उठी और स्त्रियां, बच्चे और बूढ़े डरके मारे निराश होकर चीखने लगे।" [२८ अक्टूबर १९४६ को दिये गये चित्तरंजन रायचौधरीके वक्तव्यमें आंखों देखा वर्णन] कुछ दंगाइयोंने नीचेसे पत्थर फेंके । इससे एक आदमी मारा गया। जिनके चोटें नहीं आई थीं, उन्होंने छत पर लेटकर अपनेको बचानेकी कोशिश की। परन्तु उन पर नीचेसे ईंटों, पत्थरों, बोतलों वगैराकी भयंकर वर्षा की गई। तब आगसे जली हुई इमारतका एक हिस्सा बैठ गया। उससे नीचे आश्रय लिये हुए अनेक लोग तथा ऊपर छत परके कुछ आदमी दबकर मर गये । जब आग बहुत भयंकर हो गई तो छत परके लोगोंने दयाजनक ढंगसे नीचेवाली भीड़से बचानेकी याचना की। हिटलर दूर खड़ा देखता रहा । उसकी आज्ञासे नारियलके एक पेड़को गिराकर मकानकी दीवारके सहारे एक सीढ़ी बना ली गई और मकानमें से सारे पुरुषोंको एक एक करके नीचे लाया गया, नंगा किया गया, पेड़ोंसे बांधा गया और उनकी स्त्रियोंके सामने 'दावों से उनके सिर धड़से अलग कर दिये गये। रायसाहब राजेन्द्रलाल चौधरीको अन्य लोगोंसे अलग ले जाकर लकड़ीके लट्टेसे बांधकर उनका सिर उड़ा दिया गया। कटा हुआ सिर जुलूस निकालकर हिटलरको भेंट किया गया—“उन्मत्त भीड़ भयंकर रूपमें शोरगुल मचा रही थी।” [वही]



इस बीच आसपासके तमाम घर पहले लूट लिये गये और फिर जला दिये गये। कालीप्रसन्न राउतने पासके एक पोखरमें कूदकर बच निकलनेकी कोशिश की, परन्तु दंगाइयोंको पता चल जानेसे उसे एक 'टेटा' की नोकसे तालाबसे बाहर खींच लिया गया और मार दिया गया (टेटा तेज आंकड़ोंवाला मछली पकड़नेका कई दांतोंका भाला होता है) । स्त्रियोंको अलग अलग स्थानों पर ले जाया गया। “उनके आगे भी भीड़ चलती थी और पीछे भी चलती थी।” [वही] उन पर व्यंग, कटाक्ष और कई अवर्णनीय अपमानोंकी वर्षा की गई। रातको देरसे उनमें से कुछको वापस लाकर एक पड़ोसकी बाड़ीमें छोड़ दिया गया। रायसाहब राजेन्द्रलालकी पत्नी और कुछ दूसरी महिलाओंने राजेन्द्रलालके एक मुसलमान नौकरकी बाड़ीमें शरण ली। वहांसे एक सप्ताह बाद १८ अक्टूबरको रसद-मंत्री अब्दुल गोफरानने उनका उद्धार किया। उस परिवारकी दो लड़कियोंको बदमाशोंकी एक टोली शाहपुर हाईस्कूलमें ले गई, जहां उन पर बलात्कार किया गया। फिर एकको शाहपुर बाजारमें ले जाकर मार डाला गया। दूसरी भाग निकली, अपना रास्ता भूल गई और एक दयालू मुस्लिम दुकानदारने उसकी दशा पर रहम खाकर शाहपुरकी राजबाड़ीमें उसे पहुंचा दिया। उसने वहीं शरण ली। पर गुंडोंको उसका पता लग गया। उन्होंने धमकियां देकर उसे सौंप देनेकी मांग की। बेचारी लड़की रोती हुई अपने हिन्दू यजमानोंसे प्रार्थना करती थी कि उसे जहर देकर उसका प्राणान्त कर दिया जाय। परन्तु डरके मारे उन्होंने उसे अंधेरी रातमें बाहर निकाल दिया। आकाशमें बादल छाये हुए थे और सब जगह गहरा कीचड़ था। निराश होकर वह अत्याचारियोंमें से एक एककी तरफ मुड़ी और अन्तमें उसने एक शिक्षकसे रक्षाकी प्रार्थना की। उसने उसे आश्वासन दिया, उसे बहन कहा, बादमें उसके साथ विश्वासघात किया और कुछ दिन तक उसे अपने घरमें बन्द रखा और फिर उसे जगह जगह घुमाता रहा। अन्तमें एक नाव द्वारा उसे पानीसे भरे हुए चावलके खेतोंमें ले जाकर खालिसपारा गांवके निकट—यह गांव शाहपुर राजबाड़ीसे कोई आध मील दूर था—मार डाला गया और उसकी लाश पानीमें फेंक दी गई।

दूसरे दिन रातके अंधेरेमें दंगाइयोंने लाशोंके सिर काट दिये । १२ अक्टूबर-को बिना सिरवाले धड़ भी वहांसे हटा कर थैलोंमें भर दिये गये और लामचर गांवके पास एक तालाबमें फेंक दिये गये । १३ जनवरी, १९४७ को जब गांधीजी उस स्थान पर गये, तो इस लेखकके नाववालेने १३ लाशोंसे भरे थैले बाहर निकाले । डॉ. सुशीला नय्यरने पोस्टमार्टमकी जो रिपोर्ट दी, उससे प्रगट हुआ कि उन लाशोंमें



से दो लाइनों स्त्रियोंकी थीं। उस दिन चौधरीबाड़ीके हताहतोंकी संख्या इस प्रकार थी: मारे गये २४, घायल हुए ६९ और लापता ९३।

वह रहस्यमय साधु त्र्यम्बकानन्द, उसके अपने ही विवरणके अनुसार, दंगाइयोंके पहले आक्रमणके बाद चौधरीबाड़ीसे खिसक गया। जब वह लौटा तो उसने देखा कि मकान जल रहा है और उसके निवासियोंकी तथा उसमें शरण लेनेवालोंकी लाशें सब जगह छितरी हुई हैं। तब वह जल्दी ही वहांसे चल दिया, जंगलमें छिप गया और अर्घरात्रिके बाद जल्दी ही पासवाली खाल (नहर) को तैर कर पार कर गया। उस समय भारी वर्षा हो रही थी। वह धानके खेतों और जंगलोंको पार करता हुआ किसी तरह रामगंज पहुंचा। वहांसे सशस्त्र पुलिसिके पहरमें उसे नोआखाली ले जाया गया और अन्तमें वह कलकत्ते पहुंच गया। वहां जाकर उसने अपने साहसी कार्योंका अखबारोंको रंग-बिरंगा विवरण दिया!

जब गांधीजी दत्तापारा शरणार्थी-छावनीमें ठहरे थे तब चौधरी परिवारकी एक ५ वर्षकी बच्ची— जो उस भीषण हत्याकांडसे बच गई थी—गांधीजीके सामने लाई गई। वह सरकारी अफसरों सहित सारे शिविरके लिए शुभ शकुनकी प्रतीक बन गई। वह जब चौधरीबाड़ीकी भयंकर घटनाओंका आंखों देखा वर्णन अपनी निर्दोष तोतली बोलीमें करती थी, तब अनेक लोगोंकी आंखोंमें आंसू आ जाते थे।

एक दंगाईने तोड़फोड़के सामानमें से कालीप्रसन्न राउतकी अधजली बन्दूकका जला हुआ दस्ता उठा लिया था और दो वर्ष बाद उसका विचित्र इतिहास बन गया था। [सन् १९४८ में गांधीजीकी मृत्युके बाद नोआखालीसे गांधी-शान्ति-मिशनको निकाल देनेके षड्यंत्रके अंगस्वरूप गुलाम सरवरके एक आदमीने मेरे शिविरमें एक तोड़ेदार बन्दूक रख दी थी। उसके नंबरसे पहचान लिया गया कि यह वही बन्दूक थी, जिसे चौधरीबाड़ीकी रक्षामें कालीप्रसन्न राउतने उपयोगमें लिया था। बादमें पूर्व बंगाल सरकारके एक मंत्रीने इस घटनाकी जांच की थी। उस समय एक स्थानीय मुसलमानने मंत्रीको षड्यंत्रकी सारी कहानी बताई थी। उस मुसलमानने यह कहानी सीधे उसी व्यक्तिसे सुनी थी, जिसने बन्दूक षड्यंत्रकारियोंको दी थी] महीनों बाद तक काली पड़ी और मुड़ी हुई टीनकी चादरोंके ढेरके ढेर सब जगह बिखरे दिखाई देते रहे। ऐसा मालूम होता था कि हवाई जहाजोंसे बम गिरा कर नष्ट किया हुआ



कोई नगर हो। जहां किसी समय मकान खड़े थे ऐसी बीसियों जगह राख, अधजली लकड़ियों और घरके जले हुए सामानके ढेर लगे हुए थे। जहां तहां राखके ढेरोंके बीज अचानक मानवोंकी अधजली हड्डियां देखी जा सकती थीं। एक जले हुए झोंपड़ेमें गांधीजीको एक बच्चेकी खोपड़ी और एक छोटे शिशुकी उंगलियों और बांहके अवशेष देखनेको मिले थे।

शाहपुर बाजारके भीषण विनाशके बाद हिटलरने अधिकारियोंको सूचना भेजी कि 'बाहरके गुंडों' ने आकर यह सब किया है और उसकी अपनी और स्थानीय लोगोंकी जान खतरेमें है ! उसने लूटके मालसे उन लोगोंको सहायता देना भी शुरू कर दिया जो उसके शिकार हुए थे और मुसलमान बना लिये जानेके बाद अब जो उसके अपने ही आदमी हो गये थे ! २२ अक्टूबरको सैनिक पुलिसने गिरफ्तार करके उसे हवालातमें ले लिया।

४

१० अक्टूबरको शाहपुरमें जो उपद्रव हुआ, उसके साथ ही साथ १३ मीलकी लम्बाईमें सोनापुरसे पंचगांव तकके लगभग सभी बाजार लूट लिये गये। पंचगांवमें ५०० मुसलमानोंकी भीड़ने, जो घातक शस्त्रोंसे सुसज्जित थी, ११ अक्टूबरको पुलिस सुपरिंटेंडेंटके आज्ञा देने पर बिखरनेसे इनकार कर दिया। बिखरनेके बजाय उन्होंने उसे एक अस्सी बरसके स्थानीय हिन्दू जमींदारके धर्म-परिवर्तन संस्कारमें शरीक होनेका निमंत्रण दिया। १२ अक्टूबरको नोआखोलाके किसी दक्षिणी बाबूका अत्यन्त जरूरी सन्देश मिला कि उसकी जान खतरेमें है और उसकी रक्षा की जाय । पुलिस सुपरिंटेंडेंटके पास पहुंच कर उससे विनती की गई, परन्तु वह अधिक सशस्त्र पुलिस अथवा सेनाकी सहायता मंगानेको तैयार न हुआ। नोआखाली नगरपालिकाके कार्यवाहक सभापतिने अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेटके साथ १३ अक्टूबरको उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रमें जानेकी कोशिश की। वे नावदाना गांव तक पहुंच गये। दूर उन्हें पश्चिमी मोहल्ला आगमें जलता हुआ दिखाई दिया। परन्तु वे पश्चिमकी ओर अधिक बढ़ नहीं सके, क्योंकि सड़क जलमग्न थी। और उन्हें मजबूर होकर लौट आना पड़ा। दक्षिणी बाबूकी १२ अक्टूबरकी शामको हत्या कर दी गयी।



और इस प्रकार विनाश-लीला एक गांवसे दूसरे गांव और एक थानेसे दूसरे थाने तक फैलती गई। गांवों पर होनेवाले नये नये आक्रमणों, संपूर्ण परिवारोंकी हत्याओं, सामूहिक धर्म-परिवर्तन, आगजनी और लूटपाटकी भयंकर कहानियां गोपायरबाग, नोआखोला, चंडीपुर, आमिशपारा, दलालबाजार, रायपुर, नाओरी, बड़ा गोबिन्दपुर और हैमचरसे आती रहीं। संद्वीप नामक द्वीपमें उपद्रव १९ या २० अक्टूबरको शुरू हुआ और बादमें देर तक उसका असर बना रहा। मुख्य भूभागसे कट कर वह 'भयका द्वीप' [संद्वीप द्वीप सम्बन्धी वक्तव्य १५ दिसम्बर १९४६ की डॉ. अमिय चक्रवर्तीकी रिपोर्ट पर आधारित है। यह रिपोर्ट उन्होंने उस द्वीपमें हो आनेके बाद गांधीजीके समक्ष पेश की थी] बन गया।

दंगाई सब जगह अच्छी तरह तैयार होकर आते थे। उनमें ऊंचे दर्जेका संगठन दिखाई देता था। वे नेताओंके अधीन काम करते थे; और उनकी अलग अलग टोलियोंके नाम उन गांवों पर रखे जाते थे, जहांसे उन्हें भरती किया जाता था। उनके लगभग सारे अपराध दिन-दहाड़े होते थे। रात पड़नेके बाद वे बहुत ही कम चालू रहते थे। दंगाई हमेशा बड़ी संख्यामें और बिजलीकी गतिसे अचानक आक्रमण करते थे और अकल्पनीय निर्दयातासे काम लेते थे—खास तौर पर उस समय जब उनका सामना किया जाता था। दंगाई ये नारे लगाते थे: 'अल्लाहो अकबर', 'पाकिस्तान जिन्दाबाद', 'लड़के लेंगे पाकिस्तान', 'मुस्लिम लीग जिन्दाबाद', 'कालिकातार प्रतिशोध चाई' (हमें कलकत्तेका प्रतिशोध चाहिये) । उनकी कार्य-पद्धति सुनिश्चित और एकसी होती थी। उनकी कार्रवाईके विभिन्न दौर एकके बाद एक लहरोंमें आते थे। पहले रुपया ऐंठा जाता था। मुस्लिम लीगके नाम पर चंदा मांगा जाता था। यह आश्वासन दिया जाता था कि जो लोग चंदा दे देंगे, उन्हें छोड़ दिया जायगा। इस वचनका पालन हमेशा नहीं होता था । जहां प्राणोंको हानि नहीं पहुंचाई जाती थी, वहां भी सम्पत्ति तो लूट ही ली जाती थी।

रुपया ऐंठनेके बाद तमाम हथियार सौंप देनेकी मांग की जाती थी। एक भी हथियार, चाहे वह हंसिया हो अथवा दरांती, रख लेनेकी सजा सारे परिवारके लिए तात्कालिक प्राणदण्ड होती थी । इसके बाद जो भी चीज ले जाई जा सकती थी वह लूट ली जाती थी और घासलेट तथा पेट्रोलसे घरोंको आग लगा दी जाती थी। स्थानीय लोगोंने बताया था कि दंगोंके एक महीने पहलेसे उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रमें राशनकी दुकानों पर प्रेमके मार्गसे या रुपयेसे भी मिट्टीका तेल नहीं मिल सकता था।



आगजनीके बाद फिरसे लूटपाट होती थी। जो भी चीज आगसे बच जाती थी या पूरी तरह जल नहीं पाती थी—जैसे किवाड़, खिड़कियोंकी चौखटें, लोहेकी चादरें वगैरा—वह लूट ली जाती थी। कई दिनों तक यह चलता रहा। जो लोग जीवित बच जाते उनसे कहा जाता था कि जीना चाहते हो तो इस्लामको स्वीकार करो। दंगोंके शिकार बने हुए लोगोंसे कभी कभी धर्म-परिवर्तनकी सचाईके प्रमाणस्वरूप यह चाहा जाता था कि वे अपनी कुंवारी, विधवा और कभी कभी विवाहिता पुत्रियोंका भी 'विवाह' भीड़ द्वारा चुने हुए मुसलमानोंके साथ पुनः कर दें। इन सब मामलोंमें गांवके मौलवी, जो भीड़के साथ होते थे, अपनी सेवाएं देनेको तैयार रहते थे। इस प्रकार ये मौलवी एक ही साथ गुंडों और धर्मगुरु दोनोंका काम करते थे।

धर्म-परिवर्तनके बाद जो लोग दंगोंके शिकार होते थे उनके मकानों पर पहरे लगा दिये जाते थे। ऊपरसे तो यह उनकी रक्षाके लिए होता था, परन्तु इसका मूल उद्देश्य यह होता था कि वे भाग कर निकल न जायें और उनका धर्म-परिवर्तन स्थायी हो जाय। यह बात स्वयं कुछ 'पहरेदारों' ने बादमें हमारे सामने स्वीकार की। कुछ स्थानों पर तो उपद्रवोंके शिकार बने हुए लोगोंके परिवारोंको घेरे हुए क्षेत्रोंसे बाहर जानेके 'परवानों' के रूपमें टोलियोंके सरदार 'धर्म-परिवर्तन' के प्रमाणपत्र देनेकी धृष्टता भी करते थे। [धर्म-परिवर्तनके एक मूल प्रमाणपत्रका अनुवाद, जो गांधीजीको नोआखाली पहुंचने पर दिया गया था, इस प्रकार है: "गुलाम रहमान बापका नाम अब्दुर्रहमान। इस व्यक्तिने १५-१०-१९४६ को पाक इस्लाम कबूल कर लिया है। इसका पहलेका नाम सत्येन्द्रकुमार मजूमदार था। इसका वर्तमान नाम गुलाम रहमान है। विदित हो कि इसके सारे परिवारने इस्लाम कबूल कर लिया है। हस्ताक्षर : मुहम्मद हमीदुल्ला, गांव : अयूबपुर।"]

बुद्धिशाली लोगों और सम्पन्न घरानोंके तमाम पुरुष उत्तराधिकारियोंका नाश करनेका व्यवस्थित प्रयत्न किया गया था। जिन लोगोंने उपद्रवोंमें भाग लिया उनमें यूनियन बोर्डों और मुस्लिम नेशनल गार्डोंके अध्यक्ष और सदस्य थे, मुस्लिम शिक्षक और स्कूल-कॉलेजोंके छात्र थे तथा कौमके स्थानीय अपराधी तत्त्व और स्त्रियों तथा बच्चों सहित थोड़ी संख्यामें साधारण मुस्लिम ग्रामीण भी होते थे। बादमें गुंडे लूटके मालके बंटवारे पर आपसमें झगड़ते थे और कभी कभी एक-दूसरेके खिलाफ जानकारी दे देते थे। उपद्रवोंके दिनोंमें एक यूनियन बोर्डके भूतपूर्व अध्यक्षने किसी स्थानीय हिन्दू व्यापारीकी नाव



चुरा ली। उसके पदके प्रतिस्पर्धी द्वारा दी हुई जानकारीके आधार पर इस ग्रन्थके लेखकने तत्कालीन जिला-मजिस्ट्रेट मि. मैक्इनर्नीकी मददसे नावका पता लगा कर उसके मालिकको वापस दिलवा दी थी। परन्तु अपराधी 'प्रमाणाभाव' में साफ छोड़ दिया गया, क्योंकि उसने तमाम गवाहोंको डरा-धमका दिया था। मुकदमेके दौरान सरकारी वकील और मजिस्ट्रेट अदालतके कमरेमें मुद्दईके गवाहोंको 'गद्दार' बता कर धमकाते और कलंकित करते सुने गये थे, क्योंकि वे गवाह अपने ही मुसलमान भाइयोंके खिलाफ 'काफिरों' को मदद दे रहे थे !

दूसरे महायुद्धके फलस्वरूप सेनासे हटाये हुए भूतपूर्व सैनिकोंकी एक बड़ी संख्या नोआखालीमें थी। उनकी संख्या सारे जिलेमें लगभग ५६,००० कूती गई थी। उन्होंने सैनिक व्यूह-रचनाका लाभ उपद्रवोंके समय दिया—सड़कें तोड़ देने, नहरोंमें बांध बना देने, टेलिग्राफके तार काठ देने और पुलिसको इधर-उधर बिखेर देने तथा गलत रास्ते लगा देने और प्रशासनको ठप कर देनेकी चालें चली गई थीं। बादमें कलकत्ता विश्वविद्यालयके डॉ. अमिय चक्रवर्तीने रिपोर्ट दी कि वे लोग "समानान्तर पुलिस, जासूसी और सूचनाके संगठनकी व्यवस्थाके काममें लगे हुए थे।" [डॉ. अमिय चक्रवर्तीका पत्र प्यारेलालको, नवम्बर १९४६]

तिपरा जिलेके चार-क्षेत्रको कुछ बातोंमें सबसे अधिक हानि पहुंची। भारतीय सिविल सर्विसवाले श्री आर. गुप्ताको बंगाल सरकारने विशेष अधिकारी नियुक्त करके पीड़ित प्रदेशकी सच्ची परिस्थितियोंकी जांच करवाई थी। उन्होंने रायपुर थानेके दौरेके बाद ४ नवम्बर, १९४६ को यह रिपोर्ट दी कि ८० से ९० प्रतिशत हिन्दू घरोंको आग लगाई गई थी और ९९ प्रतिशत घर लूट लिये गये थे। "धर्म-परिवर्तन लक्ष्मीपुर और बेगमगंजसे भी बड़े पैमाने पर हुआ था। थानेके मुख्य केन्द्रों पर भी अभी तक बहुतसे धर्म-परिवर्तन करानेवालोंको विवश होकर मुस्लिम लिबास पहनना पड़ता था।"

धर्म-परिवर्तनका एक उल्लेखनीय उदाहरण रायपुर कांग्रेस कमेटीके मंत्री हरेन घोषका था। रायपुर थानेमें आगजनी १३ अक्टूबरको शुरू हुई। दस गुंडे रायपुर आये और बोले कि यदि सारे हिन्दू इस्लामको स्वीकार कर लें, तो ६ नामोंकी सूचीवाले व्यक्तियोंके सिवा बाकीको बचा दिया जायगा। इन छह में से तीनकी बादमें हत्या कर दी गई। १४ अक्टूबरको ५०० गुंडोंकी एक भीड़ने छुरों, लाठियों,



बल्लमों, रामदावों, मिट्टीके तेल और पेट्रोलके साथ 'अल्लाहो अकबर' तथा 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए रायपुर पर हमला किया। वे लोग पहले तो सारी चल सम्पत्ति लूट ले गये, फिर हिन्दू मन्दिरों और मूर्तियोंको नष्ट कर दिया गया और अन्तमें घासलेट और पेट्रोलसे सारे गांवको आग लगा दी गई। हरेन घोष भाग कर दिनमें जंगलों, पोखरों और धानके खेतोंमें छिपे रहे और रातको दो मुस्लिम कार्यकर्ताओंके घर पहुंचे। उन्होंने कहा कि आनेवाले नाजुक समयमें आप केवल धर्म-परिवर्तन करके ही बच सकते हैं। हरेन घोषको सहमत होना पड़ा। तदनुसार उन कार्यकर्ताओंने एक 'परिपत्र नं. १' लिख डाला और उसके ऊपर उनके हस्ताक्षर करा लिये। १५ अक्टूबरको वे लोग हरेन घोषको रायपुरकी मस्जिदमें ले गये और वहां उन्हें बन्द रखा। यहां एक और 'परिपत्र नं. २' लिखा गया, घोषके हस्ताक्षरोंके साथ हजारोंकी संख्यामें छपवाया गया और पहले परिपत्रकी तरह वहांके हिन्दुओं और मुसलमानोंमें बांटा गया। यहां उन्हें १२ दिन तक बन्द रखा गया। "मेरा दैनिक भोजन चावल और गोमांस था, जो मुझे जबरन खिलाया जाता था। मुझे नमाज सिखाई गई और शुक्रवारको हजारों मुसलमानोंके सामने मुझे इस्लाम धर्म और इस्लामी संस्कृति पर व्याख्यान देने पड़ते थे। इस बर्बरतामें जो नेता भाग लेते थे और सुबह-शाम रोज सूचनाएं देनेके लिए मस्जिदमें इकट्ठे होते थे, उनमें एक विधान-सभाका सदस्य-थाना मुस्लिम लीगका मंत्री, यूनियन शान्ति-सेमितिके दो मंत्री, यूनियन बोर्डोंके दो अध्यक्ष और एक जमींदार था।" [हरेन घोषका लिखित वक्तव्य गांधीजीको, ७ नवम्बर १९४६]

हैमचरके क्षेत्रमें श्री आर. गुप्ताको मालूम हुआ कि "सैकड़ों नामशूद्रों (परिगणित जातियों) के परिवार—जिन्हें बलात् मुसलमान बना लिया गया था—पूरी तरह अन्य लोगोंसे अलग कर दिये गये थे और लगभग कैदियोंकी स्थितिमें थे।" हैमचर प्रदेशमें तिपरा जिलेके चांदपुर उप-विभागकी तीन यूनियनें थीं। हैमचर बाजार इस क्षेत्रका शक्ति-केन्द्र था। बिल्कुल उससे लगा हुआ उत्तरमें चरसोलादी ग्राम-समूह था और दक्षिण-पूर्वमें लगभग दो मील पर चारभंगा नामक ग्रामक्षेत्र था। हैमचरमें एक अच्छा फलता-फूलता बाजार था। वह कोई ५० वर्ष पहले स्थापित हुआ था। वहांका व्यवसाय लगभग सारा हिन्दुओंके हाथमें था। उस प्रदेशकी सामान्य सम्पन्नतामें मुसलमानोंका बहुत थोड़ा भाग था। मुसलमानोंके प्रति हिन्दुओंका रवैया सब मिला कर घमंडी और उद्धततापूर्ण था।



१४ अक्टूबरको जो हिन्दू रायपुर थानेके हैदरगंज बाजारमें गये थे, वे बेचैन बनानेवाले समाचार लेकर वहांसे लौटे। उनके पीछे पीछे ही लूट, आगजनी और हत्याकी भयानक कहानियां लेकर नोआखालीके शरणार्थी आये। सीमावर्ती गांवोंमें दिन भर आग जलती दिखाई देती थी और भयंकर अफवाहें घंटे घंटे पर आती रहती थीं। एक अफवाह यह थी कि ४० हजारसे १ लाख तक मुसलमान बन्दूकें, तलवारें और भाले लेकर हिन्दुओं पर हमला करने आ रहे हैं। १४ अक्टूबरकी रातको चारभंगाके हिन्दुओंने पड़ोसी गांव गंडामाराके मुसलमानोंके पास एक शिष्ट-मंडल भेजनेका निश्चय किया। उनसे कहा गया कि तुम्हें इस्लाम स्वीकार करना होगा और मुस्लिम लीगको एक बड़ी रकम देनी होगी। वे सहमत हो गये। १५ अक्टूबरको सुबह पचास पचास और दो दो सौकी टोलियोंमें मुसलमान लूटने और धर्म-परिवर्तन करनेके लिए आये। धर्म-परिवर्तन तो नामका ही हुआ, परन्तु लूट पूरी तरह हुई। इसके विपरीत, चारसोलादीके हिन्दुओंने मुकाबला किया, परन्तु उसे धोखेबाजीसे बेकार बना दिया गया। फिर सारे हैमचर बाजारमें तीन दिन तक आगजनी और लूटका बाजार गर्म रहा। [हीरेन्द्रनाथ नन्दी द्वारा गांधीजीको दी गई रिपोर्ट, २ फरवरी १९४७] भारतीय सिविक सर्विसवाले श्री सिम्प्सनने, जो नवम्बरके पहले सप्ताहमें इस क्षेत्रका दौरा करनेके लिए बंगाल सरकार द्वारा नियुक्त किये गये थे, अपनी रिपोर्टमें कहा : “पाइकपारा और हैमचर जैसे गांवोंमें मैंने जो कुछ देखा, उससे मैं भयभीत हो गया। उपद्रव-ग्रस्त सभी गांवोंमें किये गये विनाशका पूरी तरह वर्णन नहीं किया जा सकता। बड़े बड़े मकानोंका अस्तित्व मिट गया है। हैमचर बाजारकी स्थितिका कोई भी वर्णन तादृश चित्रण नहीं कर सकता। उसकी तो देखनेसे ही कल्पना आ सकती है। लगभग सभी दुकानें आगसे नष्ट हो गई हैं और वहांका मलबा भयंकर दृश्य उपस्थित करता है। जब ३० अक्टूबरको मैं बाजार देखने गया तब एक स्थान पर आग जल रही थी। ऐसा लगता था मानो हवाई जहाजसे फेंके गये अतिशय स्फोटक बमोंसे सारे बाजारका नाश किया गया हो।”

*

सर्वनाश, अन्धकार और निराशाकी इस सामान्य भूमिकाके विपरीत व्यक्तिगत साहस और शौर्य तथा निष्ठा और अटल श्रद्धाके उदाहरण भी थे। वे इस बातकी याद दिलाते थे कि सानव-हृदयकी दिव्य ज्योति राखसे ढक तो सकती है, परन्तु कभी बुझती नहीं और मारकाटके बीच भी अहिंसाका नियम



काम करता रहता है। ऐसे हिन्दुओंकी मिसालें मौजूद थीं, जिन्होंने धर्म-परिवर्तनसे मौतको ज्यादा अच्छा समझा। रायपुरके नवद्वीप पंडितका एक उदात्त दृष्टान्त था। उन्होंने थाना-अफसरके निमंत्रण पर रायपुर थानेमें अपने पास २० हजार नकद रख कर शरण ली थी। जब भीड़ थानेके पास पहुंची तो थाना-अफसरने उन्हें बाहर ढकेल दिया। भीड़ने उनका सारा नकद रुपया छीन लिया और उनके सामने धर्म-परिवर्तनकी मांग रखी। उन्होंने इनकार कर दिया और भगवानका नाम लेते लेते मरना पसन्द किया।

ऐसे भले मुसलमानोंके, जिन्होंने अपने पड़ोसी हिन्दुओंको बचानेके खातिर अपनी जानको खतरेमें डाल दिया था, कई उदात्त उदाहरण पतनके अन्धकारमें चमकते हुए तारोंकी तरह प्रकाशमें आये थे। हसनाबाद गांवमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंने प्रतिज्ञा की थी कि वे अपने यहांकी शान्तिको भंग नहीं होने देंगे। यह मालूम होने पर कि गुंडोंकी एक टोली एक खास जगह पर आक्रमणकी अपनी योजनाएं निश्चित करनेके लिए इकट्ठी होगी, मुसलमानोंने स्थानीय पुलिस थानेदारको उसकी सूचना कर दी, जिसने उनके मसिलनेकी जगह पर गुप्त चौकी रखी और सारे गुंडोंको गिरफ्तार कर लिया।

भटियालपुरमें, जहां बादमें मुझे रखा गया था, एक ईश्वर-भीरु मुसलमानने वहांके भले डॉक्टर चन्द्रशेखर भौमिकको न मारनेके लिए दंगाइयोंकी भीड़से बहुत अनुनय-विनय की। ये डॉक्टर गांधीजीके नोआखाली पहुंचनेके बाद मेरे साथी और बंगालीके दुभाषिया बन गये थे। भीड़में से किसीने उन पर छुरीका घातक वार किया। परन्तु इस भले मुसलमानने उसे अपने ही हाथ पर झेल लिया, जिससे उसके हाथमें गहरा घाव हो गया। नवम्बर १९४६ में जब मैं शान्तिका कार्य कर रहा था, मैं अनजाने ही खतरेकी जगह जा पहुंचा था—जहां मैं मौतसे बाल-बाल बचा था। परन्तु इस भले मुसलमानने एक और स्थानीय मुसलमानके साथ मेरे लिए रक्षा करनेवाले देवदूतका काम किया (देखिये खण्ड २, अध्याय ५, विभाग २)। बादमें हम कोई साल भर तक फिर नहीं मिले। एक दिन अंधेरी रातमें उसने सुनसान पगडण्डी पर मुझे पुकारा: “मुझे पहचानते हैं?” मैं उसे पहचान नहीं सका। वह हंसा: “मैं वही हूं जो आपके और आपको मारना चाहनेवालोंके बीच पड़ा था, जब आप हमारे बीच रहनेके लिए नये ही नये आये थे। मैंने ही दंगाइयोंसे डॉ. शेखरकी रक्षा की थी, जब उनमें से एकने उन पर छुरीका वार किया था। मैंने तूफानके शान्त होने तक उनका सामान अपने घरमें छिपा कर सुरक्षित रखा था !”



जब उस बाड़ी पर, जहां मैं बादमें भटियालपुरमें ठहरा था, हमला हुआ, तो हिटलरने बाड़ीसे ५ नरमुंडोंका हिस्सा मांगा। पर कुछ दंगाई इस हद तक नहीं जाना चाहते थे। मामला फिर हिटलरके पास भेजा गया। तब उसने समझौतेके तौर पर यह प्रस्ताव रखा कि जिनकी अन्तरात्मा मेरी मांगका विरोध करती हो, वे उन व्यक्तियोंकी 'नेकचलनी' की जमानत दें जिन्हें वे बचाना चाहते हैं। तदनुसार चार मुसलमानोंने तैयार होकर कहा कि यदि पसन्द किये हुए व्यक्ति कोई गलत व्यवहार करें तो हमारे प्राण ले लिये जायं। इस प्रकार उन्होंने अपने हिन्दू पड़ोसियोंके प्राण बचा लिये।

पड़ोसके करतखिल नामक गांवमें एक अकेला मुसलमान साहसपूर्वक अपनी बात पर डटा रहा और उसने दंगाइयोंमें शामिल होनेसे इनकार कर दिया। उसके इस अपराधके लिए गुंडोंने उसकी गायका वध करके दावत की। हिटलरका भाई, जो आसपासके क्षेत्रमें धर्मगुरुके नाते प्रसिद्ध था, उपद्रवोंमें होनेवाली घटनाओंका खुले तौर पर विरोध करता था। जब पड़ोसके एक गांवके हिन्दुओंने, जिन पर खतरेके बादल मंडरा रहे थे, उससे सलाह मांगी कि क्या उन्हें धर्म-परिवर्तन करके सुरक्षित हो जाना चाहिये, तो उसने उनसे कहा कि जब तक इस्लाम अपने गुणोंके आधार पर उन्हें अच्छा न लगे और इस्लामको स्वीकार करनेकी उन्हें भीतरसे प्रेरणा न हो तब तक उन्हें अपना धर्म नहीं बदलना चाहिये।

एक और गांवमें एक स्थानीय हिन्दू डॉक्टरके प्राण उसके मुसलमान पड़ोसियोंकी वफादारीसे बचे। उन्होंने कहा कि जो कोई हमारे डॉक्टरके घर पर हमला करेगा उसे हम मार डालेंगे। और उन्होंने उसके घरकी रक्षाके लिए पहरा लगा दिया। चंगीरगांवमें, जहां बादमें गांधीजीके दलकी एक और सदस्या डॉक्टर सुशीला नय्यर रखी गई थीं, लुटेरोंकी टोली एक हिन्दू कम्पाउन्डरके घर पर पहुंची। उसने घरमें लूटपाट करना और धार्मिक चित्रोंको तोड़ना शुरू कर दिया। एक चित्रसे कांचका टुकड़ा उड़ कर उस टोलीके नेताके पैरमें घुस गया। उसके पैरसे खूनकी धार बहने लगी। इस पर बूढ़ा कम्पाउन्डर अपने दुर्भाग्यको भूल गया। वह उस आदमीको अपने आधे नष्ट किये हुए दवाखानेमें ले गया और अधिकसे अधिक सावधानी और ध्यानके साथ उसके पैरकी मरहमपट्टी की। गुंडे बुराईके बदले भलाईके इस आशातीत चमत्कारको देख कर स्तब्ध हो गये। मुखियाने अपने आदमियोंको वहांसे हट जानेका हुक्म दिया और वह घर आगसे बच गया। उस स्थान पर वही एक घर आगकी बरबादीसे बचा था।



बेगमगंज पुलिस थानेके रजाकपुर गांवमें एक महत्त्वपूर्ण स्थानीय हिन्दू सज्जनको, जो हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें बहुत लोकप्रिय थे, मार डालनेकी योजना बनाई गई। इस पर विधान-सभाके एक स्थानीय मुस्लिम सदस्य और एक मुसलमान वकीलने उन्हें गुप्त चेतावनी भेज दी। एक मौलवीने उनके लिए अपनी नाव और एक खेवट भेज दिया, ताकि वे बच निकलें; और उसने खुद जाकर उन्हें चांदपुरकी गाड़ी पकड़नेमें मदद दी और अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उन्हें बिदा किया। कुछ महीने बाद वह मौलवी मर गया तब उस निर्वासित शरणार्थीने भी उसकी मृत्यु पर आंसू बहाये।

५

कलकत्तेके भीषण हत्याकांडके बाद ही होनेके कारण नोआखालीकी करुण घटनाके समाचार अखबारोंमें बड़े बड़े शीर्षकोंसे प्रकाशित हुए। उससे मुस्लिम लीगकी और खास तौर पर बंगालकी मुस्लिम लीगी सरकारकी प्रतिष्ठाको बहुत बड़ा धक्का पहुंचा। सरकार उन घटनाओंकी जिम्मेदारीसे बचनेके लिए तो बहुत उत्सुक थी, लेकिन कोई सख्त कार्रवाई करनेके लिए तैयार नहीं थी।

१६ अक्टूबरको चटगांव विभागके कमिश्नरसे सम्पर्क साधा गया। उसने स्थितिकी गम्भीरताके बारेमें गृह-विभागके अतिरिक्त-सचिवसे टेलिफोन पर बात की। १९ अक्टूबरको सारी घटनाका विवरण बंगालके गवर्नरको बताया गया और यह अपील की गई कि हिन्दू आबादीवाले जो क्षेत्र अन्य भागोंसे अलग पड़ गये हैं, उनमें तत्काल प्रवेश करके उनको मदद दी जाय। इस समय तक दंगाइयोंने सारे रामगंज और रायपुर थानोंमें और बेगमगंज तथा लक्ष्मीपुर थानोंके कुछ भागोंमें विनाशका अपना कृत्य पूरा कर लिया था और सारे प्रदेशमें गुंडाराज स्थापित कर दिया था। यह प्रदेश शेष संसारसे बिलकुल कट गया था। परन्तु मुख्यमंत्रीने गवर्नरको यह विश्वास दिला देनेकी कोशिश की कि सारी बात 'अतिशय अतिशयोक्तिपूर्ण' है।

अन्तमें जब सेनाको भीतरी प्रदेशोंमें प्रवेश करनेका हुक्म दिया गया, तो कुछ कटे हुए प्रदेशोंमें इसका बहुत ही करुण और अकल्पित परिणाम हुआ। यह मालूस होने पर कि सेनाकी दो अधिक बेटालियनें आकर पुनः व्यवस्था स्थापित करनेका काम शुरू करनेवाली हैं, गुंडे फिर अपने काममें लग गये। २२ अक्टूबरको 'दि स्टेट्समैन' के कार्यालय-प्रतिनिधिने समाचार भेजा कि एक थानेमें, जहां वह



गया था, दर्ज की गई जानकारीके अनुसार पहले दिन २२ आदमियोंका क्रूरतासे वध किया गया था। उनके शरीर आधे जला कर बेलोंसे छाई हुई नहरोंमें फेंक दिये गये थे, ताकि लाशोंका न तो पता लग सके और न उन्हें पहचाना जा सके। उसने लिखा था; “एक एक क्षणका मूल्य है और सेनाकी ओरसे तुरन्त कार्रवाई हो तो ही हजारों लोगोंके प्राण बच सकते हैं।” [दि स्टेट्समैन, २४ अक्टूबर १९४६]

बेगसगंज और रामगंज थानोंके एक सीमावर्ती गांव पंचगांवका चित्र देते हुए उसी संवाददाताने आगे लिखा : “पंचगांव किसी समय समपन्न ग्राम था। परन्तु अब वह एक सुनसान उजाड़ स्थल बन गया है। वहांके जले हुए घर गुंडोंकी विनाश-लीलाकी मूक साक्षी दे रहे हैं। . . . एक और थानेमें, जिसका कुल क्षेत्रफल १५९ वर्गमील है और जहांकी हिन्दू आबादी १२७,००० है, दूसरे गांवोंकी भी लगभग ऐसी ही दुर्दशा है। . . . थानेकी रिपोर्टके अनुसार पिछले कुछ दिनोंमें यहां ४९ मनुष्योंका संहार किया गया है।”

सेनाकी भी अपनी कठिनाइयां थीं। जनरल बुशने कलकत्तेमें एक पत्रकार-सम्मेलनमें बताया कि धर्मांध गुंडोंकी टोलियोंने, “जिन्होंने अपना संगठन एक विशेष योजनाके अनुसार किया था,” अपना काम आवागमनके साधनोंसे दूर दूरके स्थानोंमें आरम्भ किया था और जब पुलिस और सेना उनके समीप पहुंच जाती थी तब वे और भी अन्दरके भागमें चले जाते थे। यह पूछने पर कि उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंमें फौजी कानून क्यों नहीं घोषित कर दिया गया, उन्होंने उत्तर दिया कि जब तक सैनिकोंके प्राणोंकी रक्षाके लिए मैं जरूरी न समझूं तब तक फौजी कानून घोषित करनेकी सत्ता मेरे पास नहीं है। अन्य अवसरों पर यह काम पदारूढ़ सरकारसे सलाह करके करना होता है। मेरे विचारसे उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रों सैनिकोंका जीवन खतरेमें नहीं था। [दि स्टेट्समैन, २७ अक्टूबर १९४६]

जहां तक पदारूढ़ सरकारका सम्बन्ध था, उसे तो इसी बातकी चिन्ता थी कि घटनाओंकी गम्भीरताको कमसे कम बताया जाय और दुनियाके सामने यही कहा जाय कि कोई बहुत गम्भीर बात नहीं हुई है। मुल्की रसद-मंत्री अब्दुल गोफरान २० अक्टूबरको उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रमें गये। वे दोपहरसे पहले रामगंज पहुंच गये थे, परन्तु उन्हें शरणार्थी-शिविरमें जानेका समय नहीं मिला। इसके बजाय वे २ मील दूर एक गांवमें चले गये। वहां जाकर उन्होंने एक ऐसे मुसलमानके यहां नाश्ता किया, जो



उपद्रवियोंका एक सरदार बताया जाता था। वे बराबर यही बताते रहे कि उपद्रवकी जिम्मेदारी 'बाहरवालों' की थी और स्थानीय मुसलमान सदा उसका विरोध करते रहे थे।

२५ अक्टूबरको बंगाल प्रान्तीय मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिके कुछ सदस्योंने नोआखालीके उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंके दौरेमें अपने मन पर पड़ी छापका वर्णन करते हुए कहा: "घटनाओंको जितना गम्भीर बताया गया है उतनी गम्भीर वे थीं नहीं। स्त्रियों पर बलात्कारकी अथवा स्त्रियोंको भगानेकी कोई घटना नहीं हुई और **आगजनी तथा सम्पत्तिके विनाशका कोई बड़ा सबूत हमें नहीं मिला।**" [दि स्टेट्समैन, २६ अक्टूबर १९४६] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) उसी दिन बंगालके मुख्य-मंत्रीने अखबारोंको एक वक्तव्य दिया और उसमें कहा कि, "स्थिति निश्चित रूपसे काबूमें है और अधिकांश समाचार सत्यके बजाय भयको अधिक प्रगट करते हैं।" [वही]

जनरल बुशेरके कथनानुसार उस समय आसपासके उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंमें सेनाके १५०० सैनिक काम कर रहे थे। उनके अलावा, इन्स्पेक्टर-जनरल ऑफ पुलिस श्री टेलरके कथनानुसार प्रान्तके सभी जिलोंसे बुलाये हुए ४४० सशस्त्र पुलिसके सिपाही तथा बहुतसे अफसर थे। एक सरकारी वक्तव्यमें कहा गया था कि सेना जो शस्त्र काममें ले रही थी, "उनमें मशीनगनें, ब्रैनगनें, बन्दूकें और पिस्तौलें भी थीं। उसके पास गोले फेंकनेवाली छोटी तोपों और दूसरे शस्त्रास्त्रका भंडार भी था।" [दि स्टेट्समैन, २१ अक्टूबर १९४६]

परन्तु शक्तिकी इस सारी शास्त्र-सामग्रीसे जो संरक्षण मिल सकता था वह बंगाल सरकारके रवैये और नीतिके कारण लगभग हास्यास्पद-सा हो गया था। इससे पहले ब्रिगेडियर पी. एन. थापरने एक वक्तव्यमें कहा था कि छिछले पानीकी नावें—जो मंगाई गई हैं—पहुंच जायंगी त्यों ही "वे उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंके हर गांव और घरमें पहुंच जायंगे; . . . जो गुंडे अराजकताके लिए जिम्मेदार हैं उनकी तलाशमें सारे स्थान छान लिये जायंगे और उन लोगोंको हटानेके लिए कष्ट-निवारण संगठन बना दिये जायंगे, जो अपने घरोंको छोड़ कर उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंसे बाहर जाना चाहेंगे।" [दि स्टेट्समैन, २५ अक्टूबर १९४६] परन्तु बंगाल सरकारकी निश्चित की हुई नीतिके अनुसार जनरल बुशेरने ब्रिगेडियर थापरके वक्तव्यका खंडन करते हुए यह कहा कि, 'स्पष्टतः' ब्रिगेडियर थापरका वक्तव्य सही रूपमें अखबारोंको



नहीं भेजा गया। “समग्र नीति यह है कि लोगोंको अपने गावोंमें रहनेके लिए समझानेकी कोशिश की जाय, जब तक वे वहां रहें उन्हें सुरक्षा प्रदान की जाय और जो लोग चले गये हैं उन्हें अपने गांवोंमें वापस लानेकी कोशिश की जाय।” [दि स्टेट्समैन, २७ अक्टूबर १९४६]

इस प्रकार “सेना और सशस्त्र पुलिसकी रक्षा” की आड़में गुंडोंके नाग- पाशमें लोग फंसे रहे और एक तरहसे उसे नया जीवन प्राप्त हो गया । जब तक सेना पर आक्रमण न किया जाय तब तक अपनी तरफसे उसे कोई कार्रवाई करनेका अधिकार न था। और कुछ भिड़न्तोंके बाद गुंडोंने सैनिकोंसे दूर रहनेकी बुद्धिमानी सीख ली थी। वे सशस्त्र सैनिक पहरेदारोंकी मारके बाहर रहते थे। परन्तु उनसे दूर रह कर भीतरी भागोंमें वे अपना काम बहुत कुछ पहलेकी तरह करते रहे और अल्पसंख्यक जाति पर आत्माका हनन करनेवाले गैर-कानूनी आतंक, दमन और अत्याचारका ऐसा शासन जमाये रहे, जिसका इतिहासमें दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। दूसरोंके सामने वे यह दिखावा करते रहे कि वास्तवमें वे अपने हिन्दू पड़ोसियोंके सच्चे रक्षक हैं और विनाशका कार्य अनजान ‘बाहरवालों’ ने आकर किया है। और इस निर्दय झूठकी पीड़ितोंको गुंडोंसे भयभीत होकर ताईद करनी पड़ती थी और उन लोगोंके सामने उसे दोहराना पड़ता था, जो उनका उद्धार करने वहां आते थे। पीड़ितोंको यह भी कहना पड़ता था कि वे अपने अत्याचारियोंकी छत्रछायामें बहुत सुखी हैं और बलात् कहे जानेवाले धर्म-परिवर्तन और विवाह वास्तवमें स्वेच्छासे हुए हैं ! बादमें स्थानीय अधिकारी इन निवेदनोंको उन कष्ट-निवारक संस्थाओंके सामने रख देते थे, जो उद्धार-कार्य करनेके लिए वहां भेजी जाती थीं। इस बीच पीड़ितोंकी लूट तो चलती ही रही और ऐसे उदाहरण भी सामने आये जिनमें पीड़ितोंको ऐसी बातें स्वीकार करनेके लिए विवश किया जाता जिन्हें कहनेमें भी लज्जा आती।

जबरदस्ती शादी करा देनेका एक प्रसिद्ध उदाहरण पंचघरिया गांवकी आरती नामक लड़कीका था । उसका विवाह एक स्थानीय यूनियन बोर्डके अध्यक्षके भतीजेसे जबरदस्ती कर दिया गया। उसे धमकी दी गई कि यदि उसने विवाहकी बात स्वीकार नहीं की, तो उसके परिवारका और गांवकी समूची हिन्दू बस्तीका बहुत बुरा हाल कर दिया जायगा। वह सहमत हो गई और गुंडोंने गांवको छोड़ दिया। बादमें जिला मजिस्ट्रेट मि. मैक्इनर्नी कलकत्तेके एक प्रसिद्ध पत्रकार माखनलाल सेनके साथ आरतीके भावी ससुरालमें उससे मिले। पहले तो उसने कह दिया कि उसने स्वेच्छासे विवाह किया है । लेकिन



जिला मजिस्ट्रेट उसे अलग ले गये और यह विश्वास दिलाया कि वह जो बयान देगी उसके कारण उसके सम्बन्धियोंको कोई हानि नहीं पहुंचेगी और वे उनकी रक्षा करेंगे। इस पर उसने बलात् किये गये विवाहकी कहानीका समर्थन किया और उसकी प्रार्थना पर उसे उस घरसे हटा कर सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया गया।

उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रमें नितान्त अराजकता, अन्धकार और निराशा छाई हुई थी। जो लोग दंगोंके समय अपने घरोंसे दूर थे, उनके पास यह जाननेका कोई साधन नहीं था कि उनके प्रियजनोंकी क्या गति हुई, क्योंकि डाकखानोंका काम ठप हो गया था। लोगोंकी बहुत बड़ी संख्या, जिनमें स्त्रियां और लड़कियां भी थीं, अभी तक लापता थी। परिवार टूट कर छिन्न-भिन्न हो गये थे और उनके पास न तो एक दाना खानेको रह गया था और न भोजन बनानेका एक बरतन बचा था। शरण लेनेके लिए उनके पास कोई छप्पर नहीं था। अन्न और वस्त्रकी अतिशय कमी थी और विनाशके शिकार बने हुए क्षेत्रमें दवादारूकी सहायताका बिलकुल अभाव था।

अक्टूबर १९४६ के अन्तिम सप्ताहमें बंगाल सरकारने भारतीय सिविल सर्विसके दो उच्च अधिकारियों—श्री सिम्प्सन और श्री आर. गुप्ताको— उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंकी सच्ची परिस्थितिकी जांच करके रिपोर्ट देनेके लिए नियुक्त किया। उनकी रिपोर्टोंको बंगाल सरकारने तो खटाईमें डाल दिया, परन्तु उनसे बहुतसी बातें प्रकाशमें आती हैं। श्री आर. गुप्ताके दौरेकी डायरी उपद्रव शुरू होनेके तीन सप्ताह बाद, सशस्त्र पुलिस और सेनाकी आंखोंके सामने, गुंडोंने नोआखाली जिलेके सदर सब-डिविजनके भीतरी भागमें जो घातक पकड़ जमाई थी उसका तादृश चित्र प्रस्तुत करती है। उस डायरीके कुछ अंश इस प्रकार हैं:

१-११-१९४६, दयानन्तपुर : थानेके इतनी नजदीक रहनेवाले ये लोग ऐसी आतंककी स्थितिमें हैं कि उन्होंने जो जो कष्ट उठाये हैं, उनके बारेमें बात करनेको भी वे राजी नहीं होते। ... जब वे मुझसे एकांतमें मिल सके तभी उनमें से कुछ लोगोंको बात करनेके लिए मैं तैयार कर सका। थानेके २०० गजके भीतर जो घर जला दिये गये हैं, उनमें थानेके एक हिन्दू सिपाहीका भी मकान है, जो अपने परिवारके साथ वहां रहता था।



केरोआ : यहांकी भी वही कहानी है । करीब ९० प्रतिशत हिन्दू घर आगसे नष्ट कर दिये गये हैं और सब घर लूट लिये गये हैं। सामूहिक धर्म-परिवर्तन हुए हैं। स्थानीय हिन्दू जनता सामूहिक रूपसे यह गांव खाली करके जानेकी व्यवस्था करवाना चाहती है।

नन्दनपुर : अक्षरशः प्रत्येक हिन्दू घर नष्ट कर दिया गया है।

३-११-१९४६, चंडीपुर : लगभग ७० प्रतिशत हिन्दू घर आगजनीसे और ९५ प्रतिशत लूटपाटसे हानिग्रस्त हुए हैं।

शाहपुर बाजार : एकमात्र मानव-प्राणी जो हमें मिल सका, डाकिया था। . . . और कोई मनुष्य दिखाई नहीं दिया। तमाम दुकानें बन्द थीं।

दसघरियामें श्री आर. गुप्ताको ऐसा दृष्टान्त देखनेको मिला, जिसे बादमें दंगाइयोंने एक साधारण कार्य-पद्धतिके रूपमें अपना लिया था—अर्थात् मस्जिदोंको आग लगा दी जाती थी और उसका दोष हिन्दुओं पर थोप दिया जाता था, जिससे उन्हें तंग करके पुलिसके पाससे अपनी पहली शिकायतें वापस लेनेके लिए मजबूर किया जा सके। जब श्री आर. गुप्ताका दल दसघरिया बाजारसे गुजरा तब पुलिसके एक सिपाहीने देखा कि मस्जिदका पिछला हिस्सा जल रहा है। “आगकी स्थितिसे पता चलता था कि वह कुछ ही मिनिट पहले लगाई गई थी। मैंने सिपाहीको तुरन्त आग बुझानेका हुक्म दिया। हममें से कुछ लोग मस्जिदके पीछेकी तरफ पानीके किनारे तक दौड़े भी, ताकि जिन्होंने आग लगाई हो उनका पता लगा सकें। हमने फौरन देखा कि लुंगी पहने हुए दो आदमी बाहर निकल कर जिला-बोर्डकी सड़ककी दिशामें भागे जा रहे थे। वे खालके पानीसे बाहर निकलकर पूर्वकी ओर दौड़ रहे थे। उनमें से एक तो गायब हो गया। दूसरा बहुत दूर खड़ा पुकारने लूगा : ‘पुलिस शालाको मारो’ इत्यादि । मस्जिदकी आग बिलकुल बुझ जानेसे पहले ही कुछ स्थानीय हिन्दू दौड़ते हुए हमारे पास आये और कहने लगे: “एक बड़ी भीड़ नारे लगाती हुई गांवके दक्षिणकी ओर जमा हो गई है और आगे बढ़ रही है। . . . वह भीड़ अपने हथियार—दाव, लाठी, टेटा वगैरा दिखाती हुई आ रही है।” पुलिसने कई बार गोलियां चलाई, जिस पर भीड़ वापस जंगलमें भाग गई। “इस बीच ग्रामवासी . . . सामूहिक रूपमें अपनी स्त्रियों और बच्चोंके साथ जितना सामान वे ले जा सकते थे उतना लेकर अपने घर छोड़ने लगे । उन्होंने कहा कि



रातमें वहां रहना उनके लिए सुरक्षित नहीं है और वे हमारे साथ ही रामगंज जायेंगे।” कुल मिला कर लगभग १२५ व्यक्ति हमारे दलके साथ रवाना हुए। उनमें से ७५ प्रतिशत स्त्रियां और बच्चे थे। सब पैदल चल रहे थे।

रास्तेमें दंगाइयोंकी भीड़ने उन पर बार बार हमले किये और पुलिसको दो बार गोली चलानेकी आज्ञा देनी पड़ी। कई बार गोलियां चलानेके बाद भीड़ बिखरी। परन्तु जो लोग हमारे साथ जानेको तैयार हुए थे, उनमें से थोड़ोंको ही पहरेमें ले जाया जा सका; बाकीको वापस भेजना पड़ा। अपने गांवमें लौटने पर उन्हें लूटा गया, उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया और उन्मत्त भीड़के शासनमें जो जो भयंकर त्रास हो सकते हैं उन सबका शिकार उन्हें बनना पड़ा।

श्री सिम्प्सनकी ५ नवम्बर, १९४६ की रिपोर्ट अधिक विस्तृत है। उसमें तिपरा जिलेकी स्थितिकी चर्चा की गई है। उन्होंने देखा कि गांववाले “स्त्रियोंको भगा ले जाने अथवा उन पर किये गये बलात्कारके बारेमें कुछ कहनेको तैयार नहीं थे”, परन्तु “बलात् धर्म-परिवर्तनकी जानकारी वे तुरन्त देते थे।” बहुतसे लोगोंने उन्हें वे टोपियां दिखाई, जो “धर्म-परिवर्तन करनेवालों” को इस्लाम स्वीकार करनेकी निशानीके तौर पर पहननी पड़ती थीं। श्री सिम्प्सनने इस दलीलको नहीं माना कि धर्म-परिवर्तन ‘स्वेच्छासे’ हुए थे। “मैंने निश्चित रूपसे पता लगाया कि कुछ मामलोंमें जिन हिन्दुओंकी स्त्रियोंको अस्थायी रूपसे बन्धनमें रखा गया था उन्होंने स्वेच्छासे इस्लाम स्वीकार किया, ताकि स्त्रियोंको गुंडोंसे छुड़ाया जा सके। परन्तु जांचके परिणामसे मालूम हुआ कि लोगोंको मौत और दूसरी हानिकी धमकियां देकर मुसलमान बननेके लिए विवश किया गया था।” उन हिन्दुओंके लिए, “जिनकी स्त्रियोंको अस्थायी रूपसे बन्धनमें रखा गया था” मृत्युसे अधिक ‘दूसरी हानि’ क्या हो सकती थी, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

लूटपाटके बारेमें उन्हें कोई शंका नहीं थी कि “लूटपाट बहुत व्यापक पैमाने पर हुई” और जहां कहीं मकान आगसे नष्ट नहीं किये गये वहां भी “सम्पूर्ण रूपमें और कुशलतापूर्वक लूट मचाई गई।”

श्री सिम्प्सनने गांवोंमें जाकर यह पता लगानेकी कोशिश की कि आक्रमणकारी गांवके जाने हुए लोग थे अथवा और कहींसे आये हुए अज्ञात तूफानी या गुंडे थे। “मुझे लगभग हर जगह यह कहा गया कि सम्बन्धित व्यक्ति या तो उन्हीं गांवोंके रहनेवाले मुसलमान थे या पड़ोसके गांवोंके। जब मैंने उनके



नाम पूछे तो तुरन्त मुझे उनके नाम दिये गये। मुझे बताया गया कि ये व्यक्ति मामूली ग्रामीण थे, जो उपद्रवसे पहले शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे और उनके हिन्दू भाई उनका आदर करते थे।” (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

फरीदगंज और चांदपुरके उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंसे लोगोंका नैतिक साहस ‘बहुत कम’ हो गया था। फरीदगंज, चांदपुर और कुमिल्लामें शरणार्थियोंकी बड़ी संख्या थी। २ नवम्बरको फरीदगंजमें लगभग ६ हजार शरणार्थी थे, “जिन्हें नावोंसे भर दिया गया था और किनारे पर बनी झोंपड़ियोंमें शरण दी गई थी। बहुतोंको सख्त पेचिश और दूसरी बीमारियां हो रही थीं।”

गुंडोंको टोलीके सरदारोंने कह दिया था कि वे जो कुछ करेंगे उस पर सरकार कोई कार्रवाई नहीं करेगी, क्योंकि सरकार उनकी पीठ पर है। इसलिए उन्हें बड़ा आघात लगा जब बादमें पुलिस और सेना वहां आ पहुंची और उन्होंने कड़ी कार्रवाई करनेका संकेत दिया। उनसे पिंड छुड़ानेके लिए उनके खिलाफ ‘अत्याचारों’ का नारा संगठित किया गया और मुस्लिम स्त्रियोंकी लाज लूटनेकी बात भी पैदा कर ली गई। पुलिसके आदमियोंके विरुद्ध झूठे मुकदमे दायर कर दिये गये। यह सशस्त्र पुलिस और सेनाको वहांसे हटवानेके सामान्य आन्दोलनका एक भाग था। मुस्लिम लीगकी पदारूढ़ सरकारकी मनःस्थिति और नीतिको अपनी अपनी समझके अनुसार प्रतिबिम्बित करनेवाले मजिस्ट्रेटोंने इस बातको नहीं छिपाया कि उनकी सहानुभूति किधर है। श्री सिम्प्सनने अपनी रिपोर्टमें कहा कि, “मुझे मालूम हुआ है कि बहुत थोड़ी जमानतों पर अभियुक्तोंके छोड़ दिये जाने पर पुलिस अधिकारियोंको गम्भीर चिन्ता हो रही है। . . . पुलिसकी जांच करनेवाले अधिक कर्मचारी होने चाहिये और झूठे मुकदमे दायर करनेकी बातसे पुलिसके अधिकारियोंको बचानेका कोई उपाय ढुंढ़ना चाहिये। मुझे पुलिस सुपरिस्टेन्डेन्टने सूचना दी कि पुलिसके आदमियोंके खिलाफ २०१ मामले दायर किये गये हैं और जिला मजिस्ट्रेटने मुझे हाजीगंजमें कहा कि उस थानेके गांवोंमें सेनाके आदमियोंके दुराचरणकी १०० से अधिक रिपोर्ट उन्हें बताई गई हैं। . . . पुलिस अधिकारियोंकी यह राय है कि पुलिस और सेना दोनोंके आदमियोंके विरुद्ध झूठे मामले पेश किये जा रहे हैं और इसका तथा अभियुक्तोंको जमातों पर छोड़नेका ऐसा निराशाजनक परिणाम होगा कि पुलिस दलके छोटे अधिकारियोंका नैतिक साहस और कार्यनिष्ठा मन्द पड़ जायेंगे।”



विनष्ट प्रदेशोंका एक सामान्य चित्र देते हुए श्री सिम्प्सनने लिखा:

पीड़ित गांवोंमें अव्यवस्था फैली हुई है। मकान सब नष्ट कर दिये गये हैं। चल सम्पत्तिके कोई चिह्न दिखाई नहीं देते। चारों ओर निराशा और भय छाया हुआ है। जो थोड़ेसे लोग रह गये हैं, वे भी जानेको आतुर हैं। विनाश इतना सम्पूर्ण है कि लोहेकी चद्दरोंके सिवा—जिनका लूटना इस समय भी जारी है—मकानोंके मलबेमें कुछ भी शेष नहीं रह गया है। ईंटके बने हुए मकानोंके भीतरी हिस्से जल गये हैं और दरवाजे और खिड़कियोंकी चौखटें आगमें नष्ट हो गई हैं। छोटे छोटे निजी मंदिर बड़ी संख्यामें जला दिये गये हैं, मूर्तियां नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई हैं और कमसे कम एक बड़ा और पुराना ईंटोंका बना हुआ मन्दिर लूट लिया गया है और भ्रष्ट कर दिया गया है। कुछ गांवोंमें—जहां मैं गया—थोड़ेसे बचे हुए हिन्दू निवासी डाब (नारियल), केले—जहां कहीं मिल जायं, और जिसे 'काचू' कहते हैं उस पर गुजर कर रहे हैं। फरीदगंज जैसे शरणार्थी केन्द्रोंका दृश्य आसानीसे भुलाया नहीं जा सकता। लोग नावोंमें भर दिये गये हैं। उनमें पुरुष, स्त्रियां और बच्चे सभी हैं। किनारों पर बने हुए झोंपड़े खचाखच भरे हुए हैं। बीमारी और निराशा फैली हुई है। उन लोगोंके विचारोंमें और काममें भविष्यके लिए कोई विश्वास, सुरक्षा और आशाका चिह्न दिखाई नहीं देता।

अन्तमें श्री सिम्प्सनने लिखा है कि इस परिस्थितिमें मेरी रायमें उपद्रव-ग्रस्त गांवोंमें तुरन्त वापस लौटनेकी कोई बात नहीं हो सकती, जब तक कि मेरी बताई कुछ महत्वपूर्ण बातें अथवा 'उसी तरहके' अन्य उपाय न किये जायं। दुर्भाग्यसे श्री सिम्प्सनकी अधिकांश सिफारिशें खटाईमें डाल दी गईं और वे बंगाल सरकारके सचिवालयकी अलमारियोंसे कभी बाहर नहीं निकलीं। [मि. सिम्प्सनने ये कदम उठानेका सुझाव दिया था: (क) विश्वास स्थापित करनेके लिए जिले भरमें सैनिक चौकियां कायम की जायं; (ख) कड़ी सूचनायें दी जायं कि कानूनमें अन्य कोई व्यवस्था न हो तो दंगोंके सम्बन्धमें गिरफ्तार किये गये व्यक्ति जमानत पर न छोड़े जायं, क्योंकि गांवोंमें और शरणार्थी-छावनियोंमें इस बातका बड़ा भय है कि अभियुक्त जमानत पर छूट कर "गांवोंमें वापस जायंगे और शिकायत करनेवालों और जानकारी देनेवालोंकी हत्या कर देंगे;" (ग) प्रत्येक थानेमें जांच-कर्मचारियोंकी संख्या तुरन्त बढ़ाई जाय, उसके लिए दूसरे जिलोंसे सावधानीके साथ कर्मचारी चुने जायं और विश्वस्त व्यक्ति ही लिये जायं,



क्योंकि गांवोंमें यह शिकायत है कि मामलोंकी तुरन्त जांच न होने और तुरन्त गिरफ्तारियां न होनेसे अपराधियोंको प्रोत्साहन मिलता है और दुबारा होनेवाले उत्पात पहलेके उत्पातोंसे अवश्य ही ज्यादा बूरे होते हैं; (घ) न्यायतंत्रको यथासंभव जल्दीसे जल्दी अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। मुकदमोंका जल्दी निर्णय करनेके लिए विशेष कार्यविधिकी व्यवस्था की जानी चाहिये; (ङ) यूनियन बोर्डोंके उन्हीं अध्यक्षोंको वितरण-कार्य सौंपा जाय, जिन्होंने उपद्रवोंके समय अपने आचरणसे यह सिद्ध कर दिया है कि जाति या कौमका लिहाज किये बिना वे सबकी मदद करनेको तैयार हैं, और यह भी होना चाहिये कि यूनियनोंके जिन अध्यक्षोंने “दंगोंके समय लोगोंकी कुछ भी सहायता नहीं की उन्हें हटा दिया जाय।” अन्तमें यह भी सुझाया गया कि मुल्की अधिकारियोंको व्यापक दौरे करने चाहिये। “गांवोंमें और शरणार्थी-छावनियोंमें लोगोंको मालूम नहीं होता कि जिलेमें कहां क्या हो रहा है और आक्रमण बन्द हुए हैं या नहीं। अफवाहें दूर दूर तक फैली हुई हैं। . . . लोग समझदार और सहानुभूतिवाले अधिकारियोंसे परामर्श और आश्वासन चाहते हैं।”]

*

गांधीजीके मित्र बेचैन हो उठे। एक ओर नितान्त निराशा और साहस-हीनताके नरकका और दूसरी ओर जान-बूझकर चलाये जानेवाले झूठ और घोखेबाजीका गांधीजी पर क्या असर होगा ? शायद इसके उत्तरमें वे आमरण अनशन आरंभ कर दें। कुमारी म्यूरिल लेस्टरने नोआखालीसे गांधीजीको एक पत्रमें लिखा: “केवल नोआखालीकी घटनाओंने ही उन्हें (नोआखालीके उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंके लोगोंको) वह आघात नहीं लगाया है, जिसे वे बरदाश्त कर रहे हैं; किन्तु इस प्रतीतिने भी उन्हें वह आघात पहुंचाया है कि यहां उनके लिए कोई सलामती नहीं है, कोई संरक्षण नहीं है, ऐसा कोई नैतिक नियम नहीं है जो उनसे अधिक शक्तिशाली हो। हम अहिंसक लोग जानते हैं कि पुलिस और सेना हमें नहीं बचा सकती। उन्हें इसका पता अभी लगा है। यह हिम्मत तोड़ देनेवाली प्रतीति है और एक महान अवसर भी है। उन्हें शान्त, सबल आत्म-विश्वासकी जरूरत है। . . .”

कुमारी लेस्टरने अपने पत्रमें “शांत हिटलरी पद्धतिसे आम लोगोंको सुसज्ज करनेका” उल्लेख किया। इन्हीं लोगोंने यह आन्दोलन संगठित किया था और वे **“अभी भी जेलसे उसका संगठन करते**



मालूम होते हैं ।” (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) वे लोग तो गांधीजीकी मृत्युसे प्रसन्न ही होंगे। कुमारी लेस्टरने गांधीजीसे प्रार्थना की कि वे उपवास आरंभ न करें—न केवल अपने मित्रोंके खातिर, परन्तु उन गुंडोंके खातिर भी, जिन्हें अपने बीच गांधीजीकी उद्धारक उपस्थितिकी कहीं अधिक आवश्यकता है। “(मुस्लिम) लड़कों और बालकोंके समुदायोंको भी . . . आजकी उनकी जीवन-दृष्टिसे उबारनेके लिए एक जीवन्त अनुभवकी आवश्यकता है। उन्होंने नोआखालीके इन दंगोंमें बहुत बड़ा भाग लिया है।”



बारहवां अध्याय

प्रसव-वेदना

१

भंगीबस्तीके अपने सादे, सफेदी किये हुए और फर्नीचरसे रहित छोटेसे कमरेमें एक पतली-सी सफेद गद्दी पर गांधीजी पलथी लगाये बैठे थे। वे कलकत्तेके भीषण हत्याकांड और उसके बादकी घटनाओंको ध्यानमें रखकर पंडित नेहरूके साथ अपने भावी कार्यक्रमकी चर्चा कर रहे थे। उनका विचार सेवाग्राम आश्रमको लौट जानेका था। मुस्लिम लीगके अन्तरिम सरकारमें आ जानेसे फिलहाल दिल्लीमें उनका काम समाप्त हुआ दीखता था। पंडित नेहरू पर कलकत्तेकी करुण घटनाका और उसने लोगोंकी मनोवृत्ति पर जो असर डाला था उसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। उनकी संवेदनशील और सुसंस्कृत आत्मा सम्प्रदायवादकी कल्पनासे ही कांप उठती थी। प्राण-हानिसे भी अधिक उन्हें जिस बातकी पीड़ा हुई वह उस घटनासे होनेवाला मानव-आत्माका अधःपतन था। उन्होंने दुःखपूर्वक कहा, “जो लोग कभी सम्प्रदायवादकी दृष्टिसे सोचते तक नहीं थे, वे भी आज सम्प्रदायवादी बन रहे हैं। सर्वत्र पागलपन फैल गया है।”

दो दिन बाद नोआखालीके समाचार आये। जो बातें दिल्ली पहुंची थीं उन्हें बैठकर सुनते सुनते ही गांधीजीने मनमें संकल्प कर लिया। “अगर मैं दिल्ली छोड़ूंगा तो सेवाग्राम लौटनेके लिए नहीं, परन्तु बंगाल जानेके लिए ही। नहीं तो यहां रहकर ही कुढ़ता रहूंगा।” [हरिजन, २७ अक्टूबर १९४६, पृ. ३७२] इस प्रकार सेवाग्राम लौटनेका कार्यक्रम स्थगित हो गया।

बंगालके दो मित्र सतीशचन्द्र दासगुप्त और सतीन सेन उस दिन शामको पूर्व बंगालके उपद्रवोंके संबंधमें गांधीजीसे मिले। सतीशबाबू महान वैज्ञानिक सर प्रफुल्लचन्द्र रायके प्रसिद्ध शिष्य थे। उन्होंने बंगाल केमिकल एण्ड फार्मास्यूटिकल वर्क्स (कलकत्ता) के व्यवस्थापककी ऊंची नौकरी छोड़ दी थी और अपनी निष्ठावान पत्नी हेमप्रभा देवीके साथ सन् १९२० के आसपास असहयोग-आन्दोलनके आरम्भमें त्याग और सेवाका जीवन स्वीकार कर लिया था। सतीन सेन बंगालके एक महारथी नेता थे। गांधीजीने उन्हें बताया कि उनके मनमें क्या चल रहा है। बंगाली मित्रोंने उनसे प्रार्थना की: “पहले हमें



नोआखाली जाने दीजिये । हमें यथाशक्ति प्रयत्न करनेका अवसर दीजिये; उसके बाद जरूरत हो तो आप वहां जा सकते हैं।”

अन्तरिम सरकारके एक सदस्य शरत् चन्द्र बोस कुछ समय बाद इस मंडलीमें शामिल हो गये। मंडलीके एक सदस्यने गांधीजीसे पूछा कि क्या आप बंगालमें साम्प्रदायिक पागलपनका जो तांडव चल रहा है, उसे रोकनेके लिए उपवासकी पद्धतिकी सिफारिश करेंगे ? गांधीजीने उत्तर दिया, “नहीं।” अहमदाबादसे एक आदरणीय साथीने उन्हें सुझाया कि वे आमरण उपवास करके शहीद हो जायं: “हममें अहिंसक मार्गका विश्वास तो है, परन्तु उस पर चलनेका बल नहीं है। आपके उदाहरणसे हमारी डगमगाती श्रद्धा स्थिर हो जायगी और हमें बलवान बना देगी।”

“तर्क सम्पूर्ण था और प्रलोभन बहुत बड़ा था। परन्तु मैंने उसका विरोध किया और कहा “नहीं।” भीतरसे ऐसा कोई आदेश मुझे नहीं मिल रहा है। . . . उपवास यांत्रिक रूपमें नहीं किया जा सकता। यह शक्तिशाली वस्तु है, लेकिन इसे अकुशल ढंगसे किया जाय तो यह खतरनाक भी है। इसके लिए पूरी आत्मशुद्धि चाहिये। बदलेकी भावनासे मृत्युका सामना करनेमें जितनी चाहिये उससे कहीं अधिक आत्मशुद्धिकी जरूरत उपवासमें है। . . . सम्पूर्ण त्यागका ऐसा एक कार्य भी सारी दुनियाके लिए पर्याप्त होगा। ईसाका उदाहरण ऐसा ही माना जाता है। . . . एक व्यक्तिने, जो पूरी तरह निर्दोष था, दूसरोंकी भलाईके लिए अपना बलिदान कर दिया। इन दूसरोंमें उसके शत्रु भी सम्मिलित थे और वह संसारका उद्धारक बन गया। यह एक सम्पूर्ण कार्य था। ईसाके अन्तिम शब्द ये थे : ‘कार्य संपूर्ण हुआ।’ और उसके प्रमाण-भूत होनेका प्रमाण हमें ईसाके चार शिष्योंसे मिलता है। परन्तु परम्परागत ईसा इतिहासकी दृष्टिसे सच्चा है या नहीं, इसकी मुझे परवाह नहीं है। **मेरे लिए वह वस्तु इतिहाससे भी अधिक सच्ची है, क्योंकि मैं उसे संभव मानता हूं और उसमें एक शाश्वत धर्म निहित है।** वह धर्म सच्चे अर्थमें दूसरोंके लिए निर्दोष कष्ट-सहनका धर्म है।” [वही, पृ. ३७२-७३]

हालके साम्प्रदायिक उपद्रवोंमें एक हिन्दू और एक मुसलमानने बंबईमें पागल बनी हुई भीड़के कोपका बहादुरीसे सामना किया था और दोनों बाहुपाशमें बंध कर मर गये, परन्तु एक-दूसरेका साथ उन्होंने नहीं छोड़ा। अहमदाबादमें “रजबअली और वसन्तराव हेंगिष्टे . . . भीड़के क्रोधको शान्त करनेके



प्रयत्नमें मारे गये। लोग पूछ सकते हैं, 'इससे क्या हुआ ? आग तो अभी तक धधक रही है।' मैं क्षणभरके लिए भी नहीं सोच सकता कि यह सब व्यर्थ गया। आज भले हमें उसका असर दिखाई न देता हो। हमारी अहिंसा अभी तक पूर्ण शुद्ध वस्तु नहीं है। वह लंगड़ी है। फिर भी वह है और मौन व अदृश्य रूपमें खमीरकी तरह काम कर रही है, जिसे अधिकांश लोग नहीं समझते। परन्तु यही एक मार्ग है।"

अन्तमें गांधीजीने कहा: "इसलिए जाओ। मेरा आशीर्वाद है। और मैं यह भी कह दूँ कि कल ही मुझे आप तीनोंके मरनेके समाचार मिले, तो मैं आंसू न बहाकर प्रसन्न ही होऊंगा।"

वे बोले, "इस तरह मारा जाना हमारे लिए शुद्ध आनन्दकी बात होगी।"

"परन्तु मेरे शब्दोंका ध्यान रखना। इसमें किसी प्रकारकी मूर्खता नहीं होनी चाहिये। आपको इसलिए जाना चाहिये कि वहां जाना आप अपना धर्म समझते हैं, इसलिए नहीं कि मैं कहता हूँ।"

"यह कहनेकी जरूरत नहीं है," साम्प्रदायिक आगका सामना करने जानेवाले तीनों मित्रोंने गांधीजीसे बिदा लेते हुए एकसाथ उत्तर दिया।

परन्तु उनमें से कोई भी गांधीजीसे पहले नोआखाली नहीं जा सका। शरत् बोसने स्थितिकी गंभीरताको समझनेके लिए उपद्रव-ग्रस्त प्रदेशका तेजीसे दौरा किया। सतीशचंद्र दासगुप्तने कलकत्ते लौटकर अहिंसाकी प्रतिज्ञावाले कार्यकर्ताओंका दल संगठित करके उसे उपद्रव-ग्रस्त प्रदेशमें पहलेसे भेजनेका काम शुरू कर दिया। उनमें से दो—विश्वरंजन सेन और भूपालचन्द्र कामर—दो अन्य स्थानीय कार्यकर्ताओंके साथ ३ अक्टूबरको उपद्रवके केन्द्र शाहपुर बाजार पहुंचे। उन्हें चेतावनी दी गई कि यदि वे पुलिसके संरक्षणके बिना गये तो जरूर मारे जायेंगे। रास्तेमें दो स्थानीय कार्यकर्ताओंमें से एक डरके मारे रुक गया। शाहपुरके नजदीक इस दलको मुसलमानोंकी एक टोलीने रोक कर उनसे अशिष्टतापूर्ण प्रश्न किये और उनके सामानकी तलाशी ली। टोलीमें से कुछ लोगोंने सुझाया कि उन्हें जबरदस्ती रोक लिया जाय। शाहपुर बाजारमें एक मुस्लिम भीड़ने उन्हें घेर लिया। उसकी संख्या बढ़ते बढ़ते ४ या ५ सौ तक पहुंच गई। यहां भी एक घंटेसे अधिक उनके थैलोंकी तलाशी ली गई। इस बीच उस प्रदेशका थाना-अधिकारी आ पहुंचा। विश्वरंजनने उसे सुझाया कि अपने साथ हम कुछ स्थानीय मुस्लिम नेताओंको भी ले चलें और दंगोंके शिकार बने कुछ हिन्दुओंसे मिलें, जिन्हें जबरदस्ती मुसलमान



बना लिया गया है और जो भयभीत होकर जी रहे हैं। अफसरने कहा, मेरे पास समय नहीं है। “भीड़में से किसीने एक छुरी निकाल कर थाना-अधिकारीके सामने पेश की। उसने कहा कि यह उसे तलाशीके दौरान मेरे साथीके थैलेमें मिली है। मैंने आपत्ति की कि यह सफ़ेद झूठ है। अधिकारीने मुस्करा कर टोलीके सरदारोंको बताया कि हमारे छोटेसे थैलेमें से इतनी बड़ी छुरी नहीं निकल सकती ! चुपकेसे उसने मुझसे कहा कि खुद उसे भी इस टोलीका डर है !” [दंगोंसे पीड़ित क्षेत्रोंमें विश्वरंजन सेनके दौरेकी रिपोर्ट, २ नवम्बर १९४६]

ये दोनों कार्यकर्ता नोआखालीमें ही रहे। जब गांधीजीके नोआखाली पहुंचनेके बाद वहां उनकी छावनी कायम हुई, तब वे उसके सदस्य बनकर उसमें जुड़ गये। उनमें से एक भूपालने मेरे बंगला दुभाषियेका काम किया, जब बादमें गांधीजीने मुझे उनकी “करो या मरो” की योजनाके अनुसार एक गांवमें नियुक्त कर दिया। दूसरे साथी विश्वरंजन १० वर्षके बाद भी आज नोआखालीमें रहते हैं और अपने गुरुकी भावनाके अनुसार अपने सुन्दर कार्यमें लगे हुए हैं।

*

१५ अक्टूबरकी शासको गांधीजीने सरदारसे कहा, “मैं यह जाननेका प्रयत्न कर रहा हूं कि आज मेरा धर्म क्या है।” उस दिनके प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने कहा: आपका स्नेह और आदर खो देनेका खतरा उठाकर भी मैं आपसे कह देना चाहता हूं कि आपकी अहिंसा एक कायरकी युक्ति मानी जायगी, यदि वह सबल अंग्रेजोंके विरुद्ध ही प्रयोग करनेकी वस्तु हो और आपके अपने भाइयोंके खिलाफ आप खुलकर हिंसाका उपयोग करें। हिन्दुओंके साथ नोआखालीमें मुसलमानोंने जो कुछ किया, उसका बदला लेनेका कोई विचार मनमें नहीं रखना चाहिये। मैं मुस्लिम लीगसे अपील करता हूं कि वह आत्म-निरीक्षण करे। जिन्नाने घोषणा की थी कि पाकिस्तानमें अल्पसंख्यकोंकी पूरी तरह रक्षा की जायगी और हर नागरिकको न्याय मिलेगा। यदि जो कुछ पूर्व बंगालमें हो रहा है वह भविष्यका सूचक हो, तो वह पाकिस्तानके लिए अशुभका द्योतक है।

१८ अक्टूबरकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने बहुतसे तारोंका जिक्र किया, जो उन्हें मिले थे और जिनमें बंगालकी भयंकर आगको शान्त करनेके लिए वहां जानेकी उनसे विनती की गयी थी। उन्होंने



कहा: मैं वहां जानेको उत्सुक हूं। मैं ज्यों ही दिल्लीके कामोंसे मुक्त हुंगा, त्यों ही पूर्व बंगालके उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रको देखने जाना चाहता हूं। लेकिन मैंने पूरी तरह अपने आपको ईश्वरके हाथोंमें रख दिया है।

एसोसियेटेड प्रेस ऑफ अमेरिकाके प्रेस्टन ग्रोवरने एक भेंटमें गांधीजीसे पूछा: “क्या मुसलमान आपकी बात सुनेंगे ?”

गांधीजीने उत्तर दिया : मुझे पता नहीं। “मैं कोई आशा लेकर नहीं जाता हूं। परन्तु मुझे आशा रखनेका अधिकार है। जो आदमी अपना कर्तव्य करनेके लिए जाता है, वह केवल यही आशा रख सकता है कि ईश्वर उसे कर्तव्य-पालनकी शक्ति देगा।” [हरिजन, ३ नवम्बर १९४६, पृ. ३८२]

“आपके खयालसे इस प्रकारके उपद्रव भारतमें कब खतम होंगे ?”

“आप विश्वास रखिये कि वे खतम होंगे। यदि ब्रिटिश प्रभाव यहांसे हटा लिया जाय, तो वे बहुत जल्दी खतम हो जायेंगे। जब तक ब्रिटिश प्रभाव यहां रहेगा तब तक मुझे दुःखके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि दोनों पक्ष सहायताके लिए ब्रिटिश सत्ताकी तरफ देखते रहेंगे।”

दीवालीका महान हिन्दू त्योहार उस समय आया जब सारा राष्ट्र शोकमग्न था। यह रामके अपनी राजधानी अयोध्यापुरी लौटनेकी याद दिलानेवाला उत्सव है। उस दिन राम अपने पिताके वचन-पालनके खातिर १४ वर्षका वनवास पूरा करके अयोध्या लौटे थे। उस समय बंगालके हजारों घरोंमें और अन्यत्र भी लूटमार, आगजनी, प्रियजनोंकी मृत्यु और उससे भी बुरी आपत्तियोंके कारण अंधकार छाया हुआ था। धर्मके नाम पर ऐसे ऐसे भयंकर कृत्य किये गये थे, जिनसे शर्मके मारे मनुष्यका सिर झुक जाय और मानव-स्वभावमें विश्वास लगभग डिग जाय। देशमें भुखमरी और नग्नताका बोलबाला था। इस पर हिन्दू और मुसलमान आपसमें लड़ रहे थे। २१ अक्टूबरको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजी बोले, अवसरकी मांग है कि जो लोग शुद्ध हों वे अधिक शुद्ध बनें; जिन्होंने अपराध किये हैं वे अपने पापोंको धोकर शुद्ध बनें। “हमें यह स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि यह समय उत्सव मनाने या आनंद भोगनेका नहीं है।”



इसके बाद २५ अक्टूबरको—हिन्दू पंचांगके अनुसार नये दिनके अवसर पर—उन्होंने एक सन्देश भेजा : “भारत आज अत्यन्त कठिन समयमें से गुजर रहा है। असलमें तो सारा संसार ही संकटमें से गुजरा रहा है। इस संकटका सामना करनेके लिए हमें कैसी सहायताकी आवश्यकता है ? . . . आध्यात्मिक जीवन बितानेके लिए पहली आवश्यकता निर्भयताकी है । आज हम सब प्रकारका भय छोड़नेका निश्चय कर लें । निर्भयताके बिना अन्य सब गुण धूलमें मिल जाते हैं। भय छोड़े बिना सत्य या अहिंसाका पालन असंभव है।” किन्तु निर्भयताका अर्थ घमंड या आक्रमणकी वृत्ति नहीं होता। “वह स्वयं ही भयका चिह्न है।” निर्भयताके लिए मानसिक शान्ति, स्थिरता और सन्तुलन चाहिये। “इसके लिए ईश्वरमें सजीव श्रद्धा होनी चाहिये।”

२

गांधीजीको आगजनी, हत्या और लूटकी अपेक्षा अधिक गहरा आघात तो बलात्कारकी शिकार बनी हुई स्त्रियोंकी करुण पुकारसे लगा था। अपनी एक प्रार्थना-सभामें उन्होंने कहा: “मृत्युका महत्त्व नहीं है। महत्त्व इस बातका है कि मृत्युका आप किस तरह आलिंगन करते हैं। यदि आप बहादुरीसे मरें, तो अपने भाईके हाथों मरना सौभाग्यकी बात है। परन्तु उन स्त्रियोंके लिए क्या कहा जाय, जो भगा कर ले जाई जाती हैं और बलात् धर्मभ्रष्ट की जाती हैं? भारतीय नारियोंको इतनी लाचारी क्यों महसूस करनी चाहिये? क्या वीरताका ठेका पुरुषोंने ही लिया है?” [प्रार्थना-प्रवचन, १७ अक्टूबर १९४६]

स्त्रियोंके सतीत्व पर आक्रमण हो तो उनको अहिंसाकी दृष्टिसे कैसे बचाया जाय, इस प्रश्न पर गांधीजी बहुत समयसे ध्यान दे रहे थे। वे इस निर्णय पर पहुंचे थे कि अंतमें देखा जाय तो स्त्रियोंकी शारीरिक निर्बलता नहीं परन्तु गुंडोंका सामना करनेके संकल्पका अभाव उन पर होनेवाले अत्याचारोंको प्रोत्साहन देता है अथवा उन्हें ऐसे अत्याचारोंका शिकार बनाता है। जब कोई व्यक्ति हिंसा करना चाहता है, तो शारीरिक दुर्बलता अधिक शरीर-बलवाले विरोधीके खिलाफ हिंसाके सफल उपयोगमें बाधक नहीं होती। “सच बात यह है कि हमें मृत्युका डर सबसे अधिक होता है और इसलिए हम अस्तमें श्रेष्ठ पशुबलके सामने झुक जाते हैं। . . . कुछ लोग रिश्वतका आश्रय लेते हैं, कुछ पेटके बल रेंगनेको तैयार हो जाते हैं या अन्य प्रकारके अपमान सहन कर लेते हैं और कुछ स्त्रियां मरनेकी अपेक्षा अपने शरीर



तकको अर्पण कर देती हैं। चाहे हम पेटके बल रेंगें या कोई स्त्री किसी पुरुषकी वासनाके सामने झुक जाय, यह जीवनके उसी मोहकी—जिजीविषाकी—निशानी है जो हमसे कुछ भी करा लेता है। इसलिए जो अपने जीवनकी आहुति देनेको तैयार हो, वही उसकी रक्षा कर सकता है। . . . जीवनका आनन्द लेनेके लिए मनुष्यको जीवनका लोभ छोड़ना चाहिये।” [हरिजन, १ मार्च १९४२, पृ. ६०]

परन्तु गांधीजीको यह भय था कि, “आधुनिक लड़की अनेक प्रेमियोंकी प्रेमिका बनना चाहती है। वह साहससे प्रेम करती है। . . . वह सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए कपड़े पहनती है। वह पाउडर वगैरा लगाकर और असाधारण दिखाई देकर अपने कुदरती रूपको अधिक आकर्षक बना लेती है। अहिंसक मार्ग ऐसी लड़कियोंके लिए नहीं होता। . . . हममें अहिंसक भावनाका विकास हो, इसके कुछ निश्चित नियम हैं। . . . उससे विचार करने और जीवन जीनेकी पद्धतिमें क्रान्ति होती है।” [हरिजन, ३१ दिसम्बर १९३८, पृ. ४०८]

जीवन जीने और विचार करनेकी यह पद्धति क्या है, इसका संकेत गांधीजीने एक लेखमें दिया था। उसमें उन्होंने “बीसवीं शताब्दीकी सती” का आदर्श इस प्रकार बताया था: “वह प्रत्येक श्वासके साथ . . . अपने त्याग, वैराग्य और आत्मोत्सर्गके द्वारा तथा अपने पति, परिवार और देशकी सेवाके लिए किये गये समर्पणके द्वारा अपना सतीत्व सिद्ध करेगी। वह **परिवारकी संकीर्ण चिन्ताओं और उसके स्वार्थोंकी दासी बननेसे इनकार करेगी**। परन्तु अपना ज्ञान-भंडार बढ़ाने और सेवाके सामर्थ्यमें वृद्धि करनेके प्रत्येक अवसरका वह उपयोग करेगी। इसके लिए वह अधिकाधिक . . . आत्म-संयमकी साधना करेगी और **अपने पतिके साथ सम्पूर्ण तादात्म्य साधकर सारे जगतके साथ तादात्म्य साधना सीखेगी।**” [यंग इंडिया, २१ मई १९३१, पृ. ११५] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

ऐसी सती सदा “अपने पतिके आदर्शों और गरणोंको (उसकी मृत्युके बाद) अपने कार्यों द्वारा सजीव रखने और उसके लिए अमरत्वका मूकट प्राप्त करनेकी” कोशिश करेगी। साधारण पत्नी—जो सतीके आदर्शको प्राप्त करनेकी चेष्टा करती है—माता भी होगी, इसलिए “उसे अपने अनेक . . . गुणोंमें बच्चोंके लालन-पालनका ज्ञान और जोड़ लेना चाहिये, जिससे वे बड़े होकर मानव-जातिके सच्चे सेवक



बनें। . . . सतीत्व पवित्रताकी चरम सीमा है। यह पवित्रता . . . केवल सतत प्रयत्न और नित्य प्रति किये जानेवाले आत्मोत्सर्गके द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।”

कोई गुंडा किसी सती पर कुदृष्टि डालनेका साहस ही नहीं कर सकता । “पुरुष कितना ही पशु क्यों न बन जाय, वह उस स्त्रीकी चकित करनेवाली शुद्धताके सामने लज्जाके मारे झुक जायगा।” [हरिजन, १ मार्च १९४२, पृ. ६०] गांधीजीने कहा कि स्त्रियोंकी दुविधाका उत्तर पश्चिमके रंग-ढंगकी नकल करनेमें नहीं है, परन्तु भारतकी संस्कृतिमें जो कुछ उत्तम बातें हैं उनकी रक्षा करनेमें और जो कुछ हीन और पतनकारी तत्त्व हैं उन्हें निःसंकोच छोड़ देनेमें है। “यह कार्य सीता, द्रौपदी, सावित्री और दमयन्तीका है, न कि तड़क-भड़क पसन्द करनेवाली आकर्षक स्त्रियोंका ।” [यंग इंडिया, १७ अक्टूबर १९२९, पृ. ३४०]

रामायण कहती है कि सीताकी शुद्धता इतनी प्रचंड थी कि उसे भगाकर ले जानेवाला महाबली रावण भी उसका सतीत्व भंग करनेका साहस नहीं कर सका, यद्यपि सीता पूरी तरह उसके अधिकारमें थी। इसी प्रकार महाभारतमें बताया गया है कि दुष्ट राजा दुर्योधनने द्रौपदीको अपमानित करनेका प्रयत्न किया। उसने अपने सारे दरबारियोंके सामने उसे नग्न करनेका आदेश दिया। वह अकेली और निस्सहाय थी। ऐसी स्थितिमें वह कृष्ण भगवानसे प्रार्थना करती है:

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजन-प्रिय ।

कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥

रब हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।

कौरवार्णवमग्नां मां उद्धरस्व जनार्दन ॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।

प्रप्रां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥

[हे द्वारिकावासी गोविन्द, हे गोपियोंके प्रिय कृष्ण, दुष्ट कौरवोंसे घिरी हुई मुझे तू क्यों नहीं बचाता?



हे नाथ, हे रमानाथ, हे व्रजनाथ, दुःखोंका नाश करनेवाले जनार्दन, मैं कौरवरूपी समुद्रमें डूब रही हूं। तू मेरी रक्षा कर।

हे कृष्ण, कृष्ण, महायोगी: विश्वात्मा, विश्वको उत्पन्न करनेवाले महायोगी कृष्ण, हे गोविन्द, कौरवोंके बीच हताश होकर मैं तेरी शरणमें आई हूं। तू मेरी रक्षा कर।]

कथा यह है कि द्रौपदीकी प्रार्थना हृदयकी श्रद्धा और आत्म-समर्पणकी भावनासे निकली थी, इसलिए कृष्ण भगवानने सुदूर द्वारिकाममें उसे सुन लिया और वे द्रौपदीकी रक्षाके लिए दौड़ कर आये। भगवानने उसका चीर अनन्त कर दिया और जिस दुष्ट राजाने उसे नग्न करना चाहा उसे हार कर अपना यह दुष्ट प्रयत्न छोड़ देना पड़ा। और पश्चिमके इतिहासमें क्या देवी गोदीवाकी ऐसी ही लोककथा नहीं है?

भारतके प्राचीन नारीत्वका यही आदर्श था। गांधीजीने उसीको अपने आश्रमकी स्त्रियोंके सामने और उनके द्वारा भारतकी स्त्रियोंके सामने उसे उपस्थित करनेका प्रयत्न किया था। उन्होंने आश्रममें सामान्य प्रार्थनाके अलावा स्त्रियोंकी अलग प्रार्थना आरंभ की और महाभारतके उन श्लोकोंको—जिनमें द्रौपदीकी संकटकालीन प्रार्थना शामिल थी—उस प्रार्थनाका अविभाज्य अंग बना दिया। बादमें गांधीजीने इन स्त्रियोंको केवल आश्रमके मूलभूत आध्यात्मिक व्रतोंसे सुसज्ज बनाकर भारतकी स्वतंत्रताकी अहिंसक लड़ाईमें अपना उचित भाग लेनेके लिए भेज दिया। दक्षिण अफ्रीकाकी तरह यहां भी परिणाम आशातीत हुआ। स्त्रियोंने स्वाधीनता-संग्राममें पुरुषोंसे अधिक नहीं तो उनके बराबरका भाग तो लिया ही; इसके सिवा उन्होंने अपने लिए किसी विशेष प्रयत्नके बिना पुरुषोंके बराबर राजनीतिक अधिकार और दर्जा भी प्राप्त कर लिया ।

परन्तु कुछ समयसे एक और आदर्श भारतके इस प्राचीन आदर्शके साथ स्पर्धा करने लगा। वह आदर्श था झांसीकी रानी लक्ष्मीबाईका, जिन्हें कभी कभी भारतकी जोन ऑफ आर्क भी कहा जाता है। इस वीरांगनाने तलवारके शौर्यमें अपने समस्त समकालीनोंको मात कर दिया था। भारतके अन्य लोगोंकी तरह भारतीय स्त्रियोंके सामने भी स्वाधीनताके ठीक पहले दो विभिन्न मार्ग प्रस्तुत हुए। उनके लिए एक



ओर लक्ष्मीबाईके ओर दूसरी ओर सीता और द्रौपदीके आदर्शोंमें से अन्तिम चुनाव करनेका समय आ पहुंचा था।

गांधीजी ऐसा मानते थे कि भारतकी स्त्रियोंके सामने जो दुविधा है वह एक बड़े प्रश्नका भाग है। युग युगसे पुरुष स्त्री पर प्रभुत्व भोगता आया है। कानूनसे कानूनी असमानताएं तो दूर हों सकती हैं, परन्तु वह बुराईकी जड़को नहीं छू सकता। और बुराईकी जड़ तो इस बातमें है कि “पुरुष सत्ता और ख्यातिका लोभी है, और उससे भी गहरी जड़ दोनोंकी वासनामें है।” [वही] कानून स्त्रीके विरुद्ध है, तो भी स्त्री अपने पतिकी सत्ता और विशेषाधिकारोंमें बराबरकी हिस्सेदार रही है। परिग्रहकी वृत्ति उसके लिए स्वाभाविक बन गयी है। इसके कारण उसका दृष्टिकोण और व्यक्तित्व कुंठित हो गया है और उसकी संकीर्ण पारिवारिक चिन्ताओं और स्वार्थोंने उसे लगभग कैदी जैसा बना दिया है। इसका क्या कारण है कि अक्सर स्त्रीका समय “आवश्यक पारिवारिक कर्तव्योंके पालनमें न लग कर अपने पति और स्वामीके अहंकारपूर्ण भोग-विलासमें और अपने मिथ्याभिमानकी तुष्टिमें खर्च होता है?” [गांधीजी, 'विमेन एण्ड सोशियल इन्जस्टिस', अहमदाबाद, १९४७, पृ. १८७] गांधीजीकी दृष्टिसे स्त्रीकी यह पारिवारिक दासता “मुख्यतः बर्बरताका प्रतीक . . . अथवा उसका अवशेष है।”

अनादि कालसे स्त्रीने “नाना प्रकारसे अपनी अज्ञात और सूक्ष्म रीतियों द्वारा पुरुषसे उसकी सत्ता अपने हाथमें लेनेका प्रयत्न किया है” और पुरुष “अपने पर स्त्रीका आधिपत्य स्थापित न होने देनेके लिए व्यर्थ और अनजाने ही संघर्ष करता रहा है।” [यंग इंडिया, १७ अक्टूबर १९२९, पृ. ३४०] परिणाम यह हुआ कि दोनोंकी प्रगति रुक गई। शरीर-बलमें स्त्री पुरुषकी बराबरी नहीं कर सकती। परन्तु अहिंसाके पालनमें वह आसानीसे पुरुषसे आगे बढ़ सकती है। परन्तु “पुरुषकी स्वार्थपूर्ण शिक्षाके भुलावेमें आकर” वह अपने प्रति पुरुषका अधिकाधिक ध्यान खींचनेके लोभमें फंस गई। परन्तु इसका अर्थ आवश्यक रूपमें यह नहीं है कि पुरुष उसका अधिक आदर करता है। यह तो स्त्रीके भीतरकी हीनता-ग्रंथिकी निशानी है, जो उसमें अपनी दासताके कारण पैदा हो गई है। “क्या मैं आपसे पूछूं कि स्त्री पुरुषसे अधिक श्रृंगार क्यों करती है? . . . यदि आप संसारके कार्योंमें हाथ बंटाना चाहती हैं, तो पुरुषको प्रसन्न करनेके लिए श्रृंगार करनेसे आपको इनकार कर देना चाहिये। यदि मैं स्त्री होता तो मैं



पुरुषके इस दावेके खिलाफ विद्रोह करता कि स्त्रीका जन्म पुरुषका खिलौना बननेके लिए हुआ है।” [यंग इंडिया, ८ दिसम्बर १९२७, पृ. ४०६]

यदि केवल स्त्री अपने भ्रमजालको तोड़ कर अहिंसाकी शक्तिको पहचान ले, तो वह अपनी न्यूनताको लाभमें बदल सकती है : “ क्या स्त्रीमें अधिक अन्तः- स्फूर्ति नहीं है? क्या वह अधिक आत्मत्याग नहीं करती ? क्या उसमें पुरुषसे अधिक सहन-शक्ति नहीं है ? क्या उसमें साहस नहीं है ? उसके बिना जगतमें पुरुषका अस्तित्व संभव ही नहीं होता ? यदि अहिंसा हमारे जीवनका धर्म है, तो भविष्य स्त्रीके हाथमें है।” [यंग इंडिया, १० अप्रैल १९३०, पृ. १२१] फिर “प्रसव-पीड़ासे अधिक कष्ट दूसरा क्या हो सकता है? परन्तु सृजनके आनन्दमें वह इस कष्टको भूल जाती है। और बालकके जन्मके बाद भी दिन-रात उसका पोषण हो, उसकी रक्षा हो, और वह बड़ा हो, इसके लिए प्रतिदिन उसकी धात्री बनकर अपार कष्ट दूसरा कौन भोगता है?” [हरिजन, २४ फरवरी १९४०, पृ. १३-१४]

बरसों पहले जब गांधीजी अपने एपेंडिसाइटिसके ऑपरेशनके बाद पूनाके सासून अस्पतालमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे तब उन्हें उनकी भली अंग्रेज नर्सने एक स्त्रीका किस्सा सुनाया था। उस स्त्रीने क्लोरोफार्म (बेहोशीकी दवा) सूंघनेसे इनकार कर दिया था, क्योंकि वह अपने पेटके बच्चेकी जानको खतरेमें नहीं डालना चाहती थी। बादमें गांधीजीने लिखा था कि “उस वीरांगनाका स्मरण करके मुझे कितनी ही बार स्त्रीके दर्जेसे ईर्ष्या हुई है—लेकिन उसे अपने इस दर्जेका भान नहीं है।” [वही, पृ. १४]

स्त्रियोंके उद्धार-कार्यमें गांधीजीका अपना योगदान यह रहा है कि उन्होंने जीवनके हर क्षेत्रमें सत्य और अहिंसाको स्वीकार करनेकी हिमायत की। इस क्षेत्रमें स्त्री निर्विवाद रूपसे नेतृत्व कर सकती है। उसे केवल अपने प्रेमका विस्तार सारी मानव-जातिके लिए कर लेना होगा और यह भूल जाना होगा कि वह कभी पुरुषकी काम-वासनाकी तृप्तिका साधन थी अथवा बन सकती है। और उसे “पुरुषके साथ साथ उसकी माता, निर्माता और मौन नेताके रूपमें अपना गौरवपूर्ण पद प्राप्त हो जायगा।” [वही] कुदरतने यह काम उसीको सौंपा है कि वह “युद्धग्रस्त संसारको—जो शान्तिके अमृतके लिए तरस रहा है— शान्तिकी कला सिखाये।” [वही]



अपना ऊंचा जीवन-धर्म भूल कर और पुरुषकी नकल करनेका प्रयत्न करके स्त्रीने वास्तवमें अपनेको और पुरुषको भी नीचे गिरा दिया है। “बेशक कुछ बातोंमें स्त्री और पुरुषके कार्यक्षेत्र भिन्न हो जाते हैं। . . . दोनोंकी रचनामें आकाश-पातालका अन्तर है, इसलिए दोनोंके कार्य भी भिन्न रहेंगे। अधिकांश स्त्रियां सदा मातृत्वका धर्म पालन करेंगी। उसके लिए जो गुण जरूरी हैं, उनका पुरुषमें होना जरूरी नहीं है। पुरुष प्रवृत्ति-परायण है, स्त्री निवृत्ति-परायण है। . . . पुरुष रोटी कमाता है, स्त्री रोटीको संभालने और बांटनेवाली है। . . . उसकी देखभालके बिना मानव-जातिका अस्तित्व संसारसे मिट जायगा।” [वही, पृ. १३] गांधीजी कहते थे: “यह बात पुरुषों और स्त्रियों दोनोंके लिए पतनकारी है कि स्त्रियोंको घरबार छोड़कर घर और परिवारकी रक्षाके लिए बाहर निकलने और बन्दूक धारण करनेके लिए कहा जाय या ललचाया जाय।” [वही] यह तो “फिरसे बर्बरताकी दिशामें लौटने और विनाशकी ओर जानेकी बात हुई।” यह बार बार देखा जाता है कि “शरीर-बलके अभिमानसे उन्मत्त होकर” सैनिक लोग स्त्रियोंके साथ छेड़छाड़ करनेमें भी लज्जित नहीं होते। प्रशासन चलानेवाले अधिकारी ऐसी घटनाओंको रोककनेमें असमर्थ मालूम होते हैं। “सेना उनकी प्राथमिक आवश्यकता पूरी कर देती है और अधिकारी उसके दुष्कृत्यों पर आंखें मूंद लेते हैं।” [हरिजन, १ मार्च १९४२, पृ. ६०] गांधीजी दृढ़ताके साथ कहते थे कि सैनिक व्यवस्थाका स्त्रियों तक विस्तार करनेसे नारीका घोर पतन हो जायगा। “जहां सारा राष्ट्र सैनिक पद्धतिसे संगठित किया जाता है वहां सैनिक जीवनकी प्रणाली उसकी सभ्यताका अविभाज्य अंग बन जाती है।” [वही]

इसके अलावा, सभी स्त्रियां झांसीकी रानीकी तरह वीरांगनाएं नहीं बन सकतीं। परन्तु सब स्त्रियां सीताके उदाहरणका अनुकरण कर सकती हैं। महाबली रावण भी सीतासे अपनी इच्छा पूरी नहीं करा सका। झांसीकी रानीको हराया जा सकता था, सीताको नहीं। इस विचारसे कि कोई सीताके दृष्टान्तको पौराणिक कह कर अस्वीकार न कर दे, गांधीजीने कुमारी ओलिव डोकका दृष्टान्त दिया। वह दक्षिण अफ्रीकाके पादरी डोककी वीर पुत्री थी। उसे गांधीजी स्वयं जानते थे। वह अफ्रीकाके भीतरी प्रदेशमें नंगे आदिवासी हबशी कबीलोंमें जाकर रही थी। उसे हबशियोंकी छेड़छाड़का कोई डर नहीं था। गांधीजी चाहते थे कि भारतीय स्त्रियोंमें ऐसा ही ऊंचे दर्जेका शौर्य पैदा हो। [प्रार्थना-प्रवचन, १७ अक्टूबर १९४६]



भारतकी स्त्री पर बचपनसे यही संस्कार डाला जाता है कि, “वह या तो अपने पतिके साथ सुरक्षित है या चिता पर।” [प्रार्थना-प्रवचन, १८ अक्टूबर १९४६] गांधीजीकी समूची आत्मा इस विचारके खिलाफ विद्रोह करती थी। उन्होंने लुई फिशरसे कहा कि “कोई भी स्त्री अपनी लाज बचानेवाले पुरुष या स्त्रीके लिए गौरव अनुभव करती है। मैं स्त्री होता तो ऐसा नहीं करता। मैं कहता: ‘यदि मैं अपनी लाज नहीं बचा सकती, तो तुम मेरी लाज बचानेवाले कौन हो? मेरे लिए उसकी रक्षा करनेवाले तुम कौन होते हो?’ सीताने ऐसा ही किया था। उन्होंने हनुमानको भी अपनी लाज नहीं बचाने दी। उनकी शुद्धता स्वयं एक बड़ी शक्ति थी, उनका मुख्य शस्त्र थी।” [लुई फिशरकी गांधीजीसे भेंट, १८ जुलाई १९४६]

परन्तु अहिंसामें सजीव श्रद्धा न होनेसे कोई व्यक्ति अपनी लाज बचानेके लिए मृत्युपर्यंत प्रतिकार करनेके धर्मसे बच नहीं सकता। “जब किसी स्त्री पर आक्रमण हो तब वह हिंसा-अहिंसाका विचार करनेके लिए ठहर नहीं सकती। उसका प्रथम धर्म आत्मरक्षाका है। अपनी लाज बचानेके लिए जो भी उपाय सूझे वही काममें लेनेकी उसे स्वतंत्रता है। उसे भगवानने नख और दांत दिये हैं। उसे अपनी पूरी शक्तिके साथ इनका उपयोग करना चाहिये और जरूरत हो तो इस प्रयत्नमें मर जाना चाहिये। जिस पुरुष या स्त्रीने मृत्युका सारा डर छोड़ दिया है, वह अपने प्राण देकर न केवल अपनी ही रक्षा कर सकेगी, बल्कि दूसरोंकी भी कर लेगी।” [हरिजन, १ मार्च १९४२, पृ. ६०]

यही बात उस पुरुषकी है, जो ऐसे अपराधोंका साक्षी होता है: “उसे पुलिसकी सहायता लेने नहीं दौड़ना चाहिये और न रेलगाड़ीमें खतरेकी जंजीर खींच कर ही सन्तोष मान लेना चाहिये। यदि वह अहिंसाका पालन कर सके, तो उसका पालन करते हुए मर जायगा और इस प्रकार खतरेमें पड़ी हुई स्त्रीको बचा लेगा। यदि अहिंसामें उसका विश्वास नहीं है या वह उसका पालन नहीं कर सकता, तो उसमें जो भी शक्ति हो उसका पूरा उपयोग करके उसे स्त्रीको बचानेका प्रयत्न करना चाहिये।” [वही, पृ. ६१]

दोनों ही सूरतोंमें अपने प्राण देनेकी तैयारी अवश्य होनी चाहिये। “यदि बूढ़ा, दुर्बल और दन्तहीन होनेके कारण—जैसा कि मैं हूँ—मैं अहिंसाकी हिमायत करूँ और किसी बहनकी लाज पर होनेवाले हमलेको लाचार होकर देखता रहूँ, तो मेरे महात्मापनकी खिल्ली उड़ाई जायगी, उसका अपमान होगा और उसका अन्त हो जायगा।” इसके विपरीत, “यदि मैं अथवा मेरे जैसे लोग बीचमें पड़कर हिंसासे या



अहिंसासे किसी भी तरह अपने प्राण दे देंगे, तो हम बलात्कारका शिकार बनी हुई स्त्रीको अवश्य बचा लेंगे और कमसे कम उसके अपमानके जीवित साक्षी तो नहीं रहेंगे।” [वही]

गांधीजीने कहा: भारतकी स्त्रियां अपनी आबरूको बचानेवाले किसी व्यक्तिके अभावमें लाचारी महसूस करें, इसके बजाय मैं चाहूंगा कि वे हथियारोंका उपयोग करना सीखें। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मैं यह चाहता हूं कि स्त्रियां हथियारोंक उपयोगकी तालीम लें अथवा उन्हें ऐसी तालीम दी जाय। “मेरी दृष्टिसे हिंसाके लिए कोई तैयारी नहीं हो सकती। यदि हम उच्चतम साहसका विकास करना चाहते हैं, तो सारी तैयारी अहिंसाके लिए होनी चाहिये। . . . जो स्त्रियां गुंडोंके आक्रमण करने पर हथियारोंके बिना उनका सामना नहीं कर सकतीं, उन्हें साथमें हथियार रखनेकी सलाह देना जरूरी नहीं है। वे ऐसा ही करेंगी। सतत यह प्रश्न करनेमें कि हथियार रखे जायें या नहीं, कोई न कोई दोष है। लोगोंको स्वाभाविक रूपमें स्वाधीन बनना सीखना पड़ेगा। यदि वे इस केन्द्रीय शिक्षाको याद रखें कि सच्चा और सफल प्रतिकार अहिंसासे ही हो सकता है, तो वे अपना आचरण वैसा ही बना लेंगे। संसार अनजानमें ऐसा ही करता आया है। चूंकि उसमें सर्वोच्च साहस अर्थात् अहिंसासे उत्पन्न होनेवाला साहस नहीं है, इसलिए वह अणुबमकी सीमा तक अपने आपको शस्त्र-सज्जित करता है। जिनको इसमें हिंसाकी व्यर्थता दिखाई नहीं देती, वे स्वभावतः यथाशक्ति हथियार रखेंगे।” [हरिजन, ९ फरवरी १९४७, पृ. १३] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

यदि कोई गुंडा किसी स्त्रीको या उसके रक्षकको विवश कर दे और फिर अपना दुष्कृत्य करे तो? गांधीजीका उत्तर यह था कि जिस लड़कीमें प्रतिकारका दृढ़ संकल्प हो, वह अपनेको अशक्त बनानेवाले सारे बन्धनोंको तोड़ सकती है। जो स्त्री मरनेकी कला जानती है, उसे कभी अपनी लाज जानेका डर रखनेकी जरूरत नहीं।

“आत्म-समर्पण करनेके बजाय क्या किसी स्त्रीको आत्महत्या करनेकी सलाह दी जा सकती है?”

“अवश्य ही आत्म-समर्पण करनेके बजाय कोई स्त्री आत्महत्या करे।” [वही]



“यदि अपनी हत्या और आक्रमणकारीकी हत्याके बीच चुनाव करना पड़े, तो आपकी क्या सलाह होगी?”

“जब अपनी हत्या अथवा आक्रमणकारीकी हत्याके बीच चुनाव करनेका प्रश्न हो, तो मेरे मनमें कोई शंका नहीं कि अपनी हत्याका चुनाव करना चाहिये।”

नोआखालीके संदर्भमें गांधीजी यह जो आग्रह करते थे कि स्त्रियोंको हथियारोंके बजाय—चाहे वे अपने ही हों अथवा पुलिस और सेनाके हों—अपने आत्मबल पर ही निर्भर रहना सिखाया जाय, उसका एक दूसरा प्रबल कारण था। सेना और पुलिस स्त्रियोंको भगा ले जानेसे शायद बचा सकती हैं। परन्तु उन स्त्रियोंका क्या हो, जो पहले ही भगा ली गई हैं अथवा जो पुलिस और सेनाके मौजूद होते हुए भी भगा ली जाय ? उन्हें अपना बाल भी बांका हो इससे पहले मरना सीखना चाहिये। वस्तुतः गांधीजी तो यहां तक कहते थे कि यदि किसी स्त्रीका सतीत्व खतरेमें हो, तो सतीत्व-भंग होने देनेके बजाय उसे जहर खा लेना चाहिये। परन्तु उन्होंने उसी प्रवचनमें कहा था कि योगका अभ्यास करनेवालोंसे उन्होंने सुना है कि योगकी किसी क्रियासे अपने जीवनका तत्काल अन्त किया जा सकता है।” [प्रार्थना-प्रवचन, १८ अक्टूबर १९४६]

यह कोई आत्महत्याका उपदेश नहीं था। गांधीजीकी इस सलाहके पीछे कि ऐसी परिस्थितिमें समर्पण करनेके बजाय स्त्रियोंको जहर खा लेना चाहिये, यह विश्वास था कि “जिसका मन आत्मघातके लिए भी तैयार हो उसमें ऐसे मानसिक प्रतिकारका साहस होगा और इतनी आन्तरिक शुद्धता होगी कि उसका आक्रमणकारी हथियार डाल देगा।” [हरिजन, ९ फरवरी १९४७, पृ. १३]

एक और समस्या, जो नोआखालीकी घटनाओंने उत्पन्न कर दी थी, उन लड़कियोंके भविष्यकी थी, जो भगा ली गई थीं, जिन पर बलात्कार हुआ था या जिन्हें जबरदस्ती मुसलमान बना लिया गया था और जिनकी इच्छाके विरुद्ध विवाह कर दिया गया था। उनके बारेमें क्या किया जाय ? गांधीजीने कहा, इस तरहके अत्याचारकी शिकार होनेवाली स्त्रियोंको समाजसे बहिष्कृत समझना नारीकी शुद्धताके आदर्शका विपर्यास है। भगा ले जाये जानेके कारण या बलात् धर्म-परिवर्तन कर दिये जानेके कारण भगाई हुई लड़कीके वापस घर आनेमें कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। ऐसे मामलोंमें कोई शुद्धि



अथवा प्रायश्चित्त आवश्यक नहीं है। ऐसी लड़कियों पर प्रायश्चित्त लाद कर हिन्दू समाज गलती करता है। ऐसी लड़कियोंने कोई गलती नहीं की है। वे प्रत्येक विचारशील मनुष्यकी दया और सक्रिय सहायताकी पात्र हैं। ऐसी लड़कियोंका उदारता और स्नेहके साथ अपने घरोंमें स्वागत होना चाहिये और योग्य व्यक्तिके साथ उनका विवाह होनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। [हरिजन, ३ नवम्बर १९४६, पृ. ३८७]

भगाई हुई अथवा जबरदस्ती मुसलमान बनाई हुई स्त्रियों और लड़कियोंके बारेमें गांधीजीके मजबूत रवैयेका वांछित परिणाम हुआ। इन अभागी बहनोंको किसी कठिनाईके बिना सामान्यतः अपने परिवारोंमें वापस ले लिया गया; और देशभरसे ऐसे नौजवानोंके बहुतसे प्रस्ताव आये, जो सारे पूर्वाग्रह छोड़ कर औरोंकी अपेक्षा ऐसी लड़कियोंके साथ विवाह करनेको तैयार थे।

गांधीजीकी इस सल्गह पर गलतफहमी बनी रही कि स्त्रियां अपना शील भंग होने देनेकी अपेक्षा आत्महत्या कर लें। कुछ लोगोंको इसमें बदमाशोंके लिए प्रोत्साहन दिखाई दिया। इस गलतफहमीको दूर करनेके लिए गांधीजीने फिर कहा कि स्त्रियां यदि चाहें तो आत्मरक्षाके लिए कोई भी हथियार रख सकती हैं। आत्मरक्षाके दो मार्ग हैं: मार कर मारा जाना या बिना मारे मर जाना। **स्त्रियां दोनोंमें से कोई भी मार्ग पसन्द कर सकती हैं। परन्तु मैं तो उन्हें दूसरे ही मार्गकी शिक्षा दे सकता हूं। शस्त्रास्त्र मनुष्यकी लाचारीके प्रतीक हैं, न कि उसकी शक्तिके।** शस्त्रोंसे उस समय रक्षा नहीं होती, जब अपनेसे कहीं बड़ी शक्तिके सामने अपनी लाज बचानेकी नौबत आ जाय; और जब शस्त्र छीन लिये जाते हैं तब तो आत्म-समर्पणके सिवा सामान्यतः दूसरा कोई उपाय ही नहीं रह जाता। इज्जत तो दुनियाकी किसी भी शक्तिके सामने आत्म-समर्पणको सहन नहीं कर सकती। जो स्त्री मृत्युसे नहीं डरती, उसकी लाज कोई नहीं लूट सकता।

इससे भी अधिक गम्भीर खतरा इस बातका था कि प्रतिशोध बर्बरता दिखानेमें स्पर्धाका रूप धारण न कर ले और उसे बदमाशीका बहाना न बना लिया जाय—जैसा कि आंतरिक उपद्रवोंमें अकसर होता है। जहां गांधीजीने अपने सहधर्मियोंको इसके विरुद्ध कड़ी चेतावनी दी, वहां उन्होंने सयाने मुसलमानोंसे भी अपील की कि वे मैदानमें आकर उस चुनौतीको स्वीकार कर लें, जो नोआखालीकी



घटनाओं ने भारत की मानवता को दी है। गांधीजी ने कहा कि यदि ऐसा नहीं हुआ तो मेरे सारे उपदेश व्यर्थ हो जायेंगे और प्रतिशोध के नाम पर पाशविकता का ज्वार भारत की मानवता को सदा के लिए डुबा देगा और भारत के नाम पर सदा के लिए कलक लग जायगा। गांधीजी ने अनुरोध किया कि यदि इस बुराई को सफलतापूर्वक रोकना है, तो समझदार मुसलमानों को न सिर्फ अपने मन की बात खुल कर कहनी चाहिये, बल्कि वैसा ही आचरण भी करना चाहिये और अपनी बात का आग्रह रखना चाहिये। गांधीजी की इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया। नतीजा यह हुआ कि इस उपेक्षा की भयंकर कीमत चुकानी पड़ी और भारत का नाम संसार में कलंकित हो गया।

२४ अक्टूबर की प्रार्थना-सभा से ठीक पहले एक घटना हुई, जिसने यह सिद्ध किया कि जब भावुकता को हमारी संयत बुद्धि पर हावी हो जाने दिया जाता है तब वह अपना ही विरोध करने लगती है और अपने ही उद्देश्य को विफल बना देती है। उत्तेजित नौजवानों की एक भीड़ हाथों में लिखे हुए तख्ते लिये और नारे लगाते हुए प्रार्थना-भूमि पर आ धमकी। वे चाहते थे कि पूर्व बंगाल की घटनाओं के सम्बन्ध में न्याय हो और उनकी 'आवाज' कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्यों तक पहुंचे। समितिकी बैठक गांधीजी के कमरे में हो रही थी। गांधीजी ने उनसे कहा कि यदि उनका उद्देश्य अपनी आवाज पहुंचाना ही हो, तो वह तो कार्यसमितिके सदस्यों तक पहुंच ही चुकी है; और उनके कामकाज में वह बाधा भी डाल चुकी है ! भीड़ में से कोई चिल्लाया कि जब हमारा घर जल रहा हो तब हम प्रार्थना नहीं कर सकते। गांधीजी ने उत्तर दिया कि जब घर जल रहा हो तब घर के मालिक का या उसके नौकर का धर्म यह है कि वह अपने दिमाग को ठंडा रखे और सारा ध्यान आग को बुझाने पर लगाये। तुम लोगों ने प्रार्थना-भूमि पर आक्रमण करके स्त्रियों को डरा कर भगा दिया है और प्रार्थना-भूमि में उनके लिए सुरक्षित स्थान पर अपना अधिकार कर लिया है। तुम दावा तो यह करते हो कि पूर्व बंगाल में स्त्रियों के कष्टों से तुम्हें आघात पहुंचा है, परन्तु उत्तेजना में तुम सारा विवेक खो बैठे हो और प्रार्थना में आई हुई स्त्रियों के प्रति सहानुभूति रखने का कर्तव्य स्वयं भूल गये हो ! पूर्व बंगाल की अत्याचार-पीड़ित नारियों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने का यह विचित्र ढंग है !



२७ अक्टूबरकी शामको गांधीजीने घोषणा की कि, कल प्रातःकाल मैं नोआखाली जानेके लिए कलकत्ता रवाना हो जाऊंगा। स्त्रियोंके कष्टसे मेरे हृदयको गंभीर आघात लगता है। मैं उनके आंसू पोंछने और उन्हें ढाढ़स बंधानेके लिए बंगाल जाना चाहता हूं।

३

गांधीजीके व्यक्तित्वमें पैगम्बर और व्यावहारिक राजनीतिज्ञका समन्वय सिद्ध हो गया था। पैगम्बरकी दृष्टि सदा अन्तिम ध्येय पर रहती है; व्यावहारिक राजनीतिज्ञकी दृष्टि तात्कालिक परिस्थिति पर। जब दूसरे गुणकी गांधीजीमें प्रधानता होती थी तब वे मनुष्योंके नेता बन जाते थे और अनन्य सैनानायकके रूपमें अपनी सेनाको विजयी बनाते थे। जब पहले गुणकी प्रधानता होती थी तब वे एकाकी अपने पथ पर अडिग गतिसे चलते थे और योग्य अवसरकी प्रतीक्षामें रहते थे। कभी कभी, किसी समय अथवा कोई घटना होने पर, ये दोनों स्वरूप मिल जाते थे। उस समय गांधीजी अकेले ही 'चमत्कार' दिखाते थे; जैसा कि उन्होंने हरिजनोंके पृथक् निर्वाचन-मंडलके विरुद्ध यरवडा जेलमें किये उपवासके समय कर दिखाया था। नोआखालीके अवसर पर ये दो स्वरूप आंशिक रूपमें ही मिल पाये थे। उनका 'मिशन' कुछ तो अन्तिम लक्ष्यके अनुरूप था और कुछ उस तात्कालिक चुनौतीका उत्तर था, जो केन्द्रकी अन्तरिम सरकारके सामने खड़ी थी।

भारतके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्रामके इतिहासमें १९३७ में प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रियों द्वारा पद-ग्रहण करना एक महत्त्वपूर्ण सीमाचिह्न था। गांधीजीको लगा था कि कांग्रेसी मंत्री उसे अपना अवसर बना सकते हैं। उन्हें आम जनताके अभूतपूर्व समर्थन और उत्साहके कारण विजय प्राप्त हुई थी। कांग्रेसी मंत्रियोंको अपने सत्तारूढ़ होनेके चिह्नके रूपमें कुछ ऐसे साहसपूर्ण कार्य करने चाहिये, जिनसे आम लोगों पर चमत्कारी प्रभाव पड़े और वे समझें कि पुराने युगके विपरीत नवयुगका आरम्भ हो गया है। इन कार्योंमें सरकारी कर्मचारियोंका वेतन और सैनिक खर्च तथा जमीनका लगान और सामान्यतः कर-भार कम करना, सबके लिए करमुक्त नमक, बुनियादी पद्धतिकी निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा, सम्पूर्ण मद्य-निषेध, खादी और ग्रामोद्योगोंका सर्वत्र प्रचार, लाल फीताशाहीको खतम करके प्रशासनको सरल बनाना, सामान्य लोगोंको अपने भाग्यका विधाता बनानेके लिए सामूहिक प्रयत्न और सामूहिक



सहयोगको संगठित करना और उन्हें यह अनुभव कराना कि वे अपने भविष्यका निर्माण जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं—आदि बातें सम्मिलित थीं।

इतना करनेके बाद लोकप्रिय मंत्रियोंके लिए दूसरे कदमके रूपमें यह घोषणा करना आसान होता कि वे भीतरी व्यवस्था बनाये रखनेके लिए पुलिस और सेनाका उपयोग न करके समाज-विरोधी तत्त्वोंके संगठनको तोड़ने और बेकार बना देनेके लिए जनताके सक्रिय सहयोग पर निर्भर रहेंगे। यह कैसे किया जा सकता है, इसका संकेत गांधीजीने बम्बईके मुख्यमंत्री बाल गंगाधर खेरको दिया था। अगस्त १९४६ के दूसरे सप्ताहमें पंचगनीसे सेवाग्राम लौटते समय जब गांधीजी थोड़े समयके लिए उरुलीकांचनमें ठहरे थे तब श्री खेर इस बारेमें गांधीजीसे सलाह करनेके लिए वहां आये थे। उस समय अखिल भारतीय डाक-हड़ताल हो रही थी और उसके कोई भद्दा स्वरूप ग्रहण करनेका भय था। उससे कांग्रेस सरकारको बहुत चिन्ता हो रही थी।

गांधीजीने खेरसे पूछा, “क्या इसका यह अर्थ है; कि लोगों पर कांग्रेसका प्रभाव नहीं रहा है?”

मुख्यमंत्रीने उत्तर दिया, “नहीं, ऐसा तो नहीं है; परन्तु कांग्रेस एक आवाजसे नहीं बोलती, इससे जनतामें बुद्धिभेद पैदा हो गया है।”

मंडलीमें से कोई बोला कि हड़तालकी गर्मीके पीछे कोई दुष्ट प्रभाव काम कर रहा है और उसका हेतु आर्थिक न होकर राजनीतिक है।

गांधीजीने सुझाया, “आपको हड़तालियोंको और लोगोंको समझाना चाहिये। आप उन्हें खतरेकी चेतावनी दे दीजिये; निर्वाचकोंसे कह दीजिये कि वे या तो अपना फर्ज अदा करें या दूसरे प्रतिनिधि चुन लें; और यदि वे अथवा आम लोग आपकी बात न सुनें, तो आप त्यागपत्र दे दीजिये।”

श्री खेरने आपत्ति की। उन्होंने कहा: “हमारी देशके प्रति जो जिम्मेदारी है, उसे क्या हम छोड़ दें? और देशको ऐसे दुष्ट बलोंके हाथमें छोड़ दें, जो सचमुच यह चाहते हैं कि कांग्रेस सरकारें शासन न चलायें और देशमें अव्यवस्था पैदा हो जाय ?”



गांधीजीने उत्तर दिया, “लोकतंत्र इसी ढंगसे काम कर सकता है। इससे जनताको शिक्षा मिलेगी। . . . एक बार लोगोंको विश्वास हो जायगा कि कांग्रेस ताकतके जोरसे राज्य नहीं करेगी, तो वे विचारहीन अथवा गेरजिस्मेदार ढंगसे काम करना बन्द कर देंगे और दुष्ट शक्तियां बेकार हो जायंगी। ”

गांधीजीको पक्का विश्वास था कि यदि मंत्रीगण अपना फर्ज अदा करें, तो लोगोंकी ओरसे अनुकूल उत्तर मिले बिना नहीं रहेगा और साम्प्रदायिक हिंसाके उस खतरेका उपाय मिल जायगा, जो न केवल भारतकी स्वाधीनताके लिए बल्कि अखंड भारतकी कल्पनाके लिए भी विद्यमान था।

अन्तरिम सरकार बनानेके लिए अकेली मुस्लिम लीगको निमंत्रण देनेसे कैबिनेट-मिशनके इनकार कर देने पर अहमदाबादमें फिरसे साम्प्रदायिक दंगे भयंकर रूपमें आरम्भ हो गये। जब बम्बईके गृहमन्त्री मोरारजी देसाई उपद्रवके स्थान पर जानेसे पहले गांधीजीकी सलाह लेने आये, तो उन्होंने यह सलाह दी, “आपको पुलिस या सेनाके बजाय ईश्वरको एकमात्र अपना रक्षक बना कर कौमी आगका सामना करनेके लिए जाना चाहिये।” [हरिजन, १४ जुलाई १९४६, पृ. २१९] जरूरत हो तो आगको बुझानेकी कोशिशमें “आपको ज्वालाओंमें जल मरना चाहिये,” जैसे कानपुरके राष्ट्रवादी दैनिक ‘प्रताप’ के युवा सम्पादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीनी किया था। वे १९३१ में हुए कानपुरके हिन्दू-मुस्लिम दंगोंमें शान्तिदूतका काम करते-करते मारे गये थे।

अन्तमें जब सितम्बर १९४६ में कांग्रेसी मंत्रियोंने केन्द्रीय अन्तरिम सरकारमें पद-ग्रहण किया तब गांधीजीने पुनः उनसे यह आग्रह किया, “नये मन्त्रियोंको निश्चय कर लेना चाहिये कि वे कभी ब्रिटिश सेनाओंका उपयोग नहीं करेंगे, चाहे उनका रंग कैसा ही हो, और उनकी सिखाई हुई पुलिसका भी उपयोग नहीं करेंगे। सेना और पुलिस हमारे शत्रु नहीं हैं, परन्तु अब तक लोगोंको सहायता देनेके बजाय उन्हें विदेशी जुएके नीचे रखनेके लिए उस पुलिस और सेनाका उपयोग किया गया है। अब उन्हें रचनात्मक कार्योंमें लगाना चाहिये और दोनोंका उपयोग इन कार्योंमें हो सकता है।” [हरिजन, ८ सितम्बर १९४६, पृ. २९६]



स्थिति बहुत ही पेचीदा थी । कांग्रेसी होनेके नाते जिन कांग्रेसी नेताओंने केन्द्र और प्रान्तोंमें शासनकी जिम्मेदारी ले ली थी, वे कांग्रेसकी अहिंसा-नीतिसे बंधे हुए थे। परन्तु जिस शासन-तंत्रका काम उन्होंने अपने हाथोंमें लिया था, उसके पीछे मुख्य शक्ति पशुबलकी थी; और उसका वे सफलतापूर्वक उपयोग नहीं कर सकते थे, क्योंकि केन्द्रीय मंत्रि-मंडलमें एकताका अभाव था और ब्रिटिश सरकारका यह निर्णय था कि गवर्नरों और वाइसरॉयके विशेष अधिकार सुरक्षित रखे जायें और सत्ताके हस्तांतरित होने तक सेना पर उनका नियंत्रण रहे। परन्तु यदि वाइसरॉय और गवर्नरोंके हाथमें सुरक्षित समस्त असाधारण अधिकार भारतवासियोंके हाथमें दे दिये जाते, तो भी उनमें से कुछकी मान्यता यह थी कि वे बहुत दूर तक उनका प्रयोग नहीं कर सकते; क्योंकि गांधीजीका जीवन और कार्य उनके समक्ष था और २५ वर्षसे अधिक समय तक उन्होंने गांधीजीका अनुगमन किया था। गांधीजीने स्पष्ट समझ लिया कि यदि यही स्थिति बनी रही तो उन लोगोंकी शक्तिके कुंठित होनेका गम्भीर खतरा पैदा हो जायगा। वे निष्क्रिय बन गये थे और सत्ताके अपने स्थानों पर चिपक गये थे। इसलिए उन्हें धर्म-संकटमें डाले बिना गांधीजीने उनके लिए और अपने आदर्शोंके लिए मार्ग साफ करनेको नोआखालीकी दिशामें प्रस्थान किया।

४

इस प्रकार गांधीजीके लिए नोआखाली सारे भारतकी भावी घटनाओंके संचालनका केन्द्र-बिन्दु बन गया। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि भारतकी राजनीतिक गुलामी जल्दी ही समाप्त होने जा रही है। परन्तु क्या विदेशी जुएके भारतसे हट जानेसे सच्चे अर्थमें लोगोंको स्वतंत्रता मिल जायगी ? गांधीजीको सूर्यकी तरह स्पष्ट दिखाई देता था कि इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करेगा कि सत्ताका परिवर्तन कैसे होगा और उस परिवर्तनका आधार इस बात पर रहेगा कि उनकी अहिंसा नोआखालीकी चुनौतीका कैसा उत्तर दे सकेगी ।

मान लीजिये कि भारत काफी शस्त्रास्त्र उत्पन्न कर लेता है और युद्धकी कला भी जानता है; तब जो लोग हथियार नहीं धारण कर सकते, उनका स्वातंत्र्य-संग्राममें क्या भाग या स्थिति होगी ? क्या विदेशी ब्रिटिश सेनाके स्थान पर राष्ट्रीय सेनाके आ जानेसे जन-साधारणको स्वतंत्रता मिल जायगी ?



गांधीजीका उत्तर था: “नहीं मिलेगी। जो देश अपनी राष्ट्रीय सेना द्वारा भी शासित होता है, वह कभी नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता; और इसलिए उसका सबसे कमजोर नागरिक कभी अपनी पूरी नैतिक ऊंचाईको प्राप्त नहीं कर सकता।” [हरिजन, ५ मई १९४६, पृ. ११६] मैं वह स्वराज्य चाहता हूं, जिसमें स्वतंत्रताके फल सबको बराबर बराबर मिलें। परन्तु यदि सबसे निर्बल लोग स्वतंत्रताकी प्राप्ति और रक्षामें सबसे बलवान लोगोंके साथ समान भाग न ले सकें, तो यह संभव नहीं होगा। “यह तो अहिंसक व्यवस्थामें ही हो सकता है। इसलिए मैं अकेला रह जाऊं तो भी भारतकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए अहिंसाको ही एकमात्र साधन समझ कर उसका समर्थन करूंगा।” [हरिजन, ३ मार्च १९४६, पृ. २७]

भारत चौराहे पर खड़ा था। अहिंसाने उसे स्वाधीनताके द्वार तक पहुंचा दिया था। क्या उस द्वारमें प्रवेश करनेके बाद वह अहिंसाको त्याग देगा? यह समझनेके लिए बहुत बड़ी कल्पना-शक्तिकी आवश्यकता नहीं है कि प्रथम श्रेणीकी सैनिक शक्ति बननेके लिए भारतको लम्बे अर्से तक ठहरना पड़ेगा। “और इसके लिए उसे किसी न किसी पाश्चात्य सत्ताको अपना गुरु बनाना पड़ेगा।” [हरिजन, २१ अप्रैल १९४६, पृ. ९५] इसलिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि कैबिनेट-मिशनके भारतके हाथमें सत्ता सौंप देनेकी सूरतमें भारत एक सैनिक शक्ति बननेके प्रयत्नमें कमसे कम कुछ वर्षोंके लिए “अपने किसी विशिष्ट सन्देशके बिना संसारमें पांचवें दर्जेकी एक शक्ति” बन कर ही सन्तोष कर लेगा अथवा “अपनी अहिंसक नीतिको अधिक विशुद्ध बना कर और उस पर अडिग रह कर दुनियाका ऐसा सवे-प्रथम राष्ट्र होनेकी योग्यता सिद्ध करेगा, जो महाप्रयत्नसे प्राप्त हुई अपन्ती स्वतंत्रताका उपयोग—तथाकथित विजयके बावजूद भी—दासताके भारसे कराह रही धरतीको भारमुक्त करनेमें करेगा?” [हरिजन, ५ मई १९४६, पृ. ११६] गांधीजीका यह दृढ़ विश्वास था कि वीरोंकी जिस अहिंसाकी उन्होंने कल्पना की थी, वह विदेशी आक्रमण और भीतरी अव्यवस्थाका उतना ही निश्चित और सफल उपाय है, जितना निश्चित और सफल वह स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए प्रमाणित हो चुका है।

कैबिनेट-मिशनके साथ हुई अपनी समझौतेकी वार्ताओंमें गांधीजीने इस बात पर आपत्ति उठाई थी कि अन्तरिम कालमें बाहरी आक्रमणसे देशकी रक्षा करनेके लिए और भीतरी शान्तिकी रक्षाके लिए भी ब्रिटिश सेनाएं यहां रहें। इसे उन्होंने मिशनकी १६ मईवाली योजनाका “अत्यन्त गम्भीर दोष” बताया



था। उनका तर्क यह था कि दोनोंमें से किसी भी कामके लिए ब्रिटिश सेना यहां रही, तो उससे संविधान-सभाका उत्साह मंद पड़ जायगा और उसके कार्यमें अवास्तविकता आ जायगी। इसके सिवा, यदि अन्तरिम कालमें ऐसे उपयोगके लिए ब्रिटिश सेना भारतमें रखी गई, तो “स्वाधीनताकी स्थापनाके बाद भी उसकी जरूरत महसूस होगी।” [हरिजन, २ जून १९४६, पृ. १६] सेनाको तुरन्त भारतसे हटा लेनेकी मांगको मिशनने अस्वीकार कर दिया। उसे विश्वास नहीं हुआ कि सारे भारतवासी सचमुच ऐसा चाहते हैं। गांधीजीने अपने देशवासियोंसे कह दिया कि तुरन्त और पूर्ण स्वाधीनताकी आपकी मांगको गम्भीर नहीं समझा जायगा, यदि साथ ही साथ आप साम्प्रदायिक उपद्रवोंको दबानेके लिए ब्रिटिश सेनाके उपयोगकी मांग करेंगे। “जो राष्ट्र अपनी भीतरी या बाहरी सुरक्षाके लिए विदेशी सेना रखना चाहता है अथवा ऐसी सेना जिस राष्ट्र पर लादी जाती है, वह किसी भी अर्थमें कभी स्वाधीन नहीं कहा जा सकता। वह राष्ट्र कायर है और स्वराज्य पानेके लिए अयोग्य है। सच्ची कसौटी यह है कि वह अकेला, सीधा और अटल खड़ा रहे। यदि स्वतंत्र होने पर हमें स्थिर गतिसे चलना है, तो अन्तरिम कालमें हमें किसीकी सहायताके बिना चलना सीखना होगा। हमें दूसरों पर आधार रखना अभीसे बन्द कर देना होगा।” [वही] भारत विभाजित होगा या अखंड रहेगा, इस प्रश्नका आधार भी, ब्रिटिश सत्ताके भारतसे हट जाने पर, अराजकता और अव्यवस्थाके खतरेका सामना अंग्रेजोंकी सिखाई हुई सेना और पुलिसकी मददके बिना केवल अहिंसाकी शक्तिसे करनेकी हमारी क्षमता पर होगा। अन्यथा अव्यवस्था फैल जानेके डरके मारे हम मजबूर होकर या तो अंग्रेजोंसे भारतमें ठहरनेकी विनती करेंगे या सुरक्षाकी कीमतके रूपमें देशके विभाजनको स्वीकार कर लेंगे।

इस प्रकार जब साम्प्रदायिक पागलपनको, जैसा कुछ समय पूर्व कलकत्ता और नोआखालीमें देखा गया था, दबानेके लिए ब्रिटिश सत्ता पर निर्भर रहनेकी बात पूर्ण स्वाधीनताके अनुकूल न होनेके कारण छोड़ दी जाती है, तब एक यही विकल्प रह जाता है कि “विदेशी तत्त्वोंसे स्वतंत्र होकर हम आपसमें लड़ते लड़ते थक जायें।” [हरिजन, ८ सितम्बर १९४६, पृ. २९६] परन्तु यह स्पष्ट है कि आपसकी लड़ाई सफल नहीं हो सकती, क्योंकि प्रथम तो अंग्रेज हमें उसमें सफल नहीं होने देंगे; और दूसरे, न तो हमें आधुनिक हथियारोंके प्रयोगका ज्ञान है और न वे हथियार हमें मिल सकते हैं। “हममें तो आवश्यक अनुशासनका भी अभाव है।” [हरिजन, १४ अप्रैल १९४६, पृ. ८०] इसके विपरीत,



अहिंसाके लिए न तो किसी बाहरी प्रशिक्षण अथवा शस्त्रास्त्रकी जरूरत है और न किसी बाहरी सत्ता पर निर्भर रहनेकी जरूरत है। इसलिए अहिंसाका सहारा लिये सिवा और कोई मार्ग बाकी नहीं रह जाता। “यह कोई अहिंसाका उपदेश नहीं है। परन्तु केवल तर्कशुद्ध बात है और एक विश्वव्यापी नियमका कथन है। इस नियममें हमारी अटल श्रद्धा हो, तो बड़ीसे बड़ी उत्तेजनाके समय भी सहनशीलताका पालन किया जा सकता है। इसीको मैंने वीरोंकी अहिंसा बताया है।” [हरिजन, ८ सितम्बर १९४६, पृ. २९६]

गांधीजीको इस विषयमें कोई भ्रम नहीं था कि ब्रिटिश सेनाको भारतसे हटाते ही तुरन्त साम्प्रदायिक उपद्रव बन्द हो जायंगे। इतना ही है कि वे स्वयंसिद्ध सत्यके रूपमें यह मानते थे कि “वे बहुत जल्दी बन्द होने चाहिये।” जब ब्रिटिश सेना भारतसे चली जायगी तो बहुसंख्यक लोगोंको मालूम हो जायगा कि अल्पसंख्यकोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। **“आज तो बहुसंख्यकोंके उत्तम व्यवहारका भी पूरा मूल्य नहीं आंका जाता, क्योंकि ब्रिटिश सेना पर आधार रखनेका प्रलोभन बना हुआ है।”** [यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया द्वारा पृष्ठे गये प्रश्नोंके गांधीजी द्वारा दिये गये उत्तर, ६ नवम्बर १९४६] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) ब्रिटिश सेनासे उनका अभिप्राय सिर्फ गोरे सैनिकोंसे ही नहीं था, परन्तु उन सब सैनिकोंसे था जो ब्रिटिश अफसरोंके सिखाये हुए थे और जिन्हें भारतमें अंग्रेजोंके वफादार रहनेकी तालीम दी गई थी तथा जिनका लोगोंकी स्वतंत्रताको कुचलनेके लिए ही अकसर उपयोग किया गया था।

इसलिए लोगोंको साम्प्रदायिक उपद्रवोंके समय सेना और पुलिस दोनोंके संरक्षणके बिना अपना काम चलाना सीखना पड़ेगा। गांधीजीने कहा, राजनीतिक असन्तोष अथवा साम्प्रदायिक उपद्रवको दबानेके लिए पुलिसका उपयोग करना उसका दुरुपयोग करना है। “जिस देशकी प्रजा अहिंसाकी अद्वितीय वीरता सीखी न हो वहां पुलिसका काम चोर-डाकुओंसे नागरिकोंकी रक्षा करना है और सेनाका काम सामान्यतः विदेशी आक्रमणकारीसे देशकी रक्षा करना है।”



तो क्या देशको 'निश्चित अराजकताकी' अथवा जंगलके कानूनकी स्थितिमें छोड़ दिया जाय ? गांधीजीका उत्तर था: "नहीं ।" वे इस मान्यताको एक अंधविश्वास मानते थे, और उसके लिए विदेशी राज्यके इन्द्रजालको जिम्मेदार समझते थे, कि अंग्रेजोंकी सेना और पुलिसकी शक्तिने ही भारतको भीतरी शान्ति प्रदान की है। उन्होंने कहा कि देश भरमसे बार बार यात्रा करनेसे उनकी यह पक्की राय हो गई है कि, "७ लाख गांवोंको न तो पुलिसका संरक्षण मिलता है और न वे पुलिसका संरक्षण चाहते हैं। गांवमें अकेले पटेलका बड़ा आतंक होता है। गांवों पर उसका प्रभुत्व होता है। और वह इसीलिए रखा जाता है कि मां-बाप सरकारके लिए लगान वसूल करनेमें पटवारीकी मदद करे। मैं नहीं जानता कि पुलिसके जवानोंने मनुष्य और हिंस्र पशुओंके आक्रमणसे गांववालोंकी संपत्ति और मवेशीकी रक्षा करनेमें कभी मदद दी हो ?" [हरिजन, २० अक्टूबर १९४६, पृ. ३६४]

गांधीजी निश्चित रूपसे मानते थे कि भारत उस समय तक अपनी मूल स्थितिको प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक भारतकी प्रत्येक स्त्री और पुरुष स्वयं अपना पुलिस नहीं बन जाता और "भारतका प्रत्येक घर . . . अपना किला नहीं बन जाता—यहां 'किला' शब्दका प्रयोग मैंने उसके अंधकार-युगमें प्रचलित अर्थमें नहीं किया है, बल्कि प्राचीन कालमें प्रचलित उसके सच्चे अर्थमें किया है। वह यह कि प्रत्येक व्यक्ति मनमें वैरभाव रखे बिना अथवा ऐसी इच्छा तक रखे बिना कि वह स्वयं न कर सके तो कोई दूसरा उसके भावी हत्यारेका अन्त कर दे, मृत्युका आलिंगन करनेकी कला सीखे। . . . यदि दुर्भाग्यवश राजनीतिक विचारके लोग यहां सूचित सीमा तक न जायं या न जा सकें, तो उन्हें कमसे कम सब प्रकारका डर तो छोड़ ही देना चाहिये और दृढ़तापूर्वक सेना या पुलिससे मिलनेवाला संरक्षण बिलकुल अस्वीकार कर देना चाहिये।" [वही]

संविधान-सभाका भाग्य अभी तक अधरमें लटक रहा था। प्रश्न यह था कि वह बुलाई भी जायगी या नहीं। लॉर्ड वेवेल पहले ही अन्तिम चुनौती दे चुके थे। १४ जुलाई, १९४६ को ही गांधीजीने यह चेतावनी दे दी थी: "यदि संविधान-सभा निष्फल हो जाती है, तो इसका कारण यह नहीं होगा कि अंग्रेज ही हर बार दुष्टता करते हैं," बल्कि यह होगा कि "हम लोग मूर्ख हैं अथवा मैं तो यह भी कहूंगा कि हम



दुष्ट हैं।” [हरिजन, १४ जुलाई १९४६, पृ. २२०] यदि लोग अपने तुच्छ झगड़े और वैरभाव छोड़ दें और साम्प्रदायिक मतभेदों तथा छोटे छोटे ऊंच-नीचके भेदोंको भूल जायं, तो ब्रिटिश सेनाका भारतमें काम ही नहीं रहेगा और फिर हमें कोई गुलाम नहीं रख सकेगा। “हम अपने इतिहासके एक संकट-कालमें से गुजर रहे हैं। चारों ओर खतरेके बादल मंडरा रहे हैं। परन्तु हम खतरेको अपना अवसर बना लेंगे, यदि हम सत्याग्रहकी शक्तिको पहचान लें; क्योंकि इस पृथ्वी पर सत्याग्रहसे अधिक शक्तिशाली अन्य कोई वस्तु नहीं है।” [हरिजन, ७ अप्रैल १९४६, पु. ७४]

ऐसे आलोचकोंकी कमी नहीं थी, जो यह पूछते थे कि जिन लोगोंको कभी शस्त्र-प्रयोगकी तालीम ही नहीं मिली हो, उनसे अहिंसाकी बात करनेसे क्या लाभ ? यह बात ‘नरम दिलवाले’ हिन्दू पर विशेष रूपसे लागू होती है, क्योंकि वह स्वभाव और परम्परासे अनाक्रमणकारी है। गांधीजीका उत्तर यह था, यह समझता घोर आत्म-वंचना है कि मारनेकी कला सीखने और उसका अभ्यास करनेसे ही मनुष्य मौतका खतरा उठा सकता है, अन्यथा नहीं उठा सकता। “असत्यको बार बार दोहरानेसे जो सम्मोहन उत्पन्न हो जाता है वह न हो, तो हम इस प्रकार अपने आपको बुरी तरह धोखा नहीं दे सकते।” [हरिजन, १४ अप्रैल १९४६, पृ. ८०] आज अहिंसाको गगन-विहार कह कर उसकी हंसी उड़ाना एक फैशन हो गया है। फिर भी मेरी राय है कि “हिन्दू धर्मको जीवित रखने और भारतको अखंड रखनेका यही एकमात्र उपाय है। यदि कांग्रेसकी अहिंसाके पिछले २५ वर्षके इतिहासने हमें यह बात नहीं सिखाई, तो उसने हमें कुछ भी नहीं सिखाया।” [हरिजन, ६ अक्टूबर १९४६, पृ. ३३८]

गांधीजी इस बातसे भी सहमत नहीं थे कि किसी विशेष जातिके कुछ लोगोंने अमानुषिक कृत्य किये, इसलिए सारी जातिको बदनाम कर दिया जाय और उन्हें अछूत बना दिया जाय। “मुस्लिम लीग चाहे तो हिन्दुओंको गालियां दे सकती है और भारतको दारुल-हर्ब (शत्रु-देश) घोषित कर सकती है—जहां जिहादका कानून लागू होता हो और ऐसे तमाम मुसलमान, जो कांग्रेससे सहयोग करें, गद्दार और नष्ट कर देनेके काबिल समझे जायं।” परन्तु तमाम मुसलमान मुस्लिम लीगी नहीं हैं। “इस सारी बकवासके बावजूद हमें सारे मुसलमानोंको अपने मित्र बनाने और उन्हें अपने प्रेमपाशमें बांधनेकी आशा कभी छोड़नी नहीं चाहिये।” [वही]



यद्यपि साम्प्रदायिक एकता गांधीजीको प्राणोंसे भी प्यारी थी, फिर भी जिस चीजको वे सचमुच तत्त्वतः गलत समझते थे उसे स्वीकार करके अथवा उसका समर्थन करके वे उस एकताको खरीदनेके लिए तैयार नहीं थे। दो राष्ट्रोंके जिस सिद्धान्तको मुस्लिम लीग अपनी पाकिस्तानकी मांगका आधार मानती थी, वह गांधीजीकी दृष्टिमें ऐसी ही एक गलत चीज थी। यदि इस सिद्धान्तके अनुसार, जहां तक कमसे कम मुसलमानोंका सम्बन्ध है, धर्म ही राष्ट्रत्वकी एकमात्र कसौटी हो, तब तो कोई मनुष्य अपना धर्म बदल लेने पर अपने आप एक भिन्न राष्ट्रीयताको प्राप्त कर लेता है। यह तो विचित्र बात कही जायगी और इसे स्वीकार कर लेनेसे बहुत ही विलक्षण परिणाम पैदा होंगे। देशके अलग अलग भागोंके लोग दूसरी अधिकांश बातोंमें एक-दूसरेसे सहमत हों, परन्तु विभिन्न धर्मोंको मानते हों, तो वे अलग राष्ट्र हो जायेंगे। इस प्रकार तो प्रत्येक गांवमें और प्रत्येक गलीमें दो या अधिक 'राष्ट्र' हो जायेंगे, जो एक-दूसरेके विरुद्ध होंगे। इसके अलावा, यदि भारतके किसी भागका कोई मुसलमान अपने धर्मके कारण किसी ऐसे राष्ट्रका अंग बनता हो जिसमें भारतके प्रत्येक भागके मुसलमान शामिल हों और सारे गैर-मुस्लिमोंसे और अपने निकटके पड़ोसियोंसे भी अलग होता हो, तो—जैसा डॉ. राजेन्द्र प्रसादने बहुत प्रभावशाली ढंगसे बताया है, यह प्रश्न स्वभावतः उठेगा : “वह मुसलमान किस राज्यका वफादार नागरिक होगा ? क्या उस राज्यका जिसके भीतर वह रहता है और चलता-फिरता है और जो मुस्लिम राज्य न हो—पाकिस्तानके भीतर न होनेके कारण—अथवा उस दूरवर्ती मुस्लिम राज्यका जिसके साथ उसका इसके सिवा और कोई सम्बन्ध न हो कि उसमें रहनेवाले अधिकांश लोग उसी धर्मको मानते हैं जिसे वह मानता है ?” [डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, 'इंडिया डिवाइडेड', बम्बई, १९४७, पृ. २१६] अलबत्ता, यही सवाल किसी मुस्लिम राज्यमें रहनेवाले गैर-मुस्लिमके बारेमें भी पैदा होगा।

इसके सिवा, यदि मनुष्यके राष्ट्रका निश्चय उसके धर्मसे होता हो, तो ऐसे गैर-मुस्लिम बहुमतवाले प्रदेशोंमें—जो पाकिस्तानमें शामिल न हों—रहनेवाले मुसलमानोंका और पाकिस्तानमें आनेवाले प्रदेशोंमें रहनेवाले गैर-मुस्लिमोंका दर्जा और उनके राजनीतिक अधिकार क्या होंगे ? क्या वे विदेशी समझे जायेंगे या पाकिस्तानमें गैर-मुस्लिमोंको रक्षित अल्पसंख्यकोंका दर्जा पाकर सन्तोष कर लेना पड़ेगा ? और यदि एक धर्म छोड़ कर दूसरे धर्ममें चले जानेसे राष्ट्रीयता पर असर पड़ता हो और इसलिए व्यक्तिकी राजनीतिक निष्ठा बदल जाती हो, तो क्या राज्यके लिए उसके निवासियोंके धर्म-परिवर्तनके



किसी आन्दोलनको राज्यकी स्थिरताके लिए खतरा मान लेना और राजद्रोह समझकर दबा देना उचित नहीं होगा ? इससे तो राज्यके किसी महत्वाकांक्षी अध्यक्षको बलात् लोगोंका धर्म-परिवर्तन करनेके लिए एक तर्क भी मिल सकता है और फिर तो धार्मिक स्वतंत्रताके और धार्मिक सहिष्णुताके सिद्धान्तको नमस्कार ही कर लेना पड़ेगा।

गांधीजीने पूछा, यदि इस्लामको स्वीकार करते ही किसी व्यक्तिकी राष्ट्रीयता अपने आप बदल जाय, तो क्या मेरे सबसे बड़े लड़केको—जिसने अपने बहुरंगी जीवनके चन्द वर्षोंमें ही दो तीन बार अपना धर्म बदला है—भिन्न राष्ट्रीयता प्राप्त हो जाती है अथवा हिन्दू धर्म और इस्लामके बीच टक्करें खाते हुए हर बार उसे राष्ट्रत्वके नये लक्षण प्राप्त हो जाते हैं ? यह सुझाव ही बेहूदा है। हरिलाल अपना धार्मिक लेबल बदल लेनेके बावजूद जैसा था और जहां था वैसा ही है और वहीं है। मैं यह भी माननेको तैयार नहीं हूं कि हिन्दू और मुसलमान अलग अलग धर्मोंको माननेके कारण ही भाई-भाईकी तरह शान्तिपूर्वक साथ नहीं रह सकते। मेरे लिए यह बात निरा अधर्म अथवा धर्मद्रोह है। यह मेरी सम्पूर्ण जीवन-दृष्टिके विरुद्ध है। दुनियाकी किसी भी चीजके लिए मैं असत्यका साक्षी नहीं बन सकता।

इसलिए गांधीजी दो राष्ट्रोंके उस सिद्धान्तको माननेसे इनकार करते थे, जिसे मुस्लिम लीगने किसी भी समझौतेकी पहली शर्तके रूपमें पेश किया था। इसका कारण यह नहीं था कि गांधीजी—जैसा कि कुछ लोगोंने सुझाया था [महात्मा गांधी, लन्दन, १९४९, में लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स, संपा.—पोलक, ब्रेल्सफोर्ड और पेथिक-लॉरेन्स, पृ. ३१३]— इसे “ईश्वरकी ऐसी इच्छा” मानते थे, जो बुद्धि और सामान्य ज्ञानके क्षेत्रसे बाहर थी; बल्कि इसका कारण यह था कि वह मांग असत्यकी नींव पर खड़ी थी और पशुबलकी धमकीके साथ प्रस्तुत की गई अनुचित और विवेकहीन मांग थी। उसके लिए इतिहासमें कोई आधार नहीं मिलता था और वह किसी राजनीतिक सिद्धान्तके आधार पर नहीं रची गई थी। उन्होंने ‘हरिजन’ में लिखा, “मुझे पाकिस्तानकी मांग स्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं होगा, यदि मुझे यह विश्वास करा दिया जाय कि वह उचित है अथवा इस्लामके लिए हितकारी है। परन्तु मुझे दृढ़ विश्वास है कि मुस्लिम लीग द्वारा पेश की हुई पाकिस्तानकी मांग इस्लामके विरुद्ध है और मुझे उसे पापपूर्ण कहनेमें भी कोई संकोच नहीं है। इस्लाम संपूर्ण मानव-जातिकी एकता और भाईचारेका हिमायती है, न कि मानव-परिवारकी एकताको छिन्न-भिन्न करनेका । इसलिए जो लोग भारतको



परस्पर लड़ने-झगड़नेवाले समूहोंमें बांट देना चाहते हैं, वे भारत और इस्लाम दोनोंके शत्रु हैं। वे चाहें तो मेरे टुकड़े टुकड़े कर सकते हैं, परन्तु मुझसे कोई ऐसी बात नहीं मनवा सकते, जिसे मैं अनुचित और गलत समझता हूं।” [हरिजन, ६ अक्टूबर १९४६, पृ. ३३९]

६

गांधीजीकी दृष्टिमें अहिंसा केवल एक दर्शन नहीं थी, परन्तु कार्य करनेकी एक पद्धति थी, हृदय-परिवर्तनका एक साधन थी। उन्होंने साम्प्रदायिक दंगोंमें उसका प्रयोग करके काफी विस्तारसे उसके रहस्यकी चर्चा की है।

दंगा करना एक विशेष व्याधि है, एक रोग है। साम्प्रदायिक दंगोंकी तहमें डरकी वह मनोवृत्ति रहती है, जिसका नैतिकताका विचार न रखनेवाले अखबार दुरुपयोग करते हैं और जिसे भड़का कर वे आम लोगोंमें पागलपन पैदा करते हैं। “एक अखबार भविष्य-वाणी कर देता है कि दंगे होनेवाले हैं, दिल्लीमें सारी लाठियां और छुरियां बिक गई हैं और इस समाचारसे हर आदमी घबरा जाता है। . . . दूसरा अखबार यहां-वहां दंगे होनेकी खबर देता है और पुलिस पर दोषारोपण करता है कि एक जगह उसने हिन्दुओंका पक्ष लिया और दूसरी जगह मुसलमानोंका। सामान्य लोग इससे भी परेशान हो जाते हैं।” [हरिजन, २८ अप्रैल १९४६, पृ. १०१] ऐसा क्यों होना चाहिये? “अगर कहीं सचमुच दंगा हो भी जाय और कुछ आदमी उसमें मारे भी जायें, तो उससे क्या हुआ ? किसी दिन तो हरएकको मरना ही होगा।” [वही] बुद्धिसंगत उपाय तो यह है कि शान्त चित्तसे दंगोंके बीचमें जाकर दंगाइयोंको समझदार बननेके लिए कहा जाय। “छोटी-सी लड़की भी दंगाइयोंके पास जाकर उन्हें दंगा न करनेके लिए समझा सकती है। बहुत संभव तो यह है कि वे मान जायेंगे। परन्तु मान लीजिये कि वे नहीं मानते और उस लड़कीको मार डालते हैं, तब भी उसका तो कल्याण ही होगा। जो ईश्वर पर भरोसा करते हैं और यथाशक्ति उसकी इच्छानुसार चलनेका प्रयत्न करते हैं, उनका तो सदा कल्याण ही होता है।” [वही]

द्वेषका मूल भय है। ये दोनों एक ही सिक्केके सीधे और उलठे पहलू हैं। इसलिए मारनेकी जितनी इच्छा होती है “उतनी ही मरनेकी तैयारी कम होती है।” [यंग इंडिया, २३ जनवरी १९३०, पृ. २७] विरोधीके भयसे ही हममें द्वेष उत्पन्न होता है। परन्तु अहिंसाके शब्दकोषमें “बाहरी शत्रु जैसा कोई शब्द



ही नहीं है।” [हरिजन, १३ अक्टूबर १९४०, पृ. ३१८] जब यह चीज समझमें आ जाती है तब मनुष्यका भय भाग जाता है और उसके साथ ही द्वेषका भी अपने-आप अन्त हो जाता है। “इस प्रकार उसके (विरोधीके) हृदय-परिवर्तनका अर्थ हमारा हृदय-परिवर्तन भी है।” [हरिजन, ७ अप्रैल १९४६, पृ. ७०]

भयकी भावनाको जीतनेका मार्ग शुतुरमुर्गकी तरह रेतमें सिर छिपा लेना नहीं है, परन्तु अपने भीतर ऐसी श्रद्धा पैदा करना है जो कभी विचलित नहीं होती । “ खतरेको स्पष्ट रूपमें देख कर भी उसके सामने शान्त और स्वस्थ बने रहना और ईश्वरकी भलाई पर विश्वास रखना ही सच्ची बुद्धिमत्ता है।” [वही, पृ. ७३]

इस प्रकार हम सत्याग्रहकी गहरीसे गहरी बुनियाद—प्रार्थना पर आ जाते हैं । सत्याग्रही पशुबलके अत्याचारसे अपनी रक्षा करनेके लिए ईश्वर पर भरोसा करता है। “जीवनके विविध क्षेत्रोंमें आत्म-समर्पणकी उदात्त और वीरतापूर्ण कला सीखनेमें प्रार्थना प्रथम और अन्तिम पाठ है। . . . प्रार्थना किसी बुढ़ियाका फुरसतके समयका मनोरंजन नहीं है । प्रार्थनाको अच्छी तरह समझा जाय और उचित रूपमें उसका उपयोग किया जाय, तो वह कार्यका अत्यन्त शक्तिशाली साधन है।” [हरिजन, १४ अप्रैल १९४६, पृ. ८०]

अवश्य ही प्रार्थनाके लिए ईश्वरमें सजीव श्रद्धा होनी चाहिये। ऐसी श्रद्धाके बिना सफल सत्याग्रहकी कल्पना नहीं की जा सकती । “ईश्वरको किसी भी नामसे पुकारा जा सकता है, जब तक कि उसका अर्थ जीवनका सजीव धर्म है—दूसरे शब्दोंमें नियम और नियमका निर्माता ईश्वर एक ही है।” [वही] इसके अभावमें सत्याग्रहीमें क्रोध, भय और प्रतिशोधके बिना मरनेका साहस नहीं पैदा होगा । “यह साहस इस विश्वाससे पैदा होता है कि ईश्वर सबके हृदयोंमें विराजमान है और ईश्वरकी उपस्थितिमें कोई भय नहीं होना चाहिये । ईश्वरकी सर्वव्यापकताके ज्ञानका अर्थ विरोधी कहलानेवाले लोगोंके प्राणोंके लिए भी आदर होता है।” [हरिजन, १८ जून १९३८, पृ. १५२] जब आवेगोंका जोर होता है और भय तथा सामूहिक उन्माद लोगों पर छा जाता है, तब प्रार्थनामें श्रद्धा रखनेवाले मनुष्यको तूफानमें भी अपना मस्तिष्क ठंडा रखना चाहिये और पशुके स्तर पर उतर आनेसे इनकार करना चाहिये। “क्रोध और



द्वेष तथा दूसरे सब हीन आवेगों पर विजय पानेकी शक्ति प्रार्थनासे आती है।” [हरिजन, ५ मई १९४६, पृ. ११४]

दंगोंमें भी प्रेम-धर्मकी विजयके दृष्टान्त मिलते हैं । बम्बईके उपद्रवों और कलकत्तेके रक्त-स्नानके दिनोंमें अनेक ऐसी कहानियां सामने आई, जिनमें मुसलमानोंने अपने प्राणोंकी बाजी लगा कर अपने हिन्दू मित्रोंको शरण दी और हिन्दुओंने मुसलमानोंको शरण दी। “मानव-जाति मर जाती, यदि समय समय पर मनुष्यमें दैवी गुणोंका प्रकटीकरण इस प्रकार न होता।” [हरिजन, २. अक्टूबर १९४६, पृ. ३६८]

अहिंसा अथवा प्रेमकी सच्ची कसौटी निर्भयता है। “सम्पूर्ण प्रेमसे सारा भय दूर हो जाता है।” इसके विपरीत, भय इस बातको सूचित करता है कि जिससे हम डरते हैं उसके प्रति हममें प्रेम या अहिंसाका अभाव है। परन्तु जब हृदयमें डर हो तब बहादुरीका दिखावा करनेसे कोई लाभ नहीं होता। उससे काम नहीं चलता। ऐसे दृष्टान्त भी मिले हैं जब बालक निर्भय होकर सांपके साथ खेलता रहा है और उसका बाल भी बांका नहीं हुआ है। “परन्तु यदि कोई प्रौढ़ व्यक्ति, जो सांपसे डरता हो, सांपके साथ खेलनेकी कोशिश करे, तो उसके स्पर्शमें ही सांपको भय दिखाई दे जायगा और कदाचित् सांप उसे काट लेगा।” [हरिजन, ५ मई १९४६, पृ. ११४] यही बात मानवोंके बारेमें भी सच है।

जो आदमी डरता है और भयसे मुक्त होना चाहता है, उसके लिए पहला कदम यह है कि वह हथियार रखना बन्द कर दे। हमें ईश्वरमें पूरी श्रद्धा रखनी चाहिये और अपनी रक्षाके लिए उस पर आधार रखना चाहिये। “ईश्वरमें विश्वास रखो और अपने हथियार तैयार रखो”—यह तो श्रद्धाके आधारसे ही इनकार करना है और इसलिए यह परस्पर विरोधी बात है। “जो मनुष्य डरता है और हथियार रखता है, वह ईश्वरसे इनकार करता है और हथियारोंको अपना ईश्वर बनाता है।” [वही]

लेकिन जब कोई मनुष्य आत्मबलकी पद्धतिको दंगेकी वास्तविक स्थितिमें आजमाता है, तो कई समस्यायें सामने आती हैं। उदाहरणके लिए, वास्तविक हत्यारा बहुत बार एक अज्ञान साधन—दुष्टतापूर्ण प्रचारका शिकार होता है। यदि हम जहरीले प्रचारको रोकनेके लिए कुछ नहीं कर सकते, तो हत्यारेको उसके पागलपनसे हम कैसे रोक सकते हैं ? दूसरे, जो लोगोंको पीछेसे अचानक छुरा मारते हैं, उनसे



हम कैसे लड़ सकते हैं? अन्तमें, हम हिंसाके दावानलका सामना कैसे कर सकते हैं, जब सारे देशमें उसके व्यापक बन जानेका खतरा हो—क्योंकि हम एक ही समयमें सब जगह नहीं पहुंच सकते ?

गांधीजीके पास इन सब समस्याओंका उत्तर था। यह सच है कि हत्यारा दुष्ट प्रचारका शिकार हो जाता है। परन्तु ऐसा प्रचार भी दूषित वातावरणमें ही असरकारी हो सकता है। यदि वातावरणमें से जहरको निकाल दिया जाय, तो सिद्धान्तहीन प्रचार व्यर्थ हो जायगा। सही उपाय यह है कि आरम्भ अपने आपसे किया जाय । असत्य पर आधारित भारी भरकम प्रचारकी अपेक्षा एक व्यक्तिके सजीव उदाहरण द्वारा प्रगट होनेवाला सत्य कहीं अधिक शक्तिशाली होता है। “प्रार्थनामें श्रद्धा रखनेवाला मनुष्य जानता ही नहीं कि डर क्या होता है। आपकी प्रार्थना एक व्यर्थका रटन है, यदि वह डर, घबराहट और सामान्य लोगोंके उन्मादके वातावरणको साफ नहीं करती।” [वही] रही बात उस गुंडेकी जो निर्दोष शिकारको पीछेसे अचानक आकर छुरा मारता है; ऐसी छुरेबाजियोंको पूरी तरह रोक सकना शायद सम्भव नहीं है। “परन्तु यदि दर्शक लोग बुरा काम करनेवालेसे मिले हुए न हों और उनमें साहसका अभाव न हो, तो वे अपराधीको पकड़ कर या तो पुलिसके हवाले कर देंगे या जिस समुदायका वह होगा उसे सौंप देंगे।” [हरिजन, २८ जुलाई १९४६, पृ. २४४] अन्तमें, यह स्पष्ट है कि जहां जहां दंगे छिड़ें उन सब स्थानों पर एक ही समयमें कोई नहीं पहुंच सकता। “परन्तु मन, वचन और कमसे कम उन्हें प्रोत्साहन देनेसे इनकार कर सकते हैं। यदि हमारी आंखोंके सामने ही दंगे छिड़ जायं, तो अपने प्राणोंको खतरेमें डाल कर भी उन्हें रोकनेका प्रयत्न हमें करना चाहिये। परन्तु दूसरोंके प्राण लेकर ऐसा कभी न किया जाय। . . . शब्दसे भी अधिक शक्तिशाली शुद्ध विचार होता है।” [हरिजन, ९ जून १९४६, पृ. १६९] प्रश्न यह है कि क्या हमारा इसमें विश्वास है? और यदि ऐसा हो, तो क्या हम अपने विश्वासके अनुसार आचरण करेंगे ?

वीरोंकी अहिंसाकी साधनाके लिए हमें अपने दैनिक जीवनमें क्या करना चाहिये ? अहिंसाका साहस घरमें रहनेसे पैदा नहीं किया जा सकता। उसके लिए साहसके कामोंकी जरूरत होती है । “जो मनुष्य दो आदमियोंको लड़ता देख कर कांप जाता हो और भाग खड़ा हो, वह अहिंसक नहीं परन्तु कायर है। . . . अपनी परीक्षाके लिए हमें खतरे और मौतका सामना करना सीखना चाहिये, हमें इंद्रियोंका



दमन करना चाहिये और सब प्रकारके कष्ट सहन करतेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये।” [हरिजन, १ सितम्बर १९४०, पृ. २६८]

जो व्यक्ति वीरोंकी अहिंसाकी साधना करना चाहता है, उसके लिए कमसे कम आवश्यकता इस बातकी है कि पहले वह अपने विचारोंको कायरतासे मुक्त कर दे और विचारोंकी स्वच्छताके आधार पर छोटे-बड़े सभी कार्योंमें अपने आचरणका नियमन करे। “इस प्रकार अहिंसाके साधकको, क्रोध किये बिना, अपनेसे अधिक बलवानके आगे दबनेसे इनकार कर देना चाहिये। . . . मान लीजिये कि एक सहयात्री मेरे लड़के पर आक्रमण करनेकी धमकी देता है और जब मैं उस भावी आक्रमणकारीको समझाता हूं तो वह मुझ पर टूट पड़ता है। उस समय यदि मैं उसके वारको शालीनता और गौरवके साथ झेल लेता हूं और उसके विरुद्ध अपने मनमें कोई दुर्भाव नहीं रखता, तो मैं वीरोंकी अहिंसा प्रदर्शित करता हूं। . . . यदि हर बार मैं अपने क्रोधको दबा लेता हूं और वारके बदले वार करनेकी शक्ति रखते हुए भी मैं वार नहीं करता, तो मैं अपने भीतर वीरोंकी अहिंसाका विकास कर लूंगा और वह मुझे कभी धोखा नहीं देगी।” [हरिजन, १७ नवम्बर १९४६, पृ. ४०४]

यह सन्देश कोई नया नहीं था। गांधीजी पहले भी उसे दोहराते रहे थे और जब उन्होंने पहले-पहल यह सन्देश दिया था तब भी वह अति प्राचीन था। इतनी ही बात थी कि वे कोई पुस्तकीय शिक्षा नहीं दे रहे थे, परन्तु जो बात उनके रोम-रोममें बसी हुई थी उसीकी घोषणा कर रहे थे। इसे उन्होंने वैज्ञानिक प्रयोगका विषय बना लिया था।

७

सत्य शब्द संस्कृतके ‘सत्’ शब्दसे निकला है—यह ‘अस्’ धातुका वर्तमान कृदन्त है, जिसका अर्थ ‘होना’, ‘अस्तित्व रखना’ अथवा ‘जीना’ है। सत्यके सिवा वास्तवमें दूसरा कुछ नहीं है, इसलिए सत्का (नपुंसक संज्ञाके रूपमें) प्रयोग अन्तिम सत्य, आदि कारण, विश्वका नियंत्रण करनेवाला नियम आदिके अर्थमें होता है। इसलिए गांधीजीने कहा: सत्य ही ईश्वर, परमात्मा और नियम तथा नियम-निर्माता सब कुछ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहां कहीं सत्य है वहां ज्ञान (चित्) है और जहां ज्ञान है वहां आनन्द है। वह ऐसी स्थिति है, जिसमें मनुष्य दुःख और सुख दोनोंको पार कर जाता



है। “इसीलिए हम ईश्वरको सत्-चित्-आनन्दके रूपमें जानते हैं।” [गांधीजी, ‘फ्रॉम यरवडा मंदिर’, अहमदाबाद, १९३५, पृ. २]

सत्याग्रहका शब्दार्थ है सत्य पर अटल रहना। इसलिए सत्याग्रहकी शक्ति, आत्मबल अथवा सत्यबल हमारे भीतर बसे ईश्वरकी ही शक्ति है। “ईश्वर व्यक्ति नहीं है। वह सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान परमात्मा है। जो मनुष्य उसे अपने हृदयमें स्थापित कर लेता है, उसे ऐसी अद्भुत शक्ति प्राप्त हो जाती है, जो परिणाममें तो भाप और बिजली जैसी भौतिक शक्तियोंके ही समान है, परन्तु इनसे कहीं अधिक सूक्ष्म है।” [हरिजन, १४ जुलाई १९४६, पृ. २१७]

विश्वात्माको मनुष्यकी सीमित बुद्धि नहीं समझ सकती । परन्तु जैसे महासागरमें गिर कर पानीकी बूंद महासागरके साथ एकरूप हो जाती है, वैसे ही इस विश्वात्माके साथ एकरूप होकर इसका अनुभव किया जा सकता है। इसका साक्षात्कार करनेके लिए प्राणिमात्रके साथ तादात्म्य साधना पड़ता है, “सृष्टिके छोटेसे छोटे जीवके साथ आत्मवत् प्रेम करना पड़ता है।” [गांधीजी, ‘एन ऑटोबायोग्राफी’, अहमदाबाद, १९२९, भाग-२, पृ. ५९१] “ईश्वरकी भांति सत्य भी अज्ञेय है। परन्तु जब मनुष्यके सामने सत्य प्रगट होता है तब वह अहिंसाका वेश धारण करके आता है। अज्ञेय सत्य अहिंसाके रूपमें ज्ञेय बन जाता है।” [मीराबहन कृत ‘ग्लीनिंग्स’, अहमदाबाद, १९४९, में दिया गया गांधीजीका उद्धरण, पृ. १९]

इसलिए सत्याग्रहका अर्थ अहिंसाकी अथवा प्रेमकी शक्ति भी है। सत्याग्रहके पालनमें बुनियादी जरूरत सम्यक् विचारकी है। “जब मनको सम्यक् विचार करनेका अभ्यास हो जाता है तब सम्यक् कर्म अपने आप होने लगता है। परन्तु . . . यदि मनको गलत विचार करनेकी आदत हो गई हो, तो सम्यक् कर्मके पीछे कोई बल नहीं होगा और सम्यक् कर्मके जितने फल कर्ताको मिलने चाहिये वे भी उसे नहीं मिलेंगे।” [वही, पृ. २४] सम्यक् विचारके बिना सत्याग्रहके भीतर “श्रद्धाकी प्राणदायक शक्ति” कभी नहीं रहेगी। जो मनुष्य सम्यक् विचारका आदी नहीं है, “वह किसी निश्चित समय (वह चाहे तो भी) सम्यक् कर्म करनेके लिए अपने पर निर्भर नहीं रह सकेगा।” [वही]

सत्याग्रहके नेताको स्पष्ट अन्तर्दृष्टिसे, सत्यासत्यका विवेक करनेकी शक्तिसे, ‘शुद्ध बुद्धिकी’, ‘अन्तरात्माकी’, ‘दैवी वाणीकी’—इसे आप चाहे जिस नामसे पुकारें—आवाज सुननेकी शक्तिसे अचूक



मार्गदर्शन प्राप्त होता है। “दैवो संगीत हमारे भीतर सतत चलता ही रहता है, परन्तु इन्द्रियोंके कोलाहलमें वह कोमल संगीत डूब जाता है।” [हरिजन, १३ जून १९३६, पृ. १४१] “सत्यके दर्शन . . . शुद्ध अनासक्तिवाले मनुष्यको ही हो सकते हैं। क्रोध, लोभ, अहंकार, भय आदिसे साधककी आंखों पर पर्दा पड़ जाता है।” [मीराबहन कृत ‘ग्लीनिंग्स’, अहमदाबाद, १९४९, में दिया गया गांधीजीका उद्धरण, पृ. १९]

गीताके दूसरे अध्यायके अन्तिम श्लोकोंमें, जिन्हें गांधीजी अपना ‘कर्मका शब्दकोष’ कहते थे, स्थितप्रज्ञके आदर्शका वर्णन किया गया है। स्थितप्रज्ञका चित्त इन्द्रियोंके विषयों द्वारा इन्द्रियों पर होनेवाले असरसे क्षुब्ध नहीं होता। सरोवरके पूर्णतः स्थिर जलके समान उसका चित्त सदा निर्मल और शान्त रहता है—ऐसा सरोवर जिसके शान्त और गहरे जलमें उसके पेंदेका छोटेसे छोटा कण भी हम स्थिरता और स्पष्टतासे देख सकते हैं। ऐसे चित्त पर सुख और दुःखका, हर्ष और शोकका, राग और द्वेषका कोई भी प्रभाव नहीं होता। इनसे वह अक्षुब्ध तथा अलिप्त रहता है। उसका निर्णय सदा स्पष्ट होगा, और उसका हेतु दृढ़ और अचल होगा। हमने जिस सरोवरकी उपमा दी है उसमें गड़बड़ पैदा करनेवाली जरासी लहर भी उठ जाती है, तो दृष्टि स्वच्छ नहीं रहती और उसके भीतरके पदार्थ तैरने और नाचने लगते हैं। वे अपने सच्चे रूपमें दिखाई नहीं देते, निर्णय स्पष्ट नहीं होता और हेतु अचल नहीं रहता।

यही हाल उस मनुष्यका होता है जिसकी असंयत इन्द्रियां उसके चित् पर शासन करती हैं और आज्ञाकारी बनकर उसके पहरेदारों और सन्देश-वाहकोंका काम नहीं करतीं। इन्द्रियोंके विषयोंका इन्द्रियों पर असर पड़नेसे चित्तमें ऐसे उपद्रव पैदा होते हैं, जो छोटे छोटे गड़होंसे लेकर भयंकर तूफानों तकका रूप धारण कर लेते हैं। ऐसे तूफानोंके समय मनुष्यकी आध्यात्मिक दृष्टि मन्द हो जाती है और श्रेय-प्रेय, सत्य-असत्य, शाश्वत-अशाश्वतका भेद करनेवाली उसकी विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। इस एक शक्तिके नष्ट हो जानेसे ही सारे दोष, सारे पाप और सारे दुःख उत्पन्न होते हैं।

इसके विपरीत, जो मनुष्य सतत और प्रार्थनापूर्ण आत्म-संयमके द्वारा पूर्ण अनासक्ति तथा शान्तिकी अवस्थाको प्राप्त कर लेता है, वह मनुष्य उस नियमके साथ एकरूप हो जाता है, “जो मार्ग



है, सत्य है और जीवन है," और इसके फलस्वरूप वह नियम जिस शक्तिका आविष्कार है और जो उस नियमसे बाहर और उससे भिन्न नहीं है ऐसी शक्तिका वह साधन बन जाता है।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥॥॥

आपूर्यमाणम् अचलप्रतिष्ठम्

समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे

स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

[भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक ६७-७२]

इसका अर्थ 'इन्द्रियोंका नाश' नहीं है, परन्तु लाओत्सेके स्वयं 'ताओ' से जो सूचित होता है वह इसका अर्थ है। अर्थात् "किसी व्यक्तिगत हेतुसे काम नहीं करना, व्यवहारोंका कष्ट अनुभव किये बिना व्यवहार चलाना और सुगंध जाने बिना आस्वाद लेना। [जी. टी. रेंच, 'दि रेस्टोरेशन ऑफ पेज़ेन्ट्रीज़', लन्दन, १९३९, पृ. १८]



गांधीजी कहते थे कि सत्याग्रहकी शक्तिका नियंत्रण करनेवाले नियम भौतिक नियमोंकी तरह ही वस्तुलक्षी और ठोस होते हैं। परन्तु सत्याग्रहके नियमों और भौतिक विज्ञानके नियमोंमें एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। भौतिक विज्ञानके नियम निर्जीव और जड़ नियम हैं; सत्याग्रहके नियम सजीव नियम हैं और उन पर वृद्धि, विकास तथा परिवर्तनका सिद्धान्त लागू होता है। वे परिस्थितिके साथ सुमेल साधनेवाले भी होते हैं। भौतिक विज्ञानका शास्त्री जिन साधनोंका उपयोग करता है, वे जड़ पदार्थोंके बने होते हैं। सत्याग्रहमें साधन सजीव और संवेदनशील मानव होते हैं, जिनमें अपनी स्वयंकी संकल्प-शक्ति, विवेक-शक्ति और निर्णयकी शक्ति होती है; और जिन लोगों पर सत्याग्रह आजमाया जाता है, वे भी ऐसे ही सजीव प्राणी होते हैं। इसलिए सत्याग्रहके शास्त्रमें कठोर और निर्जीव नियमोंके लिए या निश्चित सिद्धान्तोंके लिए कोई गुंजाइश नहीं होती। सत्याग्रहके नियम और सिद्धान्त निरन्तर बदलते रहते हैं। सत्याग्रहके पालनमें विधि-निषेध भी निश्चित नहीं किये जा सकते और न ही किसी निश्चित प्रकारके आचरणको यांत्रिक रूपमें दोहराया जा सकता है। इसलिए सत्याग्रही प्रायः अपने सामनेके अगले कदमसे अधिक नहीं देख पाता। वह पहलेसे घटनाओंकी कोई योजना नहीं बनाता। वह हर प्रकारकी घटनाओंके लिए तैयार रहता है, क्योंकि कठोर आत्म-संयम, आत्म-निरीक्षण और सत्य तथा अहिंसाकी दृष्टिसे सतत किये जानेवाले सदाचरणके द्वारा वह अपने आपको सत्याग्रहके नियमोंके अनुकूल बना लेता है।

सत्याग्रह-शास्त्रके अनुसंधानमें अनन्त धैर्य, दीर्घ उद्योग और शून्यवत् बननेकी शक्ति चाहिये। “सत्यशोधकको रजकणसे भी नम्र बन जाना चाहिये। सारी दुनिया रजकणको अपने पैरों तले कुचलती है। परन्तु सत्यके शोधकको इतना नम्र बनना चाहिये कि रजकण भी उसे कुचल दे। तभी उसे स्वतंत्र सत्यकी झांकी मिलेगी।” [गांधीजी, ‘एन ऑटोबायोग्राफी’, अहमदाबाद, १९२७, भाग-१, पृ. ७] सत्याग्रहके अभ्यासमें नम्रताका वही स्थान है, जो भौतिक विज्ञानके अनुसन्धानमें तटस्थताका है।

सत्याग्रहीकी प्रयोगशाला उसकी अपनी आत्मा अथवा अन्तरात्मा है। सत्याग्रहका प्रयोगकर्ता अपने अनुसन्धानमें जिन साधनोंका उपयोग करता है वे ऐसे व्रत या यम-नियम हैं, जिनका वह वैज्ञानिक निश्चितताके साथ अपने ही जीवनमें पालन करता है। उनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण व्रत हैं: सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्वाद और ब्रह्मचर्य। वे जितने सीधे-सादे हैं उतने ही आचरणमें कठिन हैं।



“वे एक अहंकारी मनुष्यको बिलकुल असंभव प्रतीत हो सकते हैं और एक निर्दोष बालकको बिलकुल संभव लग सकते हैं।” [वही]

इनमें से अन्तिम व्रत अथवा ब्रह्मचर्य-व्रतकी चर्चा अन्यत्र की जायगी। (देखिये खण्ड २, अध्याय ११) शेष व्रतोंमें से सत्यका स्थान सर्व-प्रथम और प्रमुख है। सापेक्ष सत्यमें अर्थात् साधन-स्वरूप सत्यमें और शुद्ध सत्यमें स्पष्ट भेद है। सापेक्ष सत्य वह सत्य है, जिसे हम किन्हीं विशेष परिस्थितियोंके सम्बन्धमें देखते हैं। वह संपूर्ण सत्य नहीं होता। जो एक प्रकारकी परिस्थितियोंमें सत्य हो सकता है, संभव है वह भिन्न प्रकारकी परिस्थितियोंमें सत्य न हो। इसका एक बहुत सादा दृष्टान्त लीजिये। गुनगुना पानी ठंडे पानीकी तुलनामें गरम होता है और गरम पानीकी तुलनामें ठंडा होता है। इसी प्रकार सापेक्ष सत्य और शुद्ध सत्यकी बात है। शुद्ध सत्य अन्तिम सत्य है—वही है, वही था और वही सदा रहेगा। सत्यके शुद्ध अर्थमें गांधीजी सत्य और ईश्वरको एक ही मानते थे। वे ईश्वरकी पूजा सत्यके रूपमें करते थे। इस अर्थमें सत्य मानव-जीवनका लक्ष्य—परम श्रेय है।

अपूर्ण मनुष्य सम्पूर्ण सत्यको ग्रहण नहीं कर सकता, सापेक्ष सत्यको भी ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए एक व्यक्तिको जो सत्य दिखाई दे, वह दूसरेको भूल मालूम हो सकता है। फिर भी दोनों अपने अपने सापेक्ष दृष्टिकोणसे सच्चे हो सकते हैं—जिस प्रकार कहानीके सात अंधे अपने अपने ढंगसे हाथीका वर्णन करनेमें सच्चे थे। इस तर्कके अनुसार गांधीजी शुरूमें ही इस निर्णय पर पहुंच गये थे कि सत्यके पालनमें अपने विरोधीके प्रति हिंसाकी गुंजाइश नहीं है; इसलिए इसमें धीरजकी आवश्यकता है और धीरजका अर्थ है स्वयं कष्ट सहना। इस प्रकार सत्यके जिस सिद्धान्तका गांधीजीने सत्याग्रह शब्द द्वारा वर्णन किया, उसका अर्थ यह होने लगा कि स्वयं कष्ट उठा कर अथवा प्रेमके द्वारा सत्यकी रक्षा की जाय। हम यदि ईश्वरके सत्यकी ही खोज करना चाहते हैं, तब तो क्योंकि ईश्वर ही है और अन्य कुछ नहीं है, इसलिए “ईश्वरको हम सब वस्तुओंमें और सब वस्तुओंको ईश्वरमें देखेंगे।” फिर हम किसीसे द्वेष नहीं रखेंगे; किसीको भी पहुंची हुई चोट हमें पहुंची हुई चोटके समान हो जायगी। इस प्रकार अहिंसा जहां साधकके लिए एक साधन है, वहां वह सफल साधनाका अन्तिम फल और परिणाम भी है।



अपरिग्रहका आदर्श सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तसे ही फलित होता है। यदि हम अपने पड़ोसियोंसे अपने ही जैसा प्रेम करते हैं, तो हम अनावश्यक वस्तुओंका न तो लोभ कर सकते हैं, न उन्हें रख सकते हैं, जब कि दूसरोंको जीवनकी अत्यंत आवश्यक वस्तुएं भी नहीं मिलतीं। और जिन वस्तुओंकी दूसरोंको बहुत जरूरत हो उन्हें हम जरूरतसे ज्यादा खर्च भी नहीं कर सकते। यदि हम किसी वस्तुको अपनी समझ कर रखते हैं, तो उस स्थितिमें हमें बलपूर्वक सारी दुनियाके विरुद्ध उसकी रक्षा करनी होगी, जब कोई भूखा या मोहताज आदमी हमसे वह वस्तु छीनना चाहेगा। गांधीजीने इंग्लैंडमें अपने एक सार्वजनिक भाषणमें बताया था कि अपरिग्रहका आदर्श उन्हें किस तरह मालूम हुआ, कैसे उन्होंने उसे अपनाया और उसके पालनका उनका अपना अनुभव क्या है। उन्होंने कहा था: “जब मैंने देखा कि मैं राजनीतिक भंवरमें फंस गया हूं, तो मैंने अपने आपसे पूछा कि अनैतिकता, असत्य और जिसे राजनीतिक लाभ कहा जाता है उससे सर्वथा अछूता रहनेके लिए मुझे क्या करना चाहिये। . . . मैं निश्चित रूपमें इस परिणाम पर पहुंचा कि यदि मुझे उत्त लोगोंकी सेवा करनी है जिनके बीच मैं रहता हूं और जिनकी कठिनाइयां मैं दिन-प्रतिदिन देखता हूं, तो मुझे सब प्रकारकी सम्पत्तिका, हर प्रकारके परिग्रहका त्याग कर देना चाहिये। . . . एक समय ऐसा आया जब इन चीजोंका त्याग कर देना मेरे लिए बड़े भारी आनन्दका विषय हो गया। . . . और तब मैंने अपने मनमें कहा: “परिग्रह मुझे पाप मालूस होता है। मैं अमुक वस्तुओंको तभी अपने पास रख सकता हूं जब मैं यह जान लूं कि दूसरे लोग भी—जो ऐसी ही वस्तुएं रखना चाहते हैं—उन्हें रख सकते हैं। परन्तु . . . जो वस्तु सब कोई रख सकते हैं, वह तो केवल अपरिग्रह ही है। . . . ” [स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की गई दरिद्रता पर मॉड रॉयडन्स चर्चमें गांधीजीका भाषण, लन्दन, १९३१। — स्पेट, ‘इंडियन मास्टर्स ऑफ इंग्लिश’, कलकत्ता, १९३४।]

शुद्ध सत्यकी दृष्टिसे तो हमारा शरीर भी आत्माका एक परिग्रह ही है। भोगकी इच्छासे हमने शरीरका आवरण खड़ा किया है और उसे हम टिकाये रखते हैं। “जब यह भोगेच्छा मिट जाती है, तो फिर शरीरकी जरूरत नहीं रह जाती और मनुष्य जीवन-मरणके कुचक्रसे मुक्त हो जाता है।” [गांधीजी, ‘फ्रॉम यरवडा मंदिर’, अहमदाबाद, १९३५, पृ. ३७] इस प्रकार अपरिग्रहके आदर्शका यह तकाजा है कि हमें कलके लिए कुछ भी जमा करके नहीं रखना चाहिये। और अपने भौतिक शरीर तथा शक्तियोंका स्वार्थकी पूर्ति अथवा भोगके लिए उपयोग न करके सेवाके लिए ही उपयोग करना चाहिये। अपरिग्रहके



आदर्शके पूर्ण पालनसे जो परिणाम निकलते हैं उनका वर्णन करते हुए गांधीजीने कहा: “जिन्होंने स्वेच्छापूर्ण दरिद्रताके इस आदर्शका सचमुच पूरी तरह पालन किया है . . . वे इस बातका प्रमाण देते हैं कि जब आप अपना सर्वस्व छोड़ देते हैं तब आपके पास सचमुच दुनियाकी सारी सम्पत्ति आ जाती है। दूसरे शब्दोंमें, जो कुछ आपके लिए वास्तवमें आवश्यक है वह सब आप सचमुच प्राप्त कर लेते हैं। यदि आपको अन्नकी जरूरत है, तो अन्न आपके पास चला आयेगा। . . . मैंने बहुतसे ईसाई लोगोंसे यह सुना है कि प्रार्थना करने पर उन्हें आहार मिल गया। . . . मैं इसमें विश्वास करता हूं | परन्तु मैं आपको एक कदम और आगे ले जाना चाहता हूं और यह विश्वास कराना चाहता हूं कि जो लोग स्वेच्छासे सब कुछ छोड़ देते हैं . . . उन्हें सचमुच यह अनुभव होगा कि उनको कभी किसी चीजका अभाव नहीं होता।” [स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की गई दरिद्रता पर मॉड रॉयडन्स चर्चमें गांधीजीका भाषण, लन्दन, १९३१। — स्पेट, ‘इंडियन मास्टर्स ऑफ इंग्लिश’, कलकत्ता, १९३४।] परन्तु इसमें एक शर्त है और वह यह कि श्रद्धापूर्वक सम्पूर्ण आत्म-समर्पण किया जाय: “ईश्वरके जैसा कठोर स्वामी मैंने इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं देखा और वह आपकी पूरी पूरी परीक्षा लेता रहता है। और जब आपको मालूम हो कि आपकी श्रद्धा काम नहीं दे रही है या आपका शरीर आपका साथ नहीं दे रहा है . . . तब वह किसी न किसी तरह आपकी सहायताके लिए आ पहुंचता है और यह सिद्ध कर देता है कि आपको अपनी श्रद्धा छोड़नी नहीं चाहिये; और ईश्वर सदा आपकी पुकार पर उपस्थित रहता है, परन्तु अपनी ही शर्तों पर, न कि आपकी शर्तों पर। . . . मुझे सचमुच ऐसा एक भी अवसर याद नहीं आता जब ऐन मौके पर उसने मुझे छोड़ दिया हो।” [वही]

अस्तेय चौथा मूलभूत व्रत है। जैसे सत्य और अहिंसाकी परस्पर प्रतिक्रियासे अपरिग्रह उत्पन्न होता है, वैसे ही सत्य और अपरिग्रहकी परस्पर प्रतिक्रियासे अस्तेय जन्म लेता है। कारण, स्तेय अपरिग्रह और सत्य दोनोंका भंग है। जो मनुष्य काम नहीं करता और खाता है, वह चोरी करता है। जो मनुष्य ऐसी वस्तु लेता है, जिसकी उसे अपने तात्कालिक उपयोगके लिए आवश्यकता नहीं है, और उस वस्तुको अपने पास रखता है, वह भी चोरी करता है। “मैं कहता हूँ कि एक तरहसे हम सभी चोर हैं। यदि मैं कोई ऐसी वस्तु लेता हूँ, जिसकी मुझे अपने ही तात्कालिक उपयोगके लिए जरूरत नहीं है और उसे मैं रखता हूँ, तो मैं उसे किसी न किसीके पाससे चुराता हूँ। यह प्रकृतिका मूलभूत नियम है . . . कि प्रकृति हमारी



प्रतिदिनकी जरूरतोंके लिए काफी उत्पन्न करती है; और यदि प्रत्येक मनुष्य अपने लिए जितना पर्याप्त है उतना ही ले और उससे अधिक न ले, तो इस दुनियामें गरीबी नहीं रह पायेगी और कोई भूखसे नहीं मरेगा।” [प्रभु और राव, 'दि माइन्ड ऑफ महात्मा गांधी', मद्रास, १९४६, पृ. १८२] इसलिए गांधीजीने कहा कि तर्ककी दृष्टिसे देखें तो जो मनुष्य अपने दिमागमें व्यर्थका ज्ञान भर लेता है वह भी चोरी करता है और जो अपने समयका एक क्षण भी आलस्यमें गंवाता है वह भी चोरी करता है। जो व्यक्ति इस आदर्शकी पूर्ण प्राप्तिकी आकांक्षा रखता है, वह अपने शरीर और बुद्धिका सेवाके लिए ही सदा उपयोग करेगा—यहां तक कि सेवा, न कि रोटी, उसके जीवनका आधार बन जायगी। वह “सेवाके लिए ही खायेगा, पियेगा, सोयेगा और जागेगा।” [गांधीजी, 'फ्रॉम यरवडा मंदिर', अहमदाबाद, १९३५, पृ. ३८]

एक वेदमंत्र है जो इस प्रकार है:

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेतः।
 सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
 नार्यमणं पुष्यति नो सखायम्।
 केवलाघो भ्रवति केवलादी।
 अहं मेघः स्तनयन्वर्षन्नस्मि ।
 मामदन्ति अहमदम्यन्यान् ।
 अहं सदमृतो भवामि।
 मदादित्या अधि सर्वे तपन्ति।

डॉक्टर जिमरकी टिप्पणी यह है: “जो व्यक्ति इस रहस्यको जान लेता है, वह लोभी नहीं हो सकता। . . . वह इसे (अन्नको) अपने साथियोंमें (स्वेच्छासे) बांट कर खायेगा। वह अन्नका संग्रह करके नैसर्गिक चक्रका भंग नहीं करना चाहेगा। जो कोई अन्नको रखता है वह जीवन-शक्तिकी प्राणदायक गतिसे अपने आपको अलग कर लेता है; क्योंकि वह शक्ति ही शेष विश्वका पालन करती है। . . . ऐसा कृपण परिग्रही सजीव संसारकी जीवनप्रद दिव्य प्रक्रियसे अलग हो जाता है। उसका अन्न



उसे कुछ लाभ नहीं पहुंचाता। जब वह खाता है तब अपनी मृत्युको ही खाता है।” [ज़िंमर, 'फिलॉसफीज़ ऑफ़ इंडिया', लन्दन, १९५२, पृ. ३४७-४८]

सत्याग्रहकी साधनाके रूपमें अपरिग्रह और अस्तेयके पालनका अपना एक अलग ही महत्त्व है। विशेष रूपसे “धनकी पूजा करनेवाले मनुष्य” के वर्तमान युगमें वह पालन व्यापक अर्थमें सत्य और अहिंसाके पालनकी सच्ची कसौटी और परीक्षा बन जाता है।

अस्वादका अर्थ यह है कि हमें खानेके लिए नहीं जीना चाहिये, परन्तु भगवानकी सुष्टिकी सेवाके लिए जीनेको खाना चाहिये। स्वादेन्द्रियका काम यह है कि वह स्वास्थ्य बिगाड़नेवाले और स्वास्थ्य बढ़ानेवाले आहारमें विवेक करें। जिह्वाके संयमका अर्थ स्वादको नष्ट कर देना नहीं है, परन्तु उसे परिष्कृत और सुसंस्कृत बनाकर उसका सदुपयोग करना है। हम सामान्यतः करते यह हैं कि जिह्वाको भोगका साधन बना कर उसे जड़ कर देते हैं और ऐसा करके मृत्युको निमंत्रण देते हैं। जिह्वाके दास बन कर हम दूसरे व्रतोंका भी भंग करते हैं— विशेषतः ब्रह्मचर्यका।

अभय पंच महाव्रतोंमें मूर्त स्वरूप ग्रहण करनेवाले आदर्शोंके पालनका अन्तिम फल और माप है। अभय इन महाव्रतोंकी साधना करनेवाले साधककी सफल साधनाका आधार भी है। अभयका अर्थ होता है भौतिक शरीरके प्रति और उसके साथ जुड़ी हुई सब चीजोंके प्रति पूर्ण उदासीनता और उनकी हानि तथा उनके नाशका सामना करनेकी तैयारी। “जो ईश्वरकी शरणमें जाना चाहता है, उसे शरीरसे परे आत्माकी झांकी होनी चाहिये; और जिस क्षण मनुष्यको अविनाशी आत्माकी झांकी हो जाती है, उसी क्षण नाशवान शरीरका प्रेम छूट जाता है।” [हरिजन, १ सितम्बर १९४०, पृ. २६८]

गांधीजी द्वारा प्रतिपादित इन यम-नियमों अथवा व्रतोंकी नींवमें रहे कष्ट-सहन अथवा देह-दमनका अपने आपमें कोई महत्त्व नहीं है। इसमें किसी प्रकारके सौदेके लिए भी अवकाश नहीं है। यह चीज जिराल्ड हर्डके शब्दोंमें, “पारसी धर्ममें और . . . यहूदी धर्ममें भी मौजूद है और उसका ईसाई धर्म पर अत्यन्त विघातक असर हुआ है।” [जिराल्ड हर्डका पत्र प्यारेलालको, ३ मार्च १९४९]

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन व्रतों या यम-नियमोंके स्वरूपके बारेमें ऐसी किसी पवित्रताकी कल्पना नहीं है, जिसे स्पर्श न किया जा सके या जिसमें कोई परिवर्तन न किया जा सके।



सत्याग्रहकी शक्तिके विकासके लिए आधारभूत बात तो सत्य जैसा दिखाई दे उसी रूपमें उसका पालन करनेका सिद्धान्त है। इसलिए यद्यपि इन यम-नियमों अथवा व्रतोंका स्वरूप समाजकी विभिन्न रचनाओंमें प्रचलित स्तरों, सामाजिक व्यवहारों, स्थानीय रीति-रिवाजों, परम्पराओं, धार्मिक भूमिका, अनुभव तथा सम्बन्धित व्यक्तियों और समाजके विकासके अनुसार बदल सकता है, परन्तु एक वस्तु स्थिर और अपरिवर्तनीय रहेगी—वह यह कि मनुष्यका आचरण उसके विश्वासके अनुरूप होना चाहिये। उसके विचारों, शब्दों और कार्योंमें सम्पूर्ण सुमेल होना चाहिये।

इस प्रकार ये सब व्रत सत्य अथवा विश्वप्रेमके धर्मसे संबद्ध हैं और वहीं उन सबकी जड़ है। (खण्ड २ का ११ वां अध्याय भी देखिये) | सत्यकी साधनाका अर्थ है हमें जो सत्य दिखाई दे उसका समस्त गुढ़ार्थोंके साथ सच्चे हृदयसे सम्पूर्ण पालन। सत्यके दूसरे पहलू—अहिंसाकी तरह सत्य केवल एक तात्त्विक आदर्श या एकांतमें आचरणीय गुण नहीं है; उसे तो जीवनमें उतारना पड़ता है। गांधीजी इस बातका सतत प्रयत्न करते थे कि वे जिन आदर्शोंको माननेका दावा करते हैं, उनका अपने जीवनमें पूरी तरह पालन करें। यही उनकी सत्यकी साधना थी। इससे उनके जीवनने सत्यरूपी ईश्वरके मन्दिरमें निरन्तर चलनेवाली आराधनाका रूप ले लिया था।

८

गांधीजीने एक बार एक मिशनरी मित्रसे कहा था, “आपको मेरा जीवन ध्यानसे देखना चाहिये—मैं कैसे रहता हूं, कैसे खाता हूं, कैसे बैठता हूं, कैसे बोलता हूं और सामान्यतः कैसे व्यवहार करता हूं। इन सब बातोंका कुल जोड़ ही मेरा धर्म है।” आत्म-निरीक्षण तथा आत्मशुद्धिका सतत प्रयत्न करते करते उन्होंने अपने आप पर प्रतिक्षण चौकी करनेकी आदत बना ली थी। उनके लिए सत्यका अर्थ मौखिक सत्य ही नहीं था, परन्तु सत्यपूर्ण जीवन—कहने और करनेमें, मन-वचन-कर्ममें सम्पूर्ण एकरूपता था।

वे प्रतिदिन अन्तरात्माकी अदालतके समक्ष अपनेको खड़ा करते थे और अपने छोटेसे छोटे कार्योंके लिए अपने आपसे उत्तर मांगते थे। इस जांच-पड़तालसे कोई भी चीज बचती नहीं थी। वे अपनेको बिलकुल माफ नहीं करते थे। असलमें कभी कभी देखनेवालोंको ऐसा लगता था कि वे आत्म-



परीक्षण और आत्मनिन्दाको इस हद तक ले जाते हैं कि स्वयं उनके प्रति और उनके निकटतम साथियोंके प्रति अन्याय हो जाता है। उदाहरणके लिए, उनका यह पुराना रिवाज था कि सायं-प्रार्थनाके बाद उन्हें हरिजन-कोषके लिए जो आभूषण भेंट किये जाते थे उन्हें नीलाम कर दिया जाय। समय बचानेके लिए उन्होंने यह रिवाज बन्द कर दिया था, लेकिन उन्हें यह सोच कर दुःख होता था कि वे हरिजनोंको हानि पहुंचाकर अपना समय बचा रहे हैं, यद्यपि वे हरिजनोंके संरक्षक बननेका दावा करते हैं। इसलिए उन्होंने वह रिवाज फिरसे चालू कर दिया। एक दिन वर्षा-ऋतुके शनिवारकी शामको पानीसे टपकते हुए शामियानेमें प्रार्थना हुई और भीड़ रोजसे बहुत कम थी इसलिए आशभूषणोंका नीलाम नहीं किया गया। बादमें इसके लिए उन्होंने अपने आपको दोषित ठहराया : क्या मेरा यह भय श्रद्धाका अभाव प्रगट नहीं करता कि लोगोंके कम होनेके कारण बोली कम लगेगी ? उनके दक्षिण अफ्रीकाके एक मित्र डाउनेस ७ बजे शामको डरबनके गिरजेमें धर्मोपदेश करनेवाले थे। उन्होंने सात बजते ही केवल एक श्रोताके सामने अपना भाषण शुरू कर दिया। भाषण पूरा होनेसे पहले हॉल खचाखच भर गया था। इसे श्रद्धा कहते हैं।

गांधीजीके ७७ वें जन्म-दिवसके अवसर पर, जो भारतीय पंचांगके अनुसार २२ सितम्बर १९४६ को पड़ता था, एक साथीने बिना विचारे अन्तरिम सरकारके तत्कालीन खाद्य-मंत्री डॉ. राजेन्द्रप्रसादके हाथों हरिजन बच्चोंको मिठाई बंटवा दी। जब देशके सामने अकाल मुंह बाये खड़ा हो ऐसे समय गांधीजीको यह अन्नकी भयंकर बरबादी मालूम हुई। उनका पुष्य-प्रकोप भड़क उठा और उन्होंने अपने दिलका गुबार निकाला। इसके लिए बादमें उन्होंने दुगना प्रायश्चित किया—अपने साथीकी भूलके लिए और अपने दिमागका सन्तुलन खो देनेके लिए। उनके प्रत्येक भोजनमें क्या क्या चीजें रहें, इसके बारेमें वे हमेशा सूचना देते थे। उनके भोजनकी वस्तुएं उनकी अपनी शारीरिक स्थिति, भावी कार्य और विश्रामकी स्थिति, मानसिक तनाव और ऐसी अन्य बातों पर पूरी तरह आधार रखती थीं। उस दिन शामको उन्होंने अपनी सूचनाओंमें यह लिखा कि हमेशा दिये जानेवाले संतरेके रसके बजाय खट्टे नीबुका रस बकरीके दूधके साथ परोसा जाय। जब उनका काम खट्टे नीबू और गुड़से ही चल सकता हो, तो उन्हें संतरेका उपयोग करनेका क्या अधिकार है? और अपनी डायरीमें उन्होंने लिखा : “आज मुझे क्रोध आ गया था। . . . मुझे सोचना होगा कि ऐसी परिस्थितिमें मेरा क्या कर्तव्य है। इस धधकती हुई आगके



बीच मानसिक सन्तुलन रखना बहुत कठिन मालूम होता है। मेरा आत्म-निरीक्षण चल रहा है।” एक घनिष्ठ मित्रसे उन्होंने कहा : “मेरे भीतर अशान्ति है, मैं अकुला उठा हूं। मैं इस भीतरी पीड़ाको शान्त चित्तसे क्यों नहीं सहन कर सका ? मुझे डर है कि १२५ वर्ष तक जीनेके लिए आवश्यक अनासक्ति मुझमें नहीं है। चरखे और खादीकी इतनी धीमी प्रगतिका भी यही कारण है। अनन्त धैर्यके बिना खादीकी सफलता असम्भव है। तीव्र लगन और सम्पूर्ण अनासक्ति सारी सफलताकी कुंजी है।” [हरिजन, २९ सितम्बर १९४६, पृ. ३३६]

अमरीकी प्रेस-संवाददाता प्रेस्टन ग्रीवरको एक भेंटमें गांधीजीने समझाया कि १२५ वर्ष तक जीनेका उन्होंने बार बार जो विश्वास दोहराया था, वह क्यों हिल गया है: “इसका यह कारण नहीं है कि मेरा विश्वास अनुचित है। परन्तु इस इच्छाकी पूर्तिके लिए सुनिश्चित मर्यादाएं हैं। . . . यह तभी संभव है जब हर परिस्थितिमें मानसिक सन्तुलन रखा जा सके। मनुष्यको किसी बातसे विक्षुब्ध नहीं होना चाहिये। . . . मैं क्रोधसे भड़क उठा। मैंने अपना मानसिक सन्तुलन खो दिया। आप इसका वर्णन करनेके लिए कोई भी क्रिया-विशेषण या कोई भी विशेषण लगा सकते हैं। . . . तब मुझे अपनी असफलताका पता लगा। इस प्रकार संयम खो देनेसे मेरे जीवनके कुछ वर्ष घट गये। वे फिर प्राप्त किये जा सकते हैं, यदि मैं चित्तकी स्थिरता फिरसे प्राप्त कर सकूं।” [हरिजन, ३ नवम्बर १९४६, पृ. ३८३]

एक और अवसर पर नवाब भोपालके साथ हुई बातचीतमें गांधीजीसे एक भूल हो गई थी। इससे उन्हें गहरा आघात लगा; वे जड़से हिल उठे। उन्होंने अपनी अन्तरात्माके न्यायालयमें अपने पर घोर लापरवाहीका दोष लगाया, “जो एक सार्वजनिक कार्यकर्ताके लिए अपराध है।” इतनेसे सन्तोष न करके उन्होंने शामकी प्रार्थना-सभामें अपनी उस भूलको स्वीकार किया, “मेरे मित्र कह सकते हैं कि वह कोई पाप नहीं था, केवल एक भूल थी—एक तुच्छ-सी गलती थी। परन्तु मैं भूल और पापमें कोई भेद नहीं करता। यदि कोई मनुष्य प्रामाणिक भूल करता है और अपने प्रभुके सामने सच्चे हृदयसे उसे स्वीकार कर लेता है, तो दयालु प्रभु उसके कारण कोई हानि नहीं होने देते।” [हरिजन, २० अक्टूबर १९४६, पृ. ३६७] और आत्म-निरीक्षणमें सहायक हो इसलिए उन्होंने सारे सामान्य कामोंके लिए अनिश्चित कालका मौन ले लिया, जो केवल सायं-प्रार्थनामें प्रवचन करनेके लिए और जिस मिशनके लिए वे आये थे उसके लिए जरूरी होने पर ही तोड़ा जाता था।



इस प्रकार दिन-प्रतिदिन कठोर और जाग्रत आत्म-संयम द्वारा अपनेको अनुशासनबद्ध बनाकर वे अपने मौनकी गहराईमें डूबते गये, ताकि नोआखालीने उन्हें जो चुनौती दी थी उसका उत्तर देनेके लिए वे अन्तरात्माका मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें। मौनके नादने उन्हें जो कुछ कहा वह प्रार्थना-सभाको उन्होंने सुना दिया; “मनुष्यको परमात्माकी सम्पूर्ण सृष्टिका हित हृदयसे चाहना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये कि भगवान उसे ऐसा करनेका बल दे। सबके कल्याणकी इच्छामें ही उसका अपना कल्याण भी समाया हुआ है। जो मानव केवल अपना या अपनी जातिका ही कल्याण चाहता है, वह स्वार्थी है और उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता। . . . मनुष्यके लिए यह विवेक रखना अत्यावश्यक है कि जिसे वह स्वयं अच्छा समझता है वह क्या है और जो उसके लिए सचमुच अच्छा है वह क्या है।” [वही]

कुछ लोगोंको यह सब गगन-विहार जैसा प्रतीत होता था। एक ऐसे ही शंकाशील व्यक्तिने गांधीजीसे पूछा, “दुनियामें जहां भी नजर डालिये वहीं हिंसा और सत्ताकी राजनीतिके सिवा दूसरा कुछ दिखाई नहीं देता। क्या आपने यह सोचा है कि ऐसी परिस्थितियोंमें आपकी अहिंसा क्या कर सकती है?” गांधीजीने उत्तर दिया, “मेरी अहिंसा न तो पंगु है, और न दुर्बल है। वह सर्वशक्तिमान है। जहां अहिंसा है वहां सत्य है; और सत्य ईश्वर है। मैं कह नहीं सकता कि ईश्वर अपने आपको किस रूपमें प्रगट करता है। मैं केवल इतना ही जानता हूं कि ईश्वर सर्वव्यापक है और जहां वह है वहां सब कुशल ही है। इसलिए सबके लिए एक ही नियम है। संसारमें जहां भी सत्य और अहिंसाका साम्राज्य है, वहां शान्ति और आनन्द है। आज ये वस्तुएं कहीं भी नहीं हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि वे तत्काल तो मनुष्यसे छिपी हुई हैं। परन्तु सदाके लिए उनका लोप नहीं हो सकता। श्रद्धावानको इसी श्रद्धाके बल पर अविचल रहना चाहिये।” [हरिजन, २९ सितम्बर १९४६, पृ. ३३२]

इस दर्शन और इस श्रद्धाकी स्वयं परीक्षा करनेके लिए गांधीजी अब नोआखालीकी दिशामें प्रस्थान कर रहे थे।

* * * * *

